ओ३म्

दयानन्द ग्रन्थमाला

शताब्दीसंस्करण

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामी
दयानन्द सरस्वती विरचित

(प्रथम भाग)

आर्यवत्सर १,९७,२९,४९,०२५

दयानन्द जन्म-संवत् १००

संवत् १९८१ विक्रमीय, सन् १९२५ ईस्वी.

प्रथमावृत्ति १०,००० { दोनों भागों का मूल्य ६)

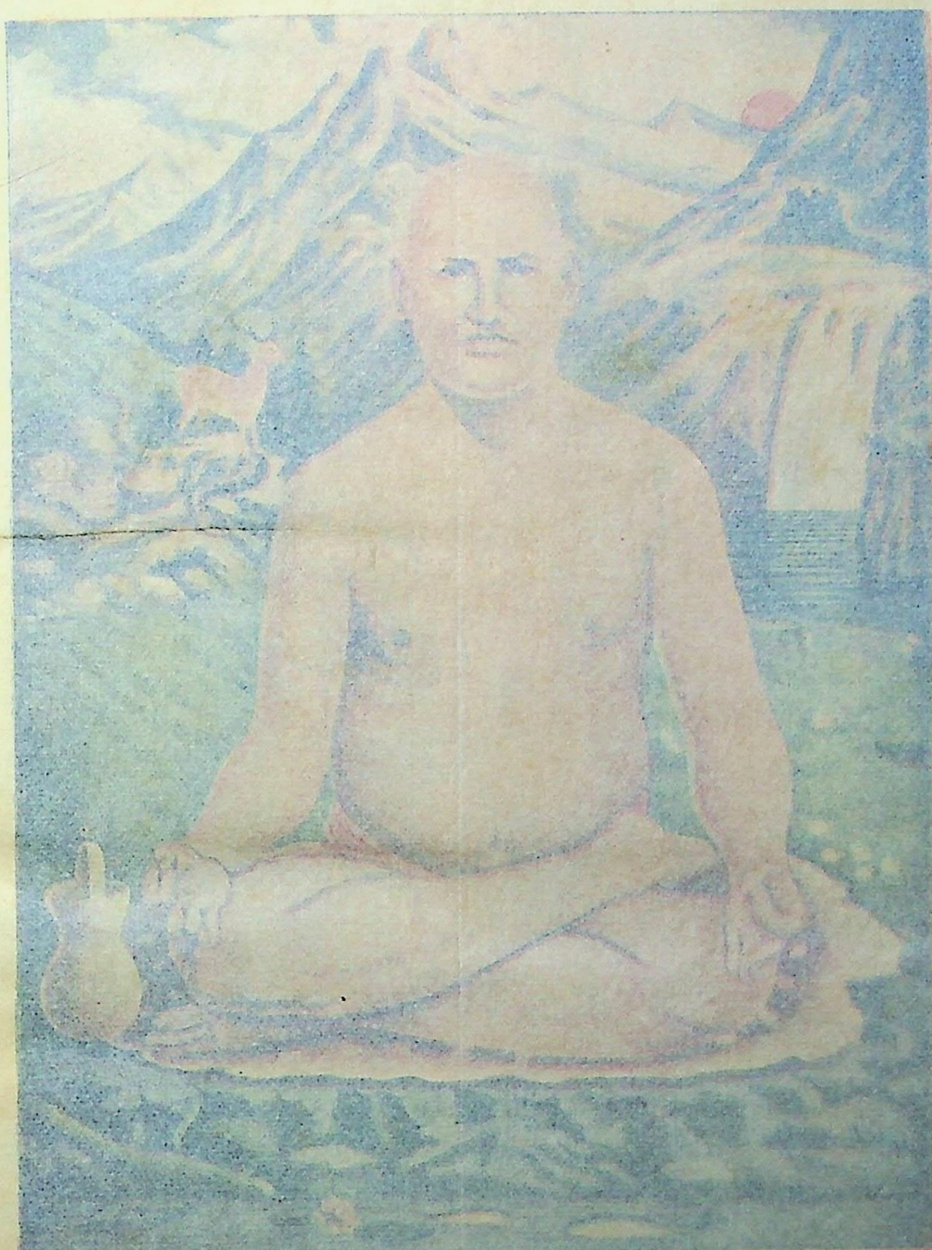
प्रकाशक—
श्रीमती परोपकारिणीसभा
अजमेर.

मुद्रक—
वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर

पुस्तक-सूची

चित्र-सूची

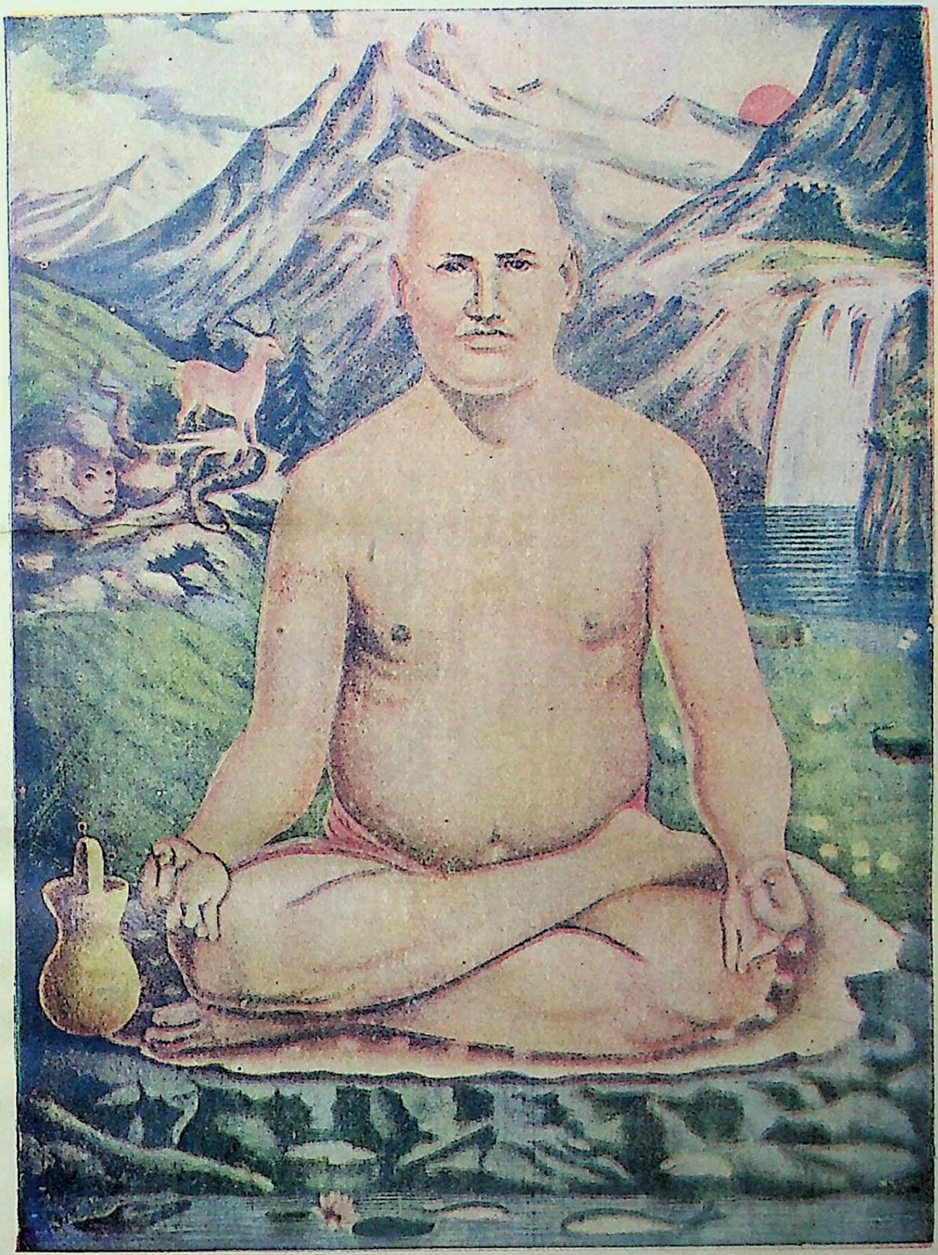
शताब्दी-संस्करण



महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

शताब्दी-संस्करण



महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

ओ३म्

भूमिका

जर्मनी के एक महावैज्ञानिक का कथन है कि महान् पुरुष समुद्र और पर्वतों के भाई हैं। इसका अभिप्राय यह है कि जो उनकी ओर दृष्टिपात करते हैं उन को वे दूर से भव्य ही दिखलाई नहीं देते, अपितु वे मनुष्यों के धार्मिक और आत्मिक जीवन और उनकी कीर्ति पर वैसा ही प्रभाव डालते हैं जैसा कि पर्वत और समुद्र उनके भौतिक जीवन को प्रभावित करते हैं और वह प्रभाव समुद्र और पर्वतों के तुल्य ही चिरस्थायी भी होता है। जिन महान् पुरुषों ने जगत् को नूतन विचार दिये और जिन्होंने सत्य का प्रकाश किया उन्होंने मानो प्राणप्रद अमृत का एक स्रोत सदा के लिये जारी कर दिया। व्यास, गौतम, बाल्मीकि, कालिदास, होमर, वर्जिल, गिईठी, शेक्सपीयर, अरिसटाटल, रूसो आदि महान् पुरुष संसार के लिये आनन्द और उत्साह के शाश्वत स्रोत हैं। ये विद्वानों की श्रेणी में थे। ऐसे ही रामचन्द्र, भीष्म, विक्रमादित्य, अशोक, समुद्रगुप्त, सिकन्दर, सीज़र, अकबर, शार्लमैन आदि कर्मयोगी भी हुए, जिन्होंने अपनी निजू गौरवगरिमा से संसार की घटनाओं पर विचित्र प्रभाव डाला। वह प्रभाव चाहे अनित्य ही हो, तथापि वह जनता के लिये उत्तेजना, बल और प्रोत्साह का स्रोत बन गया, और सदा बना रहेगा। सब से बढ़कर महान् पुरुष वे हैं, जिनका सीधा और स्पष्ट लक्ष्य जनता के कल्याण की वृद्धि करना, दीर्घ काल से लुप्त हुए सत्य को प्रत्यक्ष कर देना, मनुष्यों के आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में उच्च भावों का रखना तथा स्वयं आदर्श बनकर मनुष्यजाति को सत्य, सुख और प्रकाश के पथ की ओर प्रेरित करना है। ऐसे महानुभाव बुद्धदेव, श्रीकृष्ण,

ईसामसीह, कोन्फिशियस और सुकरात थे। जब कि शूरवीर प्रशंसा के पात्र बनते और कविगण तथा सुलेखक धन्यवाद, कृतज्ञता और प्रीति के भाजन होते हैं, वहां जनता का पुनरुद्धार करने वाले बुद्ध, कृष्ण और ईसा आदि महानुभावों की ओर मनुष्यमात्र अपना प्रेम, प्रीति और भक्ति दर्शाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती इसी श्रेणी के महान् पुरुष थे।

आर्य्यों का विश्वास है कि वेद, जो कि सत्य विद्याओं के स्रोत हैं, चार आर्य्य ऋषियों द्वारा, मनुष्य जाति पर, उसके कल्याण के लिये प्रकट किये गये थे। उन्हीं के आधार पर आर्य्यजाति, संसार के मनुष्यों की आदि शिक्षक और पथदर्शक बनी। इसी जाति ने संसार में सभ्यता और धर्म का प्रचार किया और उसका देश आर्यावर्त्त, सभ्यता और मनुष्यत्व का पवित्र केन्द्र बना। आर्य्यों का प्रताप दीर्घ काल तक बना रहा और उन्होंने धर्म, सत्य और ज्ञान को सारे संसार अर्थात् एशिया, यूरोप, आफ़्रीका और अमेरिका में फैलाया।

महाभारतीय युद्ध तथा बौद्धों का बलपूर्वक उच्छेदन, इत्यादिक घटनाओं का यह परिणाम हुआ कि जो ज्ञानरूपी ज्योति—सनातन सत्य के उपदेश, परमेश्वर मनुष्य के परस्पर सम्बन्ध को प्रकट करने वाले मार्ग, परमात्मा जीवात्मा और प्रकृति, मनुष्यत्व और दिव्यता तथा मनुष्य को पूर्ण साधन द्वारा अपने सर्वोत्कृष्ट उद्देश्य पर पहुंचाने के लिये—जगत् के पथदर्शक के तुल्य थी, वह धुंधली पड़ गई। महानुभाव आर्य्यगण—जिन्होंने मनुष्यमात्र को सत्य और प्रकाश का मार्ग सुझाया था—अपनी मर्यादा का अतिक्रम करने से यहां तक गिर गये कि जिस धर्म की शिक्षा उनके पुरुषाओं ने दी थी, उसे भी भूल गये। उनका आत्मिक तेज, उनका सदाचारिक महत्त्व, उनकी शारीरिक शक्ति और उनकी पवित्रता लुप्त हो गई जिससे सद्धर्म के मूल में रहने वाला सनातन सत्य भी, सङ्कट में पड़कर, लुप्त होने लगा।

सांसारिक अभ्युदय के अन्तिम शिखर तक पहुंचने के पश्चात्, काल पाकर, उसी आर्य्य जाति की अवनति होने लगी। क्रमशः वेद और उनमें से निकले

हुए विज्ञान के ज्ञान से वे लोग शून्य हो गये। जिससे संसार में उन्होंने अपने महत्त्व को ही नहीं खोदिया, अपितु उसके साथ ही अपनी स्वतन्त्रता भी खोदी। देववाणी संस्कृत भाषा का ह्रास हुआ। सत्यधर्म भी दुष्प्राप्य हो गया। और वह आर्य्य शब्द, जिसके साथ किसी समय में उच्चतम शिष्टता और ज्ञान की पराकाष्ठा का सम्बन्ध था, "हिन्दू" नाम में बदल गया, जिसका अर्थ समय पाकर दुर्बल और कमज़ोर होगया।

जिन आर्यों ने यूनान और मिस्र को तत्त्वज्ञान और विज्ञान की शिक्षा दी, रोमन लोगों को नीति और कानून तथा सारे संसार को धर्म का मार्ग बतलाया, वे ही आर्यलोग, विदेशियों के आक्रमण के शिकार बन गये, जो सभ्यता, शिष्टता और चरित्र में उनसे कहीं नीचे दरजे के थे। यह अधोगति इस हद तक पहुंची कि मनुष्य की अति अमूल्य संपत्ति 'वेद' का एक भी पूर्ण पुस्तक भारतवर्ष में न मिलसका। हिन्दू जाति अयोग्य, दीनहीन और पराश्रित प्रजा के नाम से पुकारी जाने लगी। जिस जाति ने पहिले पहल संसार को बन्धुभाव का उपदेश दिया वह स्वयं आशातीत विभक्त हो गई और हज़ारों जातियों तथा उपजातियों का वह गृह सी बन गई। एक उपजाति ने दूसरी उपजाति में विवाह करना पाप समझ लिया और दूसरी उपजाति के हाथ का भोजन तथा उसके साथ बैठ भोजन करना तक भी भ्रष्ट मान लिया। इतना ही नहीं, किन्तु इस पवित्र भूमि के कई स्थानों में तो यहां तक छूत चली कि कतिपय वर्ग के लोगों की छाया पड़ने से भी पतित होना मान लिया गया। इसी अविद्याजन्य संकीर्ण जातिभेद ने एकता का नाश कर सद्वर्तन पर कुठार चलाया और आर्य्यगण सहज ही में उन जङ्गली और असभ्य जातियों के लोभ अन्याय और आधिपत्य का शिकार बन गये, जिन्होंने वारंवार इस आतिथिपूजक, उपजाऊ और धनधान्यसंपन्न भारतवर्ष पर पश्चिम और पश्चिमोत्तर दिशाओं से चढ़ाइयां कीं। जो जाति आत्मिक उन्नति के शिखर पर पहुंच गई थी, जो ऐहिक संपत्ति से पूर्ण थी, जिसने संसार को सभ्यता और धर्म सिखलाया था, जिसने अपनी शांति, शुभकामना, ज्ञान और वैभव के स्वत्व को संसार के

प्रत्येक विभाग में फैला दिया था, जिसने नई और पुरानी दुनियां के लोगों को विद्या और कला सिखलाई थी और जो सम्यक् प्रकार पृथ्वी भर में महाधनाढ्य, महाप्रतापी और महाबुद्धिमान् प्रसिद्ध थी, वही जाति सन् ईस्वी की १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में अत्यन्त बिखरी हुई और अवनत गिनी जाने लगी और अपनी उत्कृष्ट भाषा और गौरवपूर्ण साहित्य से अनभिज्ञ हो गई और विदेशियों के आक्रमण से अपना बचाव न कर सकी तथा न अपनी कलाकौशल और विद्या, न अपनी सत्य श्रेष्ठता और उच्च सभ्यता, न अपने ईश्वर-प्रणीत धर्म की रक्षा करने में समर्थ रही। इस पवित्र आर्यावर्त्त की ऐसी दशा हो रही थी, जब कि संवत् १८८१ विक्रमी (ई० सन् १८२४–२५) में, इस ईश्वरीय नियम के अनुकूल कि जब आर्य-जाति के धर्म पर भारी आपत्ति आती है, तब किसी महान् आत्मा का प्रादुर्भाव होकर, उसके द्वारा, धर्म को शक्ति और बल प्रदान करने वाले अखण्ड स्रोत का मार्ग फिर से बतलाया जाता है, स्वामी दयानन्द सरस्वती का जन्म हुआ।

ऊपर लिखित ईश्वरीय नियम का प्रतिपादन भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक में किया है। यथाः—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥ अ० ४, श्लो० ७॥

यह श्लोक केवल इस सनातन सत्य को प्रकट करता है कि जब कभी जीवन की सनातन सत्यताएं लुप्त होने के खतरे में होती हैं, जब कभी वह (आर्य्य) जाति जिसके द्वारा ये सत्य बातें मानव जाति पर प्रकट की गई थीं अपने अज्ञान या स्वार्थसाधन से अपने मूल उद्देशों को भूल जाती है, तब ईश्वरीय दया के कारण कोई महान् आत्मा पैदा होती है जो इन सच्चाइयों को पुनः प्रकाश में लाकर मनुष्यों को धार्मिक जीवन और सुखदायक धर्म का उपदेश करती है।

बाल्यावस्था में ही मूलशङ्कर (उक्त स्वामीजी का यह नाम उनके माता पिता का दिया हुआ था) ने देखा और समझ लिया कि मेरे स्वजन कैसे झूठे देवों की उपासना करते हैं, कैसे हानिकारक अन्ध-विश्वासों और सिद्धान्तों ने उनके दिल में घर कर लिया है, जो किसी काल में महान् प्रतिष्ठित थे उनकी जातीय

दशा आज कितनी शोचनीय हो गई है। मूलशङ्कर ने ऐसे स्थान से भागना ठाना कि जहां जीवनावस्था एक मिथ्या, कृत्रिम और संकीर्ण प्रणाली के सांचे में ढली हुई थी। और वह सत्य की, अपने देश की एवं संसार की सेवा करने के जीवन की तय्यारी करने को कटिबद्ध हो गया। जिन मनुष्यों ने उक्त स्वामीजी के जीवनचरित्र का अध्ययन किया है वे भली प्रकार जानते हैं कि उन्होंने किस कठिनता के साथ निरन्तर परिश्रम किया और कितना कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत किया, कितने उत्साह, एकाग्रता और लगन के साथ वे अपने प्राचीन धर्मशास्त्र के पठन में प्रवृत्त हुए, देश के भिन्न २ भागों में उन्होंने किस प्रकार भ्रमण कर के साधुओं के आश्रमों और तीर्थस्थानों में खोज किये। एकान्त गुफाओं व निर्जन स्थानों में वे ऋषियों और योगियों की तलाश में इस अभिप्राय से घूमे, कि उनके सत्सङ्ग से, अपने को, अपने देश और संसार की सेवा करने के योग्य बनावें। किस प्रकार दृढ़ संयम और वेदशास्त्रविहित सच्चे ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करके, उन्होंने, अपने प्रारंभिक जीवन के उद्देश, अपने गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती की अभिलाषा की पूर्ति, अपनी मातृभूमि के पुनरुत्थान, सत्य के प्रचार, ज्ञान के प्रसार और धर्म की वृद्धि के निमित्त अपना जीवन अर्पण कर दिया। किस प्रकार उन्होंने असत्य के साथ तन मन से संग्राम करने, रोशनी फैलाने, बुराई की जड़ उखाड़ने तथा न्यायाचार और धर्म का झण्डा ऊंचा गाड़ देने का पवित्र प्रण किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती केवल सुधारक ही नहीं थे वरन् संसार भर के शिक्षक भी थे। उनकी शिक्षा मनुष्यमात्र के कल्याण* और सुधार के लिये

---

* उन्होंने संसार को झूठे बन्धन से छुड़ाना अपना कर्तव्य समझा। दुराचारी को दुराचार से बचाना, तथा जहांतक हो सके किसी व्यक्ति को खेद न हो ऐसा वे अपना कर्तव्य समझते थे। उनका पवित्र और कोमल हृदय और दयाभाव इससे मालूम होता है कि एक समय अनूपशहर में एक ब्राह्मण ने स्वामीजी के मूर्त्तिखण्डन से रुष्ट होकर उनको पान में ज़हर दे दिया, स्वामीजी ने जान लिया और अन्दर जाकर न्यौली क्रिया करके बचे, परन्तु इस आदमी को कुछ न कहा।

जब सय्यद मोहम्मद तहसीलदार को यह मालूम हुआ तो उन्होंने उस आदमी को कैद कर दिया और यह समझ कर कि स्वामीजी इस कार्य्यवाही से प्रसन्न होंगे उनके पास गये, परन्तु स्वामीजी उनसे बोले तक नहीं, जब उन्होंने कारण पूछा तो स्वामीजी ने उत्तर

थी। परन्तु सत्य के विरुद्ध न किसी से द्वेष और न किसी से प्रेम था। वे एक जगह कहते हैं— कि "यद्यपि मैं आर्य्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और वसता हूं, तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्त्तता हूं। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है"* ।

उन्होंने देखा कि सत्यज्ञान के विना संसार अविद्या और अन्धविश्वास में डूबा हुआ, स्वार्थपरायणता और पक्षपात से टुकड़े २ हो रहा है। व्यक्ति और जाति को अपने उद्धार का मार्ग बतलाने की आवश्यकता है। अध्ययन और मनन के जीवन ने स्वामीजी को इस परिणाम पर पहुंचाया कि ऐसी अधोगति का मूलकारण वेदों की शिक्षा से विमुख रहना ही है। इसलिये उनके पठन पाठन का पुनः प्रचार करना उन्होंने ठान लिया।

क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं के स्रोत और आर्य्यों के सब धर्मसम्बन्धी साहित्य, एवं शिष्टाचार के मूल हैं और वेदों का ज्ञान ही प्राचीन ऋषियों के सदुपदेश का मर्म खोलने की कुञ्जी है, इसलिये वैदिक संहिताओं का सही और सच्चा अर्थ समझने के वास्ते वेदों की शिक्षा का यथार्थ ज्ञान होने की परम आवश्यकता है। अतएव स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने वेदों का—जिसकी भाषा दीर्घकाल से अप्रचलित होने के कारण सहज ही समझ में नहीं आ सकती थी—हिन्दी भाषा में, जिसे भारतवर्ष के प्रायः सभी निवासी समझ सकते हैं, अनुवाद करना प्रारम्भ किया ताकि उस पुष्टिकर, प्राणप्रद बलवर्द्धक अमृतकुण्ड के आस पास जो घासपात उग आया है तथा जिन सड़े गले प्रक्षिप्त पदार्थों की वृद्धि ने उसे ढांप लिया है वह हट जावे और उस अमृतकुण्ड तक सब की पहुंच हो सके।

दिया कि मैं संसार को कैद कराने नहीं आया हूं वरन कैद से छुड़ाने को। यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें। अन्त में उस ब्राह्मण को छुड़वा दिया।

* सत्यार्थप्रकाश की भूमिका।

भारत के इतिहास में यह पहिला ही अवसर था कि स्वामीजी की कृपा से अमीर और ग़रीब, उच्च और नीच, संस्कारी और असंस्कारी, सब की पहुंच वेदों तक हो गई। पहिले ये पवित्र पुस्तक केवल एकही विशेष जाति की सम्पत्ति थी, स्वामीजी ने घोषणा करदी कि वेदों के पढ़ने का अधिकार मनुष्य-मात्र का है।

इसके अतिरिक्त यह देखकर कि हिन्दू-समाज की शक्ति का ह्रास करने वाली अनेक बुराइयां उस समाज में फैली हुई हैं, स्वामीजी ने उन सब को दूर कर देने का सङ्कल्प किया और मानुषी जीवन से सम्बन्ध रखने वाले धार्मिक सामाजिक और कुलाचारिक सब मुख्य २ विषयों पर वैदिक उपदेश का प्रकाश डालने के लिये, आर्य्य और उनसे भिन्न अन्य सब वर्ग के सामाजिक हित और उपयोग की कामना से, हिन्दी भाषा में पुस्तकें लिखनी आरम्भ कीं। देश भर में भ्रमण कर के उन्होंने सत्यज्ञान के प्रकाश को फैलाया। जहां कहीं वे गये वहां वैदिक सत्य और वैदिक भावों को, सार्वजनिक वक्तृताओं, व्यक्तिगत संभाषणों एवं प्रेमपूर्वक वादविवादों द्वारा, पादरियों, मौलवियों और अन्य मतावलम्बियों पर प्रकट किया। ऐसे ही उन विद्वान् ब्राह्मणों को भी समझाया जो कि अन्धश्रद्धा, मूर्तिपूजा, हानिकारक प्रथाओं, असदाचार और प्रतिष्ठाहीन बनाने वाले व्यवहारों का—जिन्होंने कि हिन्दू जाति को इस दीन दशा में पहुंचा कर निर्बल बना दिया है—समर्थन करने के लिये वेदों का अशुद्ध अर्थ करके उन से सहायता पाने का प्रयत्न करते थे।

मनुष्यों के उद्धार का कार्य यथेष्ट रीति से चलाने और अपने प्रचलित किये हुए सुधारों को स्थायी और शाश्वतरूप देने के लिये स्वामीजी ने आर्य्यसमाज स्थापन किया। परन्तु अपने वेदभाष्य को पूर्ण कर सकने के पूर्व तथा जब कि उनके अन्यान्य उद्देश भी फलीभूत होने को आये थे, ५९ वर्ष की अल्पायु में स्वामीजी तारीख़ ३० अक्टोबर, सन् १८८३ ई० को अजमेर नगर में परमपद को प्राप्त हो गये। अपनी मृत्यु के दो वर्ष पूर्व, सन् १८८१ ई० में,

उन्होंने २३ सभ्यों की एक सभा 'परोपकारिणी सभा' नाम से स्थापित की, ताकि वह कितने एक अंश में उनके कार्य्य को चलाती रहे। जिस कार्य्य का निरूपण स्वामीजी ने किया था, उनकी मृत्यु के पीछे आर्य्यसमाज उसको चला रहा है। संवत् १९८१ विक्रमी में, उनके जन्म से, १०० वर्ष पूरे होते हैं। भारतवर्ष की सब आर्य्यसमाजों की अभिलाषा के अनुसार, स्वामीजी के जन्म की शताब्दी का उत्सव उचित रीति से मनाने के हेतु, श्रीमती परोपकारिणी सभा और सार्वदेशिक सभा का सम्मिलित अधिवेशन दिल्ली में ता० ३ सितम्बर सन् १९२२ को हुआ और यह निश्चय हुआ कि परोपकारिणी सभा, वेदभाष्य और वेदाङ्गप्रकाश के सिवाय दूसरे सब स्वामीजीकृत ग्रन्थों के शताब्दीसंस्करण प्रकाशित करावे। तदनुसार सभा ने यह संस्करण छापा है, आशा है कि भारतीय जनता स्वामीजी की अपूर्व विद्वत्ता वाले इन ग्रन्थों का अध्ययन करके मानवजाति की उन्नति में सहायक होगी और सत्य का पक्ष ग्रहण कर सत्यधर्म, प्रकाश और पवित्रता के प्रचार में भाग लेगी।

स्वामीजी के अन्य सब ग्रन्थों की अपेक्षा सत्यार्थप्रकाश को लोग अधिक पढ़ते हैं, क्योंकि उसमें विविध विषयों का निरूपण किया गया है। इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १८७४ ई० में राजा जयकृष्णदास द्वारा मुद्रित हुआ था और चूंकि स्वामीजी के जीवन का समय बहुकार्य्यव्यग्रता का था इसलिये स्वामीजी ने अपने हाथ से वेदभाष्य सत्यार्थप्रकाश आदि पुस्तकें नहीं लिखा* । परन्तु वे उन पण्डितों को लिखवाते जाते थे जो इस काम के लिये नियुक्त थे। वेदभाष्य, सत्यार्थप्रकाश तथा अन्य पुस्तकों के संस्कृत अंशों के हिन्दी अनुवाद का तथा उनके प्रूफ़ों के पढ़ने का काम उन पंडितों पर ही छोड़ दिया गया था। पौराणिक शिक्षा के संस्कार वाले उन पंडितों ने कहीं कहीं ऐसी बातें उन पुस्तकों में धर दीं जो वैदिकशिक्षा के विरुद्ध थीं। अतएव स्वामीजी ने संवत् १९३५ (ई० सं० १८७८) में नीचे लिखा विज्ञापन प्रकाशित किया।

* स्वामी दयानन्द सरस्वती के निजू लेख से परिचय कराने के लिये इस भूमिका के अन्त में उन के हस्तलिखित एक जीर्ण शीर्ण पत्र का फ़ोटो दिया है।

विज्ञापनम्

सब को विदित हो कि जो जो बातें वेदों की और उनके अनुकूल हैं उनको मैं मानता हूं, विरुद्ध बातों को नहीं। इससे जो जो मेरे बनाये सत्यार्थप्रकाश वा संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में गृह्यसूत्र वा मनुस्मृति आदि पुस्तक के वचन बहुतसे लिखे हैं वे उन ग्रन्थों के मतों को जानने के लिये लिखे हैं। उनमें से वेदार्थ के अनुकूल का साक्षिवत् प्रमाण और विरुद्ध का अप्रमाण मानता हूं। जो जो बात वेदार्थ से निकलती हैं उन सब को प्रमाण करता हूं। क्योंकि वेद ईश्वरवाक्य होने से सर्वथा मुझ को मान्य हैं। और जो २ ब्रह्माजी से लेकर जैमिनिमुनिपर्य्यन्त महात्माओं के बनाये वेदार्थानुकूल ग्रन्थ हैं, उनको भी मैं साक्षी के समान मानता हूं और जो सत्यार्थप्रकाश के पृष्ठ ४२ पंक्ति २५ में "पित्रादिकों में से जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे और जितने मर गये हैं उनका तो अवश्य करे" तथा पृष्ठ ४७ पंक्ति २१ में "मरे भये पित्रादिकों का तर्पण और श्राद्ध करता है" इत्यादि तर्पण और श्राद्ध के विषय में जो छापा गया है सो लिखने और शोधने वालों की भूल से छप गया है। इसके स्थान में ऐसा समझना चाहिये कि जीवितों की श्रद्धा से सेवा करके नित्य तृप्त करते रहना यह पुत्रादि का परमधर्म है और जो जो मर गये हों उनका नहीं करना, क्योंकि न तो कोई मनुष्य मरे हुए जीव के पास किसी पदार्थ को पहुंचा सकता और न मरा हुआ जीव पुत्रादि से दिये पदार्थों को ग्रहण कर सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जीते पिता आदि की प्रीति से सेवा करने का नाम तर्पण और श्राद्ध है अन्य नहीं। इस विषय में वेदमन्त्रादि का प्रमाण भूमिका के ११ अंक के पृष्ठ २५१ से लेके १२ अंक के २६७ पृष्ठ तक छपा है वहां देख लेना।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने सत्यार्थप्रकाश की पुरानी हस्तलिखित प्रति को दूसरे संस्करण के लिये शुद्ध किया। परन्तु शोक है कि उसके छपने के पहिले ही स्वामीजी का स्वर्गवास हो गया और परोपकारिणी सभा ने उस दूसरे संस्करण को सन् १८८५ ई० में प्रकाशित किया। स्वामीजी के हाथ से

उसके प्रूफ देखे जाने का सौभाग्य इसको प्राप्त न हुआ। उनके सत्यार्थप्रकाश के अबतक १६ संस्करण छप चुके हैं। वर्तमान संस्करण १६ वें संस्करण के आधार पर तथा मूल हस्तलिखित प्रति से मिलान करने के बाद छापा गया है और मूल प्रति के अनुसार ही है।

स्वामीजी के ग्रन्थों और उनके संशोधकों का परिचय

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने जो चिट्ठियां वैदिकयन्त्रालय के कर्मचारी पण्डित ज्वालादत्त, मुंशी समर्थदान आदि को भेजी हैं, उन से भलीभांति प्रतीत होता है कि वेदभाष्यों की संस्कृत तो स्वामीजी महाराज की है, परन्तु हिन्दी समग्र स्वामीजी के पास काम करने वाले पण्डितों की बनाई हुई है। इन चिट्ठियों से यह भी ज्ञात हो जायगा कि संस्कृत का भी संशोधन जहां तहां पंडितों ने किया है। स्वामीजी को यह भी ज्ञात था कि उनके किये हुए ग्रन्थों में छापे की अशुद्धियां भी बहुत विद्यमान हैं। स्थान २ पर स्वामीजी के ग्रन्थों में पंडितों ने अपनी टिप्पणियां भी लिखी हैं यह भी इन चिट्ठियों से ज्ञात होता है। स्वामीजी के आधीन काम करने वाले पंडितों की कितनी योग्यता थी तथा उनकी वैदिक सिद्धान्तों में कितनी रुचि थी, इसका भी परिचय पाठकों को नीचे दी हुई चिट्ठियों से हो जावेगा।

१—"पंडित ज्वालादत्तजी, आनन्दित रहो! बड़े शोक की बात है कि तुम को कई बार लिखा कि व्याकरण में नवीन रचना की कुछ आवश्यकता नहीं है। किन्तु जैसी सम्मति देहरादून में ठहर गई है उसी प्रकार छपना चाहिये और अब नामिक जैसे छपता है वैसे ही छपने दो कुछ जरूरत नवीन रचना की नहीं है।......हम नहीं जानते थे कि शोधने में तुम्हारी ऐसी कच्ची दृष्टि है, देखो वेदभाष्य की शुद्धि अशुद्धि केवल चार पांच पत्र ही को नमूने के तौर पर लिखकर भेजते हैं उनको देखो और अपने शोधे हुए में सर्वत्र ऐसा ही जानलो।......आगरा २२ दिसम्बर १८८१"

२—पंडित ज्वालादत्तजी, आनन्दित रहो! विदित हो कि तुमने जो यजुर्वेद अष्टमाध्याय के पत्र भेजे सो पहुंचे, परन्तु वे किसी काम के नहीं, क्यों,

उनमें भाषा बहुत काट फांट रक्खी है और तुम्हारे संकेत हैं······और ···मिक जैसा है वैसा शुद्ध और दिव्य छपवाओ। संधिविषय की तरह न होने पावे, अब हमने संधिविषय का शुद्धिपत्रमात्र देखा तो विदित हुआ कि जो कम विद्या-वाला भी ध्यान देकर शोधे तो भी ऐसी अशुद्धि कभी न रह सके······देखो तुम्हारे शुद्धिपत्र के अनुसार ४० पृष्ठों में ५१ अशुद्धि हैं और तुमने शुद्ध का अशुद्ध किया और तुम्हारे २४ पृष्ठों में ५६ अशुद्धियां हैं। और इन अशुद्धियों में भाषा की कम और संस्कृत की अधिक हैं और जब हम संधि विषय का पाठ करें तब तुम्हारी और भी० से० की न जाने कितनी निकलेंगी, अब ऐसा हुआ सो हुआ, परन्तु आगे कभी ऐसा न करो। आगे से हम सब पुस्तक देखा करेंगे और अपना लिखाया और तुम्हारा शोधा पुस्तक भी मांग लिया करेंगे। और आज से हम वेदभाष्य भी देखेंगे कि कितनी अशुद्धि हैं······जो छप गया सो ख़ैर परन्तु आगे कभी ऐसा न होगा। आगरा १७ जून १८८१.

३—प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदानजी, आनन्दित रहो!······जो कहीं पद छूट जाता है यह भाषा बनाने वाले और शुद्ध लिखने वाले की भूल है। हम प्रायः इस बात में ध्यान नहीं देते क्योंकि यह सहज बात है। अच्छा जहां कहीं रह जाया करे तुम देख लिया करो कि किस २ मन्त्र में क्या २ छूटा और यहां लिख के भेज दिया करो······। जहां २ उचित समझो वहां नोट दे देना। भाद्र बदी १२ शनि संवत् १९३९.

४—मुन्शी समर्थदानजी, आनन्दित रहो! ज्वालादत्त जो भाषा बनाता है·····ऐसा न हो कि पोपलीला घुसेड़ डाले जैसी हमारी संस्कृत है उसी के अनुकूल और कुछ न करे······। मि० अ० ब० ६ सं० १९४७ मङ्गलवार जोधपुरराज, मारवाड़ मरुस्थल.

५—मुन्शी समर्थदानजी, आनन्दित रहो!······तुम थोड़ीसी भाषा देख लिया करो, यह ज्वालादत्त तो विक्षिप्त पुरुष है······यद्यपि मैंने सब पुस्तक गणपाठ का नहीं देखा परन्तु भूमिका के पहले पृष्ठ में दृष्टि पड़ी तो (दूर २)

के स्थान में (दर २) अशुद्ध छपा है । ऐसी भाषा को तुम भी देख सकते हो और यह भाषा भी अच्छी नहीं बनाता किन्तु घास ही काटता है । इसके नमूने के लिये हम एक पत्र भेजते हैं जिसकी उसने भाषा बनाई है और बड़ी भूल करी है कि जिसका पदार्थ है कुछ और भाषा कुछ बनाई है और भावार्थ के संस्कृत के अनुसार पूरी भाषा भी नहीं बनाई है……। थोड़े दिन के पश्चात् पुराणे बहुतसे पत्र इसके भाषा बनाये भेजेंगे उसमें इसके दोष सैकड़ों दीख पड़ेंगे……। मिती भाद्रपद बदी ६ सं० ४० जोधपुर, राज मारवाड़.

६—पण्डित सुन्दरलालजी, आनन्दित रहो ! हमने भीमसेन के शोधे भये पुस्तक देखे तो बहुत भूल निकलती है इससे ज्ञात होता है कि यह बड़ा ग़ाफ़िल है । ता० ११ जून सं० १८८२.

७—मुंशी समर्थदानजी, आनन्दित रहो । ………अब यह (ज्वालादत्त) भाषा भी अच्छी नहीं बनाता जैसी कि पहले बनाता था, जैसी कि प्रतिदिन उन्नति करनी चाहिये यह प्रतिदिन गिरता जाता है अब के भाषा में कहीं पद छोड़ दिये हैं कहीं अपनी ग्रामणी भाषा लिख देता है और (च) का अर्थ और करना चाहिये यह (भी) कर देता है इत्यादि…… सत्यार्थप्रकाश में जो कोई ऐसा अनुचित शब्द हो निकाल कर जो हमारी आशय से विरुद्ध न हो वह शब्द उसके स्थान में धरना और हमको लिख के सूचित करना कि यह २ शब्द धरे हैं । मिती भाद्रपद बदी १ सं० १९४० जोधपुर, राज मारवाड़.

८—प्रबन्धकर्त्ता मुन्शी समर्थदानजी, आनन्दित रहो !……प्रातःकाल से ११ वा १२ बजे तक वेदभाष्य बनाते हैं पश्चात् अन्य काम शोधने आदि का और वह काम ऐसा है कि विना हमारे बन नहीं सकता । जो कहीं भाषा असंबद्ध हो और अभिप्राय वा अक्षर मात्रा आदि से अशुद्ध हो उसको तुम ही शोध लिया करो । संवत् १९३९ आश्विन सुदी ३ रवि० (उदयपुर)

स्वामीजी के वेदभाष्य की विशेषता

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के वेदभाष्य की क्या विशेषता है, इसका ज्ञान हमें ऋषि के यजुर्वेद भाष्य से अच्छे प्रकार हो सकता है । कारण यह

कि यजुर्वेद ही ऐसा वेद है जिस पर ऋषि दयानन्द का भी संपूर्ण भाष्य मिलता है और उव्वट, महीधर आदि आचार्यों के भी पूर्ण भाष्य मिलते हैं। साथ ही यजुर्वेद का ब्राह्मण जो शतपथ है उसमें यजुर्वेद के मन्त्रों के हरेक पद की व्याख्या है।

यजुर्वेद का उव्वट तथा महीधर का भाष्य प्रायः शतपथ ब्राह्मण की कर्मकाण्ड व्याख्या के अनुसार किया गया है, यह बात ठीक है कि स्थान २ पर इन आचार्यों ने शतपथ के समझने में भूल की है*। इसलिये इन आचार्यों का यजुर्वेद का भाष्य सम्पूर्ण रूप से स्वकल्पित नहीं कहा जा सकता। क्योंकि ये भाष्य शतपथ ब्राह्मण के कर्मकाण्डीय शब्दों के प्रायः अनुकूल हैं। इनके भाष्यों को हम "अधियज्ञ भाष्य" कह सकते हैं। अर्थात् वे जिनमें प्रायः यज्ञों का केवल वर्णन हो।

ऋषि का भाष्य, उव्वट आदि के भाष्यों से अर्थों की दृष्टि से सर्वथा भिन्न प्रतीत होता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि ऋषि दयानन्द इन आचार्यों के उन भाष्यों को सर्वथा ग़लत समझते थे। क्योंकि ऋषि दयानन्द ने वेदों के याज्ञिक † अर्थों को भी स्वीकार किया है, उन अर्थों की सत्ता से ऋषि दयानन्द ने इन्कार नहीं किया। हां, जहां २ ये भाष्यकार शतपथब्राह्मण के भावों से उलटे चले गये हैं उन २ भागों की संक्षेप में ऋषि ने आलोचना* भी कर दी है।

(१) इसलिये हम यह कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द का वेदभाष्य उव्वट आदि के वेदभाष्य का पूरक है।

(२) ऋषि-भाष्य के पूरक होते हुए भी यज्ञपरक अर्थों में, उनका, पुराने वेदभाष्यकारों से बहुत भारी मतभेद है। वह है देवता विषय में। पुराने भाष्यकार अग्नि, वायु आदि शब्दों से भिन्न २ चेतन और अदृश्य देवताओं का

* देखो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका "भाष्यकरणशङ्कासमाधानप्रकरण"।

† ऋषिभाष्य, यजुर्वेद, अ० १। मं० १। तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के "वेदविषय विचार" तथा "प्रतिज्ञा विषय" प्रकरण।

अर्थ लेते हैं, जिन्हें कि वे आग और हवा आदि के आत्मारूप या अधिष्ठातृ देवता मानते हैं। यहां तक कि वृक्ष की शाखा, ऊखल, मुसल आदि सामान्य वस्तुओं के भी चेतन अधिष्ठातृ देवता इन पुराने वेदभाष्यकारों ने अपने २ वेदभाष्य में मान लिये हैं। इन काल्पनिक देवताओं के मानने में उन्होंने एक युक्ति पेश की है वह यह कि वेदों में आग, हवा, शाखा, ऊखल, मुसल आदि के वाचक अग्नि, वायु आदि शब्दों को संबोधन के रूप में रक्खा है, और सम्बोधन चेतनों के लिये हो सकता है, जड़ों के लिये नहीं। परन्तु ऋषि दयानन्द ऐसे स्थानों में उस रूप से पदार्थ की स्तुतिमात्र (पुरुषविध कल्पनामात्र) मानते हैं। जड़ वस्तुओं के लिये ऐसे प्रयोग कवियों की कविताओं में प्रायः करके मिलते हैं। इसलिये ऋषि दयानन्द को वेदों के सम्बोधन पद भ्रम में नहीं डाल सके। ऋषि दयानन्द याज्ञिक अर्थों में भी अग्नि, वायु आदि पदों से आग* हवा आदि जड़ पदार्थों का ही ग्रहण करते हैं। पाठकों को कहीं भ्रम न हो जाय इसलिये वेदों की व्याख्या में जहां २ अग्नि आदि शब्दों से आग आदि अर्थ लिये हैं, वहां २ सम्बोधन को ऋषि ने कर्तृकारक में बदल डाला है।

ऋषि दयानन्द सरस्वतीजी ने वेदों के याज्ञिक अर्थ नहीं किये। क्योंकि याज्ञिक अर्थ ब्राह्मणग्रन्थों, कल्पसूत्रों तथा पुराने भाष्यकारों के भाष्यों में स्पष्ट-रूप से मिलते ही थे। अतः ऋषि ने वेदों के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक अर्थों के ही दिखाने का प्रयत्न किया है। इन अर्थों की दृष्टि से, मूल मन्त्रों की क्रम से व्याख्या, किसी प्राचीन ग्रन्थ में भी अभी तक नहीं मिली। हां ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यकग्रन्थ तथा उपनिषदों में इन अर्थों की कहीं २ थोड़ी बहुत व्याख्या तथा झलक अवश्य है। इन्हीं अर्थों के लिये ऋषि दयानन्द की अपूर्वता है। इन अर्थों के सम्बन्ध में अपनी शैली पर स्वामीजी ने संक्षिप्त शब्दों में सत्यार्थप्रकाश† के प्रथम समुल्लास में प्रकाश डाला है। ये शब्द निम्नलिखित हैं:—'ओ३म्' यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों

* देखो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका "देवता—विचार विषय"।

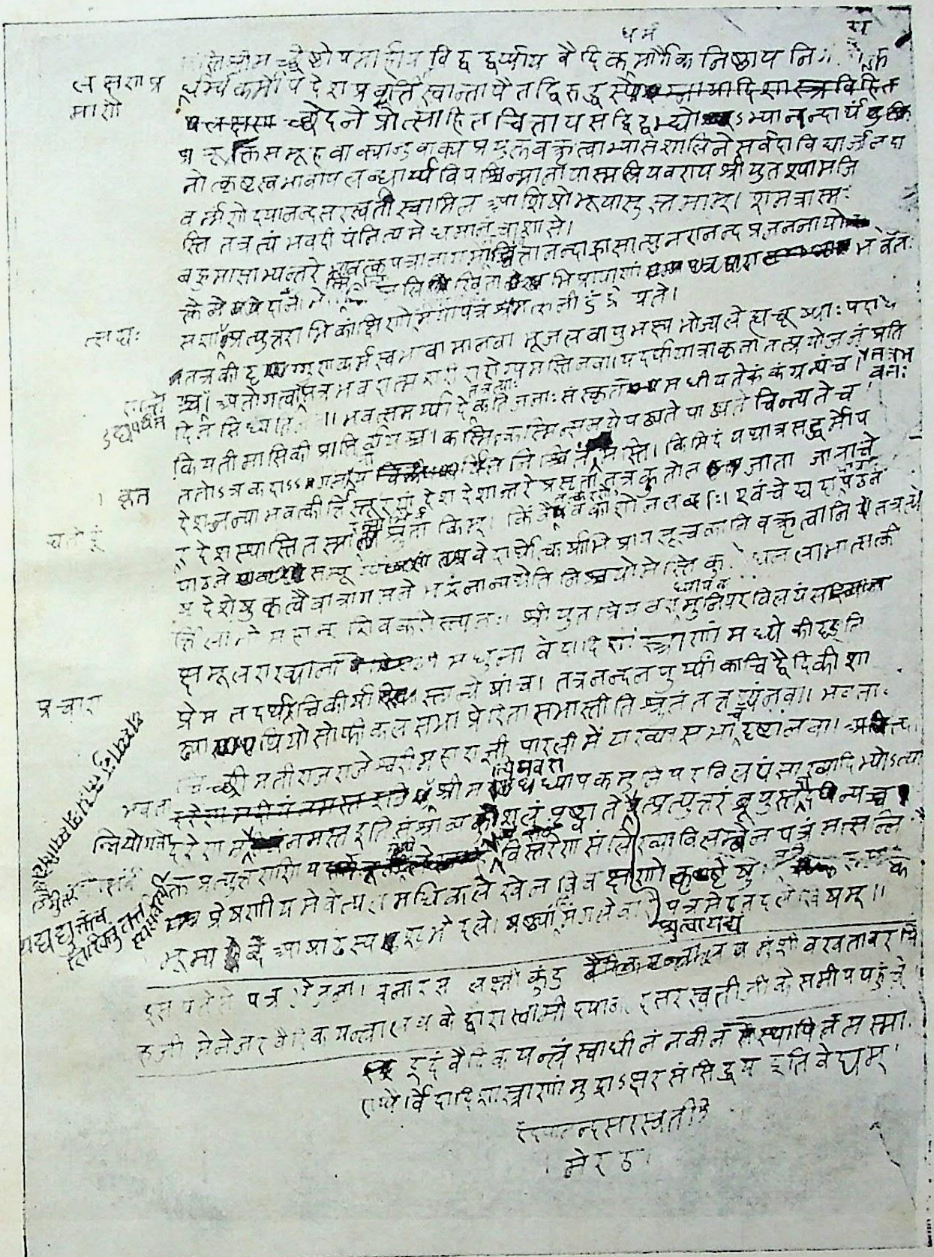
† पृ० ५, ६।

से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियम कारण हैं। इससे सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि······ऐसे प्रमाणों में विराट, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के हैं। क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता। वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं। इसी से यहां विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न हो के संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है। किन्तु जहां २ सर्वज्ञ आदि विशेषण हों वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां २ जीव का ग्रहण होता है, ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये, क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता, इस से विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है परमेश्वर का नहीं।

(४) स्वामीजी के भाष्य में जो और विशेषता दीखती है वह उनके विशेष परिज्ञान तथा योगशक्ति के कारण से है। इसका अभिप्राय यह है कि सामान्यमनुष्य स्वामीजी की भाष्यशैली को लेकर भी ऋषि के अवशिष्ट भाष्य को ऋषि-भाष्य के सदृश गम्भीर तथा निर्दोष नहीं बना सकता, क्योंकि साधारण मनुष्य में उतनी प्रतिभा, ज्ञान, अनुभव, विस्तृत स्वाध्याय तथा योगशक्ति का होना असम्भव है।

अजमेर,
पौष कृष्णा ९ सं० १९८१

हरविलास सारडा



महर्षि के हस्तलिखित एक पत्र का चित्र

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.



महर्षि का चित्र शाहपुरा नरेश द्वारा प्राप्त

वैदिक-यन्त्रालय अजमेर.

ओ३म्

महर्षि का संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त

युग-विधाता

तत्त्ववेत्ता—दयानन्द

संवत् १८८१ विक्रमीय की किसी तिथि को मोरवी राज्य के 'टंकारा' ग्राम में एक औदीच्य ब्राह्मण के घर, जो धनाढ्य, जमीदार और राजकर्मचारी था, एक बालक उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम मूलशंकर रक्खा। पिता का सारा परिवार शैव था। पांच वर्ष की आयु में ही बालक को देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करा के कुलधर्म की विधि अनुसार श्लोक, मन्त्र, स्तोत्रादि कण्ठ कराने आरम्भ कर दिये गये। आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार के साथ ही गायत्री मन्त्र और साथ साथ संध्यावन्दन की शिक्षा मिली और रुद्राध्याय कंठ करा के यजुर्वेदसंहिता का अभ्यास कराया गया। पिता ने शिव-भक्ति में प्रेम उत्पन्न कराने के लिये पार्थिव-पूजा का उपदेश भी दिया। दश वर्ष की आयु में मूलशङ्कर ने पार्थिव-पूजा का साधारण व्रत लिया।

संवत् १८९४, चौदह वर्ष की आयु में पिता ने शिवरात्रि-व्रत के लिये पुत्र को तय्यार कर लिया। दिन भर शिवपुराण आदिक से बड़ी रोचक कथाएं सुनाईं, जिन पर बालक इतना मोहित हुआ कि माता के मना करने पर भी

उसने २४ घंटे उपवास करना मान लिया। रात को शिवमन्दिर में सब उपासक एकत्र हुए, शिवपूजन के पश्चात् धीरे २ सब सोगये, सामवेदी पिता भी ऊंघने लगे, परन्तु १४ वर्ष का बालक, श्रद्धा से प्रेरित, आंखों पर छींटे डाल २ कर जागता रहा। आधीरात के पीछे कैसा चमत्कार हुआ ? उस नायक के शब्दों में ही वर्णन करना ठीक है—

"मन्दिर के बिल में से एक चूहा निकल कर शिव की पिण्डी के चारों ओर घूमने लगा, फिर कूद कर ऊपर चढ़ गया और अक्षत, नैवेद्यादि पर हाथ साफ़ करने लगा। उस समय चित्त में विविध प्रकार के विचार उत्पन्न हुए। प्रश्न यह था कि जिसकी हमने कथा सुनी थी वही यह महादेव है या अन्य कोई ?............महादेव जो कथा में सुना था, क्या सम्भव है कि वह परब्रह्म हो जिसके शिर पर चूहे दौड़ते फिरते हैं...........जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े २ दैत्यों का संहार करता है क्यों उसे एक तुच्छ चूहे के भगाने की भी शक्ति नहीं ?"।

१४ वर्ष का बालक उसी समय पिता को जगाता है और व्याकुलतापूर्वक उनके सामने अपने प्रश्न रखता है। पिता पुत्र की तर्कबुद्धि की अप्रतिष्ठा करके उसको अन्धविश्वास में फँसाना चाहते हैं, परन्तु पुत्र का सन्तोष नहीं होता। तब दृढ़ सङ्कल्प करता है कि जबतक उस कल्याणकारी शिव के प्रत्यक्ष दर्शन न करलूंगा तबतक ऐसी बाह्यपूजा के समीप नहीं फटकूंगा, और जबतक उस बालक ने परम पिता के प्रत्यक्ष दर्शन न कर लिए तबतक किसी अन्य के आगे शिर नहीं झुकाया*। इसी दिन इस विचित्र बालक का आत्मिक जन्म हुआ। इसलिये उसकी जन्मतिथि न जानते हुए भी यही दिवस उसकी वर्षगांठ मनाने के लिए उचित समझा गया है।

* प्रसिद्ध मुसलमान नेता सर सय्यद अहमद ने संवत् १९३७ में लिखा था :— "अगर इलहाम नहीं था तो क्या था जिसने स्वामी दयानन्द सरस्वती के दिल को मूर्त्ति-पूजन से फेरा ? वेदों के उन मुक़ामात को देखो जहां ज्योतिःस्वरूप निराकार की वहदानियत और उसकी सिफ़ात को बयान किया है॥"

विद्योपार्जन में मूलशंकर लग्न से तत्पर होगया। १६ वर्ष की अवस्था में मूलशंकर से २ वर्ष छोटी बहिन का देहान्त होगया। हैज़ा हुआ और कितना ही यत्न करने पर भी देखते देखते, चार घन्टों के अन्दर, प्राणान्त होगया। बालक चकित होगया, भगिनी भाई की ओर देखती नहीं है, मानो निष्ठुर होकर भ्रातृप्रेम को बिलकुल भुला दिया है। विस्मित बालक चित्र-लिखित की नाईं खड़ा रह गया, सारा घर रोरहा है और उसके आंसू नहीं निकलते। देखनेवाले उसे पाषाण-हृदय कहते हैं परन्तु वह मन ही मन में सोच रहा है—

"एक दिन मुझे भी मृत्यु का सामना करना पड़ेगा, उस समय मृत्यु के दुःख से मुक्ति के लिए औषध कहां ढूंढता फिरूंगा और मुक्ति प्राप्त करने के लिये किस पर भरोसा करूंगा? तब जिस प्रकार भी होसके मुक्ति को हस्तगत करना ही चाहिये" उसी समय वैराग्य उत्पन्न होगया और आत्मविचार होने लगा।

इस घटना से ३ वर्ष पीछे मूलशंकर के गुरु, उसके विद्वान् चचा, को भी उसी रोग ने आ घेरा। मृत्युशय्या पर पड़े चचा ने भतीजे को प्रेमपूर्वक पास बैठा कर प्रेम भरी आंखों से देखा और वैद्य के हाथ में नाड़ी देकर परलोक का रास्ता पकड़ा। इस वार आंसुओं की तार बँध गई। संसार की असारता का चित्र खिंच गया और अमर होने के साधन इष्ट मित्रों से पूछने लगा।

माता पिता ने वैराग्यवान् पुत्र को फंसाने के लिये विवाह की तय्यारी करदी। सिद्धार्थ ने तो गृहस्थ में फंसने के पीछे, संसार की असारता के दृश्य देख कर, सोई हुई धर्मपत्नी को पुत्रसहित छोड़दिया था, परन्तु मूलशंकर ने फँसावट से पहिले ही घर वार छोड़ने की ठान ली।

२२ वें वर्ष के आरम्भ में विना किसी को सूचना दिये एक दिन सायंकाल मूलशंकर घर से निकल खड़ा हुआ और मतों और सम्प्रदायों के फन्दों से बचता हुआ कार्तिक के मेले में सिद्धपुर जा पहुंचा। पुत्र का समाचार पाकर मूलशंकर के पिता मेले में जा पहुंचे और उसको शारीरिक दण्ड देकर अपने साथ लौटाया। पिता उधर मूलशंकर को लौटा ले जाने में दृढ़ थे और पुत्र

बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए दृढ़ संकल्प किये बैठा था। तीसरी रात भाग कर जो पिता से विदा हुआ तो फिर घरवालों के कभी दर्शन नहीं किये।

ब्रह्मचारी मूलशंकर ने सुन रक्खा था कि विना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती और विना स्वाध्याय तथा योगसाधन के सम्यक् ज्ञान प्राप्त नहीं होता, इसलिए दिन रात शास्त्रों के अध्ययन में लगा रहा। ब्रह्मचारी होते हुए भोजन का बड़ा बखेड़ा था इसलिए नर्मदा तट पर स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से चौथे प्रकार का संन्यास ग्रहण कर लिया और गुरु ने 'दयानन्द सरस्वती' नाम रख दिया। उस समय दयानन्द की आयु २४ वर्ष की थी।

संन्यास लेकर दयानन्द ने सच्चे योगियों से सत्सङ्ग करने के लिए राजपूताना, मालवा, राजस्थान के पहाड़ों और जंगलों में, जहां कहीं किसी योगी का पता सुना वहीं पहुंच कर, सत्संग किया। इस प्रकार संवत् १९०६ से १९११ के अन्त तक भ्रमण करते हुए संवत् १९१२ के आरम्भ में 'कुम्भ' मेले के अवसर पर हरिद्वार पहुंच साधु संन्यासियों से सत्संग किया, फिर जब तक मेला रहा चण्डी पहाड़ के जंगल में योगाभ्यास करता रहा। कुम्भ के मेले के पीछे ऋषिकेश, टिहरी, गढ़वाल, श्रीनगर आदि घूमते हुए केदारघाट, रुद्रप्रयाग, गुप्त काशी, गौरीकुण्ड, त्रिजुगी नारायण और तुंगनाथ की चोटी पर चढ़ कर, रमणीय और भयानक प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुए, कुछ दिन ऊखीमठ में विश्राम किया। केदारनाथ की ऊंची चोटी पर चढ़ कर फिर दूसरी ओर जोशी मठ से होते हुए बदरीनाथ की ऊंची पहाड़ी की खबर ली। जोशीमठ के रावलजी विद्वान् आदमी थे, उनसे पता लगाकर कई महात्माओं के सत्संग के लिए भ्रमण करता रहा। कभी अलखनन्दा का स्रोत ढूंढने चला गया, कभी पाण्डवों के स्वर्गारोहण के मार्ग पर जा खड़ा हुआ, पैर बरफ़ के ऊपर चलने से कटगए और उनसे रक्त बहने लगा, कहीं से भी अमृतरूपी औषध न पाकर द्रोणसागर में शरदृतु व्यतीत की। चारों ओर से थककर निराश हो एक क्षण के लिए यह संकल्प उठा कि हिमालय पर पहुंच कर देह त्याग देना चाहिए। फिर उसी समय अन्तरात्मा से शब्द उठा कि पहिले ज्ञान की प्राप्ति आवश्यक है।

संवत् १९१३ के आरम्भ में मिरजापुर होते हुए कुछ दिन काशी निवास किया और चैत्र संवत् १९१४ वि० के आरम्भ से मध्य प्रदेश के जंगलों में नर्मदा का स्रोत ढूंढने के लिए चल दिया। जैसे अलखनन्दा का स्रोत ढूंढने में असली लक्ष्य योगी महात्माओं का सत्संग था उसी प्रकार नर्मदा के स्रोत की तलाश भी उसी उद्देश्य से थी। इसी प्रकार ३ वर्ष जंगलों की खाक छानते और पहाड़ी वृक्षों और झाड़ियों में से बदन छिलवाते हुए संवत् १९१७ में मथुरा पहुंच कर दयानन्द ने गुरु विरजानन्द के सामने शिर झुकादिया और सब आधुनिक ग्रन्थों को यमुना में बहा कर ऋषिप्रणीत ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। चेले का गुण कर्म गुरु से मिलगया, प्रज्ञाचक्षु दण्डी स्वामी जिस शिष्य की प्रतीक्षा में वर्षों से बैठे थे वह सेवा में उपस्थित होगया, गुरु के आशय को समझ कर, कपट छल को छोड़ सरलता से गुरु-आज्ञा का पालन होने लगा। पहर के तड़के यमुना से जल के कलशे लाकर गुरु को स्नान कराना, अखंडित ब्रह्मचर्यव्रत का धारण करना, और गुरुके दण्ड को औषधवत् स्वीकार करना, यह सब गुण थे, जिन्होंने गुरु विरजानन्द के अन्दर शिष्य के लिये प्रेम का प्रवाह चला दिया। भक्त कबीर ने सच कहा है:—

शिष तो ऐसा चाहिए गुरुको सब कुछ देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये शिष से कुछ ना लेय॥

स्वाध्याय का समय समाप्त हुआ, शिष्य ने विदा के लिए आज्ञा मांगी और गुरु के आगे भेंट में लौंग रख दिये। गुरु बोले—'भोले शिष्य! क्या इस भेंट के लिए मैंने परिश्रम किया था?' उत्तर मिला—'भगवन्! यह तन और मन आपके हवाले है। आज्ञा कीजिए, जो कुछ शक्ति में है उसके पालन के लिए यह शिर आगे है'। गुरु विरजानन्द ने अन्तिम आदेश दिया—'देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिकधर्म को जगत् में फैलाओ' दयानन्द ने अपना शिर दण्डी स्वामी के चरणों पर रख दिया। गुरु ने हार्दिक आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक

अमूल्य बात यह कहदी—'मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषियों की निन्दा है, ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना'।

वैशाख संवत् १९२० को मथुरा से चलकर आगरा पहुंचते ही धर्मोपदेश का आरम्भ होगया। सन्ध्योपासना और योगाभ्यास की विधि सिखाते हुए ब्रह्मचर्य व्रत को सदाचार का मुख्य अंग बतलाते रहे। इस प्रचार के दौरे में मूलवेद के ग्रन्थों की ढूंढ भी होती रही।

धौलपुर, लश्कर, ग्वालियर, करौली, जयपुर से होते हुए संवत् १९२१ के चैत्रमास में पुष्कर के मेले पर भागवत और मूर्तिपूजा खण्डन की धूम मचाई। पुष्कर से अजमेर आकर बहुत दिनों निवास किया। यहां ईसाई पादरियों और मुसलमान मौलवियों से प्रेमपूर्वक विचार होता रहा। गोरक्षा के सम्बन्ध में इसी स्थान से लेख निकलने आरम्भ हुए और अङ्गरेज़ राजकर्मचारियों को गोवध बन्द करने के लिए प्रेरणा की गई।

संवत् १९२४ के हरिद्वार कुम्भ से एक महीना पहिले ही सप्तस्रोत पर डेरा जा लगाया और 'पाखण्डखण्डिनी' नाम की झण्डी खड़ी कर दी। इस समय कई संन्यासी ब्रह्मचारी साथ थे और पुस्तक वस्त्र आदि का भी बड़ा सामान था। वेद के लिखित पुस्तक उनको प्राप्त होचुके थे। मूर्तिपूजादिक कुरीतियों का ज़ोर से खण्डन प्रारम्भ होगया। सारे मेले में धूम मचगई और समस्त पन्थाई उनके दर्शनों को आने लगे। यति दयानन्द ने मठधारी संन्यासियों को निमन्त्रण दिया कि उनके साथ मिलकर सत्य का प्रचार करें परन्तु उधर से उत्तर मिला कि कहीं उलटी गङ्गा भी बही है। वर्त्तमान अविद्या को नाश करते हुए देख कोई गृहस्थ लोटा भाङ्ग को भी न पूछेगा। सत्य पर आरूढ़ दयानन्द का हृदय-हिलगया। पन्थाइयों के चारों ओर अविद्या के बादल घिरे देखकर उनको छिन्न भिन्न करने के लिये कमर कसली। अन्तिम व्याख्यान देते २ कण्ठ से आर्तनाद निकल पड़ा और 'सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा' कह कर पुस्तक, बर्तन, पीताम्बरी धोतियां, रेशमी कपड़े, दुशाले नक़दी इत्यादि सब कुछ बांटकर केवल

एकमात्र कौपीन धारण कर सत्य के प्रचारार्थ चलने को तय्यार होगये। सारा मेला चकित रहगया। एक परम मित्र विद्वान् के पूंछने पर उत्तर दिया—"मैं सत्य को स्पष्ट कहना चाहता हूं और आवश्यकताएं उसमें बाधक हैं, उनके त्यागे विना बेखटके नहीं होसकता और न अपने उद्देश्य को पूरा कर सकता हूं"।

हरिद्वार से सीधे ऋषिकेश पहुंचे। फिर लौट कर गङ्गा के किनारे जो यात्रा आरम्भ की तो उसी अवस्था में ७ वर्ष तक भ्रमण करते रहे। कई वार कई दिनों तक निराहार रहकर प्रचार किया। जाड़ों में भी सिवाय कौपीन और भस्म रमाने के कोई वस्त्र धारण न किया। गङ्गा-रज पर पत्थर का सिरहाना रख रातें काटीं। पर्णकुटी में जाड़ा मिटाने के लिये सोये ब्रह्मचारी वीर को भक्त रज़ाई उढ़ा जाते परन्तु प्रातःकाल उसे अलग फेंकी हुई पाते। यज्ञोपवीत के अधिकारियों को यज्ञोपवीत दिलाते, जनता को सन्ध्यावन्दन की विधि सिखाते और अविद्याग्रस्त हिन्दुओं को पौराणिक जाल से मुक्त करते कराते हुए अनूपशहर, बेलोन, रामघाट, अतरौली, छलेसर, सोरों, कासगञ्ज, फर्रुखाबाद, कन्नौज व कानपुर होते हुए काशी पहुंचे, जहां महाराजा काशीनरेश की संरक्षा में ३२ प्रसिद्ध विद्वानों के साथ अपूर्व शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ की वह धूम मची कि अंग्रेज़ी समाचारपत्र "पायोनियर" ने दयानन्द को 'हिन्दुस्तानी लूथर' की उपाधि दी, और काशी के पंडितों ने माना कि "गृहस्थ ब्राह्मणों में विद्याध्ययन का न्यून अवकाश है। इन लोगों में जो कोई विद्याध्ययन करते हैं बहुधा एक ही शास्त्र पढ़ते हैं···और कोई पुण्यशाली पुरुष हैं जो वेदशास्त्र सब जानते हों परन्तु संन्यासियों में ऐसे विद्वान् हैं जो वेदों के उपनिषद् भाग भली प्रकार जानते हैं······और दयानन्द स्वामी प्रतिवादी के वचन में शीघ्र कह देते हैं कि यह वेद में नहीं है अथवा वेदविरुद्ध है इससे प्रमाण नहीं, इससे जाना जाता है कि दयानन्द स्वामी को वेद, मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र बहुत उपस्थित हैं"। (धर्मनिर्णय पृ० २१)

दयानन्द ऋषि थे, क्योंकि तत्त्वदर्शी थे। "ऋषिः दर्शनात्" निरुक्त में है। काशी में ऋषि दयानन्द ६ वार गये और वहीं से वैदिक पाठशालाओं का

सिलसिला आरम्भ किया। वेदभाष्य की छपाई भी 'लाज़रस' के यन्त्रालय में यहीं शुरू हुई। काशी से निवृत्त हो मुंगेर व भागलपुर होते हुए राजधानी कलकत्ते में पहुंचे, जहां ब्राह्मसमाज के सञ्चालकों से विशेष भेंट हुई। इस समय तक ऋषि दयानन्द ने संस्कृत भाषण का ही अभ्यास रक्खा था। एक व्याख्यान का अनुवाद पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने अशुद्ध किया। उस दिन से दयानन्द ने निश्चय कर लिया कि हिन्दी भाषा द्वारा ही उपदेश दिया करेंगे। कलकत्ते से हुगली में पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति के साथ शास्त्रार्थ करते हुए भागलपुर, पटना, छपरा, आरा और डुमरांव के मार्ग से फिर कानपुर पहुंचे। वहां मूर्त्तियों को गङ्गा में प्रवाह करने के भाव को फैलाकर फ़र्रुखाबाद, छलेसर, अलीगढ़, हाथरस होते हुए मथुरा वृन्दावन में अपने गुरु दण्डी स्वामी विरजानन्द के सिद्धान्तों की धूम मचा दी। फिर प्रयाग में पहुंच कर पहिला सत्यार्थ-प्रकाश लिखाया और जब्बलपुर से नासिक होते हुए संवत् १९३१ के कार्तिक मास में बम्बई पहुंचे।

गुजरात काठियावाड़ की यात्रा से लौट कर चैत्र शुक्ला ५ संवत् १९३२ शनिवार के दिन बम्बई में 'आर्यसमाज' को स्थापन किया। वहां से पूना जाकर ज़बर्दस्त १५ व्याख्यान दिये और कुछ प्रसिद्ध शास्त्रार्थ करने के पीछे ज्येष्ठ संवत् १९३३ में फ़र्रुख़ाबाद, बनारस, जौनपुर, अयोध्या, लखनऊ, शाहजहांपुर, बरेली व कर्णवास घूमते हुए जनवरी सन् १८७७ ई० (माघ संवत् १९३४) के आरम्भ में लार्ड लिटन वाले देहली दरबार में पहुंच गए। वहां भारत के हिन्दू मुसलिम सब सुधारकों को एकत्र करके सङ्गठित रूप से कार्य्य करने का विचार किया, परन्तु उसका कुछ फल न निकला। वहां से मेरठ व सहारनपुर होते हुए पञ्जाब का दौरा किया और उन्हीं दिनों लाहौर आदि स्थानों में आर्य्य-समाज की बुनियाद डाली गई। आर्य्यसमाज लाहौर के स्थापन की तिथि ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३४ है। पञ्जाब में ऋषि दयानन्द की शिक्षा को लोगों ने शीघ्र ही ग्रहण किया जिससे आचार्य को बड़ा सन्तोष हुआ और उन्होंने समझा कि अब वैदिकधर्म के पुनरुद्धार की बुनियाद दृढ़ पड़ गई।

पञ्जाब की यात्रा से लौट कर संयुक्त प्रान्त के भिन्न २ नगरों में प्रचार करते हुए अजमेर पधारे जहां से फिर लौट कर विधर्मियों से शास्त्रार्थ करते हुए संयुक्तप्रान्त और बिहार के बहुतसे शहरों में प्रचार किया। संवत् १९३६ वि० के कुम्भ के मेले पर हरिद्वार में अन्तिम उपदेश हुआ जिसका प्रभाव सारे भारत पर पड़ा। फिर देशी रियासतों में प्रचार करते हुए उदयपुर में महाराणा सज्जनसिंह के जीवन में परिवर्तन कर उसी स्थान में अपना इच्छापत्र (Will) रजिस्ट्री कराया जिसके द्वारा परोपकारिणी सभा की बुनियाद पड़ी।

उदयपुर में हिन्दूपति महाराणा सज्जनसिंहजी को शास्त्रीय शिक्षा देकर रियासत शाहपुरा में वहां के श्रद्धालु नरेश श्री नाहरसिंहजी को मनुस्मृति का अध्ययन कराया।

३१ मई सन् १८८३ ईस्वी (ज्येष्ठ संवत् १९४० वि०) को महाराजा जोधपुर के निमन्त्रण पर ऋषि दयानन्द वहां पधारे। महाराजा प्रतापसिंह को शारीरिक व्यायाम और सदाचार की शिक्षा दी। विधर्मी मतों के प्रचारकों ने राजवेश्या के साथ समवेदना का भाव प्रकट करते हुए पाचक जगन्नाथ ब्राह्मण द्वारा विष दिला दिया। ऋषि दयानन्द को जब रुग्ण होने पर इसका ज्ञान हुआ तो उन्होंने अपने उदार भाव का कई प्रकार से परिचय दिया। घातक जगन्नाथ को कुछ रुपये देकर फांसी से बचाने के लिये भगा दिया और निरन्तर एक मास तक तीक्ष्ण पीड़ा के समय भी शान्त रहकर सिद्ध कर दिया कि बाल-ब्रह्मचारी में कितनी सहनशक्ति होती है। फिर कार्तिक संवत् १९४० की अमावास्या के सायङ्काल ६ बजे, जब कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का उदय था, ईश्वर-प्रार्थना के पश्चात् हर्षसहित गायत्री मंत्र का पाठ करने लगे। फिर प्रफुल्लवदन समाधि में रहकर आखें खोलीं और प्रेम भरे शब्दों में कहा:—

"हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन् ईश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो!! अहा! तैंने अच्छी लीला की।" इतना कहकर करवट ली और श्वास को रोक कर एकबार ही प्राण त्याग दिये।

आदर्श पुरुष 'दयानन्द'

अन्य धार्मिक संशोधकों की तरह दयानन्द केवल एक ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं हैं अपितु वह करोड़ों नरनारियों के सामने प्रत्यक्ष कार्य करते रहे हैं और उनके चरित्र से परिचित इस समय भी बहुतसे पुरुष विद्यमान हैं जिनमें से लेखक भी एक है। यूरोपियनों ने उसे 'भारतीय लूथर' कहा, हिन्दुओं ने शङ्कराचार्य का अवतार लिखा, अमेरिका में बैठे योगी ऐन्ड्र्यूजैक्सन डेविस ने परमात्मा का आज्ञापालक पुत्र बतलाया, जिसने जो कुछ समझा उसी रूप में दयानन्द को देखा। दयानन्द के अन्दर शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सभी प्रकार की उत्तम शक्तियों का उत्तम रूप में समावेश था। दो गज से ऊंचा कद, तेजोमय उन्नत तथा प्रशस्त ललाट, दुहरा परन्तु गठा हुआ बदन, पक्का न बदलने वाला रङ्ग, आंखों की ज्योति में असीम आकर्षण शक्ति, जिसके तेज के आगे ठहरना कठिन, वाणी में माधुर्य और वीररस का मेल, सारांश यह कि उस विशाल, प्रभावशाली मूर्त्ति को देखकर यह ज्ञात होता था कि परमेश्वर ने इसे मनुष्यों के हृदयों पर राज्य करने के लिये जन्म दिया है। आधुनिक हिन्दुओं ने योग के साथ शरीर की सूक्ष्मता का सम्बन्ध जोड़ रक्खा है। दयानन्द ने प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया कि बालब्रह्मचारी योगी के अन्दर शारीरिक शक्ति की भी पराकाष्ठा होती है। बिहार में एक ब्रह्मचारी को साथ लिये जारहे हैं, २० मन बोझ से लदे हुए छकड़े को ३ मज़बूत बैल खींच रहे हैं, पहिये आधे कीचड़ के अन्दर धंस गये हैं, बीसियों आदमी, प्रयत्न करने पर भी, छकड़े को आगे चला नहीं सकते। दयानन्द अपनी पुस्तकों का बोझ रख कर कींच में उतर जाता है, बैल खोल दिये जाते हैं। जुए को बग़ल में दबा कर बालब्रह्मचारी चल देता है, छकड़ा कींच से निकल कर सड़क पर आजाता है।

निर्भीकता का एक ही उदाहरण पर्याप्त है। सत्य सनातन वैदिक मत का मण्डन और असत्य मतों का खण्डन होरहा है। क्रोध से विवश हो कलियुगी राजपूत म्यान से तलवार निकाल लेता है। पुरुषसिंह की गरज से लरज कर

राजपूत की तलवार हाथ से गिर जाती है और ऋषि का गम्भीर नाद सुनाई देता है:—"क्षत्रिय का कृपाण अधर्म को देखे विना म्यान से बाहिर नहीं निकलता और जब निकलता है तब विना दुष्टों को दण्ड दिये म्यान में नहीं जाता" कितनी ही बार सांसारिक बड़े से बड़े आक्रमणों के सामने दयानन्द का विशाल वीर-हृदय चट्टान की तरह दृढ़ रहा। इसके उदाहरण पर उदाहरण देने के लिये स्थान नहीं है। फिर हृदय की कोमलता का क्या ठिकाना है! खण्डनरूपी खड्ग से दुःखित ब्राह्मण ने विषयुक्त पेड़े सामने धरादिये, योगी ने परीक्षा करके भांप लिया ब्राह्मण घबरा गया परन्तु दयालु आचार्य ने उसे उपदेश देकर विदा किया। ऋषिभक्त मुसलमान तहसीलदार ने दुष्ट ब्राह्मण को अन्य अपराध लगाकर ६ महीने का कारावास दिया। तहसीलदार अपनी कारगुज़ारी की दाद लेने आया, ऋषि ने मुंह फेर लिया। फिर पूंछने पर उत्तर दिया—"मैं कैद कराने नहीं आया किन्तु संसार को अविद्यान्धकाररूपी कारावास से छुड़ाने आया हूं" दयानन्द की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक योग्यता के इतने उदाहरण ही पर्याप्त हैं। इन सब घटनाओं से इतना ही पता लगता है कि दयानन्द एक उच्चकोटि का मनुष्य था परन्तु जो शिक्षा उसने अपने समय में फैलाई उसकी दृष्टि से हम उसे 'तत्ववेत्ता' कह सकते हैं, क्योंकि हमें वह भारतवर्ष में वर्तमान युग का विधाता दिखाई देता है।

"युग-विधाता दयानन्द"

एक योरोपियन विचारक ने लिखा है—

"किसी युग का आदर्श मध्यस्थ संशोधक अपने समकालीन पुरुषों की अधिक संख्या की दृष्टि में अवश्यमेव पीछे की ओर लेजाने वाला प्रतीत होता है। इसके कई कारण हैं परन्तु मुख्य कारण एक ही होता है जो विविध दृष्टियों से देखा जाता है। सच्चा संशोधक वह मनुष्य नहीं है जिसमें समय की क्षणिक आवश्यकता को पूरी करने के लिए कोई नई बात गढ़ने की मौलिकता हो। सच्चा संशोधक वह है जो प्राचीन संशोधकों के काम के अन्दर घुसकर उनके

विचारों के स्वाध्याय से, उनमें से स्थिर मूल्य और महत्व के सिद्धान्तों को चुन लेता है * ।"

भारत में यह सर्वमान्य सचाई है कि आत्मज्ञान के प्रसारक बालब्रह्मचारी स्वामी शङ्कराचार्य्य के पश्चात् बालब्रह्मचारी दयानन्द ने ही सच्चे संशोधक का आसन ग्रहण किया था। वे अपने प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के अन्त में लिखते हैं—"सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य, सार्वजनिक धर्म जिसे सदा से सब मानते आये......................वही सबको मन्तव्य..................अब जो वेदादि सत्य शास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं..................मैं अपना मन्तव्य उसीको जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है।"

(पृष्ठ ६२३ अजमेर का १५ वां संस्करण)

संसार में ऐसे विरले ही लोग होते हैं जो सर्वथा किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें। तत्त्ववेत्ता वे नहीं कहाते जो किसी नये सिद्धान्त का प्रादुर्भाव करें, क्योंकि इन अर्थों में तत्त्ववेत्ताओं की संख्या छंटते २ शायद शून्य तक पहुंच जाय। तत्त्ववेत्ता वे कहाते हैं जो पाहिले से विद्यमान अनेक सिद्धान्तों की परीक्षा कर एक नवीन रूप तथा अपेक्षया सत्य के अधिक पास विद्यमान सिद्धान्त का प्रकाश तथा व्याख्यान करें। तत्त्ववेत्ता का काम ठीक २ चुनाव करना है, नई घड़न्त करना नहीं। इस अनन्त जीर्णाङ्ग संसार में भला नई घड़न्त कैसे सम्भव है ? उपस्थित सचाइयों में से चुनाव किया जा सकता है, उनमें से किसी एक का विस्तार भी किया जा सकता है किन्तु किसी नई सचाई का

* The typical central reformer of any age necessarily appears, to a large majority of his contemporaries, as a retrogade; for several reasons: which, however, are probably one, seen under several aspects. The true reformer is not the man who has sufficient originality to present something new, to meet some accidental need of the moment; but he who goes back to the work of ancient reformers, carrying to the study of their work sufficient genius to select out, among their data, those of permanent value and importance.

सर्वथा उद्भव करना सर्वथा असम्भव है। कपिल मुनि भारी दार्शनिक थे किन्तु उनका दर्शन "अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां" इत्यादि उपनिषद् वाक्य का व्याख्यानमात्र था। योरोप के विकाशवादी (Evolutionist) डार्विन, हर्वर्टस्पेंसर और वीज़मैन तत्त्ववेत्ता कहाते हैं किन्तु वस्तुतः वे भी कपिलमुनि के परिणामवाद के व्याख्याता मात्र ही हैं। तत्त्ववेत्ता सचाई के उद्भावक नहीं होते किन्तु चुनने वाले और व्याख्या करने वाले होते हैं, चुनना तथा व्याख्या करना तत्त्ववेत्ताओं के सम्बन्ध में बहुत बड़े महत्व को पा जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तत्त्ववेत्ताओं का कार्य चुनाव तथा व्याख्यान का है। इस दृष्टि से ऋषि दयानन्द ने वेदादि सत्य शास्त्रों में से जिन छिपे रत्नों को चुनकर जनता के सामने रक्खा उन्हें देख दयानन्द की बुद्धि का चमत्कार प्रतीत होता है।

युग की आवश्यकता

दयानन्द के कार्यक्षेत्र में आने के समय यद्यपि भारत में कई छोटे बड़े सम्प्रदाय काम कर रहे थे परन्तु सब के सब अपने पुराने आदर्शों से गिर चुके थे। विचार-स्वातन्त्र्य का ऐसा तिरोभाव था मानो उसका कभी प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ। धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक पराधीनता ने भारत-सन्तान को मुर्दा बना दिया था। किसी क्षेत्र में भी भारतनिवासियों को दासता की जंजीरें काटने का साहस नहीं होता था। ऋषि दयानन्द ने अन्य संशोधकों की तरह बाह्य कुरीतियों से जूझने का प्रयत्न ही न किया प्रत्युत गिरावट के कारणों की तह में जाकर मुर्दा जाति में प्राण डालने का साहस किया।

धार्मिक सशोधन के क्षेत्र में मायावाद, प्रकृतिवाद और नैष्कर्म्यवाद तथा शून्यवाद के एकदेशीय जालों को छिन्नभिन्न कर दयानन्द ने कर्मवाद तथा त्रयीवाद की स्थापना करके समकालीन सम्प्रदायों की सब कमियों को पूरा कर दिया। मूर्तिपूजन, अद्वैतवाद, मृतकश्राद्ध, पाप की क्षमा, अवतारवाद और इसी तरह के बीसियों अन्धविश्वासों के जाल पर वार करने का उस समय किसे साहस होता था? दयानन्द ने दृढ़ता से इन सब का मुकाबिला किया। पंडितों, मौलवियों और पादरियों की दासता से जनता को छुड़ाने के लिये तर्क के ऐसे बाण

छोड़े कि सारा जाल कट गया। उन्होंने दिव्यदृष्टि से देखा कि परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति तीनों प्राचीन हैं। उनके परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान भी अनादि है। सारे संसार के सम्प्रदायों का स्रोत भी वही ज्ञान होना चाहिये। जब नवीन कुछ भी नहीं तो नवीन कल्पना से क्या प्रयोजन? जब सम्पूर्ण मतमतान्तर एक अनादि ज्ञान से ही निकले हैं तो उन में पराया है ही क्या? जब सब अपने हैं, तो उन सब में पीछे से मिली हुई अविद्या को दूर करना भी अपना ही कर्तव्य है। इस उदार दृष्टि से दयानन्द ने, किसी मत को भी पराया न समझते हुए, सब में धार्मिक संशोधन का ही प्रयत्न किया। इस सचाई को न समझ कर साधारण मस्तिष्क वाले पुरुष ऋषि दयानन्द के खण्डनखड्ग की निन्दा करते हैं। परन्तु दीर्घदर्शी पुरुष जानते हैं कि दयानन्द ने जो खण्डनात्मक कार्य किया वह उस उदार आत्मा का कर्त्तव्य ही था। अल्पबुद्धि जन उसे समझ नहीं सकते।

सबसे पहिले वैदिक धर्म से निकले मतों को सीधा रास्ता दिखलाने के लिए वेदार्थ का सरल मार्ग ऋषि ने दिखलाया। पौराणिकों की बुद्धि चकित रह गई। मुसलमानों में सर सय्यद अहमद ने दयानन्द के महत्त्व को समझा और उनसे शिक्षा पाकर क़ुरान का बुद्धिपूर्वक भाष्य आरम्भ कर दिया। 'बहिश्त' के नये अर्थ किये और क़ुरानियों को अन्धविश्वास से निकालने का यत्न किया। कादियानी मिरज़ा ने भी अपने मत को चलाने के लिये उसी स्रोत से शिक्षा लेकर भी कृतघ्नता से स्रोत पर लाञ्छन लगाना आरम्भ किया। खालसा-वीरों ने भी अन्धविश्वास की दासता से निकलने का उसी समय पाठ पढ़ा। ईसाइयों में भी खलबली मचगई और उन्होंने भी उस समय से अपनी धर्म-पुस्तक के नये २ भाष्य करने आरम्भ किये।

सामाजिक क्षेत्र में वर्णाश्रम-व्यवस्था को क्रियात्मक स्वरूप देकर दयानन्द ने सारे युग को पलटा दे दिया। ब्रह्मचर्य और संन्यास का शुद्ध स्वरूप अपने जीवन में दिखा, गृहस्थों को गुणकर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था की मर्यादा बतला, जहां एक ओर स्वच्छन्दतारूपी बोलशेविज़्म (Bolshevism) से संसार को बचाया वहां दूसरी ओर प्राकृत नियमों के विरुद्ध स्थापित ज्ञाति-बन्धन की

जंजीरों को तोड़ कर सामाजिक स्वतन्त्रता की बुनियाद डाली। शताब्दियों से अन्धविश्वास में जकड़ा हुआ हिन्दू-समाज स्थिर सड़े हुए छप्पड़ (कच्चे तालाब) की तरह तामसवृत्ति में बेहोश पड़ा था, ऋषि ने तालाब को हिलाकर हिन्दुओं को जागृत किया। जो सड़ांद उठी उससे वह घबरा गए परन्तु जब सम्पूर्ण कीचड़ बाहर निकाल कर समाजरूपी जल को स्वच्छ कर दिया जायगा तब हिन्दू जनता ऋषि के उपकार को समझेगी।

दयानन्द धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही युग का विधाता नहीं हुआ, प्रत्युत—

राजनैतिक क्षेत्र में भी उसने बड़े परिवर्तन कर दिये। आज 'स्वदेश भक्ति' 'स्वराज्य' 'साम्राज्य' और 'प्रजातन्त्र राज्य' की चारों ओर धूम मच रही है, परन्तु ऋषि दयानन्द ने ४२ वर्ष पूर्व राजनैतिक शास्त्र की स्पष्ट बुनियाद डालदी थी। जिस आर्य शास्त्र को एकसत्तात्मकराज्य का गुलाम समझा जाता था उसी में से दयानन्द ने सिद्ध किया कि एकसत्तात्मकराज्य प्राकृतिक नियम के ही विरुद्ध है। सत्यार्थप्रकाश के छठे समुल्लास में तीन सभाओं (विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा) की बुनियाद डालकर शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण से बतलाया कि एकसत्तात्मकराज्य कभी न होना चाहिये, उससे प्रजा का कभी कल्याण नहीं हो सकता। राजसभा के प्रधान और सभ्यों का परस्पर सम्बन्ध जतला कर राज्य का सम्पूर्ण प्रबन्ध स्वदेशी अधिकारियों के ही आधीन करने पर बल दिया। फिर लक्ष ग्रामों की एक राजसभा के प्रबन्ध का वर्णन करके लिखा—

"लक्ष ग्रामों की राजसभा को (कर्मचारीगण) प्रतिदिन का वर्तमान जनाया करें और वे सब राजसभा, महाराजसभा अर्थात् सार्वभौम महाराज चक्रवर्ती राजसभा में, सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें" इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सभा की भी बुनियाद आर्य्य ग्रन्थों से दिखलादी।

राजनैतिक उन्नति के अभिमानी योरोप का केन्द्र ब्रिटेन (Britain) समझा जाता है। कहा जाता है कि इङ्गलेण्ड की भूमि पर पैर रखते ही गुलाम आजाद हो जाता है, ब्रिटेन प्रजातन्त्र राज्य का आदर्श समझा जाता था और उसका नाम राष्ट्रीय सभाओं की माता (Mother of Parliaments) रक्खा हुआ

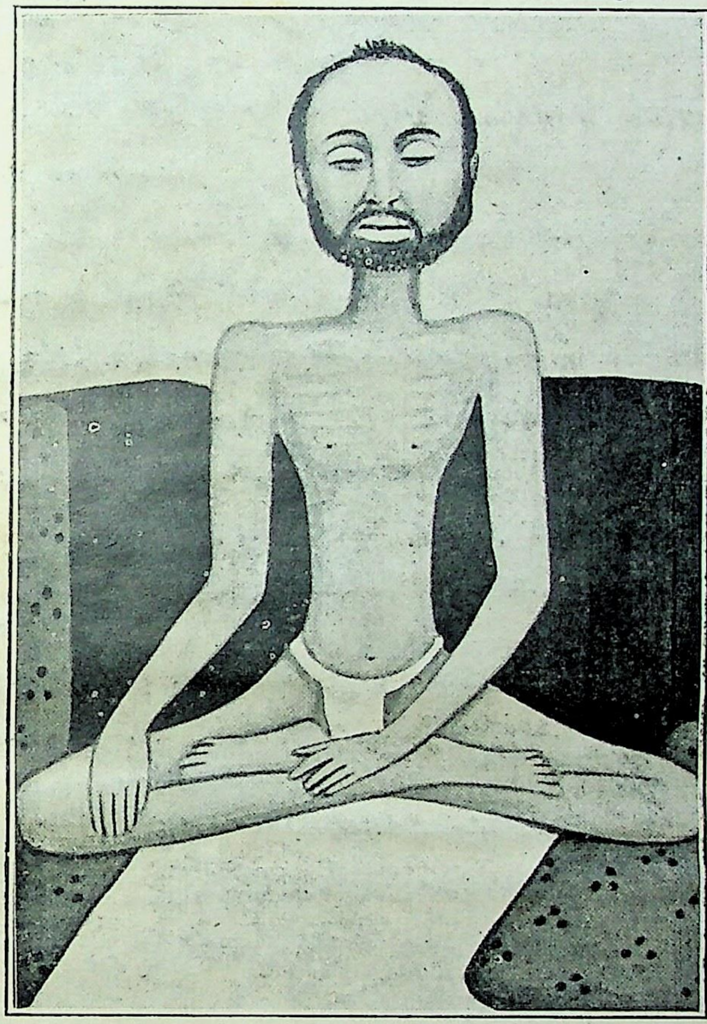
था परन्तु अन्य-देशस्थ मनुष्य-समाजों को दास बनाने में उसे कोई सङ्कोच नहीं होता और उस राष्ट्र की पार्लियामेन्ट में भी पहिले पहिल यह भाव प्रधानामात्य सर हेनरी कैम्पबैल बैनरमैन (Sir Henry Campbell Bannerman) ने ही प्रकट किया था कि "प्रजातन्त्र शासन का स्थान उत्तम शासन भी नहीं ले सकता।" परन्तु उससे भी बीस वर्ष पहिले सच्चे संशोधक दयानन्द ने लिखा था:—"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ भी विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं है" इससे बढ़कर स्वराज्य की महिमा कोई क्या करेगा ? परन्तु साथ ही दीर्घदर्शी ऋषि ने अयोग्य शीघ्रगामी राजनैतिकों को सावधान भी कर दिया। स्वराज्यप्राप्ति के लिये यत्न प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है "परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् २ शिक्षा अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है"।

यह बड़ी कठिन मंज़िल है। इसके लिये वेद शास्त्रों के सिद्धान्तों को समझ कर उस पर अमल करना आवश्यक है। जहां धार्मिक और सामाजिक उन्नति—क्षेत्र में भारतप्रजा को दयानन्द के पीछे चलकर ही कल्याण—मार्ग सूझा है वहां राजनैतिक क्षेत्र में भी ३१ करोड़ भारतनिवासियों को ऋषि दयानन्द के बतलाये मार्ग पर ही चलना पड़ेगा। यह सम्भव है कि झूठे अभिमान में फंस कर भारत के वर्त्तमान नेता ऋषि दयानन्द का नाम लेने में आनाकानी करें परन्तु उन सब को वास्तविक सफलता के लिए चलना उसी के निर्दिष्ट मार्ग पर पड़ेगा।

आओ ! तत्त्ववेत्ता, सच्चे संशोधक, युगविधाता, वर्तमान भारत के भाग्य-निर्माता ऋषि दयानन्द की शिक्षा का गहरी दृष्टि से स्वाध्याय करें।

श्रद्धानन्द संन्यासी,

शताब्दी-संस्करण



दण्डी श्री स्वामी विरजानन्दजी सरस्वती

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर.

शताब्दी-संस्करण

आर्य्याभिविनयः

पृष्ठ १—७६.

आर्य्याभिविनयः (गुटका)

आवृत्ति		सन् ई०		संख्या
प्रथम	...	१८७६	...	१०००
द्वितीय	...	१८८०	...	१०००
तृतीय	...	१८८६	...	१०००
चतुर्थ	...	१८८८	...	१०००
पंचम	...	१८९३	...	३०००
षष्ठ	...	१८९९	...	३०००
सप्तम	...	१९०४	...	५०००
अष्टम	...	१९०८	...	५०००
नवम	...	१९१२	...	५०००
दशम	...	१९१९	...	५०००

आर्य्याभिविनयः (बड़े अक्षरों में)

प्रथम	...	१९०४	...	१०००
द्वितीय	...	१९१०	...	१०००
तृतीय	...	१९१२	...	२०००
चतुर्थ	...	१९२०	...	२०००
पंचम	...	१९२४	...	२०००
शताब्दीसंस्करण		१९२४	...	१०,०००
				४८,०००

ओ३म्

अथार्य्याभिविनयोपक्रमणिका-विचारः

सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो यो न्यायकृच्छुचिः । भूयात्तमां सहायो नो दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥ १ ॥ चक्षुरामाङ्कचन्द्रेब्दे चैत्रे मासि सिते दले । दशम्यां गुरुवारेऽयं ग्रन्थारम्भः कृतो मया ॥ २ ॥ बहुभिः प्रार्थितः सम्यग्ग्रन्थारम्भः कृतोऽधुना । हिताय सर्वलोकानां ज्ञानाय परमात्मनः ॥ ३ ॥ वेदस्य मूलमन्त्राणां व्याख्यानं लोकभाषया । क्रियते सुखबोधाय ब्रह्मज्ञानाय सम्प्रति ॥ ४ ॥ स्तुत्युपासनयोः सम्यक् प्रार्थनायाश्च वर्णितः । विषयो वेदमन्त्रैश्च सर्वेषां सुखवर्द्धनः ॥ ५ ॥ विमलं सुखदं सततं सुहितं जगति प्रततं तदु वेदगतम् । मनसि प्रकटं यदि यस्य सुखी स नरोस्ति सदेश्वरभागधिकः ॥ ६ ॥ विशेषभागीह वृणोति यो हितं, नरः परात्मानमतीवमानतः । अशेषदुःखात्तु विमुच्य विद्यया, स मोक्षमाप्नोति न कामकामुकः ॥ ७ ॥

व्याख्यान

जो परमात्मा, सब का आत्मा, सत् चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्यवाला हमारा इष्टदेव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महाकठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों । हे कृपानिधे ! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करनेवाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे ॥ १ ॥

संवत् १९३२ मिती चैत्र सुदी १० गुरुवार के दिन इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ २ ॥ बहुत सज्जन लोग, सब के हितकारक धर्मात्मा विद्वान् विचारशील जनों ने मुझ से प्रीति से कहा तब सब लोगों के हित और यथार्थ परमेश्वर का ज्ञान तथा प्रेम भक्ति यथावत् हो इसलिये इस ग्रन्थ का आरम्भ किया है ॥ ३ ॥ इस ग्रन्थ में केवल दो वेदों के मूल मन्त्रों का प्राकृतभाषा में व्याख्यान किया है जिससे सब लोगों को सुखपूर्वक बोध हो और ब्रह्मज्ञान यथार्थ हो ॥ ४ ॥ इस ग्रन्थ में वेदमन्त्रों से सब सुखों की बढ़ानेवाली परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना तथा धर्मादि विषय का वर्णन किया है ॥ ५ ॥ जो ब्रह्म विमलसुखकारक, पूर्ण काम, तृप्त, जगत् में व्याप्त, वही सब वेदों से प्राप्य है जिसके मन में इस ब्रह्म की प्रकटता (यथार्थ विज्ञान) है वही मनुष्य ईश्वर के आनन्द का भागी है और वही सब से सदैव अधिक सुखी है। ऐसे मनुष्य को धन्य है ॥ ६ ॥ जो नर इस संसार में अत्यन्त प्रेम, धर्मात्मा, विद्या, सत्सङ्ग, सुविचारता, निर्वैरता, जितेन्द्रियता, प्रत्यक्षादि प्रमाणों से परमात्मा का स्वीकार (आश्रय) करता है वही जन अतीव भाग्यशाली है, क्योंकि वह मनुष्य यथार्थ सत्यविद्या से सम्पूर्ण दुःखों से छूट के परमानन्द परमात्मा की प्राप्तिरूप जो मोक्ष उसको प्राप्त होता है और दुःखसागर से छूट जाता है परन्तु जो विषयलम्पट; विचाररहित; विद्या, धर्म, जितेन्द्रियता, सत्सङ्गरहित; छल; कपट; अभिमान; दुराग्रहादि दुष्टतायुक्त है सो वह मोक्षसुख को प्राप्त नहीं होता क्योंकि वह ईश्वरभक्ति से विमुख है ॥ ७ ॥ इसलिये जन्म मरण ज्वरादि पीड़ाओं से पीड़ित होके सदा दुःखसागर में ही पड़ा रहता है इससे सब मनुष्यों को उचित है कि परमेश्वर और उसकी आज्ञा से विरुद्ध कभी नहीं हों, किन्तु ईश्वर तथा उसकी आज्ञा में तत्पर हो के इस लोक (संसार व्यवहार) और परलोक (जो पूर्वोक्त मोक्ष) इन की सिद्धि यथावत् करें यही मनुष्यों की कृतकृत्यता है। इस आर्य्याभिविनय ग्रंथ में मुख्यता से वेदमन्त्रों का परमेश्वर-सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है, दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता इससे व्यवहार विद्यासम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया परन्तु वेदों के भाष्य में यथावत् विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ ये दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायंगे जैसे

(तद्देवाऽग्निस्तदादित्यस्तद्वायुरित्यादि० य० संहिता प्र०, इन्द्रं मित्रं वरुणमित्यादि० ऋ० सं० प्र०, बृहस्पतिर्वै ब्रह्म गणपतिर्वै ब्रह्म, प्राणो वै ब्रह्म, आपो वै ब्रह्म, ब्रह्म ह्यग्निरित्यादि शतपथ ऐतरेय ब्राह्मणादि० प्र०, और महान्तमेवात्मानमित्यादि०) निरुक्तादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है । तथा मुखादग्निरजायतेत्यादि० य० सं० प्र०, वायोरग्निरित्यादि० ब्राह्मण प्र० तथा अग्निरग्रणीर्भवतीत्यादि० निरुक्त प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुणवाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि वह लिया जाता है इत्यादि दृढ़ प्रमाण, युक्ति और प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेदभाष्य में लिखे जायँगे जिससे सायणादिकृत भाष्यदोष और उसके अनुसार अंग्रेज़ी कृतार्थ दोषरूप वेदों के कलंक निवृत्त हो जायँगे और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से, वेदों का महत्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों को महालाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी । इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूप ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहारशुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फसें । किञ्च सब प्रकार के मनुष्य अति उत्तम हों और सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कृपा सब मनुष्यों पर हो, जिससे सब मनुष्य दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करें, यह मेरी परमात्मा से प्रार्थना है सो परमेश्वर अवश्य पूरी करेगा ।

इत्युपक्रमणिका संक्षेपतः सम्पूर्णा ॥

ओ३म्

तत् सत् परब्रह्मणे नमः

अथार्याभिविनयः प्रारम्भः

ओं शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः शं नो॑ भवत्वर्य॒मा । शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पति॒ः शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ १ ॥ * ऋ० अ० १ । अ० ६ । व० १८ । मं० ९ ॥

व्याख्यान

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, हे नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अद्वितीयानुपम जगदादिकारण, हे अज निराकार सर्वशक्तिमान्, न्यायकारिन्, हे जगदीश सर्वजगदुत्पादकाधार, हे सनातन, सर्वमङ्गलमय, सर्वस्वामिन्, हे करुणाकरास्मत्पितः परमसहायक, हे सर्वानन्दप्रद, सकलदुःखविनाशक, हे अविद्यान्धकारनिर्मूलक, विद्यार्कप्रकाशक, हे परमैश्वर्यदायक, साम्राज्यप्रसारक, हे अधमोद्धारक, पतितपावन, मान्यप्रद, हे विश्वविनोदक, विनयविधिप्रद, हे विश्वासविलासक, हे निरञ्जन, नायक, शर्मद, नरेश, निर्विकार, हे सर्वान्तर्यामिन्, सदुपदेशक, मोक्षप्रद, हे सत्यगुणाकर, निर्मल, निरीह, निरामय, निरुपद्रव, दीनदयाकर, परमसुखदायक, हे दारिद्र्यविनाशक, निर्वैरविधायक, सुनीतिवर्धक, हे प्रीतिसाधक, राज्यविधायक, शत्रुविनाशक, हे सर्वबलदायक, निर्बलपालक, हे सुधर्मसुप्रापक, हे अर्थसुसाधक, सुकामवर्द्धक, ज्ञानप्रद, हे सन्ततिपालक, धर्म्मसुशिक्षक, रोगविनाशक, हे

---

* यह संख्या इस भाग में सर्वत्र यथावत् जान लेना, क्योंकि आगे केवल अङ्कसंख्या लिखी जायगी ।

ऋ० १ । ६ । १८ । ९ ॥ इनसे अष्टक, अध्याय, वर्ग, मन्त्र जान लेना ।

पुरुषार्थप्रापक, दुर्गुणनाशक, सिद्धिप्रद, हे सज्जनसुखद, दुष्टसुताड़न, गर्वकुक्रोधकुलोभविदारक, हे परमेश, परेश, परमात्मन्, परब्रह्मन्, हे जगदानन्दक, परमेश्वर, व्यापक सूक्ष्माच्छेद्य, हे अजरामृताभयनिर्बन्धनादे, हे अप्रतिमप्रभाव, निर्गुणातुल, विश्वाद्य, विश्ववन्द्य, विद्वद्विलासक, इत्याद्यनन्तविशेषणवाच्य, हे मंगलप्रदेश्वर ! आप सर्वथा सब के निश्चित मित्र हो, हमको सत्यसुखदायक सर्वदा हो, हे सर्वोत्कृष्ट, स्वीकरणीय, वरेश्वर ! आप वरुण अर्थात् सब से परमोत्तम हो, सो आप हमको परम सुखदायक हो, हे पक्षपातरहित, धर्म्मन्यायकारिन् ! आप अर्य्यमा (यमराज) हो इससे हमारे लिये न्याययुक्त सुख देने वाले आप ही हो, हे परमैश्वर्य्यवन्, इन्द्रेश्वर ! आप हमको परमैश्वर्य्ययुक्त शीघ्र स्थिर सुख दीजिये । हे महाविद्यावाचोधिपते, बृहस्पते, परमात्मन् ! हम लोगों को (बृहत्) सब से बड़े सख को देने वाले आप ही हो, हे सर्वव्यापक, अनन्त पराक्रमेश्वर विष्णो ! आप हमको अनन्त सुख देओ जो कुछ मांगेंगे सो आप से ही हम लोग मांगेंगे सब सुखों का देने वाला आपके विना कोई नहीं है सर्वथा हम लोगों को आपका ही आश्रय है, अन्य किसी का नहीं, क्योंकि सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय सब से बड़े पिता को छोड़ के नीच का आश्रय हम लोग कभी न करेंगे, आपका तो स्वभाव ही है कि अङ्गीकृत को कभी नहीं छोड़ते सो आप सदैव हमको सुख देंगे यह हमको दृढ़ निश्चय है ॥ १ ॥

मूलमन्त्र स्तुति विषय

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ॥ २ ॥ ऋ० १ । १ । १ । १ ॥

व्याख्यान

हे वन्द्येश्वराग्ने ! आप ज्ञानस्वरूप हो आप की मैं स्तुति करता हूं, सब मनुष्यों के प्रति परमात्मा का यह उपदेश है, हे मनुष्यो ! तुम लोग इस प्रकार

से मेरी स्तुति प्रार्थना और उपासनादि करो, जैसे पिता वा गुरु अपने पुत्र वा शिष्य को शिक्षा करता है कि तुम पिता वा गुरु के विषय में इस प्रकार से स्तुति आदि का वर्त्तमान करना, वैसे सब के पिता और परम गुरु ईश्वर ने हमको कृपा से सब व्यवहार और विद्यादि पदार्थों का उपदेश किया है जिससे हमको व्यवहार ज्ञान और परमार्थ ज्ञान होने से अत्यन्त सुख हो। जैसे सब का आदिकारण ईश्वर है, वैसे परम विद्या वेद का भी आदिकारण ईश्वर है, हे सर्वहितोपकारक! आप "पुरोहितम्" सब जगत् के हितसाधक हो, हे यज्ञदेव! सब मनुष्यों के पूज्यतम और ज्ञान यज्ञादि के लिये कमनीयतम हो "ऋत्विजम्" सब ऋतु वसन्त आदि के रचक, अर्थात् जिस समय जैसा सुख चाहिये उस सुख के सम्पादक आप ही हो "होतारम्" सब जगत् को समस्त योग और क्षेम के देने वाले हो और प्रलय समय में कारण में सब जगत् का होम करने वाले हो "रत्नधातमम्" रत्न अर्थात् रमणीय पृथिव्यादिकों के धारण रचन करनेवाले तथा अपने सेवकों के लिये रत्नों के धारण करनेवाले एक आप ही हो। सर्वशक्तिमन् परमात्मन्! इसलिये मैं वारंवार आपकी स्तुति करता हूं इसको आप स्वीकार कीजिये जिससे हम लोग आपके कृपापात्र होके सदैव आनन्द में रहें ॥ २ ॥

मूल प्रार्थना

अग्निना॑ र॒यिम॑श्नव॒त्पोष॑मे॒व दि॒वेदि॑वे । य॒शसं॑ वी॒रव॑त्तमम् ॥ ३ ॥ ऋ० १ । १ । १ । ३ ॥

व्याख्यान

हे महादातः, ईश्वराग्ने! आपकी कृपा से स्तुति करने वाला मनुष्य "रयिम्" उस विद्यादि धन तथा सुवर्णादि धन को अवश्य प्राप्त होता है कि जो धन प्रतिदिन 'पोषमेव" महापुष्टि करने और सत्कीर्ति को बढ़ानेवाला तथा जिससे विद्या, शौर्य्य, धैर्य, चातुर्य, बल, पराक्रम और दृढांग धर्मात्मा, न्याय-

युक्त, अत्यन्त वीरपुरुष प्राप्त हों, वैसे सुवर्ण रत्नादि तथा चक्रवर्ती राज्य और विज्ञानरूप धन को मैं प्राप्त होऊं तथा आपकी कृपा से सदैव धर्मात्मा होके अत्यन्त सुखी रहूं ॥ ३ ॥

मूल स्तुति

अ॒ग्निः पूर्वे॑भि॒र्ऋषि॑भि॒रीड्यो॒ नूत॑नैरु॒त । स दे॒वाँ एह व॑क्षति ॥ ४ ॥
ऋ० १ । १ । १ । २ ॥

व्याख्यान

हे सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य ईश्वराग्ने ! "पूर्वेभिः" विद्या पढ़े हुए प्राचीन "ऋषिभिः" मन्त्रार्थ देखने वाले विद्वान् और "नूतनैः" वेदार्थ पढ़नेवाले नवीन ब्रह्मचारियों से "ईड्यः" स्तुति के योग्य "उत" और जो हम लोग मनुष्य विद्वान् वा मूर्ख हैं उनसे भी अवश्य आप ही स्तुति के योग्य हो सो स्तुति को प्राप्त हुए आप हमारे और सब संसार के सुख के लिये दिव्य गुण अर्थात् विद्यादि को कृपा से प्राप्त करो, आप ही सब के इष्टदेव हो ॥४॥

मूल स्तुति

अ॒ग्निर्होता॑ क॒विक्र॑तुः स॒त्यश्चि॒त्रश्र॑वस्तमः । दे॒वो दे॒वेभि॒रा ग॑मत् ॥५॥
ऋ० १ । १ । १ । ५ ॥

व्याख्यान

हे सर्वदृक् ! सब को देखनेवाले "क्रतुः" सब जगत् के जनक "सत्यः" अविनाशी अर्थात् कभी जिनका नाश नहीं होता "चित्रश्रवस्तमः" आश्चर्य्यश्रवणादि आश्चर्य्यगुण आश्चर्य्यशक्ति आश्चर्य्यरूपवान् और अत्यन्त उत्तम आप हो

जिन आपके तुल्य वा आपसे बड़ा कोई नहीं है हे जगदीश ! "देवेभिः" दिव्यगुणों के सह वर्त्तमान हमारे हृदय में आप प्रकट हो सब जगत् में भी प्रकाशित हों जिससे हम और हमारा राज्य दिव्यगुणयुक्त हो वह राज्य आपका ही है हम तो केवल आपके पुत्र तथा भृत्यवत् हैं ॥ ५ ॥

मूल प्रार्थना

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि । तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥
ऋ० १ । १ । २ । १ ॥

व्याख्यान

हे "अङ्ग" मित्र ! जो आपको आत्मादि दान करता है, उसको "भद्रम्" व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख अवश्य देते हो, हे "अंगिरः" प्राणप्रिय ! यह आपका सत्यव्रत है कि स्वभक्तों को परमानन्द देना, यही आपका स्वभाव हमको अत्यन्त सुखकारक है आप मुझको ऐहिक और पारमार्थिक इन दोनों सुखों का दान शीघ्र दीजिये जिससे सब दुःख दूर हों, हमको सदा सुख ही रहे ॥ ६ ॥

मूल स्तुति

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥७॥
ऋ० १ । १ । ३ । १ ॥

व्याख्यान

हे अनन्तबल परेश वायो दर्शनीय ! आप अपनी कृपा से ही हमको प्राप्त हो हम लोगों ने अपनी अल्पशक्ति से सोम (सोमवल्ल्यादि) ओषधियों

का उत्तम रस सम्पादन किया है और जो कुछ भी हमारे श्रेष्ठ पदार्थ हैं वे आपके लिये "अरङ्कृताः" अलङ्कृत अर्थात् उत्तम रीति से हमने बनाये हैं और वे सब आपके समर्पण किये गये हैं उनको आप स्वीकार करो (सर्वात्मा से पान करो) हम दीनों की दीनता सुनकर जैसे पिता को पुत्र छोटी चीज समर्पण करता है, उस पर पिता अत्यन्त प्रसन्न होता है, वैसे आप हम पर होओ ॥ ७ ॥

मूल प्रार्थना

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८ ॥
ऋ० १ । १ । ६ । १० ॥

व्याख्यान

हे वाक्पते ! सर्वविद्यामय ! हमको आपकी कृपा से "सरस्वती" सर्वशास्त्रविज्ञानयुक्त वाणी प्राप्त हो "वाजेभिः" तथा उत्कृष्ट, अन्नादि के साथ वर्त्तमान "वाजिनीवती" सर्वोत्तम क्रिया विज्ञानयुक्त "पावका" पवित्रस्वरूप और पवित्र करनेवाली सत्यभाषणमय मङ्गलकारक वाणी आपकी प्रेरणा से प्राप्त होके आपके अनुग्रह से परमोत्तम बुद्धि के साथ वर्त्तमान "वसुः" निधिस्वरूप यह वाणी "यज्ञं वष्टु" सर्वशास्त्रबोध और पूजनीयतम आपके विज्ञान की कामनायुक्त सदैव हो, जिससे हमारी सब मूर्खता नष्ट हो और हम महापाण्डित्ययुक्त हों ॥ ८ ॥

मूल स्तुति

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्य्याणाम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ ९ ॥
ऋ० १ । १ । ९ । २ ॥

व्याख्यान

हे परात्पर परमात्मन् ! आप "पुरूतमम्" अत्यन्तोत्तम और सर्वशत्रु-विनाशक हो तथा बहुविध जगत् के पदार्थों के ईशान (स्वामी) और उत्पादक हो "आर्य्याणाम्" वर, वरणीय, परमानन्द मोक्षादि पदार्थों के भी ईशान हो "सोमे" और उत्पत्तिस्थान संसार आप से उत्पन्न होने से "इन्द्रम्" परमैश्वर्य-वान् आप को (अभिप्रगाय) हृदय में अत्यन्त प्रेम से गावैं (यथावत्) स्तुति करैं जिससे आप की कृपा से हम लोगों का भी परमैश्वर्य बढ़ता जाय और परमानन्द को प्राप्त हों ॥ ९ ॥

मूल प्रार्थना

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥ १० ॥ ऋ० १ । ६ । १५ । ५ ॥

व्याख्यान

हे सर्वाधिस्वामिन् ! आप ही चर और अचर जगत् के ईशान (रचने-वाले) हो "धियं जिन्वम्" सर्वविद्यामय विज्ञानस्वरूप बुद्धि को प्रकाशित करने-वाले प्रीणनीयस्वरूप "पूषा" सब के पोषक हो, उन आप का हम "नः अवसे" अपनी रक्षा के लिये "हूमहे" आह्वान करते हैं "यथा" जिस प्रकार से आप हमारे विद्यादि धनों की वृद्धि वा रक्षा के लिये "अदब्धः" "रक्षिता" निरालस रक्षा करने में तत्पर हो वैसे ही कृपा करके आप "स्वस्तये" हमारी स्वस्थता के लिये "पायुः" निरन्तर रक्षक (विनाशनिवारक) हो आप से पालित हम लोग सदैव उत्तम कामों में उन्नति और आनन्द को प्राप्त हों ॥ १० ॥

मूल स्तुति

अतो॑ दे॒वा अ॑वन्तु नो॒ यतो॒ विष्णु॑र्वि॒चक्र॒मे । पृ॒थि॒व्याः स॒प्त धाम॑भिः ॥ ११ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । १६ ॥

व्याख्यान

हे "देवाः" विद्वानो ! "विष्णुः" सर्वत्र व्यापक परमेश्वर ने सब जीवों को पाप तथा पुण्य का फल भोगने और सब पदार्थों के स्थित होने के लिये, पृथिवी से लेके सप्तविध लोक "धामभिः" अर्थात् ऊंचे नीचे स्थानों से संयुक्त बनाये तथा गायत्र्यादि सात छन्दों से विस्तृत विद्यायुक्त वेद को भी बनाया उन लोकों के साथ वर्त्तमान व्यापक ईश्वर ने "यतः" जिस सामर्थ्य से सब लोकों को रचा है "अतः" (सामर्थ्यात्) उस सामर्थ्य से हम लोगों की रक्षा करे । हे विद्वानो ! तुम लोग भी उसी विष्णु के उपदेश से हमारी रक्षा करो, कैसा है वह विष्णु ? जिसने इस सब जगत् को "विचक्रमे" विविध प्रकार से रचा है उसकी नित्य भक्ति करो ॥ ११ ॥

मूल प्रार्थना

पा॒हि नो॑ अग्ने र॒क्षसः॑ पा॒हि धू॒र्तेररा॑व्णः । पा॒हि रीष॑त उ॒त वा॒ जिघां॑सतो॒ बृह॑द्भानो॒ यवि॑ष्ठ्य ॥ १२ ॥ ऋ० १ । ३ । १० । १५ ॥

व्याख्यान

हे सर्वशत्रुदाहकाग्ने परमेश्वर ! राक्षस हिंसाशील दुष्टस्वभाव देहधारियों से "नः" हमारी "पाहि" पालना करो "धूर्तेरराव्णः" कृपण जो धूर्त्त उस मनुष्य से भी हमारी रक्षा करो जो हम को मारने लगे तथा जो मारने की इच्छा करता है, हे महातेज बलवत्तम ! उन सब से हमारी रक्षा करो ॥ १२ ॥

मूल स्तुति

त्वम॒स्य पा॒रे रज॑सो व्योम॑नः स्वभू॑त्योजा॒ अव॑से धृषन्मनः । च॒कृ॒षे भूमिं॑ प्रति॒मान॒मोज॑सो॒ऽपः स्वः॑ परि॒भूरे॒ष्या दिव॑म् ॥ १३ ॥ ऋ० १ । ४ । १४ । १२ ॥

व्याख्यान

हे परमैश्वर्यवन् परमात्मन् ! आकाश लोक के पार में तथा भीतर अपने ऐश्वर्य और बल से विराजमान होके दुष्टों के मन को धर्षण तिरस्कार करते हुए सब जगत् तथा विशेष हम लोगों के "अवसे" सम्यक् रक्षण के लिये "त्वम्" आप सावधान हो रहे हो, इससे हम निर्भय होके आनन्द कर रहे हैं किञ्च "दिवम्" परमाकाश "भूमिम्" भूमि तथा "स्वः" सुख विशेष मध्यस्थ लोक इन सबों को अपने सामर्थ्य से ही रच के यथावत् धारण कर रहे हो "परिभूः एषि" सब पर वर्त्तमान और सब को प्राप्त हो रहे हो "आदिवम्" द्योतनात्मक सूर्यादि लोक "आपः" अन्तरिक्षलोक और जल इन सब के प्रतिमान (परिमाण) कर्त्ता आप ही हो, तथा आप अपरिमेय हो, कृपा करके हमको अपना तथा सृष्टि का विज्ञान दीजिये ॥ १३ ॥

मूल प्रार्थना

विजा॑नी॒ह्यार्या॒न् ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान् । शाकी॑ भव॒ यज॑मानस्य चोदि॒ता विश्वेत्ता ते॑ सध॒मादे॑षु चाकन ॥ १४ ॥ ऋ० १ । ४ । १० । ८ ॥

व्याख्यान

हे यथायोग्य सब को जाननेवाले ईश्वर ! आप "आर्यान्" विद्या, धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरणयुक्त आर्यों को जानो "ये च दस्यवः" और जो नास्तिक,

डाकू, चोर, विश्वासघाती, मूर्ख, विषयलम्पट, हिंसादि दोषयुक्त, उत्तम कर्म्म में विघ्न करनेवाले, स्वार्थी, स्वार्थसाधन में तत्पर वेदविद्याविरोधी, अनार्य (अनाड़ी) मनुष्य "बर्हिष्मते" सर्वोपकारक यज्ञ के विध्वंस करनेवाले हैं इन सब दुष्टों को आप "रन्धय" (समूलान् विनाशय) मूलसहित नष्ट कर दीजिये और "शासदव्रतान्" ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासादि धर्म्मानुष्ठानव्रतरहित वेदमार्गोच्छेदक अनाचारियों का यथायोग्य शासन करो (शीघ्र उन पर दण्ड निपातन करो) जिससे वे भी शिक्षायुक्त होके शिष्ट हों अथवा उनका प्राणान्त होजाय किंवा हमारे वश में ही रहें "शाकी" तथा जीव को परम शक्तियुक्त शक्ति देने और उत्तम कामों में प्रेरणा करने वाले हो आप हमारे दुष्ट कामों से निरोधक हो मैं भी "सधमा०" उत्कृष्ट स्थानों में निवास करता हुआ "विश्वेत्ता ते" तुम्हारी आज्ञानुकूल सब उत्तम कर्म्मों की "चाकन" कामना करता हूं सो आप पूरी करें ॥ १४ ॥

मूल स्तुति

न यस्य॒ द्यावा॑पृथि॒वी अनु॒ व्यचो॒ न सिन्ध॑वो॒ रज॑सो॒ अन्त॑मान॒शुः ।
नोत स्ववृ॑ष्टिं॒ मदे॑ अस्य॒ युध्य॑त॒ एको॑ अ॒न्यच्च॑कृ॒षे विश्व॑मानु॒षक् ॥ १५ ॥
ऋ० १ । ४ । १४ । १४ ॥

व्याख्यान

हे परमैश्वर्य्ययुक्तेश्वर ! आप इन्द्र हो; हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का अन्त इतना है यह न हो उसकी व्याप्ति का परिच्छेद (इयत्ता) परिमाण कोई नहीं कर सक्ता, तथा दिव अर्थात् सूर्य्यादिलोक सर्वोपरि आकाश तथा पृथिवी मध्य निकृष्टलोक ये कोई उसके आदि अन्त को नहीं पाते क्योंकि "अनुव्यचः" वह सब के बीच में अनुस्यूत (परिपूर्ण) हो रहा है तथा "न सिन्धवः" अन्तरिक्ष में जो दिव्यजल तथा सब लोक सो भी अन्त नहीं पासके "नोत स्ववृष्टिं मदे" वृष्टिप्रहार से युद्ध करता हुआ वृत्र (मेघ) तथा बिजुली-गर्जन आदि

भी ईश्वर का पार नहीं पा सकते * हे परमात्मन्! आपका पार कौन पा सके? क्योंकि "एकः" एक (अपने से भिन्न सहाय रहित) स्वसामर्थ्य से ही "विश्वम्" सब जगत् को "आनुषक्" आनुषक्त अर्थात् उसमें व्याप्त होते और "चकृषे" (कृतवान्) आप ने ही उत्पन्न किया है; फिर जगत् के पदार्थ आपका पार कैसे पासकें तथा (अन्यत्) आप जगत्रूप कभी नहीं बनते, न अपने में से जगत् को रचते हो किन्तु अनन्त अपने सामर्थ्य से ही जगत् का रचन, धारण और प्रलय यथाकाल में करते हो इससे आपका सहाय हम लोगों को सदैव है ॥ १५ ॥

मूल प्रार्थना

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह। कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥१६॥ ऋ० १।३।१०।१४॥

व्याख्यान

हे सर्वोपरि विराजमान परब्रह्म! आप "उर्ध्व" सब से उत्कृष्ट हो, हम को कृपा से उत्कृष्ट गुणवाले करो तथा ऊर्ध्वदेश में हमारी रक्षा करो हे सर्वपापप्रणाशकेश्वर! हमको "केतुना" विज्ञान अर्थात् विविध विद्यादान देके "अंहसः" अविद्यादि महापाप से "नि पाहि" (नितराम्पाहि) सदैव अलग रक्खो तथा "विश्वम्" इस सकल संसार का भी नित्य पालन करो, हे सत्यमित्र न्यायकारिन्! जो कोई प्राणी "अत्रिणम्" हमसे शत्रुता करता है उसको और काम क्रोधादि शत्रुओं को आप "सन्दह" सम्यक् भस्मीभूत करो (अच्छे प्रकार जलाओ) "कृधी न ऊर्ध्वान्" हे कृपानिधे! हम को विद्या, शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य, विविधधन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेशसुखसंपादनादि गुणों में सब नर-देहधारियों से अधिक उत्तम करो तथा "चरथाय, जीवसे" सब से अधिक आनन्द, भाग, सब देशों में अव्याहतगमन

* जैसे कोई मद में मग्न होके रणभूमि में युद्ध करे, वैसे मेघ का भी दृष्टान्त जानना।

(इच्छानुकूल जाना आना), आरोग्य, देह शुद्ध मानस बल और विज्ञान इत्यादि के लिये हम को उत्तमता और अपनी पालनायुक्त करो "विदा" विद्यादि उत्तमोत्तम धन "देवेषु" विद्वानों के बीच में प्राप्त करो अर्थात् विद्वानों के मध्य में भी उत्तम प्रतिष्ठायुक्त सदैव हम को रक्खो ॥ १६ ॥

मूल स्तुति

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः। विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒जना॒ अदि॑तिर्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम् ॥ १७ ॥ ऋ० १ । ६ । १६ । १० ॥

व्याख्यान

हे त्रैकाल्याबाधेश्वर ! "अदितिर्द्यौः" आप सदैव विनाशरहित तथा स्वप्रकाशस्वरूप हो "अदितिरन्तरिक्षम्" अविकृत (विकार को न प्राप्त) और सब के अधिष्ठाता हो "अदितिर्माता" आप प्राप्तमोक्ष जीवों को अविनश्वर (विनाशरहित) सुख देने और अत्यन्त मान करने वाले हो "स पिता" सो अविनाशीस्वरूप हम सब लोगों के पिता (जनक) और पालक हो और "स पुत्रः" सो ईश्वर आप मुमुक्षु धर्मात्मा विद्वानों को नरकादि दुःखों से पवित्र और त्राण (रक्षण) करनेवाले हो "विश्वे देवा अदितिः" सब दिव्यगुण (विश्व का धारण, रचन, मारण, पालन आदि कार्यों को करनेवाले) आप अविनाशी परमात्मा ही हैं "पञ्चजना अदितिः" पंचप्राण जो जगत् के जीवन हेतु वे भी आप के रचे और आप के नाम भी हैं "जातमदितिः" वही एक चेतन ब्रह्म आप सदा प्रादुर्भूत हैं और सब कभी प्रादुर्भूत कभी अप्रादुर्भूत (अविनाशभूत) भी होजाते हैं "अदितिर्जनित्वम्" वे ही अविनाशीस्वरूप ईश्वर आप सब जगत् के (जनित्वम्) जन्म का हेतु हैं और कोई नहीं* ॥ १७ ॥

* ये सब नाम दिव आदि अन्य वस्तुओं के भी होते हैं परन्तु यहां ईश्वराभिप्रेत से अर्थ किया, सो सप्रमाण जानना चाहिये।

मूल प्रार्थना

ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः ॥१८॥
ऋ० १।६।१७।१॥

व्याख्यान

हे महाराजाधिराज परमेश्वर! आप हमको "ऋजु०" सरल (शुद्ध) कोमलत्वादिगुणविशिष्ट चक्रवर्त्ती राजाओं की नीति को "नयतु" कृपादृष्टि से प्राप्त करो, आप "वरुण" सर्वोत्कृष्ट होने से वरुण हो, सो हम को वरराज्य, वरविद्या, वरनीति देओ तथा सब के मित्र शत्रुतारहित हो हम को भी आप मित्रगुणयुक्त न्यायाधीश कीजिये तथा आप सर्वोत्कृष्ट विद्वान् हो हम को भी सत्यविद्या से युक्त सुनीति देके साम्राज्याधिकारी सद्यः कीजिये तथा आप "अर्य्यमा" (यमराज) प्रियाप्रिय को छोड़ के न्याय में वर्तमान हो सब संसार के जीवों के पाप और पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने वाले हो सो हम को भी आप तादृश करैं जिससे "देवैः, सजोषाः" आपकी कृपा से विद्वानों वा दिव्यगुणों के साथ उत्तम प्रीतियुक्त आप में रमण और आपका सेवन करने वाले हों, हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े ॥ १८ ॥

मूल प्रार्थना

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥१९॥
ऋ० १।६।१९।५॥

व्याख्यान

हे सोम, राजन् सत्पते परमेश्वर! तुम सोम, सब का सार निकालनेहारे प्राप्तस्वरूप, शान्तात्मा हो तथा सत्पुरुषों का प्रतिपालन करनेवाले हो तुम्हीं सब के राजा "उत" और "वृत्रहा" मेघ के रचक, धारक और मारक हो भद्रस्वरूप भद्र करने वाले और "क्रतुः" सब जगत् के कर्त्ता आप ही हो ॥ १९ ॥

मूल प्रार्थना

त्वं नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः । न रिष्येत्त्वावतः सखा ॥ २० ॥ ऋ० १ । ६ । २० । ८ ॥

व्याख्यान

हे सोम राजन्नीश्वर ! तुम "अघायतः" जो कोई प्राणी हम में पापी और पाप करने की इच्छा करने वाले हों "विश्वतः" उन सब प्राणियों से हमारी "रक्ष" रक्षा करो जिसके आप सगे मित्र हो "न, रिष्येत्" वह कभी विनष्ट नहीं होता किन्तु हम को आप की सहायता से तिलमात्र भी दुःख वा भय कभी नहीं होगा जो आप का मित्र और जिसके आप मित्र हो उसको दुःख क्योंकर हो ॥ २० ॥

मूल प्रार्थना

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव चक्षुराततम् ॥ २१ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । २० ॥

व्याख्यान

हे विद्वानो और मुमुक्षु जीवो ! विष्णु का जो परम अत्यन्तोत्कृष्ट पद (पदनीय) सब के जानने योग्य, जिसको प्राप्त हो के पूर्णानन्द में रहते हैं फिर वहां से शीघ्र दुःख में नहीं गिरते, उस पद को "सूरयः" धर्मात्मा जितेन्द्रिय, सब के हितकारक विद्वान् लोग यथावत् अच्छे विचार से देखते हैं वह परमेश्वर का पद है किस दृष्टान्त से कि जैसे आकाश में चक्षु नेत्र की व्याप्ति वा सूर्य का प्रकाश सब ओर से व्याप्त है वैसे ही "दिवीव, चक्षुराततम्" परब्रह्म सब जगह में परिपूर्ण एकरस भर रहा है वही परमपदस्वरूप परमात्मा

परमपद है इसी की प्राप्ति होने से जीव सब दुःखों से छूटता है अन्यथा जीव को कभी परम सुख नहीं मिलता, इससे सब प्रकार परमेश्वर की प्राप्ति में यथावत् प्रयत्न करना चाहिये ॥ २१ ॥

मूल प्रार्थना

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे । युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः ॥ २२ ॥ ऋ० १ । ३ । १८ । २ ॥

व्याख्यान

(परमेश्वरो हि सर्वजीवेभ्य आशीर्ददाति) ईश्वर सब जीवों को आशीर्वाद देता है कि हे जीवो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे लिये आयुध अर्थात् शतघ्नी (तोप), भुशुण्डी (बन्दूक), धनुष्, बाण, करवाल (तलवार), शक्ति (बरछी) आदि शस्त्र स्थिर और "वीळू" दृढ़ हों किस प्रयोजन के लिये ? "पराणुदे" तुम्हारे शत्रुओं के पराजय के लिये जिससे तुम्हारे कोई दुष्ट शत्रु लोग कभी दुःख न दे सकें "उत, प्रतिष्कभे" शत्रुओं के वेग को थांभने के लिये "युष्माकमस्तु, तविषी पनीयसी" तुम्हारी बलरूप उत्तम सेना सब संसार में प्रशंसित हो जिससे तुम से लड़ने को शत्रु का कोई संकल्प भी न हो परन्तु "मा मर्त्यस्य मायिनः" जो अन्यायकारी मनुष्य है उसको हम आशीर्वाद नहीं देते दुष्ट, पापी, ईश्वरभक्तिरहित मनुष्य का बल और राज्यैश्वर्यादि कभी मत बढ़ो उस का पराजय ही सदा हो, हे बन्धुवर्गो ! आओ अपने सब मिल के सर्व दुःखों का विनाश और विजय के लिये ईश्वर को प्रसन्न करें जो अपने को वह ईश्वर आशीर्वाद देवे, जिससे अपने शत्रु कभी न बढ़ें ॥ २२ ॥

मूल स्तुति

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ २३ ॥ ऋ० १ । २ । ७ । १९ ॥

व्याख्यान

हे जीवो ! "विष्णोः" व्यापकेश्वर के किये दिव्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदि कर्मों को तुम देखो (प्रश्न) किस हेतु से हम लोग जानें कि व्यापक विष्णु के कर्म्म हैं ? (उत्तर) "यतो व्रतानि पस्पशे" जिससे हम लोग ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा सत्यभाषणादि व्रत और ईश्वर के नियमों का अनुष्ठान करने को जीव सुशरीरधारी हो के समर्थ हुए हैं । यह काम उसी के सामर्थ्य से है, क्योंकि "इन्द्रस्य, युज्यः, सखा" इन्द्रियों के साथ वर्त्तमान कर्मों का कर्त्ता, भोक्ता जो जीव इस का वही एक योग्य मित्र है अन्य कोई नहीं, क्योंकि ईश्वर जीव का अन्तर्यामी है उससे परे जीव का हितकारी कोई और नहीं हो सकता इससे परमात्मा से सदा मित्रता रखनी चाहिये ॥ २३ ॥

मूल प्रार्थना

पराणुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि । अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥ २४ ॥ ऋ० ५ । ३ । २१ । २५ ॥

व्याख्यान

हे मघवन् परमैश्वर्यवन् इन्द्र परमात्मन् ! "अमित्रान्" हमारे सब शत्रुओं को "पराणुदस्व" परास्त कर दे । हे दातः ! "सुवेदा, नो, वसू, कृधि" "अस्माकं, बोध्यविता" हमारे लिये सब पृथिवी के धन सुलभ कर "महाधने" युद्ध में हमारे और हमारे मित्र तथा सेनादि के "अविता" रक्षक "वृधः" वर्द्धक "भव"

आप ही हो तथा "बोधि" हम को अपने ही जानो, हे भगवन् ! जब आप हमारे रक्षक योद्धा होंगे, तभी हमारा सर्वत्र विजय होगा, इसमें संदेह नहीं ॥२४॥

मूल प्रार्थना

शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः । शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥ २५ ॥ ऋ० ५ । ३ । २८ । २ ॥

व्याख्यान

हे ईश्वर ! "भगः" आप और आप का दिया हुआ ऐश्वर्य्य "शंनः" हमारे लिये सुखकारक हो और "शमु, नः, शंसो अस्तु" आप की कृपा से हमारी सुखकारक प्रशंसा सदैव हो "पुरन्धिः, शमु, सन्तु, रायः" संसार के धारण करने वाले आप तथा वायु प्राण और सब धन आनन्ददायक हों "शन्नः, सत्यस्य" सत्य यथार्थ धर्म सुसंयम और जितेन्द्रियादि लक्षणयुक्त जो प्रशंसा (पुण्यस्तुति) सब संसार में प्रसिद्ध है वह परमानन्द और शान्तियुक्त हमारे लिये हो "शं, नो, अर्यमा" न्यायकारी आप "पुरुजातः" अनन्तसामर्थ्ययुक्त हमारे कल्याणकारक होओ ॥ २५ ॥

मूल स्तुति

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥ २६ ॥ ऋ० ५ । ८ । ३५ । २ ॥

व्याख्यान

हे "अग्ने" सर्वज्ञ ! तू ही सर्वत्र "प्रशस्यः" स्तुति करने के योग्य है अन्य कोई नहीं "विदथेषु" यज्ञ और युद्धों में आप ही स्तोतव्य हो जो तुम्हारी स्तुति

को छोड़ के अन्य जड़ादि की स्तुति करता है उसके यज्ञ तथा युद्धों में विजय कभी सिद्ध नहीं होता है "सहन्त्य" शत्रुओं के समूहों के आप ही घातक हो "रथीः" अध्वरों अर्थात् यज्ञ और युद्धों में आप ही रथी हो। हमारे शत्रुओं के योद्धाओं को जीतने वाले हो इस कारण से हमारा पराजय कभी नहीं हो सकता॥ २६॥

मूल प्रार्थना

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त। शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ २७॥ ऋ० ५। ३। २७। २५॥

व्याख्यान

हे भगवन्! "तन्न इन्द्रः" सूर्य "वरुणः" चन्द्रमा "मित्रः" वायु "अग्निः" अग्नि "आपः" जल "ओषधिः" वृक्षादि वनस्थ सब पदार्थ आपकी आज्ञा से सुखरूप होकर हमारा सेवन करें, हे रक्षक! "मरुतामुपस्थे" प्राणादि पवनों के गोद में बैठे हुए हम आपकी कृपा से "शर्मन्त्स्याम" सुखयुक्त सदा रहैं "स्वस्तिभिः" सब प्रकार के रक्षणों से "यूयं, पात" (आदरार्थं बहुवचनम्) आप हमारी रक्षा करो किसी प्रकार से हमारी हानि न हो॥ २७॥

मूल स्तुति

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा। इन्द्र चोष्कूयसे वसु॥ २८॥ ऋ० ५। ८। १७। ४१॥

व्याख्यान

हे ईश्वर! "ऋषिः" सर्वज्ञ "पूर्वजाः" और सब के पूर्वजों के एक अद्वितीय "ईशानः" ईशनकर्त्ता अर्थात् ईश्वरता करनेहारे ईश्वर तथा सब से बड़े

प्रलयोत्तरकाल में आप ही रहने वाले "ओजसा" अनन्त पराक्रम से युक्त हो, हे इन्द्र महाराजाधिराज ! "चोष्कूयसे वसु" सब धन के दाता शीघ्र कृपा का प्रवाह अपने सेवकों पर कर रहे हो, आप अत्यन्त आर्द्रस्वभाव हो ॥ २८ ॥

मूल प्रार्थना

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत । गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सु ऊतयो व ऊतयः ॥ २९ ॥ ऋ० ६ । ४ । ९ । १२ ॥

व्याख्यान

हे भगवन् ! "रक्षस्विने, भद्रं, नेह" पापी हिंसक दुष्टात्मा को इस संसार में सुख मत देना "नावयै" धर्म से विपरीत चलनेवाले को सुख कभी मत हो तथा "नोपया, उत" अधर्मी के समीप रहनेवाले उसके सहायक को भी सुख नहीं हो ऐसी प्रार्थना आप से हमारी है कि दुष्ट को सुख कभी न होना चाहिये नहीं तो कोई जन धर्म में रुचि नहीं करेगा किन्तु इस संसार में धर्मात्माओं को ही सुख सदा दीजिये तथा हमारी शमदमादियुक्त इन्द्रियां दुग्ध देनेवाली गौ आदि वीरपुत्र और शूरवीर भृत्य, "श्रवस्यते" विद्या विज्ञान और अन्नाद्यैश्वर्ययुक्त हमारे देश के राजा और धनाढ्य जन तथा इनके लिये "अनेहसः" निष्पाप निरुपद्रव स्थिर दृढ़ सुख हो "व ऊतयो व ऊतयः" (वः युष्माकं बहुवचनमादरार्थम्) हे सर्वरक्षकेश्वर ! आप सर्वरक्षण अर्थात् पूर्वोक्त सब धर्मात्माओं की रक्षा करनेहारे हैं । जिन पर आप रक्षक हो उनको सदैव भद्र कल्याण (परम सुख) प्राप्त होता है अन्य को नहीं ॥ २९ ॥

मूल स्तुति

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि ॥ ३० ॥
ऋ० ६ । ३ । ४० । २४ ॥

व्याख्यान

हे परमात्मन् ! आप वसु अर्थात् सब को अपने में बसाने वाले और सब में आप बसनेवाले हो तथा "वसुपतिः" पृथिव्यादि वास हेतुभूतों के पति हो "कमसि" हे अग्ने विज्ञानानन्द स्वप्रकाशस्वरूप ! आप ही सब के सुखकारक और सुखस्वरूप हो तथा "विभावसुः" सत्यस्वप्रकाशैक घनमय हो, हे भगवन् ! ऐसे जो आप उन "ते" आपकी "सुमतौ" अत्यन्तोत्कृष्टज्ञान और परस्पर प्रीति में हम लोग स्थिर हों ॥ ३० ॥

मूल प्रार्थना

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः । इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ७ । ६ । १ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! जो हमारा तथा सब जगत् का राजा सब भुवनों का स्वामी "कम्" सब का सुखदाता और "अभिश्रीः" सब का निधि (शोभाकारक) है, "वैश्वानरो, यतते, सूर्येण" संसारस्थ सब नरों का नेता (नायक) और सूर्य के साथ वही प्रकाशक है अर्थात् सब प्रकाशक पदार्थ उसके रचे हैं "इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे" इसी ईश्वर के सामर्थ्य से ही यह संसार उत्पन्न हुआ है अर्थात् उसने रचा है "वैश्वानरस्य, सुमतौ, स्याम" उस वैश्वानर परमेश्वर की "सुमतौ" अर्थात् सुशोभन (उत्कृष्ट ज्ञान में) हम निश्चित सुखस्वरूप और

विज्ञानवाले हों, हे महाराजाधिराजेश्वर ! आप इस हमारी आशा को कृपा से पूरी करो ॥ ३१ ॥

मूल स्तुति

न यस्य॑ दे॒वा दे॒वता॒ न मर्ता॒ आप॑श्च॒ न शव॑सो॒ अन्त॑मा॒पुः । स प्र॒रिक्वा॒ त्वक्ष॑सा॒ क्ष्मो दि॒वश्च॑ म॒रुत्वा॑न्नो भ॒व॒त्विन्द्र॑ ऊ॒ती ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । ७ । १० । १५ ॥

व्याख्यान

हे अनन्तबल ! "न यस्य" जिस परमात्मा का और उसके बलादि सामर्थ्य का "देवाः" इन्द्रिय "देवता" विद्वान् सूर्यादि बुद्ध्यादि "न, मर्त्ताः" साधारण मनुष्य "आपश्च न" आप, प्राण, वायु, समुद्र इत्यादि सब अन्त (पार) कभी नहीं पा सकते किन्तु "प्ररिक्वा" प्रकृष्टता से इनमें व्यापक होके अतिरिक्त (इन से विलक्षण) भिन्न ही परिपूर्ण हो रहा है, सो "मरुत्वान्" अत्यन्त बलवान् इन्द्र परमात्मा "त्वक्षसा" शत्रुओं के बल का छेदक बल से "क्ष्मः" पृथिवी को "दिवश्च" स्वर्ग को धारण करता है, सो "इन्द्रः" परमात्मा "ऊती" हमारी रक्षा के लिये "भवतु" तत्पर हो ॥ ३२ ॥

मूल प्रार्थना

जा॒तवे॑दसे सुनवा॒म सोम॑मरातीय॒तो नि द॑हाति॒ वेद॑ः । स न॑ः पर्ष॒दति॑ दु॒र्गाणि॒ विश्वा॑ ना॒वेव॒ सिन्धुं॑ दुरि॒तात्य॒ग्निः ॥ ३३ ॥ ऋ० १ । ७ । ७ । १ ॥

व्याख्यान

हे "जातवेदः" परब्रह्मन् ! आप जातवेद हो, उत्पन्नमात्र सब जगत् को जाननेवाले हो, सर्वत्र प्राप्त हो जा विद्वानों से ज्ञात सब में विद्यमान (जात

अर्थात् प्रादुर्भूत अनन्त धनवान् वा अनन्त ज्ञानवान् हो इससे आपका नाम जातवेद है) उन आपके लिये "वयं, सोमं, सुनवाम" जितने सोम प्रिय गुण-विशिष्टादि हमारे पदार्थ हैं, वे सब अर्पित ह, सो आप हे कृपालो ! "अरातीयतः" दुष्ट शत्रु जो हम धर्मात्माओं का विरोधी उसके "वेद" धनैश्वर्यादि का "निदहाति" नित्य दहन करो जिससे वह दुष्टता को छोड़ के श्रेष्ठता को स्वीकार करे तथा "नः" हमको "दुर्गाणि, विश्वा" सम्पूर्ण दुस्सह दुःखों से "पर्षदति" पार करके आप नित्य सुख को प्राप्त करो "नावेव, सिन्धुम्" जैसे अति कठिन नदी वा समुद्र से पार होने के लिये नौका होती है, "दुरितात्यग्निः" वैसे ही हम को सब पापजनित अत्यन्त पीड़ाओं से पृथक् (भिन्न) करके संसार में और मुक्ति में ही परमसुख को शीघ्र प्राप्त करो ॥ ३३ ॥

मूल स्तुति

स वज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा । चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ३४ ॥ ऋ० १ । ७ । १० । १२ ॥

व्याख्यान

हे दुष्टनाशक परमात्मन् ! आप "वज्रभृत्" अछेद्य (दुष्टों के छेदक) सामर्थ्य से सर्वशिष्ट हितकारक दुष्टविनाशक जो न्याय उसको धारण कर रहे हो "प्राणो वा वज्रः" इत्यादि शतपथादि का प्रमाण है । अतएव "दस्युहा" दुष्ट पापी लोगों का हनन करने वाले हो "भीमः" आप की न्याय आज्ञा को छोड़नेवालों पर भयङ्कर भय देनेवाले हो । "सहस्रचेताः" सहस्रों विज्ञानादि गुण वाले आप ही हो "शतनीथः" सैकड़ों असंख्यात पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले हो "ऋभ्वा" अत्यन्त विज्ञानादि प्रकाशवाले हो और सब के प्रकाशक हो तथा महान् वा महाबलवाले हो "न, चम्रीषः" किसी की चमू (सेना) में

वश को प्राप्त नहीं होते हो । "शवसा, पाञ्चजन्यः" स्वबल से आप पाञ्चजन्य (पांच प्राणों के) जनक हो । "मरुत्वान्" सब प्रकार के वायुओं के आधार तथा चालक हो सो आप "इन्द्रः" हमारी रक्षा के लिये प्रवृत्त हों जिससे हमारा कोई काम न बिगड़े ॥ ३४ ॥

मूल प्रार्थना

सेमं नः काममापृण गोभिरश्वैः शतक्रतो । स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥३५॥
ऋ० १ । १ । ३१ । ६ ॥

व्याख्यान

हे "शतक्रतो" अनन्त क्रियेश्वर ! आप असङ्ख्यात विज्ञानादि यज्ञों से प्राप्य हो तथा अनन्तक्रियायुक्त हो, सो आप "गोभिरश्वैः" गाय, उत्तम इन्द्रिय, श्रेष्ठ पशु, सर्वोत्तम अश्वविद्या (विज्ञानादियुक्त) तथा अश्व अर्थात् श्रेष्ठ घोड़ादि पशुओं और चक्रवर्ती राज्यैश्वर्य्य से "सेमं, नः, काममापृण" हमारे काम को परिपूर्ण करो । फिर हम भी "स्तवाम, त्वा, स्वाध्यः" सुबुद्धियुक्त हो के उत्तम प्रकार से आप का स्तवन (स्तुति) करें । हमको दृढ़ निश्चय है कि आपके विना दूसरा कोई किसी का काम पूर्ण नहीं कर सकता, आपको छोड़ के दूसरे का ध्यान वा याचना जो करते हैं, उनके सब काम नष्ट हो जाते हैं ॥३५॥

मूल स्तुति

सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्द्धयामो वचोविदः । सुमृळीको न आविश ॥ ३६ ॥
ऋ० १ । ६ । २१ । ११ ॥

व्याख्यान

हे "सोम" सर्वजगदुत्पादकेश्वर ! आप को "वचोविदः" शास्त्रवित् हम लोग स्तुतिसमूह से "वर्द्धयामः" सर्वोपरि विराजमान मानते हैं "सुमृळीको, नः, आविश" क्योंकि हम को सुन्दर सुख देनेवाले आप ही हो, सो कृपा करके हम को आप आवेश करो, जिससे हम लोग अविद्या अन्धकार से छूट और विद्यासूर्य को प्राप्त होके आनन्दित हों ॥ ३६ ॥

मूल प्रार्थना

सोम॑ रार॒न्धि नो॑ हृ॒दि गावो॒ न यव॑से॒ष्वा । मर्य॑ इ॒व स्व ओ॒क्ये॑ ॥ ३७॥ ऋ० १ । ६ । २१ । १३ ॥

व्याख्यान

हे "सोम" सौम्य सौख्यप्रदेश्वर ! आप कृपा करके "रारन्धि, नो, हृदि" हमारे हृदय में यथावत् रमण करो (दृष्टान्त) जैसे सूर्य्य की किरण, विद्वानों का मन और गाय, पशु अपने २ विषय और घासादि में रमण करते हैं* वा जैसे "मर्य्य, इव, स्व, ओक्ये" मनुष्य अपने घर में रमण करता है वैसे ही आप सदा स्वप्रकाशयुक्त हमारे हृदय (आत्मा) में रमण कीजिये, जिससे हमको यथार्थ सर्वज्ञान और आनन्द हो ॥ ३७ ॥

मूल स्तुति

ग॒य॒स्फानो॑ अमीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः । सु॒मि॒त्रः सो॑म नो भव ॥३८॥ ऋ० १ । ६ । २१ । १२ ॥

* दृष्टान्त का एकदेश रमणमात्र लेना ।

व्याख्यान

हे परमात्मभक्त जीवो ! अपना इष्ट जो परमेश्वर सो "गयस्फानः" प्रजा, धन, जनपद और सुराज्य का बढ़ानेवाला है तथा "अमीवहा" शरीर, इन्द्रिय-जन्य और मानस रोगों का हनन विनाश करनेवाला है "वसुवित्" सब पृथिव्यादि वसुओं का जाननेवाला है अर्थात् सर्वज्ञ और विद्यादि धन का दाता है "पुष्टिवर्धनः" अपने शरीर इन्द्रिय, मन और आत्मा की पुष्टि को बढ़ानेवाला है "सुमित्रः, सोम, नो, भव" सुन्दर यथावत् सब का परममित्र वही है सो अपने उससे यह मांगें कि हे सोम सर्वजगदुत्पादक ! आप ही कृपा करके हमारे सुमित्र हो और हम भी सब जीवों के मित्र हों तथा अत्यन्त मित्रता आप से भी रक्खें ॥ ३८ ॥

मूल प्रार्थना

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि । अप नः शोशुचदघम् ॥३९॥ ऋ० १ । ७ । ५ । ६ ॥

व्याख्यान

हे अग्ने परमात्मन् ! "त्वं हि" तू ही "विश्वतः परिभूरसि" सब जगत् सब ठिकानों में व्याप्त हो अतएव आप विश्वतोमुख हो, हे सर्वतोमुख अग्ने ! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है हे कृपालो ! "अप, नः, शोशुचदघम्" आप की इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट होजाय, जिससे हम लोग निष्पाप हो के आपकी भक्ति और आज्ञापालन में नित्य तत्पर रहें ॥ ३९ ॥

मूल स्तुति

तमीळत प्रथमं यज्ञसाधं विश आरीराहुतमृञ्जसानम् । ऊर्जः पुत्रं भरतं सृप्रदानुं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ४० ॥ ऋ० १ । ७ । ३ । ३ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! "तमीळत" उस अग्नि की स्तुति करो कि जो "प्रथमम्" सब कार्यों से पहिले वर्त्तमान और सब का मुख्य कारण है तथा "यज्ञसाधम्" सब संसार और विज्ञानादि यज्ञ का साधक (सिद्ध करने वाला) सब का जनक है, हे "विशः" मनुष्यो ! उसी को स्वामी मानकर "आरीः" प्राप्त होओ जिसको अपने दीनता से कहते हैं, विज्ञानादि से विद्वान् लोग सिद्ध करते और जानते हैं "ऊर्जः, पुत्रं, भरतम्" पृथिव्यादि जगतूरूप अन्न का पुत्र अर्थात् पालन करनेवाला तथा भरत अर्थात् उसी अन्न का पोषण और धारण करने वाला है "सृप्रदानुम्" सब जगत् को चलने की शक्ति देनेवाला और ज्ञान का दाता है, उसीको "देवा अग्निं, धारयन्द्राविणोदाम्" देव (विद्वान् लोग) अग्नि कहते और धारण करते हैं वही सब जगत् को द्रविण अर्थात् निर्वाह के सब अन्न जलादि पदार्थ और विद्यादि पदार्थों का देनेवाला है उस अग्नि परमात्मा को छोड़ के अन्य किसी की भक्ति याचना कभी किसी को न करनी चाहिये ॥४०॥

मूल प्रार्थना

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् । स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ४१ ॥ ऋ० १ । ७ । ६ । ७ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! "तमूतयः" उसी इन्द्र परमात्मा की प्रार्थना तथा शरणागति से अपने को "ऊतयः" अनन्त रक्षण तथा बलादि गुण प्राप्त होंगे "शूरसातौ"

युद्ध में अपने को यथावत् "रणायन्" रमण और रणभूमि में शूरवीरों के गुण परस्पर प्रीत्यादि प्राप्त करावेगा "तं क्षेमस्य, क्षितयः" हे शूरवीर मनुष्यो! उसी को क्षेम कुशलता का "त्राम्" रक्षक "कृण्वत" करो, जिससे अपना पराजय कभी न हो। क्योंकि "सः, विश्वस्य" सो करुणामय सब जगत् पर करुणा करनेवाला "एकः" एक ही है अन्य कोई नहीं, सो परमात्मा "मरुत्वान्" प्राण, वायु, बल, सेनायुक्त "ऊती" (ऊतये) सम्यक् हम लोगों पर कृपा से रक्षक हो, जिसकी रक्षा से हम लोग कभी पराजय को न प्राप्त हों॥ ४१॥

मूल स्तुति

स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्। विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥ ४२॥ ऋ० १। ७। ३। २॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो! सो ही "पूर्वया, निविदा" आदि सनातन, सत्यता आदि गुणयुक्त परमात्मा था, अन्य कोई कार्य नहीं था, तब सृष्टि की आदि में स्वप्रकाशस्वरूप एक ईश्वर प्रजा की उत्पत्ति की ईक्षणता (विचार) और निकृष्ट दुःखविशेष नरक और सब दृश्यमान तारे आदि लोकलोकान्तर रचे हैं जो ऐसा सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर है, उसी "द्रविणोदाम्" विज्ञानादि धन देने वाले को "देवाः" विद्वान् लोग अग्नि जानते हैं, हम लोग उसी को भजें॥ ४२॥

मूल प्रार्थना

वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरे भरे। अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज॥ ४३॥ ऋ० १। ७। १४। ४॥

व्याख्यान

हे इन्द्र परमात्मन् ! "त्वया, युजा, वयं, जयेम" आपके साथ वर्त्तमान आप की सहायता से हम लोग दुष्ट शत्रुजन को जीतें, कैसा वह शत्रु ? कि "आवृतम्" हमारे बल से घेरा हुआ। हे महाराजाधिराजेश्वर ! "भरे भरे अस्माकमंशमुदवा" युद्ध २ में हमारे अंश (बल) सेना का "उदवा" उत्तम रीति से कृपा करके रक्षण करो, जिससे किसी युद्ध में क्षीण होके हम पराजय को न प्राप्त हों, किन्तु जिनको आपकी सहायता है उनका सर्वत्र विजय होता ही है, हे "इन्द्रमघवन्" महाधनेश्वर ! "शत्रूणां, वृष्ण्याः" हमारे शत्रुओं के वीर्य्य पराक्रमादि को "प्ररुज" प्रभग्न रुग्ण करके नष्ट करदे "अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः, सुगं, कृधि" हमारे लिये चक्रवर्ती राज्य और साम्राज्य धन को "सुगम्" सुख से प्राप्त कर अर्थात् आपकी करुणा से हमारा राज्य और धन सदा वृद्धि को प्राप्त हो ॥ ४३ ॥

मूल स्तुति

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्। इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४४ ॥ ऋ० १ । ७ । १२ । ५ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! जो सब जगत् (स्थावर) जड़ अप्राणी का और "प्राणतः" चेतनावाले जगत् का "पतिः" अधिष्ठाता और पालक है तथा जो सब जगत् के प्रथम सदा से है और "ब्रह्मणे, गा, अविन्दत्" जिसने यही नियम किया है कि ब्रह्म अर्थात् विद्वान् के ही लिये पृथिवी का लाभ और उसका राज्य है। और जो "इन्द्रः" परमैश्वर्यवान् परमात्मा, डाकुओं को "अधरान्" नीचे गिराता है तथा उनको मार ही डालता है, "मरुत्वन्तं सख्याय, हवामहे" आओ मित्रो

भाई लोगो ! अपने सब संप्रीति से मिल के मरुत्वान् अर्थात् परमानन्द, बल वाले इन्द्र परमात्मा को सखा होने के लिये अत्यन्त प्रार्थना से गदगद हो के बुलावें, वह शीघ्र ही कृपा करके अपने से सखित्व (परममित्रता) करेगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४४ ॥

मूल प्रार्थना

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते । यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥ ४५ ॥ ऋ० १ । ८ । ५ । २ ॥

व्याख्यान

हे दुष्टों को रुलानेहारे रुद्रेश्वर ! हमको "मृड" सुखी कर तथा "मयस्कृधि" हमको मय अर्थात् अत्यन्त सुख का सम्पादक कर "क्षयद्वीराय, नमसा, विधेम, ते" शत्रुओं के वीरों का क्षय करनेवाले अत्यन्त नमस्कारादि से आपकी परिचर्या करनेवाले हम लोगों का रक्षण यथावत् कर "यच्छम्" हे रुद्र ! आप हमारे पिता (पालक) हो हमारी सब प्रजा को सुखी कर "योश्च" प्रजा के रोगों का भी नाश कर जैसे "मनुः" मान्यकारक पिता "आयेजे" स्वप्रजा का संगत और अनेक विध लाड़न करता है वैसे आप हमारा पालन करो । हे रुद्र भगवन् "तव, प्रणीतिषु" आपकी आज्ञा का प्रणय अर्थात् उत्तम न्याययुक्त नीतियों में प्रवृत्त होके "तदश्याम" वीरों के चक्रवर्त्ती राज्य को आप के अनुग्रह से प्राप्त हों ॥ ४५ ॥

मूल स्तुति

देवो न यः पृथिवीं विश्वधाया उपक्षेति हितमित्रो न राजा । पुरः सदः शर्मसदो न वीरा अनवद्या पतिजुष्टेव नारी ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । ५ । १९ । ३ ॥

व्याख्यान

हे प्रियबन्धु विद्वानो ! "देवो, न" ईश्वर सब जगत् के बाहर और भीतर सूर्य के समान प्रकाश कर रहा है "यः, पृथिवीम्" जो पृथिव्यादि जगत् को रच के धारण कर रहा है और "विश्वधाया उपक्षेति" विश्वधारक शक्ति का भी निवास देने और धारण करनेवाला है तथा जो सब जगत् का परममित्र अर्थात् जैसे "प्रियमित्रो, न, राजा" प्रियमित्रवान् राजा अपनी प्रजा का यथावत् पालन करता है वैसे ही हम लोगों का पालनकर्त्ता वही एक है और कोई भी नहीं "पुरःसदः, शर्मसदो न, वीराः" जो जन ईश्वर के पुरःसद हैं (ईश्वराभिमुख ही हैं) वे ही शर्मसदः अर्थात् सुख में सदा स्थिर रहते हैं या जैसे "न वीराः" पुत्र लोग अपने पिता के घर में आनन्दपूर्वक निवास करते हैं वैसे ही जो परमात्मा के भक्त हैं वे सदा सुखी रहते हैं, परन्तु जो अनन्यचित्त होके निराकार सर्वत्र व्याप्त ईश्वर की सत्य श्रद्धा से भक्ति करते हैं जैसे कि "अनवद्या, पतिजुष्टेव, नारी" अत्यन्तोत्तमगुणयुक्त पति की सेवा में तत्पर पतिव्रता नारी (स्त्री) रात दिन तन, मन, धन और अतिप्रेम से अनुकूल रहती है, वैसे प्रेमप्रीतियुक्त होके आओ भाई लोगो ! ईश्वर की भक्ति करें और अपने सब मिलके परमात्मा से परमसुख लाभ उठावें ॥ ४६ ॥

मूल प्रार्थना

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च। विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥ ४७ ॥ ऋ० ७।८।१२।२॥

व्याख्यान

हे सर्वाभिरक्षकेश्वर ! "सा मा सत्योक्तिः" आपकी सत्य आज्ञा जिसका हमने अनुष्ठान किया वह "विश्वतः, परि पातु, नः" हमको सब संसार से

सर्वथा पालन और सब दुष्ट कामों से सदा पृथक् रक्खे कि कभी हमको अधर्म करने की इच्छा भी न हो "द्यावा, च" और दिव्य सुख से सदा युक्त करके यथावत् हमारी रक्षा करे "यत्र" जिस दिव्य सृष्टि में "अहानि" सूर्यादिकों को दिवस आदि के होने के निमित्त "ततनत्" आपने ही विस्तारे हैं, वहां भी हमारा सब उपद्रवों से रक्षण करो, "विश्वमन्य०" आप से अन्य (भिन्न) विश्व अर्थात् सब जगत् जिस समय आपके सामर्थ्य से (प्रलय में) "नि, विशते" प्रवेश करता है (कार्य सब कारणात्मक होता है), उस समय में भी आप हमारी रक्षा करो "यदेजति" जिस समय यह जगत् आपके सामर्थ्य से चलित हो के उत्पन्न होता है, उस समय भी सब पीड़ाओं से आप हमारी रक्षा करें "विश्वाहापो, विश्वाहा" जो २ विश्व का हन्ता (दुःख देनेवाला) उसको आप नष्ट कर देओ, क्योंकि आपके सामर्थ्य से सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है, आपके सामने कोई राक्षस (दुष्टजन) क्या कर सकता है ? क्योंकि आप सब जगत् में उदित (प्रकाशमान) हो रहे हो, परन्तु सूर्य्यवत् हमारे हृदय में कृपा करके प्रकाशित होओ जिससे हमारी अविद्यान्धकारता सब नष्ट हो ॥ ४७ ॥

मूल स्तुति

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे। शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ४८ ॥ ऋ० १ । ६ । ३२ । १३ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! वह परमात्मा कैसा है ? कि हम लोग उसकी स्तुति करें, हे अग्ने परमेश्वर ! आप "देवो, देवानामसि" देवों (परमविद्वानों) के भी देव (परमविद्वान्) हो तथा उनको परमानन्द देनेवाले हो तथा "अद्भुतः" अत्यन्त आश्चर्यरूप मित्र सर्वसुखकारक सब के सखा हो "वसु०" पृथिव्यादि वसुओं

के भी वास करानेवाले हो तथा "अध्वरे" ज्ञानादि यज्ञ में "चारुः" अत्यन्त शोभायमान और शोभा के देनेवाले हो, हे परमात्मन्! "सप्रथस्तमे सख्ये, शर्मणि तव" आपके अतिविस्तीर्ण, आनन्दस्वरूप सखाओं के कर्म में हम लोग स्थिर हों, जिससे हमको कभी दुःख न प्राप्त हो और आपके अनुग्रह से हम लोग परस्पर अप्रीतियुक्त कभी न हों ॥ ४८ ॥

मूल प्रार्थना

मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः।
आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा न॒ः पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि ॥ ४९ ॥
ऋ० १।७।१९।८॥

व्याख्यान

हे इन्द्र परमैश्वर्ययुक्तेश्वर! "मा, नो, वधीः" हमारा वध मत कर अर्थात् अपने से अलग हमको मत गिरावै, "मा परा दाः" हम से अलग आप कभी मत हो "मा नः प्रिया०" हमारे प्रिय भोगों को मत चोर और मत चोरवावै, "आण्डा मा०" हमारे गर्भों का विदारण मत कर, हे "मघवन्" सर्वशक्तिमन् "शक्र" समर्थ हमारे पुत्रों का विदारण मत कर, "मा, नः, पात्रा" हमारे भोजनाद्यर्थ सुवर्णादि पात्रों को हम से अलग मत कर, "सहजानुषाणि" जो २ हमारे सहज अनुषक्त, स्वभाव से अनुकूल मित्र हैं, उनको आप नष्ट मत करो अर्थात् कृपा करके पूर्वोक्त सब पदार्थों की यथावत् रक्षा करो ॥४९॥

मूल प्रार्थना

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्।
मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्र रीरिषः ॥ ५० ॥
ऋ० १।८।६।७॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे ॥ ५१ ॥ ऋ०
१ । ८ । ६ । ८ ॥

व्याख्यान

हे "रुद्र" दुष्टविनाशकेश्वर ! आप हम पर कृपा करो "मा, नो, व०" हमारे ज्ञानवृद्ध वयोवृद्ध पिता इनको आप नष्ट मत करो तथा "मा, नो अर्भकम्" छोटे बालक और "उक्षन्तम्" वीर्यसेचनसमर्थ जवान तथा जो गर्भ में वीर्य को सेचन किया है, उसको मत विनष्ट करो तथा हमारे पिता, माता और प्रिय तनुओं (शरीरों) का "मा, रीरिषः" हिंसन मत करो "मा, नस्तोके" कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठपुत्र, "आयौ" उमर "गोषु" गाय आदि पशु "अश्वेषु" घोड़ा आदि उत्तम यान हमारी सेना के शूरों में "हविष्मन्तः" यज्ञ के करनेवाले इन में, "भामितः" क्रोधित और "मा रीरिषः" रोषयुक्त होके कभी प्रवृत्त मत हो हम लोग आपको "सदमित्वा, हवामहे" सर्वदैव आह्वान करते हैं, हे भगवन् रुद्र परमात्मन् ! आपसे यही प्रार्थना है कि हमारी और हमारे पुत्र धनैश्वर्यादि की रक्षा करो ॥ ५० ॥ ५१ ॥

मूल प्रार्थना

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि। वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमा वद विश्वतो नः शकुने पुण्यमा वद ॥ ५२ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । २ ॥

आवदँस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः। यदुत्पतन् वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥ ५३ ॥ ऋ० २ । ८ । १२ । ३ ॥

व्याख्यान

हे "शकुने" सर्वशक्तिमन्नीश्वर ! आप सामगान को गाते ही हो, वैसे ही हमारे हृदय में सब विद्या का प्रकाशित गान करो जैसे यज्ञ में महापण्डित सामगान करता है वैसे आप भी हम लोगों के बीच में सामादि विद्या का प्रकाश कीजिये "ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु" आप कृपा से सवन (पदार्थविद्याओं) की "शंससि" प्रशंसा करते हो वैसे हमको भी यथावत् प्रशंसित करो जैसे "ब्रह्म-पुत्र इव" वेदों का वेत्ता विज्ञान से सब पदार्थों की प्रशंसा करता है वैसे आप भी हम पर कृपा कीजिये, आप "वृषेववाजी" सर्वशक्ति का सेवन करने और अन्नादि पदार्थों के देनेवाले तथा महा बलवान् और वेगवान् होने से वाजी हो जैसे कि वृषभ के समान आप उत्तम गुण और उत्तम पदार्थों की वृष्टि करनेवाले हो वैसे हम पर उनकी वृष्टि करो "शिशुमतिः" हम लोग आपकी कृपा से उत्तम शिशु (सन्तानादि) को "अपीत्य" प्राप्त होके आप को ही भजें "आसर्वतो नः शकुने" हे शकुने ! सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वर ! सब ठिकानों से हमारे लिये "भद्रम्" कल्याण को "आ वद" अच्छे प्रकार कहो अर्थात् कल्याण की ही आज्ञा और कथन करो जिससे अकल्याण की बात भी कभी हम न सुनें "विश्वतो, नः श०" हे सब को सुख देनेवाले ईश्वर ! सब जगत् के लिये "पुण्यम्" धर्मात्मा के कर्म करने को "आ वद" उपदेश कर जिससे कोई मनुष्य अधर्म करने की इच्छा भी न करै और सब ठिकानों में सत्यधर्म की प्रवृत्ति हो "आवदँस्त्वं शकुने" हे शकुने जगदीश्वर ! आप सब "भद्रम्" कल्याण का भी कल्याण अर्थात् व्यावहारिक सुख के भी ऊपर मोक्षसुख का निरन्तर उपदेश कीजिये "तूष्णीमासीनः सु०" हे अन्तर्यामिन् ! हमारे हृदय में सदा स्थिर हो मौन से ही "सुमतिम्" सर्वोत्तम ज्ञान देओ "चीकिद्धि नः" कृपा से हमको अपने रहने के लिये घर ही बनाओ और आप की परमविद्या को हम प्राप्त हों "यदुत्पतन्वद०" उत्तम व्यवहार में पहुंचाते हुए आप का (यथा) जिस प्रकार से "कर्करिर्वदासि" कर्तव्य कर्म, धर्म को ही अत्यन्त पुरुषार्थ से करो अकर्त्तव्य दुष्टकर्म मत करो ऐसा उपदेश है कि पुरुषार्थ अर्थात् यथायोग्य उद्यम को कभी

कोई मत छोड़ो वैसे "बृहद्वदेम विदथे" विज्ञानादि यज्ञ वा धर्मयुक्त युद्धों में "सुवीरः" अत्यन्त शूरवीर हो के बृहत् (सब से बड़े) आप जो परब्रह्म उन "वदेम" आप की स्तुति, आप का उपदेश, आप की प्रार्थना और उपासना तथा आप का यह बड़ा अखण्ड साम्राज्य और सब मनुष्यों का हित सर्वदा कहैं सुनैं और आप के अनुग्रह से परमानन्द को भोगैं ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

ओ३म् महाराजाधिराजाय परमात्मने नमो नमः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां महाविदुषां श्रीयुत-
विरजानन्द सरस्वतीस्वामिना शिष्येण दयानन्द-
सरस्वती स्वामिना विरचित आर्य्याभिविनये
प्रथमः प्रकाशः पूर्तिमागमत् ।
समाप्तोऽयं प्रथमः प्रकाशः ॥

ओ३म्

तत्सत्परमात्मने नमः

अथ द्वितीयः प्रकाशः

ओ३म् सहनाववतु सहनौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ तैत्तिरीयारण्यके ब्रह्मानन्दवल्ली प्रपाठक १० । प्रथमानुवाकः ॥ १ ॥

व्याख्यान

हे सहनशीलेश्वर ! आप और हम लोग परस्पर प्रसन्नता से रक्षक हों, आपकी कृपा से हम लोग सदैव आपकी ही स्तुति, प्रार्थना और उपासना करैं तथा आप को ही पिता, माता, बन्धु, राजा, स्वामी, सहायक, सुखद, सुहृद्, परमगुर्वादि जानैं, क्षणमात्र भी आपको भूल के न रहैं, आपके तुल्य वा अधिक किसी को कभी न जानैं, आपके अनुग्रह से हम सब लोग परस्पर प्रीतिमान्, रक्षक, सहायक, परम पुरुषार्थी हों, एक दूसरे का दुःख न देख सकैं, स्वदेशस्थादि मनुष्यों को अत्यन्त परस्पर निर्वैर प्रीतिमान् पाखण्ड रहित करैं "सह, नौ, भुनक्तु" तथा आप और हम लोग परस्पर परमानन्द का भोग करैं हम लोग परस्पर हित से आनन्द भोगैं कि आप हमको अपने अनन्त परमानन्द के भागी करैं उस आनन्द से हम लोगों को क्षण भी अलग न रक्खें "सह वीर्य्यं, करवावहै" आपकी सहायता से परमवीर्य जो सत्यविद्या उसको परस्पर परमपुरुषार्थ से प्राप्त हों "तेजस्विनावधीतमस्तु" हे अनन्त विद्यामय भगवन् ! आपकी कृपादृष्टि से हम लोगों का पठनपाठन परम विद्यायुक्त हो तथा संसार में सब से अधिक प्रकाशित हों और अन्योन्यप्रीति से परमवीर्य

पराक्रम से निष्कण्टक चक्रवर्त्ती राज्य भोगें, हम में सब नीतिमान् सज्जन पुरुष हों और आप हम लोगों पर अत्यन्त कृपा करें जिससे कि हम लोग नाना पाखण्ड, असत्य, वेदविरुद्ध मतों को शीघ्र छोड़ के एक सत्यसनातन मतस्थ हों, जिससे समस्त वैरभाव के मूल जो पाखंडमत, वे सब सद्यः प्रलय को प्राप्त हों। "मा, विद्विषावहै" और हे जगदीश्वर! आपके सामर्थ्य से हम लोगों में परस्पर विद्वेष अर्थात् अप्रीति न रहे जिससे हम लोग कभी परस्पर विद्वेष न करें, किन्तु सब तन, मन, धन, विद्या इनको परस्पर सब के सुखोपकार में परमप्रीति से लगावें "ओ३म् शान्तिः, शान्तिः, शान्तिः" हे भगवन्! तीन प्रकार के सन्ताप जगत् में हैं एक आध्यात्मिक (शारीरिक) जो ज्वरादि पीड़ा होने से होता है दूसरा आधिभौतिक जो शत्रु, सर्प, व्याघ्र, चौरादिकों से होता है और तीसरा आधिदैविक जो मन, इन्द्रिय, अग्नि, वायु, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अत्युष्णतेत्यादि से होता है, हे कृपासागर! आप इन तीनों तापों को शीघ्र निवृत्ति करें जिससे हम लोग अत्यानन्द में और आपकी अखण्ड उपासना में सदा रहें, हे विश्वगुरो! मुझको असत् (मिथ्या) और अनित्य पदार्थ तथा असत् काम से छुड़ा के सत्य तथा नित्य पदार्थ और श्रेष्ठ व्यवहार में स्थिर कर, हे जगन्मङ्गलमय! सब दुःखों से मुझ को छुड़ा के, सब सुखों को प्राप्त कर। (हे प्रजापते! सुप्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन, परमैश्वर्येण, संयोजय) हे प्रजापते! मुझको अच्छी प्रजा पुत्रादि, हस्त्यश्व, गवादि, उत्तम पशु, सर्वोत्कृष्ट विद्या और चक्रवर्ती राज्यादि परमैश्वर्य जो स्थिर परमसुखकारक उसको शीघ्र प्राप्त कर। हे परमवैद्य! (सर्वरोगात्पृथक्कृत्य नैरोग्यन्देहि) सर्वथा मुझको सब रोगों से छुड़ा के परम नैरोग्य दे। महाराजाधिराज! जिससे मैं शुद्ध होके आप की सेवा में स्थिर होऊं (हे न्यायाधीश! कुकामकुलोभकुमोहभयशोकालस्येर्ष्याद्वेषप्रमादविषयतृष्णानैष्ठुर्याभिमानदुष्टभावाविद्याभ्यो निवारय, एतेभ्यो विरुद्धेषूत्तमेषु गुणेषु संस्थापय माम्) हे ईश्वर! कुकाम कुलोभादि पूर्वोक्त दुष्ट दोषों को कृपा से छुड़ा के श्रेष्ठ कामों में यथावत् मुझको स्थिर कर, मैं अत्यन्त दीन होके यही मांगता हूं कि मैं आप और आप की आज्ञा से भिन्न पदार्थ में कभी प्रीति न करूं, हे प्राणपते, प्राणप्रिय, प्राणपितः, प्राणाधार, प्राण-

जीवन, सुराज्यप्रद ! मेरे प्राणवाले आदि आप ही हो, मेरा सहायक आप के विना कोई नहीं है, हे महाराजाधिराज ! जैसा सत्य न्याययुक्त अखण्डित आप का राज्य है, वैसा न्यायराज्य हम लोगों का भी आप की ओर से स्थिर हो आप के राज्य के अधिकारी किङ्कर अपने कृपाकटाक्ष से हम को शीघ्र ही कर, हे न्यायप्रिय ! हम को भी न्यायप्रिय यथावत् कर, हे धर्माधीश ! हम को धर्म में स्थिर रख, हे करुणामय पितः ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों का पालन करते हैं वैसे ही आप हमारा पालन करो ॥ १ ॥

मूल स्तुति

स पर्य॑गाच्छु॒क्रम॑का॒यम॑व्र॒णम॑स्नावि॒रꣳ शु॒द्धमपा॑पविद्धम् । क॒विर्म॑नी॒षी प॑रि॒भूः स्व॑य॒म्भूर्या॑थातथ्य॒तोऽर्था॒न्व्य॑दधाच्छाश्व॒तीभ्यः॒ समा॑भ्यः ॥ २ ॥ यजुर्वेदे । अध्याय ४० । श्लोक ८ ॥

व्याख्यान

"स, पर्यगात्" वह परमात्मा आकाश के समान सब जगह में परिपूर्ण (व्यापक) है, "शुक्रम्" सब जगत् का करनेवाला वही है "अकायम्" और वह कभी शरीर (अवतार) नहीं धारण करता क्योंकि वह अखण्ड और अनन्त, निर्विकार है, इससे देहधारण कभी नहीं करता, उससे अधिक कोई पदार्थ नहीं है, इससे ईश्वर का शरीर धारण करना कभी नहीं बन सकता । "अव्रणम्" वह अखण्डैकरस अच्छेद्य, अभेद्य, निष्कम्प और अचल है इससे अंशांशीभाव भी उस में नहीं है, क्योंकि उसमें छिद्र किसी प्रकार से नहीं हो सकता "अस्नाविरम्" नाड़ी आदि का प्रतिबन्ध (निरोध) भी उसका नहीं हो सकता अतिसूक्ष्म होने से ईश्वर का कोई आवरण नहीं हो सकता "शुद्धम्" वह परमात्मा सदैव निर्मल अविद्यादि जन्म, मरण, हर्ष, शोक, क्षुधा, तृषादि दोषोपाधियों से रहित है, शुद्ध की उपासना करनेवाला शुद्ध ही होता है

और मलिन का उपासक मलिन ही होता है, "अपापविद्धम्" परमात्मा कभी अन्याय नहीं करता क्योंकि वह सदैव न्यायकारी ही है "कविः" त्रैकालज्ञ (सर्ववित्) महाविद्वान् जिसकी विद्या का अन्त कोई कभी नहीं ले सकता, "मनीषी" सब जीवों के मन (विज्ञान) का साक्षी सब के मन का दमन करनेवाला है, "परिभूः" सब दिशा और सब जगह में परिपूर्ण हो रहा है, सब के ऊपर विराजमान है, "स्वयम्भूः" जिसका आदिकारण माता, पिता, उत्पादक कोई नहीं, किन्तु वही सब का आदिकारण है, "याथातथ्यतोर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः, समाभ्यः" उस ईश्वर ने अपनी प्रजा को यथावत् सत्य, सत्यविद्या जो चार वेद उनका सब मनुष्यों के परमहितार्थ उपदेश किया है उस हमारे दयामय पिता परमेश्वर ने बड़ी कृपा से अविद्यान्धकार का नाशक वेदविद्यारूप सूर्य्य प्रकाशित किया है और सब का आदिकारण परमात्मा है ऐसा अवश्य मानना चाहिये ऐसे विद्यापुस्तक का भी आदिकारण ईश्वर को ही निश्चित मानना चाहिये, विद्या का उपदेश ईश्वर ने अपनी कृपा से किया है, क्योंकि हम लोगों के लिये उसने सब पदार्थों का दान दिया है तो विद्यादान क्यों न करेगा सर्वोत्कृष्ट विद्या पदार्थ का दान परमात्मा ने अवश्य किया है तो वेद के विना अन्य कोई पुस्तक संसार में ईश्वरोक्त नहीं है, जैसा पूर्ण विद्यावान् और न्यायकारी ईश्वर है वैसा ही वेदपुस्तक भी है अन्य कोई पुस्तक ईश्वरकृत वेदतुल्य वा अधिक नहीं है अधिक विचार इस विषय का "सत्यार्थप्रकाश" और "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" मेरे किये ग्रन्थों में देख लेना ॥ २ ॥

मूल प्रार्थना

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् । मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे । मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ ३ ॥ यजु० ३६ । १८ ॥

व्याख्यान

हे अनन्तबल महावीर ईश्वर ! "दृते" हे दुष्टस्वभावनाशक विदीर्णकर्म

अर्थात् विज्ञानादि शुभ गुणों का नाशकर्म करनेवाला मुझ को मत रक्खो (मत करो) किन्तु उससे मेरे आत्मादि को विद्या सत्य धर्मादि शुभगुणों में सदैव अपनी कृपा सामर्थ्य से स्थित करो "दृꣳह मा" हे परमैश्वर्यवन् भगवन्! धर्म्मार्थकाममोक्षादि तथा विज्ञानादि दान से अत्यन्त मुझ को बढ़ा "अमित्रस्येत्यादि०" हे सर्वसुहृदीश्वर सर्वान्तर्यामिन्! सब भूत प्राणीमात्र मित्रदृष्टि से यथावत् मुझको देखैं सब मेरे मित्र होजायँ कोई मुझ से किञ्चिन्मात्र भी वैर न करे "मित्रस्याऽहं, चेत्यादि" हे परमात्मन्! आपकी कृपा से मैं भी निर्वैर हो के सब चराचर जगत् को मित्रदृष्टि से अपने प्राणवत् प्रिय जानूं अर्थात् "मित्रस्य, चक्षुषेत्यादि" पक्षपात छोड़ के सब जीव देहधारीमात्र अत्यन्त प्रेम से परस्पर अपना वर्त्ताव करें अन्याय से युक्त होके किसी पर कभी हम लोग न वर्तें यह परमधर्म का सब मनुष्यों के लिये परमात्मा ने उपदेश किया है सब को यही मान्य होने के योग्य है ॥ ३ ॥

मूल स्तुति

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः। तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ ४ ॥ यजु० ३२ । १ ॥

व्याख्यान

जो सब जगत् का कारण एक परमेश्वर है उसी का नाम अग्नि है (ब्रह्म-ह्यग्निः शतपथे) सर्वोत्तम ज्ञानस्वरूप जानने के योग्य, प्रापणीयस्वरूप और पूज्यतमेत्यादि अग्नि शब्द का अर्थ है "आदित्यो वै ब्रह्म, वायुर्वै ब्रह्म, चन्द्रमा वै ब्रह्म, शुक्रं हि ब्रह्म, सर्वं जगत्कर्तृब्रह्म, ब्रह्म वै बृहत्, आपो वै ब्रह्मेत्यादि" शतपथ तथा ऐतरेय ब्राह्मण के प्रमाण हैं "तदादित्यः" जिसका कभी नाश न हो और स्वप्रकाशस्वरूप हो, इससे परमात्मा का नाम आदित्य है "तद्वायुः" सब जगत का धारण करनेवाला, अनन्त बलवान् प्राणों से भी जो प्रियस्वरूप है इससे ईश्वर का नाम वायु है पूर्वोक्त प्रमाण से "तदु चन्द्रमाः" जो आनन्द-

स्वरूप और स्वसेवकों को परमानन्द देनेवाला है इससे पूर्वोक्त प्रकार से चन्द्रमा परमात्मा को जानना "तदेव, शुक्रम्" वही चेतनस्वरूप ब्रह्म सब जगत् का कर्त्ता है "तद्ब्रह्म" सो अनन्त चेतन सब से बड़ा है और धर्म्मात्मा स्वभक्तों को अत्यन्त सुख विद्यादि सद्गुणों से बढ़ाने वाला है "ता आपः" उसी को सर्वज्ञ चेतन सर्वत्र व्याप्त होने से आपनामक जानना "स, प्रजापतिः" सो ही सब जगत् का पति (स्वामी) और पालन करने वाला है अन्य कोई नहीं उसी को हम लोग इष्टदेव तथा पालक मानें अन्य को नहीं ॥ ४ ॥

मूल प्रार्थना

ऋचं वाचं प्रपद्ये मनो यजुः प्रपद्ये साम प्राणं प्रपद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये । वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥ ५ ॥ यजु० ३६ । १ ॥

व्याख्यान

हे करुणाकर परमात्मन् ! आपकी कृपा से मैं ऋग्वेदादिज्ञानयुक्त होके उसका वक्ता होऊं तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थ मननयुक्त मन को प्राप्त होऊं ऐसे ही सामवेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊं "वागोजः" वाग्बल, वक्तृत्वबल, मनोविज्ञानबल मुझ को आप देवें अन्तर्यामी की कृपा से मैं यथावत् प्राप्त होऊं "सहौजः" नैरोग्यदृढ़त्वादि गुणयुक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं "मयि, प्राणापानौ" हे सर्वजनबलशरीरजीवनाधार ! प्राण (जिससे कि ऊर्ध्व चेष्टा होती है) और अपान (अर्थात् जिससे नीचे की चेष्टा होती है) ये दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रिय सब धातुओं की शुद्धि करने तथा नैरोग्य बल पुष्टि सरलगति कराने और मर्मस्थलों की रक्षा करनेवाले हों उनके अनुकूल प्राणादि को प्राप्त होके आपकी कृपा से हे ईश्वर ! सदैव सुखयुक्त आपकी आज्ञा और उपासना में तत्पर रहूं ॥ ५ ॥

मूल स्तुति

स नो॒ बन्धु॑र्जनि॒ता स वि॑धा॒ता धामा॑नि वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ । यत्र॑ दे॒वा अ॒मृत॑मानशा॒नास्तृ॒तीये॒ धाम॑न्न॒ध्यैर॑यन्त ॥ ६ ॥ यजु॰ ३२ । १० ॥

व्याख्यान

वह परमेश्वर हमारा "बन्धुः" दुःखनाशक और सहायक है तथा "जनिता" सब जगत् तथा हम लोगों का भी पालन करनेवाला पिता तथा हम लोगों के कामों की सिद्धि का विधाता पूर्ण काम की सिद्धि करनेवाला वही है सब जगत् का भी विधाता रचने और धारण करनेवाला एक परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं "धामानि वेदेत्यादि" "विश्वा" सब धाम अर्थात् अनेक लोक लोकान्तरों को रच के अनन्त सर्वज्ञता से यथार्थ जानता है वह कौन परमेश्वर है ? कि जिससे देव अर्थात् विद्वान् लोग (विद्वाᳪसो हि देवाः शतपथ ब्रा॰) अमृत, मरणादि दुःखरहित मोक्षपद में अर्थात् सब दुःखों से छूट के सर्वव्यापी पूर्णानन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त होके परमानन्द में रहते हैं, तृतीयेत्यादि एक स्थूल (जगत् पृथिव्यादि) दूसरा सूक्ष्म (आदिकारण) सर्वदोषरहित अनन्तानन्दस्वरूप परब्रह्म उस धाम में "अध्यैरयन्त" धर्मात्मा विद्वान् लोग स्वच्छन्द (स्वेच्छा) से वर्त्तते हैं सब बाधाओं से छूट के विज्ञानवान् शुद्ध होके देश काल वस्तु परिच्छेदरहित सर्वगत "धामन्" आधारस्वरूप परमात्मा में रहते हैं उससे दुःखसागर में नहीं गिरते ॥ ६ ॥

मूल प्रार्थना

यतो॑ यतः स॒मीह॑से॒ ततो॑ नो॒ अभ॑यं कुरु । शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ ७ ॥ यजु॰ ३६ । २२ ॥

व्याख्यान

हे महेश्वर, दयालो ! जिस २ देश से आप "समीहसे" सम्यक् चेष्टा

करते हो उस २ देश से हमको अभय करो अर्थात् जहां २ से हमको भय प्राप्त होने लगे वहां २ से सर्वथा हम लोगों को अभय (भयरहित) करो तथा प्रजा से हमको सुख करो, हमारी प्रजा सब दिन सुखी रहै, भय देनेवाली कभी न हो तथा पशुओं से भी हमको अभय करो, किंच किसी से किसी प्रकार का भय हम लोगों को आपकी कृपा से कभी न हो जिससे हम लोग निर्भय होके सदैव परमानन्द को भोगें और निरन्तर आपका राज्य तथा आपकी भक्ति करें ॥ ७ ॥

मूल स्तुति

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ ८ ॥ यजु० ३१ । १८ ॥

व्याख्यान

सहस्रशीर्षादि विशेषणोक्त पुरुष सर्वत्र परिपूर्ण (पूर्णत्वात्पुरि शयनाद्वा पुरुष इति निरुक्तोक्तेः) है उस पुरुष को मैं जानता हूं अर्थात् सब मनुष्यों को उचित है कि उस परमात्मा को अवश्य जानैं उसको कभी न भूलैं अन्य किसी को ईश्वर न जानैं वह कैसा है कि "महान्तम्" बड़ों से भी बड़ा उससे बड़ा वा तुल्य कोई नहीं है "आदित्यवर्णम्" आदित्यादि का रचक और प्रकाशक वही एक परमात्मा है तथा वह सदा स्वप्रकाशस्वरूप ही है किंच "तमसः परस्तात्" तम जो अन्धकार अविद्यादि दोष उससे रहित ही है तथा स्वभक्त, धर्मात्मा सत्यप्रेमी जनों को भी अविद्यादिदोषरहित सद्यः करनेवाला वही परमात्मा है, विद्वानों का ऐसा निश्चय है कि परब्रह्म के ज्ञान और उसकी कृपा के विना कोई जीव कभी सुखी नहीं होता । "तमेव विदित्वेत्यादि" उस परमात्मा को जान के जीव मृत्यु को उल्लङ्घन कर सक्ता है, अन्यथा नहीं क्योंकि "नाऽन्यः, पन्था, विद्यतेऽयनाय" विना परमेश्वर की भक्ति और उसके ज्ञान के मुक्ति का मार्ग

कोई नहीं है, ऐसी परमात्मा की दृढ़ आज्ञा है, सब मनुष्यों को इसमें वर्त्तना चाहिये और सब पाखण्ड और जंजाल अवश्य छोड़ देना चाहिये ॥ ८ ॥

मूल प्रार्थना

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि । बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि । मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥ यजु० १६ । ६ ॥

व्याख्यान

हे स्वप्रकाश ! अनन्त तेज ! आप अविद्यान्धकार से रहित हो, किंच सत्य विज्ञान तेजस्वरूप हो, आप कृपादृष्टि से मुझ में वही तेज धारण करो जिससे मैं निस्तेज, दीन और भीरु कहीं कभी न होऊं । हे अनन्तवीर्य परमात्मन् ! आप वीर्यस्वरूप हो, आप सर्वोत्तम बल स्थिर मुझ में भी रक्खें, हे अनन्तपराक्रम ! आप ओजः (पराक्रमस्वरूप) हो सो मुझ में भी उस पराक्रम को सदैव धारण करो, हे दुष्टानामुपरि क्रोधकृत् ! मुझ में भी दुष्टों पर क्रोध धारण कराओ, हे अनन्त सहनस्वरूप ! मुझ में भी आप सहनसामर्थ्य धारण करो अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा इनके तेजादि गुण कभी मुझ में से दूर न हों, जिससे मैं आपकी भक्ति का स्थिर अनुष्ठान करूं और आपके अनुग्रह से संसार में भी सदा सुखी रहूं ॥ ९ ॥

मूल स्तुति

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान् परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च । उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मनात्मानमभि सं विवेश ॥ १० ॥ यजु० ३२ । ११ ॥

व्याख्यान

सब जीवों में (अर्थात् आकाश और प्रकृति से लेके पृथिवीपर्य्यन्त सब संसार में) वह परमेश्वर व्याप्त होके परिपूर्ण भर रहा है तथा सब लोक, सब पूर्वादि दिशा और ऐशान्यादि उपदिशा, ऊपर, नीचे अर्थात् एक कण भी उसके विना अपर्याप्त (खाली) नहीं "प्रथमजाम्" मुख्य प्राणी अपने आत्मा से अत्यन्त सत्याचरण, विद्या, श्रद्धा, भक्ति से "ऋतस्य" यथार्थ सत्यस्वरूप परमात्मा को "उपस्थाय" यथावत् जान उपस्थित (निकट प्राप्त) "अभिसंविवेश" अभिमुख होके उसमें प्रविष्ट अर्थात् परमानन्दस्वरूप परमात्मा में प्रवेश करके सब दुःखों से छूट उसी परमानन्द में रहता है ॥ १० ॥

मूल प्रार्थना

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः । भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥ ११ ॥ यजु० ३४ । ३६ ॥

व्याख्यान

हे भगवन् ! परमैश्वर्यवान् भग ऐश्वर्य के दाता, संसार वा परमार्थ में आप ही हो तथा "भगप्रणेतः" आप के ही स्वाधीन सकल ऐश्वर्य है, अन्य किसी के आधीन नहीं, आप जिसको चाहो उसको ऐश्वर्य देओ, सो आप कृपा से हम लोगों का दारिद्र्य छेदन करके हमको परमैश्वर्यवाले करें क्योंकि ऐश्वर्य के प्रेरक आपही हो । हे "सत्यराधः" भगवन् ! सत्यैश्वर्य की सिद्धि करनेवाले आप ही हो, सो आप नित्य ऐश्वर्य हमको दीजिये तथा जो मोक्ष कहाता है उस सत्य ऐश्वर्य का दाता आप से भिन्न कोई भी नहीं है, हे सत्यभग ! पूर्ण ऐश्वर्य सर्वोत्तम बुद्धि हमको आप दीजिये जिससे हम लोग आपके गुण और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान ज्ञान इनको यथावत् प्राप्त हों, हमको सत्यबुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदवः" (उद्गय प्रापय) प्राप्त कर, जिससे हम लोग

सूक्ष्म से भी सूक्ष्म पदार्थों को यथावत् जानैं "भग प्रनो जनय" हे सर्वैश्वर्यो-त्पादक ! हमारे लिये ऐश्वर्य को अच्छे प्रकार से उत्पन्न कर, सर्वोत्तम गाय, घोड़े और मनुष्य इनसे सहित अत्युत्तम ऐश्वर्य हमको सदा के लिये दीजिये, हे सर्वशक्तिमन् ! आपकी कृपा से सब दिन हम लोग उत्तम २ पुरुष स्त्री और सन्तान भृत्यवाले हों आप से यह हमारी अधिक प्रार्थना है कि कोई मनुष्य हम में दुष्ट और मूर्ख न रहै, न उत्पन्न हो जिससे हम लोगों की सर्वत्र सत्कीर्ति हो निन्दा कभी न हो ॥ ११ ॥

मूल स्तुति

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके । तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ १२ ॥ यजु० ४० । ५ ॥

व्याख्यान

'तद्, एजति" वह परमात्मा सब जगत् को यथायोग्य अपनी २ चाल पर चला रहा है सो अविद्वान् लोग ईश्वर में भी आरोप करते हैं कि वह भी चलता होगा परन्तु वह सब में पूर्ण है कभी चलायमान नहीं होता, अतएव "तन्नैजति" (यह प्रमाण है) स्वतः वह परमात्मा कभी नहीं चलता एकरस निश्चल हो के भरा है, विद्वान् लोग इसी रीति से ब्रह्म को जानते हैं, "तद्दूरे" अधर्मात्मा, अविद्वान्, विचारशून्य, अजितेन्द्रिय, ईश्वरभक्तिरहित इत्यादि दोषयुक्त मनुष्यों से वह ईश्वर बहुत दूर है अर्थात् वे कोटि २ वर्ष तक उसको नहीं प्राप्त होते इससे वे तबतक जन्ममरणादि दुःखसागर में इधर उधर घूमते फिरते हैं कि जबतक उसको नहीं जानते "तद्वन्तिके" सत्यवादी सत्यकारी सत्य-मानी जितेन्द्रिय सर्वजनोपकारक विद्वान् विचारशील पुरुषों के "अन्तिके" अत्यन्त निकट है, किंच वह सब के आत्माओं के बीच में अन्तर्यामी व्यापक होके सर्वत्र पूर्ण भर रहा है, वह आत्मा का भी आत्मा है क्योंकि परमेश्वर

सब जगत् के भीतर और बाहर तथा मध्य अर्थात् एक तिलमात्र भी उसके विना खाली नहीं है वह अखण्डैकरस सब में व्यापक हो रहा है उसी को जानने से सुख और मुक्ति होती है अन्यथा नहीं ॥ १२ ॥

मूल प्रार्थना

आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पतामात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् । स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरं च । स्वर्देवा अगन्मामृता अभूम प्रजापतेः प्रजा अभूम वेट् स्वाहा ॥ १३ ॥ यजु० १८ । २९ ॥

व्याख्यान

(यज्ञो वै विष्णुः यज्ञो वै ब्रह्मेत्याद्यैतरेयशतपथब्राह्मणश्रु०) यज्ञ यजनीय जो सब मनुष्यों का पूज्य इष्टदेव परमेश्वर उसके अर्थ अतिश्रद्धा से सब मनुष्य सर्वस्व समर्पण यथावत् करैं यही इस मन्त्र में उपदेश और प्रार्थना है कि हे सर्वस्वामिन् ईश्वर ! जो यह आपकी आज्ञा है कि सब लोग सब पदार्थ मेरे अर्पण करें इस कारण हम लोग "आयुः" उमर, प्राण, चक्षु (आंख), कान, वाणी, मन, आत्मा, जीव, ब्रह्मा, वेदविद्या और विद्वान् ज्योति (सूर्यादि लोक अग्न्यादि पदार्थ), स्वर्ग (सुखसाधन), पृष्ठ (पृथिव्यादि सब लोक आधार) तथा पुरुषार्थ, यज्ञ (जो जो अच्छा काम हम लोग करते हैं), स्तोम, स्तुति, यजुर्वेद, ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, बृहद्रथन्तर, महारथन्तर साम इत्यादि सब पदार्थ आपके समर्पण करते हैं, हम लोग तो केवल आपके ही शरण हैं जैसे आपकी इच्छा हो वैसा हमारे लिये आप कीजिये, परन्तु हम लोग आपके सन्तान आपकी कृपा से "स्वरगन्म" उत्तम सुख को प्राप्त हों जबतक जीवैं तब तक सदा चक्रवर्त्ती राज्यादि भोग से सुखी रहैं और मरणानन्तर भी हम सुखी

ही रहें। हे महादेवामृत ! हम लोग देव (परमविद्वान्) हों तथा अमृत मोक्ष जो आपकी प्राप्ति उसको प्राप्त हों "वेट्स्वाहा" आपकी आज्ञा का पालन और आपकी प्राप्ति में उद्योगी हों तथा अन्तर्यामी आप हृदय में आज्ञा करो अर्थात् जैसा हमारे हृदय में ज्ञान हो वैसा ही सदा भाषण करें इससे विपरीत कभी नहीं, हे कृपानिधे ! हम लोगों का योगक्षेम (सब निर्वाह) आप ही सदा करो आपके सहाय से सर्वत्र हम को विजय और सुख मिले ॥ १३ ॥

मूल स्तुति

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ १४ ॥
यजु० ८ । ३६ ॥

व्याख्यान

जिससे बड़ा, तुल्य वा श्रेष्ठ न हुआ न है और न कोई कभी होगा, उसको परमात्मा कहना जो "विश्वा भुवनानि" सब भुवन (लोक) सब पदार्थों के निवासस्थान असंख्यात लोकों को आवेश प्रविष्ट हो के पूर्ण हो रहा है, वही ईश्वर प्रजा का पति (स्वामी) है। सब प्रजा को रमा रहा और सब प्रजा में रम रहा है "त्रीणीत्यादि" तीन ज्योति अग्नि, वायु और सूर्य इनको जिसने रचा है सब जगत् के व्यवहार और पदार्थविद्या की उत्पत्ति के लिये इन तीनों को मुख्य समझना "स षोडशी" सोलह कला जिसने उत्पन्न की हैं इससे सोलह कलावान् ईश्वर कहाता है वे सोलह कला ये हैं—ईक्षण (विचार) १ प्राण २ श्रद्धा ३ आकाश ४ वायु ५ अग्नि ६ जल ७ पृथिवी ८ इन्द्रिय ९ मन १० अन्न ११ वीर्य (पराक्रम) १२ तप (धर्मानुष्ठान) १३ मन्त्र (वेदविद्या) १४ कर्मलोक (चेष्टास्थान) १५ और लोकों में नाम १६, इतनी कलाओं के बीच में सब जगत् है और परमेश्वर में अनन्त कला हैं, उसकी उपासना छोड़

के जो दूसरे की उपासना करता है, वह सुख को प्राप्त कभी नहीं होता किन्तु सदा दुःख में ही पड़ा रहता है ॥ १४ ॥

मूल स्तुति

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व । सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ १५ ॥ यजु० ३ । २४ ॥

व्याख्यान

(ब्रह्मह्यग्निः, इत्यादि शतपथादिप्रामाण्याद् ब्रह्मैवात्राग्निर्ग्राह्यः) हे विज्ञानस्वरूपेश्वराग्ने ! आप हमारे लिये "सूपायनः" सुख से प्राप्त श्रेष्ठोपाय के प्रापक, अत्युत्तम स्थान के दाता कृपा से सर्वदा हो तथा रक्षक भी हमारे आप ही हो; हे स्वस्तिद परमात्मन् ! सब दुःखों का नाश करके हमारे लिये सुख का वर्त्तमान सदैव कराओ जिससे हमारा वर्त्तमान श्रेष्ठ ही हो "स नः पितेव सूनवे" जैसे करुणामय पिता अपने पुत्र को सुखी ही रखता है वैसे आप हमको सदा सुखी रक्खो, क्योंकि जो हम लोग बुरे होंगे तो उन आप की शोभा नहीं होना किञ्च सन्तानों को सुधारने से ही पिता की शोभा और बड़ाई होती है, अन्यथा नहीं ॥ १५ ॥

मूल स्तुति

वि॒भूर॑सि प्र॒वाह॑णः । वह्नि॑रसि हव्य॒वाह॑नः । श्वा॒त्रो॒ऽसि प्रचे॑ताः । तु॒थो॒ऽसि वि॒श्ववे॑दाः ॥ उ॒शिग॑सि क॒विः । अङ्घा॑रिरसि बम्भा॑रिः । अ॒व॒स्यूर॑सि दुव॑स्वान् । शु॒न्ध्यूर॑सि मार्जा॒लीयः॑ । स॒म्राड॑सि कृ॒शानुः॑ । प॒रि॒षद्यो॒ऽसि पव॑मानः । नभो॒ऽसि प्र॒तक्वा॑ । मृ॒ष्टो॒ऽसि हव्य॒सूद॑नः । ऋ॒तधा॑मासि॒ स्व॒र्ज्योतिः ॥ स॒मु॒द्रो॒ऽसि वि॒श्वव्य॑चाः । अ॒जो॒ऽस्येक॑पात् । अहि॑रसि

बुध्न्यः । वार्गस्यैन्द्रमंसि सदोऽसि । ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्तांप्तम् । अध्वनामध्वपते प्र मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयानें भूयात् ॥ १६ । १७ । १८ ॥ यजु० ५ । ३१ । ३२ । ३३ ॥

व्याख्यान

हे व्यापकेश्वर ! आप विभु हो अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित वैभवैश्वर्ययुक्त हो किन्तु और कोई नहीं, विभु आप सब जगत् के प्रवाहण (स्वस्वनियमपूर्वक चलानेवाले) तथा सब के निर्वाहकारक भी हो, हे स्वप्रकाशक सर्वरसवाहकेश्वर ! आप वह्नि हैं अर्थात् सब हव्य उत्कृष्ट रसों के भेदक आकर्षक तथा यथावत् स्थापक हो, हे आत्मन् ! आप शीघ्र व्यापनशील हो तथा प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप प्रकृष्ट ज्ञान के देनेवाले हो, हे सर्ववित् ! आप तुथ और विश्ववेदा हो, "तुथो वै ब्रह्म" (यह शतपथ की श्रुति है) सब जगत् में विद्यमान प्राप्त और लाभ करानेवाले हो ॥ १६ ॥ हे सर्वप्रिय ! आप "उशिक्" कमनीयस्वरूप अर्थात् सब लोग जिनको चाहते हैं, क्योंकि आप कवि पूर्ण विद्वान् हो तथा आप अङ्घारि हो अर्थात् स्वभक्तों का जो अघ (पाप) उसके अरि (शत्रु) हो उस समस्त पाप के नाशक हो तथा "बम्भारिः" स्वभक्तों और सब जगत् के पालन तथा धारण करने वाले हो "अवस्यूरसि दुवस्वान्" अन्नादि पदार्थ अपने भक्तों धर्मात्माओं को देने की इच्छा सदा करते हो तथा परिचरणीय विद्वानों से सेवनीयतम हो, "शुन्ध्युरसि, मार्ज्जालीयः" शुद्धस्वरूप और सब जगत् के शोधक तथा पापों का मार्जन (निवारण) करने वाले आप ही हो अन्य कोई नहीं, "सम्राडसि कृशानुः" सब राजाओं के महाराज तथा कृश दीनजनों के प्राण के सुखदाता आप ही हो "परिषद्योसि पवमानः" हे न्यायकारिन् ! पवित्र परमेश्वर सभा के आज्ञापक सभ्य सभापति सभाप्रिय सभारक्षक आप ही हो तथा पवित्रस्वरूप पवित्रकारक सभा से ही सुखदायक पवित्रप्रिय आप ही हो, "नभोऽसि प्रतक्वा" हे निर्विकार ! आकाशवत् आप क्षोभरहित अतिसूक्ष्म होने से आपका नाम नभ है तथा "प्रतक्वा" सब के ज्ञाता, सत्यासत्यकारी जनों के कर्मों की साक्ष्य रखने वाले कि जिसने जैसा पाप वा पुण्य किया हो उसको वैसा फल मिले,

अन्य का पुण्य वा पाप अन्य को कभी न मिले "मृष्टोसि हव्यसूदनः" मृष्ट शुद्धस्वरूप सब पापों के मार्जक शोधक तथा "हव्यसूदनः" मिष्ट सुगन्ध रोग-नाशक पुष्टिकारक, इन द्रव्यों से वायु वृष्टि की शुद्धि करने कराने वाले हो अतएव सब द्रव्यों के विभागकर्त्ता आप ही हो इससे आप का नाम "हव्य-सूदन" है, "ऋतधामसि स्वर्ज्योतिः" हे भगवन् ! आप का ही धाम स्थान सर्वगत सत्य और यथार्थस्वरूप है, यथार्थ (सत्य) व्यवहार में ही आप निवास करते हो "स्वः" आप सुखस्वरूप और सुखकारक हो तथा "ज्योतिः" स्वप्रकाश और सब के प्रकाशक आप ही हैं ॥ १७ ॥ "समुद्रोऽसि विश्व-व्यचाः" हे द्रवणीयस्वरूप ! सब भूतमात्र आप ही में द्रवैं हैं, क्योंकि कार्य कारण में ही मिले हैं, आप सब के कारण हो तथा सहज से सब जगत् को विस्तृत किया है इससे आप "विश्वव्यचाः" हैं, "अजोस्येकपात्" आप का जन्म कभी नहीं होता और यह सब जगत् आप के किञ्चिन्मात्र एक देश में है, आप अनन्त हो "अहिरसि बुध्न्यः" आपकी हीनता कभी नहीं होती तथा सब जगत् के मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी सदा आप ही पूर्ण रहते हो "वागस्यैन्द्रमसि सदोसि" सब शास्त्र के उपदेशक अनन्तविद्यास्वरूप होने से आप वाक् हो, परमैश्वर्यस्वरूप सब विद्वानों में अत्यन्त शोभायमान होने से आप ऐन्द्र हो, सब संसार आप में ठहर रहा है, इससे आप सदा (सभा-स्वरूप) हो "ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम्" सत्यविद्या और धर्म ये दोनों मोक्षस्वरूप आप की प्राप्ति के द्वार हैं उनको सन्तापयुक्त हम लोगों के लिये कभी मत रक्खो किन्तु सुखस्वरूप ही खुले रक्खो जिससे हम लोग सहज से आप को प्राप्त हों "अध्वनामित्यादि" हे अध्वपते ! परमार्थ और व्यवहार मार्गों में मुझ को कहीं क्लेश मत होने दे किन्तु उन मार्गों में मुझ को स्वस्ति (आनन्द) ही आप की कृपा से रहै किसी प्रकार का दुःख न रहै ॥ १८ ॥

मूल स्तुति

दे॒वकृ॑तस्यैन॑सोऽवय॒जन॑मसि । म॒नु॒ष्य॒कृत॒स्यैन॑सोऽव॒य॒जन॑मसि । पि॒तृ-

कृतस्यैनसोऽवयजनमसि । आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि । एनस एनसोऽवयजनमसि । यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १९ ॥ यजु० ८ । १३ ॥

व्याख्यान

हे सर्वपापप्रणाशक ! "देवकृतः०" इन्द्रिय विद्वान् और दिव्यगुणयुक्त जन के दुःख के नाशक एक ही आप हो अन्य कोई नहीं, एवं मनुष्य (मध्यस्थजन), पितृ (परमविद्यायुक्तजन) और "आत्मकृत०" जीव के पापों तथा "एनस०" पापों से भी बड़े पापों से आप ही अवयजन हो अर्थात् सर्व पापों से अलग हो और हम सब मनुष्यों को भी पाप से दूर रखनेवाले एक आप ही दयामय पिता हो, हे महानन्तविद्य ! जो २ मैंने विद्वान् वा अविद्वान् हो के पाप किया हो उन सब पापों का छुड़ानेवाला आप के विना कोई भी इस संसार में हमारा शरण नहीं है, इससे हमारे अविद्यादि सब पाप छुड़ा के शीघ्र हम को शुद्ध करो ॥ १९ ॥

मूल स्तुति

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ २० ॥ यजु० १३ । ४ ॥

व्याख्यान

जब सृष्टि नहीं हुई थी तब एक अद्वितीय हिरण्यगर्भ (जो सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्तिस्थान उत्पादक) है सो ही प्रथम था वह सब जगत् का सनातन प्रादुर्भूत प्रसिद्ध पति है, वही परमात्मा पृथिवी से ले के प्रकृतिपर्यन्त जगत् को रच के धारण करता है, "कस्मै" (कः प्रजापतिः, प्रजापतिर्वै कस्तस्मै देवाय, शतपथे) प्रजापति जो परमात्मा उस की पूजा

आत्मादि पदार्थों के समर्पण से यथावत् करैं, उससे भिन्न की उपासना लेशमात्र भी हम लोग न करैं, जो परमात्मा को छोड़ के वा उसके स्थान में दूसरे की पूजा करता है उस की और उस देश भर की अत्यन्त दुर्दशा होती है यह प्रसिद्ध है, इससे चेतो मनुष्यो ! जो तुम को सुख की इच्छा हो तो एक निराकार परमात्मा की यथावत् भक्ति करो, अन्यथा तुम को कभी सुख न होगा ॥ २० ॥

मूल प्रार्थना

इन्द्रो विश्वस्य राजति । शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ शंनो वातः पवताᳬ शं नस्तपतु सूर्यः । शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥ अहानि शं भवन्तु नः शᳬ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या । शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः ॥ २१ । २२ । २३ ॥ यजु० ३६ । मं० ८ । १० । ११ ॥

व्याख्यान

हे इन्द्र ! आप परमैश्वर्ययुक्त सब संसार के राजा हो, सर्वप्रकाशक हो, हे रक्षक ! आप कृपा से हम लोगों के "द्विपदे" जो पुत्रादि, उन के लिये परमसुखदायक हो तथा "चतुष्पदे" हस्ती, अश्व और गवादि पशुओं के लिये भी परमसुखकारक हो जिससे हम लोगों को सदा आनन्द ही रहै ॥ २१ ॥ हे सर्वनियन्तः ! हमारे लिये सुखकारक शीतल मन्द और सुगन्ध सदैव वायु चले, ऐसे सूर्य भी सुखकारक तपे तथा मेघ भी सुख का शब्द लिये अर्थात् गर्जनपूर्वक सदैव काल काल में सुखकारक वर्षा वर्षे जिससे आप के कृपापात्र हम लोग सुखानन्द ही में सदा रहैं ॥ २२ ॥ हे क्षणादि कालपते ! सब दिवस आप के नियम से सुखरूप ही हमको हों, हमारे लिये सर्व रात्रि भी

आनन्द से बीतें, हे भगवन् ! दिन और रात्रियों को सुखकारक ही आप स्थापन करो जिससे सब समय में हम लोग सुखी ही रहैं, हे सर्वस्वामिन् ! "इन्द्राग्नी" सूर्य तथा अग्नि ये दोनों हमको आप के अनुग्रह से और नानाविध रक्षाओं से सुखकारक हों "इन्द्रावरुणा रातहव्या" हे प्राणाधार ! होम से शुद्धिगुणयुक्त हुए आपकी प्रेरणा से वायु और चन्द्र हम लोगों के लिये सुखरूप ही सदा हों, "इन्द्रापूषणा, वाजसातौ" हे प्राणपते ! आपकी रक्षा से पूर्ण आयु और बलयुक्त प्राण वाले हम लोग अपने अत्यन्त पुरुषार्थयुक्त युद्ध में स्थिर रहैं जिससे शत्रुओं के सम्मुख हम निर्बल कभी न हों "इन्द्रासोमा सुविताय शंयोः" (प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी इत्यादि शतपथे) हे महाराज ! आप के प्रबन्ध से राजा और प्रजा परस्पर विद्यादि सत्यगुणयुक्त होके अपने ऐश्वर्य का उत्पादन करैं तथा आप की कृपा से परस्पर प्रीतियुक्त हों, अत्यन्त सुख लाभों को प्राप्त हों, आप हम पुत्र लोगों को सुखी देख के अत्यन्त प्रसन्न हों और हम भी प्रसन्नता से आप और जो आपकी सत्य आज्ञा उस में ही तत्पर हों ॥ २३ ॥

मूल स्तुति

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत् । त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पिताऽसत् ॥ २४ ॥ यजु० ३२ । ९ ॥

व्याख्यान

हे वेदादिशास्त्र और विद्वानों के प्रतिपादन करने योग्य ! जो अमृत (मरणादि दोषरहित) मुक्तों का धाम (निवासस्थान) सर्वगत सब का धारण और पोषण करनेवाला, सब की बुद्धियों का साक्षी ब्रह्म है उस आप का उपदेश तथा धारण जो विद्वान् जानता है वह गन्धर्व कहाता है (गच्छतीति गं ब्रह्म तद्धरतीति स गन्धर्वः) सर्वगत ब्रह्म को जो धारण करनेवाला उसका नाम

गन्धर्व है तथा परमात्मा के तीन पद हैं जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने के सामर्थ्य तथा ईश्वर को जो स्वहृदय में जानता है वह पिता का भी पिता है अर्थात् विद्वानों में भी विद्वान् है ॥ २४ ॥

मूल प्रार्थना

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिस्सर्वꣳ शान्तिश्शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ २५ ॥ यजु० ३६ । १७ ॥

व्याख्यान

हे सर्वदुःख की शान्ति करनेवाले ! सब लोकों से ऊपर जो आकाश सो सर्वदा हम लोगों के लिये शान्त (निरुपद्रव) सुखकारक ही रहे, अन्तरिक्ष मध्यस्थ लोक और उसमें स्थित वायु आदि पदार्थ, पृथिवी, पृथिवीस्थ पदार्थ, जल, जलस्थ पदार्थ, ओषधि, तत्रस्थ गुण, वनस्पति, तत्रस्थ पदार्थ, विश्वेदेव (जगत् के सब विद्वान्) तथा विश्वद्योतक वेदमन्त्र, इन्द्रिय, सूर्यादि, उनकी किरण, तत्रस्थ गुण, ब्रह्म, परमात्मा तथा वेदशास्त्र, स्थूल और सूक्ष्म, चराऽचर जगत् ये सब पदार्थ हमारे लिये हे सर्वशक्तिमन् परमात्मन् ! आप की कृपा से शान्त (निरुपद्रव) सदानुकूल सुखदायक हों मुझ को भी शान्ति प्राप्त हो जिससे मैं भी आप की कृपा से शान्त दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित होऊं तथा सब संसारस्थ जीव भी दुष्ट क्रोधादि उपद्रव रहित हों ॥ २५ ॥

मूल स्तुति

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ २६ ॥ यजु० १६ । ४१ ॥

व्याख्यान

हे कल्याणस्वरूप, कल्याणकर ! आप संभव हो (मोक्ष सुखस्वरूप और मोक्षसुख के करनेवाले हो), आप को नमस्कार है, आप मयोभव हो, सांसारिक सुख के करनेवाले आप को मैं नमस्कार करता हूं आप शङ्कर हो आप से ही जीवों का कल्याण होता है अन्य से नहीं तथा मयस्कर अर्थात् मन, इन्द्रिय, प्राण और आत्मा को सुख करनेवाले आप ही हो, आप शिव (मङ्गलमय) हो तथा आप शिवतर (अत्यन्त कल्याणस्वरूप और कल्याणकारक) हो इससे आप को हम लोग वारम्बार नमस्कार करते हैं (नमो नम इति यज्ञः शतपथे) श्रद्धा भक्ति से जो जन ईश्वर को नमस्कारादि करता है सो मङ्गलमय ही होता है ॥ २६ ॥

मूल प्रार्थना

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २७ ॥ यजु० २५ । २१ ॥

व्याख्यान

हे देवेश्वर ! देव विद्वानो ! हम लोग कानों से सदैव भद्र कल्याण को ही सुनें अकल्याण की बात भी हम कभी न सुनें, हे यजनीयेश्वर ! हे यज्ञकर्त्तारो ! हम आंखों से कल्याण (मङ्गलसुख) को ही सदा देखें, हे जनो ! हे जगदीश्वर ! हमारे सब अङ्ग उपाङ्ग (श्रोत्रादि इन्द्रिय तथा सेनादि उपाङ्ग) स्थिर (दृढ़) सदा रहें जिनसे हम लोग स्थिरता से आपकी स्तुति और आपकी आज्ञा का अनुष्ठान सदा करें तथा हम लोग आत्मा, शरीर, इन्द्रिय और विद्वानों के हितकारक आयु को विविध सुखपूर्वक प्राप्त हों अर्थात् सदा सुख में ही रहें ॥२७॥

मूल स्तुति

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः ॥ २८ ॥ यजु० १३ । ३ ॥

व्याख्यान

हे महीय परमेश्वर ! आप बड़ों से भी बड़े हो आपसे बड़ा वा आपके तुल्य कोई नहीं है "जज्ञानम्" सब जगत् में व्यापक (प्रादुर्भूत) हो सब जगत् के प्रथम (आदिकारण) आप ही हो, सूर्यादि लोक "सीमतः" सीमा से युक्त (मर्यादासहित) "सुरुचः" आप से प्रकाशित हैं, "पुरस्तात्" इनको पूर्व रच के आप ही धारण कर रहे हो, "व्यावः" इन सब लोकों को विविध नियमों से पृथक् २ यथायोग्य वर्त्ता रहे हो, "वेनः" आपके आनन्दस्वरूप होने से ऐसा कोई जन संसार में नहीं है जो आपकी कामना न करे, किन्तु सब ही आप को मिला चाहते हैं तथा आप अनन्त विद्यायुक्त हो सब रीति से रक्षक आप ही हो, सो ही परमात्मा "बुध्न्याः" अन्तरिक्षान्तर्गत दिशादि पदार्थों को "विवः" विवृत (विभक्त) करता है वे अन्तरिक्षादि उपमा सब व्यवहारों में उपयुक्त होते हैं और वे इस विविध जगत् के निवासस्थान हैं, सत् विद्यमान स्थूल जगत् असत् अविद्या चक्षुरादि इन्द्रियों से अगोचर इस विविध जगत् की योनि आदिकारण आपको ही वेद शास्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं, इससे इस जगत् के माता पिता आप ही हैं, हम लोगों के भजनीय इष्टदेव हैं ॥ २८ ॥

मूल प्रार्थना

सुमित्रिया न आप ओषधयः सन्तु । दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ॥ २९ ॥ यजु० ६ । २२ ॥ ३६ ॥ २३ ॥

व्याख्यान

हे सर्वमित्रसम्पादक ! आपकी कृपा से प्राण और जल तथा विद्या और

ओषधी "सुमित्रिया" (सुखदायक) हम लोगों के लिये सदा हों कभी प्रतिकूल न हों और जो हम से द्वेष अप्रीति शत्रुता करता है तथा जिस दुष्ट से हम द्वेष करते हैं हे न्यायकारिन् ! उसके लिये "दुर्मित्रिया" पूर्वोक्त प्राणादि प्रतिकूल दुःखकारक ही हो अर्थात् जो अधर्म करै उसको आपके रचे जगत् के पदार्थ दुःखदायक ही हों जिससे वह अधर्म न करै और हमको दुःख न दे-सकै हम लोग सदा सुखी ही रहैं ॥ २९ ॥

मूल प्रार्थना

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः । स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२॥ आविवेश ॥ ३० ॥ यजु० १७ । १७ ॥

व्याख्यान

"होता" उत्पत्ति समय में देने और प्रलय समय में सबको लेनेवाला परमात्मा ही है "ऋषिः" सर्वज्ञ इन सब लोक लोकान्तर भुवनों का अपने सामर्थ्य कारण में होम (प्रलय) करके "न्यसीदत्" नित्य अवस्थित है सो ही हमारा पिता है फिर जब द्रविण द्रव्यरूप जगत् को स्वेच्छा से उत्पन्न किया चाहता है उस "आशिषा" सामर्थ्य से यथायोग्य विविध जगत् को सहजस्वभाव से रच देता है इस चराचर "प्रथमच्छत्" विस्तीर्ण जगत् को रच के अनन्तस्वरूप से आच्छादित करता है और अन्तर्यामी साक्षीस्वरूप उसमें प्रविष्ट हो रहा है अर्थात् बाहर और भीतर परिपूर्ण हो रहा है वही हमारा निश्चित पिता है उसकी सेवा छोड़ के जो मनुष्य अन्य मूर्त्यादि की सेवा करता है वह कृतघ्नत्वादि महादोषयुक्त हो के सदैव दुःखभागी होता है जो मनुष्य परमदयामय पिता की आज्ञा में रहता है वह सर्वानन्द का सदैव भोग करता है ॥ ३० ॥

मूल स्तुति

इषे पिन्वस्व । ऊर्जे पिन्वस्व । ब्रह्मणे पिन्वस्व । क्षत्राय पिन्वस्व । द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व । धर्मासि सुधर्म । अमेन्यस्मे नृम्णानि धारय ब्रह्म धारय क्षत्रं धारय विशं धारय ॥ ३१ ॥ यजु० ३८ । १४ ॥

व्याख्यान

हे सर्वसौख्यप्रदेश्वर ! हमको "इषे" उत्तमान्न के लिये पुष्ट कर, अन्न के अपचन वा कुपच के रोगों से बचा तथा विना अन्न के दुखी हम लोग कभी न हों । हे महाबल ! "ऊर्जे" अत्यन्त पराक्रम के लिये हमको पुष्ट कर, हे वेदोत्पादक! "ब्रह्मणे" सत्य वेदविद्या के लिये बुद्ध्यादि बल से सदैव हमको पुष्ट और बलयुक्त कर । हे महाराजाधिराज परब्रह्मन् ! "क्षत्राय" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों, हे स्वर्गपृथिवीश ! "द्यावापृथिवीभ्याम्" स्वर्ग (परमोत्कृष्ट मोक्षसुख) पृथिवी (संसारसुख) इन दोनों के लिये हमको समर्थ कर, हे सुष्ठु धर्मशील ! तू धर्मकारी हो तथा धैर्यस्वरूप ही हो । हम लोगों को भी कृपा से धर्मात्मा कर, "अमेनि" तू निर्वैर है हमको भी निर्वैर कर तथा कृपादृष्टि से "अस्मे" (अस्मभ्यम्) हमारे लिये "नृम्णानि" विद्या, पुरुषार्थ, हस्ती, अश्व, सुवर्ण, हीरादि रत्न, उत्कृष्ट राज्य, उत्तम पुरुष और प्रीत्यादि पदार्थों को धारण कर जिससे हम लोग किसी पदार्थ के विना दुखी न हों, हे सर्वाधिपते ! ब्राह्मण (पूर्णविद्यादि सद्गुणयुक्त) क्षत्र (बुद्धि, विद्या तथा शौर्यादि गुणयुक्त) "विश" अनेक विद्योद्यम, बुद्धि, विद्या, धन और धान्यादि बलयुक्त तथा शूद्रादि भी सेवादिगुणयुक्त उत्तम हमारे राज्य में हों, इन सब का धारण आप ही करो जिससे अखण्ड ऐश्वर्य हमारा आप की कृपा से सदा बना रहै ॥ ३१ ॥

मूल स्तुति

किꣳ स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् । यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥ ३२ ॥ यजु० १७ । १८ ॥

व्याख्यान

(प्रश्नोत्तर विद्या से) इस संसार का अधिष्ठान क्या है ? कारण और उत्पादक कौन है ? किस प्रकार से है ? तथा रचना करनेवाला: अधिष्ठान क्या है ? तथा निमित्तकारण और साधन जगत् वा ईश्वर के क्या हैं, (उत्तर) "यतः" जिसका विश्व (जगत् कर्म) किया हुआ है उस विश्वकर्मा परमात्मा ने अनन्त सामर्थ्य से इस जगत् को रचा है वही इस सब जगत् का अधिष्ठान, निमित्त और साधनादि है उसने अपने अनन्त सामर्थ्य से इस सब जगत् को यथायोग्य रचा और भूमि से ले के स्वर्गपर्यन्त रच के अपनी महिमा से "और्णोत्" आच्छादित कर रक्खा है और परमात्मा का अधिष्ठानादि परमात्मा ही है अन्य कोई नहीं, सब का भी उत्पादन, रक्षण, धारणादि वही करता है तथा आनन्दमय है और वह ईश्वर "विश्वचक्षाः" सब संसार का द्रष्टा है उसको छोड़ के अन्य का आश्रय जो करता है वह दुःखसागर में क्यों न डूबेगा ? ॥ ३२ ॥

मूल प्रार्थना

तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि । आयुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि । वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि । अग्ने यन्मे तन्वा ऊनं तन्मऽआपृण ॥ ३३ ॥ यजु० ३ । १७ ॥

व्याख्यान

हे सर्वरक्षकेश्वराग्ने ! तू हमारे शरीर का रक्षक है । सो शरीर को कृपा से पालन कर, हे महावैद्य ! आप आयु (उमर) बढ़ाने वाले हो मुझको

सुखरूप उत्तमायु दीजिये, हे अनन्त विद्यातेजयुक्त ! आप "वर्चः" विद्यादि तेज अर्थात् यथार्थ विज्ञान देनेवाले हो मुझको सर्वोत्कृष्ट विद्यादि तेज देओ पूर्वोक्त शरीरादि की रक्षा से हमको सदा आनन्द में रक्खो और जो २ कुछ भी शरीरादि में "ऊनम्" न्यून हो उस २ को कृपादृष्टि से सुख और ऐश्वर्य के साथ सर्व प्रकार से आप पूर्ण करो किसी आनन्द वा श्रेष्ठ पदार्थ की न्यूनता हमको न रहै, आपके पुत्र हम लोग जब पूर्णानन्द में रहेंगे तभी आप पिता की शोभा है क्योंकि लड़के लोग छोटी वा बड़ी चीज़ अथवा सुख पिता माता को छोड़ किससे मांगें ? सो आप सर्वशक्तिमान् हमारे पिता सब ऐश्वर्य तथा सुख देनेवालों में पूर्ण हो ॥ ३३ ॥

मूल प्रार्थना

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥ ३४ ॥ यजु० १७ । १९ ॥

व्याख्यान

विश्व (सब जगत् में) जिसका चक्षु (दृष्टि) जिससे अदृष्ट कोई वस्तु नहीं तथा सर्वत्र मुख, बाहु, पग अन्य श्रोत्रादि भी हैं जिसकी दृष्टि में अर्थात् सर्वदृक् सर्ववक्ता सर्वाधारक और सर्वगत ईश्वर व्यापक है उसी से जब डरेगा तभी धर्म्मात्मा होगा अन्यथा कभी नहीं, वही विश्वकर्म्मा परमात्मा एक ही अद्वितीय है, पृथिवी से लेके स्वर्गपर्य्यन्त जगत् का कर्त्ता है जिस २ ने जैसा २ पाप वा पुण्य किया है उस २ को न्यायकारी दयालु जगत्पिता पक्षपात छोड़ के अनन्त बल और पराक्रम इन दोनों बाहुओं से सम्यक् "पतत्रैः" प्राप्त होने वाले सुख दुःख फल दोनों से प्राप्त सब जीवों को "धमति" (धमन—कम्पन) यथायोग्य जन्ममरणादि को प्राप्त करा रहा है उसी निराकार अज अनन्त

सर्वशक्तिमान् न्यायकारी दयामय ईश्वर से अन्य को कभी न मानना चाहिये वही याचनीय पूजनीय हमारा प्रभु स्वामी इष्टदेव है उसी से सुख हमको होगा अन्य से कभी नहीं ॥ ३४ ॥

मूल स्तुति

भूर्भुवः स्वः । सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः । नर्य प्रजां मे पाहि । शꣳस्य पशून्मे पाहि । अथर्य पितुं मे पाहि ॥ ३५ ॥ यजु० ३ । ३७ ॥

व्याख्यान

हे सर्वमङ्गलकारकेश्वर ! आप "भूः" सदा वर्त्तमान हो "भुवः" वायु आदि पदार्थों के रचने वाले "स्वः" सुखरूप हो, हमको सुख दीजिये, हे सर्वाध्यक्ष ! आप कृपा करो जिससे कि मैं पुत्र पौत्रादि उत्तम गुणवाली प्रजा से श्रेष्ठ प्रजावाला होऊं, सर्वोत्कृष्ट वीर योद्धाओं से "सुवीरः" युद्ध में सदा विजयी होऊं, हे महापुष्टिप्रद ! आपके अनुग्रह से अत्यन्त विद्यादि तथा सोमलता आदि ओषधि सुवर्णादि और नैरोग्यादि सर्वपुष्टि युक्त होऊं, हे "नर्य" नरों के हित-कारक ! मेरी प्रजा की रक्षा आप करो, हे "शंस्य" स्तुति करने के योग्य ईश्वर ! हस्त्यश्वादि पशुओं का आप पालन करो, हे "अथर्य" व्यापक ईश्वर ! "पितुम्" धरे अन्न की रक्षा कर, हे दयानिधे ! हम लोगों को सब उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण और सब दिन आप आनन्द में रक्खो ॥ ३५ ॥

मूल प्रार्थना

किꣳ स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः । मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ३६ ॥ यजु० १७ । २० ॥

व्याख्यान

(प्रश्न) विद्या क्या है ? वन और वृत्त किसको कहते हैं ? (उत्तर) जिस सामर्थ्य से विश्वकर्मा ईश्वर ने जैसे तक्षा (बढ़ई) अनेकविध रचना से अनेक पदार्थ रचता है वैसे ही स्वर्ग (सुखविशेष) और भूमि (मध्य सुखवाला लोक) तथा नरक (दुःखविशेष) और सब लोकों को रचा है उसी को वन और वृत्त आदि कहते हैं हे "मनीषिणः" विद्वानो ! जो सब भुवनों को धारण करके सब जगत् में और सब के ऊपर विराजमान हो रहा है उसके विषय में प्रश्न तथा उसका निश्चय तुम लोग करो "मनसा" उसके विज्ञान से जीवों का कल्याण होता है अन्यथा नहीं ॥ ३६ ॥

मूल स्तुति

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ३७ ॥ यजु० ३६ । २४ ॥

व्याख्यान

वह ब्रह्म, "चक्षुः" सर्वदृक् चेतन है तथा देव अर्थात् विद्वानों के लिये वा मन आदि इन्द्रियों के लिये हितकारक मोक्षादि सुख का दाता है "पुरस्तात्" सब का आदि प्रथम कारण वही है "शुक्रम्" सब का करने वाला किंवा शुद्धस्वरूप है "उच्चरत्" प्रलय के ऊर्ध्व वही रहता है उसी की कृपा से हम लोग शत (१००) वर्ष तक देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं, कभी पराधीन न हों अर्थात् ब्रह्मज्ञान बुद्धि और पराक्रम सहित इन्द्रिय तथा शरीर सब स्वस्थ रहैं, ऐसी कृपा आप करैं कि कोई अङ्ग मेरा निर्बल (क्षीण) और रोगयुक्त न हो तथा शत (१००) वर्ष से अधिक भी आप कृपा करैं कि शत (१००) वर्ष के उपरान्त भी हम देखैं, जीवैं, सुनैं, कहैं और स्वाधीन ही रहैं ॥ ३७ ॥

मूल प्रार्थना

या ते धामा॑नि पर॒माणि॒ याव॒मा या म॑ध्य॒मा वि॑श्वकर्मन्नु॒तेमा । शिक्षा सखिभ्यो ह॒विषि॑ स्वधावः स्व॒यं य॑जस्व त॒न्वं॑ वृधा॒नः ॥३८॥ यजु० १७।२१॥

व्याख्यान

हे सर्वविधायक विश्वकर्मन्नीश्वर ! जो तुम्हारे सुरचित उत्तम, मध्यम, निकृष्ट त्रिविध धाम (लोक) हैं उन सब लोकों की शिक्षा हम आपके सखाओं को कर यथार्थविद्या होने से सब लोकों में सदा सुखी ही रहैं तथा इन लोकों के "हविषि" दान और ग्रहण व्यवहार में हम लोग चतुर हों, हे "स्वधावः" स्वसामर्थ्यादि धारण करने वाले ! हमारे शरीरादि पदार्थों को आप ही बढ़ाने वाले हैं "यजस्व" हमारे लिये विद्वानों का सत्कार, सब सज्जनों के सुखादि की संगति, विद्यादि गुणों का दान आप स्वयं करो, आप अपनी उदारता से ही हमको सब सुख दीजिये किञ्च हम लोग तो आपके प्रसन्न करने में कुछ भी समर्थ नहीं हैं, सर्वथा आपके अनुकूल वर्त्तमान नहीं कर सकते परन्तु आप तो अधमोद्धारक हैं इससे हमको स्वकृपा से सुखी करैं ॥ ३८ ॥

मूल स्तुति

यन्मे॑ छि॒द्रं चक्षु॑षो हृद॑यस्य॒ मन॑सो॒ वाति॑तृण्णं॒ बृह॒स्पति॑र्मे॒ तद्द॑धातु । शं नो॑ भवतु॒ भुव॑नस्य॒ यस्पतिः॑ ॥ ३९ ॥ यजु० ३६ । २ ॥

व्याख्यान

हे सर्वसन्धायकेश्वर ! मेरे चक्षु (नेत्र), हृदय (प्राणात्मा), मन, बुद्धि, विज्ञान, विद्या और सब इन्द्रिय द्वेष, इनके छिद्र, निर्बलता, राग, चाञ्चल्य यद्वा मन्दत्वादि विकार इनका निवारण (निर्मूल) करके सत्य धर्मादि में स्थापित आप ही करो क्योंकि आप बृहस्पति (सब से बड़े) हो सो अपनी

बड़ाई की ओर देख के इस बड़े काम को आप अवश्य करैं जिससे हम लोग आप और आपकी आज्ञा के सेवन में यथार्थ तत्पर हों मेरे सब छिद्रों को आप ही ढांकें, आप सब भुवनों के पति हैं इसलिये आप से बारम्बार प्रार्थना हम लोग करते हैं कि सब दिन हम लोगों पर कृपादृष्टि से कल्याणकारक हों, हे परमात्मन् ! आपके विना हमारा कल्याणकारक कोई नहीं है, हमको आपका ही सब प्रकार का भरोसा है सो आप ही पूरा करेंगे ॥ ३९ ॥

मूल प्रार्थना

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत सन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन् पर एकमाहुः ॥ ४० ॥ यजु० १७।२६ ॥

व्याख्यान

सर्वज्ञ सर्वरचक ईश्वर विश्वकर्मा (विविधजगदुत्पादक) है तथा "विमनाः" विविध (अनन्त) विज्ञानवाला है, तथा "आद्विहाया" सर्वव्यापक और आकाशवत् निर्विकार अक्षोभ्य सर्वाधिकरण है, वही सब जगत् का "धाता" धारणकर्त्ता है "विधाता" विविध विचित्र जगत् का उत्पादक है तथा "परम, उत" सर्वोत्कृष्ट है "सन्दृक्" यथावत् सब के पाप और पुण्यों को देखने वाला है, जो मनुष्य उसी ईश्वर की भक्ति, उसी में विश्वास और उसी का सत्कार (पूजा) करते हैं उसको छोड़ के अन्य किसी को लेशमात्र भी नहीं मानते उन पुरुषों को ही सब इष्ट सुख मिलते हैं औरों को नहीं, वह ईश्वर अपने भक्तों को सुख में ही रखता है और वे भक्त सम्यक् स्वेच्छापूर्वक "मदन्ति" परमानन्द में ही रहते हैं दुःख को नहीं प्राप्त होते, वह परमात्मा एक अद्वितीय है जिस परमात्मा के सामर्थ्य में सप्त अर्थात् पंच प्राण, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सब प्रलयविषयक कारणभूत ही रहते हैं, वही जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में निर्विकार आनन्दस्वरूप रहता है उसी की उपासना करने से हम सदा सुख में रह सकते हैं ॥ ४० ॥

मूल स्तुति

चतु॑: स्रक्तिर्नाभिर्ऋ॒तस्य॑ स॒प्रथा॑: स नो॑ वि॒श्वायु॑: स॒प्रथा॑: स न॑: स॒र्वायु॑: स॒प्रथा॑: । अप॒ द्वेषो॒ऽअप॒ ह्वरो॒ऽन्यव्र॑तस्य सश्चिम ॥ ४१ ॥ यजु० ३८ । २० ॥

व्याख्यान

हे महावैद्य ! सर्वरोगनाशकेश्वर ! चार कोणवाली नाभि (मर्मस्थान) ऋतु की भरी नैरोग्य और विज्ञान का घर "सप्रथाः" विस्तीर्ण सुखयुक्त आपकी कृपा से हों तथा आपकी कृपा से "विश्वायुः" पूर्ण आयु हो, आप जैसे सर्व-सामर्थ्य-विस्तीर्ण हो वैसे ही विस्तृत सुख से विस्तारसहित सर्वायु हम को दीजिये, हे ईश ! हम "अपद्वेषः" द्वेषरहित आपकी कृपा से तथा "अपह्वरः" चलन (कम्पन) रहित हों, आपकी आज्ञा और आप से भिन्न को लेशमात्र भी ईश्वर न मानें, यही हमारा व्रत है इससे अन्य व्रत को कभी न मानें किन्तु आपको "सश्चिम" सदा सेवें यही हमारा परमनिश्चय है इस परमनिश्चय की रक्षा आप ही कृपा से करें ॥ ४१ ॥

मूल प्रार्थना

यो न॑: पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ । यो दे॒वानां॑ नाम॒धा एक॑ ए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या ॥ ४२ ॥ यजु० १७ । २७ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! जो अपना पिता (नित्य पालन करनेवाला) जनिता (जनक) उत्पादक "विधाता" सब मोक्षसुखादि कामों का विधायक (सिद्धि-कर्त्ता) "विश्वा" सब भुवन लोकलोकान्तर धाम अर्थात् स्थिति के स्थानों को यथावत् जाननेवाला सब जातमात्र भूतों में विद्यमान है जो दिव्य सूर्यादिलोक

तथा इन्द्रियादि और विद्वानों का नाम व्यवस्थादि करनेवाला एक अद्वितीय वही है अन्य कोई नहीं, वही स्वामी और पितादि हम लोगों का है इसमें शंका नहीं रखनी तथा उसी परमात्मा के सम्यक् प्रश्नोत्तर करने में विद्वान् वेदादि शास्त्र और प्राणीमात्र प्राप्त हो रहे हैं क्योंकि सब पुरुषार्थ यही है कि परमात्मा, उसकी आज्ञा और उसके रचे जगत् का यथार्थ से निश्चय (ज्ञान) करना उसी से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार प्रकार के पुरुषार्थ के फलों की सिद्धि होती है अन्यथा नहीं इस हेतु से तन, मन, धन और आत्मा इनसे प्रयत्नपूर्वक ईश्वर के साहाय्य से सब मनुष्यों को धर्मादि पदार्थों की यथावत् सिद्धि अवश्य करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

मूल स्तुति

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४३ ॥ यजु० ३४ । १ ॥

व्याख्यान

हे धर्म्मनिरुपद्रव परमात्मन् ! मेरा मन सदा शिवसंकल्प धर्म कल्याण संकल्पकारी ही आपकी कृपा से हो कभी अधर्मकारी न हो, वह मन कैसा है ? कि जागता हुआ पुरुष का दूर २ जाता आता है, दूर जाने का जिसका स्वभाव ही है, अग्नि, सूर्यादि, श्रोत्रादि इन्द्रिय, इन ज्योतिप्रकाशकों का भी ज्योतिप्रकाशक है, अर्थात् मन के विना किसी पदार्थ का प्रकाश कभी नहीं होता, वह एक बड़ा चञ्चल वेगवाला मन आपकी कृपा से स्थिर, शुद्ध, धर्मात्मा, विद्यायुक्त हो सकता है "दैवम्" देव (आत्मा का) मुख्यसाधक भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानकाल का ज्ञाता है, वह आपके वश में ही है उसको आप हमारे वश में यथावत् करें जिससे हम कुकर्म्म में कभी न फसें, सदैव विद्या, धर्म्म और आपकी सेवा में ही रहें ॥ ४३ ॥

मूल प्रार्थना

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव । नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥ ४४ ॥ यजु० १७ । ३१ ॥

व्याख्यान

हे जीवो ! जो परमात्मा इन सब भुवनों का बनानेवाला विश्वकर्मा है उसको तुम लोग नहीं जानते हो, इसी हेतु से तुम "नीहारेण" अत्यन्त अविद्या से आवृत मिथ्यावाद नास्तिकत्व बकवाद करते हो इससे दुःख ही तुमको मिलेगा सुख नहीं, तुम लोग "असुतृपः" केवल स्वार्थसाधक प्राणपोषणमात्र में ही प्रवृत्त हो रहे हो "उक्थशासश्चरन्ति" केवल विषय भोगों के लिये ही अवैदिककर्म करने में प्रवृत्त हो रहे हो और जिसने ये सब भुवन रचे हैं उस सर्वशक्तिमान् न्यायकारी परब्रह्म से उलटे चलते हो अतएव उसको तुम नहीं जानते । (प्रश्न) वह ब्रह्म और हम जीवात्मा लोग ये दोनों एक हैं वा नहीं ? (उत्तर) "यद्युष्माकमन्तरं बभूव" ब्रह्म और जीव की एकता वेद और युक्ति से सिद्ध कभी नहीं हो सकती, क्योंकि जीव ब्रह्म का पूर्व से ही भेद है, जीव अविद्या आदि दोषयुक्त है ब्रह्म अविद्यादि दोषयुक्त नहीं है इससे यह निश्चित है कि जीव और ब्रह्म एक न थे, न होंगे और न हैं, किंच व्याप्यव्यापक, आधाराधेय, सेव्यसेवकादि सम्बन्ध तो जीव के साथ ब्रह्म का है, इससे जीव ब्रह्म की एकता मानना किसी मनुष्य को योग्य नहीं ॥ ४४ ॥

मूल स्तुति

भग एव भगवाँ२॥ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम । तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुर एता भवेह ॥४५॥ यजु० ३४ । ३८॥

व्याख्यान

हे सर्वाधिपते ! महाराजेश्वर ! आप भग परमैश्वर्यस्वरूप होने से भगवान्

हो, हे (देवाः) विद्वानो ! "तेन" (भगवता प्रसन्नेश्वरसहायेन) उस भगवान् प्रसन्न ईश्वर के सहाय से हम लोग परमैश्वर्ययुक्त हों, हे "भग" परमेश्वर सर्व संसार "तन्त्वा" उन आप को ही ग्रहण करने को अत्यन्त इच्छा करता है, क्योंकि कौन ऐसा भाग्यहीन मनुष्य है जो आपको प्राप्त होने की इच्छा न करे, सो आप हमको प्रथम से प्राप्त हों फिर कभी हमसे आप और ऐश्वर्य अलग न हो, आप अपनी कृपा से इसी जन्म में परमैश्वर्य का यथावत् भोग हम लोगों को करावें, परजन्म में तो कर्मानुसार फल होता भी है तथा आपकी सेवा में हम नित्य तत्पर रहैं ॥ ४५ ॥

मूल प्रार्थना

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ ४६ ॥ यजु० २३ । १९ ॥

व्याख्यान

हे समूहाधिपते ! आप मेरे सब समूहों के पति होने से आपको गणपति नाम से ग्रहण करता हूं तथा मेरे प्रिय कर्मकारी पदार्थ और जनों के पालक भी आप ही हैं, इससे आपको प्रियपति मैं अवश्य जानूं, इसी प्रकार मेरी सब निधियों के पति होने से आपको मैं निश्चित निधिपति जानूं, हे "वसो" सब जगत् को जिस सामर्थ्य से उत्पन्न किया है उस अपने सामर्थ्य का धारण और पोषण करने वाला आपको ही मैं जानूं, सब का कारण आपका सामर्थ्य है यही सब जगत् का धारण और पोषण करता है यह जीवादि जगत् तो जन्मता और मरता है परन्तु आप सदैव अजन्मा और अमृतस्वरूप हैं, आपकी कृपा से अधर्म, अविद्या, दुष्टभावादि को "अजानि" दूर फेंकूं तथा हम सब लोग आप की ही "हवामहे" अत्यन्त स्पर्धा (प्राप्ति की इच्छा) करते हैं, सो

आप अब शीघ्र हमको प्राप्त होओ जो प्राप्त होने में आप थोड़ा भी विलम्ब करेंगे तो हमारा कुछ भी ठिकाना न लगेगा ॥ ४६ ॥

मूल प्रार्थना

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् । इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ४७ ॥ यजु० १ । ५ ॥

व्याख्यान

हे सच्चिदानन्द स्वप्रकाशरूप ईश्वराग्ने ! ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास आदि सत्यव्रतों का आचरण मैं करूंगा सो इस व्रत को आप कृपा से सम्यक् सिद्ध करें तथा मैं अनृत अनित्य देहादि पदार्थों से पृथक् हो के इस यथार्थ सत्य जिसका कभी व्यभिचार विनाश नहीं होता उस विद्यादिलक्षण धर्म को प्राप्त होता हूं इस मेरी इच्छा को आप पूरी करें जिससे मैं सभ्य विद्वान् सत्याचरणी आपकी भक्तियुक्त धर्मात्मा होऊं ॥ ४७ ॥

मूल स्तुति

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ४८ ॥ यजु० २५ । १३ ॥

व्याख्यान

हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अपने लोगों को "आत्मदाः" आत्मा का देनेवाला तथा आत्मज्ञानादि का दाता है जीवप्राणदाता तथा "बलदाः" त्रिविध बल—एक मानस विज्ञान बल, द्वितीय इन्द्रियबल अर्थात् श्रोत्रादि की स्वस्थता तेजोवृद्धि, तृतीय शरीरबल महापुष्टि दृढाङ्गता और वीर्यादि वृद्धि इन तीनों बलों

का जो दाता है जिसके "प्रशिषम्" अनुशासन (शिक्षामर्यादा) को यथावत् विद्वान् लोग मानते हैं सब प्राणी और अप्राणी जड़ चेतन विद्वान् वा मूर्ख उस परमात्मा के नियमों को कोई कभी उल्लङ्घन नहीं कर सकता जैसे कि कान से सुनना, आंख से देखना इसको उलटा कोई नहीं कर सकता है, जिसकी छाया—आश्रय ही अमृतविज्ञानी लोगों का मोक्ष कहाता है तथा जिसकी अछाया (अकृपा) दुष्टजनों के लिये वारम्बार मरण और जन्मरूप महाक्लेशदायक है, हे सज्जन मित्रो ! वही एक परमसुखदायक पिता है आओ अपने सब मिल के प्रेम, विश्वास और भक्ति करैं, कभी उसको छोड़ के अन्य को उपास्य न मानैं वह अपने को अत्यन्त सुख देगा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४८ ॥

मूल स्तुति

उप॑हूता इ॒ह गाव॒ उप॑हूता अ॒जाव॑यः । अथो॒ऽन्न॑स्य की॒लाल॒ उप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः । क्षेमा॑य व॒: शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳश॒ग्मꣳशंयोः॒ शंयोः॑ ॥ ४९ ॥ यजु० ३ । ४३ ॥

व्याख्यान

हे पश्वाधिपते ! महात्मन् ! आपकी ही कृपा से उत्तम २ गाय, भैंस, घोड़े, हाथी, बकरी, भेड़ तथा उपलक्षण से अन्य सुखदायक पशु और अन्न सर्वरोगनाशक औषधियों का उत्कृष्ट रस "नः" हमारे घरों में नित्य स्थिर (प्राप्त) रख जिससे किसी पदार्थ के विना हमको दुःख न हो, हे विद्वानो ! "वः" (युष्माकम्) तुम्हारे संग और ईश्वर की कृपा से क्षेमकुशलता और शान्ति तथा सर्वोपद्रव-विनाश के लिये "शिवम्" मोक्षसुख "शग्मम्" और इस संसार के सुख को मैं यथावत् प्राप्त होऊं, मोक्षसुख और प्रजा-सुख इन दोनों की कामना करनेवाला जो मैं हूं उन मेरी उक्त दोनों कामनाओं को आप यथावत् शीघ्र पूरी कीजिये, आपका यही स्वभाव है कि अपने भक्तों की कामना अवश्य पूरी करना ॥ ४९ ॥

मूल प्रार्थना

तमीशा॑नं जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियञ्जि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम् । पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सामस॒द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥५०॥ यजु० २५ । १८॥

व्याख्यान

हे सुख और मोक्ष की इच्छा करनेवाले जनो ! उस परमात्मा को ही "हूमहे" हम लोग प्राप्त होने के लिये अत्यन्त स्पर्धा करते हैं कि उसको हम कब मिलेंगे क्योंकि वह ईशान (सब जगत् का स्वामी) है और ईशन (उत्पादन) करने की इच्छा करनेवाला है दो प्रकार का जगत् है अर्थात् चर और अचर इन दोनों प्रकार के जगत् का पालन करनेवाला वही है, "धियञ्जिन्वम्" विज्ञानमय, विज्ञानप्रद और तृप्तिकारक ईश्वर से अन्य कोई नहीं है, उसको "अवसे" अपनी रक्षा के लिये हम स्पर्धा (इच्छा) से आह्वान करते हैं जैसे वह ईश्वर "पूषा" हमारे लिये पोषणप्रद है वैसे ही "वेदसाम्" धन और विज्ञानों की वृद्धि के "रक्षिता" रक्षक हैं तथा "स्वस्तये" निरुपद्रवता के लिये हमारा "पायुः" पालक वही है और "अदब्धः" हिंसारहित है इसलिये ईश्वर जो निराकार सर्वानन्दप्रद है, हे मनुष्यो ! उसको मत भूलो, विना उसके कोई सुख का ठिकाना नहीं है ॥ ५० ॥

मूल स्तुति

मयी॒दमिन्द्र॑ इन्द्रि॒यं द॑धात्व॒स्मान् रायो॑ म॒घवा॑नः सचन्ताम् । अ॒स्माक॑ꣳ सन्त्वा॒शिष॑ः स॒त्या न॑ः सन्त्वा॒शिष॑ः ॥ ५१ ॥ यजु० २ । १० ॥

व्याख्यान

हे "इन्द्र" परमैश्वर्यवन् ईश्वर ! "मयि" मुझ में विज्ञानादि शुद्ध इन्द्रिय "रायः" और उत्तम धन को "मघवानः" परम धनवान् आप "सचन्ताम्" सद्यः

प्राप्त करो, हे सर्व काम पूर्ण करनेवाले ईश्वर ! आपकी कृपा से हमारी आशा सत्य ही होनी चाहिये, (पुनरुक्त अत्यन्त प्रेम और त्वरा द्योतनार्थ है) हे भगवन् ! हम लोगों की इच्छा आप शीघ्र ही सत्य कीजिये जिससे हमारी न्याययुक्त इच्छा के सिद्ध होने से हम लोग परमानन्द में सदा रहैं ॥ ५१ ॥

मूल प्रार्थना

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म् । स॒निं मे॒धाम॑याशिष॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ ५२ ॥ यजु० ३२ । १३ ॥

व्याख्यान

हे सभापते ! विद्यामय न्यायकारिन् सभासद् सभाप्रिय सभा ही हमारा राजा न्यायकारी हो ऐसी इच्छावाले आप हमको कीजिये किसी एक मनुष्य को हम लोग राजा कभी न मानें किन्तु आपको ही हम सभापति सभाध्यक्ष राजा मानें, आप अद्भुत आश्चर्य विचित्र, शक्तिमय हैं तथा प्रियस्वरूप ही हैं, इन्द्र जो जीव उसको कमनीय (कामना के योग्य) आप ही हैं, "सनिम्" सम्यक् भजनीय और सेव्य भी जीवों के आप ही हैं मेधा अर्थात् विद्या सत्यधर्मादि धारणावाली बुद्धि को हे भगवन् ! मैं याचता हूं सो आप कृपा करके मुझ को देओ "स्वाहा" यही स्वकीय वाक् आह कहती है कि एक ईश्वर से भिन्न कोई जीवों को सेव्य नहीं है । यही वेद में ईश्वराज्ञा है सो सब मनुष्यों को मानना अवश्य योग्य है ॥ ५२ ॥

मूल स्तुति

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते । तया॒ माम॒द्य मे॒धयाग्ने॑ मे॒धावि॑नं कुरु॒ स्वाहा॑ ॥ ५३ ॥ यजु० ३२ । १४ ॥

व्याख्यान

हे सर्वज्ञाग्ने परमात्मन् ! जिस विज्ञानवती यथार्थ धारणावाली बुद्धि को देव (विद्वानों) के वृन्द "उपासते" (धारण करते) हैं तथा यथार्थ पदार्थ-विज्ञानवाले पितर जिस बुद्धि के उपाश्रित होते हैं उस बुद्धि के साथ इसी समय कृपा से मुझ को मेधावी कर "स्वाहा" इसको आप अनुग्रह और प्रीति से स्वीकार कीजिये जिससे मेरी जड़ता सब दूर हो ॥ ५३ ॥

मूल प्रार्थना

मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः । मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा ॥ ५४ ॥ यजु० ३२ । १५ ॥

व्याख्यान

हे सर्वोत्कृष्टेश्वर ! आप "वरुणः" वर (वरणीय) आनन्दस्वरूप हो कृपा से मुझको मेधा सर्वविद्यासम्पन्न बुद्धि दीजिये तथा "अग्निः" विज्ञानमय विज्ञानप्रद "प्रजापतिः" सब संसार के अधिष्ठाता पालक "इन्द्रः" परमैश्वर्य-वान् "वायुः" विज्ञानवान् अनन्तबल "धाता" तथा सब जगत् का धारण और पोषण करनेवाले आप मुझको अत्युत्तम मेधा (बुद्धि) दीजिये * ॥ ५४ ॥

मूल स्तुति

इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम् । मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा ॥ ५५ ॥ यजु० ३२ । १६ ॥

* अनेक वार मांगना ईश्वर से अत्यन्त प्रीतिद्योतनार्थ सद्यःदानार्थ है बुद्धि से उत्तम पदार्थ कोई नहीं है उसके होने से जीव को सब सुख होते हैं इस हेतु से वारम्बार पर-मात्मा से बुद्धि की ही याचना करनी श्रेष्ठ बात है ॥

व्याख्यान

हे महाविद्य महाराज सर्वेश्वर ! मेरा ब्रह्म (विद्वान्) और क्षत्र (राजा, राज्य, महाचतुर न्यायकारी शूरवीर राजादि क्षत्रिय) ये दोनों आपकी अनन्त कृपा से यथावत् अनुकूल हों "श्रियम्" सर्वोत्तम विद्यादिलक्षणयुक्त महाराज्य श्री को हम प्राप्त हों । हे "देवाः" विद्वानो ! दिव्य ईश्वर गुण परमकृपा आदि उत्तम विद्यादि लक्षण समन्वित श्री को मुझ में अचलता से धारण कराओ उसको मैं अत्यन्त प्रीति से स्वीकार करूं और उस श्री को विद्यादि सद्गुण वा सर्व संसार के हित के लिये तथा राज्यादि प्रबन्ध के लिये व्यय करूं ॥५५॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याणां श्रीयुत विरजानन्दसरस्वती-
स्वामिनां महाविदुषां शिष्येण दयानन्दसरस्वतीस्वामिना
विरचित आर्याभिविनये द्वितीयः प्रकाशः सम्पूर्णः ॥

समाप्तश्चाऽयङ्ग्रन्थः ॥

शताब्दी-संस्करण



महर्षि का चित्र पण्डित भगवद्दत्तजी द्वारा प्राप्त

वादक-यन्त्रालय, अजमेर.

शताब्दी-संस्करण

सत्यार्थप्रकाश:

पृष्ठ ७७—७९६.

सत्यार्थप्रकाशः

—:o:—

आवृत्ति		सन् ई०		संख्या
प्रथम	...	१८७५	...	१०००
द्वितीय	...	१८८४	...	२०००
तृतीय	...	१८८७	...	३०००
चतुर्थ	...	१८९२	...	५०००
पंचम	...	१८९७	...	५०००
षष्ठ	...	१९०२	...	५०००
सप्तम	...	१९०५	...	५०००
अष्टम	...	१९०७	...	५०००
नवम	...	१९०९	...	६०००
दशम	...	१९११	...	६०००
एकादश	...	१९१३	...	६०००
द्वादश	...	१९१४	...	६०००
त्रयोदश	...	१९१६	...	४०००
चतुर्दश	...	१९१७	...	६०००
पंचदश	...	१९२२	...	५०००
षोडश	...	१९२४	...	५०००
शताब्दीसंस्करण		१९२४	...	१०,०००
				८५,०००

ओ३म्

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

अथ सत्यार्थप्रकाशस्य भूमिका

जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश" बनाया था उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठनपाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास होगया है इसलिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है। कहीं कहीं शब्द, वाक्य, रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां जो प्रथम छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक ठीक करदी गई है॥

यह ग्रन्थ १४ चौदह समुल्लास अर्थात् चौदह विभागों में रचा गया है। इस में १० दश समुल्लास पूर्वार्ध और ४ चार उत्तरार्ध में बने हैं, परन्तु अन्त्य के दो समुल्लास और पश्चात् स्वसिद्धान्त किसी कारण से प्रथम नहीं छप सके थे अब वे भी छपवा दिये हैं॥

प्रथम समुल्लास में ईश्वर के ओंकारादि नामों की व्याख्या।

द्वितीय समुल्लास में सन्तानों की शिक्षा।

तृतीय समुल्लास में ब्रह्मचर्य, पठनपाठन व्यवस्था, सत्यासत्य ग्रन्थों के नाम और पढ़ने पढ़ाने की रीति।

चतुर्थ समुल्लास में विवाह और गृहाश्रम का व्यवहार ।
पञ्चम समुल्लास में वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम की विधि ।
छठे समुल्लास में राजधर्म ।
सप्तम समुल्लास में वेदेश्वर विषय ।
अष्टम समुल्लास में जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय ।
नवम समुल्लास में विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष की व्याख्या ।
दशवें समुल्लास में आचार, अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय ।
एकादश समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर का खण्डन मण्डन विषय ।
द्वादश समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध और जैनमत का विषय ।
त्रयोदश समुल्लास में ईसाईमत का विषय ।
चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत का विषय ।

और चौदह समुल्लासों के अन्त में आर्य्यों के सनातन वेदविहित मत की विशेषतः व्याख्या लिखी है जिसको मैं भी यथावत् मानता हूं ॥

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है । वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है । जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता इसीलिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेखद्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित करदें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहैं । मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जाननेवाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक

जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्यजाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें क्योंकि सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है ॥

इस ग्रन्थ में जो कहीं २ भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाय उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायगा और जो कोई पक्षपात से अन्यथा शंका वा खण्डन मण्डन करेगा उस पर ध्यान न दिया जायगा। हां जो वह मनुष्यमात्र का हितैषी होकर कुछ जनावेगा उसको सत्य सत्य समझने पर उसका मत संगृहीत होगा। यद्यपि आजकल बहुतसे विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो २ बातें सबके अनुकूल सब में सत्य हैं उनका ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उनका त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्त्तें वर्त्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे। क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है इस हानि ने जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है सब मनुष्यों को दुःखसागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में धर प्रवृत्त होता है उससे स्वार्थी लोग विरोध करने में तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते हैं। परन्तु "सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः" अर्थात् सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है, इस दृढ़ निश्चय के आलम्बन से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हटते। यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि "यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्" यह गीता का वचन है इसका अभिप्राय यह है कि जो २ विद्या और धर्मप्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं ऐसी बातों को चित्त में धर के मैंने इस ग्रन्थ को रचा है। श्रोता वा पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के

इस ग्रन्थ का सत्य २ तात्पर्य जानकर यथेष्ट करें । इसमें यह अभिप्राय रक्खा गया है कि जो २ सब मतों में सत्य २ बातें हैं वे २ सब में अविरुद्ध होने से उनका स्वीकार करके जो २ मतमतान्तरों में मिथ्या बातें हैं उन २ का खण्डन किया है । इसमें यह भी अभिप्राय रक्खा है कि जब मतमतान्तरों की गुप्त वा प्रकट बुरी बातों का प्रकाश कर विद्वान् अविद्वान् सब साधारण मनुष्यों के सामने रक्खा है, जिससे सब से सब का विचार होकर परस्पर प्रेमी हो के एक सत्य मतस्थ होवें । यद्यपि मैं आर्यावर्त्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूं तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूं वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नतिवालों के साथ भी वर्त्तता हूं जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूं वैसा विदेशियों के साथ भी तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है क्योंकि मैं भी जो किसी एक का पक्षपाती होता तो जैसे आज कल के स्वमत की स्तुति, मण्डन और प्रचार करते और दूसरे मत की निन्दा, हानि, और बन्द करने में तत्पर होते हैं वैसे मैं भी होता, परन्तु ऐसी बातें मनुष्यपन से बाहर हैं । क्योंकि जैसे पशु बलवान् होकर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं । जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभावयुक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं । और जो बलवान् होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश होकर परहानिमात्र करता रहता है वह जानों पशुओं का भी बड़ा भाई है । अब आर्यावर्त्तियों के विषय में विशेष कर ११ ग्यारहवें समुल्लास तक लिखा है । इन समुल्लासों में जो कि सत्यमत प्रकाशित किया है वह वेदोक्त होने से मुझको सर्वथा मन्तव्य है । और जो नवीन पुराण तन्त्रादि ग्रन्थोक्त बातों का खण्डन किया है वे त्यक्तव्य हैं । जो १२ बारहवें समुल्लास में (दर्शाया) चार्वाक का मत यद्यपि इस समय क्षीणास्तसा है और यह चार्वाक बौद्ध जैन से बहुत संम्बन्ध अनीश्वरवादादि में रखता है, यह चार्वाक सब से बड़ा नास्तिक है । उसकी चेष्टा का रोकना अवश्य है क्योंकि जो मिथ्या बात न रोकी जाय तो संसार में बहुतसे अनर्थ प्रवृत्त हो जायँ चार्वाक का जो मत है वह तथा बौद्ध और जैन का जो मत है वह

भी १२ वें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है और बौद्धों तथा जैनियों का भी चार्वाक के मत के साथ मेल है और कुछ थोड़ासा विरोध भी है और जैन भी बहुतसे अंशों में चार्वाक और बौद्धों के साथ मेल रखता है और थोड़ी सी बातों में भेद है। इसलिये जैनों की भिन्न शाखा गिनी जाती है वह भेद १२ बारहवें समुल्लास में लिख दिया है यथायोग्य वहीं समझ लेना जो इसका भेद है सो २ बारहवें समुल्लास में दिखलाया है बौद्ध और जैन मत का विषय भी लिखा है। इनमें से बौद्धों के दीपवंशादि प्राचीन ग्रन्थों में बौद्धमतसंग्रह सर्वदर्शनसंग्रह में दिखलाया है उसमें से यहां लिखा है और जैनियों के निम्नलिखित सिद्धान्तों के पुस्तक हैं उनमें से चार मूल सूत्र, जैसे—१ आवश्यकसूत्र, २ विशेष आवश्यकसूत्र, ३ दशवैकालिकसूत्र और ४ पाक्षिकसूत्र। ११ ग्यारह अङ्ग, जैसे—१ आचारांगसूत्र, २ सुगडांगसूत्र, ३ थाणांगसूत्र, ४ समवायांगसूत्र, ५ भगवतीसूत्र, ६ ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ७ उपासकदशासूत्र, ८ अन्तगड़दशासूत्र, ९ अनुत्तरोववाईसूत्र, १० विपाकसूत्र और ११ प्रश्नव्याकरणसूत्र, १२ बारह उपांग, जैसे—१ उपवाईसूत्र, २, रायपसेनीसूत्र, ३ जीवाभिगमसूत्र, ४ पन्नवणासूत्र, ५ जंबुद्वीपपन्नतीसूत्र, ६ चन्दपन्नतीसूत्र, ७ सूरपन्नतीसूत्र, ८ निरियाबलीसूत्र, ९ कप्पियासूत्र, १० कपबड़ीसयासूत्र, ११ पूप्पियासूत्र और १२ पुप्यचूलियासूत्र। ५ पांच कल्पसूत्र, जैसे—१ उत्तराध्ययनसूत्र, २ निशीथसूत्र, ३ कल्पसूत्र, ४ व्यवहारसूत्र और ५ जीतकल्पसूत्र। ६ छः छेद, जैसे—१ महानिशीथबृहद्वाचनासूत्र, २ महानिशीथलघुवाचनासूत्र, ३ मध्यमवाचनासूत्र, ४ पिंडनिरुक्तिसूत्र, ५ ओघनिरुक्तिसूत्र, ६ पर्य्यूषणासूत्र। १० दश पयन्नासूत्र, जैसे—१ चतुस्सरणसूत्र, २ पच्चखाणसूत्र, ३ तदुलवैयालिकसूत्र, ४ भक्तिपरिज्ञानसूत्र, ५ महाप्रत्याख्यानसूत्र, ६ चंदाविजयसूत्र, ७ गणीविजयसूत्र, ८ मरणसमाधिसूत्र, ९ देवेन्द्रस्तमनसूत्र और १० संसारसूत्र तथा नन्दीसूत्र, योगोद्धारसूत्र भी प्रामाणिक मानते हैं। ५ पञ्चाङ्ग, जैसे—१ पूर्व सब ग्रन्थों की टीका, २ निरुक्ति, ३ चरणी, ४ भाष्य, ये चार अवयव और सब मूल मिलके पंचांग कहाते हैं, इनमें ढूंढिया अवयवों को नहीं मानते और इनसे भिन्न भी अनेक ग्रन्थ हैं कि जिनको जैनी लोग मानते हैं। इनके मत पर विशेष विचार १२ बारहवें

समुल्लास में देख लीजिये। जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं और इनका यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत वाले के हाथ में हो वा छपा हो तो कोई २ उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं यह बात उनकी मिथ्या है क्योंकि जिसको कोई माने कोई नहीं इससे वह ग्रन्थ जैनमत से बाहर नहीं हो सकता। हां! जिसको कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो तब तो अग्राह्य हो सकता है परन्तु ऐसा कोई ग्रन्थ नहीं है कि जिसको कोई भी जैनी न मानता हो इसलिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषयक खण्डन मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है। परन्तु कितने ही ऐसे भी हैं कि उस ग्रन्थ को मानते जानते हों तो भी सभा वा संवाद में बदल जाते हैं इसी हेतु से जैन लोग अपने ग्रन्थों को छिपा रखते हैं। दूसरे मतस्थ को न देते न सुनाते और न पढ़ाते इसलिये कि उनमें ऐसी २ असम्भव बातें भरी हैं जिनका कोई भी उत्तर जैनियों में से नहीं दे सकता। झूठ बात का छोड़ देना ही उत्तर है॥

१३ वें समुल्लास में ईसाइयों का मत लिखा है। ये लोग बायबिल को अपना धर्मपुस्तक मानते हैं। इनका विशेष समाचार उसी १३ तेरहवें समुल्लास में देखिये और १४ चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों के मत के विषय में लिखा है ये लोग कुरान को अपने मत का मूल पुस्तक मानते हैं। इन का भी विशेष व्यवहार १४ वें समुल्लास में देखिये। और इसके आगे वैदिक मत के विषय में लिखा है जो कोई इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा क्योंकि वाक्यार्थबोध में चार कारण होते हैं, आकाङ्क्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य। जब इन चारों बातों पर ध्यान देकर जो पुरुष ग्रन्थ को देखता है तब उसको ग्रन्थ का अभिप्राय यथायोग्य विदित होता है। "आकाङ्क्षा" किसी विषय पर वक्ता की और वाक्यस्थपदों की आकांक्षा परस्पर होती है। "योग्यता" वह कहाती है कि जिससे जो होसके जैसे जल से सींचना। "आसत्ति" जिस पद के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसी के समीप उस पद को बोलना वा लिखना। "तात्पर्य"

जिसके लिये वक्ता ने शब्दोच्चारण वा लेख किया हो उसी के साथ उस वचन वा लेख को युक्त करना । बहुतसे हठी दुराग्रही मनुष्य होते हैं कि जो वक्ता के अभिप्राय से विरुद्ध कल्पना किया करते हैं । विशेष कर मत वाले लोग क्योंकि मत के आग्रह से उनकी बुद्धि अन्धकार में फंस के नष्ट हो जाती है इसलिये जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देखकर उनमें से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य-जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूं, वैसा सब को करना योग्य है । इन मतों के थोड़े २ ही दोष प्रकाशित किये हैं जिनको देखकर मनुष्य लोग सत्यासत्य मत का निर्णय कर सकें और सत्य का ग्रहण तथा असत्य का त्याग करने कराने में समर्थ होवें । क्योंकि एक मनुष्यजाति में बहका कर विरुद्ध बुद्धि कराके एक दूसरे को शत्रु बना लड़ा मारना विद्वानों के स्वभाव से बहिः है । यद्यपि इस ग्रन्थ को देखकर अविद्वान् लोग अन्यथा ही विचारेंगे तथापि बुद्धिमान् लोग यथायोग्य इसका अभिप्राय समझेंगे, इसलिये मैं अपने परिश्रम को सफल समझता और अपना अभिप्राय सब सज्जनों के सामने धरता हूं । इसको देख दिखला के मेरे श्रम को सफल करें । और इसी प्रकार पक्षपात न करके सत्यार्थ का प्रकाश करना मुझ वा सब महाशयों का मुख्य कर्त्तव्य काम है । सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी सच्चिदानन्द परमात्मा अपनी कृपा से इस आशय को विस्तृत और चिरस्थायी करे ॥

॥ अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वराशिरोमणिषु ॥

॥ इति भूमिका ॥

स्थान महाराणाजी का उदयपुर, भाद्रपद शुक्लपक्ष संवत् १९३९.	(स्वामी) दयानन्दसरस्वती.

ओ३म्

सच्चिदानन्देश्वराय नमो नमः

अथ सत्यार्थप्रकाशः

प्रथमः समुल्लासः

ओम् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः॥ नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि सत्यं वदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारम्। ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः॥१॥

अर्थ—(ओ३म्) यह ओंकार शब्द परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम है क्योंकि इसमें जो अ, उ और म् तीन अक्षर मिलकर एक (ओम्) समुदाय हुआ है। इस एक नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं, जैसे—अकार से विराट्, अग्नि और विश्वादि। उकार से हिरण्यगर्भ, वायु और तेजसादि। मकार से ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञादि नामों का वाचक और ग्राहक है। उसका ऐसा ही वेदादि सत्यशास्त्रों में स्पष्ट व्याख्यान किया है कि प्रकरणानुकूल ये सब नाम परमेश्वर ही के हैं। (प्रश्न) परमेश्वर से भिन्न अर्थों के वाचक विराट् आदि नाम क्यों नहीं? ब्रह्माण्ड पृथिवी आदि भूत, इन्द्रादि देवता और वैद्यकशास्त्र में शुण्ठ्यादि ओषधियों के भी ये नाम हैं वा नहीं? (उत्तर) हैं, परन्तु परमात्मा के भी हैं। (प्रश्न) केवल देवों का ग्रहण इन नामों से करते हो वा नहीं? (उत्तर) आपके ग्रहण करने में क्या प्रमाण

है ? (प्रश्न) देव सब प्रसिद्ध और वे उत्तम भी हैं इससे मैं उनका ग्रहण करता हूं। (उत्तर) क्या परमेश्वर अप्रसिद्ध और उससे कोई उत्तम भी है ? पुनः ये नाम परमेश्वर के भी क्यों नहीं मानते ? जब परमेश्वर अप्रसिद्ध और उसके तुल्य भी कोई नहीं तो उससे उत्तम कोई क्योंकर हो सकेगा, इससे आपका यह कहना सत्य नहीं। क्योंकि आपके इस कहने में बहुतसे दोष भी आते हैं जैसे—"उपस्थितं परित्यज्यानुपस्थितं याचत इति बाधितन्यायः" किसी ने किसी के लिये भोजन का पदार्थ रख के कहा कि आप भोजन कीजिये और वह जो उसको छोड़ के अप्राप्त भोजन के लिये जहां तहां भ्रमण करे। उसको बुद्धिमान् न जानना चाहिये क्योंकि वह उपस्थित नाम समीप प्राप्त हुए पदार्थ को छोड़ के अनुपस्थित अर्थात् अप्राप्त पदार्थ की प्राप्ति के लिये श्रम करता है। इसलिये जैसा वह पुरुष बुद्धिमान् नहीं वैसा ही आप का कथन हुआ। क्योंकि आप उन विराट् आदि नामों के जो प्रसिद्ध प्रमाणसिद्ध परमेश्वर और ब्रह्माण्डादि उपस्थित अर्थों का परित्याग करके असम्भव और अनुपस्थित देवादि के ग्रहण में श्रम करते हैं। इसमें कोई भी प्रमाण वा युक्ति नहीं। जो आप ऐसा कहें कि जहां जिसका प्रकरण है वहां उसी का ग्रहण करना योग्य है, जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हे भृत्य ! त्वं सैन्धवमानय" अर्थात् तू सैन्धव को लेआ, तब उसको समय अर्थात् प्रकरण का विचार करना अवश्य है क्योंकि सैन्धव नाम दो पदार्थों का है एक घोड़े और दूसरे लवण का। जो स्वस्वामी का गमनसमय हो तो घोड़े और भोजन का काल हो तो लवण को ले आना उचित है। और जो गमनसमय में लवण और भोजनसमय में घोड़े को ले आवे तो उसका स्वामी उस पर क्रुद्ध होकर कहेगा कि तू निर्बुद्धि पुरुष है। गमनसमय में लवण और भोजनकाल में घोड़े के लाने का क्या प्रयोजन था ? तू प्रकरणवित् नहीं है नहीं तो जिस समय में जिसको लाना चाहिये था उसी को लाता। जो तुझ को प्रकरण का विचार करना आवश्यक था वह तूने नहीं किया, इससे तू मूर्ख है, मेरे पास से चला जा। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां जिसका ग्रहण करना उचित हो वहां उसी अर्थ का ग्रहण करना चाहिये तो ऐसा ही हम और आप सब लोगों को मानना और करना भी चाहिये॥

॥ अथ मन्त्रार्थः ॥

ओ३म् खम्ब्रह्म ॥ १ ॥ यजुः अ० ४० । मं० १७ ॥

देखिये वेदों में ऐसे २ प्रकरणों में 'ओम्' आदि परमेश्वर के नाम हैं।

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत ॥ २ ॥

छान्दोग्य उपनिषत् [मं० १]

ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम् ॥ ३ ॥

माण्डूक्य [मं० १]

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ ४ ॥

कठोपनिषदि [वल्ली २ । मं० १५]

प्रशासितारं सर्वेषामणीयांसमणोरपि ।
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ॥ ५ ॥
एतमग्निं वदन्त्येके मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेके परे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६ ॥

मनु० अ० १२ [श्लो० १२२ । १२३]

स ब्रह्मा स विष्णुः स रुद्रस्स शिवस्सोऽक्षरस्स परमः स्वराट् । स इन्द्रस्स कालाग्निस्स चन्द्रमाः ॥ ७ ॥ कैवल्य उपनिषत् ॥ इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यस्स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ ८ ॥

ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० ४६ ॥

भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री । पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥ ९ ॥

यजुः अ० १३ । मं० १८ ॥

इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्य्यमरोचयत् । इन्द्रेह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः ॥ १० ॥

सामवेद प्रपा० ६ । त्रिक ८ । मं० २ ॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे । यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥ ११ ॥ अथर्ववेदे काण्ड ११ । अ० २ । सू० ४ । मं० १ ॥

अर्थ—यहां इन प्रमाणों के लिखने में तात्पर्य यही है कि जो ऐसे २ प्रमाणों में ओङ्कारादि नामों से परमात्मा का ग्रहण होता है यह लिख आये। तथा परमेश्वर का कोई भी नाम अनर्थक नहीं, जैसे लोक में दरिद्री आदि के धनपति आदि नाम होते हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि कहीं गौणिक, कहीं कार्मिक और कहीं स्वाभाविक अर्थों के वाचक हैं। "ओम्" आदि नाम सार्थक ह जैसे (ओं खं०) "अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म" रक्षा करने से (ओं) आकाशवत् व्यापक होने से (खम्) और सब से बड़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है ॥ १ ॥ (ओमित्येत०) (ओ३म्) जिसका नाम है और जो कभी नष्ट नहीं होता उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं ॥ २ ॥ (ओमित्येत०) सब वेदादि शास्त्रों में परमेश्वर का प्रधान और निज नाम (ओ३म्) को कहा है अन्य सब गौणिक नाम हैं ॥ ३ ॥ (सर्वे वेदा०) क्योंकि सब वेद सब धर्मानुष्ठानरूप तपश्चरण जिसका कथन और मान्य करते और जिसकी प्राप्ति की इच्छा करके ब्रह्मचर्य्याश्रम करते हैं उसका नाम "ओम्" है ॥ ४ ॥

(प्रशासिता०) जो सब को शिक्षा देनेहारा, सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्वप्रकाश-स्वरूप, समाधिस्थ बुद्धि से जानने योग्य है, उसको परमपुरुष जानना चाहिये ॥५॥ और स्वप्रकाश होने से "अग्नि" विज्ञानस्वरूप होने से "मनु" सब का पालन करने से "प्रजापति" और परमैश्वर्य्यवान् होने से "इन्द्र" सब का जीवनमूल होने से "प्राण" और निरन्तर व्यापक होने से परमेश्वर का नाम "ब्रह्म" है ॥ ६ ॥ (स ब्रह्मा स विष्णुः०) सब जगत् के बनाने से "ब्रह्मा" सर्वत्र व्यापक होने से

"विष्णु" दुष्टों को दण्ड देके रुलाने से "रुद्र" मङ्गलमय और सब का कल्याणकर्त्ता होने से "शिव" "यः सर्वमश्नुते न क्षरति न विनश्यति तदक्षरम्" ॥ १ ॥ "यः स्वयं राजते स स्वराट्" ॥ २ ॥ "योऽग्निरिव कालः कलयिता प्रलयकर्त्ता स कालाग्निरीश्वरः" ॥ ३ ॥ (अक्षर) जो सर्वत्र व्याप्त अविनाशी (स्वराट्) स्वयं प्रकाशस्वरूप और (कालाग्नि०) प्रलय में सब का काल और काल का भी काल है इसलिये परमेश्वर का नाम कालाग्नि है ॥ ७ ॥ (इन्द्रं मित्रं) जो एक अद्वितीय सत्य ब्रह्म वस्तु है उसी के इन्द्रादि सब नाम हैं। "द्युषु शुद्धेषु पदार्थेषु भवो दिव्यः" "शोभनानि पर्णानि पालनानि पूर्णानि कर्माणि वा यस्य सः" "यो गुर्वात्मा स गरुत्मान्" "यो मातरिश्वा वायुरिव बलवान् स मातरिश्वा" (दिव्य) जो प्रकृत्यादि दिव्य पदार्थों में व्याप्त (सुपर्ण) जिसके उत्तम पालन और पूर्ण कर्म हैं (गरुत्मान्) जिसका आत्मा अर्थात् स्वरूप महान् है [मातरिश्वा] जो वायु के समान अनन्त बलवान् है इसलिये परमात्मा के दिव्य, सुपर्ण, गरुत्मान् और मातरिश्वा ये नाम हैं। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ८ ॥ (भूमिरसि०) "भवन्ति भूतानि यस्यां सा भूमिः" जिसमें सब भूत प्राणी होते हैं इसलिये ईश्वर का नाम "भूमि" है। शेष नामों का अर्थ आगे लिखेंगे ॥ ९ ॥ (इन्द्रो मह्ना०) इस मन्त्र में इन्द्र परमेश्वर ही का नाम है इसलिये यह प्रमाण लिखा है ॥ १० ॥ (प्राणाय) जैसे प्राण के वश सब शरीर और इन्द्रियां होती हैं वैसे परमेश्वर के वश में सब जगत् रहता है ॥ ११ ॥ इत्यादि प्रमाणों के ठीक ठीक अर्थों के जानने से इन नामों करके परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। क्योंकि (ओ३म्) और अग्न्यादि नामों के मुख्य अर्थ से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है। जैसा कि व्याकरण, निरुक्त, ब्राह्मण, सूत्रादि ऋषि मुनियों के व्याख्यानों से परमेश्वर का ग्रहण देखने में आता है वैसा ग्रहण करना सब को योग्य है। परन्तु "ओ३म्" यह तो केवल परमात्मा ही का नाम है और अग्नि आदि नामों से परमेश्वर के ग्रहण में प्रकरण और विशेषण नियमकारक हैं। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जहां २ स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध, सनातन और सृष्टिकर्त्ता आदि विशेषण लिखे हैं वहीं २ इन नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है। और जहां २ ऐसे प्रकरण हैं कि:—

ततो॑ वि॒राड॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः । श्रोत्रा॑द्वा॒युश्च॑ प्रा॒णश्च॒ मुखा॑द॒ग्निर॑जायत । तेन॑ दे॒वा अय॑जन्त । प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥ यजुः अ० ३१ ॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः । आकाशाद्वायुः । वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः । ओषधिभ्योऽन्नम् । अन्नाद्रेतः । रेतसः पुरुषः । स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः ॥
[ब्रह्मा० वल्ली अ० १]

यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है । ऐसे प्रमाणों में विराट्, पुरुष, देव, आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमि आदि नाम लौकिक पदार्थों के होते हैं । क्योंकि जहां २ उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, अल्पज्ञ, जड़, दृश्य आदि विशेषण भी लिखे हों वहां २ परमेश्वर का ग्रहण नहीं होता । वह उत्पत्ति आदि व्यवहारों से पृथक् है और उपरोक्त मन्त्रों में उत्पत्ति आदि व्यवहार हैं । इसी से यहां विराट् आदि नामों से परमात्मा का ग्रहण न होके संसारी पदार्थों का ग्रहण होता है । किन्तु जहां २ सर्वज्ञादि विशेषण हों वहां २ परमात्मा और जहां २ इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और अल्पज्ञादि विशेषण हों वहां २ जीव का ग्रहण होता है । ऐसा सर्वत्र समझना चाहिये । क्योंकि परमेश्वर का जन्म मरण कभी नहीं होता इससे विराट् आदि नाम और जन्मादि विशेषणों से जगत् के जड़ और जीवादि पदार्थों का ग्रहण करना उचित है, परमेश्वर का नहीं । अब जिस प्रकार विराट् आदि नामों से परमेश्वर का ग्रहण होता है वह प्रकार नीचे लिखे प्रमाणे जानो । अथ ओङ्कारार्थः । (वि) उपसर्गपूर्वक (राजृ दीप्तौ) इस धातु से क्विप् प्रत्यय करने से "विराट्" शब्द सिद्ध होता है । "यो विविधं नाम चराऽचरं जगद्राजयति प्रकाशयति स विराट्" विविध अर्थात् जो बहु प्रकार के जगत् को प्रकाशित करे इससे विराट् नाम से परमेश्वर का ग्रहण होता है । (अञ्चु गतिपूजनयोः) (अग, अगि, इण् गत्यर्थक) धातु हैं इनसे "अग्नि" शब्द सिद्ध होता है । "गतेस्त्रयोऽर्थाः ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति, पूजनं नाम सत्कारः" "योऽञ्चति अच्यतेऽगत्यङ्गत्येति वा सोऽयमग्निः" जो ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, जानने, प्राप्त होने और पूजा करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "अग्नि" है । (विश प्रवेशने) इस

धातु से "विश्व" शब्द सिद्ध होता है । "विशन्ति प्रविष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन् यो वाऽऽकाशादिषु सर्वेषु भूतेषु प्रविष्टः सः विश्व ईश्वरः" जिसमें आकाशादि सब भूत प्रवेश कर रहे हैं अथवा जो इनमें व्याप्त होके प्रविष्ट हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम विश्व है । इत्यादि नामों का ग्रहण अकारमात्र से होता है । "ज्योतिर्वै हिरण्यं तेजो वै हिरण्यमित्यैतरेये शतपथे च ब्राह्मणे" "यो हिरण्यानां सूर्यादीनां तेजसां गर्भ उत्पत्तिनिमित्तमधिकरणं स हिरण्यगर्भः" जिसमें सूर्यादि तेजवाले लोक उत्पन्न होके जिसके आधार रहते हैं अथवा जो सूर्यादि तेजःस्वरूप पदार्थों का गर्भ नाम उत्पत्ति और निवासस्थान है इससे उस परमेश्वर का नाम "हिरण्यगर्भ" है । इसमें यजुर्वेद के मन्त्र का प्रमाण है:—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ [यजुः अ० १३ । मं० ४]

इत्यादि स्थलों में "हिरण्यगर्भ" से परमेश्वर ही का ग्रहण होता है । (वा गतिगन्धनयोः) इस धातु से "वायु" शब्द सिद्ध होता है । (गन्धनं हिंसनम्) "यो वाति चराऽचरञ्जगद्धरति बलिनां बलिष्ठः स वायुः" जो चराऽचर जगत् का धारण, जीवन और प्रलय करता और सब बलवानों से बलवान् है इससे उस ईश्वर का नाम "वायु" है । (तिज निशाने) इस धातु से "तेजः" और इससे तद्धित करने से "तैजस" शब्द सिद्ध होता है । जो आप स्वयंप्रकाश और सूर्य्यादि तेजस्वी लोकों का प्रकाश करनेवाला है इससे उस ईश्वर का नाम "तैजस" है । इत्यादि नामार्थ उकारमात्र से ग्रहण होते हैं । (ईश ऐश्वर्ये) इस धातु से "ईश्वर" शब्द सिद्ध होता है । "य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्त्तते स ईश्वरः" जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है इससे उस परमात्मा का नाम "ईश्वर" है । (दो अवखण्डने) इस धातु से "अदिति" और इससे तद्धित करने से "आदित्य" शब्द सिद्ध होता है । "न विद्यते विनाशो यस्य सोऽयमदितिः+अदितिरेव आदित्यः" जिसका विनाश कभी न हो उसी ईश्वर की "आदित्य" संज्ञा है । (ज्ञा अवबोधने) "प्र" पूर्वक इस धातु से "प्रज्ञ"

और इससे तद्धित करने से "प्राज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यः प्रकृष्टतया चराऽचरस्य जगतो व्यवहारं जानाति स प्रज्ञः+प्रज्ञ एव प्राज्ञः" जो निर्भ्रान्त ज्ञानयुक्त सब चराऽचर जगत् के व्यवहार को यथावत् जानता है इससे ईश्वर का नाम "प्राज्ञ" है। इत्यादि नामार्थ मकार से गृहीत होते हैं। जैसे एक २ मात्रा से तीन २ अर्थ यहां व्याख्यात किये हैं वैसे ही अन्य नामार्थ भी ओंकार से जाने जाते ह। जो (शन्नो मित्रः शं व०) इस मन्त्र में मित्रादि नाम हैं वे भी परमेश्वर के हैं क्योंकि स्तुति, प्रार्थना, उपासना श्रेष्ठ ही की की जाती है। श्रेष्ठ उसको कहते हैं जो गुण, कर्म्म, स्वभाव और सत्य सत्य व्यवहारों में सब से अधिक हो। उन सब श्रेष्ठों में भी जो अत्यन्त श्रेष्ठ उसको परमेश्वर कहते हैं। जिसके तुल्य कोई न हुआ, न है और न होगा। जब तुल्य नहीं तो उससे अधिक क्योंकर हो सकता है ? जैसे परमेश्वर के सत्य न्याय, दया, सर्वसामर्थ्य और सर्वज्ञत्वादि अनन्त गुण हैं वैसे अन्य किसी जड़ पदार्थ वा जीव के नहीं हैं। जो पदार्थ सत्य है उसके गुण कर्म्म स्वभाव भी सत्य होते हैं इसलिये मनुष्यों को योग्य है कि परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करें, उससे भिन्न की कभी न करें क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज महाशय विद्वान्, दैत्य दानवादि निकृष्ट मनुष्य और अन्य साधारण मनुष्यों ने भी परमेश्वर ही में विश्वास करके उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करी, उससे भिन्न की नहीं की। वैसे हम सब को करना योग्य है। इसका विशेष विचार मुक्ति और उपासना विषय में किया जायगा॥

(प्रश्न) मित्रादि नामों से सखा और इन्द्रादि देवों के प्रसिद्ध व्यवहार देखने से उन्हीं का ग्रहण करना चाहिये। (उत्तर) यहां उनका ग्रहण करना योग्य नहीं क्योंकि जो मनुष्य किसी का मित्र है वही अन्य का शत्रु और किसी से उदासीन भी देखने में आता है। इससे मुख्यार्थ में सखा आदि का ग्रहण नहीं हो सकता। किन्तु जैसा परमेश्वर सब जगत् का निश्चित मित्र, न किसी का शत्रु और न किसी से उदासीन है, इससे भिन्न कोई भी जीव इस प्रकार का कभी नहीं हो सकता, इसलिये परमात्मा ही का ग्रहण यहां होता है। हां !

गौण अर्थ में मित्रादि शब्द से सुहृदादि मनुष्यों का ग्रहण होता है। (ञिमिदा स्नेहने) इस धातु से औणादिक "क्" प्रत्यय के होने से "मित्र" शब्द सिद्ध होता है। "मेद्यति स्निह्यति स्निह्यते वा स मित्रः" जो सब से स्नेह करके और सब को प्रीति करने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम मित्र है। (वृञ् वरणे, वर ईप्सायाम्) इन धातुओं से उणादि "उनन्" प्रत्यय होने से "वरुण" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् शिष्टान् मुमुक्षून्धर्मात्मनो वृणोत्यथवा यः शिष्टैर्मुमुक्षुभिर्धर्मात्मभिर्व्रियते वर्य्यते वा स वरुणः परमेश्वरः" जो आत्मयोगी, विद्वान्, मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्त और धर्मात्माओं का स्वीकार करता, अथवा जो शिष्ट, मुमुक्षु मुक्त और धर्मात्माओं से ग्रहण किया जाता है वह ईश्वर "वरुण" संज्ञक है। अथवा "वरुणो नाम वरः श्रेष्ठः" जिसलिये परमेश्वर सब से श्रेष्ठ है, इसीलिये उसका नाम "वरुण" है। (ऋ गतिप्रापणयोः) इस धातु से "यत्" प्रत्यय करने से "अर्य्य" शब्द सिद्ध होता है और "अर्य्य" पूर्वक (माङ् माने) इस धातु से "कनिन्" प्रत्यय होने से "अर्यमा" शब्द सिद्ध होता है। "योऽर्यान् स्वामिनो न्यायाधीशान् मिमीते मान्यान् करोति सोऽर्यमा" जो सत्य न्याय के करनेहारे मनुष्यों का मान्य और पाप तथा पुण्य करने-वालों को पाप और पुण्य के फलों का यथावत् सत्य २ नियमकर्त्ता है इसी से उस परमेश्वर का नाम "अर्यमा" है। (इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से "रन्" प्रत्यय करने से "इन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "य इन्दति परमैश्वर्यवान् भवति स इन्द्रः परमेश्वरः" जो अखिल ऐश्वर्ययुक्त है इससे उस परमात्मा का नाम "इन्द्र" है। "बृहत्" शब्दपूर्वक (पा रक्षणे) इस धातु से "डति" प्रत्यय बृहत् के तकार का लोप और सुडागम होने से "बृहस्पति" शब्द सिद्ध होता है। "यो बृहतामाकाशादीनां पतिः स्वामी पालयिता स बृहस्पतिः" जो बड़ों से भी बड़ा और बड़े आकाशादि ब्रह्माण्डों का स्वामी है इससे उस परमेश्वर का नाम "बृहस्पति" है। (विष्लृ व्याप्तौ) इस धातु से "नु" प्रत्यय होकर "विष्णु" शब्द सिद्ध हुआ है "वेवेष्टि व्याप्नोति चराऽचरं जगत् स विष्णुः" चर और अचररूप जगत् में व्यापक होने से परमात्मा का नाम "विष्णु" है। "उरुर्महान् क्रमः पराक्रमो यस्य स उरुक्रमः" अनन्त पराक्रमयुक्त होने से परमात्मा

का नाम "उरुक्रम" है। जो परमात्मा (उरुक्रमः) महापराक्रमयुक्त (मित्रः) सब का सुहृत् अविरोधी है वह (शम्) सुखकारक, वह (वरुणः) सर्वोत्तम, वह (शम्) सुखस्वरूप, वह (अर्यमा) न्यायाधीश वह (शम्) सुखप्रचारक, वह (इन्द्रः) जो सकल ऐश्वर्यवान्, वह (शम्) सकल ऐश्वर्यदायक वह (बृहस्पतिः) सब का अधिष्ठाता (शम्) विद्याप्रद और (विष्णुः) जो सब में व्यापक परमेश्वर है वह (नः) हमारा कल्याणकारक (भवतु) हो ॥

(वायो ते ब्रह्मणे नमोऽस्तु) (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से "ब्रह्म" शब्द सिद्ध होता है। जो सब के ऊपर विराजमान, सब से बड़ा, अनन्तबलयुक्त परमात्मा है उस ब्रह्म को हम नमस्कार करते हैं। हे परमेश्वर ! (त्वमेव प्रत्यक्षम्ब्रह्मासि (आप ही अन्तर्यामिरूप से प्रत्यक्ष ब्रह्म हो (त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि) मैं आप ही को प्रत्यक्ष ब्रह्म कहूंगा क्योंकि आप सब जगह में व्याप्त होके सब को नित्य ही प्राप्त हैं (ऋतं वदिष्यामि) जो आप की वेदस्थ यथार्थ आज्ञा है उसी का मैं सबके लिये उपदेश और आचरण भी करूंगा (सत्यं वदिष्यामि) सत्य बोलूं, सत्य मानूं और सत्य ही करूंगा (तन्मामवतु) सो आप मेरी रक्षा कीजिये (तद्वक्तारमवतु) सो आप मुझ आप्त सत्यवक्ता की रक्षा कीजिये कि जिससे आप की आज्ञा में मेरी बुद्धि स्थिर होकर विरुद्ध कभी न हो। क्योंकि जो आपकी आज्ञा है वही धर्म और जो उससे विरुद्ध वही अधर्म है (अवतु मामवतु वक्तारम्) यह दूसरी वार पाठ अधिकार्थ के लिये है। जैसे "कश्चित् कञ्चित् प्रति वदति त्वं ग्रामं गच्छ गच्छ" इसमें दो वार क्रिया के उच्चारण से तू शीघ्र ही ग्राम को जा ऐसा सिद्ध होता है। ऐसे ही यहां कि आप मेरी अवश्य रक्षा करो अर्थात् धर्म से सुनिश्चित और अधर्म से घृणा सदा करूं ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये, मैं आपका बड़ा उपकार मानूंगा (ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः) इस में तीन वार शान्तिपाठ का यह प्रयोजन है कि त्रिविधताप अर्थात् इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं एक "आध्यात्मिक" जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग, द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं। दूसरा "आधिभौतिक" जो शत्रु, व्याघ्र और सर्पादि से प्राप्त होता है।

तीसरा आधिदैविक" अर्थात् जो अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्णता, मन और इन्द्रियों की अशान्ति से होता है। इन तीन प्रकार के क्लेशों से आप हम लोगों को दूर करके कल्याणकारक कर्मों में सदा प्रवृत्त रखिये। क्योंकि आप ही कल्याणस्वरूप, सब संसार के कल्याणकर्त्ता और धार्मिक मुमुक्षुओं को कल्याण के दाता हैं। इसलिये आप स्वयं अपनी करुणा से सब जीवों के हृदय में प्रकाशित हूजिये कि जिससे सब जीव धर्म का आचरण और अधर्म को छोड़ के परमानन्द को प्राप्त हों और दुःखों से पृथक् रहैं। "सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इस यजुर्वेद के वचन से जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर जड़ अर्थात् पृथिवी आदि हैं उन सब के आत्मा होने और स्वप्रकाशरूप सब के प्रकाश करने से परमेश्वर का नाम "सूर्य्य" है। (अत सातत्यगमने) इस धातु से "आत्मा" शब्द सिद्ध होता है। "योऽतति व्याप्नोति स आत्मा" जो सब जीवादि जगत् में निरन्तर व्यापक हो रहा है। "परश्चासावात्मा च य आत्मभ्यो जीवेभ्यः सूक्ष्मेभ्यः परोऽतिसूक्ष्मः स परमात्मा" जो सब जीव आदि से उत्कृष्ट और जीव प्रकृति तथा आकाश से भी अतिसूक्ष्म और सब जीवों का अन्तर्यामी आत्मा है इससे ईश्वर का नाम "परमात्मा" है। सामर्थ्यवाले का नाम ईश्वर है। "य ईश्वरेषु समर्थेषु परमः श्रेष्ठः स परमेश्वरः" जो ईश्वरों अर्थात् समर्थों में समर्थ, जिसके तुल्य कोई भी न हो उसका नाम "परमेश्वर" है। (षुञ् अभिषवे, षूङ् प्राणिगर्भविमोचने) इन धातुओं से "सविता" शब्द सिद्ध होता है। "अभिषवः प्राणिगर्भविमोचनं चोत्पादनम्। यश्चराचरं जगत् सुनोति सूते वोत्पादयति स सविता परमेश्वरः" जो सब जगत् की उत्पत्ति करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "सविता" है। (दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु) इस धातु से "देव" शब्द सिद्ध होता है। (क्रीडा) जो शुद्ध जगत् को क्रीड़ा कराने (विजिगीषा) धार्मिकों को जिताने की इच्छायुक्त (व्यवहार) सब चेष्टा के साधनोपसाधनों का दाता (द्युति) स्वयंप्रकाशस्वरूप सब का प्रकाशक (स्तुति) प्रशंसा के योग्य (मोद) आप आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द देनेहारा (मद) मदोन्मत्तों का ताड़नेहारा

(स्वप्न) सब के शयनार्थ रात्रि और प्रलय का करनेहारा (कान्ति) कामना के योग्य और (गति) ज्ञानस्वरूप है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "देव" है। अथवा "यो दीव्यति क्रीडति स देवः" जो अपने स्वरूप में आनन्द से आप ही क्रीड़ा करे अथवा किसी के सहाय के विना क्रीड़ावत् सहज स्वभाव से सब जगत् को बनाता वा सब क्रीड़ाओं का आधार है। "विजिगीषते स देवः" जो सब का जीतनेहारा स्वयं अजेय अर्थात् जिसको कोई भी न जीत सके। "व्यवहारयति स देवः" जो न्याय और अन्यायरूप व्यवहारों का जाननेहारा और उपदेष्टा, "यश्चराचरं जगत् द्योतयति" जो सब का प्रकाशक, "यः स्तूयते स देवः" जो सब मनुष्यों को प्रशंसा के योग्य और निन्दा के योग्य न हो, "यो मोदयति स देवः" जो स्वयं आनन्दस्वरूप और दूसरों को आनन्द कराता, जिसको दुःख का लेश भी न हो, "यो माद्यति स देवः" जो सदा हर्षित, शोकरहित और दूसरों को हर्षित करने और दुःखों से पृथक् रखने वाला, "यः स्वापयति स देवः" जो प्रलय समय अव्यक्त में सब जीवों को सुलाता, "यः कामयते काम्यते वा स देवः" जिसके सब सत्य काम और जिसकी प्राप्ति की कामना सब शिष्ट करते हैं तथा "यो गच्छति गम्यते वा स देवः" जो सब में व्याप्त और जानने के योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "देव" है। (कुवि आच्छादने) इस धातु से "कुबेर" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वं कुवति स्वव्याप्त्याच्छादयति स कुबेरो जगदीश्वरः" जो अपनी व्याप्ति से सबका आच्छादन करे इससे उस परमेश्वर का नाम "कुबेर" है। (प्रथ विस्तारे) इस धातु से "पृथिवी" शब्द सिद्ध होता है "यः पृथते सर्वजगद्विस्तृणाति स पृथिवी" जो सब विस्तृत जगत् का विस्तार करनेवाला है इसलिये उस परमेश्वर का नाम पृथिवी है। (जल घातने) इस धातु से "जल" शब्द सिद्ध होता है "जलति घातयति दुष्टान्, संघातयति—अव्यक्तपरमाण्वादीन् तद् ब्रह्म जलम्" जो दुष्टों का ताड़न और अव्यक्त तथा परमाणुओं का अन्योऽन्य संयोग वा वियोग करता है वह परमात्मा "जल" संज्ञक कहाता है। (काशृ दीप्तौ) इस धातु से "आकाश" शब्द सिद्ध होता है, "यः सर्वतः सर्वं जगत् प्रकाशयति स आकाशः" जो सब ओर से जगत् का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा

का नाम "आकाश" है। (अद भक्षणे) इस धातु से "अन्न" शब्द सिद्ध होता है॥

अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते॥ १॥

अहमन्नमहमन्नमहमन्नम्। अहमन्नादोऽहमन्नादोऽहमन्नादः॥ २॥ तैत्ति० उपनि० [अनुवाक २। १०] अत्ताचराचरग्रहणात् [वेदान्तदर्शने अ० १। पा० २। सू० ९]

यह व्यासमुनि कृत शारीरिक सूत्र है। जो सब को भीतर रखने वा सब को ग्रहण करने योग्य, चराचर जगत् का ग्रहण करनेवाला है, इससे ईश्वर के "अन्न" "अन्नाद" और "अत्ता" नाम हैं। और जो इसमें तीन वार पाठ है सो आदर के लिये है। जैसे गूलर के फल में कृमि उत्पन्न होके उसी में रहते और नष्ट होजाते हैं वैसे परमेश्वर के बीच में सब जगत् की अवस्था है। (वस निवासे) इस धातु से "वसु" शब्द सिद्ध हुआ है। "वसन्ति भूतानि यस्मिन्नथवा यः सर्वेषु भूतेषु वसति स वसुरीश्वरः" जिसमें सब आकाशादि भूत वसते हैं और जो सब में वास कर रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "वसु" है। (रुदिर् अश्रुविमोचने) इस धातु से "णिच्" प्रत्यय होने से "रुद्र" शब्द सिद्ध होता है। "यो रोदयत्यन्यायकारिणो जनान् स रुद्रः" जो दुष्ट कर्म करनेहारों को रुलाता है इससे उस परमेश्वर का नाम "रुद्र" है॥

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत् कर्मणा करोति यत् कर्मणा करोति तदभिसम्पद्यते॥

यह यजुर्वेद के ब्राह्मण का वचन है। जीव जिसका मन से ध्यान करता उसको वाणी से बोलता, जिसको वाणी से बोलता उसको कर्म से करता, जिसको कर्म से करता उसी को प्राप्त होता है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि जो जीव जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जब दुष्ट कर्म करनेवाले जीव ईश्वर की न्यायरूपी व्यवस्था से दुःखरूप फल पाते तब रोते हैं और इसी प्रकार ईश्वर उनको रुलाता है, इसलिये परमेश्वर का नाम "रुद्र" है॥

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नर सूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥
मनु० [अ० १ । श्लोक १०]

जल और जीवों का नाम नारा है वे अयन अर्थात् निवासस्थान हैं जिसका इसलिये सब जीवों में व्यापक परमात्मा का नाम "नारायण" है। (चदि आह्लादे) इस धातु से "चन्द्र" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चन्दति चन्दयति वा स चन्द्रः" जो आनन्दस्वरूप और सब को आनन्द देनेवाला है इसलिये ईश्वर का नाम "चन्द्र" है। (मगि गत्यर्थक) धातु से "मङ्गेरलच्" इस सूत्र से "मङ्गल" शब्द सिद्ध होता है। "यो मङ्गति मङ्गयति वा स मङ्गलः" जो आप मङ्गलस्वरूप और सब जीवों के मङ्गल का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "मङ्गल" है। (बुध अवगमने) इस धातु से "बुध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुध्यते बोधयति वा स बुधः" जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "बुध" है। "बृहस्पति" शब्द का अर्थ कह दिया। (ईशुचिर् पूतीभावे) इस धातु से "शुक्र" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शुच्यति शोचयति वा स शुक्रः" जो अत्यन्त पवित्र और जिसके सङ्ग से जीव भी पवित्र हो जाता है इसलिये ईश्वर का नाम "शुक्र है। (चर गतिभक्षणयोः) इस धातु से "शनैस्" अव्यय उपपद होने से "शनैश्चर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शनैश्चरति स शनैश्चरः" जो सब में सहज से प्राप्त धैर्यवान् है इससे उस परमेश्वर का नाम "शनैश्चर" है। (रह त्यागे) इस धातु से "राहु" शब्द सिद्ध होता है। "यो रहति परित्यजति दुष्टान् राहयति त्याजयति वा स राहुरीश्वरः" जो एकान्तस्वरूप जिसके स्वरूप में दूसरा पदार्थ संयुक्त नहीं जो दुष्टों को छोड़ने और अन्य को छुड़ाने हारा है इससे परमेश्वर का नाम "राहु" है। (कित निवासे रोगापनयने च) इस धातु से "केतु" शब्द सिद्ध होता है "यः केतयति चिकित्सति वा स केतुरीश्वरः" जो सब जगत् का निवासस्थान सब रोगों से रहित और मुमुक्षुओं को मुक्ति समय में सब रोगों से छुड़ाता है इसलिये उस परमात्मा का नाम "केतु" है। (यज देवपूजा-

सङ्गतिकरणदानेषु) इस धातु से "यज्ञ" शब्द सिद्ध होता है। "यज्ञो वै विष्णुः" यह ब्राह्मणग्रन्थ का वचन है। "यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा स यज्ञः" जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से ले के सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा इससे उस परमात्मा का नाम "यज्ञ" है क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। (हु दानादऽनयोः, आदाने चेत्येके) इस धातु से "होता" शब्द सिद्ध हुआ है "यो जुहोति स होता" जो जीवों को देने योग्य पदार्थों का दाता और ग्रहण करने योग्यों का ग्राहक है इससे उस ईश्वर का नाम "होता" है। (बन्ध बन्धने) इससे "बन्धु" शब्द सिद्ध होता है "यः स्वस्मिन् चराचरं जगद्बध्नाति बन्धुवद्धर्मात्मनां सुखाय सहायो वा वर्त्तते स बन्धुः" जिसने अपने में सब लोकलोकान्तरों को नियमों से बद्ध कर रक्खे और सहोदर के समान सहायक है इसी से अपनी २ परिधि वा नियम का उल्लंघन नहीं कर सकते। जैसे भ्राता भाइयों का सहायकारी होता है वैसे परमेश्वर भी पृथिव्यादि लोकों के धारण रक्षण और सुख देने से "बन्धु" संज्ञक है (पा रक्षणे) इस धातु से "पिता" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः पाति सर्वान् स पिता" जो सब का रक्षक जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है इससे उसका नाम "पिता" है। "यः पितॄणां पिता स पितामहः" जो पिताओं का भी पिता है इससे उस परमेश्वर का नाम "पितामह" है। "यः पितामहानां पिता स प्रपितामहः" जो पिताओं के पितरों का पिता है इससे परमेश्वर का नाम "प्रपितामह" है। "यो मिमीते मानयति सर्वाञ्जीवान् स माता" जैसे पूर्णकृपायुक्त जननी अपने सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है इससे परमेश्वर का नाम "माता" है। (चर गतिभक्षणयोः) आङ्पूर्वक इस धातु से "आचार्य्य" शब्द सिद्ध होता है "य आचारं ग्राहयति सर्वा विद्या बोधयति स आचार्य ईश्वरः" जो सत्य आचार का ग्रहण करानेहारा और सब विद्याओं की प्राप्ति का हेतु होके सब विद्या प्राप्त कराता है इससे परमेश्वर का नाम "आचार्य" है। (गॄ शब्दे) इस धातु से "गुरु" शब्द बना है। "यो धर्म्यान् शब्दान् गृणात्युपदिशति स गुरुः"॥

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥ योग सू० । समाधिपादे सू० २६ ॥

यह योग सूत्र है । जो सत्यधर्मप्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नहीं होता इसलिये उस परमेश्वर का नाम "गुरु" है । (अज गतिक्षेपणयोः, जनी प्रादुर्भावे) इन धातुओं से "अज" शब्द बनता है 'योऽजति सृष्टिं प्रति सर्वान् प्रकृत्यादीन् पदार्थान् प्रक्षिपति जानाति वा कदाचिन्न जायते सोऽजः' जो सब प्रकृति के अवयव आकाशादि भूत परमाणुओं को यथायोग्य मिलाता शरीर के साथ जीवों का सम्बन्ध करके जन्म देता और स्वयं कभी जन्म नहीं लेता इससे उस ईश्वर का नाम "अज" है। (बृह बृहि वृद्धौ) इन धातुओं से "ब्रह्मा" शब्द सिद्ध होता है "योऽखिलं जगन्निर्माणेन बृंहति वर्द्धयति स ब्रह्मा" जो सम्पूर्ण जगत् को रच के बढ़ाता है इसलिये परमेश्वर का नाम "ब्रह्मा" है । "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" यह तैत्तिरीयोपनिषद् का वचन है "सन्तीति सन्तस्तेषु सत्सु साधु तत्सत्यम् । यज्जानाति चराऽचरं जगत्तज्ज्ञानम् । न विद्यतेऽन्तोऽवधिर्मर्यादा यस्य तदनन्तम् । सर्वेभ्यो बृहत्त्वाद् ब्रह्म" जो पदार्थ हों उनको सत् कहते हैं उनमें साधु होने से परमेश्वर का नाम सत्य है । जो सब जगत् का जाननेवाला है इससे परमेश्वर का नाम "ज्ञान" है । जिसका अन्त अवधि मर्यादा अर्थात् इतना लम्बा, चौड़ा, छोटा, बड़ा है ऐसा परिमाण नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम "अनन्त" है। (डुदाञ् दाने) आङ्पूर्वक इस धातु से "आदि" शब्द और नञ्पूर्वक "अनादि" शब्द सिद्ध होता है । "यस्मात् पूर्वं नास्ति परं चास्ति स आदिरित्युच्यते [महाभाष्य १ । १ । २१] न विद्यते आदिः कारणं यस्य सोऽनादिरीश्वरः" जिसके पूर्व कुछ न हो और परे हो, उसको आदि कहते हैं, जिसका आदिकारण कोई भी नहीं है इसलिये परमेश्वर का नाम अनादि है । (टुनदि समृद्धौ) आङ्पूर्वक इस धातु से "आनन्द" शब्द बनता है "आनन्दन्ति सर्वे मुक्ता यस्मिन् यद्वा यः सर्वाञ्जीवानानन्दयति स आनन्दः" जो आनन्दस्वरूप जिसमें सब मुक्त जीव आनन्द को प्राप्त होते और जो सब धर्मात्मा जीवों को आनन्दयुक्त करता है

इससे ईश्वर का नाम "आनन्द" है। (अस भुवि) इस धातु से "सत्" शब्द सिद्ध होता है "यदस्ति त्रिषु कालेषु न बाध्यते सत्सद् ब्रह्म" जो सदा वर्त्तमान अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान कालों में जिसका बाध न हो उस परमेश्वर को "सत्" कहते हैं। (चिती संज्ञाने) इस धातु से "चित्" शब्द सिद्ध होता है। "यश्चेतति चेतयति संज्ञापयति सर्वान् सज्जनान् योगिनस्तच्चित्परं ब्रह्म" जो चेतनस्वरूप सब जीवों को चिताने और सत्याऽसत्य का जनानेहारा है इसलिये उस परमात्मा का नाम "चित्" है, इन तीनों शब्दों के विशेषण होने से परमेश्वर को "सच्चिदानन्दस्वरूप" कहते हैं। "यो नित्यध्रुवोऽचलोऽविनाशी स नित्यः"। जो निश्चल अविनाशी है सो नित्य शब्दवाच्य ईश्वर है। (शुन्ध शुद्धौ) इससे "शुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यः शुन्धति सर्वान् शोधयति वा स शुद्ध ईश्वरः" जो स्वयं पवित्र सब अशुद्धियों से पृथक् और सब को शुद्ध करनेवाला है इस से उस ईश्वर का नाम शुद्ध है। (बुध अवगमने) इस धातु से "क्त" प्रत्यय होने से "बुद्ध" शब्द सिद्ध होता है। "यो बुद्धवान् सदैव ज्ञाताऽस्ति स बुद्धो जगदीश्वरः" जो सदा सब को जाननेहारा है इससे ईश्वर का नाम "बुद्ध" है। (मुच्लृ मोचने) इस धातु से "मुक्त" शब्द सिद्ध होता है। "यो मुञ्चति मोचयति वा मुमुक्षून् स मुक्तो जगदीश्वरः" जो सर्वदा अशुद्धियों से अलग और सब मुमुक्षुओं को क्लेश से छुड़ा देता है इसलिये परमात्मा का नाम "मुक्त" है। "अतएव नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो जगदीश्वरः" इसी कारण से परमेश्वर का स्वभाव नित्य शुद्ध [बुद्ध] मुक्त है। निर् और आङ्पूर्वक (डुकृञ् करणे) इस धातु से "निराकार" शब्द सिद्ध होता है। "निर्गत आकारात्स निराकारः" जिसका आकार कोई भी नहीं और न कभी शरीर धारण करता है इसलिये परमेश्वर का नाम "निराकार" है। (अञ्जू व्यक्तिम्लक्षणकान्तिगतिषु) इस धातु से "अञ्जन" शब्द और निर् उपसर्ग के योग से "निरञ्जन" शब्द सिद्ध होता है "अञ्जनं व्यक्तिर्म्लक्षणं कुकाम इन्द्रियैः प्राप्तिश्चेत्यस्माद्यो निर्गतः पृथग्भूतः स निरञ्जनः" जो व्यक्ति अर्थात् आकृति, म्लेच्छाचार, दुष्टकामना और चक्षुरादि इन्द्रियों के विषयों के पथ से पृथक् है इससे ईश्वर का नाम "निरञ्जन" है।

(गण संख्याने) इस धातु से "गण" शब्द सिद्ध होता और इसके आगे "ईश" वा "पति" शब्द रखने से "गणेश" और "गणपति" शब्द सिद्ध होते हैं। "ये प्रकृत्यादयो जड़ा जीवाश्च गण्यन्ते संख्यायन्ते तेषामीशः स्वामी पतिः पालको वा" जो प्रकृत्यादि जड़ और सब जीव प्रख्यात पदार्थों का स्वामी वा पालन करनेहारा है इससे उस ईश्वर का नाम "गणेश" वा "गणपति" है। "यो विश्वमीष्टे स विश्वेश्वरः" जो संसार का अधिष्ठाता है इससे उस परमेश्वर का नाम "विश्वेश्वर" है। "यः कूटेऽनेकविधव्यवहारे स्वस्वरूपेणैव तिष्ठति स कूटस्थः परमेश्वरः" जो सब व्यवहारों में व्याप्त और सब व्यवहारों का आधार हो के भी किसी व्यवहार में अपने स्वरूप को नहीं बदलता इससे परमेश्वर का नाम "कूटस्थ" है। जितने देव शब्द के अर्थ लिखे हैं उतने ही "देवी" शब्द के भी हैं। परमेश्वर के तीनों लिङ्गों में नाम हैं, जैसे—"ब्रह्म चितिरीश्वरश्चेति" जब ईश्वर का विशेषण होगा तब "देव" जब चिति का होगा तब "देवी" इससे ईश्वर का नाम "देवी" है। (शक्लृ शक्तौ) इस धातु से "शक्ति" शब्द बनता है "यः सर्वं जगत् कर्तुं शक्नोति स शक्तिः" जो सब जगत् के बनाने में समर्थ है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "शक्ति" है। (श्रिञ् सेवायाम्) इस धातु से "श्री" शब्द सिद्ध होता है। "यः श्रीयते सेव्यते सर्वेण जगता विद्वद्भिर्योगिभिश्च स श्रीरीश्वरः" जिसका सेवन सब जगत् विद्वान् और योगीजन करते हैं उस परमात्मा का नाम "श्री" है। (लक्ष दर्शनाङ्कनयोः) इस धातु से "लक्ष्मी" शब्द सिद्ध होता है "यो लक्षयति पश्यत्यङ्कते चिह्नयति चराचरं जगदथवा वेदैराप्तैर्योगिभिश्च यो लक्ष्यते स लक्ष्मीः सर्वप्रियेश्वरः" जो सब चराचर जगत् को देखता चिह्नित अर्थात् दृश्य बनाता; जैसे शरीर के नेत्र, नासिका और वृक्ष के पत्र, पुष्प, फल, मूल, पृथिवी, जल के कृष्ण, रक्त, श्वेत, मृत्तिका, पाषाण, चंद्र, सूर्य्यादि चिह्न बनाता; तथा सब को देखता, सब शोभाओं की शोभा और जो वेदादि शास्त्र वा धार्मिक विद्वान् योगियों का लक्ष्य अर्थात् देखने योग्य है इससे उस परमेश्वर का नाम "लक्ष्मी" है। (सृ गतौ) इस धातु से "सरस्" उससे मतुप् और ङीप् प्रत्यय होने से "सरस्वती" शब्द सिद्ध होता है, "सरो विविधं ज्ञानं विद्यते यस्यां चितौ सा

सरस्वती" जिसको विविध विज्ञान अर्थात् शब्द अर्थ सम्बन्ध प्रयोग का ज्ञान यथावत् होवे इससे उस परमेश्वर का नाम "सरस्वती" है। "सर्वाः शक्तयो विद्यन्ते यस्मिन् स सर्वशक्तिमानीश्वरः" जो अपने कार्य करने में किसी अन्य की सहायता की इच्छा नहीं करता, अपने ही सामर्थ्य से अपने सब काम पूरा करता है इसलिये उस परमात्मा का नाम "सर्वशक्तिमान्" है। (णीञ् प्रापणे) इस धातु से "न्याय" शब्द सिद्ध होता। है "प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः" यह वचन न्यायसूत्रों पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य का है। "पक्षपातराहित्याचरणं न्यायः" जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों की परीक्षा से सत्य २ सिद्ध हो तथा पक्षपात रहित धर्मरूप आचरण है वह न्याय कहाता है। "न्यायं कर्तुं शीलमस्य स न्यायकारीश्वरः" जिसका न्याय अर्थात् पक्षपातरहित धर्म करने ही का स्वभाव है इससे उस ईश्वर का नाम "न्यायकारी" है। (दय दानगतिरक्षणहिंसादानेषु) इस धातु से "दया" शब्द सिद्ध होता है। "दयते ददाति जानाति गच्छति रक्षति हिनस्ति यया सा दया बह्वी दया विद्यते यस्य स दयालुः परमेश्वरः" जो अभय का दाता सत्याऽसत्य सर्व विद्याओं का जानने, सब सज्जनों की रक्षा करने और दुष्टों को यथायोग्य दण्ड देनेवाला है इससे परमात्मा का नाम "दयालु" है। "द्वयोर्भावो द्वाभ्यामितं सा द्विता द्वीतं वा सैव तदेव वा द्वैतम्, न विद्यते द्वैतं द्वितीयेश्वरभावो यस्मिंस्तद्-द्वैतम्" अर्थात् "सजातीयविजातीयस्वगतभेदशून्यं ब्रह्म" दो का होना वा दोनों से युक्त होना वह द्विता वा द्वीत अथवा द्वैत इससे जो रहित है, सजातीय जैसे मनुष्य का सजातीय दूसरा मनुष्य होता है, विजातीय जैसे मनुष्य से भिन्न जातिवाला वृक्ष, पाषाणादि, स्वगत अर्थात् शरीर में जैसे आंख, नाक, कान आदि अवयवों का भेद है वैसे दूसरे स्वजातीय ईश्वर, विजातीय ईश्वर वा अपने आत्मा में तत्वान्तर वस्तुओं से रहित एक परमेश्वर है इससे परमात्मा का नाम "अद्वैत" है। "गण्यन्ते ये ते गुणा वा यैर्गणयन्ति ते गुणाः, यो गुणेभ्यो निर्गतः स निर्गुण ईश्वरः" जितने सत्व, रज, तम, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि जड़ के गुण, अविद्या, अल्पज्ञता, राग, द्वेष और अविद्यादि क्लेश जीव के गुण हैं उनसे जो पृथक् है, इसमें "अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्" इत्यादि उपनिषदों का प्रमाण है। जो शब्द, स्पर्श, रूपादि गुणरहित है इससे परमात्मा का नाम

"निर्गुण" है। "यो गुणैः सह वर्त्तते स सगुणः" जो सब का ज्ञान सर्वसुख पवित्रता अनन्त बलादि गुणों से युक्त है इसलिये परमेश्वर का नाम "सगुण" है। जैसे पृथिवी गन्धादि गुणों से "सगुण" और इच्छादि गुणों से रहित होने से "निर्गुण" है वैसे जगत् और जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर "निर्गुण" और सर्वज्ञादि गुणों से सहित होने से "सगुण" है। अर्थात् ऐसा कोई भी पदार्थ नहीं है जो सगुणता और निर्गुणता से पृथक् हो। जैसे चेतन के गुणों से पृथक् होने से जड़ पदार्थ निर्गुण और अपने गुणों से सहित होने से सगुण वैसे ही जड़ के गुणों से पृथक् होने से जीव निर्गुण और इच्छादि अपने गुणों से सहित होने से सगुण। ऐसे ही परमेश्वर में भी समझना चाहिये। "अन्तर्यन्तुं नियन्तुं शीलं यस्य सोऽयमन्तर्यामी" जो सब प्राणि और अप्राणिरूप जगत् के भीतर व्यापक होके सब का नियम करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "अन्तर्यामी" है। "यो धर्मे राजते स धर्मराजः" जो धर्म ही में प्रकाशमान और अधर्म से रहित धर्म ही का प्रकाश करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "धर्म्मराज" है। (यमु उपरमे) इस धातु से "यम" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् प्राणिनो नियच्छति स यमः" जो सब प्राणियों के कर्मफल देने की व्यवस्था करता और सब अन्यायों से पृथक् रहता है इसलिये परमात्मा का नाम "यम" है। (भज सेवायाम्) इस धातु से "भग" इससे मतुप् होने से "भगवान्" शब्द सिद्ध होता है। "भगः सकलैश्वर्य्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्" जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त वा भजने के योग्य है इसीलिये उस ईश्वर का नाम "भगवान्" है। (मन ज्ञाने) धातु से "मनु" शब्द बनता है। "यो मन्यते स मनुः" जो मनु अर्थात् विज्ञानशील और मानने योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "मनु" है। (पॄ पालनपूरणयोः) इस धातु से "पुरुष" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः स्वव्याप्त्या चराऽचरं जगत् पृणाति पूरयति वा स पुरुषः" जो सब जगत् में पूर्ण हो रहा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "पुरुष" है। (डुभृञ् धारणपोषणयोः) "विश्व" पूर्वक इस धातु से "विश्वम्भर" शब्द सिद्ध होता है। "यो विश्वं बिभर्ति धरति पुष्णाति वा स विश्वम्भरो जगदीश्वरः" जो जगत् का धारण और पोषण करता है इसलिये उस

परमेश्वर का नाम "विश्वम्भर" है। (कल संख्याने) इस धातु से "काल" शब्द बना है। "कलयति संख्याति सर्वान् पदार्थान् स कालः" जो जगत् के सब पदार्थ और जीवों की संख्या करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "काल" है। (शिष्लृ विशेषणे) इस धातु से "शेष" शब्द सिद्ध होता है। "यः शिष्यते स शेषः" जो उत्पत्ति और प्रलय से शेष अर्थात् बच रहा है इसलिये उस परमात्मा का नाम "शेष" है। (आप्लृ व्याप्तौ) इस धातु से "आप्त" शब्द सिद्ध होता है। "यः सर्वान् धर्मात्मन आप्नोति वा सर्वैर्धर्मात्मभिराप्यते छलादिरहितः स आप्तः" जो सत्योपदेशक, सकल विद्यायुक्त सब धर्मात्माओं को प्राप्त होता और धर्मात्माओं से प्राप्त होने योग्य, छल कपटादि से रहित है इसलिये उस परमात्मा का नाम "आप्त" है। (डुकृञ् करणे) "शम्" पूर्वक इस धातु से "शङ्कर" शब्द सिद्ध हुआ है। "यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शङ्करः" जो कल्याण अर्थात् सुख का करनेहारा है इससे उस ईश्वर का नाम "शङ्कर" है। "महत्" शब्द पूर्वक "देव" शब्द से "महादेव" शब्द सिद्ध होता है। "यो महतां देवः स महादेवः" जो महान् देवों का देव अर्थात् विद्वानों का भी विद्वान्, सूर्यादि पदार्थों का प्रकाशक है इसलिये उस परमात्मा का नाम "महादेव" है। (प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च) इस धातु से "प्रिय" शब्द सिद्ध होता है। "यः पृणाति प्रीयते वा स प्रियः" जो सब धर्मात्माओं मुमुक्षुओं और शिष्टों को प्रसन्न करता और सब को कामना के योग्य है इसलिये उस ईश्वर का नाम "प्रिय" है। (भू सत्तायाम्) "स्वयं" पूर्वक इस धातु से "स्वयम्भू" शब्द सिद्ध होता है। "यः स्वयं भवति स स्वयम्भूरीश्वरः" जो आप से आप ही है किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुआ है इससे उस परमात्मा का नाम "स्वयम्भू" है। (कु शब्दे) इस धातु से "कवि" शब्द सिद्ध होता है। "यः कौति शब्दयति सर्वा विद्या स कविरीश्वरः" जो वेदद्वारा सब विद्याओं का उपदेष्टा और वेत्ता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "कवि" है। (शिवु कल्याणे) इस धातु से "शिव" शब्द सिद्ध होता है। "बहुलमेतन्निदर्शनम्" इससे शिवु धातु माना जाता है, जो कल्याणस्वरूप और कल्याण का करनेहारा है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "शिव" है॥

ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं। परन्तु इनसे भिन्न परमात्मा के असंख्य नाम हैं। क्योंकि जैसे परमेश्वर के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे उसके अनन्त नाम भी हैं। उनमें से प्रत्येक गुण कर्म्म और स्वभाव का एक २ नाम है। इससे ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं क्योंकि वेदादि शास्त्रों में परमात्मा के असंख्य गुण कर्म स्वभाव व्याख्यात किये हैं। उनके पढ़ने पढ़ाने से बोध हो सकता है। और अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा २ हो सकता है जो वेदादि शास्त्रों को पढ़ते हैं॥

(प्रश्न) जैसे अन्य ग्रन्थकार लोग आदि, मध्य और अन्त में मङ्गलाचरण करते हैं वैसे आपने कुछ भी न लिखा न किया? (उत्तर) ऐसा हमको करना योग्य नहीं क्योंकि जो आदि, मध्य और अन्त में मङ्गल करेगा तो उसके ग्रन्थ में आदि मध्य तथा अन्त के बीच में जो कुछ लेख होगा वह अमङ्गल ही रहेगा, इसलिये "मङ्गलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति" यह सांख्यशास्त्र [अ० ५। सू० १] का वचन है। इसका यह अभिप्राय है कि जो न्याय, पक्षपातरहित, सत्य वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा है उसी का यथावत् सर्वत्र और सदा आचरण करना मङ्गलाचरण कहाता है। ग्रन्थ के आरम्भ से ले के समाप्तिपर्यन्त सत्याचार का करना ही मङ्गलाचरण है, न कि कहीं मङ्गल और कहीं अमङ्गल लिखना। देखिये महाशय महर्षियों के लेख को—

यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपाठक ७। अनु० ११] का वचन है। हे सन्तानो! जो "अनवद्य" अनिन्दनीय अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हैं वे ही तुमको करने योग्य हैं अधर्मयुक्त नहीं। इसलिये जो आधुनिक ग्रन्थों में "श्रीगणेशाय नमः" "सीतारामाभ्यां नमः" राधाकृष्णाभ्यां नमः" "श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः" हनुमते नमः" "दुर्गायै नमः" "वटुकाय नमः" "भैरवाय नमः" "शिवाय नमः" "सरस्वत्यै नमः" "नारायणाय नमः" इत्यादि लेख देखने में आते हैं इनको बुद्धिमान् लोग वेद और शास्त्रों से विरुद्ध होने से मिथ्या ही समझते

हैं क्योंकि वेद और ऋषियों के ग्रन्थों में कहीं ऐसा मङ्गलाचरण देखने में नहीं आता और आर्षग्रन्थों में "ओ३म्" तथा "अथ" शब्द तो देखने में आता है। देखो—

"अथ शब्दानुशासनम्" अथेत्ययं शब्दोऽधिकारार्थः प्रयुज्यते। यह व्याकरणमहाभाष्य।

"अथातो धर्मजिज्ञासा" अथेत्यानन्तर्ये वेदाध्ययनानन्तरम्। यह पूर्वमीमांसा।

"अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" अथेति धर्मकथनानन्तरं धर्मलक्षणं विशेषेण व्याख्यास्यामः। यह वैशेषिकदर्शन॥

"अथ योगानुशासनम्" अथेत्ययमधिकारार्थः। यह योगशास्त्र।

"अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः" सांसारिकविषयभोगानन्तरं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्त्यर्थः प्रयत्नः कर्त्तव्यः। यह सांख्यशास्त्र।

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा"। "चतुष्टयसाधनसमाप्त्यनन्तरं ब्रह्म जिज्ञास्यम्"। यह वेदान्तसूत्र है।

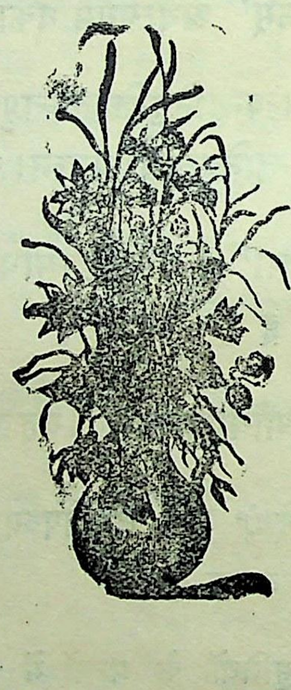
"ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत"। यह छान्दोग्य उपनिषद् का वचन है।

"ओमित्येतदक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानम्"। यह माण्डूक्य उपनिषद् के आरम्भ का वचन है।

ऐसे ही अन्य ऋषि मुनियों के ग्रन्थों में "ओ३म्" और "अथ" शब्द लिखे हैं वैसे ही (अग्नि, इट्, अग्नि, ये त्रिषप्ताः परियन्ति०) ये शब्द चारों वेदों के आदि में लिखे हैं। "श्रीगणेशाय नमः" इत्यादि शब्द कहीं नहीं। और जो वैदिक लोग वेद के आरम्भ में "हरिः ओ३म्" लिखते और पढ़ते हैं यह पौराणिक और तांत्रिक लोगों की मिथ्या कल्पना से सीखे हैं। वेदादि

शास्त्रों में "हरि" शब्द आदि में कहीं नहीं । इसलिये "ओ३म्" वा "अथ" शब्द ही ग्रन्थ के आदि में लिखना चाहिये । यह किञ्चित्मात्र ईश्वर के विषय में लिखा इसके आगे शिक्षा के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वती स्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरनामविषये प्रथमः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥



अथ द्वितीयसमुल्लासारम्भः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है। वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवें तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों। जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम [और] उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता; इसलिये (मातृमान्) अर्थात् "प्रशस्ता धार्मिकी माता विद्यते यस्य स मातृमान्" धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जबतक पूरी विद्या न हो तबतक सुशीलता का उपदेश करे ॥

माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों। जैसा ऋतुगमन का विधि अर्थात् रजोदर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़के बाक़ी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है। और रजोदर्शन के दिन से ले के १६ वीं रात्रि के पश्चात्

न समागम करना । पुनः जबतक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तबतक और गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों । जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो । जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करें और वर्त्तें । गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिये । पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का सङ्ग न करे । बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति आदि गुणकारक द्रव्यों ही का सेवन स्त्री करती रहै कि जबतक सन्तान का जन्म न हो ।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगन्धियुक्त घृतादि के होम * और स्त्री के भी स्नान भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय । ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों । प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे पश्चात् धायी पिलाया करे परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता पिता करावें । जो कोई दरिद्र हों, धायी को न रख सकें तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम ओषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करनेहारी हों उनको शुद्ध जल में भिजो, औटा छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें । जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान में जहां का वायु शुद्ध हो वहां रक्खें, सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस देश में भ्रमण करना उचित है कि जहां का वायु शुद्ध हो । और जहां धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें । क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है इसीसे स्त्री प्रसवसमय निर्बल होजाती है, इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे । दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस ओषधि का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो ।

---

* बालक के जन्म समय में "जातकर्मसंस्कार" होता है उसमें हवनादि वेदोक्त कर्म्म होते हैं वे "संस्कारविधि" में सविस्तर लिख दिये हैं ॥

ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती होजाती है। तबतक पुरुष ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह रक्खे, इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनके उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी कि जिससे सब सन्तान उत्तम, बल, पराक्रमयुक्त, दीर्घायु, धार्मिक हों। स्त्री योनिसङ्कोचन, शोधन और पुरुष वीर्य्य का स्तम्भन करे। पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे॥

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें। जब बोलने लगे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान और स्पष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर बोलना, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक २ बोल सकना। मधुर, गम्भीर, सुन्दर, स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न २ श्रवण होवे। जब वह कुछ २ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे। जैसे सन्तान जितेन्द्रिय विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता नपुंसकता होती और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ती जिस प्रकार हो, करावें। जब पांच २ वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनसे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे २ वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थसहित कंठस्थ करावें। जिनसे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो २ विद्याधर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने-

वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश करदें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुध्यति ॥ मनु० [अ० ५ । ६५]

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठानेवालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है । और जब उस शरीर का दाह होचुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था । जितने उत्पन्न हों वर्त्तमान में आ के न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है । ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है, परन्तु जिसको शङ्का, कुसङ्ग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शङ्कारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं । देखो जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है । क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है ? अज्ञानी लोग वैद्यकशास्त्र वा पदार्थविद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपात ज्वरादि शारीरिक और उन्मादकादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते हैं । उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र यन्त्र बांधते बंधवाते फिरते हैं, अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ाकर दुःख देते फिरते हैं । जब आंख के अंधे और गांठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि "महाराज ! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या होगया है ?" तब वे बोलते हैं कि "इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आगई है जबतक तुम इसका उपाय न करोगे तबतक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले

लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेट दो तो हम मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ के इनको निकाल दें।" तब वे अंधे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि "महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जावो परन्तु इनको अच्छा कर दीजिये।" तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त्त कहते हैं "अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेट और ग्रहदान कराओ।" झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच कूद के कहता है "मैं इसका प्राण ही ले लूंगा।" तब वे अंधे उस भङ्गी चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं "आप चाहें सो लीजिये इसको बचाइये।" तब वह धूर्त बोलता है "मैं हनुमान् हूं, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवामन का रोट और लाल लंगोट।" "मैं देवी वा भैरव हूं, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र।" जब वे कहते हैं कि "जो चाहो सो लो" तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है। परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेट पांच जूता दंडा वा चपेटा लातें मारे तो उसके हनुमान् देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं, क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है॥

और जब किसी ग्रहग्रस्त, ग्रहरूप, ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं "हे महाराज! इसको क्या है?" तब वे कहते हैं कि "इस पर सूर्य्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं। जो तुम इनकी शान्ति, पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख होजाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मरजाय तो भी आश्चर्य नहीं।" (**उत्तर**) कहिये ज्योतिर्वित्! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्य्यादि लोक हैं। वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते। क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें? (**प्रश्न**) क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है? (**उत्तर**) नहीं, ये सब पाप पुण्यों के फल हैं। (**प्रश्न**) तो क्या ज्योतिःशास्त्र झूठा है? (**उत्तर**) नहीं, जो उसमें अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है। (**प्रश्न**) क्या जो

यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ? (उत्तर) हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम "शोकपत्र" रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है, तब सब को आनन्द होता है परन्तु वह आनन्द तबतक होता है कि जबतक जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुनें, जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता पुरोहित से कहते हैं "महाराज ! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये" जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बना के सुनाने को आता है। तब उसके मा बाप ज्योतिषीजी के सामने बैठ के कहते हैं "इसका जन्मपत्र अच्छा तो है ?" ज्योतिषी कहता है "जो है सो सुना देता हूं। इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिनका फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा, शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा।" इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं "वाह २ ज्योतिषीजी आप बहुत अच्छे हो।" ज्योतिषीजी समझते हैं इन बातों से कार्य्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि "यह ग्रह तो बहुत अच्छे हैं, परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने २ ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है।" इसको सुनके माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के, शोकसागर में डूबकर ज्योतिषीजी से कहते हैं कि "महाराजजी ! अब हम क्या करें ?" तब ज्योतिषीजी कहते हैं "उपाय करो।" गृहस्थ पूछे "क्या उपाय करें" ज्योतिषीजी प्रस्ताव करने लगते हैं कि "ऐसा २ दान करो। ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे।" अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायगा तो कहेंगे हम क्या करें, परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है, हमने तो बहुतसा यत्न किया और तुमने कराया उसके कर्म ऐसे ही थे। और जो बच जाय तो कहते हैं कि देखो, हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ! तुम्हारे लड़के को बचा दिया। यहां यह बात होनी चाहिये कि जो इनके जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुने रुपये उन धूर्त्तों से ले लेने चाहियें। और बचजाय तो भी ले लेने चाहियें क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि

"इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं" वैसे गृहस्थ भी कहें कि "यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं" और तीसरे गुरु आदि भी पुण्यदान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था ॥

अब रह गई शीतला और मन्त्र तन्त्र यन्त्र आदि । ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं । कोई कहता है कि "जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते ।" इनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे ? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे ? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी, इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सबको विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना, जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये । और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये । इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये । जैसे "देखो जिस के शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है । इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें । जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि,

उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट होजाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा। जब तक हम लोग गृहकर्मों के करनेवाले जीते हैं तभी तक तुमको विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये।" इसी प्रकार की अन्य २ शिक्षा भी माता और पिता करें। इसीलिये "मातृमान् पितृमान्" शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५ वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ ठे वर्ष से ८ वें वर्ष तक पिता शिक्षा करे और ९ वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्य्यकुल में अर्थात् जहां पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें। उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं। इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है:—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः॥ [अ० ८। १। ८]

अर्थ—जो माता पिता और आचार्य्य सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं। और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें। परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें। किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें। जैसी अन्य शिक्षा की वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि

जिस पुरुष ने जिसके सामने एक बार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्य्यन्त नहीं होती। जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करनेवाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि "मैं तुमको वा तुम मुझसे अमुक समय में मिलूंगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुमको मैं दूंगा" इसको वैसे ही पूरी करे नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिये सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये। किसी को अभिमान न करना चाहिये। छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये। छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और रख दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना। "कृतघ्नता" उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना। क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे। जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले। बड़ों को मान्य दे, उनके सामने उठकर जा के उच्चासन पर बैठावे प्रथम "नमस्ते" करे। उन के सामने उत्तमासन पर न बैठे। सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे। विरोध किसी से न करे। सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे। सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन मन और धनादि उत्तम उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे॥

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि॥ यह तैत्ति० [प्रपा० ७। अनु० ११]

इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो २ हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन उनका ग्रहण करो और जो २ दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। जो २ सत्य जानें उन २ का प्रकाश और प्रचार करें। किसी पाखण्डी,

दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करें और जिस २ उत्तम कर्म के लिये माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवें उस २ का यथेष्ट पालन करें जैसे माता, पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक "निघण्टु" "निरुक्त" "अष्टाध्यायी" अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन २ का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें। जैसे प्रथम समुल्लास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करें। जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य मांसादि के सेवन से अलग रहैं। अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तरना न जाने तो डूब ही जा सकता है "नाविज्ञाते जलाशये" यह मनु का वचन है, अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं, वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं, मनःपूतं समाचरेत् ॥ मनु० [अ० ६ । ४६]

अर्थ—नीचे दृष्टि कर ऊंचे नीचे स्थान को देख के चले, वस्त्र से छान के जल पीवे, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे ॥

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥
चाणक्यनीति अध्या० २ । श्लो० ११ ॥

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला। यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्त्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना। यह बालशिक्षा में थोड़ासा लिखा इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषिते बालशिक्षाविषये द्वितीयः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ २ ॥

अथ तृतीयसमुल्लासारम्भः

अथाऽध्ययनाध्यापनविधिं व्याख्यास्यामः

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या, शिक्षा, गुण, कर्म्म और स्वभावरूप आभूषणों का धारण कराना माता, पिता, आचार्य्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने, चांदी, माणिक, मोती, मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता। क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि [का] भय तथा मृत्यु का भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के योग से बालकादिकों का मृत्यु दुष्टों के हाथ से होता है।

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः, सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये, धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

जिन पुरुषों का मन विद्या के विलास में तत्पर रहता, सुन्दर शीलस्वभावयुक्त, सत्यभाषणादि नियम पालनयुक्त, और जो अभिमान अपवित्रता से रहित, अन्य की मलीनता के नाशक, सत्योपदेश, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों के दूर करने से सुभूषित, वेदविहित कर्मों से पराये उपकार करने में रहते हैं वे नर और नारी धन्य हैं। इसलिये आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें। जो अध्यापक पुरुष वा स्त्री दुष्टाचारी हों उनसे शिक्षा न दिलावें। किन्तु जो पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने और शिक्षा देने योग्य हैं। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार करके यथोक्त आचार्य्य

कुल अर्थात् अपनी २ पाठशाला में भेज दें। विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिये और वे लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य, अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहैं। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। अर्थात् जबतक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं तबतक स्त्री वा पुरुष का दर्शन, स्पर्शन, एकान्तसेवन, भाषण, विषयकथा, परस्परक्रीड़ा, विषय का ध्यान और सङ्ग इन आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहैं और अध्यापक लोग उनको इन बातों से बचावें जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा से बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें। पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम वा नगर रहै। सब को तुल्य वस्त्र, खान पान, आसन दिये जायँ, चाहे वह राजकुमार वा राजकुमारी हो चाहे दरिद्र के सन्तान हों, सब को तपस्वी होना चाहिये। उनके माता पिता अपने सन्तानों से वा सन्तान अपने माता पिताओं से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्रव्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या बढ़ाने की चिन्ता रक्खें। जब भ्रमण करने को जायें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्॥ मनु० [अ० ७। श्लोक १५२]

इसका अभिप्राय यह है कि इसमें राजनियम और जातिनियम होना चाहिये कि पांचवें अथवा आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों और लड़कियों को घर में न रख सके। पाठशाला में अवश्य भेज देवें, जो न भेजे वह दण्डनीय हो। प्रथम लड़कों का यज्ञोपवीत घर में हो और दूसरा पाठशाला में आचार्य्यकुल में हो। पिता माता वा अध्यापक अपने लड़का लड़कियों को अर्थसहित गायत्री मन्त्र का उपदेश करदें। वह मन्त्र यह है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ [यजु० अ० ३६ । मं० ३]

इस मन्त्र में जो प्रथम (ओ३म्) है उसका अर्थ प्रथमसमुल्लास में कर दिया है, वहीं से जान लेना । अब तीन महाव्याहृतियों के अर्थ संक्षेप से लिखते हैं । "भूरिति वै प्राणः" "यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः" जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है उस प्राण का वाचक होके "भूः" परमेश्वर का नाम है । "भुवरित्यपानः" "यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः" जो सब दुःखों से रहित, जिसके सङ्ग से जीव सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम "भुवः" है । "स्वरिति व्यानः" "यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः" जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है इसलिये उस परमेश्वर का नाम "स्वः" है । ये तीनों वचन तैत्तिरीय आरण्यक [प्रपा० ७ । अनु० ५] के हैं । (सवितुः) "यः सुनोत्युत्पादयति सर्वं जगत् स सविता तस्य" जो सब जगत् का उत्पादक और सब ऐश्वर्य का दाता है (देवस्य) "यो दीव्यति दीव्यते वा स देवः" जो सर्व सुखों का देनेहारा और जिसकी प्राप्ति की कामना सब करते हैं उस परमात्मा का जो (वरेण्यम्) "वर्त्तुमर्हम्" स्वीकार करने योग्य अति श्रेष्ठ (भर्गः) "शुद्धस्वरूपम्" शुद्धस्वरूप और पवित्र करनेवाला चेतन ब्रह्म-स्वरूप है (तत्) उसी परमात्मा के स्वरूप को हम लोग (धीमहि) "धरेमहि" धारण करें । किस प्रयोजन के लिये कि (यः) "जगदीश्वरः" जो सविता देव परमात्मा (नः) "अस्माकम्" हमारी (धियः) "बुद्धीः" बुद्धियों को (प्रचोदयात्) "प्रेरयेत्" प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे । "हे परमेश्वर ! हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप ! हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्त-स्वभाव ! हे अज निरञ्जन निर्विकार ! हे सर्वान्तर्यामिन् ! हे सर्वाधार जगत्पते ! सकलजगदुत्पादक ! हे अनादे ! विश्वम्भर ! सर्वव्यापिन् ! हे करुणामृतवारिधे ! सवितुर्देवस्य तव यदों भूर्भुवः स्वर्वरेण्यं भर्गोऽस्ति तद्वयं धीमहि दधीमहि धरेमहि ध्यायेम वा कस्मै प्रयोजनायेत्यत्राह । हे भगवन् ! यः सविता देवः परमेश्वरो

भवानस्माकं धियः प्रचोदयात् । स एवास्माकं पूज्य उपासनीय इष्टदेवो भवतु नातोऽन्यं भवत्तुल्यं भवतोऽधिकं च कञ्चित् कदाचिन्मन्यामहे" हे मनुष्यो ! जो सब समर्थों में समर्थ सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप, नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध, नित्य मुक्त-स्वभाववाला, कृपासागर, ठीक २ न्याय का करनेहारा, जन्ममरणादि क्लेशरहित, आकार रहित, सब के घट २ का जाननेवाला, सब का धर्त्ता पिता, उत्पादक, अन्नादि से विश्व का पोषण करनेहारा, सकल ऐश्वर्ययुक्त, जगत् का निर्माता, शुद्धस्वरूप और जो प्राप्ति की कामना करने योग्य है उस परमात्मा का जो शुद्ध चेतनस्वरूप है उसी को हम धारण करें । इस प्रयोजन के लिये कि वह परमेश्वर हमारे आत्मा और बुद्धियों का अन्तर्यामिस्वरूप हमको दुष्टाचार अधर्म्मयुक्त मार्ग से हटा के श्रेष्ठाचार सत्य मार्ग में चलावे, उसको छोड़कर दूसरे किसी वस्तु का ध्यान हम लोग नहीं करें । क्योंकि न कोई उसके तुल्य और न अधिक है । वही हमारा पिता राजा न्यायाधीश और सब सुखों का देनेहारा है ॥

इस प्रकार गायत्रीमन्त्र का उपदेश करके संध्योपासन की जो स्नान, आचमन, प्राणायाम आदि क्रिया हैं सिखलावें । प्रथम स्नान इसलिये है कि जिससे शरीर के बाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते हैं । इसमें प्रमाण—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥

[मनु० अ० ५ । श्लोक १०९] यह मनुस्मृति का श्लोक है ।

जल से शरीर के बाहर के अवयव, सत्याचरण से मन, विद्या और तप अर्थात् सब प्रकार के कष्ट भी सह के धर्म ही के अनुष्ठान करने से जीवात्मा, ज्ञान अर्थात् पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि, दृढ़-निश्चय पवित्र होते हैं । इससे स्नान भोजन के पूर्व अवश्य करना । दूसरा प्राणायाम इसमें प्रमाणः—

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ॥

[योग० साधनपादे सू० २८] यह योगशास्त्र का सूत्र है ।

जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है। जबतक मुक्ति न हो तबतक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥
[मनु० अ० ६। ७१] यह मनुस्मृति का श्लोक है।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होते हैं वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। प्राणायाम का विधि---

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य॥ योग० [समाधिपादे] सू० [३४]

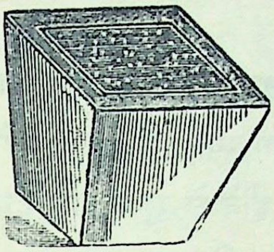
जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहर निकल जाता है वैसे प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोकदेवे। जब बाहर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे तबतक प्राण बाहर रहता है। इसी प्रकार प्राण बाहर अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर वायु को ले के फिर भी वैसे ही करता जाय, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में (ओ३म्) इसका जप करता जाय। इस प्रकार करने से आत्मा और मन को पवित्रता और स्थिरता होती है। एक "बाह्यविषय" अर्थात् बाहर ही अधिक रोकना। दूसरा "आभ्यन्तर" अर्थात् भीतर जितना प्राण रोका जाय उतना रोक के। तीसरा "स्तम्भवृत्ति" अर्थात् एक ही वार जहां का तहां प्राण को यथाशक्ति रोक देना। चौथा "बाह्याभ्यन्तराक्षेपी" अर्थात् जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध न निकलने देने के लिये बाहर से भीतर ले और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर की ओर प्राण को धक्का देकर रोकता जाय। ऐसे एक दूसरे के विरुद्ध क्रिया करें तो दोनों की गति रुककर प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते

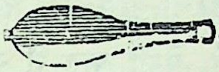
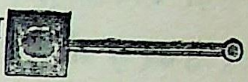
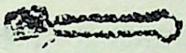
हैं। बल पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्मरूप होजाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्यशरीर में वीर्य्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल, पराक्रम, जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। भोजन, छादन, बैठने, उठने, बोलने, चालने, बड़े छोटे से यथायोग्य व्यवहार करने का उपदेश करें। सन्ध्योपासन जिसको ब्रह्मयज्ञ भी कहते हैं। "आचमन" उतने जल को हथेली में ले के उसके मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुंचे, न उससे अधिक न न्यून। उससे कण्ठस्थ कफ और पित्त की निवृत्ति थोड़ीसी होती है। पश्चात् "मार्जन" अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़के। उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करे। पुनः समन्त्रक प्राणायाम, मनसापरिक्रमण, उपस्थान, पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना की रीति सिखलावे। पश्चात् "अघमर्षण" अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे। यह सन्ध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित्त से करे॥

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः।
सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥
[मनु० अ० २। १०४] यह मनुस्मृति का वचन है।

जङ्गल में अर्थात् एकान्त देश में जा, सावधान हो के, जल के समीप स्थित हो के नित्यकर्म को करता हुआ सावित्री अर्थात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण, अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे, परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र और विद्वानों का संग सेवादिक से होता है। सन्ध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं अन्य नहीं। न्यून से न्यून एक घंटा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाधिस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं वैसे ही सन्ध्योपासन भी किया करे। तथा सूर्योदय के पश्चात् और

सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है उसके लिये एक किसी धातु वा मट्टी के ऊपर १२ वा १६ अंगुल चौकोन उतनी ही गहिरी और नीचे ३



वा ४ अंगुल परिमाण से वेदी इस प्रकार बनावें अर्थात् ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहै। उसमें चन्दन पलाश वा आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठों के टुकड़े उसी वेदी के परिमाण से बड़े छोटे करके उसमें रक्खे उसके मध्य में अग्नि रखके पुनः उस पर समिधा अर्थात् पूर्वोक्त इन्धन रख दे एक प्रोक्षणीपात्र  ऐसा और तीसरा प्रणीतापात्र  इस प्रकार का और एक  इस प्रकार की आज्यस्थाली अर्थात् घृत रखने का पात्र और चमसा  ऐसा सोने चांदी वा काष्ठ का बनवा के प्रणीता और प्रोक्षणी में जल तथा घृतपात्र में घृत रख के घृत को तपा लेवे। प्रणीता जल रखने और प्रोक्षणी इसलिये है कि उससे हाथ धोने को जल लेना सुगम है। पश्चात् उस घी को अच्छे प्रकार देख लेवे फिर इन मन्त्रों से होम करे॥

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा। स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा॥

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर एक २ आहुति देवे और जो अधिक आहुति देना हो तोः—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒ता॒नि॒ परा॑ सुव। यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व॥ [यजु० अ० ३०। ३]

इस मन्त्र और पूर्वोक्त गायत्री मन्त्र से आहुति देवें। "ओं, भूः" और "प्राणः" आदि ये सब नाम परमेश्वर के हैं। इनके अर्थ कह चुके हैं। "स्वाहा" शब्द का अर्थ यह है कि जैसा ज्ञान आत्मा में हो वैसा ही जीभ से

बोले, विपरीत नहीं। जैसे परमेश्वर ने सब प्राणियों के सुख के अर्थ इस सब जगत् के पदार्थ रचे हैं वैसे मनुष्यों को भी परोपकार करना चाहिये॥

(प्रश्न) होम से क्या उपकार होता है? (उत्तर) सब लोग जानते हैं कि दुर्गन्धयुक्त वायु और जल से रोग, रोग से प्राणियों को दुःख और सुगन्धित वायु तथा जल से आरोग्य और रोग के नष्ट होने से सुख प्राप्त होता है। (प्रश्न) चन्दनादि घिसके किसी के लगावे या घृतादि खाने को देवे तो बड़ा उपकार हो। अग्नि में डाल के व्यर्थ नष्ट करना बुद्धिमानों का काम नहीं। (उत्तर) जो तुम पदार्थविद्या जानते तो कभी ऐसी बात न कहते क्योंकि किसी द्रव्य का अभाव नहीं होता। देखो जहां होम होता है वहां से दूर देश में स्थित पुरुष के नासिका से सुगन्ध का ग्रहण होता है वैसे दुर्गन्ध का भी। इतने ही से समझलो कि अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म हो के फैल के वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है। ((प्रश्न) जब ऐसा ही है तो केशर, कस्तूरी, सुगन्धित पुष्प और अतर आदि के घर में रखने से सुगन्धित वायु होकर सुखकारक होगा। (उत्तर) उस सुगन्ध का वह सामर्थ्य नहीं है कि गृहस्थ वायु को बाहर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवेश करा सके क्योंकि उस में भेदक शक्ति नहीं है और अग्नि ही का सामर्थ्य है कि उस वायु और दुर्गन्धयुक्त पदार्थों को छिन्न भिन्न और हलका करके बाहर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है। (प्रश्न) तो मन्त्र पढ़ के होम करने का क्या प्रयोजन है? (उत्तर) मन्त्रों में वह व्याख्यान है कि जिससे होम करने के लाभ विदित होजायँ और मन्त्रों की आवृत्ति होने से कण्ठस्थ रहें वेद पुस्तकों का पठन पाठन और रक्षा भी होवे। (प्रश्न) क्या इस होम करने के विना पाप होता है? (उत्तर) हां! क्योंकि जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न हो के वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त करता है उतना ही पाप उस मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये। और खिलाने पिलाने से उसी एक व्यक्ति

Phisical Science

को सुखविशेष होता है। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। परन्तु जो मनुष्य लोग घृतादि उत्तम पदार्थ न खावें तो उनके शरीर और आत्मा के बल की उन्नति न होसके, इससे अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये, परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है इसलिये होम करना अत्यावश्यक है। (प्रश्न) प्रत्येक मनुष्य कितनी आहुति करे और एक २ आहुति का कितना परिमाण है? (उत्तर) प्रत्येक मनुष्य को सोलह २ आहुति और छः २ माशे घृतादि एक २ आहुति का परिमाण न्यून से न्यून चाहिये और जो इससे अधिक करे तो बहुत अच्छा है। इसलिये आर्यवरशिरोमणि महाशय ऋषि, महर्षि, राजे, महाराजे, लोग बहुतसा होम करते और कराते थे। जबतक इस होम करने का प्रचार रहा तबतक आर्यावर्त्त देश रोगों से रहित और सुखों से पूरित था, अब भी प्रचार हो तो वैसा ही होजाय। ये दो यज्ञ अर्थात् ब्रह्मयज्ञ जो पढ़ना पढ़ाना संध्योपासन ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना, दूसरा देवयज्ञ जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त यज्ञ और विद्वानों की सेवा संग करना परन्तु ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र का ही करना होता है॥

ब्राह्मणस्त्रयाणां वर्णानामुपनयनं कर्त्तुमर्हति। राजन्यो द्वयस्य। वैश्यो वैश्यस्यैवेति। शूद्रमपि कुलगुणसम्पन्नं मन्त्रवर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान के दूसरे अध्याय का वचन है। ब्राह्मण तीनों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य; क्षत्रिय क्षत्रिय और वैश्य; तथा वैश्य एक वैश्य वर्ण का यज्ञोपवीत कराके पढ़ा सकता है। और जो कुलीन शुभलक्षणयुक्त शूद्र हो तो उसको मन्त्रसंहिता छोड़ के सब शास्त्र पढ़ावे, शूद्र पढ़े परन्तु उसका उपनयन न करे, यह मत अनेक आचार्यों का है। पश्चात् पांचवें वा आठवें वर्ष से लड़के लड़कों की पाठशाला में और लड़की लड़कियों की पाठशाला में जावें। और निम्नलिखित नियमपूर्वक अध्ययन का आरम्भ करें॥

षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्य्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम् ।
तदर्धिकं पादिकं वा ग्रहणान्तिकमेव वा ॥
मनु० [अ० ३ । १]

अर्थ—आठवें वर्ष से आगे छत्तीसवें वर्ष पर्यन्त अर्थात् एक २ वेद के साङ्गोपाङ्ग पढ़ने में बारह २ वर्ष मिल के छत्तीस और आठ मिल के चवालीस अथवा अठारह वर्षों का ब्रह्मचर्य और आठ पूर्व के मिल के छब्बीस वा नौ वर्ष तथा जब तक विद्या पूरी ग्रहण न कर लेवे तबतक ब्रह्मचर्य रक्खे ॥

पुरुषो वाव यज्ञस्तस्य यानि चतुर्विंꣳशति वर्षाणि तत्प्रातःसवनं, चतुर्विंꣳशत्यक्षरा गायत्री गायत्रं प्रातःसवनं, तदस्य वसवोऽन्वायत्ताः प्राणा वाव वसव एते हीदꣳ सर्वं वासयन्ति ॥ १ ॥

तञ्चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा वसव इदं मे प्रातः सवनं माध्यन्दिनꣳसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानां वसूनां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ २ ॥

अथ यानि चतुश्चत्वारिꣳशद्वर्षाणि तन्माध्यन्दिनꣳ सवनं चतुश्चत्वारिꣳशदक्षरा त्रिष्टुप् त्रैष्टुभं माध्यंदिनꣳ सवनं तदस्य रुद्रा अन्वायत्ताः प्राणा वाव रुद्रा एते हीदꣳ सर्वꣳ रोदयन्ति ॥ ३ ॥

तं चेदेतस्मिन्वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात्प्राणा रुद्रा इदं मे माध्यंदिनꣳ सवनं तृतीयसवनमनुसन्तनुतेति माहं प्राणानाꣳरुद्राणां मध्ये यज्ञो विलोप्सीत्युद्धैव तत एत्यगदो ह भवति ॥ ४ ॥

अथ यान्यष्टाचत्वारिꣳशद्वर्षाणि तत्तृतीयसवनमष्टाचत्वारिꣳशदक्षरा जगती जागतं तृतीयसवनं तदस्यादित्यान्वायत्ताः प्राणा वावादित्या एते हीदꣳ सर्वमाददते ॥ ५ ॥

तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमायुरनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति ॥ ६ ॥

यह छान्दोग्योपनिषद् [प्रपाठक ३ खण्ड १६] का वचन है । ब्रह्मचर्य तीन प्रकार का होता है कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम, उनमें से कनिष्ठ—जो पुरुष अन्नरसमय देह और पुरि अर्थात् देह में शयन करनेवाला जीवात्मा यज्ञ अर्थात् अतीव शुभगुणों से सङ्गत और सत्कर्त्तव्य है इसको आवश्यक है कि २४ वर्ष पर्य्यन्त जितेन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचारी रहकर वेदादि विद्या और सुशिक्षा का ग्रहण करे और विवाह करके भी लम्पटता न करे तो उसके शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं । इस प्रथम वय में जो उसको विद्याभ्यास में संतप्त करे और वह आचार्य वैसा ही उपदेश किया करे और ब्रह्मचारी ऐसा निश्चय रक्खे कि जो मैं प्रथम अवस्था में ठीक २ ब्रह्मचारी रहूंगा तो मेरा शरीर और आत्मा आरोग्य बलवान् होके शुभगुणों को वसानेवाले मेरे प्राण होंगे । हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार से सुखों का विस्तार करो, जो मैं ब्रह्मचर्य का लोप न करूं २४ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो प्रसिद्ध है कि रोगरहित रहूंगा और आयु भी मेरी ७० वा ८० वर्ष तक रहेगी । मध्यम ब्रह्मचर्य यह है—जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहकर वेदाभ्यास करता है उसके प्राण, इन्द्रियां, अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त हो के सब दुष्टों को रुलाने और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे होते हैं । जो मैं इसी प्रथम वय में जैसा आप कहते हैं कुछ तपश्चर्या करूं तो मेरे ये रुद्ररूप प्राणयुक्त यह मध्यम ब्रह्मचर्य सिद्ध होगा । हे ब्रह्मचारी लोगो ! तुम इस ब्रह्मचर्य को बढ़ाओ जैसे मैं इस ब्रह्मचर्य का लोप न करके यज्ञस्वरूप होता हूं और उसी आचार्यकुल से आता और रोगरहित होता हूं जैसा कि यह ब्रह्मचारी अच्छा काम करता है वैसा तुम किया करो । उत्तम ब्रह्मचर्य ४८ वर्ष पर्यन्त का तीसरे प्रकार का होता है, जैसे ४८ अक्षर की जगती वैसे जो ४८ वर्ष पर्यन्त यथावत् ब्रह्मचर्य करता है, उसके प्राण अनुकूल होकर सकल विद्याओं का ग्रहण

करते हैं। जो आचार्य और माता पिता अपने सन्तानों को प्रथम वय में विद्या और गुणग्रहण के लिये तपस्वी कर और उसी का उपदेश करें और वे सन्तान आप ही आप अखण्डित ब्रह्मचर्य सेवन से तीसरे उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चारसौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ावें वैसे तुम भी बढ़ाओ। क्योंकि जो मनुष्य इस ब्रह्मचर्य को प्राप्त होकर लोप नहीं करते वे सब प्रकार के रोगों से रहित होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥

चतस्रोऽवस्थाः शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं सम्पूर्णता किञ्चित्परिहाणिश्चेति। आषोडशाद्वृद्धिः। आपञ्चविंशतेर्यौवनम्। आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता। ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति ॥

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥

यह सुश्रुत के सूत्रस्थान ३५ अध्याय का वचन है। इस शरीर की चार अवस्था हैं एक (वृद्धि) जो १६ वें वर्ष से लेके २५ वें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की बढ़ती होती है। दूसरी (यौवन) जो २५ वें वर्ष के अन्त और २६ वें वर्ष के आदि में युवावस्था का आरम्भ होता है। तीसरी (सम्पूर्णता) जो पच्चीसवें वर्ष से लेके चालीसवें वर्ष पर्यन्त सब धातुओं की पुष्टि होती है। चौथी (किञ्चित्परिहाणि) जब सब साङ्गोपाङ्ग शरीरस्थ सकल धातु पुष्ट होके पूर्णता को प्राप्त होते हैं। तदनन्तर जो धातु बढ़ता है वह शरीर में नहीं रहता, किन्तु स्वप्न, प्रस्वेदादि द्वारा बाहर निकल जाता है, वही ४० वां वर्ष उत्तम समय विवाह का है अर्थात् उत्तमोत्तम तो अड़तालीसवें वर्ष में विवाह करना। (प्रश्न) क्या यह ब्रह्मचर्य का नियम स्त्री वा पुरुष दोनों का तुल्य ही है? (उत्तर) नहीं जो २५ वर्ष पर्यन्त पुरुष ब्रह्मचर्य करे तो १६ सोलह वर्ष पर्यन्त कन्या, जो पुरुष ३० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे तो स्त्री १७ वर्ष, जो पुरुष ३६ वर्ष तक रहे तो स्त्री १८ वर्ष, जो पुरुष ४० वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २० वर्ष, जो पुरुष ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २२ वर्ष, जो पुरुष

४८ वर्ष ब्रह्मचर्य करे तो स्त्री २४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य सेवन रक्खे अर्थात् ४८ वें वर्ष से आगे पुरुष और २४ वें वर्ष से आगे स्त्री को ब्रह्मचर्य न रखना चाहिये, परन्तु यह नियम विवाह करने वाले पुरुष और स्त्रियों का है और जो विवाह करना ही न चाहें वे मरण पर्यन्त ब्रह्मचारी रह सकते हों तो भले ही रहें परन्तु यह काम पूर्ण विद्यावाले जितेन्द्रिय और निर्दोष योगी स्त्री और पुरुष का है। यह बड़ा कठिन काम है कि जो काम के वेग को थांभ के इन्द्रियों को अपने वश में रखना।

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च। दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अग्निहोत्रश्च स्वाध्यायप्रवचने च। अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च। मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च। प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च॥

यह तैत्तिरीयोपनिषद् [प्रपा० ७। अनु० ९] का वचन है। पढ़ने पढ़ानेवालों के नियम हैं। (ऋतं०) यथार्थ आचरण से पढ़ें और पढ़ावें (सत्यं०) सत्याचार से सत्य विद्याओं को पढ़ें वा पढ़ावें (तपः०) तपस्वी अर्थात् धर्मानुष्ठान करते हुए वेदादि शास्त्रों को पढ़ें और पढ़ावें (दमः०) बाह्य इन्द्रियों को बुरे आचरणों से रोक के पढ़ें और पढ़ाते जायें (शमः०) मन की वृत्ति को सब प्रकार के दोषों से हटा के पढ़ते पढ़ाते जायें (अग्नयः०) आहवनीयादि अग्नि और विद्युत् आदि को जान के पढ़ते पढ़ाते जायें और (अग्निहोत्रं०) अग्निहोत्र करते हुए पठन और पाठन करें करावें (अतिथयः०) अतिथियों की सेवा करते हुए पढ़ें और पढ़ावें (मानुषं०) मनुष्यसम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करते हुए पढ़ते पढ़ाते रहैं (प्रजा०) सन्तान और राज्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें (प्रजन०) वीर्य की रक्षा और वृद्धि करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें (प्रजातिः०) अपने सन्तान और शिष्य का पालन करते हुए पढ़ते पढ़ाते जायें॥

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः ।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥

मनु० [अ० ४ । २०४]

यम पांच प्रकार के होते हैं ॥

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥

योग० [साधनपादे सूत्र ३०]

अर्थात् (अहिंसा) वैरत्याग (सत्य) सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना (अस्तेय) अर्थात् मन वचन कर्म से चोरी त्याग (ब्रह्मचर्य) अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम (अपरिग्रह) अत्यन्त लोलुपता स्वत्वाभिमान-रहित होना इन पांच यमों का सेवन सदा करें, केवल नियमों का सेवन अर्थात्:—

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥

योग० [साधनपादे सू० ३२]

(शौच) अर्थात् स्नानादि से पवित्रता (सन्तोष) सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं किन्तु पुरुषार्थ जितना होसके उतना करना हानि लाभ में हर्ष वा शोक न करना (तप) अर्थात् कष्टसेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान (स्वाध्याय) पढ़ना पढ़ाना (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर की भक्तिविशेष से आत्मा को अर्पित रखना ये पांच नियम कहाते हैं । यमों के विना केवल इन नियमों का सेवन न करे किन्तु इन दोनों का सेवन किया करे जो यमों का सेवन छोड़ के केवल नियमों का सेवन करता है वह उन्नति को नहीं प्राप्त होता किन्तु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है:—

कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥

मनु० [अ० २ । २८]

अर्थ—अत्यन्त कामातुरता और निष्कामता किसी के लिये भी श्रेष्ठ नहीं क्योंकि जो कामना न करे तो वेदों का ज्ञान और वेदविहित कर्मादि उत्तम कर्म किसी से न होसकें इसलिये:—

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥
मनु० [अ० २ । २८]

अर्थ—(स्वाध्याय) सकल विद्या पढ़ने पढ़ाने (व्रत) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि नियम पालने (होम) अग्निहोत्रादि होम सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग और सत्य विद्याओं का दान देने (त्रैविद्येन) वेदस्थ कर्मोपासना ज्ञान विद्या के ग्रहण (इज्यया) पक्षेष्ट्यादि करने (सुतैः) सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैः) ब्रह्म, देव, पितृ, वैश्वदेव और अतिथियों के सेवनरूप पंचमहायज्ञ और (यज्ञैः) अग्निष्टोमादि तथा शिल्पविद्या विज्ञानादि यज्ञों के सेवन से इस शरीर को ब्राह्मी अर्थात् वेद और परमेश्वर की भक्ति का आधाररूप ब्राह्मण का शरीर किया जाता है । इतने साधनों के विना ब्राह्मण-शरीर नहीं बन सकता:—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥
मनु० [२ । ८८]

अर्थ—जैसे विद्वान् सारथि घोड़ों को नियम में रखता है वैसे मन और आत्मा को खोटे कामों में खैंचनेवाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे क्योंकि—

इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥
मनु० [२ । ९३]

अर्थ—जीवात्मा इन्द्रियों के वश होके निश्चित बड़े २ दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश में करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है:—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥
मनु० [२ । ९७]

जो दुष्टाचारी अजितेन्द्रिय पुरुष है उसके वेद, त्याग, यज्ञ, नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होतेः—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यिके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि ॥ १ ॥
नैत्यिके नास्त्यनध्यायो ब्रह्मसत्रं हि तत्स्मृतम् ।
ब्रह्माहुतिहुतं पुण्यमनध्यायवषट्कृतम् ॥ २ ॥
मनु० [२ । १०५ । १०६]

वेद के पढ़ने पढ़ाने, सन्ध्योपासनादि पंचमहायज्ञों के करने और होम मन्त्रों में अनध्यायविषयक अनुरोध (आग्रह) नहीं है क्योंकि ॥ १ ॥ नित्य कर्म में अनध्याय नहीं होता जैसे श्वास प्रश्वास सदा लिये जाते हैं बन्द नहीं किये जा सकते वैसे नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिये न किसी दिन छोड़ना क्योंकि अनध्याय में भी अग्निहोत्रादि उत्तम कर्म किया हुआ पुण्यरूप होता है जैसे झूठ बोलने में सदा पाप और सत्य बोलने में सदा पुण्य होता है वैसे ही बुरे कर्म करने में सदा अनध्याय और अच्छे कर्म करने में सदा स्वाध्याय ही होता है ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम् ॥
मनु० [२ । १२१]

जो सदा नम्र सुशील विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसका आयु, विद्या, कीर्त्ति और बल ये चार सदा बढ़ते हैं और जो ऐसा नहीं करते उनके आयु आदि चार नहीं बढ़ते ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ।
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ १ ॥
यस्य वाङ्मनसे शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ २ ॥
मनु० [२ । १५९ । १६०]

विद्वान् और विद्यार्थियों को योग्य है कि वैरबुद्धि छोड़ के सब मनुष्यों को कल्याण के मार्ग का उपदेश करें और उपदेष्टा सदा मधुर सुशीलतायुक्त वाणी बोलें । जो धर्म की उन्नति चाहे वह सदा सत्य में चले और सत्य ही का उपदेश करे ॥ १ ॥ जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध तथा सुरक्षित सदा रहते हैं वही सब वेदान्त अर्थात् सब वेदों के सिद्धान्तरूप फल को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

संमानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव ।
अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥
मनु० [२ । १६२]

वही ब्राह्मण समग्र वेद और परमेश्वर को जानता है जो प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरता है और अपमान की इच्छा अमृत के समान किया करता है ॥

अनेन क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्विजः शनैः ।
गुरौ वसन् संश्चिनुयाद् ब्रह्माधिगमिकं तपः ॥
मनु० [२ । १६४]

इसी प्रकार से कृतोपनयन द्विज ब्रह्मचारी कुमार और ब्रह्मचारिणी कन्या धीरे २ वेदार्थ के ज्ञानरूप उत्तम तप को बढ़ाते चले जायें ॥

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
मनु० [२ । १६८]

True knowledge — जो वेद को न पढ़ के अन्यत्र श्रम किया करता है वह अपने पुत्र पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त होजाता है ॥

वर्जयेन्मधु मांसञ्च गन्धं माल्यं रसान् स्त्रियः ।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ १ ॥
अभ्यङ्गमञ्जनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् ।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनम् ॥ २ ॥
द्यूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम् ।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भमुपघातं परस्य च ॥ ३ ॥
एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन्रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ ४ ॥
मनु० [२ । १७७-१८०]

ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी मद्य, मांस, गन्ध, माला, रस, स्त्री और पुरुष का सङ्ग, सब खटाई, प्राणियों की हिंसा ॥ १ ॥ अङ्गों का मर्दन, विना निमित्त उपस्थेन्द्रिय का स्पर्श, आंखों में अञ्जन, जूते और छत्र का धारण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, नाच, गान और बाजा बजाना ॥ २ ॥ द्यूत, जिस किसी की कथा, निन्दा, मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन, आश्रय, दूसरे की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें ॥ ३ ॥ सर्वत्र एकाकी सोवे वीर्य्यस्खलित कभी न करें, जो कामना से वीर्य्यस्खलित करदे तो जानो कि अपने ब्रह्मचर्य्यव्रत का नाश कर दिया ॥ ४ ॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति । सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । धर्मान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् । मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि ।

यान्यस्माकꣳसुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि । ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासनेन प्रश्वसितव्यम् । श्रद्धया देयम् । अश्रद्धया देयम् । श्रिया देयम् । ह्रिया देयम् । भिया देयम् । संविदा देयम् । अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युर्यथा ते तत्र वर्त्तेरन् । तथा तत्र वर्त्तेथाः । एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमु चैतदुपास्यम् ॥ तैत्तिरीय० [प्रपा० ७ । अनु० ११ । कं० १ । २ । ३ । ४]

आचार्य्य अन्तेवासी अर्थात् अपने शिष्य और शिष्याओं को इस प्रकार उपदेश करे कि तू सदा सत्य बोल, धर्माचरण कर, प्रमादरहित होके पढ़ पढ़ा, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं को ग्रहण और आचार्य्य के लिये प्रिय धन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर, प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़, प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर, प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से उत्तम ऐश्वर्य की वृद्धि को मत छोड़, प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़, देव=विद्वान् और माता पितादि की सेवा में प्रमाद मत कर । जैसे विद्वान् का सत्कार करे उसी प्रकार माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा सदा किया कर । जो अनिन्दित धर्मयुक्त कर्म हैं उन सत्यभाषणादि को किया कर, उनसे भिन्न मिथ्याभाषणादि कभी मत कर । जो हमारे सुचरित्र अर्थात् धर्मयुक्त कर्म हों उनका ग्रहण कर और जो हमारे पापाचरण हों उनको कभी मत कर, जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर, श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिये । जब कभी तुझ को कर्म वा शील तथा उपासना ज्ञान में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो तो जो वे विचारशील पक्षपातरहित योगी अयोगी आर्द्रचित्त धर्म की कामना करनेवाले धर्मात्मा जन हों जैसे वे धर्ममार्ग में वर्त्तें वैसे तू भी उसमें वर्त्ता कर । यही आदेश आज्ञा यही उपदेश यही वेद

की उपनिषत् और यही शिक्षा है। इसी प्रकार वर्त्तना और अपना चालचलन सुधारना चाहिये ॥

अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥
मनु० [२ । ४]

मनुष्यों को निश्चय करना चाहिये कि निष्काम पुरुष में नेत्र का संकोच विकाश का होना भी सर्वथा असम्भव है इससे यह सिद्ध होता है कि जो २ कुछ भी करता है वह २ चेष्टा कामना के विना नहीं है ॥

Ethical duty

आचारः परमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ।
तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः ॥ १ ॥
आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते ।
आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाग्भवेत् ॥ २ ॥
मनु० [१ । १०८ । १०९]

कहने, सुनने, सुनाने, पढ़ने, पढ़ाने का फल यही है कि जो वेद और वेदानुकूल स्मृतियों में प्रतिपादित धर्म का आचरण करना इसलिये धर्माचार में सदा युक्त रहे ॥ १ ॥ क्योंकि जो धर्माचरण से रहित है वह वेदप्रतिपादित धर्म-जन्य सुखरूप फल को प्राप्त नहीं हो सकता और जो विद्या पढ़ के धर्माचरण करता है वही सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥
मनु० [२ । ११]

जो वेद और वेदानुकूल आप्त पुरुषों के किये शास्त्रों का अपमान करता है उस वेदनिन्दक नास्तिक को जाति, पङ्क्ति और देश से बाह्य कर देना चाहिये, क्योंकि:—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥
मनु० [२ । १२]

वेद, स्मृति, वेदानुकूल आप्तोक्त मनुस्मृत्यादि शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार जो सनातन अर्थात् वेदद्वारा परमेश्वरप्रतिपादित कर्म्म और अपने आत्मा में प्रिय अर्थात् जिसको आत्मा चाहता है जैसा कि सत्यभाषण, ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्माधर्म का निश्चय होता है जो पक्षपातरहित न्याय सत्य का ग्रहण असत्य का सर्वथा परित्यागरूप आचार है उसी का नाम धर्म और इससे विपरीत जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहणरूप कर्म है उसी को अधर्म कहते हैं ॥

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥
मनु० [२ । १३]

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) स्त्रीसेवनादि में नहीं फंसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय विना वेद के ठीक २ नहीं होता ॥

इस प्रकार आचार्य्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें । क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती । क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं । जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण

पाखण्ड ही में फस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य-शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या धर्म राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करनेहारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते और जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सका। इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलानेवाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलानेवाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह २ अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है—परीक्षा पांच प्रकार से होती है। एक—जो २ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो २ सृष्टिक्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है जैसे कोई कहे कि विना माता पिता के योग से लड़का उत्पन्न हुआ ऐसा कथन सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से सर्वथा असत्य है। तीसरी—"आप्त" अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह २ ग्राह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अग्राह्य है। चौथी—अपने आत्मा की पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूंगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पांचवीं—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव इनमें से प्रत्यक्ष के लक्षणादि में जो २ सूत्र नीचे लिखेंगे वे २ सब न्यायशास्त्र के प्रथम और द्वितीय अध्याय के जानो॥

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकम्प्रत्यक्षम् ॥ न्यायसू० । अ० १ । आह्निक १ । सूत्र ४ ॥

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण का शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरणरहित सम्बन्ध होता है, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्मा के संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश्य अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो । जैसा किसी ने किसी से कहा कि "तू जल ले आ" वह लाके उसके पास धर के बोला कि "यह जल है" परन्तु वहां "जल" इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मंगानेवाला नहीं देख सकता है । किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्दप्रमाण का विषय है । "अव्यभिचारि" जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भज्ञान रहा ऐसे विनाशिज्ञान का नाम व्यभिचारी है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता । "व्यवसायात्मक" किसी ने दूर से नदी की बालू को देख के कहा कि "वहां वस्त्र सूख रहे हैं जल है वा और कुछ है" "वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त" जबतक एक निश्चय न हो तबतक वह प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारि और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं ॥

दूसरा अनुमान—

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेषवत्सामान्यतो दृष्टञ्च ॥ न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं । जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख

के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक "पूर्ववत्" जैसे बादलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहां २ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह "पूर्ववत्"। दूसरा "शेषवत्" अर्थात् जहां कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो जैसे नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का, पुत्र को देख के पिता का, सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्त्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है * इसी को "शेषवत्" कहते हैं। तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी विना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना विना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न हो जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे विना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

तीसरा उपमान—

प्रसिद्धसाधर्म्यात्साध्यसाधनमुपमानम् ॥ न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान की सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तू विष्णुमित्र को बुलाला" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वैसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहां गया और देवदत्त के सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जङ्गल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है॥

* और पाप पुण्य के आचरण का, सुख दुःख देख के ज्ञान होता है।

चौथा शब्दप्रमाण—

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ न्या० । अ० १ । आ० १ । सू० ७ ॥

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय, सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् [जो] जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है । जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्दप्रमाण जानो ॥

पांचवां ऐतिह्य—

न चतुष्ट्वमैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावप्रामाण्यात् ॥
न्याय० । अ० २ । आ० २ । सू० १ ॥

जो इतिह अर्थात् इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवनचरित्र का नाम ऐतिह्य है ॥

छठा अर्थापत्ति—

"अर्थादापद्यते सा अर्थापत्तिः" केनचिदुच्यते "सत्सु घनेषु वृष्टिः सति कारणे कार्य्यं भवतीति किमत्र प्रसज्यते, असत्सु घनेषु वृष्टिरसति कारणे च कार्यं न भवति" जैसे किसी ने किसी से कहा कि "बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है" इससे विना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि विना बद्दल वर्षा और विना कारण के कार्य्य कभी नहीं हो सकता ॥

सातवां सम्भव—

"सम्भवति यस्मिन् स सम्भवः" कोई कहे कि " माता पिता के विना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, परमेश्वर का अवतार हुआ, मनुष्य के सींग देखे और

बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्योंकि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम से अनुकूल हो वही सम्भव है॥

आंठवां अभाव—

"न भवन्ति यस्मिन् सोऽभावः" जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हाथी ले आ" वह वहां हाथी का अभाव देखकर जहां हाथी था वहां से ले आया। ये आठ प्रमाण। इनमें से जो शब्द में ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं। इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं॥

धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्॥ वैशेषिक। अ० १। आ० १। सू० ४॥

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर "साधर्म्य" अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्त्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से "निःश्रेयसम्" मोक्ष को प्राप्त होता है॥

पृथिव्याऽपस्तेजोवायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि॥
वै०। अ० १। आ० १। सू० ५॥

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव द्रव्य हैं॥

क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्॥
वै०। अ० १। आ० १। सू० १५॥

"क्रियाश्च गुणाश्च विद्यन्ते यस्मिंस्तत् क्रियागुणवत्" जिसमें क्रियागुण और केवल गुण रहें उसको द्रव्य कहते हैं। उनमें से पृथिवी, जल, तेज, वायु, मन और आत्मा ये छः द्रव्य क्रिया और गुणवाले हैं। तथा आकाश, काल और दिशा ये तीन क्रियारहित गुणवाले हैं। (समवायि) "समवेतुं शीलं यस्य तत् समवायि, प्राग्वृत्तित्वं कारणं समवायि च तत्कारणं च समवायिकारणम्" "लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्" जो मिलने के स्वभावयुक्त कार्य से कारण पूर्वकालस्थ हो उसी को द्रव्य कहते हैं जिससे लक्ष्य जाना जाय जैसा आंख से रूप जाना जाता है उसको लक्षण कहते हैं॥

रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी॥ वै०। अ० २। आ० १। सू० १॥

रूप, रस, गन्ध स्पर्शवाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस और स्पर्श अग्नि जल और वायु के योग से हैं॥

व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः॥ वै०। अ० २। आ० २। सू० २॥

पृथिवी में गन्ध गुण स्वाभाविक है। वैसे ही जल में रस, अग्नि में रूप, वायु में स्पर्श, और आकाश में शब्द स्वाभाविक है॥

रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः॥
वै०। अ० २। आ० १। सू० २॥

रूप, रस और स्पर्शवान् द्रवीभूत और कोमल जल कहाता है। परन्तु इनमें जल का रस स्वाभाविक गुण तथा रूप स्पर्श अग्नि और वायु के योग से हैं॥

अप्सु शीतता॥ वै०। अ० २। आ० २। सू० ५॥

और जल में शीतलत्व गुण भी स्वाभाविक है॥

तेजो रूपस्पर्शवत्॥ वै०। अ० २। आ० १। सू० ३॥

जो रूप और स्पर्शवाला है वह तेज है। परन्तु इसमें रूप स्वाभाविक और स्पर्श वायु के योग से है ॥

स्पर्शवान् वायुः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० ४ ॥

स्पर्श गुणवाला वायु है। परन्तु इसमें भी उष्णता, शीतता, तेज और जल के योग से रहते हैं ॥

त आकाशे न विद्यन्ते ॥ वै० । [अ० २ । आ० १ । सू० ५]

रूप, रस, गन्ध और स्पर्श आकाश में नहीं हैं। किन्तु शब्द ही आकाश का गुण है ॥

निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम् ॥
वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २० ॥

जिसमें प्रवेश और निकलना होता है वह आकाश का लिङ्ग है ॥

कार्य्यान्तराप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः ॥
वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २५ ॥

अन्य पृथिवी आदि कार्यों से प्रकट न होने से शब्द स्पर्श गुणवाले भूमि आदि का गुण नहीं है। किन्तु शब्द आकाश ही का गुण है ॥

अपरस्मिन्नपरं युगपच्चिरं क्षिप्रमिति काललिङ्गानि ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ६ ॥

जिसमें अपर पर (युगपत्) एकवार (चिरम्) विलम्ब (क्षिप्रम्) शीघ्र इत्यादि प्रयोग होते हैं उसको काल कहते हैं ॥

नित्येष्वभावादनित्येषु भावात्कारणे कालाख्येति ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० ९ ॥

जो नित्य पदार्थों में न हो और अनित्यों में हो इसलिये कारण में ही काल संज्ञा है ॥

इत इदमिति यतस्तद्दिश्यं लिङ्गम् ॥ वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १० ॥

यहां से यह पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे जिसमें यह व्यवहार होता है उसी को दिशा कहते हैं ॥

आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १४ ॥

जिस ओर प्रथम आदित्य को संयोग हुआ, है, होगा, उसको पूर्व दिशा कहते हैं । और जहां अस्त हो उसको पश्चिम कहते हैं पूर्वाभिमुख मनुष्य के दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर दिशा कहाती है ॥

एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि ॥
वै० । अ० २ । आ० २ । सू० १६ ॥

इससे पूर्व दक्षिण के बीच की दिशा को आग्नेयी, दक्षिण पश्चिम के बीच को नैर्ऋति, पश्चिम उत्तर के बीच को वायवी और उत्तर पूर्व के बीच को ऐशानी दिशा कहते हैं ॥

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥
न्याय० । अ० १ । सू० १० ॥

जिसमें (इच्छा) राग, (द्वेष) वैर, (प्रयत्न) पुरुषार्थ, सुख, दुःख, (ज्ञान) जानना गुण हों वह जीवात्मा [कहाता] है । वैशेषिक में इतना विशेष है ॥

प्राणाऽपाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ वै० । अ० ३ । आ० २ । सू० ४ ॥

(प्राण) भीतर से वायु को निकालना (अपान) बाहर से वायु को भीतर लेना (निमेष) आंख को नीचे ढांकना (उन्मेष) आंख को ऊपर उठाना (जीवन) प्राण का धारण करना (मनः) मनन विचार अर्थात् ज्ञान (गति) यथेष्ट गमन करना (इन्द्रिय) इन्द्रियों को विषयों में चलाना उनसे विषयों का ग्रहण करना (अन्तर्विकार) क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिङ्ग अर्थात् कर्म और गुण हैं ॥

युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ॥
न्याय० । अ० १ । आ० १ । सू० १६ ॥

जिससे एक काल में दो पदार्थों का ग्रहण ज्ञान नहीं होता उसको मन कहते हैं । यह द्रव्य का स्वरूप और लक्षण कहा अब गुणों को कहते हैंः—

रूपरसगन्धस्पर्शाः संख्यापरिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ परत्वाऽपरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म और शब्द ये २४ गुण कहाते हैं ॥

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १६ ॥

गुण उसको कहते हैं कि जो द्रव्य के आश्रय रहे अन्य गुण का धारण न करे संयोग और विभाग में कारण न हो (अनपेक्ष) अर्थात् एक दूसरे की अपेक्षा न करे ॥

श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाऽभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः ॥ महाभाष्ये ॥

जिसकी श्रोत्रों से प्राप्ति, जो बुद्धि से ग्रहण करने योग्य और प्रयोग से प्रकाशित तथा आकाश जिसका देश है वह शब्द कहाता है। नेत्र से जिसका ग्रहण हो वह रूप, जिह्वा से जिस मिष्टादि अनेक प्रकार का ग्रहण होता है वह रस, नासिका से जिसका ग्रहण हो वह गन्ध, त्वचा से जिसका ग्रहण होता है वह स्पर्श, एक द्वि इत्यादि गणना जिससे होती है वह संख्या, जिससे तोल अर्थात् हलका भारी विदित होता है वह परिमाण, एक दूसरे से अलग होना वह पृथक्त्व, एक दूसरे के साथ मिलना वह संयोग, एक दूसरे से मिले हुए के अनेक टुकड़े होना वह विभाग, इससे यह पर है वह पर, उससे यह उरे है वह अपर, जिससे अच्छे बुरे का ज्ञान होता है वह बुद्धि, आनन्द का नाम सुख, क्लेश का नाम दुःख, इच्छा—राग, द्वेष—विरोध, (प्रयत्न) अनेक प्रकार का बल पुरुषार्थ, (गुरुत्व) भारीपन, (द्रवत्व) पिघलजाना, (स्नेह) प्रीति और चिकनापन, (संस्कार) दूसरे के योग से वासना का होना, (धर्म) न्यायाचरण और कठिनत्वादि, (अधर्म) अन्यायाचरण और कठिनता से विरुद्ध कोमलता ये चौबीस (२४) गुण हैं॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ७॥

"उत्क्षेपण" ऊपर को चेष्टा करना "अवक्षेपण" नीचे को चेष्टा करना "आकुञ्चन" सङ्कोच करना "प्रसारण" फैलाना "गमन" आना जाना घूमना आदि इनको कर्म कहते हैं। अब कर्म का लक्षण—

एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १७॥

"एकन्द्रव्यमाश्रय आधारो यस्य तदेकद्रव्यं न विद्यते गुणो यस्य यस्मिन् वा तदगुणं संयोगेषु विभागेषु चाऽपेक्षारहितं कारणं तत्कर्मलक्षणम्" अथवा "यत् क्रियते तत्कर्म, लक्ष्यते येन तल्लक्षणम्, कर्मणो लक्षणं कर्मलक्षणम्" द्रव्य

के आश्रित गुणों से रहित संयोग और विभाग होने में अपेक्षारहित कारण हो उसको कर्म्म कहते हैं ॥

द्रव्यगुणकर्मणां द्रव्यं कारणं सामान्यम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० १८ ॥

जो कार्य द्रव्य गुण और कर्म का कारण द्रव्य है वह सामान्य द्रव्य है ॥

द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम् ॥ वै० । अ० १ । आ० १ । सू० २३ ॥

जो द्रव्यों का कार्य द्रव्य है वह कार्यपन से सब कार्यों में सामान्य है ॥

द्रव्यत्वं गुणत्वं कर्मत्वञ्च सामान्यानि विशेषाश्च ॥
वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ५ ॥

द्रव्यों में द्रव्यपन गुणों में गुणपन कर्मों में कर्मपन ये सब सामान्य और विशेष कहाते हैं क्योंकि द्रव्यों में द्रव्यत्व सामान्य और गुणत्व कर्मत्व से द्रव्यत्व विशेष है इसी प्रकार सर्वत्र जानना ॥

सामान्यं विशेष इति बुद्ध्यपेक्षम् ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ३ ॥

सामान्य और विशेष बुद्धि की अपेक्षा से सिद्ध होते हैं । जैसे—मनुष्य व्यक्तियों में मनुष्यत्व सामान्य और पशुत्वादि से विशेष तथा स्त्रीत्व और पुरुषत्व इनमें ब्राह्मणत्व क्षत्रियत्व वैश्यत्व शूद्रत्व भी विशेष हैं। ब्राह्मण व्यक्तियों में ब्राह्मणत्व सामान्य और क्षत्रियादि से विशेष हैं इसी प्रकार सर्वत्र जानो ॥

इहेदमिति यतः कार्यकारणयोः स समवायः ॥
वै० । अ० ७ । आ० २ । सू० २६ ॥

कारण अर्थात् अवयवों में अवयवी कार्यों में क्रिया क्रियावान् गुण गुणी जाति व्यक्ति कार्य्य कारण अवयव अवयवी इनका नित्य सम्बन्ध होने से

समवाय कहाता है और जो दूसरा द्रव्यों का परस्पर सम्बन्ध होता है वह संयोग अर्थात् अनित्य सम्बन्ध है ॥

द्रव्यगुणयोः सजातीयारम्भकत्वं साधर्म्यम् ॥
वै० । अ० १ । आ० १ । सू० ६ ॥

जो द्रव्य और गुण का समान जातीयक कार्य्य का आरम्भ होता है उसको साधर्म्य कहते हैं । जैसे पृथिवी में जड़त्व धर्म और घटादि कार्योत्पादकत्व स्वसदृश धर्म है वैसे ही जल में भी जड़त्व और हिम आदि स्वसदृश कार्य का आरम्भ पृथिवी के साथ जल का और जल के साथ पृथिवी का तुल्य धर्म है अर्थात् "द्रव्यगुणयोर्विजातीयारम्भकत्वं वैधर्म्यम्" यह विदित हुआ है कि जो द्रव्य और गुण का विरुद्ध धर्म और कार्य्य का आरम्भ है उसको वैधर्म्य कहते हैं जैसे पृथिवी में कठिनत्व शुष्कत्व और गन्धवत्व धर्म जल से विरुद्ध और जल का द्रवत्व कोमलता और रस गुणयुक्तता पृथिवी से विरुद्ध है ॥

कारणभावात्कार्यभावः ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० ३ ॥

कारण के होने ही से कार्य्य होता है ॥

न तु कार्याभावात्कारणाभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० २ ॥

कार्य के अभाव से कारण का अभाव नहीं होता ॥

कारणाऽभावात्कार्याऽभावः ॥ वै० । अ० १ । आ० २ । सू० १ ॥

कारण के न होने से कार्य कभी नहीं होता ॥

कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः ॥ वै० । अ० २ । आ० १ । सू० २४ ॥

जैसे कारण में गुण होते हैं वैसे ही कार्य्य में होते हैं । परिमाण दो प्रकार का है:—

अणुमहदिति तस्मिन्विशेषभावाद्विशेषाभावाच्च ॥
वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ११ ॥

(अणु) सूक्ष्म (महत्) बड़ा जैसे त्रसरेणु लिक्षा से छोटा और द्व्यणुक से बड़ा है तथा पहाड़ पृथिवी से छोटे वृक्षों से बड़े हैं ॥

सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ७ ॥

जो द्रव्य गुण और कर्मों में सत् शब्द अन्वित रहता है अर्थात् "सद् द्रव्यम्—सद् गुणः—सत्कर्म" सत् द्रव्य, सत् गुण, सत् कर्म, अर्थात् वर्त्तमान कालवाची शब्द का अन्वय सब के साथ रहता है ॥

भावोनुवृत्तेरेव हेतुत्वात्सामान्यमेव ॥

वै० । अ० १ । आ० २ । सू० ४ ॥

जो सब के साथ अनुवर्त्तमान होने से सत्तारूप भाव है सो महासामान्य कहाता है यह क्रम भावरूप द्रव्यों का है और जो अभाव है वह पांच प्रकार का होता है ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥

वै० । अ० ६ । आ० १ । सू० १ ॥

क्रिया और गुण के विशेष निमित्त के अभाव से प्राक्; अर्थात् पूर्व (असत्) न था जैसे घट, वस्त्रादि उत्पत्ति के पूर्व नहीं थे इसका नाम प्रागभाव ॥ दूसरा:—

सदसत् ॥ वै० । अ० ६ । आ० १ । सू० २ ॥

जो होके न रहे जैसे घट उत्पन्न होके नष्ट होजाय यह प्रध्वंसाभाव कहाता है ॥ तीसरा:—

सच्चासत् ॥ वै० । अ० ६ । आ० १ । सू० ४ ॥

जो होवे और न होवे जैसे "अगौरश्वोऽनश्वो गौः" यह घोड़ा गाय नहीं और गाय घोड़ा नहीं अर्थात् घोड़े में गाय का और गाय में घोड़े का अभाव और गाय में गाय घोड़े में घोड़े का भाव है। यह अन्योन्याभाव कहाता है॥ चौथाः—

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० ५ ॥

जो पूर्वोक्त तीनों अभावों से भिन्न है उसको अत्यन्ताभाव कहते हैं। जैसे—"नरशृङ्ग" अर्थात् मनुष्य का सींग "खपुष्प" आकाश का फूल और "बन्ध्यापुत्र" बन्ध्या का पुत्र इत्यादि ॥ पांचवांः—

नास्ति घटो गेह इति सतो घटस्य गेहसंसर्गप्रतिषेधः ॥
वै० । अ० ९ । आ० १ । सू० १० ॥

घर में घड़ा नहीं अर्थात् अन्यत्र है घर के साथ घड़े का सम्बन्ध नहीं है, ये पांच अभाव कहाते हैं ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥
वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १० ॥

इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या उत्पन्न होती है ॥

तद्दुष्टज्ञानम् ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० ११ ॥

जो दुष्ट अर्थात् विपरीत ज्ञान है उसको अविद्या कहते हैं ॥

अदुष्टं विद्या ॥ वै० । अ० ९ । आ० २ । सू० १२ ॥

जो अदुष्ट अर्थात् यथार्थ ज्ञान है उसको विद्या कहते हैं ॥

पृथिव्यादिरूपरसगन्धस्पर्शा द्रव्या नित्यत्वादनित्याश्च ॥
वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० २ ॥

एतेन नित्येषु नित्यत्वमुक्तम् ॥ वै० । अ० ७ । आ० १ । सू० ३ ॥

जो कार्यरूप पृथिव्यादि पदार्थ और उनमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, गुण हैं ये सब द्रव्यों के अनित्य होने से अनित्य हैं और जो इससे कारणरूप पृथिव्यादि नित्य द्रव्यों में गन्धादि गुण हैं वे नित्य हैं ॥

सदकारणवन्नित्यम् ॥ वै० । अ० ४ । आ० १ । सू० १ ॥

जो विद्यमान हो और जिसका कारण कोई भी न हो वह नित्य है अर्थात्:—"सत्कारणवदनित्यम्" जो कारणवाले कार्यरूप गुण हैं वे अनित्य कहाते हैं ॥

अस्येदं कार्यं कारणं संयोगि विरोधि समवायि चेति लैङ्गिकम् ॥ वै० । अ० ६ । आ० २ । सू० १ ॥

इसका यह कार्य वा कारण है इत्यादि समवायि, संयोगि, एकार्थसमवायि और विरोधि यह चार प्रकार का लैङ्गिक अर्थात् लिङ्गलिङ्गी के सम्बन्ध से ज्ञान होता है । "समवायि" जैसे आकाश परिमाणवाला है "संयोगि" जैसे शरीर त्वचावाला है इत्यादि का नित्य संयोग है "एकार्थसमवायि" एक अर्थ में दो का रहना जैसे कार्यरूप स्पर्श कार्य का लिङ्ग अर्थात् जनानेवाला है "विरोधि" जैसे हुई वृष्टि होनेवाली वृष्टि का विरोधी लिङ्ग है "व्याप्ति":—

नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः ॥
निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः ॥
आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः ॥ सांख्यसूत्र ॥
[अ० ५] २९ । ३१ । ३२ ॥

जो दोनों साध्य साधन अर्थात् सिद्ध करने योग्य और जिससे सिद्ध किया जाय उन दोनों अथवा एक, साधनमात्र का निश्चित धर्म का सहचार है उसी को व्याप्ति कहते हैं जैसे धूम और अग्नि का सहचार है ॥ २९ ॥ तथा व्याप्य जो धूम उसकी निज शक्ति से उत्पन्न होता है अर्थात् जब देशान्तर में दूर धूम जाता है तब विना अग्नियोग के भी धूम स्वयं रहता है । उसी का नाम व्याप्ति है अर्थात् अग्नि के छेदन, भेदन, सामर्थ्य से जलादि पदार्थ धूमरूप प्रकट होता

है ॥ ३१ ॥ जैसे महत्तत्त्वादि में प्रकृत्यादि की व्यापकता बुद्ध्यादि में व्याप्यता धर्म के सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है। जैसे शक्ति आधेयरूप और शक्तिमान् आधाररूप का सम्बन्ध है ॥ ३२ ॥ इत्यादि शास्त्रों के प्रमाणादि से परीक्षा करके पढ़ें और पढ़ावें। अन्यथा विद्यार्थियों को सत्य बोध कभी नहीं हो सकता जिस २ ग्रन्थ को पढ़ावें उस २ की पूर्वोक्त प्रकार से परीक्षा करके जो सत्य ठहरे वह २ ग्रन्थ पढ़ावें जो २ इन परीक्षाओं से विरुद्ध हों उन २ ग्रन्थों को न पढ़ें न पढ़ावें क्योंकिः—

लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः ॥

लक्षण जैसा कि "गन्धवती पृथिवी" जो पृथिवी है वह गन्धवाली है ऐसे लक्षण और प्रत्यक्षादि प्रमाण इनसे सब सत्याऽसत्य और पदार्थों का निर्णय हो जाता है इसके विना कुछ भी नहीं होता ॥

अथ पठनपाठनविधिः ॥

अब पढ़ने पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं—प्रथम पाणिनिमुनिकृत शिक्षा जो कि सूत्ररूप है उसकी रीति अर्थात् इस अक्षर का यह स्थान यह प्रयत्न यह करण है जैसे "प" इसका ओष्ठ स्थान, स्पृष्ट प्रयत्न और प्राण तथा जीभ की क्रिया करनी करण कहाता है इसी प्रकार यथायोग्य सब अक्षरों का उच्चारण माता पिता आचार्य सिखलावें। तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ जैसे "वृद्धिरादैच्" फिर पदच्छेद जैसे "वृद्धिः, आत्, ऐच् वा आदैच्" फिर समास "आच्च ऐच्च आदैच्" और अर्थ जैसे "आदैचां वृद्धिसंज्ञा क्रियते" अर्थात् आ, ऐ, औ की वृद्धि संज्ञा [कीजाती] है "तः परो यस्मात्स तपरस्तादपि परस्तपरः" तकार जिससे परे और जो तकार से भी परे हो वह तपर कहाता है इससे क्या सिद्ध हुआ जो आकार से परे त् और त् से परे ऐच् दोनों तपर हैं तपर का प्रयोजन यह है कि ह्रस्व और प्लुत की वृद्धि संज्ञा न हुई। उदाहरण (भागः) यहां "भज्" धातु से "घञ्" प्रत्यय के परे "घ, ञ्" की इत्संज्ञा होकर लोप होगया पश्चात् "भज् अ" यहां जकार के पूर्व भकारोत्तर

अकार को वृद्धिसंज्ञक आकार होगया है। तो भाज् पुनः "ज्" को ग् हो अकार के साथ मिलके "भागः" ऐसा प्रयोग हुआ। "अध्यायः" यहां अधि-पूर्वक "इङ्" धातु के ह्रस्व इ के स्थान में "घञ्" प्रत्यय के परे "ऐ" वृद्धि और उसको आय् हो मिल के "अध्यायः"। "नायकः" यहां "णीञ्" धातु के दीर्घ ईकार के स्थान में "ण्वुल्" प्रत्यय के परे "ऐ" वृद्धि और उसको आय् होकर मिल के "नायकः"। और "स्तावकः" यहां "स्तु" धातु से "ण्वुल्" प्रत्यय होकर ह्रस्व उकार के स्थान में औ वृद्धि आव् आदेश होकर अकार में मिल गया तो "स्तावकः"। (कृञ्) धातु से आगे "ण्वुल्" प्रत्यय ल् की इत्संज्ञा होके लोप "वु" के स्थान में अक आदेश और ऋकार के स्थान में "आर्" वृद्धि होकर "कारकः" सिद्ध हुआ। जो २ सूत्र आगे पीछे के प्रयोग में लगें उनका कार्य सब बतलाता जाय और स्लेट अथवा लकड़ी के पट्टे पर दिखला २ के कच्चा रूप धर के जैसे "भज्+घञ्+सु" इस प्रकार धर के प्रथम घकार का फिर ञ् का लोप होकर "भज्+अ+सु" ऐसा रहा फिर अ को आकार वृद्धि और ज् के स्थान में "ग्" होने से "भाग्+अ+सु" पुनः अकार में मिल जाने से "भाग+सु" रहा; अब उकार की इत्संज्ञा "स्" के स्थान में "रु" होकर पुनः उकार की इत्संज्ञा लोप होजाने पश्चात् "भागर्" ऐसा रहा अब रेफ के स्थान में (ः) विसर्जनीय होकर "भागः" यह रूप सिद्ध हुआ। जिस २ सूत्र से जो २ कार्य होता है उस उसको पढ़ पढ़ा के और लिखवा कर कार्य्य कराता जाय इस प्रकार पढ़ने पढ़ाने से बहुत शीघ्र दृढ़ बोध होता है। एक वार इसी प्रकार अष्टाध्यायी पढ़ा के धातुपाठ अर्थसहित और दश लकारों के रूप तथा प्रक्रिया सहित सूत्रों के उत्सर्ग अर्थात् सामान्य सूत्र जैसे "कर्मण्यण्" कर्म उपपद लगा हो तो धातुमात्र से अण् प्रत्यय हो जैसे "कुम्भकारः" पश्चात् अपवाद सूत्र जैसे "आतोऽनुपसर्गे कः" उपसर्गभिन्न कर्म उपपद लगा हो तो आकारान्त धातु से "क" प्रत्यय होवे अर्थात् जो बहुव्यापक जैसा कि कर्मोपपद लगा हो तो सब धातुओं से "अण्" प्राप्त होता है उससे विशेष अर्थात् अल्प विषय उसी पूर्व सूत्र के विषय में से आकारान्त धातु को "क" प्रत्यय ने ग्रहण कर लिया जैसे उत्सर्ग के विषय में अपवाद सूत्र की प्रवृत्ति होती है वैसे

अपवाद सूत्र के विषय में उत्सर्ग सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती। जैसे चक्रवर्त्ती राजा के राज्य में माण्डलिक और भूमिवालों की प्रवृत्ति होती है वैसे माण्डलिक राजादि के राज्य में चक्रवर्त्ती की प्रवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार पाणिनि महर्षि ने सहस्र श्लोकों के बीच में अखिल शब्द अर्थ और सम्बन्धों की विद्या प्रतिपादित करदी है। धातुपाठ के पश्चात् उणादिगण के पढ़ाने में सर्व सुबन्त का विषय अच्छे प्रकार पढ़ा के पुनः दूसरी वार शङ्का, समाधान, वार्त्तिक, कारिका, परिभाषा की घटनापूर्वक, अष्टाध्यायी की द्वितीयानुवृत्ति पढ़ावे। तदनन्तर महाभाष्य पढ़ावे। अर्थात् जो बुद्धिमान् पुरुषार्थी, निष्कपटी, विद्यावृद्धि के चाहने वाले नित्य पढ़ें पढ़ावें तो डेढ़ वर्ष में अष्टाध्यायी और डेढ़ वर्ष में महाभाष्य पढ़ के तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध कर पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। किन्तु जैसा बड़ा परिश्रम व्याकरण में होता है वैसा श्रम अन्य शास्त्रों में करना नहीं पड़ता और जितना बोध इनके पढ़ने से तीन वर्षों में होता है उतना बोध कुग्रन्थ अर्थात् सारस्वत, चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमादि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता। क्योंकि जो महाशय महर्षि लोगों ने सहजता से महान् विषय अपने ग्रन्थों में प्रकाशित किया है वैसा इन क्षुद्राशय मनुष्यों के कल्पित ग्रन्थों में क्योंकर हो सकता है। महर्षि लोगों का आशय, जहांतक होसके वहांतक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहांतक बने वहांतक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना। व्याकरण को पढ़ के यास्कमुनिकृत निघण्टु और निरुक्त छः वा आठ महीने में सार्थक पढ़ें और पढ़ावें। अन्य नास्तिककृत अमरकोशादि में अनेक वर्ष व्यर्थ न खोवें। तदनन्तर पिङ्गलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ जिससे वैदिक लौकिक छन्दों का परिज्ञान नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति भी यथावत् सीखें। इस ग्रन्थ और श्लोकों की रचना तथा प्रस्तार को चार महीने में सीख पढ़ पढ़ा सकते हैं। और वृत्तर-

ताकर आदि अल्पबुद्धिप्रकल्पित ग्रन्थों में अनेक वर्ष न खोवें । तत्पश्चात् मनुस्मृति वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के उद्योगपर्वान्तर्गत विदुरनीति आदि अच्छे २ प्रकरण जिनसे दुष्ट व्यसन दूर हों और उत्तमता सभ्यता प्राप्त हो वैसे को काव्यरीति से अर्थात् पदच्छेद, पदार्थोक्ति, अन्वय, विशेष्य विशेषण और भावार्थ को अध्यापक लोग जनावें और विद्यार्थी लोग जानते जायें । इनको वर्ष के भीतर पढ़लें । तदनन्तर पूर्वमीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त अर्थात् जहांतक बन सके वहांतक ऋषिकृत व्याख्यासहित अथवा उत्तम विद्वानों की सरलव्याख्यायुक्त छः शास्त्रों को पढ़ें पढ़ावें । परन्तु वेदान्त सूत्रों के पढ़ने के पूर्व ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक इन दश उपनिषदों को पढ़ के छः शास्त्रों के भाष्य वृत्तिसहित सूत्रों को दो वर्ष के भीतर पढ़ावें और पढ़ लेवें । पश्चात् छः वर्षों के भीतर चारों ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के सहित चारों वेदों के स्वर, शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तथा क्रियासहित पढ़ना योग्य है । इसमें प्रमाणः—

स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम् ।
योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा ॥ [निरुक्त १ । १८]

यह निरुक्त में मन्त्र है । जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष, डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाता है वैसे भारवाह अर्थात् भार का उठानेवाला है और जो वेद को पढ़ता और उनका यथावत् अर्थ जानता है वही सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके देहान्त के पश्चात् ज्ञान से पापों को छोड़ पवित्र धर्माचरण के प्रताप से सर्वानन्द को प्राप्त होता है ॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वं शृण्वन्न शृणोत्येनाम् । उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥ ऋ० ॥ मं० १० । सू० ७१ । मं० ४ ॥

जो अविद्वान् हैं वे सुनते हुए नहीं सुनते, देखते हुए नहीं देखते, बोलते हुए नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान् लोग इस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध का जाननेवाला है उसके लिये विद्या जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारण करती अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने करती है वैसे विद्या विद्वान् के लिये अपने स्वरूप का प्रकाश करती है अविद्वानों के लिये नहीं ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ० ॥ मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥

जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोग स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है उस ब्रह्म को जो नहीं जानता वह ऋग्वेदादि से क्या कुछ सुख को प्राप्त हो सकता है ? नहीं २ किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं वे सब परमेश्वर में स्थित होके मुक्तिरूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं । इसलिये जो कुछ पढ़ना वा पढ़ाना हो वह अर्थज्ञान सहित चाहिये । इस प्रकार सब वेदों को पढ़ के आयुर्वेद अर्थात् जो चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनि-प्रणीत वैद्यक शास्त्र है उसको अर्थ, क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु के गुण ज्ञानपूर्वक ४ (चार) वर्ष के भीतर पढ़ें पढ़ावें । तदनन्तर धनुर्वेद अर्थात् जो राजसम्बन्धी काम करना है इसके दो भेद एक निज राजपुरुषसम्बन्धी और दूसरा प्रजा-सम्बन्धी होता है । राजकार्य में सभा सेना के अध्यक्ष शस्त्रास्त्रविद्या नाना प्रकार के व्यूहों का अभ्यास अर्थात् जिसको आजकल "क़वायद" कहते हैं जो कि शत्रुओं से लड़ाई के समय में क्रिया करनी होती है उनको यथावत् सीखें और जो २ प्रजा के पालन और वृद्धि करने का प्रकार है उनको सीख के न्यायपूर्वक सब प्रजा को प्रसन्न रक्खें दुष्टों को यथायोग्य दण्ड श्रेष्ठों के पालन का प्रकार सब प्रकार सीखलें । इस राजविद्या को दो २ वर्ष में सीखकर गान्धर्ववेद कि

जिसको गानविद्या कहते हैं उसमें स्वर, राग, रागिणी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदि को यथावत् सीखें परन्तु मुख्य करके सामवेद का गान वादित्रवादनपूर्वक सीखें और नारदसंहिता आदि जो २ आर्ष ग्रन्थ हैं उनको पढ़ें परन्तु भड़ुवे वेश्या और विषयासक्तिकारक वैरागियों के गर्दभशब्दवत् व्यर्थ आलाप कभी न करें। अर्थवेद कि जिसको शिल्पविद्या कहते हैं उसको पदार्थ गुण विज्ञान क्रिया कौशल नानाविध पदार्थों का निर्माण पृथिवी से लेके आकाश पर्यन्त की विद्या को यथावत् सीख के अर्थ अर्थात् जो ऐश्वर्य को बढ़ानेवाला है उस विद्या को सीख के दो वर्ष में ज्योतिष् शास्त्र सूर्यसिद्धान्तादि जिसमें बीजगणित, अङ्क, भूगोल, खगोल और भूगर्भविद्या है इसको यथावत् सीखें। तत्पश्चात् सब प्रकार की हस्तक्रिया, यन्त्रकला आदि को सीखें परन्तु जितने ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि के फल के विधायक ग्रन्थ हैं उनको झूठ समझ के कभी न पढ़ें और पढ़ावें ऐसा प्रयत्न पढ़ने और पढ़ानेवाले करें कि जिससे बीस वा इक्कीस वर्ष के भीतर समग्र विद्या उत्तम शिक्षा प्राप्त होके मनुष्य लोग कृतकृत्य होकर सदा आनन्द में रहें जितनी विद्या इस रीति से बीस वा इक्कीस वर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शतवर्ष में भी नहीं हो सकती॥

ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को इसलिये पढ़ना चाहिये कि वे बड़े विद्वान् सब शास्त्रवित् और धर्मात्मा थे और अनृषि अर्थात् जो अल्प शास्त्र पढ़े हैं और जिनका आत्मा पक्षपातसहित है उनके बनाये हुए ग्रन्थ भी वैसे ही हैं॥

पूर्वमीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या, वैशेषिक पर गौतममुनिकृत, न्यायसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य, पतञ्जलिमुनिकृत सूत्र पर व्यासमुनिकृत भाष्य, कपिलमुनिकृत सांख्यसूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य, व्यासमुनिकृत वेदान्तसूत्र पर वात्स्यायनमुनिकृत भाष्य अथवा बौधायनमुनिकृत भाष्य वृत्तिसहित पढ़ें पढ़ावें इत्यादि सूत्रों को कल्प अङ्ग में भी गिनना चाहिये जैसे ऋग्यजु, साम और अथर्व चारों वेद ईश्वरकृत हैं वैसे ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ चारों ब्राह्मण, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निघण्टु, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् छः

वेदों के अङ्ग, मीमांसादि छः शास्त्र वेदों के उपाङ्ग, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद ये चार वेदों के उपवेद इत्यादि सब ऋषि मुनि के किये ग्रन्थ हैं इनमें भी जो २ वेदविरुद्ध प्रतीत हो उस २ को छोड़ देना क्योंकि वेद ईश्वरकृत होने से निर्भ्रान्त स्वतःप्रमाण अर्थात् वेद का प्रमाण वेद ही से होता है ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतःप्रमाण अर्थात् इनका प्रमाण वेदाधीन है वेद की विशेष व्याख्या ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देख लीजिये और इस ग्रन्थ में भी आगे लिखेंगे ॥

अब जो परित्याग के योग्य ग्रन्थ हैं उनका परिगणन संक्षेप से किया जाता है अर्थात् जो २ नीचे ग्रन्थ लिखेंगे वह २ जालग्रन्थ समझना चाहिये । व्याकरण में कातन्त्र, सारस्वत, चन्द्रिका, मुग्धबोध, कौमुदी, शेखर, मनोरमादि । कोश में अमरकोशादि । छन्दोग्रन्थ में वृत्तरत्नाकरादि । शिक्षा में अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि पाणिनीयं मतं यथा इत्यादि । ज्योतिष् में शीघ्रबोध, मुहूर्त्तचिन्तामणि आदि । काव्य में नायिकाभेद, कुवलयानन्द, रघुवंश, माघ, किरातार्जुनीयादि । मीमांसा में धर्मसिन्धु, व्रतार्कादि । वैशेषिक में तर्कसङ्ग्रहादि । न्याय में जागदीशी आदि । योग में हठप्रदीपिकादि । सांख्य में सांख्यतत्त्वकौमुद्यादि । वेदान्त में योगवासिष्ठ पञ्चदश्यादि । वैद्यक में शार्ङ्गधरादि । स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति, सब तंत्र ग्रन्थ, सब पुराण, सब उपपुराण, तुलसीदासकृत भाषारामायण, रुक्मिणीमङ्गलादि और सर्व भाषाग्रन्थ ये सब कपोलकल्पित मिथ्या ग्रन्थ हैं । (प्रश्न) क्या इन ग्रन्थों में कुछ भी सत्य नहीं ? (उत्तर) थोड़ा सत्य तो है परन्तु इसके साथ बहुतसा असत्य भी है इससे "विषसम्पृक्तान्नवत् त्याज्याः" जैसे अत्युत्तम अन्न विष से युक्त होने से छोड़ने योग्य होता है वैसे ये ग्रन्थ हैं । (प्रश्न) क्या आप पुराण इतिहास को नहीं मानते ? (उत्तर) हां मानते हैं परन्तु सत्य को मानते हैं मिथ्या को नहीं (प्रश्न) कौन सत्य और कौन मिथ्या है ? (उत्तर):—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथा नाराशंसीरिति ॥

यह गृह्यसूत्रादि का वचन है । जो ऐतरेय, शतपथादि, ब्राह्मण लिख आये उन्हीं के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी पांच नाम हैं

श्रीमद्भागवतादि का नाम पुराण नहीं (प्रश्न) जो त्याज्य ग्रन्थों में सत्य है उसका ग्रहण क्यों नहीं करते ? (उत्तर) जो २ उनमें सत्य हैं सो २ वेदादि सत्य शास्त्रों का है और मिथ्या उनके घर का है । वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वीकार में सब सत्य का ग्रहण होजाता है । जो कोई इन मिथ्या ग्रन्थों से सत्य का ग्रहण करना चाहे तो मिथ्या भी उसके गले लिपट जावे । इसलिये "असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति" असत्य से युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को । (प्रश्न) तुम्हारा मत क्या है ? (उत्तर) वेद अर्थात् जो २ वेद में करने और छोड़ने की शिक्षा की है उस २ का हम यथावत् करना छोड़ना मानते हैं । जिसलिये वेद हमको मान्य है इसलिये हमारा मत वेद है । ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्य्यों को ऐकमत्य होकर रहना चाहिये (प्रश्न) जैसा सत्यासत्य और दूसरे ग्रन्थों का परस्पर विरोध है वैसे अन्य शास्त्रों में भी है जैसा सृष्टिविषय में छः शास्त्रों का विरोध है:—मीमांसा कर्म, वैशेषिक काल, न्याय परमाणु, योग पुरुषार्थ, सांख्य प्रकृति और वेदान्त ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है क्या यह विरोध नहीं है ? (उत्तर) प्रथम तो विना सांख्य और वेदान्त के दूसरे चार शास्त्रों में सृष्टि की उत्पत्ति प्रसिद्ध नहीं लिखी और इनमें विरोध नहीं क्योंकि तुमको विरोधाविरोध का ज्ञान नहीं । मैं तुमसे पूछता हूं कि विरोध किस स्थल में होता है ? क्या एक विषय में अथवा भिन्न २ विषयों में ? (प्रश्न) एक विषय में अनेकों का परस्पर विरुद्ध कथन हो उसको विरोध कहते हैं यहां भी सृष्टि एक ही विषय है (उत्तर) क्या विद्या एक है वा दो, एक है, जो एक है तो व्याकरण, वैद्यक, ज्योतिष् आदि का भिन्न २ विषय क्यों है जैसा एक विद्या में अनेक विद्या के अवयवों का एक दूसरे से भिन्न प्रतिपादन होता है वैसे ही सृष्टिविद्या के भिन्न भिन्न छः अवयवों का शास्त्रों में प्रतिपादन करने से इनमें कुछ भी विरोध नहीं जैसे घड़े के बनाने में कर्म, समय, मिट्टी, विचार, संयोग, वियोगादि का पुरुषार्थ, प्रकृति के गुण और कुँभार कारण है वैसे ही सृष्टि का जो कर्म कारण है उसकी व्याख्या मीमांसा में, समय की व्याख्या वैशेषिक में, उपादान कारण की व्याख्या न्याय में, पुरुषार्थ की व्याख्या योग

में, तत्त्वों के अनुक्रम से परिगणन की व्याख्या सांख्य में और निमित्तकारण जो परमेश्वर है उसकी व्याख्या वेदान्तशास्त्र में है । इससे कुछ भी विरोध नहीं । जैसे वैद्यकशास्त्र में निदान, चिकित्सा, ओषधि, दान और पथ्य के प्रकरण भिन्न २ कथित हैं परन्तु सबका सिद्धान्त रोग की निवृत्ति है वैसे ही सृष्टि के छः कारण हैं इनमें से एक २ कारण की व्याख्या एक २ शास्त्रकार ने की है इसलिये इनमें कुछ भी विरोध नहीं इसकी विशेष व्याख्या सृष्टिप्रकरण में कहेंगे ॥

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें जैसा कुसङ्ग अर्थात् दुष्ट विषयीजनों का संग, दुष्टव्यसन जैसा मद्यादि सेवन और वेश्यागमनादि, बाल्यावस्था में विवाह अर्थात् पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुरुष और सोलहवें वर्ष से पूर्व स्त्री का विवाह होजाना, पूर्ण ब्रह्मचर्य्य न होना, राजा, माता पिता और विद्वानों का प्रेम वेदादि शास्त्रों के प्रचार में न होना, अतिभोजन, अतिजागरण करना, पढ़ने पढ़ाने परीक्षा लेने वा देने में आलस्य वा कपट करना, सर्वोपरि विद्या का लाभ न समझना, ब्रह्मचर्य से बल, बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य, राज्य, धन की वृद्धि न मानना, ईश्वर का ध्यान छोड़ अन्य पाषाणादि जड़ मूर्त्ति के दर्शन पूजन में व्यर्थ काल खोना, माता, पिता, अतिथि और आचार्य्य, विद्वान् इनको सत्य मूर्त्ति मानकर सेवा सत्संग न करना, वर्णाश्रम के धर्म को छोड़ ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड्र, तिलक, कंठी, मालाधारण, एकादशी, त्रयोदशी आदि व्रत करना, काश्यादि तीर्थ और राम, कृष्ण, नारायण, शिव, भगवती, गणेशादि के नामस्मरण से पाप दूर होने का विश्वास, पाखण्डियों के उपदेश से विद्या पढ़ने में अश्रद्धा का होना, विद्या धर्म योग परमेश्वर की उपासना के विना मिथ्या पुराणनामक भागवतादि की कथादि से मुक्ति का मानना, लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना, इधर उधर व्यर्थ घूमते रहना इत्यादि मिथ्या व्यवहारों में फँस के ब्रह्मचर्य्य और विद्या के लाभ से रहित होकर रोगी और मूर्ख बने रहते हैं ॥

आजकल के संप्रदायी और स्वार्थी ब्राह्मण आदि जो दूसरों को विद्या सत्संग से हटा और अपने जाल में फँसा के उनका तन, मन, धन नष्ट कर देते

इ और चाहते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्डजाल से छूट और हमारे छल को जानकर हमारा अपमान करेंगे । इत्यादि विघ्नों को राजा और प्रजा दूर करके अपने लड़कों और लड़कियों को विद्वान् करने के लिये तन, मन, धन से प्रयत्न किया करें । (प्रश्न) क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है:—

स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः ॥

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है (उत्तर) सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्यमात्र को पढ़ने का अधिकार है । तुम कुआ में पड़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोलकल्पना से हुई है । किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं । और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ [यजु० अ० २६ । २]

परमेश्वर कहता है कि (यथा) जैसे मैं (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये (इमाम्) इस (कल्याणीम्) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देनेहारी (वाचम्) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ, वदानि) उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो । यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि जन शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही के वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं (उत्तर) (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, (अर्य्याय) वैश्य, (शूद्राय) शूद्र और (स्वाय) अपने भृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अतिशूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ा के अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को

प्राप्त हों। कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की? परमेश्वर की बात अवश्य माननीय है। इतने पर भी जो कोई इसको न मानेगा वह नास्तिक कहावेगा। क्योंकि "नास्तिको वेदनिन्दकः" वेदों का निन्दक और न माननेवाला नास्तिक कहाता है। क्या परमेश्वर शूद्रों का भला करना नहीं चाहता? क्या ईश्वर पक्षपाती है कि वेदों के पढ़ने सुनने का शूद्रों के लिये निषेध और द्विजों के लिये विधि करे? जो परमेश्वर का अभिप्राय शूद्रादि के पढ़ाने सुनाने का न होता तो इनके शरीर में वाक् और श्रोत्र इन्द्रिय क्यों रचता। जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिये बनाये हैं वैसे ही वेद भी सब के लिये प्रकाशित किये हैं। और जहां कहीं निषेध किया है उसका यह अभिप्राय है कि जिसको पढ़ने पढ़ाने से कुछ भी न आवे वह निर्बुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र कहाता है। उसका पढ़ना पढ़ाना व्यर्थ है और जो स्त्रियों के पढ़ने का निषेध करते हो वह तुम्हारी मूर्खता, स्वार्थता और निर्बुद्धिता का प्रभाव है देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाणः—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ॥

अथर्व० [कां० ११ । प्र० २४ । अ० ३ । मं० १८]

जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं वैसे (कन्या) कुमारी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवति होके पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान् (युवानम्) पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को (विन्दते) प्राप्त होवे इसलिये स्त्रियों को भी ब्रह्मचर्य और विद्या का ग्रहण अवश्य करना चाहिये (प्रश्न) क्या स्त्री लोग भी वेदों को पढ़ें? (उत्तर) अवश्य देखो श्रौतसूत्रादि में:—

इमं मन्त्रं पत्नी पठेत् ॥

अर्थात् स्त्री यज्ञ में इस मन्त्र को पढ़े। जो वेदादि शास्त्रों को न पढ़ी होवे तो यज्ञ में स्वरसहित मन्त्रों का उच्चारण और संस्कृतभाषण कैसे कर

सके भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ के पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शतपथब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है । भला जो पुरुष विद्वान् और स्त्री अविदुषी और स्त्री विदुषी और पुरुष अविद्वान् हो तो नित्यप्रति देवासुर संग्राम घर में मचा रहे फिर सुख कहां ? इसलिये जो स्त्री न पढ़ें तो कन्याओं की पाठशालों में अध्यापिका क्योंकर होसकें तथा राजकार्य्य न्यायाधीशत्वादि गृहाश्रम का कार्य्य जो पति को स्त्री और स्त्री को पति प्रसन्न रखना घर के सब काम स्त्री के आधीन रहना इत्यादि काम विना विद्या के अच्छे प्रकार कभी ठीक नहीं हो सकते ॥

देखो आर्य्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं ? और युद्ध कर सकतीं । इसलिये ब्राह्मणी और क्षत्रिया को सब विद्या, वैश्या को व्यवहार विद्या और शूद्रा को पाकादि सेवा की विद्या अवश्य पढ़नी चाहिये । जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये । क्योंकि इनके सीखे विना सत्यासत्य का निर्णय, पति आदि से अनुकूल वर्त्तमान, यथायोग्य सन्तानोत्पत्ति, उनका पालन वर्द्धन और सुशिक्षा करना, घर के सब कार्य्यों को जैसा चाहिये वैसा करना कराना वैद्यकविद्या से औषधवत् अन्न पान बनाना और बनवाना नहीं कर सकतीं जिससे घर में रोग कभी न आवे और सब लोग सदा आनन्दित रहें । शिल्पविद्या के जाने विना घर का बनवाना, वस्त्र आभूषण आदि का बनाना बनवाना, गणितविद्या के विना सब का हिसाब समझना समझाना, वेदादि शास्त्रविद्या के विना ईश्वर और धर्म को न जानके अधर्म से कभी नहीं बच सके । इसलिये वे ही धन्यवादार्ह और कृतकृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सासु, श्वशुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट

मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्तें । यही कोश अक्षय है इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाय अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते हैं और दायभागी भी निजभाग लेते हैं और विद्याकोश का चोर वा दायभागी कोई भी नहीं हो सकता इस कोश की रक्षा और वृद्धि करनेवाला विशेष राजा और प्रजा भी हैं ॥

कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम् ॥ मनु० [७।१५२]

राजा को योग्य है कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखके, विद्वान् कराना । जो कोई इस आज्ञा को न माने तो उसके माता पिता को दण्ड देना अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का वा लड़की किसी के घर में न रहने पावें किन्तु आचार्य्यकुल में रहें जबतक समावर्त्तन का समय न आवे तबतक विवाह न होने पावे ॥

सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ मनु० [४ । २३३]

संसार में जितने दान हैं अर्थात् जल, अन्न, गौ, पृथिवी, वस्त्र, तिल, सुवर्ण और घृतादि इन सब दानों से वेदविद्या का दान अतिश्रेष्ठ है । इसलिये जितना बन सके उतना प्रयत्न तन, मन, धन से विद्या की वृद्धि में किया करें । जिस देश में यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है वही देश सौभाग्यवान् होता है । यह ब्रह्मचर्याश्रम की शिक्षा संक्षेप से लिखी गई है इसके आगे चौथे समुल्लास में समावर्त्तन और गृहाश्रम की शिक्षा लिखी जायगी ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते शिक्षाविषये तृतीयः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थसमुल्लासारम्भः

अथ समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविधिं वक्ष्यामः

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥ मनु० [३ । २]

जब यथावत् ब्रह्मचर्य्य [में] आचार्यानुकूल वर्त्तकर, धर्म से चारों वेद, तीन वा दो अथवा एक वेद को साङ्गोपाङ्ग पढ़ के जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष वा स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करे ॥

तं प्रतीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदायहरं पितुः ।
स्रग्विणं तल्प आसीनमर्हयेत्प्रथमं गवा ॥ मनु० [३ । ३]

जो स्वधर्म अर्थात् यथावत् आचार्य और शिष्य का धर्म है उससे युक्त पिता जनक वा अध्यापक से ब्रह्मदाय अर्थात् विद्यारूप भाग का ग्रहण, माला का धारण करनेवाला अपने पलङ्ग में बैठे हुए आचार्य्य को प्रथम गोदान से सत्कार करे वैसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को भी कन्या का पिता गोदान से सत्कार करे ॥

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ मनु० [३ । ४]

गुरु की आज्ञा ले स्नान कर गुरुकुल से अनुक्रमपूर्वक आ के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपने वर्णानुकूल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करे ॥

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः ।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ॥ मनु० [३ । ५]

जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है। इसका यह प्रयोजन है कि:—

परोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्षद्विषः॥ शतपथ०॥

यह निश्चित बात है कि जैसी परोक्ष पदार्थ में प्रीति होती है वैसी प्रत्यक्ष में नहीं। जैसे किसी ने मिश्री के गुण सुने हों और खाई न हो तो उसका मन उसी में लगा रहता है, जैसे किसी परोक्ष वस्तु की प्रशंसा सुनकर मिलने की उत्कट इच्छा होती है वैसे ही दूरस्थ अर्थात् जो अपने गोत्र वा माता के कुल में निकट सम्बन्ध की न हो उसी कन्या से वर का विवाह होना चाहिये। निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैं:—(१) एक—जो बालक बाल्यावस्था से निकट रहते हैं परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई और प्रेम करते एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते और जो नङ्गे भी एक दूसरे को देखते हैं उनका परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता, (२) दूसरा—जैसे पानी में पानी मिलाने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृ वा मातृकुल में विवाह होने में धातुओं के अदल बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती, (३) तीसरा—जैसे दूध में मिश्री वा शुंठ्यादि ओषधियों के योग होने से उत्तमता होती है वैसे ही भिन्न गोत्र मातृ पितृकुल से पृथक् वर्त्तमान स्त्री पुरुषों का विवाह होना उत्तम है, (४) चौथा—जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान पान के बदलने से रोगरहित होता है वैसे ही दूर देशस्थों के विवाह होने में उत्तमता है, (५) पांचवें—निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने में सुख दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूरदेशस्थों में नहीं और दूरस्थों के विवाह में दूर २ प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाह में नहीं, (६) छठे—दूर २ देश के वर्त्तमान और पदार्थों की प्राप्ति भी दूर सम्बन्ध होने में सहजता से हो सकती है, निकट विवाह होने में नहीं। इसीलिये:—

दुहिता दुर्हिता दूरेहिता भवतीति॥ निरु० [३। ४]

कन्या का नाम दुहिता इस कारण से है कि इसका विवाह दूर देश में होने से हितकारी होता है निकट रहने में नहीं, (७) सातवें—कन्या के पितृकुल में दारिद्र्य होने का भी सम्भव है क्योंकि जब २ कन्या पितृकुल में आवेगी तब तब इसको कुछ न कुछ देना ही होगा, (८) आठवां—कोई निकट होने से एक दूसरे को अपने २ पितृकुल के सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता के कुल में चली जायगी एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी; क्योंकि प्रायः स्त्रियों का स्वभाव तीक्ष्ण और मृदु होता है इत्यादि कारणों से पिता के एक गोत्र माता की छः पीढ़ी और समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं ॥

महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ मनु० [३ । ६]

चाहें कितने ही धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध ये कुल हों तो भी विवाहसम्बन्ध में निम्नलिखित दश कुलों का त्याग करदे:—

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ मनु० [३ । ७]

जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े २ लोम अथवा बवासीर, क्षयी, दमा, खांसी, आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलितकुष्ठयुक्त हों, उन कुलों की कन्या वा वर के साथ विवाह होना न चाहिये क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करनेवाले के कुल में भी प्रविष्ट होजाते हैं इसलिये उत्तम कुल के लड़के और लड़कियों का आपस में विवाह होना चाहिये ॥

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम् ।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिङ्गलाम् ॥ मनु० [३ । ८]

न पीले वर्णवाली, न अधिकाङ्गी अर्थात् पुरुष से लम्बी, चौड़ी अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहित, न बहुत लोमवाली, न बकवाद करनेहारी और भूरे नेत्रवाली ॥

नर्क्षवृक्षनदीनाम्नीं नान्त्यपर्वतनामिकाम् ।
न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ॥ मनु० [३ । ९]

न ऋक्ष अर्थात् अश्विनी, भरणी, रोहिणीदेई, रेवतीबाई, चित्तरी आदि नक्षत्र नामवाली, तुलसिआ, गेंदा, गुलाबी, चंपा, चमेली आदि वृक्ष नामवाली, गङ्गा, यमुना आदि नदी नामवाली, चांडाली आदि अन्त्य नामवाली, विन्ध्या, हिमालया, पार्वती आदि पर्वत नामवाली, कोकिला, मैना आदि पक्षी नामवाली, नागी, भुजंगा आदि सर्प नामवाली, माधोदासी, मीरादासी आदि प्रेष्य नामवाली, भीमकुँवरी, चंडिका, काली आदि भीषण नामवाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये क्योंकि ये नाम कुत्सित और अन्य पदार्थों के भी हैं ॥

अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ॥ मनु० [३ । १०]

जिसके सरल सूधे अङ्ग हों विरुद्ध न हों, जिसका नाम सुन्दर अर्थात् यशोदा, सुखदा आदि हो, हंस और हथिनी के तुल्य जिसकी चाल हो, सूक्ष्म लोम केश और दांतयुक्त और जिसके सब अङ्ग कोमल हों वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिये । (प्रश्न) विवाह का समय और प्रकार कौनसा अच्छा है (उत्तर) सोहलवें वर्ष से ले के चौवीसवें वर्ष तक कन्या और पच्चीसवें वर्ष से ले के अड़तालीसवें वर्ष तक पुरुष का विवाह समय उत्तम है । इसमें जो सोलह और पच्चीस में विवाह करे तो निकृष्ट, अठारह बीस की स्त्री तीस पैंतीस वा चालीस वर्ष के पुरुष का मध्यम, चौवीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह होना उत्तम है । जिस देश में इसी प्रकार विवाह की विधि श्रेष्ठ और ब्रह्मचर्य विद्याभ्यास अधिक होता है वह देश सुखी और जिस देश में ब्रह्मचर्य विद्याग्रहणरहित बाल्यावस्था और अयोग्यों का विवाह होता है वह

देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य विद्या के ग्रहणपूर्वक विवाह के सुधार ही से सब बातों का सुधार और बिगड़ने से बिगाड़ हो जाता है। (प्रश्न)

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी ॥
दशवर्षा भवेत्कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ॥
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

ये श्लोक पाराशरी और शीघ्रबोध में लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्या की आठवें वर्ष विवाह में गौरी, नववें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा होती है ॥ १ ॥ जो दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं। (उत्तर)

ब्रह्मोवाच ।

एकक्षणा भवेद् गौरी द्विक्षणेयन्तु रोहिणी ॥
त्रिक्षणा सा भवेत्कन्या ह्यत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ १ ॥
माता पिता तथा भ्राता मातुलो भगिनी स्वका ॥
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥ २ ॥

यह सद्योनिर्मित ब्रह्मपुराण का वचन है।

अर्थ—जितने समय में परमाणु एक पलटा खावे उतने समय को क्षण कहते हैं जब कन्या जन्मे तब एक क्षण में गौरी, दूसरे में रोहिणी, तीसरे में कन्या और चौथे में रजस्वला होजाती है ॥ १ ॥ उस रजस्वला को देख के उसके माता, पिता, भाई, मामा और बहिन सब नरक को जाते हैं ॥ २ ॥

(प्रश्न) ये श्लोक प्रमाण नहीं (उत्तर) क्यों प्रमाण नहीं ? क्या जो ब्रह्माजी के श्लोक प्रमाण नहीं तो तुम्हारे भी प्रमाण नहीं हो सकते (प्रश्न) वाह २ पराशर और काशीनाथ का भी प्रमाण नहीं करते (उत्तर) वाह जी

वाह क्या तुम ब्रह्माजी का प्रमाण नहीं करते, पराशर काशीनाथ से ब्रह्माजी बड़े नहीं हैं ? जो तुम ब्रह्माजी के श्लोकों को नहीं मानते तो हम भी पराशर काशीनाथ के श्लोकों को नहीं मानते (प्रश्न) तुम्हारे श्लोक असंभव होने से प्रमाण नहीं क्योंकि सहस्र क्षण जन्म समय ही में बीत जाते हैं तो विवाह कैसे हो सकता है और उस समय विवाह करने का कुछ फल भी नहीं दीखता (उत्तर) जो हमारे श्लोक असंभव हैं तो तुम्हारे भी असंभव हैं क्योंकि आठ, नौ और दशवें वर्ष में भी विवाह करना निष्फल है, क्योंकि सोलहवें वर्ष के पश्चात् चौबीसवें वर्ष पर्यन्त विवाह होने से पुरुष का वीर्य परिपक्व, शरीर बलिष्ठ, स्त्री का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं* जैसे आठवें वर्ष की कन्या में सन्तानोत्पत्ति का होना असंभव है वैसे ही गौरी, रोहिणी नाम देना भी अयुक्त है । यदि गौरी कन्या न हो

---

* उचित समय से न्यून आयुवाले स्त्री पुरुष को गर्भाधान में मुनिवर धन्वन्तरिजी सुश्रुत में निषेध करते हैं:—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ॥
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥ १ ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ॥
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुत शारीरस्थाने अ० १० । श्लोक ४७ । ४८ ॥

अर्थ—सोलह वर्ष से न्यून वयवाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष जो गर्भ को स्थापन करे तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता अर्थात् पूर्ण काल तक गर्भाशय में रहकर उत्पन्न नहीं होता ॥

अथवा उत्पन्न हो तो फिर चिरकाल तक न जीवे वा जीवे तो दुर्बलेन्द्रिय हो, इस कारण से अतिबाल्यावस्थावाली स्त्री में गर्भ स्थापन न करे ॥ २ ॥

ऐसे २ शास्त्रोक्त नियम और सृष्टिक्रम को देखने और बुद्धि से विचारने से यही सिद्ध होता है कि १६ वर्ष से न्यून स्त्री और २५ वर्ष से न्यून आयुवाला पुरुष कभी गर्भाधान करने के योग्य नहीं होता, इन नियमों से विपरीत जो करते हैं वे दुःखभागी होते हैं ॥ स० दा० ॥

किन्तु काली हो तो उसका नाम गौरी रखना व्यर्थ है। और गौरी महादेव की स्त्री, रोहिणी वासुदेव की स्त्री थी उसको तुम पौराणिक लोग मातृसमान मानते हो। जब कन्यामात्र में गौरी आदि की भावना करते हो तो फिर उनसे विवाह करना कैसे संभव और धर्मयुक्त हो सकता है! इसलिये तुम्हारे और हमारे दो २ श्लोक मिथ्या ही हैं क्योंकि जैसा हमने "ब्रह्मोवाच" करके श्लोक बना लिये हैं वैसे वे भी पराशर आदि के नाम से बना लिये हैं। इसलिये इन सब का प्रमाण छोड़ के वेदों के प्रमाण से सब काम किया करो। देखो मनु में—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशं पतिम्॥ मनु० [९।९०]

कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में ३६ वार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है इससे पूर्व नहीं॥

काममामरणात्तिष्ठेद् गृहे कन्यर्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ मनु० [९।८९]

चाहे लड़का लड़की मरणपर्यन्त कुमारे रहैं परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाववालों का विवाह कभी न होना चाहिये। इससे सिद्ध हुआ कि न पूर्वोक्त समय से प्रथम वा असदृशों का विवाह होना योग्य है॥

(प्रश्न) विवाह करना माता पिता के आधीन होना चाहिये वा लड़का लड़की के आधीन रहे? (उत्तर) लड़का लड़की के आधीन विवाह होना उत्तम है। जो माता पिता विवाह करना कभी विचारें तो भी लड़का लड़की की प्रसन्नता के विना न होना चाहिये क्योंकि एक दूसरे की प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है विवाह में मुख्य प्रयोजन वर और कन्या का है माता पिता का नहीं क्योंकि जो उनमें परस्पर प्रसन्नता रहे तो उन्हीं को सुख और विरोध में उन्हीं को दुःख होता और—

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्य्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥ मनु० [३ । ६०]

जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में आनन्द, लक्ष्मी और कीर्त्ति निवास करती है और जहां विरोध, कलह होता है वहां दुःख, दरिद्रता और निन्दा निवास करती है । इसलिये जैसी स्वयंवर की रीति आर्य्यावर्त्त में परम्परा से चली आती है वही विवाह उत्तम है । जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथायोग्य होना चाहिये जबतक इनका मेल नहीं होता तबतक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता और न बाल्यावस्था में विवाह करने से सुख होता ।

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः । तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो३ मनसा देवयन्तः ॥ १ ॥ ऋ० ॥ मं० ३ । सू० ८ । मं० ४ ॥

आधेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः । नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २ ॥ ऋ० ॥ मं० ३ । सू० ५५ । मं० १६ ॥

पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्तीः । मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ ३ ॥ ऋ० ॥ मं० १ । सू० १७९ । मं० १ ॥

जो पुरुष (परिवीतः) सब ओर से यज्ञोपवीत ब्रह्मचर्य्य सेवन से उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्र धारण किया हुआ ब्रह्मचर्य्ययुक्त (युवा) पूर्ण ज्वान होके विद्याग्रहण कर गृहाश्रम में (आगात्) आता है (स, उ) वही दूसरे विद्याजन्म में (जायमानः) प्रसिद्ध होकर (श्रेयान्) अतिशय शोभायुक्त मङ्गलकारी (भवति) होता है (स्वाध्यः)

अच्छे प्रकार ध्यानयुक्त (मनसा) विज्ञान से (देवयन्तः) विद्यावृद्धि की कामनायुक्त (धीरासः) धैर्ययुक्त (कवयः) विद्वान् लोग (तम्) उसी पुरुष को (उन्नयन्ति) उन्नतिशील करके प्रतिष्ठित करते हैं और जो ब्रह्मचर्य्यधारण विद्या उत्तम शिक्षा का ग्रहण किये विना अथवा बाल्यावस्था में विवाह करते हैं वे स्त्री पुरुष नष्ट भ्रष्ट होकर विद्वानों में प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं होते ॥ १ ॥

जो (अप्रदुग्धाः) किसी ने दुही नहीं उन (धेनवः) गौओं के समान (अशिश्वीः) बाल्यावस्था से रहित (शबर्दुघाः) सब प्रकार के उत्तम व्यवहारों को पूर्ण करनेहारी (शशयाः) कुमारावस्था को उल्लङ्घन करनेहारी (नव्यानव्याः) नवीन २ शिक्षा और अवस्था से पूर्ण (भवन्तीः) वर्त्तमान (युवतयः) पूर्ण युवावस्थास्थ स्त्रियां (देवानाम्) ब्रह्मचर्य सुनियमों से पूर्ण विद्वानों के (एकम्) अद्वितीय (महत्) बड़े (असुरत्वम्) प्रज्ञा शास्त्र शिक्षायुक्त प्रज्ञा में रमण के भावार्थ को प्राप्त होती हुई तरुण पतियों को प्राप्त होके (आधुनयन्ताम्) गर्भ धारण करें। कभी भूल के भी बाल्यावस्था में पुरुष का मन से भी ध्यान न करें क्योंकि यही कर्म इस लोक और परलोक के सुख का साधन है। बाल्यावस्था में विवाह से जितना पुरुष का नाश उससे अधिक स्त्री का नाश होता है ॥ २ ॥

जैसे (नु) शीघ्र (शश्रमाणाः) अत्यन्त श्रम करनेहारे (वृषणः) वीर्य सींचने में समर्थ पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष (पत्नीः) युवावस्थास्थ हृदयों को प्रिय स्त्रियों को (जगम्युः) प्राप्त होकर पूर्ण शतवर्ष वा उससे अधिक आयु को आनन्द से भोगते और पुत्र पौत्रादि से संयुक्त रहते हैं वैसे स्त्री पुरुष सदा वर्त्तें जैसे (पूर्वीः) पूर्व वर्त्तमान (शरदः) शरद् ऋतुओं और (जरयन्तीः) वृद्धावस्था को प्राप्त करानेवाली (उषसः) प्रातःकाल की वेलाओं को (दोषा) रात्री और (वस्तोः) दिन (तनूनाम्) शरीरों की (श्रियम्) शोभा को (जरिमा) अतिशय वृद्धपन बल और शोभा को दूर कर देता है वैसे (अहम्) मैं स्त्री वा पुरुष (उ) अच्छे प्रकार (अपि) निश्चय करके ब्रह्मचर्य्य से विद्या शिक्षा शरीर और आत्मा के बल और युवावस्था को प्राप्त हो ही के विवाह करूं इससे विरुद्ध करना वेदविरुद्ध होने से सुखदायक विवाह कभी नहीं होता ॥ ३ ॥

जबतक इसी प्रकार सब ऋषि मुनि राजा महाराजा आर्य्य लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तबतक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से यह ब्रह्मचर्य्य से विद्या का न पढ़ना, बाल्यावस्था में पराधीन अर्थात् माता पिता के आधीन विवाह होने लगा तब से क्रमशः आर्य्यावर्त्त देश की हानि होती चली आई है। इससे इस दुष्ट काम को छोड़ के सज्जन लोग पूर्वोक्त प्रकार से स्वयंवर विवाह किया करें। सो विवाह वर्णानुक्रम से करें और वर्णव्यवस्था भी गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार होनी चाहिये। (प्रश्न) क्या जिसके माता पिता ब्राह्मण हों वह ब्राह्मणी ब्राह्मण होता है और जिसके माता पिता अन्यवर्णस्थ हों उन का सन्तान कभी ब्राह्मण हो सकता है? (उत्तर) हां बहुत से होगये, होते हैं और होंगे भी जैसे छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल ऋषि अज्ञातकुल, महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रिय वर्ण और मातंग ऋषि चांडाल कुल से ब्राह्मण होगये थे, अब भी जो उत्तम विद्या स्वभाववाला है वही ब्राह्मण के योग्य और मूर्ख शूद्र के योग्य होता है और वैसा ही आगे भी होगा। (प्रश्न) भला जो रज वीर्य से शरीर हुआ है वह बदल कर दूसरे वर्ण के योग्य कैसे हो सकता है? (उत्तर) रज वीर्य्य के योग से ब्राह्मण-शरीर नहीं होता किन्तुः—

स्वाध्यायेन जपैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥

मनु० [२ । २८]

इसका अर्थ पूर्व कर आये हैं अब यहां भी संक्षेप से कहते हैं (स्वाध्यायेन) पढ़ने पढ़ाने (जपैः) विचार करने कराने, नानाविध होम के अनुष्ठान, सम्पूर्ण वेदों को शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, स्वरोच्चारणसहित पढ़ने पढ़ाने (इज्यया) पौर्णमासी इष्टि आदि के करने, (सुतैः) पूर्वोक्त विधिपूर्वक धर्म से सन्तानोत्पत्ति (महायज्ञैश्च) पूर्वोक्त ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, वैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ (यज्ञैश्च) अग्निष्टोमादियज्ञ, विद्वानों का संग, सत्कार, सत्यभाषण, परोपकारादि सत्यकर्म और संपूर्ण शिल्पविद्यादि पढ़ के दुष्टाचार छोड़ श्रेष्ठाचार

में वर्त्तने से (इयम्) यह (तनुः) शरीर (ब्राह्मी) ब्राह्मण का (क्रियते) किया जाता है । क्या इस श्लोक को तुम नहीं मानते ? मानते हैं, फिर क्यों रज वीर्य के योग से वर्णव्यवस्था मानते हो ? म अकेला नहीं मानता किन्तु बहुत से लोग परम्परा से ऐसा ही मानते हैं (प्रश्न) क्या तुम परम्परा का भी खण्डन करोगे ? (उत्तर) नहीं परन्तु तुम्हारी उलटी समझ को नहीं मान के खण्डन भी करते हैं (प्रश्न) हमारी उलटी और तुम्हारी सूधी समझ है इसमें क्या प्रमाण ? (उत्तर) यही प्रमाण है कि जो तुम पांच सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन व्यवहार मानते हो और हम वेद तथा सृष्टि के आरम्भ से आजपर्यन्त की परम्परा मानते हैं देखो जिसका पिता श्रेष्ठ वह पुत्र दुष्ट और जिस का पुत्र श्रेष्ठ वह पिता दुष्ट तथा कहीं दोनों श्रेष्ठ वा दुष्ट देखने में आते हैं इसलिये तुम लोग भ्रम में पड़े हो देखो मनु महाराज ने क्या कहा है:—

येनास्य पितरो याता येन याता पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते ॥
मनु० [४ । १७८]

जिस मार्ग से इसके पिता, पितामह चले हों उसी मार्ग में सन्तान भी चलें परन्तु (सताम्) जो सत्पुरुष पिता पितामह हों उन्हीं के मार्ग में चलें और जो पिता, पितामह दुष्ट हों तो उन के मार्ग में कभी न चलें । क्योंकि उत्तम धर्मात्मा पुरुषों के मार्ग में चलने से दुःख कभी नहीं होता इसको तुम मानते हो वा नहीं ? हां २ मानते हैं । और देखो जो परमेश्वर की प्रकाशित वेदोक्त बात है वही सनातन और उसके विरुद्ध है वह सनातन कभी नहीं हो सकती । ऐसा ही सब लोगों को मानना चाहिये वा नहीं ? अवश्य चाहिये । जो ऐसा न माने उससे कहो कि किसी का पिता दरिद्र हो और उस का पुत्र धनाढ्य होवे तो क्या अपने पिता की दरिद्रावस्था के अभिमान से धन को फेंक देवे ! क्या जिसका पिता अन्धा हो उसका पुत्र भी अपनी आंखों को फोड़ लेवे ! जिसका पिता कुकर्मी हो क्या उसका पुत्र भी कुकर्म ही करे ! नहीं २ किन्तु जो जो पुरुषों के उत्तम कर्म हों उनका सेवन और दुष्ट कर्मों का त्याग कर देना सब

को अत्यावश्यक है। जो कोई रज वीर्य्य के योग से वर्णाश्रम व्यवस्था माने और गुण कर्मों के योग से न माने तो उससे पूछना चाहिये कि जो कोई अपने वर्ण को छोड़ नीच, अन्त्यज अथवा कृश्चीन, मुसलमान होगया हो उसको भी ब्राह्मण क्यों नहीं मानते? यहां यही कहोगे कि उसने ब्राह्मण के कर्म छोड़ दिये इसलिये वह ब्राह्मण नहीं है। (इससे यह भी सिद्ध होता है कि जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाववाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होके नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये।) (प्रश्न)

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो अजायत॥

यह यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय का ११ वां मन्त्र है। इसका यह अर्थ है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य ऊरू और शूद्र पगों से उत्पन्न हुआ है इसलिये जैसे मुख न बाहू आदि और बाहू आदि न मुख होते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण न क्षत्रियादि और क्षत्रियादि न ब्राह्मण होसकते (उत्तर) इस मंत्र का अर्थ जो तुमने किया वह ठीक नहीं क्योंकि यहां पुरुष अर्थात् निराकार व्यापक परमात्मा की अनुवृत्ति है। जब वह निराकार है तो उसके मुखादि अङ्ग नहीं हो सकते, जो मुखादि अङ्गवाला हो वह पुरुष अर्थात् व्यापक नहीं और जो व्यापक नहीं वह सर्वशक्तिमान्, जगत् का स्रष्टा, धर्त्ता, प्रलयकर्त्ता, जीवों के पुण्य पापों की जानके व्यवस्था करनेहारा, सर्वज्ञ, अजन्मा, मृत्युरहित आदि विशेषणवाला नहीं हो सकता इसलिये इसका यह अर्थ है कि जो (अस्य) पूर्ण व्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (बाहू) "बाहुर्वै बलं बाहुर्वै वीर्य्यम्" शतपथब्राह्मण। बल वीर्य्य का नाम बाहु है वह जिसमें अधिक हो सो (राजन्यः) क्षत्रिय (ऊरू) कटि के अधोभाग और जानु के उपरिस्थ भाग का ऊरू नाम है जो सब पदार्थों और सब देशों में ऊरू के बल से जावे आवे प्रवेश करे वह (वैश्यः) वैश्य और (पद्भ्याम्) जो पग के अर्थात् नीचे अङ्ग के

सदृश मूर्खत्वादि गुणवाला हो वह शूद्र है। अन्यत्र शतपथ ब्राह्मणादि में भी इस मंत्र का ऐसा ही अर्थ किया है जैसे:—

यस्मादेते मुख्यास्तस्मान्मुखतो ह्यसृज्यन्त इत्यादि।

जिससे ये मुख्य हैं इससे मुख से उत्पन्न हुए ऐसा कथन संगत होता है अर्थात् जैसा मुख सब अङ्गों में श्रेष्ठ है वैसे पूर्ण विद्या और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त होने से मनुष्यजाति में उत्तम ब्राह्मण कहाता है। जब परमेश्वर के निराकार होने से मुखादि अङ्ग ही नहीं हैं तो मुख आदि से उत्पन्न होना असम्भव है। जैसा कि बन्ध्या स्त्री के पुत्र का विवाह होना! और जो मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती। जैसे मुख का आकार गोलमाल है वैसे ही उनके शरीर का भी गोल माल मुखाकृति के समान होना चाहिये। क्षत्रियों के शरीर भुजा के सदृश, वैश्यों के ऊरू के तुल्य और शूद्रों के शरीर पग के समान आकार वाले होने चाहियें ऐसा नहीं होता और जो कोई तुमसे प्रश्न करेगा कि जो २ मुखादि से उत्पन्न हुए थे उनकी ब्राह्मणादि संज्ञा हो परन्तु तुम्हारी नहीं क्योंकि जैसे और सब लोग गर्भाशय से उत्पन्न होते हैं वैसे तुम भी होते हो। तुम मुखादि से उत्पन्न न होकर ब्राह्मणादि [संज्ञा का] अभिमान करते हो इसलिये तुम्हारा कहा अर्थ व्यर्थ है और जो हमने अर्थ किया है वह सच्चा है। ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है जैसा:—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च॥ मनु० [१० । ६५]

जो शूद्रकुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान गुण कर्म स्वभाव वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होजाय, वैसे ही जो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकुल में उत्पन्न हुआ हो और उसके गुण कर्म स्वभाव शूद्र के सदृश हों तो वह शूद्र होजाय, वैसे क्षत्रिय वा वैश्य के कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण ब्राह्मणी वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी होजाता

है। अर्थात् चारों वर्णों में जिस २ वर्ण के सदृश जो २ पुरुष वा स्त्री हो वह २ उसी वर्ण में गिनी जावे ॥

धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ १ ॥
अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥ २ ॥

ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं।

अर्थ—धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम २ वर्णों को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे ॥ १ ॥

वैसे अधर्माचरण से पूर्व २ अर्थात् उत्तम २ वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ २ ॥ जैसे पुरुष जिस २ वर्ण के योग्य होता है वैसे ही स्त्रियों की भी व्यवस्था समझनी चाहिये। इससे क्या सिद्ध हुआ कि इस प्रकार होने से सब वर्ण अपने २ गुण कर्म स्वभावयुक्त होकर शुद्धता के साथ रहते हैं अर्थात् ब्राह्मणकुल में कोई क्षत्रिय वैश्य और शूद्र के सदृश न रहे और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र वर्ण भी शुद्ध रहते हैं अर्थात् वर्णसंकरता प्राप्त न होगी। इससे किसी वर्ण की निन्दा वा अयोग्यता भी न होगी। (प्रश्न) जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट होजाय तो उसके मा बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जायगा। इसकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये? (उत्तर) न किसी की सेवा का भङ्ग और न वंशच्छेदन होगा क्योंकि उनको अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्यासभा और राजसभा की व्यवस्था से मिलेंगे, इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी। यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये तभी अपने २ वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी। अब इन चारों वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण ये हैं:—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १ ॥ मनु० [१ । ८८]
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥
भ० गी० [अध्याय १८ । श्लोक ४२]

ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना, ये छः कर्म हैं परन्तु "प्रतिग्रहः प्रत्यवरः" मनु० । अर्थात् (प्रतिग्रह) लेना नीच कर्म है ॥ १ ॥ (शमः) मन से बुरे काम की इच्छा भी न करनी और उसको अधर्म्म में कभी प्रवृत्त न होने देना (दमः) श्रोत्र और चक्षु आदि इन्द्रियों को अन्यायाचरण से रोक कर धर्म्म में चलाना (तपः) सदा ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय होके धर्मानुष्ठान करना (शौच)—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ॥ मनु० [५ । १०९]

जल से बाहर के अङ्ग, सत्याचार से मन, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि पवित्र होती है । भीतर रागद्वेषादि दोष और बाहर के मलों को दूर कर शुद्ध रहना अर्थात् सत्याऽसत्य के विवेकपूर्वक सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग से निश्चय पवित्र होता है । (क्षान्ति) अर्थात् निन्दा स्तुति सुख दुःख शीतोष्ण क्षुधा तृषा हानि लाभ मानापमान आदि हर्ष शोक छोड़ के धर्म्म में दृढ़ निश्चय रहना (आर्जव) कोमलता निरभिमान सरलता सरलस्वभाव रखना कुटिलतादि दोष छोड़ देना (ज्ञान) सब वेदादि शास्त्रों को साङ्गोपाङ्ग पढ़के पढ़ाने का सामर्थ्य विवेक सत्य का निर्णय जो वस्तु जैसा हो अर्थात् जड़ को जड़ चेतन को चेतन जानना और मानना (विज्ञान) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों को विशेषता से जानकर उनसे यथायोग्य उपयोग लेना (आस्तिक्य) कभी वेद, ईश्वर, मुक्ति, पूर्व परजन्म, धर्म, विद्या, सत्सङ्ग, माता, पिता, आचार्य्य और अतिथियों की सेवा को न छोड़ना और

निन्दा कभी न करना ॥ २ ॥ ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें ॥ क्षत्रिय—

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ मनु० [१ । ८९]
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ २ ॥
भ० गी० [अध्याय १८ । श्लोक ४३]

न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़ के श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना सब प्रकार से सब का पालन (दान) विद्या धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना (इज्या) अग्निहोत्रादि यज्ञ करना वा कराना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना तथा पढ़वाना और (विषयेषु०) विषयों में न फँस कर जितेन्द्रिय रह के सदा शरीर और आत्मा से बलवान् रहना ॥ १ ॥ (शौर्य्य) सैकड़ों सहस्रों से भी युद्ध करने में अकेला भय न होना (तेजः) सदा तेजस्वी अर्थात् दीनतारहित प्रगल्भ दृढ़ रहना (धृति) धैर्य्यवान् होना (दाक्ष्य) राजा और प्रजासम्बन्धी व्यवहार और सब शास्त्रों में अति चतुर होना (युद्धे) युद्ध में भी दृढ़ निःशंक रहके उससे कभी न हटना न भागना अर्थात् इस प्रकार से लड़ना कि जिससे निश्चित विजय होवे आप बचे जो भागने से वा शत्रुओं को धोखा देने से जीत होती हो तो ऐसा ही करना (दान) दानशीलता रखना (ईश्वरभाव) पक्षपातरहित होके सब के साथ यथायोग्य वर्त्तना, विचार के देना, प्रतिज्ञा पूरी करना उसको कभी भङ्ग होने न देना । ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ण के कर्म और गुण हैं ॥ २ ॥ वैश्यः—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च ।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ मनु० [१ । ९०]

(पशुरक्षा) गाय आदि पशुओं का पालन वर्द्धन करना (दान) विद्या धर्म की वृद्धि करने कराने के लिये धनादि का व्यय करना (इज्या) अग्नि-

होत्रादि यज्ञों का करना (अध्ययन) वेदादि शास्त्रों का पढ़ना (वणिक्पथ) सब प्रकार के व्यापार करना (कुसीद) एक सैकड़े में चार, छः, आठ, बारह, सोलह वा बीस आनों से अधिक व्याज और मूल से दूना अर्थात् एक रुपया दिया हो तो सौ वर्ष में भी दो रुपये से अधिक न लेना और देना (कृषि) खेती करना, ये वैश्य के गुण कर्म हैं ॥ शूद्रः—

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० [१ । ६१]

शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्ष्या, अभिमान आदि दोषों को छोड़ के ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसी से अपना जीवन करना यही एक शूद्र का गुण, कर्म है ॥ ये संक्षेप से वर्णों के गुण और कर्म लिखे। जिस २ पुरुष में जिस २ वर्ण के गुण कर्म हों उस २ वर्ण का अधिकार देना । ऐसी व्यवस्था रखने से सब मनुष्य उन्नतिशील होते हैं । क्योंकि उत्तम वर्णों को भय होगा कि जो हमारे सन्तान मूर्खत्वादि दोषयुक्त होंगे तो शूद्र होजायेंगे और सन्तान भी डरते रहेंगे कि जो हम उक्त चाल चलन और विद्यायुक्त न होंगे तो शूद्र होना पड़ेगा । और नीच वर्णों को उत्तम वर्णस्थ होने के लिये उत्साह बढ़ेगा । विद्या और धर्म के प्रचार का अधिकार ब्राह्मण को देना क्योंकि वे पूर्ण विद्यावान् और धार्मिक होने से उस काम को यथायोग्य कर सकते हैं । क्षत्रियों को राज्य के अधिकार देने से कभी राज्य की हानि वा विघ्न नहीं होता । पशुपालनादि का अधिकार वैश्यों ही को होना योग्य है क्योंकि वे इस काम को अच्छे प्रकार कर सकते हैं । शूद्र को सेवा का अधिकार इसलिये है कि वह विद्यारहित मूर्ख होने से विज्ञानसम्बन्धी काम कुछ भी नहीं कर सकता किन्तु शरीर के काम सब कर सकता है । इस प्रकार वर्णों को अपने अपने अधिकार में प्रवृत्त करना राजा आदि का काम है ॥

विवाह के लक्षण

ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः ।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ॥ मनु० [३ । २१]

विवाह आठ प्रकार का होता है एक ब्राह्म, दूसरा दैव, तीसरा आर्ष, चौथा प्राजापत्य, पांचवां आसुर, छठा गान्धर्व, सातवां राक्षस, आठवां पैशाच। इन में से विवाहों की यह व्यवस्था है कि–वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना "ब्राह्म" कहाता है। विस्तृतयज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलङ्कारयुक्त कन्या का देना "दैव"। वर से कुछ लेकर विवाह होना "आर्ष"। दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना "प्राजापत्य"। वर और कन्या को कुछ देके विवाह होना "आसुर"। अनियम, असमय किसी कारण से दोनों की इच्छापूर्वक वर कन्या का परस्पर संयोग होना "गान्धर्व"। लड़ाई करके बलात्कार अर्थात् छीन झपट वा कपट से कन्या का ग्रहण करना "राक्षस"। शयन वा मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना "पैशाच"। इन सब विवाहों में ब्राह्मविवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्राजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गान्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाच महाभ्रष्ट है। इसलिये यही निश्चय रखना चाहिये कि कन्या और वर का विवाह के पूर्व एकान्त में मेल न होना चाहिये क्योंकि युवावस्था में स्त्री पुरुष का एकान्तवास दूषणकारक है। परन्तु जब कन्या वा वर के विवाह का समय हो अर्थात् जब एक वर्ष वा छः महीने ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूरी होने में शेष रहें तब उन कन्या और कुमारों का प्रतिबिम्ब अर्थात् जिसको "फोटोग्राफ" कहते हैं अथवा प्रतिकृति उतार के कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें जिस २ का रूप मिल जाय उस २ के इतिहास अर्थात् जो जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र का पुस्तक हो उनको अध्यापक लोग मंगवा के देखें जब दोनों के गुण कर्म स्वभाव सदृश हों तब जिस २ के साथ जिस २ का विवाह होना योग्य समझें उस २ पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें और कहें कि इसमें जो तुम्हारा अभिप्राय हो सो हमको विदित कर देना। जब उन दोनों का निश्चय परस्पर विवाह करने का होजाय तब उन दोनों का समावर्त्तन एकही समय में होवे। जो वे दोनों अध्यापकों के सामने विवाह करना चाहें तो

वहां, नहीं तो कन्या के माता पिता के घर में विवाह होना योग्य है। जब वे समक्ष हों तब उन अध्यापकों वा कन्या के माता पिता आदि भद्रपुरुषों के सामने उन दोनों की आपस में बात चीत, शास्त्रार्थ कराना और जो कुछ गुप्त व्यवहार पूछें सो भी सभा में लिखके एक दूसरे के हाथ में देकर प्रश्नोत्तर कर लेवें। जब दोनों का दृढ़ प्रेम विवाह करने में होजाय तब से उनके खान पान का उत्तम प्रबन्ध होना चाहिये कि जिससे उनका शरीर जो पूर्व ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययनरूप तपश्चर्या और कष्ट से दुर्बल होता है वह चन्द्रमा की कला के समान बढ़ के थोड़े ही दिनों में पुष्ट होजाय। पश्चात् जिस दिन कन्या रजस्वला होकर जब शुद्ध हो तब वेदी और मण्डप रचके अनेक सुगन्ध्यादि द्रव्य और घृतादि का होम तथा अनेक विद्वान् पुरुष और स्त्रियों का यथायोग्य सत्कार करें। पश्चात् जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन "संस्कारविधि" पुस्तकस्थ विधि के अनुसार सब कर्म करके मध्य रात्रि वा दश बजे अति प्रसन्नता से सब के सामने पाणिग्रहणपूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके एकान्तसेवन करें। पुरुष वीर्य्यस्थापन और स्त्री वीर्याकर्षण की जो विधि है उसीके अनुसार दोनों करें। जहांतक बने वहांतक ब्रह्मचर्य के वीर्य्य को व्यर्थ न जाने दें क्योंकि उस वीर्य्य का रज से जो शरीर उत्पन्न होता है वह अपूर्व उत्तम सन्तान होता है। जब वीर्य्य का गर्भाशय में गिरने का समय हो उस समय स्त्री पुरुष दोनों स्थिर और नासिका के सामने नासिका, नेत्र के सामने नेत्र अर्थात् सूधा शरीर और अत्यन्त प्रसन्नचित्त रहें, डिगें नहीं। पुरुष अपने शरीर को ढीला छोड़े और स्त्री वीर्य्यप्राप्ति समय अपान वायु को ऊपर खींचे। योनि को ऊपर संकोच कर वीर्य्य का ऊपर आकर्षण कर के गर्भाशय में स्थिति करे *। पश्चात् दोनों शुद्ध जल से स्नान करें। गर्भस्थिति होने का परिज्ञान विदुषी स्त्री को तो उसी समय होजाता है परन्तु इसका निश्चय एक मास के पश्चात् रजस्वला न होने पर सब को हो जाता है। सोंठ, केसर, असगन्ध, सफेद इलायची और सालमभिश्री डाल गर्म कर रक्खा हुआ जो ठण्डा दूध है

* यह बात रहस्य की है इसलिये इतने ही से समग्र बातें समझ लेनी चाहियें विशेष लिखना उचित नहीं॥

उसको यथारुचि दोनों पी के अलग अलग अपनी २ शय्या में शयन करें। यही विधि जब २ गर्भाधान क्रिया करें तब २ करना उचित है जब महीने भर में रजस्वला न होने से गर्भस्थिति का निश्चय होजाय तब से एक वर्ष पर्य्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिये। क्योंकि ऐसा होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है। अन्यथा वीर्य्य व्यर्थ जाता दोनों की आयु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग होते हैं। परन्तु ऊपर से भाषणादि प्रेमयुक्त व्यवहार अवश्य रखना चाहिये। पुरुष वीर्य की स्थिति और स्त्री गर्भ की रक्षा और भोजन छादन इस प्रकार का करे कि जिससे पुरुष का वीर्य स्वप्न में भी नष्ट न हो और गर्भ में बालक का शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि, बल, पराक्रमयुक्त होकर दशवें महीने में जन्म होवे। विशेष उसकी रक्षा चौथे महीने से और अतिविशेष आठवें महीने से आगे करनी चाहिये। कभी गर्भवती स्त्री रेचक, रूक्ष, मादकद्रव्य, बुद्धि और बलनाशक पदार्थों के भोजनादि का सेवन न करे किन्तु घी, दूध, उत्तम चावल, गेहूं, मूंग, उर्द आदि अन्न पान और देशकाल का भी सेवन युक्तिपूर्वक करे। गर्भ में दो संस्कार एक चौथे महीने में पुंसवन और दूसरा आठवें महीने में सीमन्तोन्नयन विधि के अनुकूल करे। जब सन्तान का जन्म हो तब स्त्री और लड़के के शरीर की रक्षा बहुत सावधानी से करे अर्थात् शुण्ठीपाक अथवा सौभाग्य शुण्ठीपाक प्रथम ही बनवा रक्खे उस समय सुगन्धियुक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित् उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे। तत्पश्चात् नाड़ीछेदन बालक की नाभि के जड़ में एक कोमल सूत से बांध चार अंगुल छोड़ के ऊपर से काट डाले। उसको ऐसा बांधे कि जिससे शरीर से रुधिर का एक बिन्दु भी न जाने पावे। पश्चात् उस स्थान को शुद्ध करके उसके द्वार के भीतर सुगन्धादियुक्त घृतादि का होम करे। तत्पश्चात सन्तान के कान में पिता "वेदोऽसीति" अर्थात् 'तेरा नाम वेद है' सुनाकर घी और सहत को लेके सोने की शलाका से जीभ पर "ओ३म्" अक्षर लिख कर मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे। पश्चात् उसकी माता को देदेवे। जो दूध पीना चाहे तो उसकी माता पिलावे, जो उसकी माता के दूध न हो तो

किसी स्त्री की परीक्षा करके उसका दूध पिलावे। पश्चात् दूसरी शुद्ध कोठरी वा कमरे में कि जहां का वायु शुद्ध हो उसमें सुगन्धित घी का होम प्रातः और सायंकाल किया करे और उसी में प्रसूता स्त्री तथा बालक को रक्खे। छः दिन तक माता का दूध पिये और स्त्री भी अपने शरीर की पुष्टि के अर्थ अनेक प्रकार के उत्तम भोजन करे और योनिसंकोचादि भी करे। छठे दिन स्त्री बाहर निकले और सन्तान के दूध पीने के लिये कोई धायी रक्खे। उसको खान पान अच्छा करावे। वह सन्तान को दूध पिलाया करे और पालन भी करे परन्तु उसकी माता लड़के पर पूर्णदृष्टि रक्खे किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार उसके पालन में न हो। स्त्री दूध बन्द करने के अर्थ स्तन के अग्रभाग पर ऐसा लेप करे कि जिससे दूध स्रवित न हो। उसी प्रकार खान पान का व्यवहार भी यथायोग्य रक्खे। पश्चात् नामकरणादि संस्कार "संस्कारविधि" की रीति से यथाकाल करता जाय। जब स्त्री फिर रजस्वला हो तब शुद्ध होने के पश्चात् उसी प्रकार ऋतुदान देवे॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा।
ब्रह्मचार्य्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन्॥ मनु० [३। ५०]

जो अपनी ही स्त्री से प्रसन्न और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ भी ब्रह्मचारी के सदृश है॥

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्॥ १॥
यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसन्न प्रमोदयेत्।
अप्रमोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते॥ २॥
स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते॥ ३॥
मनु० [३। ६०-६२]

जिस कुल में भार्य्या से भर्त्ता और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न

रहती है उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहां कलह होता है वहां दौर्भाग्य और दारिद्र्य स्थिर होता है ॥ १ ॥ जो स्त्री पति से प्रीति और पति को प्रसन्न नहीं करती तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता ॥ २ ॥ जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक होजाता है ॥ ३ ॥

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ १ ॥
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ २ ॥
शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् ।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा ॥ ३ ॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥ ४ ॥

मनु० [३ । ५५–५७–५९]

पिता, भाई, पति और देवर इनको सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रक्खें, जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें ॥ १ ॥ जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है उसमें विद्यायुक्त पुरुष होके देवसंज्ञा धरा के आनन्द से क्रीड़ा करते हैं और जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वहां सब क्रिया निष्फल होजाती हैं ॥ २ ॥ जिस घर वा कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःख पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट भ्रष्ट होजाता है और जिस घर वा कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता से भरी हुई रहती हैं वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है ॥ ३ ॥ इसलिये ऐश्वर्य की कामना करनेहारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार और उत्सव के समयों में भूषण वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें ॥ ४ ॥ यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि "पूजा" शब्द का अर्थ सत्कार है और दिन रात में जब २ प्रथम मिलें वा पृथक् हों तब २ प्रीतिपूर्वक "नमस्ते" एक दूसरे से करें ॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥
मनु० [५ । १५०]

स्त्री को योग्य है कि अतिप्रसन्नता से घर के कामों में चतुराईयुक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रक्खे और व्यय में अत्यन्त उदार [न] रहै अर्थात् [यथायोग्य खर्च करे और] सब चीज़ें पवित्र और पाक इस प्रकार बनावे जो ओषधिरूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे, जो २ व्यय हो उस का हिसाब यथावत् रखके पति आदि को सुना दिया करे घर के नौकर चाकरों से यथायोग्य काम लेवे घर के किसी काम को बिगड़ने न देवे ॥

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या सत्यं शौचं सुभाषितम् ।
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥
मनु० [२ । २४०]

उत्तम स्त्री, नाना प्रकार के रत्न, विद्या, सत्य, पवित्रता, श्रेष्ठभाषण और नाना प्रकार की शिल्पविद्या अर्थात् कारीगरी सब देश तथा सब मनुष्यों से ग्रहण करे ॥

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ १ ॥
भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत् ।
शुष्कवैरं विवादं च न कुर्यात्केनचित्सह ॥ २ ॥
मनु० [४ । १३८ । १३९]

सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले, अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले ॥ १ ॥ सदा भद्र अर्थात् सब के हितकारी वचन बोला करे शुष्कवैर अर्थात् विना अपराध किसी के साथ विरोध वा विवाद न करे । जो २ दूसरे का हितकारक हो और बुरा भी माने तथापि कहे विना न रहे ॥ २ ॥

पुरुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥
उद्योगपर्व-विदुरनीति० ॥

हे धृतराष्ट्र ! इस संसार में दूसरे को निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलनेवाले प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय विदित हो और वह कल्याण करनेवाला वचन हो उसका कहने और सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है । क्योंकि सत्पुरुषों को योग्य है कि मुख के सामने दूसरे का दोष कहना और अपना दोष सुनना परोक्ष में दूसरे के गुण सदा कहना । और दुष्टों की यही रीति है कि सम्मुख में गुण कहना और परोक्ष में दोषों का प्रकाश करना । जबतक मनुष्य दूसरे से अपने दोष नहीं कहता तबतक मनुष्य दोषों से छूट-कर गुणी नहीं हो सकता । कभी किसी की निन्दा न करे जैसेः—

"गुणेषु दोषारोपणमसूया" अर्थात् "दोषेषु गुणारोपणमप्यसूया" "गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः" जो गुणों में दोष दोषों में गुण लगाना वह निन्दा और गुणों में गुण दोषों में दोषों का कथन करना स्तुति कहाती है अर्थात् मिथ्याभाषण का नाम निन्दा और सत्यभाषण का नाम स्तुति है ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धन्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ १ ॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति ।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥ २ ॥
मनु० [४ । १९ । २०]

जो शीघ्र बुद्धि धन और हित की वृद्धि करनेहारे शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावें ब्रह्मचर्य्याश्रम में पढ़े हों उनको स्त्री पुरुष नित्य विचारा और पढ़ाया करें ॥ १ ॥ क्योंकि जैसे २ मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता है वैसे २ उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि बढ़ती रहती है ॥ २ ॥

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ १ ॥
मनु० [४ । २१]

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञश्च तर्प्पणम् ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥ २ ॥
मनु० [३ । ७०]

स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन् होमैर्देवान् यथाविधि ।
पितॄन् श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा ॥ ३ ॥
मनु० [३ । ८१]

दो यज्ञ ब्रह्मचर्य में लिख आये वे अर्थात् एक वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना सन्ध्योपासन योगाभ्यास, दूसरा देवयज्ञ विद्वानों का संग सेवा पवित्रता दिव्य गुणों का धारण दातृत्व विद्या की उन्नति करना है ये दोनों यज्ञ सायं प्रातः करने होते हैं ॥

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता ॥ १ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनसस्य दाता ॥ २ ॥ अ० कां० १९ । अनु० ७ । मं० ३ । ४ ॥

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत । उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ॥ ३ ॥ ब्राह्मणे [षड्विंशब्राह्मणे प्र० ४ । खं० ५]

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥ ४ ॥
मनु० [२ । १०३]

जो सन्ध्या २ काल में होम होता है वह हुत द्रव्य प्रातःकाल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है ॥ १ ॥ जो अग्नि में प्रातः २ काल में होम किया जाता है वह २ हुत द्रव्य सायङ्काल पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और

आरोग्यकारक होता है ।। २ ।। इसीलिये दिन और रात्रि के सन्धि में अर्थात् सूर्योदय और अस्त समय में परमेश्वर का ध्यान और अग्निहोत्र अवश्य करना चाहिये ।। ३ ।। और जो ये दोनों काम सायं और प्रातःकाल में न करे उसको सज्जन लोग सब द्विजों के कर्मों से बाहर निकाल देवें अर्थात् उसे शूद्रवत् समझें ।। ४ ।। (प्रश्न) त्रिकाल सन्ध्या क्यों नहीं करना ? (उत्तर) तीन समय में सन्धि नहीं होती प्रकाश और अंधकार की सन्धि भी सायं प्रातः दो ही वेला में होती है । जो इसको न मानकर मध्याह्नकाल में तीसरी सन्ध्या माने वह मध्यरात्रि में भी संध्योपासन क्यों न करे ? जो मध्यरात्रि में भी करना चाहे तो प्रहर २ घड़ी २ पल २ और क्षण २ की भी सन्धि होती हैं, उनमें भी संध्योपासन किया करे । जो ऐसा भी करना चाहे तो होही नहीं सकता और किसी शास्त्र का मध्याह्नसंध्या में प्रमाण भी नहीं इसलिये दोनों कालों में सन्ध्या और अग्निहोत्र करना समुचित है, तीसरे काल में नहीं । और जो तीन काल होते हैं वे भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान के भेद से हैं संध्योपासन के भेद से नहीं । तीसरा "पितृयज्ञ" अर्थात् जिस में देव जो विद्वान्, ऋषि जो पढ़ने पढ़ाने हारे, पितर जो माता पिता आदि वृद्ध ज्ञानी और परम योगियों की सेवा करनी। पितृयज्ञ के दो भेद हैं एक श्राद्ध और दूसरा तर्पण । श्राद्ध अर्थात् "श्रत्" सत्य का नाम है "श्रत्सत्यं दधाति यया क्रियया सा श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्" जिस क्रिया से सत्य का ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से कर्म किया जाय उसका नाम श्राद्ध है । और "तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितृन् तत्तर्पणम्" जिस जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर प्रसन्न हों और प्रसन्न किये जायँ उसका नाम तर्पण है, परन्तु यह जीवितों के लिये हैं मृतकों के लिये नहीं ।।

ओं ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवसुतास्तृप्यन्ताम् । ब्रह्मादिदेवगणास्तृप्यन्ताम् ।।

इति देवतर्पणम्

"विद्वाꣳसो हि देवाः" यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है—जो विद्वान् हैं उन्हीं को देव कहते हैं जो साङ्गोपाङ्ग चार वेदों के जानने वाले हों उनका नाम ब्रह्मा और जो उनसे न्यून पढ़े हों उनका भी नाम देव अर्थात् विद्वान् है। उनके सदृश उनकी विदुषी स्त्री ब्राह्मणी देवी और उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके सदृश उनके गण अर्थात् सेवक हों उनकी सेवा करना है उसका नाम श्राद्ध और तर्पण है॥

अथर्षितर्पणम्

ओं मरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिपत्न्यस्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिसुतास्तृप्यन्ताम्। मरीच्याद्यृषिगणास्तृप्यन्ताम्॥

इति ऋषितर्पणम्

जो ब्रह्मा के प्रपौत्र मरीचिवत् विद्वान् होकर पढ़ावें और जो उनके सदृश विद्यायुक्त उनकी स्त्रियां कन्याओं को विद्यादान देवें उनके तुल्य पुत्र और शिष्य तथा उनके समान उनके सेवक हों उनका सेवन और सत्कार करना ऋषितर्पण है।

अथ पितृतर्पणम्

ओं सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्। अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम्। बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम्। सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। हविर्भुजः पितरस्तृप्यन्ताम्। आज्यपाः पितरस्तृप्यन्ताम्। [सुकालिनः पितरस्तृप्यन्ताम्।] यमादिभ्यो नमः यमादींस्तर्पयामि। पित्रे स्वधा नमः पितरं तर्पयामि। पितामहाय स्वधा नमः पितामहं तर्पयामि। [प्रपितामहाय स्वधा नमः प्रपितामहं तर्पयामि।] मात्रे स्वधा नमो मातरं तर्प्पयामि। पितामह्यै स्वधा नमः पितामहीं तर्प्पयामि। [प्रपितामह्यै स्वधा नमः प्रपितामहीं तर्प्पयामि।] स्वपत्न्यै स्वधा नमः स्वपत्नीं तर्प्पयामि। सम्बन्धिभ्यः स्वधा नमः सम्बन्धिनस्तर्प्पयामि। सगोत्रेभ्यः स्वधा नमः सगोत्रांस्तर्प्पयामि॥

इति पितृतर्प्पणम्

"ये सोमे जगदीश्वरे पदार्थविद्यायां च सीदन्ति ते सोमसदः" जो परमात्मा और पदार्थविद्या में निपुण हों वे सोमसद। "यैरग्नेर्विद्युतो विद्या गृहीता ते अग्निष्वात्ताः" जो अग्नि अर्थात् विद्युदादि पदार्थों के जाननेवाले हों वे अग्निष्वात्त। "ये बर्हिषि उत्तमे व्यवहारे सीदन्ति ते बर्हिषदः" जो उत्तम विद्यावृद्धियुक्त व्यवहार में स्थित हों वे बर्हिषद्। "ये सोममैश्वर्यमोषधीरसं वा पान्ति पिबन्ति वा ते सोमपाः" जो ऐश्वर्य्य के रक्षक और महौषधि रस का पान करने से रोगरहित और अन्य के ऐश्वर्य के रक्षक औषधों को देके रोग-नाशक हों वे सोमपा। "ये हविर्होतुमत्तुमर्हं भुञ्जते भोजयन्ति वा ते हविर्भुजः" जो मादक और हिंसाकारक द्रव्यों को छोड़ के भोजन करनेहारे हों वे हविर्भुज। "य आज्यं ज्ञातुं प्राप्तुं वा योग्यं रक्षन्ति वा पिबन्ति त आज्यपाः" जो जानने के योग्य वस्तु के रक्षक और घृत दुग्धादि खाने और पीनेहारे हों वे आज्यपा। "शोभनः कालो विद्यते येषान्ते सुकालिनः" जिनका अच्छा धर्म करने का सुखरूप समय हो वे सुकालिन्। "ये दुष्टान् यच्छन्ति निगृह्णन्ति ते यमा न्यायाधीशाः" जो दुष्टों को दण्ड और श्रेष्ठों का पालन करनेहारे न्यायकारी हों वे यम। "यः पाति स पिता" जो सन्तानों का अन्न और सत्कार से रक्षक वा जनक हो वह पिता। "पितुः पिता पितामहः पितामहस्य पिता प्रपितामहः" जो पिता का पिता हो वह पितामह और जो पितामह का पिता हो वह प्रपितामह "या मानयति सा माता" जो अन्न और सत्कारों से सन्तानों का मान्य करे वह माता। "या पितुर्माता सा पितामही पितामहस्य माता प्रपितामही" जो पिता की माता हो वह पितामही और पितामह की माता हो वह प्रपितामही। अपनी स्त्री तथा भगिनी सम्बन्धी और एक गोत्र के तथा अन्य कोई भद्र पुरुष वा वृद्ध हों उन सबको अत्यन्त श्रद्धा से उत्तम अन्न, वस्त्र, सुन्दर यान आदि देकर अच्छे प्रकार जो तृप्त करना अर्थात् जिस २ कर्म से उनका आत्मा तृप्त और शरीर स्वस्थ रहे उस २ कर्म से प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी वह श्राद्ध और तर्प्पण कहाता है॥

चौथा वैश्वदेव—अर्थात् जब भोजन सिद्ध हो तब जो कुछ भोजनार्थ बने

उसमें से खट्टा लवणान्न और क्षार को छोड़ के घृत मिष्टयुक्त अन्न लेकर चूल्हे से अग्नि अलग धर निम्नलिखित मन्त्रों से आहुति और भाग करे ॥

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम् ।
आभ्यः कुर्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ मनु० [३ । ८४]

जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो उसका दिव्य गुणों के अर्थ उसी पाकाग्नि में निम्नलिखित मन्त्रों से विधिपूर्वक होम नित्य करे—

होम करने के मन्त्र ।

ओं अग्नये स्वाहा । सोमाय स्वाहा । अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । धन्वन्तरये स्वाहा । कुह्वै स्वाहा । अनुमत्यै स्वाहा । प्रजापतये स्वाहा । सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा । स्विष्टकृते स्वाहा ॥

इन प्रत्येक मन्त्रों से एक २ बार आहुति प्रज्वलित अग्नि में छोड़े पश्चात् थाली अथवा भूमि में पत्ता रख के पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खेः—

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । सानुगाय यमाय नमः । सानुगाय वरुणाय नमः । सानुगाय सोमाय नमः । मरुद्भ्यो नमः । अद्भ्यो नमः । वनस्पतिभ्यो नमः । श्रियै नमः । भद्रकाल्यै नमः । ब्रह्मपतये नमः । वास्तुपतये नमः । विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । नक्तञ्चारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । सर्वात्मभूतये नमः ॥

इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे । इसके अनन्तर लवणान्न अर्थात् दाल, भात, शाक, रोटी आदि लेकर छः भाग भूमि में धरे । इसमें प्रमाणः—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् ।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ मनु० [३ । ९२]

इस प्रकार "श्वभ्यो नमः, पतितेभ्यो नमः, श्वपग्भ्यो नमः, पापरोगिभ्यो नमः, वायसेभ्यो नमः, कृमिभ्यो नमः" धरकर पश्चात् किसी दुखी, बुभुक्षित प्राणी अथवा कुत्ते कौवे आदि को देवे। यहां नमः शब्द का अर्थ अन्न अर्थात् कुत्ते, पापी, चांडाल, पापरोगी, कौवे और कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना यह मनुस्मृति आदि की विधि है। हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है उसका प्रत्युपकार कर देना॥

अब पांचवीं अतिथिसेवा—अतिथि उसको कहते हैं कि जिसकी कोई तिथि निश्चित न हो अर्थात् अकस्मात् धार्मिक, सत्योपदेशक, सब के उपकारार्थ सर्वत्र घूमनेवाला पूर्णविद्वान्, परमयोगी, संन्यासी गृहस्थ के यहां आवे तो उसको प्रथम पाद्य अर्घ और आचमनीय तीन प्रकार का जल देकर पश्चात् आसन पर सत्कारपूर्वक बिठाल कर खान पान आदि उत्तमोत्तम पदार्थों से सेवा शुश्रूषा करके उसको प्रसन्न करे। पश्चात् सत्सङ्ग कर उनसे ज्ञान विज्ञान आदि जिनसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति होवे ऐसे ऐसे उपदेशों का श्रवण करे और अपना चाल चलन भी उनके सदुपदेशानुसार रक्खे। समय पाके गृहस्थ और राजादि भी अतिथिवत् सत्कार करने योग्य हैं परन्तु—

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालवृत्तिकान् शठान्।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥
मनु० [४। ३०]

(पाषण्डी) अर्थात् वेदनिन्दक, वेदविरुद्ध आचरण करनेहार (विकर्मस्थ) जो वेदविरुद्ध कर्म का कर्त्ता मिथ्याभाषणादि युक्त जैसे बिडाला छिप और स्थिर रहकर ताकता २ झपट से मूषे आदि प्राणियों को मार अपना पेट भरता है वैसे जनों का नाम वैडालवृत्तिक (शठ) अर्थात् हठी, दुराग्रही, अभिमानी, आप जानें नहीं औरों का कहा मानें नहीं (हैतुक) कुतर्की व्यर्थ बकनेवाले जैसे कि आजकल के वेदान्ती बकते हैं हम ब्रह्म और जगत् मिथ्या है वेदादि

शास्त्र और ईश्वर भी कल्पित है इत्यादि गपोड़ा हांकनेवाले (वकवृत्ति) जैसे वक एक पैर उठा ध्यानावस्थित के समान होकर झट मच्छी के प्राण हरके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है वैसे आजकल के वैरागी और खाकी आदि हठी दुराग्रही वेदविरोधी हैं ऐसों का सत्कार वाणीमात्र से भी न करना चाहिये। क्योंकि इनका सत्कार करने से ये वृद्धि को पाकर संसार को अधर्मयुक्त करते हैं। आप तो अवनति के काम करते ही हैं परन्तु साथ में सेवक को भी अविद्यारूपी महासागर में डुबो देते हैं। इन पांच महायज्ञों का फल यह है कि ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभ गुणों की वृद्धि। अग्निहोत्र से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होना अर्थात् शुद्ध वायु का श्वासस्पर्श खान पान से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अनुष्ठान पूरा होना इसीलिये इसको देवयज्ञ कहते हैं। पितृयज्ञ से जब माता पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे सत्यासत्य का निर्णय कर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है उसका बदला देना उचित ही है। बलिवैश्वदेव का भी फल जो पूर्व कह आये वही है। जबतक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तबतक उन्नति भी नहीं होती उनके सब देशों में घूमने और सत्योपदेश करने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती और सर्वत्र गृहस्थों को सहज से सत्य विज्ञान की प्राप्ति होती रहती है और मनुष्यमात्र में एक ही धर्म स्थिर रहता है। विना अतिथियों के सन्देहनिवृत्ति नहीं होती सन्देहनिवृत्ति के विना दृढ़ निश्चय भी नहीं होता। निश्चय के विना सुख कहां!

ब्राह्मे मुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव च॥ मनु० [४। ९२]

रात्रि के चौथे प्रहर अथवा चार घड़ी रात से उठे आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा का ध्यान करे कभी अधर्म का आचरण न करे क्योंकि:—

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृन्तति ॥ मनु० [४ । १७२]

किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता इसलिये अज्ञानी लोग अधर्म से नहीं डरते तथापि निश्चय जानो कि वह अधर्माचरण धीरे २ तुम्हारे सुख के मूलों को काटता चला जाता है । इस क्रम से—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति ॥ मनु० [४ । १७४]

जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसा तालाब के बंध को तोड़ जल चारों ओर फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन और विश्वासघातादि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर प्रथम बढ़ता है, पश्चात् धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है जैसे जड़ काटा हुआ वृक्ष नष्ट होजाता है वैसे अधर्मी नष्ट भ्रष्ट होजाता है ॥

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥ मनु० [४ । १७५]

जो [विद्वान्] वेदोक्त सत्य धर्म अर्थात् पक्षपातरहित होकर सत्य के ग्रहण और असत्य के परित्याग न्यायरूप वेदोक्त धर्मादि आर्य अर्थात् धर्म में चलते हुए के समान धर्म से शिष्यों को शिक्षा किया करे ॥

ऋत्विक् पुरोहिताचार्य्यैर्मातुलातिथिसंश्रितैः ।
बालवृद्धातुरैर्वैद्यैर्ज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः ॥ १ ॥
मातापितृभ्यां यामीभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया ।
दुहित्रा दासवर्गेण विवादं न समाचरेत् ॥ २ ॥ मनु० [४ । १७९ । १८०]

(ऋत्विक्) यज्ञ का करनेहारा (पुरोहित) सदा उत्तम चाल चलन की शिक्षाकारक (आचार्य) विद्या पढ़ानेहारा (मातुल) मामा (अतिथि) अर्थात् जिसकी कोई आने जाने की निश्चित तिथि न हो (संश्रित) अपने आश्रित (बाल) बालक (वृद्ध) बुड्ढा (आतुर) पीड़ित (वैद्य) आयुर्वेद का ज्ञाता (ज्ञाति) स्वगोत्र वा स्ववर्णस्थ (संबन्धी) श्वशुर आदि (बान्धव) मित्र ॥१॥ (माता) माता (पिता) पिता (यामी) बहिन (भ्राता) भाई (भार्या) स्त्री (दुहिता) पुत्री और सेवक लोगों से विवाद अर्थात् विरुद्ध लड़ाई बखेड़ा कभी न करे ॥ २ ॥

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरुचिर्द्विजः ।
अम्भस्यश्मप्लवेनेव सह तेनैव मज्जति ॥ मनु० [४ । १९०]

एक (अतपाः) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि तपरहित दूसरा (अनधीयानः) बिना पढ़ा हुआ तीसरा (प्रतिग्रहरुचिः) अत्यन्त धर्मार्थ दूसरों से दान लेनेवाला ये तीनों पत्थर की नौका से समुद्र में तरने के समान अपने दुष्ट कर्मों के साथ ही दुःखसागर में डूबते हैं । वे तो डूबते ही हैं परन्तु दाताओं को साथ डुबा लेते हैं:—

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाप्यर्जितं धनम् ।
दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च ॥ मनु० [४ । १९३]

जो धर्म से प्राप्त हुए धन का उक्त तीनों को देना है वह दान दाता का नाश इसी जन्म और लेनेवाले का नाश परजन्म में करता है ॥ जो वे ऐसे हों तो क्या हो:—

यथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ ॥ मनु० [४ । १९४]

जैसे पत्थर की नौका में बैठ के जल में तरनेवाला डूब जाता है वैसे अज्ञानी दाता और ग्रहीता दोनों अधोगति अर्थात् दुःख को प्राप्त होते हैं ॥

पाखण्डियों के लक्षण ।

धर्मध्वजी सदालुब्धश्छाद्मिको लोकदम्भकः ।
बैडालव्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभिसन्धकः ॥ १ ॥
अधोदृष्टिर्नैष्कृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः ।
शठो मिथ्याविनीतश्च बकव्रतचरो द्विजः ॥ २ ॥
मनु० [४ । १९५ । १९६]

(धर्मध्वजी) धर्म कुछ भी न करे परन्तु धर्म के नाम से लोगों को ठगे (सदालुब्धः) सर्वदा लोभ से युक्त (छाद्मिकः) कपटी (लोकदम्भकः) संसारी मनुष्य के सामने अपनी बड़ाई के गपोड़े मारा करे (हिंस्रः) प्राणियों का घातक अन्य से वैरबुद्धि रखनेवाला (सर्वाभिसन्धकः) सब अच्छे और बुरों से भी मेल रक्खे उसको बैडालव्रतिक अर्थात् बिडाले के समान धूर्त और नीच समझो ॥ १ ॥ (अधोदृष्टिः) कीर्त्ति के लिये नीचे दृष्टि रक्खे (नैष्कृतिकः) ईर्ष्यक किसी ने उस का पैसा भर अपराध किया हो तो उसका बदला प्राण तक लेने को तत्पर रहै (स्वार्थसाधन०) चाहैं कपट अधर्म विश्वासघात क्यों न हो अपना प्रयोजन साधने में चतुर (शठः) चाहैं अपनी बात झूंठी क्यों न हो परन्तु हठ कभी न छोड़े (मिथ्याविनीतः) झूंठ मूंठ ऊपर से शील संतोष और साधुता दिखलावे उसको (बकव्रत) बगुले के समान नीच समझो ऐसे २ लक्षणों वाले पाखण्डी होते हैं उनका विश्वास वा सेवा कभी न करें ॥

धर्मं शनैः सञ्चिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः ।
परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ १ ॥
नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥ २ ॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते ।
एकोनुभुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ ३ ॥
मनु० [४ । २३८-२४०]

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्त्ता दोषेण लिप्यते ॥ ४ ॥
[महाभारते । उद्योगप० प्रजागरप० ॥ अ० ३२]
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ ५ ॥
मनु० [४ । २४१]

स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे पुत्तिका अर्थात् दीमक वल्मीक अर्थात् बांमी को बनाती है वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परलोक अर्थात् परजन्म के सुखार्थ धीरे २ धर्म का संचय करे ॥ १ ॥ क्योंकि परलोक में न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न ज्ञाति सहाय कर सकते हैं किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है ॥ २ ॥ देखिये अकेला ही जीव जन्म और मरण को प्राप्त होता, एक ही धर्म का फल जो सुख और अधर्म का जो दुःखरूप फल उसको भोगता है ॥ ३ ॥ यह भी समझ लो कि कुटुम्ब में एक पुरुष पाप करके पदार्थ लाता है और महाजन अर्थात् सब कुटुम्ब उस को भोगता है भोगनेवाले दोषभागी नहीं होते किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है ॥ ४ ॥ जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है उसको मट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं कोई उसके साथ जानेवाला नहीं होता किन्तु एक धर्म ही उसका सङ्गी होता है ॥ ५ ॥

तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनुयाच्छनैः ।
धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ १ ॥
धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हतकिल्बिषम् ।
परलोकं नयत्याशु भास्वन्तं खशरीरिणम् ॥ २ ॥
मनु० [४ । २४२ । २४३]

उस हेतु से परलोक अर्थात् परजन्म में सुख और जन्म के सहायार्थ नित्य धर्म का सञ्चय धीरे २ करता जाय क्योंकि धर्म ही के सहाय से बड़े २ दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है ॥ १ ॥ किन्तु जो पुरुष धर्म ही

को प्रधान समझता जिसका धर्म के अनुष्ठान से कर्त्तव्य पाप दूर होगया उसको प्रकाशस्वरूप और आकाश जिसका शरीरवत् है उस परलोक अर्थात् परमदर्शनीय परमात्मा को धर्म ही शीघ्र प्राप्त कराता है ॥ २ ॥ इसलिये:—

दृढकारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैरसंवसन् ।
अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः ॥ १ ॥
वाच्यर्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिःसृताः ।
तान्तु यः स्तेनयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः ॥ २ ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः ।
आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ ३ ॥
मनु० [४ । २४६ । १५६]

सदा दृढ़कारी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय, हिंसक, क्रूर दुष्टाचारी पुरुषों से पृथक् रहनेहारा, धर्मात्मा मन को जीत और विद्यादि दान से सुख को प्राप्त होवे ॥ १ ॥ परन्तु यह भी ध्यान में रक्खे कि जिस वाणी में सब अर्थ अर्थात् व्यवहार निश्चित होते हैं वह वाणी ही उनका मूल और वाणी ही से सब व्यवहार सिद्ध होते हैं उस वाणी को जो चोरता अर्थात् मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापों का करनेवाला है ॥ २ ॥ इसलिये मिथ्याभाषणादिरूप अधर्म को छोड़ जो धर्माचार अर्थात् ब्रह्मचर्य जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु और धर्माचार से उत्तम प्रजा तथा अक्षय धन को प्राप्त होता है तथा जो धर्माचार में वर्त्तकर दुष्ट लक्षणों का नाश करता है उसके आचरण को सदा किया करे ॥ क्योंकि:—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ मनु० [४ । १५७]

जो दुष्टाचारी पुरुष है वह संसार में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त दुःखभागी और निरन्तर व्याधियुक्त होकर अल्पायु का भी भोगनेहारा होता है । इसलिये ऐसा प्रयत्न करे:—

यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥ १ ॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥ २ ॥
मनु० [४ । १५६ । १६०]

जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न से त्याग और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न के साथ सेवन करे ॥ १ ॥ क्योंकि जो २ पराधीनता है वह २ सब दुःख और जो २ स्वाधीनता है वह २ सब सुख यही संक्षेप से सुख और दुःख का लक्षण जानना चाहिये ॥ २ ॥ परन्तु जो एक दूसरे के आधीन काम है वह २ आधीनता से ही करना चाहिये जैसा कि स्त्री और पुरुष का एक दूसरे के आधीन व्यवहार । अर्थात् स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण अनुकूल रहना व्यभिचार वा विरोध कभी न करना पुरुष की आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहर के काम पुरुष के आधीन रहना दुष्ट व्यसन में फँसने से एक दूसरे को रोकना अर्थात् यही निश्चय जानना । जब विवाह होवे तब स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी अर्थात् जो स्त्री और पुरुष के साथ हाव, भाव, नखशिखाग्रपर्यन्त जो कुछ हैं वह वीर्यादि एक दूसरे के आधीन होजाता है । स्त्री वा पुरुष प्रसन्नता के विना कोई भी व्यवहार न करें । इनमें बड़े अप्रियकारक व्यभिचार, वेश्या, परपुरुषगमनादि काम हैं । इनको छोड़ के अपने पति के साथ स्त्री और स्त्री के साथ पति सदा प्रसन्न रहें । जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे । नानाविध उपदेश और वक्तृत्व करके उनको विद्वान् करें । स्त्री का पूजनीय देव पति और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है । जबतक गुरुकुल में रहें तबतक माता पिता के समान अध्यापकों को समझें और अध्यापक अपने सन्तानों के समान शिष्यों को समझें । पढ़ानेहारे अध्यापक और अध्यापिका कैसे होने चाहियें—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥ १ ॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्धधान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥ २ ॥
क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति, विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो ह्युपयुङ्क्ते परार्थे, तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥ ३ ॥
नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥ ४ ॥
प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥ ५ ॥
श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असंभिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥ ६ ॥

ये सब महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के श्लोक हैं ।

अर्थ—जिसको आत्मज्ञान सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे सुख, दुःख, हानि, लाभ, मानापमान, निन्दा, स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहै, जिसके मन को उत्तम २ पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें वही पण्डित कहाता है ॥ १ ॥ सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन, अधर्मयुक्त कामों का त्याग, ईश्वर, वेद, सत्याचार की निन्दा न करनेहारा, ईश्वर आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो यही पण्डित का कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म है ॥ २ ॥ जो कठिन विषय को भी शीघ्र जान सके, बहुत कालपर्य्यन्त शास्त्रों को पढ़े, सुने और विचारे, जो कुछ जाने उसको परोपकार में प्रयुक्त करे, अपने स्वार्थ के लिये कोई काम न करे, विना पूछे वा विना योग्य समय जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे वही प्रथम प्रज्ञान पण्डित होना चाहिये ॥ ३ ॥ जो प्राप्ति के अयोग्य की इच्छा कभी न करे नष्ट हुए पदार्थ पर शोक न करे, आपत्काल में मोह को न प्राप्त अर्थात् व्याकुल न हो वही बुद्धिमान् पण्डित है ॥ ४ ॥ जिसकी वाणी सब विद्याओं और प्रश्नोत्तरों के करने में अतिनिपुण, विचित्र, शास्त्रों के प्रकरणों का वक्ता, यथायोग्य तर्क और स्मृतिमान् ग्रन्थों के यथार्थ

अर्थ का शीघ्र वक्ता हो वही पण्डित कहाता है ॥ ५ ॥ जिसकी प्रज्ञा सुने हुए सत्य अर्थ के अनुकूल और जिसका श्रवण बुद्धि के अनुसार हो जो कभी आर्य अर्थात् श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों की मर्यादा का छेदन न करे वही पण्डित संज्ञा को प्राप्त होवे ॥ ६ ॥ जहां ऐसे ऐसे स्त्री पुरुष पढ़ानेवाले होते हैं वहां विद्या धर्म और उत्तमाचार की वृद्धि होकर प्रतिदिन आनन्द ही बढ़ता रहता है। पढ़ने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण:—

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥ १ ॥
अनाहूतः प्रविशति ह्यपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥ २ ॥

ये श्लोक भी महाभारत उद्योगपर्व विदुरप्रजागर [अध्याय ३२] के हैं।

अर्थ—जिसने कोई शास्त्र न पढ़ा न सुना और अतीव घमण्डी दरिद्र होकर बड़े २ मनोरथ करनेहारा विना कर्म से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करनेवाला हो उसी को बुद्धिमान् लोग मूढ़ कहते हैं ॥ १ ॥ जो विना बुलाये सभा व किसी के घर में प्रविष्ट हो, उच्च आसन पर बैठना चाहे, विना पूछे सभा में बहुतसा बके, विश्वास के अयोग्य वस्तु वा मनुष्य में विश्वास करे वही मूढ़ और सब मनुष्यों में नीच मनुष्य कहाता है ॥ २ ॥ जहां ऐसे पुरुष अध्यापक, उपदेशक, गुरु और माननीय होते हैं वहां अविद्या, अधर्म, असभ्यता, कलह, विरोध और फूट बढ़ के दुःख ही बढ़ जाता है। अब विद्यार्थियों के लक्षण:—

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥ १ ॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥ २ ॥

ये भी विदुरप्रजागर [अध्याय ३९] के श्लोक हैं।

अर्थ—(आलस्य) अर्थात् शरीर और बुद्धि में जड़ता, नशा, मोह किसी वस्तु में फँसावट, चपलता और इधर उधर की व्यर्थ कथा करना सुनना, पढ़ते पढ़ाते रुक जाना, अभिमानी, अत्यागी होना ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं ॥ १ ॥ जो ऐसे हैं उनको विद्या कभी नहीं आती ॥ सुख भोगने की इच्छा करने वाले को विद्या कहां ? और विद्या पढ़नेवाले को सुख कहां ? क्योंकि विषयसुखार्थी विद्या को और विद्यार्थी विषयसुख को छोड़ दे ॥ २ ॥ ऐसे किये विना विद्या कभी नहीं हो सकती और ऐसे को विद्या होती है:—

सत्ये रतानां सततं दान्तानामूर्ध्वरेतसाम् ।
ब्रह्मचर्यं दहेद्राजन् सर्वपापान्युपासितम् ॥

जो सदा सत्याचार में प्रवृत्त, जितेन्द्रिय और जिनका वीर्य अधःस्खलित कभी न हो उन्हीं का ब्रह्मचर्य सच्चा और वे ही विद्वान् होते हैं ॥ १ ॥ इसलिये शुभ लक्षणयुक्त अध्यापक और विद्यार्थियों को होना चाहिये । अध्यापक लोग ऐसा यत्न किया करें जिससे विद्यार्थी लोग सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी, सभ्यता, जितेन्द्रियता, सुशीलतादि शुभगुणयुक्त शरीर और आत्मा का पूर्ण बल बढ़ा के समग्र वेदादि शास्त्रों में विद्वान् हों सदा उनकी कुचेष्टा छुड़ाने में और विद्या पढ़ाने में चेष्टा किया करें । और विद्यार्थी लोग सदा जितेन्द्रिय, शान्त, पढ़नेहारों में प्रेम, विचारशील परिश्रमी होकर ऐसा पुरुषार्थ करें जिससे पूर्ण विद्या, पूर्ण आयु, परिपूर्ण धर्म और पुरुषार्थ करना आजाय इत्यादि ब्राह्मण वर्णों के काम हैं । क्षत्रियों का कर्म्म राजधर्म में कहेंगे । [वैश्यों के कर्म ब्रह्मचर्यादि से वेदादि विद्या] पढ़ [विवाह करके] देशों की भाषा, नाना प्रकार के व्यापार की रीति, उनके भाव जानना, बेचना, खरीदना, द्वीपद्वीपान्तर में जाना आना, लाभार्थ काम का आरम्भ करना, पशुपालन और खेती की उन्नति चतुराई से करनी करानी, धन का बढ़ाना, विद्या और धर्म की उन्नति में व्यय करना, सत्यवादी निष्कपटी होकर सत्यता से सब व्यवहार करना, सब वस्तुओं की रक्षा ऐसी करनी जिससे कोई नष्ट न होने पावे । शूद्र सब

सेवाओं में चतुर, पाकविद्या में निपुण, अतिप्रेम से द्विजों की सेवा और उन्हीं से अपनी उपजीविका करे और द्विज लोग इसके खान, पान, वस्त्र, स्थान, विवाहादि में जो कुछ व्यय हो सब कुछ देवें। अथवा मासिक कर देवें। चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख, दुःख, हानि, लाभ में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन, मन, धन का व्यय करते रहना। स्त्री और पुरुष का वियोग कभी न होना चाहिये क्योंकि—

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ॥
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीसन्दूषणानि षट् ॥ मनु० [९ । १३]

मद्य भांग आदि मादक द्रव्यों का पीना, दुष्ट पुरुषों का सङ्ग, पतिवियोग, अकेली जहां तहां व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन के मिस से फिरती रहना और पराये घर में जाके शयन करना वा वास। ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं। और ये पुरुषों के भी हैं पति और स्त्री का वियोग दो प्रकार का होता है कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना इनमें से प्रथम का उपाय यही है कि दूर देश में यात्रार्थ जावे तो स्त्री को भी साथ रक्खे इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये (प्रश्न) स्त्री और पुरुष का बहु विवाह होने योग्य है वा नहीं ? (उत्तर) युगपत् न अर्थात् एक समय में नहीं (प्रश्न) क्या समयान्तर में अनेक विवाह होने चाहियें (उत्तर) हां जैसे:—

सा चेदक्षतयोनिः स्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥ मनु० [९ । १७६]

जिस स्त्री वा पुरुष का पाणिग्रहणमात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री वा पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिये किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री क्षतवीर्य पुरुष का पुनर्विवाह न होना चाहिये (प्रश्न) पुनर्विवाह में क्या दोष है ? (उत्तर) (पहिला) स्त्री पुरुष में प्रेम न्यून

होना क्योंकि जब चाहे तब पुरुष को स्त्री और स्त्री को पुरुष छोड़ कर दूसरे के साथ सम्बन्ध कर ले (दूसरा) जब स्त्री वा पुरुष पति व स्त्री के मरने के पश्चात् दूसरा विवाह करना चाहे तब प्रथम स्त्री वा पूर्व पति के पदार्थों को उड़ा लेजाना और उनके कुटुम्ब वालों का उनसे झगड़ा करना (तीसरा) बहुतसे भद्रकुल का नाम वा चिह्न भी न रहकर उसके पदार्थ छिन्न भिन्न होजाना (चौथा) पतिव्रत और स्त्रीव्रत धर्म नष्ट होना इत्यादि दोषों के अर्थ द्विजों में पुनर्विवाह वा अनेक विवाह कभी न होना चाहिये । (प्रश्न) जब वंशच्छेदन हो जाय तब भी उसका कुल नष्ट होजायगा और स्त्री पुरुष व्यभिचारादि कर्म कर के गर्भपातनादि बहुत दुष्ट कर्म करेंगे इसलिये पुनर्विवाह होना अच्छा है (उत्तर) नहीं २ क्योंकि जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य में स्थित रहना चाहें तो कोई भी उपद्रव न होगा और जो कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद ले लेंगे उससे कुल चलेगा और व्यभिचार भी न होगा और जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें (प्रश्न) पुनर्विवाह और नियोग में क्या भेद है ? (उत्तर) (पहिला) जैसे विवाह करने में कन्या अपने पिता का घर छोड़ पति के घर को प्राप्त होती है और पिता से विशेष सम्बन्ध नहीं रहता और विधवा स्त्री उसी विवाहित पति के घर में रहती है । (दूसरा) उसी विवाहिता स्त्री के लड़के उसी विवाहित पति के दायभागी होते हैं । और विधवा स्त्री के लड़के वीर्यदाता के न पुत्र कहलाते न उसका गोत्र होता न उसका स्वत्व उन लड़कों पर रहता किन्तु वे मृतपति के पुत्र बजते, उसी का गोत्र रहता और उसी के पदार्थों के दायभागी होकर उसी घर में रहते हैं । (तीसरा) विवाहित स्त्री पुरुष को परस्पर सेवा और पालन करना अवश्य है और नियुक्त स्त्री पुरुष का कुछ भी सम्बन्ध नहीं रहता । (चौथा) विवाहित स्त्री पुरुष का सम्बन्ध मरणपर्यन्त रहता और नियुक्त स्त्री पुरुष का कार्य के पश्चात् छूट जाता है । (पांचवां) विवाहित स्त्री पुरुष आपस में गृह के कार्यों की सिद्धि करने में यत्न किया करते और नियुक्त स्त्री पुरुष अपने २ घर के काम किया करते हैं (प्रश्न) विवाह और नियोग के नियम एकसे हैं वा पृथक् २ ? (उत्तर) कुछ थोड़ासा भेद है जितने पूर्व कह आये और

यह कि विवाहित स्त्री पुरुष एक पति और एक ही स्त्री मिल के दश सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं और नियुक्त स्त्री पुरुष दो वा चार से अधिक सन्तानोत्पत्ति नहीं कर सकते अर्थात् जैसा कुमार कुमारी ही का विवाह होता है वैसे जिसकी स्त्री वा पुरुष मर जाता है उन्हीं का नियोग होता है कुमार कुमारी का नहीं। जैसे विवाहित स्त्री पुरुष सदा सङ्ग में रहते हैं वैसे नियुक्त स्त्री पुरुष का व्यवहार नहीं किन्तु विना ऋतुदान के समय एकत्र न हों जो स्त्री अपने लिये नियोग करे तो जब दूसरा गर्भ रहे उसी दिन से स्त्री पुरुष का सम्बन्ध छूट जाय। और जो पुरुष अपने लिये करे तो भी दूसरे गर्भ रहने से सम्बन्ध छूट जाय। परन्तु वही नियुक्त स्त्री दो तीन वर्ष पर्य्यन्त उन लड़कों का पालन करके नियुक्त पुरुष को दे देवे। ऐसे एक विधवा स्त्री दो अपने लिये और दो २ अन्य चार नियुक्त पुरुषों के लिये सन्तान कर सकती और एक मृतस्त्रीक पुरुष भी दो अपने लिये और दो २ अन्य २ चार विधवाओं के लिये पुत्र उत्पन्न कर सकता है ऐसे मिलकर दश २ सन्तानोत्पत्ति की आज्ञा वेद में है॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्रानाधेहि पतिमेकादशं कृधि॥
ऋ०॥ मं० १०। सू० ८५। मं० ४५॥

हे (मीढ्व, इन्द्र) वीर्य सिंचने में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष तू इस विवाहित स्त्री वा विधवा स्त्रियों को श्रेष्ठपुत्र और सौभाग्ययुक्त कर विवाहित स्त्री में दश पुत्र उत्पन्न कर और ग्यारहवीं स्त्री को मान। हे स्त्री! तू भी विवाहित पुरुष वा नियुक्त पुरुषों से दश सन्तान उत्पन्न कर और ग्यारहवें पति को समझ। इस वेद की आज्ञा से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्णस्थ स्त्री और पुरुष दश दश सन्तान से अधिक उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल, निर्बुद्धि, अल्पायु होते हैं और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल, अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुतसे दुःख पाते हैं। (प्रश्न) यह नियोग की बात व्यभिचार के समान दीखती है (उत्तर) जैसे विना विवाहितों का व्यभिचार होता है वैसे विना नियुक्तों का व्यभिचार कहाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि

जैसा नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहाता तो नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार न कहावेगा। जैसे—दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ शास्त्रोक्त विधिपूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार वा पाप लज्जा नहीं होती वैसे ही वेदशास्त्रोक्त नियोग में व्यभिचार पाप लज्जा न मानना चाहिये। (प्रश्न) है तो ठीक, परन्तु यह वेश्या के सदृश कर्म दीखता है। (उत्तर) नहीं क्योंकि वेश्या के समागम में किसी निश्चित पुरुष वा कोई नियम नहीं है और नियोग में विवाह के समान नियम हैं जैसे दूसरे को लड़की देने दूसरे के साथ समागम करने में विवाहपूर्वक लज्जा नहीं होती वैसे ही नियोग में भी न होनी चाहिये। क्या जो व्यभिचारी पुरुष वा स्त्री होते हैं वे विवाह होने पर भी कुकर्म से बचते हैं? (प्रश्न) हमको नियोग की बात में पाप मालूम पड़ता है (उत्तर) जो नियोग की बात में पाप मानते हो तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते? पाप तो नियोग के रोकने में है क्योंकि ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता, सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण-विद्वान् योगियों के? क्या गर्भपातनरूप भ्रूणहत्या और विधवा स्त्री और मृत-कस्त्री पुरुषों के महासन्ताप को पाप नहीं गिनते हो क्योंकि जबतक वे युवावस्था में हैं मन में सन्तानोत्पत्ति और विषय की चाहना होनेवालों को किसी राज्य-व्यवहार वा जातिव्यवहार से रुकावट होने से गुप्त २ कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म के रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि जो जितेन्द्रिय रह सकें वे विवाह वा नियोग भी न करें तो ठीक है। परन्तु जो ऐसे नहीं हैं उनका विवाह और आपत्काल में नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचार का न्यून होना प्रेम से उत्तम सन्तान होकर मनुष्यों की वृद्धि होना सम्भव है और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है। नीच पुरुषों से उत्तम स्त्री और वेश्यादि नीच स्त्रियों से उत्तम पुरुषों का व्यभिचाररूप कुकर्म, उत्तम कुल में कलंक, वंश का उच्छेद, स्त्री पुरुषों को सन्ताप और गर्भहत्यादि कुकर्म विवाह और नियोग से निवृत्त होते हैं इसलिये नियोग करना चाहिये (प्रश्न) नियोग में क्या २ बात होनी चाहिये? (उत्तर) जैसे प्रसिद्धि से विवाह, वैसे ही प्रसिद्धि से नियोग, जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की अनुमति और

कन्या वर की प्रसन्नता होती है वैसे नियोग में भी अर्थात् जब स्त्री पुरुष का नियोग होना हो तब अपने कुटुम्ब में पुरुष स्त्रियों के सामने [प्रकट करें कि] हम दोनों नियोग सन्तानोत्पत्ति के लिये करते हैं । जब नियोग का नियम पूरा होगा तब हम संयोग न करेंगे । जो अन्यथा करें तो पापी और जाति वा राज्य के दण्डनीय हों । महीने २ में एकबार गर्भाधान का काम करेंगे, गर्भ रहे पश्चात् एक वर्ष पर्य्यन्त पृथक् रहेंगे । (प्रश्न) नियोग अपने वर्ण में होना चाहिये वा अन्य वर्णों के साथ भी ? (उत्तर) अपने वर्ण में वा अपने से उत्तमवर्णस्थ पुरुष के साथ अर्थात् वैश्या स्त्री वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, क्षत्रिया क्षत्रिय और ब्राह्मण के साथ, ब्राह्मणी ब्राह्मण के साथ नियोग कर सकती है । इसका तात्पर्य्य यह है कि वीर्य सम वा उत्तम वर्ण का चाहिये अपने से नीचे के वर्ण का नहीं । स्त्री और पुरुष की सृष्टि का यही प्रयोजन है कि धर्म से अर्थात् वेदोक्त रीति से विवाह वा नियोग से सन्तानोत्पत्ति करना (प्रश्न) पुरुष को नियोग करने की क्या आवश्यकता है क्योंकि वह दूसरा विवाह करेगा ? (उत्तर) हम लिख आये हैं द्विजों में स्त्री और पुरुष का एक ही वार विवाह होना वेदादि शास्त्रों में लिखा है, द्वितीयवार नहीं । कुमार और कुमारी का ही विवाह होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी स्त्री के साथ मृतस्त्रीक पुरुष के विवाह होने में अन्याय अर्थात् अधर्म है । जैसे विधवा स्त्री के साथ पुरुष विवाह नहीं किया चाहता वैसे ही विवाह और स्त्री से समागम किये हुए पुरुष के साथ विवाह करने की इच्छा कुमारी भी न करेगी । जब विवाह किये हुए पुरुष को कोई कुमारी कन्या और विधवा स्त्री का ग्रहण कोई कुमार पुरुष न करेगा तब पुरुष और स्त्री को नियोग करने की आवश्यकता होगी । और यही धर्म है कि जैसे के साथ वैसे ही का सम्बन्ध होना चाहिये (प्रश्न) जैसे विवाह में वेदादि शास्त्रों का प्रमाण है वैसे नियोग में प्रमाण है वा नहीं, (उत्तर) इस विषय में बहुत प्रमाण हैं देखो और सुनोः—

कुहस्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः । को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥ ऋ० ॥ मं० १० । सू० ४० । मं० २ ॥

उदीर्ष्व नार्य॒भि जी॑वलो॒कं ग॒तासु॑मे॒तमुप॑ शेष॒ एहि॑ । ह॒स्त॒ग्रा॒भस्य॑ दिधि॒षोस्तवे॒दं पत्यु॑र्जनि॒त्वम॒भि सं ब॑भूथ ॥ ऋ० ॥ मं० १० । सू० १८ । मं० ८ ॥

हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! जैसे (देवरं विधवेव) देवर को विधवा और (योषा मर्यन्न) विवाहिता स्त्री अपने पति को (सधस्थे) समान स्थान शय्या में एकत्र होकर सन्तानोत्पत्ति को (आ, कृणुते) सब प्रकार से उत्पन्न करती है वैसे तुम दोनों स्त्री पुरुष (कुहस्विद्दोषा) कहां रात्रि और (कुह वस्तः) कहां दिन में वसे थे ? (कुहाभिपित्वम्) कहां पदार्थों की प्राप्ति (करतः) की ? और (कुहोषतुः) किस समय कहां वास करते थे ? (को वां शयुत्रा) तुम्हारा शयनस्थान कहां है ? तथा कौन वा किस देश के रहनेवाले हो ? इससे यह सिद्ध हुआ कि देश विदेश में स्त्री पुरुष सङ्ग ही में रहें । और विवाहित पति के समान नियुक्त पति को ग्रहण करके विधवा स्त्री भी सन्तानोत्पत्ति कर लेवे (प्रश्न) यदि किसी का छोटा भाई ही न हो तो विधवा नियोग किसके साथ करे ? (उत्तर) देवर के साथ परन्तु देवर शब्द का अर्थ जैसा तुम समझते हो वैसा नहीं देखो निरुक्त में—

॥ देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते ॥ निरु० अ० ३ । खं० १५ ॥

देवर उसको कहते हैं कि जो विधवा का दूसरा पति होता है चाहे छोटा भाई वा बड़ा भाई अथवा अपने वर्ण वा अपने से उत्तम वर्ण वाला हो जिससे नियोग करे उसी का नाम देवर है ॥

हे (नारी) विधवे तू (एतं गतासुम्) इस मरे हुए पति की आशा छोड़ के (शेषे) बाक़ी पुरुषों में से (अभि, जीवलोकम्) जीते हुए दूसरे पति को (उपैहि) प्राप्त हो और (उदीर्ष्व) इस बात का विचार और निश्चय रख कि जो (हस्तग्राभस्य दिधिषोः) तुझ विधवा के पुनः पाणिग्रहण करनेवाले नियुक्त पति के सम्बन्ध के लिये नियोग होगा तो (इदम्) यह (जनित्वम्) जना हुआ बालक उसी नियुक्त (पत्युः) पति का होगा और जो तू अपने लिये नियोग करेगी तो यह सन्तान (तव) तेरा होगा । ऐसे निश्चय युक्त (अभि, सम्, बभूथ) हो और नियुक्त पुरुष भी इसी नियम का पालन करे ॥

अदेवृघ्न्यपतिघ्नी हैधि शिवा पशुभ्यः सुयमाः सुवर्चाः । प्रजावती वीरसूर्देवृकामा स्योनेममग्निं गार्हपत्यं सपर्य ॥ अथर्व० ॥ कां० १४ । अनु० २ । मं० १८ ॥

हे (अपतिघ्न्यदेवृघ्नि) पति और देवर को दुःख न देनेवाली स्त्री तू (इह) इस गृहाश्रम में (पशुभ्यः) पशुओं के लिये (शिवा) कल्याण करनेहारी (सुयमाः) अच्छे प्रकार धर्म नियम में चलने (सुवर्चाः) रूप और सर्व शास्त्र विद्यायुक्त (प्रजावती) उत्तम पुत्र पौत्रादि से सहित (वीरसूः) शूरवीर पुत्रों को जनने (देवृकामा) देवर की कामना करनेवाली (स्योना) और सुख देनेहारी पति वा देवर को (एधि) प्राप्त होके (इमम्) इस (गार्हपत्यम्) गृहस्थ सम्बन्धी (अग्निम्) अग्निहोत्र को (सपर्य) सेवन किया कर ॥

तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ॥ मनु० [९ । ६९]

जो अक्षतयोनि स्त्री विधवा होजाय तो पति का निज छोटा भाई भी उससे विवाह कर सकता है (प्रश्न) एक स्त्री वा पुरुष कितने नियोग कर सकते हैं और विवाहित नियुक्त पतियों का नाम क्या होता है (उत्तर):—

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥
ऋ० ॥ मं० १० । सू० ८५ । मं० ४० ॥

हे स्त्रि ! जो (ते) तेरा (प्रथमः) पहिला विवाहित (पतिः) पति तुझ को (विविदे) प्राप्त होता है उसका नाम (सोमः) सुकुमारतादि गुणयुक्त होने से सोम जो दूसरा नियोग से (विविदे) प्राप्त होता वह (गन्धर्वः) एक स्त्री से संभोग करने से गन्धर्व जो (तृतीय उत्तरः) दो के पश्चात् तीसरा पति होता है वह (अग्निः) अत्युष्णतायुक्त होने से अग्निसंज्ञक और जो (ते) तेरे (तुरीयः) चौथे से लेके ग्यारहवें तक नियोग से पति होते हैं वे (मनुष्यजाः) मनुष्य नाम से कहाते हैं । जैसा (इमां त्वमिन्द्र) इस मन्त्र से

ग्यारहवें पुरुष तक स्त्री नियोग कर सकती है वैसे पुरुष भी ग्यारहवीं स्त्री तक नियोग कर सकता है। (प्रश्न) एकादश शब्द से दश पुत्र और ग्यारहवें पति को क्यों न गिनें ? (उत्तर) जो ऐसा अर्थ करोगे तो "विधवेव देवरम्" "देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते" "अदेवृघ्नि" और "गन्धर्वो विविद उत्तरः" इत्यादि वेदप्रमाणों से विरुद्धार्थ होगा। क्योंकि तुम्हारे अर्थ से दूसरा भी पति प्राप्त नहीं होसकता।

देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ् नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये ॥ १ ॥
ज्येष्ठो यवीयसो भार्य्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्।
पतितौ भवतो गत्वा नियुक्तावप्यनापदि ॥ २ ॥
औरसः क्षेत्रजश्चैव ॥ ३ ॥ मनु० [९। ५९। ५८। १५९]

इत्यादि मनुजी ने लिखा है कि (सपिण्ड) अर्थात् पति की छः पीढ़ियों में पति का छोटा वा बड़ा भाई अथवा स्वजातीय तथा अपने से उत्तम जातिस्थ पुरुष से विधवा स्त्री का नियोग होना चाहिये। परन्तु जो वह मृतस्त्रीक पुरुष और विधवा स्त्री सन्तानोत्पत्ति की इच्छा करती हो तो नियोग होना उचित है। और जब सन्तान का सर्वथा क्षय हो तब नियोग होवे। जो आपत्काल अर्थात् सन्तानों के होने की इच्छा न होने में बड़े भाई की स्त्री से छोटे का और छोटे की स्त्री से बड़े भाई का नियोग होकर सन्तानोत्पत्ति होजाने पर भी पुनः वे नियुक्त आपस में समागम करें तो पतित होजायें अर्थात् एक नियोग में दूसरे पुत्र के गर्भ रहने तक नियोग की अवधि है इस के पश्चात् समागम न करें। और जो दोनों के लिये नियोग हुआ हो तो चौथे गर्भ तक अर्थात् पूर्वोक्त रीति से दश सन्तान तक हो सकते हैं। पश्चात् विषयासक्ति गिनी जाती है, इससे वे पतित गिने जाते हैं। और जो विवाहित स्त्री पुरुष भी दशवें गर्भ से अधिक समागम करें तो कामी और निन्दित होते हैं अर्थात् विवाह वा नियोग सन्तानों ही के अर्थ किये जाते हैं पशुवत् कामक्रीड़ा के लिये नहीं (प्रश्न) नियोग मरे पीछे ही होता है वा जीते पति के भी ? (उत्तर) जीते भी होता है——

अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ ऋ० ॥ मं० १० । सू० १० ॥

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे! सौभाग्य की इच्छा करनेहारी स्त्री तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति की (इच्छस्व) इच्छा कर क्योंकि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे। परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ हो तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझसे छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिये। जैसा कि पाण्डु राजा की स्त्री कुन्ती और माद्री आदि ने किया और जैसा व्यासजी ने चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य के मरजाने पश्चात् उन अपने भाइयों की स्त्रियों से नियोग करके अम्बिका में धृतराष्ट्र और अम्बालिका में पाण्डु और दासी में विदुर की उत्पत्ति की इत्यादि इतिहास भी इस बात में प्रमाण हैं ॥

प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः ।
विद्यार्थं षड् यशोर्थं वा कामार्थं त्रींस्तु वत्सरान् ॥ १ ॥
वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा ।
एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ २ ॥
मनु० [९ । ७६ । ८१]

विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्त्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष तक बाट देख के पश्चात् नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करले, जब विवाहित पति आवे तब नियुक्त पति छूट जावे ॥ १ ॥ वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि बन्ध्या हो तो आठवें (विवाह से आठ वर्ष तक स्त्री को गर्भ न रहे), सन्तान होकर मरजावे तो दशवें, जब २ हो तब २ कन्या ही होवें पुत्र न हों तो ग्यारहवें वर्षतक और जो अप्रिय बोलने वाली हो

तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे ॥ २ ॥ वैसे ही जो पुरुष अत्यन्त दुःखदायक हो तो स्त्री को उचित है कि उसको छोड़ के दूसरे पुरुष से नियोग कर सन्तानोत्पत्ति कर के उसी विवाहित पति के दायभागी सन्तान कर लेवे। इत्यादि प्रमाण और युक्तियों से स्वयंवर विवाह और नियोग से अपने २ कुल की उन्नति करें जैसा "औरस" अर्थात् विवाहित पति से उत्पन्न हुआ पुत्र पिता के पदार्थों का स्वामी होता है वैसे ही "क्षेत्रज" अर्थात् नियोग से उत्पन्न हुए पुत्र भी मृतपिता के दायभागी होते हैं। अब इस पर स्त्री और पुरुष को ध्यान रखना चाहिये कि वीर्य और रज को अमूल्य समझें। जो कोई इस अमूल्य पदार्थ को परस्त्री, वेश्या वा दुष्ट पुरुषों के सङ्ग में खोते हैं वे महामूर्ख होते हैं। क्योंकि किसान वा माली मूर्ख होकर भी अपने खेत वा बाटिका के विना अन्यत्र बीज नहीं बोते। जोकि साधारण बीज और मूर्ख का ऐसा वर्त्तमान है तो जो सर्वोत्तम मनुष्य-शरीररूप वृक्ष के बीज को कुक्षेत्र में खोता है वह महामूर्ख कहाता है क्योंकि उसका फल उसको नहीं मिलता और "आत्मा वै जायते पुत्रः" यह ब्राह्मण ग्रन्थों का वचन है ॥

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे ।
आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ निरु० ३ । ४ ॥

हे पुत्र तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदय से उत्पन्न होता है इसलिये तू मेरा आत्मा है मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जी। जिससे ऐसे २ महात्मा और महाशयों के शरीर उत्पन्न होते हैं उसको वेश्यादि दुष्टक्षेत्र में बोना वा दुष्टबीज अच्छे क्षेत्र में बुवाना महापाप का काम है। (प्रश्न) विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है इसलिये जिसके साथ जिसकी प्रीति हो तबतक वे मिले रहें जब प्रीति छूट जाय तो छोड़ देवें (उत्तर) यह पशु पक्षियों का व्यवहार है मनुष्यों का नहीं। जो मनुष्यों में विवाह का नियम न रहे तो सब गृहाश्रम के अच्छे २ व्यवहार सब नष्ट भ्रष्ट होजायं।

कोई किसी की सेवा भी न करे और महा व्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर शीघ्र २ मरजायें। कोई किसी से भय वा लज्जा न करे। वृद्धावस्था में कोई किसी की सेवा भी नहीं करे और महाव्यभिचार बढ़कर सब रोगी निर्बल और अल्पायु होकर कुलों के कुल नष्ट होजायें। कोई किसी के पदार्थों का स्वामी वा दायभागी भी न हो सके और न किसी का किसी पदार्थ पर दीर्घकालपर्यन्त स्वत्व रहै इत्यादि दोषों के निवारणार्थ विवाह ही होना सर्वथा योग्य है। (प्रश्न) जब एक विवाह होगा एक पुरुष को एक स्त्री और एक स्त्री को एक पुरुष रहेगा तब स्त्री गर्भवती स्थिररोगिणी अथवा पुरुष दीर्घरोगी हो और दोनों की युवावस्था हो, रहा न जाय, तो फिर क्या करें? (उत्तर) इसका प्रत्युत्तर नियोग विषय में दे चुके हैं। और गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष से वा दीर्घरोगी पुरुष की स्त्री से न रहा जाय तो किसी से नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पत्ति करदे, परन्तु वेश्यागमन वा व्यभिचार कभी न करें। जहांतक हो वहांतक अप्राप्त वस्तु की इच्छा, प्राप्त का रक्षण और रक्षित की वृद्धि, बढ़े हुए धन का व्यय देशोपकार करने में किया करें। सब प्रकार के अर्थात् पूर्वोक्त रीति से अपने २ वर्णाश्रम के व्यवहारों को अत्युत्साहपूर्वक प्रयत्न से तन, मन, धन से सर्वदा परमार्थ किया करें। अपने माता, पिता, शाशु, श्वशुर की अत्यन्त शुश्रूषा करें। मित्र और अड़ोसी, पड़ोसी, राजा, विद्वान्, वैद्य और सत्पुरुषों से प्रीति रख के और जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे उपेक्षा अर्थात् द्रोह छोड़कर उनके सुधारने का यत्न किया करें। जहांतक बने वहां तक प्रेम से अपने सन्तानों के विद्वान् और सुशिक्षा करने कराने में धनादि पदार्थों का व्यय करके उनको पूर्ण विद्वान् सुशिक्षायुक्त करदें और धर्मयुक्त व्यवहार करके मोक्ष का भी साधन किया करें कि जिसकी प्राप्ति से परमानन्द भोगें और ऐसे ऐसे श्लोकों को न मानें जैसे:—

पतितोपि द्विजः श्रेष्ठो न च शूद्रो जितेन्द्रियः।
निर्दुग्धा चापि गौः पूज्या न च दुग्धवती खरी॥ १॥
अश्वालम्भं गवालम्भं संन्यासं पलपैत्रिकम्।
देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पञ्च विवर्जयेत्॥ २॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥ ३ ॥

ये कपोलकल्पित पाराशरी के श्लोक हैं । जो दुष्ट कर्मचारी द्विज को श्रेष्ठ और श्रेष्ठ कर्मकारी शूद्र को नीच मानें तो इससे परे पक्षपात, अन्याय, अधर्म दूसरा अधिक क्या होगा ? क्या दूध देनेवाली वा न देनेवाली गाय गोपालों को पालनीय होती हैं वैसे कुम्हार आदि को गधही पालनीय नहीं होती ? और यह दृष्टान्त भी विषम है क्योंकि द्विज और शूद्र मनुष्य जाति, गाय और गधही भिन्न जाति हैं कथञ्चित् पशु जाति से दृष्टान्त का एकदेश दार्ष्टान्त में मिल भी जावे तो भी इसका आशय अयुक्त होने से यह श्लोक विद्वानों के माननीय कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥

जब अश्वालम्भ अर्थात् घोड़े को मार के अथवा [गवालम्भ] गाय को मार के होम करना ही वेदविहित नहीं है । तो उसका कलियुग में निषेध करना वेदविरुद्ध क्यों नहीं ? जो कलियुग में इस नीच कर्म का निषेध माना जाय तो त्रेता आदि में विधि आजाय । तो इसमें ऐसे दुष्ट काम का श्रेष्ठ युग में होना सर्वथा असंभव है । और संन्यास की वेदादि शास्त्रों में विधि है। उसका निषेध करना निर्मूल है । जब मांस का निषेध है तो सर्वदा ही निषेध है । जब देवर से पुत्रोत्पत्ति करना वेदों में लिखा है तो यह श्लोककर्त्ता क्यों भूंसता है ? ॥ २ ॥

यदि (नष्टे) अर्थात् पति किसी देश देशान्तर को चला गया हो घर में स्त्री नियोग कर लेवे उसी समय विवाहित पति आजाय तो वह किसकी स्त्री हो ? कोई कहे कि विवाहित पति की, हमने माना परन्तु ऐसी व्यवस्था पाराशरी में तो नहीं लिखी । क्या स्त्री के पांच ही आपत्काल हैं जो रोगी पड़ा हो वा लड़ाई होगई हो इत्यादि आपत्काल पांच से भी अधिक हैं इसलिये ऐसे ऐसे श्लोकों को कभी न मानना चाहिये ॥ ३ ॥ (प्रश्न) क्योंजी तुम पराशर मुनि के वचन को भी नहीं मानते ? (उत्तर) चाहें किसी का वचन हो परन्तु वेद-

विरुद्ध होने से नहीं मानते और यह तो पराशर का वचन भी नहीं है क्योंकि जैसे "ब्रह्मोवाच, वशिष्ठ उवाच, राम उवाच, शिव उवाच, विष्णुरुवाच, देव्युवाच" इत्यादि श्रेष्ठों का नाम लिख के ग्रन्थरचना इसलिये करते हैं कि सर्वमान्य के नाम से इन ग्रन्थों को सब संसार मान लेवे और हमारी पुष्कल जीविका भी हो। इसलिये अनर्थ गाथायुक्त ग्रन्थ बनाते हैं। कुछ २ प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़ के मनुस्मृति ही वेदानुकूल है अन्य स्मृति नहीं। ऐसे ही अन्य जालग्रन्थों की व्यवस्था समझलो (प्रश्न) गृहाश्रम सब से छोटा वा बड़ा है ? (उत्तर) अपने अपने कर्त्तव्यकर्मों में सब बड़े हैं परन्तुः—

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ १ ॥
[मनु० ६ । ९०]

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तन्ते सर्व आश्रमाः ॥ २ ॥
यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ ३ ॥
स संधार्यः प्रयत्नेन स्वर्गमक्षयमिच्छता ।
सुखं चेहेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः ॥ ४ ॥
मनु० [३ । ७७-७९]

जैसे नदी और बड़े २ नद तबतक भ्रमते ही रहते हैं जबतक समुद्र को प्राप्त नहीं होते, वैसे गृहस्थ ही के आश्रय से सब आश्रम स्थिर रहते हैं विना इस आश्रम के किसी आश्रम का कोई व्यवहार सिद्ध नहीं होता। जिससे ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी तीन आश्रमों को दान और अन्नादि दे के प्रतिदिन गृहस्थ ही धारण करता है इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है अर्थात् सब व्यवहारों में धुरन्धर कहाता है इसलिये जो मोक्ष और संसार के सुख की इच्छा करता हो वह प्रयत्न से गृहाश्रम का धारण करे। जो गृहाश्रम दुर्बलेन्द्रिय अर्थात् भीरु और निर्बल पुरुषों से धारण करने अयोग्य है उसको अच्छे प्रकार धारण

करे । इसलिये जितना कुछ व्यवहार संसार में है उसका आधार गृहाश्रम है । जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहां से हो सकते ? जो कोई गृहाश्रम की निन्दा करता है वही निन्दनीय है और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है । परन्तु तभी गृहाश्रम में सुख होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न, विद्वान्, पुरुषार्थी और सब प्रकार के व्यवहारों के ज्ञाता हों । इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है । यह संक्षेप से समावर्त्तन, विवाह और गृहाश्रम के विषय में शिक्षा लिख दी । इसके आगे वानप्रस्थ और संन्यास के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते समावर्त्तनविवाहगृहाश्रमविषये
चतुर्थः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ४ ॥



अथ पञ्चमसमुल्लासारम्भः

अथ वानप्रस्थसंन्यासविधिं वक्ष्यामः

ब्रह्मचर्य्याश्रमं समाप्य गृही भवेत् गृही भूत्वा वनी भवेद्वनी भूत्वा प्रव्रजेत् ॥ शत० कां० १४ ॥

मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्य्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होके संन्यासी होवें अर्थात् यह अनुक्रम से आश्रम का विधान है ॥

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विजितेन्द्रियः ॥ १ ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद्वलीपलितमात्मनः ।
अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत् ॥ २ ॥
संत्यज्य ग्राम्यमाहारं सर्वं चैव परिच्छदम् ।
पुत्रेषु भार्य्यां निःक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥ ३ ॥
अग्निहोत्रं समादाय गृह्यं चाग्निपरिच्छदम् ।
ग्रामादरण्यं निःसृत्य निवसेन्नियतेन्द्रियः ॥ ४ ॥
मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः शाकमूलफलेन वा ।
एतानेव महायज्ञान्निर्वपेद्विधिपूर्वकम् ॥ ५ ॥

मनु० [६ । १-५]

इस प्रकार स्नातक अर्थात् ब्रह्मचर्यपूर्वक गृहाश्रम का कर्त्ता द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य गृहाश्रम में ठहर कर निश्चितात्मा और यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में वसे ॥ १ ॥ परन्तु जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश

और त्वचा ढीली होजाय और लड़के का लड़का भी होगया हो तब वन में जाके वसे ॥ २ ॥ सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख वा अपने साथ ले के बन में निवास करे ॥ ३ ॥ साङ्गोपाङ्ग अग्निहोत्र को ले के ग्राम से निकल दृढेन्द्रिय होकर अरण्य में जाके वसे ॥ ४ ॥ नाना प्रकार के सामा आदि अन्न, सुन्दर २ शाक, मूल, फल, फूल कंदादि से पूर्वोक्त पंचमहायज्ञों को करे और उसी से अतिथिसेवा और आप भी निर्वाह करे ॥ ५ ॥

स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्दान्तो मैत्रः समाहितः ।
दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः ॥ १ ॥
अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः ॥
शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः ॥ २ ॥
मनु० [६ । ८ । २६]

स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ाने में नि[त्य]युक्त, जितात्मा, सब का मित्र, इन्द्रियों का दमनशील, विद्यादि का दान देनेहारा और सब पर दयालु, किसी से कुछ भी पदार्थ न लेवे इस प्रकार सदा वर्त्तमान करे ॥ १ ॥ शरीर के सुख के लिये अति प्रयत्न न करे किन्तु ब्रह्मचारी [रहे] अर्थात् अपनी स्त्री साथ हो तथापि उससे विषयचेष्टा कुछ न करे, भूमि में सोवे, अपने आश्रित वा स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में वसे ॥ २ ॥

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्य्यां चरन्तः ।
सूर्य्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्राऽमृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ १ ॥
मुण्ड० ॥ खं० २ । मं० ११ ॥

जो शान्त विद्वान् लोग वन में तप धर्म्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं वे जहां नाशरहित पूर्ण पुरुष हानि लाभरहित परमात्मा है, वहां निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं ॥ १ ॥

अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतञ्च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम् ॥ १ ॥
यजुर्वेदे ॥ अध्याय २० । मं० २४ ॥

वानप्रस्थ को उचित है कि—मैं अग्नि में होम कर दीक्षित होकर व्रत, सत्याचरण और श्रद्धा को प्राप्त होऊं—ऐसी इच्छा करके वानप्रस्थ हो । नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास, सुविचार से ज्ञान और पवित्रता प्राप्त करे । पश्चात् जब संन्यासग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे फिर संन्यास ग्रहण करे । इति संक्षेपेण वानप्रस्थविधिः ॥

अथ संन्यासविधिः

वनेषु च विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः ।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा सङ्गान् परिव्रजेत् ॥
मनु० [६ । ३३]

इस प्रकार वन में आयु का तीसरा भाग अर्थात् पचासवें वर्ष से पचहत्तरवें वर्ष पर्यन्त वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के परिव्राट् अर्थात् संन्यासी हो जावे (प्रश्न) गृहाश्रम और वानप्रस्थाश्रम न करके संन्यासाश्रम करे उसको पाप होता है वा नहीं ? (उत्तर) होता है और नहीं भी होता (प्रश्न) यह दो प्रकार की बात क्यों कहते हो ? (उत्तर) दो प्रकार की नहीं क्योंकि जो बाल्यावस्था में विरक्त होकर विषयों में फँसे वह महापापी और जो न फँसे वह महापुण्यात्मा सत्पुरुष है ॥

यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेद्वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्यादेव प्रव्रजेत् ॥
ये ब्राह्मणग्रन्थ के वचन हैं ।

जिस दिन वैराग्य प्राप्त हो उसी दिन घर वा वन से संन्यास ग्रहण करलेवे पहिले संन्यास का पक्षक्रम कहा और इसमें विकल्प अर्थात् वानप्रस्थ न करे, गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ग्रहण करे । और तृतीय पक्ष यह है कि जो पूर्ण

विद्वान् जितेन्द्रिय विषय भोग की कामना से रहित परोपकार करने की इच्छा से युक्त पुरुष हो वह ब्रह्मचर्याश्रम ही से संन्यास लेवे और वेदों में भी (यतयः ब्राह्मणस्य, विजानतः) इत्यादि पदों से संन्यास का विधान है, परन्तुः—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥
कठ० । वल्ली २ । मं० २३ ॥

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं और जिसका मन शान्त नहीं है वह संन्यास ले के भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता इसलियेः—

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेद् ज्ञान आत्मनि ।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥
कठ० । वल्ली ३ । मं० १३ ॥

संन्यासी बुद्धिमान् वाणी और मन को अधर्म से रोक के उनको ज्ञान और आत्मा में लगावे और उस ज्ञानस्वात्मा को परमात्मा में लगावे और उस विज्ञान को शान्तस्वरूप आत्मा में स्थिर करे ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ मुण्ड० । खं० २ । मं० १२ ॥

सब लौकिक भोगों को कर्म से संचित हुए देखकर ब्राह्मण अर्थात् संन्यासी वैराग्य को प्राप्त होवे क्योंकि अकृत अर्थात् न किया हुआ परमात्मा कृत अर्थात् केवल कर्म से प्राप्त नहीं होता इसलिये कुछ अर्पण के अर्थ हाथ में ले के वेदवित् और परमेश्वर को जाननेवाले गुरु के पास विज्ञान के लिये जावे, जाके सब सन्देहों की निवृत्ति करे परन्तु सदा इनका संग छोड़ देवे कि जोः—

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥ १ ॥ अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात् तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ २ ॥ मुण्ड० । खं० २ । मं० ८ । ९ ॥

जो अविद्या के भीतर खेल रहे अपने को धीर और पण्डित मानते हैं वे नीच गति को जानेहारे मूढ़ जैसे अंधे के पीछे अंधे दुर्दशा को प्राप्त होते हैं वैसे दुःखों को पाते हैं ॥ १ ॥ जो बहुधा अविद्या में रमण करनेवाले बालबुद्धि हम कृतार्थ हैं ऐसा मानते हैं जिसको केवल कर्मकांडी लोग राग से मोहित होकर नहीं जानं और जना सकते वे आतुर होके जन्म मरणरूप दुःख में गिरे रहते हैं ॥ २ ॥ इसलिये:—

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः । ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥ मुण्ड० । खं० २ । मं० ६ ॥

जो वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेदमंत्रों के अर्थज्ञान और आचार में अच्छे प्रकार निश्चित संन्यासयोग से शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं वे परमेश्वर में मुक्ति सुख को प्राप्त हो भोग के पश्चात् जब मुक्ति में सुख की अवधि पूरी होजाती है तब वहां से छूटकर संसार में आते हैं मुक्ति के विना दुःख का नाश नहीं होता क्योंकि:—

न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वावसन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ छान्दो० । [प्र० ८ । खं० १२]

जो देहधारी है वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में सर्वव्यापक परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता इसलिये:—

पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथभिक्षाचर्यं चरन्ति ॥ शत० कां० १४ । [प्र० ५ । ब्रा० २ । कं० १]

लोक में प्रतिष्ठा वा लाभ धन से भोग वा मान्य पुत्रादि के मोह से अलग हो के संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं ॥

प्राजापत्यां निरुप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं हुत्वा ब्राह्मणः प्रव्रजेत् ॥ १ ॥ यजुर्वेदब्राह्मणे ॥

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं सर्ववेदसदक्षिणाम् ।
आत्मन्यग्नीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात् ॥ २ ॥
यो दत्वा सर्वभूतेभ्यः प्रव्रजत्यभयं गृहात् ।
तस्य तेजोमया लोका भवन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३ ॥
मनु० [६ ॥ ३८ । ३९]

प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति के अर्थ इष्टि अर्थात् यज्ञ करके उसमें यज्ञोपवीत शिखादि चिह्नों को छोड़ आहवनीयादि पांच अग्नियों को प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान इन पांच प्राणों में आरोपण करके ब्राह्मण ब्रह्मवित् घर से निकल कर संन्यासी होजावे ॥ १ ॥ २ ॥ जो सब भूत प्राणिमात्र को अभयदान देकर घर से निकल के संन्यासी होता है उस ब्रह्मवादी अर्थात् परमेश्वर प्रकाशित वेदोक्त धर्मादि विद्याओं के उपदेश करनेवाले संन्यासी के लिये प्रकाशमय अर्थात् मुक्ति का आनन्दस्वरूप लोक प्राप्त होता है। (प्रश्न) संन्यासियों का क्या धर्म है ? (उत्तर) धर्म तो पक्षपातरहित न्यायाचरण, सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग, वेदोक्त ईश्वर की आज्ञा का पालन, परोपकार, सत्यभाषणादि लक्षण सब आश्रमियों का अर्थात् सब मनुष्यमात्र का एक ही है परन्तु संन्यासी का विशेष धर्म यह है कि:—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ १ ॥

क्रुद्ध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।
सप्तद्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत् ॥ २ ॥
अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ॥ ३ ॥
क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः पात्री दण्डी कुसुम्भवान् ।
विचरेन्नियतो नित्यं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च ।
अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ ५ ॥
दूषितोऽपि चरेद्धर्मं यत्र तत्राश्रमे रतः ।
समः सर्वेषु भूतेषु न लिङ्गं धर्म्मकारणम् ॥ ६ ॥
फलं कतकवृक्षस्य यद्यप्यम्बुप्रसादकम् ।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति ॥ ७ ॥
प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत्कृताः ।
व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमन्तपः ॥ ८ ॥
दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ९ ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषम् ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १० ॥
उच्चावचेषु भूतेषु दुर्ज्ञेयामकृतात्मभिः ।
ध्यानयोगेन संपश्येद् गतिमस्यान्तरात्मनः ॥ ११ ॥
अहिंसयेन्द्रियासङ्गैर्वैदिकैश्चैव कर्म्मभिः ।
तपसश्चरणैश्चोग्रैस्साधयन्तीह तत्पदम् ॥ १२ ॥
यदा भावेन भवति सर्वभावेषु निस्पृहः ।
तदा सुखमवाप्नोति प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ १३ ॥
चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः ।
दशलक्षणको धर्म्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ १४ ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥ १५ ॥
अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्शनैः शनैः ।
सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते ॥ १६ ॥

मनु० अ० ६ । [४६ । ४८ । ४९ । ५२ । ६० । ६६ । ६७ । ७०-७३ । ७५ । ८० । ८१ । ९१ । ९२]

जब संन्यासी मार्ग में चले तब इधर उधर न देखकर नीचे पृथिवी पर दृष्टि रख के चले । सदा वस्त्र से छान के जल पिये निरन्तर सत्य ही बोले सर्वदा मन से विचार के सत्य का ग्रहण कर असत्य को छोड़ देवे ॥ १ ॥ जब कहीं उपदेश वा संवादादि में कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर आप क्रोध न करे किन्तु सदा उसके कल्याणार्थ उपदेश ही करे और एक मुख का, दो नासिका के, दो आंख के और दो कान के छिद्रों में बिखरी हुई वाणी को किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले ॥ २ ॥ अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर अपेक्षारहित मद्य मांसादि वर्जित होकर आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिये सदा विचरता रहे ॥ ३ ॥ केश, नख, डाढ़ी, मूछ को छेदन करवावे सुन्दर पात्र दण्ड और कुसुम्भ आदि से रंगे हुए वस्त्रों को ग्रहण करके निश्चितात्मा सब भूतों को पीड़ा न देकर सर्वत्र विचरे ॥ ४ ॥ इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, रागद्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त्तकर मोक्ष के लिये सामर्थ्य बढ़ाया करे ॥ ५ ॥ कोई संसार में उसको दूषित वा भूषित करे तो भी जिस किसी आश्रम में वर्त्तता हुआ पुरुष अर्थात् संन्यासी सब प्राणियों में पक्षपातरहित होकर स्वयं धर्मात्मा और अन्यों को धर्मात्मा करने में प्रयत्न किया करे । और यह अपने मन में निश्चित जाने कि दण्ड, कमण्डलु और काषायवस्त्र आदि चिह्न धारण धर्म का कारण नहीं हैं, सब मनुष्यादि प्राणियों के सत्योपदेश और विद्यादान से उन्नति करना संन्यासी का मुख्य कर्म है ॥ ६ ॥ क्योंकि यद्यपि निर्मली वृक्ष का फल पीस के

गदरे जल में डालने से जल का शोधक होता है तदपि विना [उसके] डाले इसके नाम कथन वा श्रवणमात्र से जल शुद्ध नहीं हो सकता ॥ ७ ॥ इसलिये ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओंकारपूर्वक सप्तव्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे परन्तु तीन से तो न्यून प्राणायाम कभी न करे यही संन्यासी का परमतप है ॥ ८ ॥ क्योंकि जैसे अग्नि में तपाने और गलाने से धातुओं के मल नष्ट होजाते हैं वैसे ही प्राणों के निग्रह से मन आदि इन्द्रियों के दोष भस्मीभूत होते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये संन्यासी लोग नित्यप्रति प्राणायामों से आत्मा, अन्तःकरण और इन्द्रियों के दोष, धारणाओं से पाप, प्रत्यहार से संगदोष, ध्यान से अनीश्वर के गुणों अर्थात् हर्ष शोक और अविद्यादि जीव के दोषों को भस्मीभूत करें ॥ १० ॥ इसी ध्यान योग से जो अयोगी अविद्वानों को दुःख से जानने योग्य छोटे बड़े पदार्थों में परमात्मा की व्याप्ति उसको और अपने आत्मा और अन्तर्यामी परमेश्वर की गति को देखे ॥ ११ ॥ जब भूतों से निर्वैर इन्द्रियों के विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से इस संसार में मोक्षपद को पूर्वोक्त संन्यासी ही सिद्ध कर और करा सक्ते हैं अन्य कोई नहीं ॥ १२ ॥ जब संन्यासी सब भावों में अर्थात् पदार्थों में निःस्पृह कांक्षारहित और सब बाहर भीतर के व्यवहारों में भाव से पवित्र होता है तभी इस देह में और मरण पाके निरंतर सुख को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ इसलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासियों को योग्य है कि प्रयत्न से दश लक्षणयुक्त निम्नलिखित धर्म का सेवन करें ॥ १४ ॥ पहिला लक्षण–(धृति) सदा धैर्य रखना । दूसरा–(क्षमा) जो कि निन्दा स्तुति मानापमान हानिलाभ आदि दुःखों में भी सहनशील रहना । तीसरा–(दम) मन को सदा धर्म में प्रवृत्त कर अधर्म से रोक देना अर्थात् अधर्म करने की इच्छा भी न उठे । चौथा–(अस्तेय) चोरीत्याग अर्थात् विना आज्ञा वा छल कपट विश्वासघात वा किसी व्यवहार तथा वेद-विरुद्ध उपदेश से परपदार्थ का ग्रहण करना चोरी और उसको छोड़ देना साहूकारी कहाती है । पांचवां–(शौच) रागद्वेष पक्षपात छोड़ के भीतर और जल मृत्तिका मार्जन आदि से बाहर की पवित्रता रखनी । छठा–(इन्द्रियनि-

ग्रह) अधर्माचरणों से रोक के इन्द्रियों को धर्म ही में सदा चलाना। सातवां-(धीः) मादकद्रव्य बुद्धिनाशक अन्य पदार्थ दुष्टों का संग आलस्य प्रमाद आदि को छोड़ के श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन सत्पुरुषों का संग योगाभ्यास से बुद्धि का बढ़ाना। आंठवां-(विद्या) पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त यथार्थज्ञान और उनसे यथायोग्य उपकार लेना सत्य जैसा आत्मा में वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वाणी में, जैसा वाणी में वैसा कर्म में वर्त्तना विद्या, इससे विपरीत अविद्या है। नववां-(सत्य) जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही समझना, वैसा ही बोलना और वैसा ही करना भी। तथा दशवां-(अक्रोध) क्रोधादि दोषों को छोड़के शान्त्यादि गुणों को ग्रहण करना धर्म का लक्षण है। इस दश लक्षणयुक्त पक्षपातरहित न्यायाचरण धर्म का सेवन चारों आश्रमवाले करें और इसी वेदोक्त धर्म ही में आप चलना और दूसरों को समझा कर चलाना संन्यासियों का विशेष धर्म है॥ १५॥ इसी प्रकार से धीरे २ सब संगदोषों को छोड़ हर्ष शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें॥१६॥

(प्रश्न) संन्यासग्रहण करना ब्राह्मण ही का धर्म है वा क्षत्रियादि का भी ? (उत्तर) ब्राह्मण ही को अधिकार है क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान् धार्मिक परोपकारप्रिय मनुष्य है उसी का ब्राह्मण नाम है विना पूर्ण विद्या के धर्म, परमेश्वर की निष्ठा और वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने में संसार का विशेष उपकार नहीं हो सकता इसीलिये लोकश्रुति है कि ब्राह्मण को संन्यास का अधिकार है अन्य को नहीं यह मनु का प्रमाण भी है:—

> एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः।
> पुण्योऽक्षयफलः प्रेत्य राजधर्मान् निबोधत॥ मनु० ६। ९७॥

यह मनुजी महाराज कहते हैं कि हे ऋषियो ! यह चार प्रकार अर्थात् ब्रह्मचर्य्य, [गृहस्थ], वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम करना ब्राह्मण का धर्म है यहां

वर्तमान में पुण्यस्वरूप और शरीर छोड़े पश्चात् मुक्तिरूप अक्षय आनन्द का देनेवाला संन्यास धर्म है इसके आगे राजाओं का धर्म मुझ से सुनो। इससे यह सिद्ध हुआ कि संन्यासग्रहण का अधिकार मुख्य करके ब्राह्मण का है और क्षत्रियादि का ब्रह्मचर्याश्रम है (प्रश्न) संन्यासग्रहण की आवश्यकता क्या है ? (उत्तर) जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की आवश्यकता है क्योंकि इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता और दूसरे आश्रमों को विद्याग्रहण गृहकृत्य और तपश्चर्यादि का सम्बन्ध होने से अवकाश बहुत कम मिलता है। पक्षपात छोड़ कर वर्त्तना दूसरे आश्रमों को दुष्कर है जैसा संन्यासी सर्वतोमुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता क्योंकि संन्यासी को सत्यविद्या से पदार्थों के विज्ञान की उन्नति का जितना अवकाश मिलता है उतना अन्य आश्रमी को नहीं मिल सकता। परन्तु जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यासी होकर जगत् को सत्य शिक्षा करके जितनी उन्नति कर सकता है, उतनी गृहस्थ वा वानप्रस्थ आश्रम करके संन्यासाश्रमी नहीं कर सकता (प्रश्न) संन्यास ग्रहण करना ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध है क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है जब गृहाश्रम नहीं करेगा तो उससे सन्तान ही न होंगे। जब संन्यासाश्रम ही मुख्य है और सब मनुष्य करें तो मनुष्यों का मूलच्छेदन होजायगा (उत्तर) अच्छा, विवाह करके भी बहुतों के सन्तान नहीं होते अथवा होकर शीघ्र नष्ट होजाते हैं फिर वह भी ईश्वर के अभिप्राय से विरुद्ध करनेवाला हुआ जो तुम कहो कि "यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः" यह किसी कवि का वचन है, अर्थ—जो यत्न करने से भी कार्य्य सिद्ध न हो तो इसमें क्या दोष ? अर्थात् कोई भी नहीं। तो हम तुम से पूछते हैं कि गृहाश्रम से बहुत सन्तान होकर आपस में विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो हानि कितनी बड़ी होती है, समझ के विरोध से लड़ाई बहुत होती है, जब संन्यासी एक वेदोक्तधर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा सहस्रों गृहस्थ के समान मनुष्यों की बढ़ती करेगा और सब मनुष्य संन्यासग्रहण कर ही नहीं सकते क्योंकि सब की विषयासक्ति कभी नहीं छूट सकेगी, जो २ संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे वे सब

जानो संन्यासी के पुत्र तुल्य हैं (प्रश्न) संन्यासी लोग कहते हैं कि हमको कुछ कर्त्तव्य नहीं अन्न वस्त्र लेकर आनन्द में रहना, अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करना? अपने को ब्रह्म मानकर सन्तुष्ट रहना, कोई आकर पूछे तो उसको भी वैसा ही उपदेश करना कि तू भी ब्रह्म है तुझ को पाप पुण्य नहीं लगता क्योंकि शीतोष्ण शरीर, क्षुधा तृषा प्राण, और सुख दुःख मन का धर्म है। जगत् मिथ्या और जगत् के व्यवहार भी सब कल्पित अर्थात् झूंठे हैं इसलिये इसमें फँसना बुद्धिमानों का काम नहीं। जो कुछ पाप पुण्य होता है वह देह और इन्द्रियों का धर्म है आत्मा का नहीं, इत्यादि उपदेश करते हैं और आपने कुछ विलक्षण संन्यास का धर्म कहा है अब हम किसकी बात सच्ची और किसकी झूंठी मानें? (उत्तर) क्या उनको अच्छे कर्म भी कर्त्तव्य नहीं? देखो "वैदिकैश्चैव कर्मभिः" मनुजी ने वैदिक कर्म जो धर्मयुक्त सत्य कर्म हैं संन्यासियों को भी अवश्य करना लिखा है। क्या भोजन छादनादि कर्म वे छोड़ सकेंगे? जो ये कर्म नहीं छूट सकते तो उत्तम कर्म छोड़ने से वे पतित और पापभागी नहीं होंगे? जब गृहस्थों से अन्न वस्त्रादि लेते हैं और उनका प्रत्युपकार नहीं करते तो क्या वे महापापी नहीं होंगे? जैसे आंख से देखना कान से सुनना न हो तो आंख और कान का होना व्यर्थ है वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रों का विचार, प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भाररूप हैं। और जो अविद्यारूप संसार से माथापच्ची क्यों करना आदि लिखते और कहते हैं वैसे उपदेश करनेवाले ही मिथ्यारूप और पाप के बढ़ानेहारे पापी हैं। जो कुछ शरीरादि से कर्म्म किया जाता है वह सब आत्मा ही का और उसके फल का भोगने वाला भी आत्मा है। जो जीव को ब्रह्म बतलाते हैं वे अविद्या निद्रा में सोते हैं। क्योंकि जीव अल्प, अल्पज्ञ और ब्रह्म सर्वव्यापक सर्वज्ञ है ब्रह्म नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभावयुक्त है और जीव कभी बद्ध कभी मुक्त रहता है। ब्रह्म को सर्वव्यापक सर्वज्ञ होने से भ्रम वा अविद्या कभी नहीं होसकती और जीव को कभी विद्या और कभी अविद्या होती है ब्रह्म जन्ममरण दुःख को कभी नहीं प्राप्त होता और जीव प्राप्त होता है इसलिये वह उनका उपदेश मिथ्या है। (प्रश्न) संन्यासी सर्व कर्म्मविनाशी

और अग्नि तथा धातु को स्पर्श नहीं करते यह बात सच्ची है वा नहीं (उत्तर) नहीं "सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि कर्माणि येन स संन्यासः स प्रशस्तो विद्यते यस्य स संन्यासी" जो ब्रह्म और जिससे दुष्ट कर्मों का त्याग किया जाय वह उत्तम स्वभाव जिसमें हो वह संन्यासी कहाता है इसमें सुकर्म का कर्त्ता और दुष्ट कर्मों का नाश करनेवाला संन्यासी कहाता है (प्रश्न) अध्यापन और उपदेश गृहस्थ किया करते हैं पुनः संन्यासी का क्या प्रयोजन है? (उत्तर) सत्योपदेश सब आश्रमी करें और सुनें परन्तु जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है उतनी गृहस्थों को नहीं। हां, जो ब्राह्मण हैं उनका यही काम है कि पुरुष पुरुषों को और स्त्री स्त्रियों को सत्योपदेश और पढ़ाया करें। जितना भ्रमण का अवकाश संन्यासी को मिलता है उतना गृहस्थ ब्राह्मणादिकों को कभी नहीं मिल सक्ता। जब ब्राह्मण वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी होता है। इसलिये संन्यास का होना उचित है। (प्रश्न) "एकरात्रिं वसेद् ग्रामे" इत्यादि वचनों से संन्यासी को एकत्र एकरात्रिमात्र रहना अधिक निवास न करना चाहिये। (उत्तर) यह बात थोड़े से अंश में तो अच्छी है कि एकत्रवास करने से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता और स्थानान्तर का भी अभिमान होता है राग द्वेष भी अधिक होता है परन्तु जो विशेष उपकार एकत्र रहने से होता हो तो रहे जैसे जनक राजा के यहां चार चार महीने तक पञ्चशिखादि और अन्य संन्यासी कितने ही वर्षों तक निवास करते थे। और "एकत्र न रहना" यह बात आजकल के पाखण्डी सम्प्रदायियों ने बनाई है। क्योंकि जो संन्यासी एकत्र अधिक रहेगा तो हमारा पाखण्ड खण्डित होकर अधिक न बढ़ सकेगा (प्रश्न):—

यतीनां काञ्चनं दद्यात्ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम्।
चौराणामभयं दद्यात्स नरो नरकं व्रजेत्॥

इत्यादि वचनों का अभिप्राय यह है कि संन्यासियों को जो सुवर्ण दान दे तो दाता नरक को प्राप्त होवे (उत्तर) यह बात भी वर्णाश्रमविरोधी सम्प्रदायी

और स्वार्थसिन्धुवाले पौराणिकों की कल्पी हुई है, क्योंकि संन्यासियों को धन मिलेगा तो वे हमारा खण्डन बहुत कर सकेंगे और हमारी हानि होगी तथा वे हमारे आधीन भी न रहेंगे और जब भिक्षादि व्यवहार हमारे आधीन रहेगा तो डरते रहेंगे जब मूर्ख और स्वार्थियों को दान देने में अच्छा समझते हैं तो विद्वान् और परोपकारी संन्यासियों को देने में कुछ भी दोष नहीं हो सकता देखो मनु०—

विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥

नाना प्रकार के रत्न सुवर्णादि धन (विविक्त) अर्थात् संन्यासियों को देवे और वह श्लोक भी अनर्थक है क्योंकि संन्यासी को सुवर्ण देने से यजमान नरक को जावे तो चांदी, मोती, हीरा आदि देने से स्वर्ग को जायगा (प्रश्न) यह पण्डितजी इसका पाठ बोलते भूल गये यह ऐसा है कि "यतिहस्ते धनं दद्यात्" अर्थात् जो संन्यासियों के हाथ में धन देता है वह नरक में जाता है (उत्तर) यह भी वचन अविद्वान् ने कपोलकल्पना से रचा है । क्योंकि जो हाथ में धन देने से दाता नरक को जाय तो पग पर धरने वा गठरी बांधकर देने से स्वर्ग को जायगा इसलिये ऐसी कल्पना मानने योग्य नहीं । हां, यह बात तो है कि जो संन्यासी योगक्षेम से अधिक रक्खेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी होजायगा परन्तु जो विद्वान् है वह अयुक्त व्यवहार कभी न करेगा, न मोह में फँसेगा क्योंकि वह प्रथम गृहाश्रम में अथवा ब्रह्मचर्य में सब भोग कर वा सब देख चुका है और जो ब्रह्मचर्य से होता है वह पूर्ण वैराग्ययुक्त होने से कभी कहीं नहीं फँसता (प्रश्न) लोग कहते हैं कि श्राद्ध में संन्यासी आवे वा जिमावे तो उसके पितर भाग जायें और नरक में गिरें (उत्तर) प्रथम तो मरे हुए पितरों का आना और किया हुआ श्राद्ध मरे हुए पितरों को पहुंचाना ही असम्भव वेद और युक्तिविरुद्ध होने से मिथ्या है । और जब आते ही नहीं तो भाग कौन जायेंगे जब अपने पाप पुण्य के अनुसार ईश्वर की व्यवस्था से मरण के पश्चात् जीव जन्म लेते हैं तो उनका आना कैसे हो सकता है ? इसलिये यह भी बात पेटार्थी पुराणी और वैरागियों की मिथ्या

कल्पी हुई है। यह तो ठीक है कि जहां संन्यासी जायेंगे वहां यह मृतकश्राद्ध करना वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध होने से पाखण्ड दूर भाग जायेगा (प्रश्न) जो ब्रह्मचर्य्य से संन्यास लेवेगा उसका निर्वाह कठिनता से होगा और काम का रोकना भी अति कठिन है इसलिये गृहाश्रम वानप्रस्थ होकर जब वृद्ध होजाय तभी संन्यास लेना अच्छा है (उत्तर) जो निर्वाह न कर सके इन्द्रियों को न रोक सके वह ब्रह्मचर्य्य से संन्यास न लेवे, परन्तु जो रोक सके वह क्यों न लेवे? जिस पुरुष ने विषय के दोष और वीर्यसंरक्षण के गुण जाने हैं वह विषयासक्त कभी नहीं होता और उनका वीर्य्य विचाराग्नि का इन्धनवत् है अर्थात् उसी में व्यय होजाता है। जैसे वैद्य और औषधों की आवश्यक्ता रोगी के लिये होती है वैसी नीरोगी के लिये नहीं। इसी प्रकार जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो वह विवाह न करे। जैसे पंचशिखादि पुरुष और गार्गी आदि स्त्रियां हुई थीं इसलिये संन्यासी का होना अधिकारियों को उचित है और जो अनधिकारी संन्यासग्रहण करेगा तो आप डूबेगा औरों को भी डुबावेगा जैसे "सम्राट्" चक्रवर्ती राजा होता है वैसे "परिव्राट्" संन्यासी होता है प्रत्युत राजा अपने देश में वा स्वसम्बन्धियों में सत्कार पाता है और संन्यासी सर्वत्र पूजित होता है॥

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥ १॥

[यह] चाणक्य नीतिशास्त्र का श्लोक है—विद्वान् और राजा की कभी तुल्यता नहीं हो सकती क्योंकि राजा अपने राज्य ही में मान और सत्कार पाता है और विद्वान् सर्वत्र मान और प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है। इसलिये विद्या पढ़ने, सुशिक्षा लेने और बलवान् होने आदि के लिये ब्रह्मचर्य्य, सब प्रकार के उत्तम व्यवहार सिद्ध करने के अर्थ गृहस्थ, विचार ध्यान और विज्ञान बढ़ाने तपश्चर्या करने के लिये वानप्रस्थ और वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रचार, धर्म व्यवहार का ग्रहण और दुष्ट व्यवहार के त्याग, सत्योपदेश और सब को निःसंदेह करने आदि के लिये संन्यासाश्रम है। परन्तु जो इस संन्यास के

मुख्य धर्म सत्योपदेशादि नहीं करते वे पतित और नरकगामी हैं। इससे संन्यासियों को उचित है कि सत्योपदेश शङ्कासमाधान, वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्यापन और वेदोक्त धर्म की वृद्धि प्रयत्न से करके सब संसार की उन्नति किया करें (प्रश्न) जो संन्यासी से अन्य साधु, वैरागी, गुसाईं, खाखी आदि हैं वे भी संन्यासाश्रम में गिने जायेंगे वा नहीं ? (उत्तर) नहीं क्योंकि उनमें संन्यास का एक भी लक्षण नहीं, वे वेदविरुद्ध मार्ग में प्रवृत्त होकर वेद से [अधिक] अपने संप्रदाय के आचार्य्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते मिथ्या प्रपंच में फँसकर अपने स्वार्थ के लिये दूसरों को अपने २ मत में फँसाते हैं सुधार करना तो दूर रहा उसके बदले में संसार को बहका कर अधोगति को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं इसलिये इनको संन्यासाश्रम में नहीं गिन सकते किन्तु ये स्वार्थाश्रमी तो पक्के हैं ! इसमें कुछ संदेह नहीं। जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार को चलाते हैं जिससे आप और सब संसार को इस लोक अर्थात् वर्त्तमान जन्म में परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में स्वर्ग अर्थात् सुख का भोग करते कराते हैं वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं। यह संक्षेप से संन्यासाश्रम की शिक्षा लिखी। अब इसके आगे राजप्रजाधर्म विषय लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते वानप्रस्थसंन्यासाश्रमविषये
पञ्चमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठसमुल्लासारम्भः

अथ राजधर्मान् व्याख्यास्यामः

राजधर्मान् प्रवक्ष्यामि यथावृत्तो भवेन्नृपः ।
संभवश्च यथा तस्य सिद्धिश्च परमा यथा ॥ १ ॥
ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि ।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम् ॥ २ ॥
मनु० [७ ॥ १ । २]

अब मनुजी महाराज ऋषियों से कहते हैं कि चारों वर्ण और चारों आश्रमों के व्यवहार कथन के पश्चात् राजधर्मों को कहेंगे कि किस प्रकार का राजा होना चाहिये और जैसे इसके होने का सम्भव तथा जैसे इसको परमसिद्धि प्राप्त होवे उसको सब प्रकार कहते हैं ॥ १ ॥ कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है वैसा विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करे ॥ २ ॥ उसका प्रकार यह है—

त्रीणि॑ राजा॑ना वि॒दथे॑ पु॒रूणि॒ परि॒ विश्वा॑नि भूषथः॒ सदां॑सि ॥ ऋ० ॥ मं० ३ । सू० ३८ । मं० ६ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि (राजाना) राजा और प्रजा के पुरुष मिल के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञानवृद्धिकारक राजा प्रजा के सम्बन्धरूप व्यवहार में (त्रीणि सदांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य्यसभा, धर्मार्य्यसभा, राजार्य्यसभा नियत करके (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजासम्बन्धी मनुष्यादि प्राणियों को (परिभूषथः) सब ओर से विद्या स्वातन्त्र्य धर्म सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें ॥

। तं सभा च समितिश्च सेना च ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १५ । अनु० २ । व० ६ । मं० २ ॥

। सभ्य सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ २ ॥ अथर्व० कां० १६ । अनु० ७ । व० ५५ । मं० ६ ॥

(तम्) उस राजधर्म को (सभा च) तीनों सभा (समितिश्च) संग्रामादि की व्यवस्था और (सेना च) सेना मिलकर पालन करें ॥ १ ॥ सभासद् और राजा को योग्य है कि राजा सब सभासदों को आज्ञा देवे कि हे (सभ्य) सभा के योग्य मुख्य सभासद् तू (मे) मेरी (सभाम्) सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का (पाहि) पालन कर और (ये च) जो (सभ्याः) सभा के योग्य (सभासदः) सभासद हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन किया करें ॥ २ ॥ इसका अभिप्राय यह है कि एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहै यदि ऐसा न करोगे तोः—

राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशं घातुकः । विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति तस्माद्राष्ट्री विशमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यत इति ॥ शत० कां० १३ । प्र० २ । ब्रा० ३ । [कं० ७ । ८]

जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो (राष्ट्रमेव विश्याहन्ति) राज्य में प्रवेश करके प्रजा का नाश किया करें जिसलिये अकेला राजा स्वाधीन वा उन्मत्त होके (राष्ट्री विशं घातुकः) प्रजा का नाशक होता है अर्थात् (विशमेव राष्ट्रायाद्यां करोति) वह राजा प्रजा को खाये जाता (अत्यन्त पीड़ित करता) है इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये जैसे सिंह वा मांसाहारी हृष्ट पुष्ट पशु को मारकर खालेते हैं वैसे (राष्ट्री विशमत्ति) स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा, इसलिये:—

इन्द्रो॑ जयाति॒ न परा॑ जयाता अधिरा॒जो राज॑सु राजयातै । च॒र्कृत्य॒ ईड्यो॒ वन्द्य॑श्चोप॒सद्यो॑ नम॒स्यो॑ भवे॒ह ॥ अथर्व० कां० ६ । अनु० १० । व० ९८ । मं० १ ॥

हे मनुष्यो ! जो (इह) इस मनुष्य के समुदाय में (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य का कर्त्ता शत्रुओं को (जयाति) जीत सके (न पराजयातै) जो शत्रुओं से पराजित न हो (राजसु) राजाओं में (अधिराजः) सर्वोपरि विराजमान (राजयातै) प्रकाशमान हो (चर्कृत्यः) सभापति होने को अत्यन्त योग्य (ईड्यः) प्रशंसनीय गुण कर्म स्वभावयुक्त (वन्द्यः) सत्करणीय (चोपसद्यः) समीप जाने और शरण लेने योग्य (नमस्यः) सब का माननीय (भव) होवे उसी को सभापति राजा करे ॥

इ॒मन्दे॑वा असप॒त्नꣳसु॑वध्वं मह॒ते क्ष॒त्राय॑ मह॒ते ज्यैष्ठ्या॑य मह॒ते जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑ ॥ यजु० अ० ९ । मं० ४० ॥

हे (देवाः) विद्वानो राजप्रजाजनो तुम (इमम्) इस प्रकार के पुरुष को (महते क्षत्राय) बड़े चक्रवर्त्ति राज्य (महते ज्यैष्ठ्याय) सब से बड़े होने (महते जानराज्याय) बड़े २ विद्वानों से युक्त राज्य पालने और (इन्द्रस्येन्द्रियाय) परम ऐश्वर्ययुक्त राज्य और धन के पालने के लिये (असपत्नꣳ सुवध्वम्) सम्मति करके सर्वत्र पक्षपातरहित पूर्ण विद्या विनययुक्त सब के मित्र सभापति राजा को सर्वाधीश मान के सब भूगोल शत्रुरहित करो और—

स्थि॒रा वः॑ स॒न्त्वायु॑धा परा॒णुदे॑ वी॒ळू उ॒त प्र॑ति॒ष्कभे॑ ।
यु॒ष्माक॑मस्तु॒ तवि॑षी॒ पनी॑यसी॒ मा मर्त्य॑स्य मा॒यिनः॑ ॥
ऋ० ॥ मं० १ । सू० ३९ । मं० २ ॥

ईश्वर उपदेश करता है कि हे राजपुरुषो ! (वः) तुम्हारे (आयुधा) आग्नेयादि अस्त्र और शतघ्नी अर्थात् तोप भुशुण्डी अर्थात् बन्दूक धनुष् बाण तलवार आदि शस्त्र शत्रुओं के (पराणुदे) पराजय करने (उत प्रतिष्कभे)

और रोकने के लिये (वीळू) प्रशंसित और (स्थिरा) दृढ़ (सन्तु) हों (युष्माकम्) और तुम्हारी (तविषी) सेना (पनीयसी) प्रशंसनीय (अस्तु) होवे कि जिससे तुम सदा विजयी होओ परन्तु (मा मर्त्यस्य मायिनः) जो निन्दित अन्यायरूप काम करता है उसके लिये पूर्व वस्तु मत हों अर्थात् जब-तक मनुष्य धार्मिक रहते हैं तभी तक राज्य बढ़ता रहता है और जब दुष्टाचारी होते हैं तब नष्ट भ्रष्ट होजाता है। महाविद्वानों को विद्यासभाऽधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाऽधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद् और जो इन सब में सर्वोत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पतिरूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें। तीनों सभाओं की सम्मति से राजनीति के उत्तम नियम और नियमों के आधीन सब लोग वर्तें सब के हितकारक कामों में सम्मति करें सर्वहित करने के लिये परतन्त्र और धर्मयुक्त कामों में अर्थात् जो २ निज के काम हैं उन २ में स्वतन्त्र रहें। पुनः उस सभापति के गुण कैसे होने चाहियें:—

इन्द्राऽनिलयमार्काणामग्नेश्च वरुणस्य च।
चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः॥ १॥
तपत्यादित्यवच्चैष चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्॥ २॥
सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट्।
स कुबेरः स वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः॥ ३॥
मनु० [७॥ ४। ६। ७]

वह सभेश राजा इन्द्र अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्यकर्त्ता वायु के समान सब के प्राणवत् प्रिय और हृदय की बात जाननेहारा, यम पक्षपातरहित न्यायाधीश के समान वर्त्तनेवाला, सूर्य्य के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक अंधकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करनेहारा, वरुण अर्थात् बांधनेवाले के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, धनाध्यक्ष के समान कोशों

का पूर्ण करने वाला सभापति होवे ॥ १ ॥ जो सूर्य्यवत् प्रतापी सब के बाहर और भीतर मनों को अपने तेज से तपानेहारा जिसको पृथिवी में करड़ी दृष्टि से देखने को कोई भी समर्थ न हो ॥ २ ॥ और जो अपने प्रभाव से अग्नि, वायु, सूर्य्य, सोम, धर्म, प्रकाशक, धनवर्द्धक, दुष्टों का बन्धनकर्त्ता, बड़े ऐश्वर्य्यवाला होवे वही सभाध्यक्ष सभेश होने के योग्य होवे ॥ ३ ॥ सच्चा राजा कौन है:—

स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः ।
चतुर्णामाश्रमाणां च धर्मस्य प्रतिभूः स्मृतः ॥ १ ॥
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति ।
दण्डः सुप्तेषु जागर्त्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः ॥ २ ॥
समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वा रञ्जयति प्रजाः ।
असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनाशयति सर्वतः ॥ ३ ॥
दुष्येयुः सर्ववर्णाश्च भिद्येरन्सर्वसेतवः ।
सर्वलोकप्रकोपश्च भवेद्दण्डस्य विभ्रमात् ॥ ४ ॥
यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा ।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत्साधु पश्यति ॥ ५ ॥
तस्याहुः संप्रणेतारं राजानं सत्यवादिनम् ।
समीक्ष्य कारिणं प्राज्ञं धर्मकामार्थकोविदम् ॥ ६ ॥
तं राजा प्रणयन्सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्द्धते ।
कामात्मा विषमः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते ॥ ७ ॥
दण्डो हि सुमहत्तेजो दुर्धरश्चाकृतात्मभिः ।
धर्माद्विचलितं हन्ति नृपमेव सबान्धवम् ॥ ८ ॥
सोऽसहायेन मूढेन लुब्धेनाकृतबुद्धिना ।
न शक्यो न्यायतो नेतुं सक्तेन विषयेषु च ॥ ९ ॥
शुचिना सत्यसन्धेन यथा शास्त्रानुसारिणा ।
प्रणेतुं शक्यते दण्डः सुसहायेन धीमता ॥ १० ॥

मनु० [७ ॥ १७-१९ । २४-२८ । ३० । ३१]

र्थ) जो दण्ड है वही पुरुष राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् जामिन है ॥ १ ॥ वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं ॥ २ ॥ जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है ॥ ३ ॥ विना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न होजायें। दण्ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप होजावे ॥ ४ ॥ जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयङ्कर पुरुष के समान पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहां प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलानेवाला पक्षपात रहित विद्वान् हो तो ॥ ५ ॥ जो उस दण्ड का चलानेवाला सत्यवादी विचार के करनेहारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलानेहारा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ६ ॥ जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, वह दण्ड से ही मारा जाता है ॥ ७ ॥ जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उसको अविद्वान् अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दण्ड धर्म से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है ॥ ८ ॥ क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ ९ ॥ और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का सङ्गी यथावत् नीतिशास्त्र के अनुकूल चलनेहारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्यायरूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है ॥ १० ॥ इसलिये:—

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १ ॥

दशावरा वा परिषद्यं धर्मं परिकल्पयेत् ।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तं धर्मं न विचालयेत् ॥ २ ॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः ।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा ॥ ३ ॥
ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥ ४ ॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येद् द्विजोत्तमः ।
स विज्ञेयः परो धर्मो नाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥ ५ ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्त्वं न विद्यते ॥ ६ ॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तॄननुगच्छति ॥ ७ ॥
मनु० [१२ ॥ १०० । ११०–११५]

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दंड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में संपूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्यावाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिये अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें ॥ १ ॥ न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे ॥ २ ॥ इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान् सभासद् हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहियें ॥ ३ ॥ और जिस सभा में ऋग्वेद यजुर्वेद सामबेद के जाननेवाले तीन सभासद् होके व्यवस्था करें उस सभा की कीहुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे ॥ ४ ॥ यदि एक अकेला सब वेदों का जाननेहारा द्विजों में

उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये ॥ ५ ॥ जो ब्रह्मचर्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती ॥ ६ ॥ जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों के न जाननेवाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्योंकि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं ॥ ७ ॥ इसलिये तीनों अर्थात् विद्यासभा, धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों का स्थापन करे और सब लोग ऐसे:—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम् ।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्त्तारम्भाँश्च लोकतः ॥ १ ॥
इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद्दिवानिशम् ।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः ॥ २ ॥
दश कामसमुत्थानि तथाष्टौ क्रोधजानि च ।
व्यसनानि दुरन्तानि प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥ ३ ॥
कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः ।
वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु ॥ ४ ॥
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः ॥ ५ ॥
पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥ ६ ॥
द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयो विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ७ ॥
पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ८ ॥

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे ।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत्त्रिकं सदा ॥ ९ ॥
सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः ।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद्व्यसनमात्मवान् ॥ १० ॥
व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते ।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः ॥ ११ ॥

मनु० [७ ॥ ४३-५३]

राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान विद्याओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्त्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें ॥१॥ सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्त्तें और अधर्म से हटे हटाए रहें । इसलिये रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहें क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जाने विना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता ॥ २ ॥ दृढ़ोत्साही होकर जो काम से दश और क्रोध से आठ दुष्ट व्यसन कि जिन में फँसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे ॥ ३ ॥ क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फँसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्म से रहित होजाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फँसता है वह शरीर से भी रहित होजाता है ॥ ४ ॥ काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखो—मृगया खेलना, (अक्ष) अर्थात् चौपड़ खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना, कामकथा वा दूसरे की निन्दा किया करना, स्त्रियों का अति संग, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते

रहना ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं ॥ ५ ॥ क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं—"पैशुन्यम्" अर्थात् चुगली करना, विना विचारे बलात्कार से किसी की स्त्री से बुरा काम करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देख-कर जला करना, "असूया" दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना, "अर्थदूषण" अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना; कठोर वचन बोलना और विना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥ जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े ॥ ७ ॥ काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्रियों का विशेष सङ्ग, चौथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं ॥ ८ ॥ और क्रोधजों में विना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं ॥ ९ ॥ जो ये ७ दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इनमें से पूर्व २ अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से [अन्याय], अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे स्त्रियों का अत्यन्त सङ्ग, इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है ॥ १० ॥ इसमें यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फँसने से मरजाना अच्छा है क्योंकि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ गति अर्थात् अधिक २ दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फँसा वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायगा इसलिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फँसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावों में सदा वर्त्त के अच्छे २ काम किया करें ॥ ११ ॥ राजसभासद् और मंत्री कैसे होने चाहियें:—

मौलान् शास्त्रविदः शूराँल्लब्धलक्षान् कुलोद्गतान् ।
सचिवान्सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान् ॥ १ ॥

अपि यत्सुकरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम् ।
विशेषतोऽसहायेन किन्तु राज्यं महोदयम् ॥ २ ॥
तैः सार्द्धं चिन्तयेन्नित्यं सामान्यं सन्धिविग्रहम् ।
स्थानं समुदयं गुप्तिं लब्धप्रशमनानि च ॥ ३ ॥
तेषां स्वं स्वमभिप्रायमुपलभ्य पृथक् पृथक् ।
समस्तानाञ्च कार्य्येषु विदध्याद्धितमात्मनः ॥ ४ ॥
अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान् ।
सम्यगर्थसमाहर्तॄनमात्यान्सुपरीक्षितान् ॥ ५ ॥
निवर्त्ततास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता नृभिः ।
तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान् ॥ ६ ॥
तेषामर्थे नियुञ्जीत शूरान् दक्षान् कुलोद्गतान् ।
शुचीनाकरकर्मान्ते भीरूनन्तर्निवेशने ॥ ७ ॥
दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम् ।
इङ्गिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम् ॥ ८ ॥
अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित् ।
वपुष्मान्वीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते ॥ ९ ॥

मनु० [७ ॥ ५४–५७ । ६०–६४]

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जाननेवाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान्" अर्थात् मन्त्री करे ॥ १ ॥ क्योंकि विशेष सहाय के विना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन होजाता है जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म्म एक से कैसे हो सकता है ? इसलिये एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है ॥ २ ॥ इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध (स्थान) स्थिति समय को देख के चुपचाप

रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयम्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हों उस २ में शान्ति-स्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करें ॥ ३ ॥ विचार से करना कि उन सभासदों का पृथक् २ अपना २ विचार और अभि-प्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना ॥ ४ ॥ अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे ॥ ५ ॥ जितने मनुष्यों से राज्यकार्य्य सिद्ध होसकें उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे ॥ ६ ॥ इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े २ कर्मों में और भीरु डरनेवालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे ॥ ७ ॥ जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होनेवाली बात को जाननेहारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खे ॥ ८ ॥ वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलनेवाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है ॥ ९ ॥ किस २ को क्या २ अधिकार देना योग्य है:—

अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया ।
नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ ॥ १ ॥
दूत एव हि संधत्ते भिनत्त्येव च संहतान् ।
दूतस्तत्कुरुते कर्म भिद्यन्ते येन वा न वा ॥ २ ॥
बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम् ।
तथा प्रयत्नमातिष्ठेद्यथात्मानं न पीडयेत् ॥ ३ ॥
धनुर्दुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा ।

नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥ ४ ॥
एकः शतं योधयति प्राकारस्थो धनुर्धरः ।
शतं दश सहस्राणि तस्माद्दुर्गं विधीयते ॥ ५ ॥
तत्स्यादायुधसम्पन्नं धनधान्येन वाहनैः ।
ब्राह्मणैः शिल्पिभिर्यन्त्रैर्यवसेनोदकेन च ॥ ६ ॥
तस्य मध्ये सुपर्याप्तं कारयेद्गृहमात्मनः ।
गुप्तं सर्वर्त्तुकं शुभ्रं जलवृक्षसमन्वितम् ॥ ७ ॥
तदध्यास्योद्वहेद्भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ।
कुले महति सम्भूतां हृद्यां रूपगुणान्विताम् ॥ ८ ॥
पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चर्त्विजम् ।
तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्य्युर्वैतानिकानि च ॥ ९ ॥

मनु० [७ ॥ ६५ । ६६ । ६८ । ७० । ७४-७८]

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राजकार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल वा विरोध करना अधिकार देवे ॥ १ ॥ दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड़ तोड़ देवे । दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट पड़े ॥ २ ॥ वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो ॥ ३ ॥ इसलिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम्) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्क्षम्) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के बीच में कोट बना के इसके मध्य में नगर बनावे ॥ ४ ॥ और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट बनावे, क्योंकि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हजार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिये अवश्य दुर्ग का बनाना

उचित है ॥ ५ ॥ वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पि) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो ॥ ६ ॥ उसके मध्य में जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राजकार्य्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे ॥ ७ ॥ इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहांतक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्यरूप गुणयुक्त हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे ॥ ८ ॥ पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना ॥ ९ ॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम् ।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्त्तेत पितृवन्नृषु ॥ १ ॥
अध्यक्षान् विविधान् कुर्यात् तत्र तत्र विपश्चितः ।
तेऽस्य सर्वाण्यवेक्षेरन्नृणां कार्याणि कुर्वताम् ॥ २ ॥
आवृत्तानां गुरुकुलाद्विप्राणां पूजको भवेत् ।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मो विधीयते ॥ ३ ॥
समोत्तमाधमै राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः ।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन् ॥ ४ ॥
आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः ।
युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः ॥ ५ ॥
न च हन्यात्स्थलारूढं न क्लीबं न कृताञ्जलिम् ।
न मुक्तकेशं नासीनं न तवास्मीति वादिनम् ॥ ६ ॥
न सुप्तं न विसन्नाहं न नग्नं न निरायुधम् ।
नायुध्यमानं पश्यन्तं न परेण समागतम् ॥ ७ ॥

नायुधव्यसनं प्राप्तं नार्त्तं नातिपरिक्षतम् ।
न भीतं न परावृत्तं सतां धर्ममनुस्मरन् ॥ ८ ॥
यस्तु भीतः परावृत्तः सङ्ग्रामे हन्यते परैः ।
भर्त्तुर्यद्दुष्कृतं किञ्चित्तत्सर्वं प्रतिपद्यते ॥ ९ ॥
यच्चास्य सुकृतं किंचिदमुत्रार्थमुपार्जितम् ।
भर्त्ता तत्सर्वमादत्ते परावृत्तहतस्य तु ॥ १० ॥
रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः ।
सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तत् ॥ ११ ॥
राज्ञश्च दद्युरुद्धारमित्येषा वैदिकी श्रुतिः ।
राज्ञा च सर्वयोधेभ्यो दातव्यमपृथग्जितम् ॥ १२ ॥
मनु० [७ ॥ ८०-८२ । ८७ । ८९ । ९१-९७]

वार्षिक कर आप्तपुरुषों के द्वारा ग्रहण करे और जो सभापतिरूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं वे सब सभा वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के समान वर्त्तें ॥ १ ॥ उस राज्यकार्य्य में विविध प्रकार के अध्यक्षों को सभा नियत करे इनका यही काम है जितने २ जिस २ काम में राजपुरुष हों वे नियमानुसार वर्त्त कर यथावत् काम करते हैं वा नहीं जो यथावत् करें तो उनका सत्कार और जो विरुद्ध करें तो उनको यथावत् दण्ड किया करे ॥ २ ॥ सदा जो राजाओं का वेद प्रचाररूप अक्षय कोष है इसके प्रचार के लिये जो कोई यथावत् ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों को पढ़कर गुरुकुल से आवे उनका सत्कार राजा और सभा यथावत् करें तथा उनका भी जिनके पढ़ाये हुए विद्वान् होवें ॥ ३ ॥ इस बात के करने से राज्य में विद्या की उन्नति होकर अत्यन्त उन्नति होती है जब कभी प्रजा का पालन करने वाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने से कभी निवृत्त न हो अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे जिससे अपना ही विजय हो ॥ ४ ॥ जो संग्रामों में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा करते हुए राजा लोग जितना अपना सामर्थ्य हो विना

डर पीठ न दिखा युद्ध करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं इससे विमुख कभी न हो, किन्तु कभी २ शत्रु को जीतने के लिये उनके सामने से छिपजाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करें जैसा सिंह क्रोध से सामने आकर शस्त्राग्नि में शीघ्र भस्म होजाता है वैसे मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावें ॥ ५ ॥ युद्ध समय में न इधर उधर खड़े, न नपुंसक, न हाथ जोड़े हुए, न जिसके शिरके बाल खुल गये हों, न बैठे हुए, न "मैं तेरे शरण हूं" ऐसे को ॥ ६ ॥ न सोते हुए, न मूर्छा को प्राप्त हुए, न नग्न हुए, न आयुध से रहित, न युद्ध करते हुओं को देखने वालों, न शत्रु के साथी ॥ ७ ॥ न आयुध के प्रहार से पीड़ा को प्राप्त हुए, न दुःखी, न अत्यन्त घायल, न डरे हुए और न पलायन करते हुए पुरुष को, सत्पुरुषों के धर्म का स्मरण करते हुए योद्धा लोग कभी मारें किन्तु उनको पकड़ के जो अच्छे हों बंदीगृह में रखदे और भोजन आच्छादन यथावत् देवे और जो घायल हुए हों उनकी औषधादि विधिपूर्वक करे। न उनको चिड़ावे न दुःख देवे। जो उनके योग्य काम हो करावे। विशेष इस पर ध्यान रक्खे कि स्त्री, बालक, वृद्ध और आतुर तथा शोकयुक्त पुरुषों पर शस्त्र कभी न चलावे। उनके लड़के वालों को अपने सन्तानवत् पाले और स्त्रियों को भी पाले। उनको अपनी बहिन और कन्या के समान समझे, कभी विषयासक्ति की दृष्टि से भी न देखे। जब राज्य अच्छे प्रकार जम जाय और जिनमें पुनः २ युद्ध करने की शंका न हो उनको सत्कारपूर्वक छोड़कर अपने २ घर वा देश को भेज देवे और जिनसे भविष्यत् काल में विघ्न होना सम्भव हो उनको सदा कारागार में रक्खे ॥ ८ ॥ और जो पलायन अर्थात् भागे और डरा हुआ भृत्य शत्रुओं से मारा जाय वह उस स्वामी के अपराध को प्राप्त होकर दण्डनीय होवे ॥ ९ ॥ और जो उसकी प्रतिष्ठा है जिससे इस लोक और परलोक में सुख होनेवाला था उसको उसका स्वामी ले लेता है जो भागा हुआ मारा जाय उसको कुछ भी सुख नहीं होता उसका पुण्यफल सब नष्ट होजाता और उस प्रतिष्ठा को वह प्राप्त हो जिसने धर्म से यथावत् युद्ध किया हो ॥ १० ॥ इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो २ लड़ाई में जिस जिस भृत्य वा अध्यक्ष ने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धन

धान्य, गाय आदि पशु और स्त्रियां तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और घी, तेल आदि के कुप्पे जीते हों वही उसका ग्रहण करे ॥ ११ ॥ परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को देवें और राजा भी सेनास्थ योद्धाओं को उस धन में से जो सबने मिल के जीता हो सोलहवां भाग देवे। और जो कोई युद्ध में मर गया हो उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। जो कोई अपने राज्य की वृद्धि, प्रतिष्ठा, विजय और आनन्दवृद्धि की इच्छा रखता हो वह इस मर्य्यादा का उल्लंघन कभी न करे ॥ १२ ॥

अलब्धं चैव लिप्सेत लब्धं रक्षेत्प्रयत्नतः।
रक्षितं वर्द्धयेच्चैव वृद्धं पात्रेषु निःक्षिपेत् ॥ १ ॥
अलब्धमिच्छेद्दण्डेन लब्धं रक्षेदवेक्षया।
रक्षितं वर्द्धयेद् वृद्ध्या वृद्धं दानेन निःक्षिपेत् ॥ २ ॥
अमाययैव वर्त्तेत न कथंचन मायया।
बुध्येतारिप्रयुक्तां च मायान्नित्यं स्वसंवृतः ॥ ३ ॥
नास्य छिद्रं परो विद्याच्छिद्रं विद्यात्परस्य तु।
गूहेत्कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद्विवरमात्मनः ॥ ४ ॥
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्।
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिष्पतेत् ॥ ५ ॥
एवं विजयमानस्य येऽस्य स्युः परिपन्थिनः।
तानानयेद्वशं सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः ॥ ६ ॥
यथोद्धरति निर्दाता कक्षं धान्यं च रक्षति।
तथा रक्षेन्नृपो राष्ट्रं हन्याच्च परिपन्थिनः ॥ ७ ॥
मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्षयत्यनवेक्षया।
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः ॥ ८ ॥
शरीरकर्षणात्प्राणाः क्षीयन्ते प्राणिनां यथा।
तथा राज्ञामपि प्राणाः क्षीयन्ते राष्ट्रकर्षणात् ॥ ९ ॥

राष्ट्रस्य संग्रहे नित्यं विधानमिदमाचरेत् ।
सुसंगृहीतराष्ट्रो हि पार्थिवः सुखमेधते ॥ १० ॥
द्वयोस्त्रयाणां पञ्चानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् ।
तथा ग्रामशतानां च कुर्य्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम् ॥ ११ ॥
ग्रामस्याधिपतिं कुर्य्याद्दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशं च सहस्रपतिमेव च ॥ १२ ॥
ग्रामे दोषान्समुत्पन्नान् ग्रामिकः शनकैः स्वयम् ।
शंसेद् ग्रामदशेशाय दशेशो विंशतीशिनम् ॥ १३ ॥
विंशतीशस्तु तत्सर्वं शतेशाय निवेदयेत् ।
शंसेद् ग्रामशतेशस्तु सहस्रपतये स्वयम् ॥ १४ ॥
तेषां ग्राम्याणि कार्याणि पृथक्कार्याणि चैव हि ।
राज्ञोऽन्यः सचिवः स्निग्धस्तानि पश्येदतन्द्रितः ॥ १५ ॥
नगरे नगरे चैकं कुर्यात्सर्वार्थचिन्तकम् ।
उच्चैः स्थानं घोररूपं नक्षत्राणामिव ग्रहम् ॥ १६ ॥
स तानुनुपरिक्रामेत्सर्वानेव सदा स्वयम् ।
तेषां वृत्तं परिणयेत्सम्यग्राष्ट्रेषु तच्चरैः ॥ १७ ॥
राज्ञो हि रक्षाधिकृताः परस्वादायिनः शठाः ।
भृत्या भवन्ति प्रायेण तेभ्यो रक्षेदिमाः प्रजाः ॥ १८ ॥
ये कार्यिकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः ।
तेषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात्प्रवासनम् ॥ १९ ॥

मनु० [७ ॥ ९९ । १०१ । १०४–१०७ । ११०–११७ । १२०–१२४]

राजा और राजसभा अलब्ध की प्राप्ति की इच्छा, प्राप्त की प्रयत्न से रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे और बढ़े हुए धन को वेदविद्या, धर्म का प्रचार, विद्यार्थी, वेदमार्गोपदेशक तथा असमर्थ अनाथों के पालन में लगावे ॥ १ ॥ इस चार प्रकार के पुरुषार्थ के प्रयोजन को जाने । आलस्य छोड़कर इसका भलीभांति

नित्य अनुष्ठान करे। दण्ड से अप्राप्त की प्राप्ति की इच्छा, नित्य देखने से प्राप्त की रक्षा, रक्षित की वृद्धि अर्थात् व्याजादि से बढ़ावे और बढ़े हुए धन को पूर्वोक्त मार्ग में नित्य व्यय करे ॥ २ ॥ कदापि किसी के साथ छल से न वर्ते किन्तु निष्कपट होकर सब से वर्त्ताव रक्खे और नित्यप्रति अपनी रक्षा करके शत्रु के किये हुए छल को जान के निवृत्त करे ॥ ३ ॥ कोई शत्रु अपने छिद्र अर्थात् निर्बलता को न जान सके और स्वयं शत्रु के छिद्रों को जानता रहे जैसे कछुआ अपने अङ्गों को गुप्त रखता है वैसे शत्रु के प्रवेश करने के छिद्र को गुप्त रक्खे ॥ ४ ॥ जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मच्छ के पकड़ने को ताकता है वैसे अर्थसंग्रह का विचार किया करे, द्रव्यादि पदार्थ और बल की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिये सिंह के समान पराक्रम करे, चीता के समान छिपकर शत्रुओं को पकड़े और समीप में आये बलवान् शत्रुओं से सस्सा के समान दूर भाग जाय और पश्चात् उनको छल से पकड़े ॥ ५ ॥ इस प्रकार विजय करनेवाले सभापति के राज्य में जो परिपन्थी अर्थात् डाकू लुटेरे हों उनको (साम) मिला लेना (दाम) कुछ देकर (भेद) फोड़ तोड़ करके वश में करे और जो इनसे वश में न हों तो अतिकठिन दण्ड से वश में करे ॥ ६ ॥ जैसे धान्य का निकालने वाला छिलकों को अलग कर धान्य की रक्षा करता अर्थात् टूटने नहीं देता है वैसे राजा डाकू चोरों को मारे और राज्य की रक्षा करे ॥ ७ ॥ जो राजा मोह से, अविचार से अपने राज्य को दुर्बल करता है वह राज्य और अपने बन्धुसहित जीवन से पूर्व ही शीघ्र नष्ट भ्रष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥ जैसे प्राणियों के प्राण शरीरों को कृषित करने से क्षीण होजाते हैं वैसे ही प्रजाओं को दुर्बल करने से राजाओं के प्राण अर्थात् बलादि बन्धुसहित नष्ट हो जाते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये राजा और राजसभा राजकार्य्य की सिद्धि के लिये ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे राजकार्य्य यथावत् सिद्ध हों जो राजा राज्यपालन में सब प्रकार तत्पर रहता है उसको सुख सदा बढ़ता है ॥ १० ॥ इसलिये दो, तीन, पांच और सौ ग्रामों के बीच में एक राज्यस्थान रक्खे जिसमें यथायोग्य भृत्य अर्थात् कामदार आदि राजपुरुषों को रखकर सब राज्य के कार्यों को पूर्ण करे ॥ ११ ॥ एक २ ग्राम में एक २ प्रधान पुरुष को रक्खे उन्हीं दश ग्रामों के ऊपर दूसरा,

उन्हीं बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन्हीं सौ ग्रामों के ऊपर चौथा और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पांचवां पुरुष रक्खे अर्थात् जैसे आजकल एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना और दो थानों पर एक बड़ा थाना और उन पांच थानों पर एक तहसील और दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया है यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्र से राजनीति का प्रकार लिया है ॥ १२ ॥ इसी प्रकार प्रबन्ध करे और आज्ञा देवे कि वह एक २ ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो २ दोष उत्पन्न हों उन २ को गुप्तता से दश ग्राम के पति को विदित करदे और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे ॥ १३ ॥ और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्त्तमान को शतग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे वैसे सौ २ ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी को सौ २ ग्रामों के वर्त्तमान को प्रतिदिन जनाया करें। और बीस २ ग्राम के पांच अधिपति सौ २ ग्राम के अध्यक्ष को और वे सहस्र २ के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और लक्षग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें। और वे सब राजसभा महाराजसभा अर्थात् सार्वभौमचक्रवर्ति महाराजसभा में सब भूगोल का वर्त्तमान जनाया करें ॥ १४ ॥ और एक २ दश २ सहस्र ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें जिनमें एक राजसभा में दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरुषों के कामों को सदा घूमकर देखते रहें ॥ १५ ॥ बड़े २ नगरों में एक २ विचार करनेवाली सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है वैसा एक २ घर बनावें उसमें बड़े २ विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो वे बैठकर विचार किया करें जिन नियमों से राजा और प्रजा की उन्नति हो वैसे २ नियम और विद्या प्रकाशित किया करें ॥ १६ ॥ जो नित्य घूमनेवाला सभापति हो उसके आधीन सब गुप्तचर अर्थात् दूतों को रक्खे जो राजपुरुष और भिन्न २ जाति के रहैं उनसे सब राज और प्रजापुरुषों के सब दोष और गुण गुप्तरीति से जाना करे जिनका अपराध हो उनको दण्ड और जिन का गुण हो उनकी प्रतिष्ठा सदा किया करे ॥ १७ ॥ राजा जिनको प्रजा की रक्षा का अधिकार देवे वे धार्मिक

सुपरीक्षित विद्वान् कुलीन हों उनके आधीन प्रायः शठ और परपदार्थ हरनेवाले चोर डाकुओं को भी नौकर रख के उनको दुष्ट कर्म से बचाने के लिये राजा के नौकर करके उन्हीं रक्षा करनेवाले विद्वानों के स्वाधीन करके उन से इस प्रजा की रक्षा यथावत् करे ॥ १८ ॥ जो राजपुरुष अन्याय से वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय करे उसका सर्वस्वहरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रक्खे कि जहां से पुनः लौटकर न आसके क्योंकि यदि उस को दण्ड न दिया जाय तो उसको देख के अन्य राजपुरुष भी ऐसे दुष्ट काम करें और दण्ड दिया जाय तो बचे रहैं, परन्तु जितने से उन राजपुरुषों का योगक्षेम भलीभांति हो और वे भलीभांति धनाढ्य भी हों उतना धन वा भूमि राज्य की ओर से मासिक वा वार्षिक अथवा एक बार मिला करे और जो वृद्ध हों उनको भी आधा मिला करे परन्तु यह ध्यान में रक्खें कि जबतक वे जियें तबतक वह जीविका बनी रहै पश्चात् नहीं, परन्तु इनके सन्तानों का सत्कार वा नौकरी उनके गुण के अनुसार अवश्य देवे । और जिसके बालक जबतक समर्थ हों और उनकी स्त्री जीती हो तो उन सब के निर्वाहार्थ राज की ओर से यथायोग्य धन मिला करे परन्तु जो उसकी स्त्री वा लड़के कुकर्मी होजायें तो कुछ भी न मिले ऐसी नीति राजा बराबर रक्खे ॥ १९ ॥

यथा फलेन युज्येत राजा कर्त्ता च कर्मणाम् ।
तथावेक्ष्य नृपो राष्ट्रे कल्पयेत्सततं करान् ॥ १ ॥
यथाल्पाऽल्पमदन्त्याऽऽद्यं वार्य्योकोवत्सषट्पदाः ।
तथाऽल्पाऽल्पो ग्रहीतव्यो राष्ट्राद्राज्ञाब्दिकः करः ॥ २ ॥
नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया ।
उच्छिन्दन्ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत् ॥ ३ ॥
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्च स्यात्कार्यं वीक्ष्य महीपतिः ।
तीक्ष्णश्चैव मृदुश्चैव राजा भवति सम्मतः ॥ ४ ॥
एवं सर्वं विधायेदमिति कर्त्तव्यमात्मनः ।
युक्तश्चैवाप्रमत्तश्च परिरक्षेदिमाः प्रजाः ॥ ५ ॥

विक्रोशन्त्यो यस्य राष्ट्राद्ध्रियन्ते दस्युभिः प्रजाः ।
सम्पश्यतः सभृत्यस्य मृतः स न तु जीवति ॥ ६ ॥
क्षत्रियस्य परो धर्मः प्रजानामेव पालनम् ।
निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते ॥ ७ ॥

मनु० [७ ॥ १२८ । १२६ । १३६ । १४० । १४२–१४४]

जैसे राजा और कर्मों का कर्त्ता राजपुरुष वा प्रजाजन सुखरूप फल से युक्त होवे वैसे विचार करके राजा तथा राजसभा राज्य में कर स्थापन करे ॥ १ ॥ जैसे जोंक बछड़ा और भँवरा थोड़े २ भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा २ वार्षिक कर लेवे ॥ २ ॥ अतिलोभ से अपने वा दूसरों के सुख के मूल को उच्छिन्न अर्थात् नष्ट कदापि न करे क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है वह अपने [को] और उनको पीड़ा ही देता है ॥ ३ ॥ जो महीपति कार्य्य को देख के तीक्ष्ण और कोमल भी होवे वह दुष्टों पर तीक्ष्ण और श्रेष्ठों पर कोमल रहने से राजा अतिमाननीय होता है ॥ ४ ॥ इस प्रकार सब राज्य का प्रबन्ध करके सदा इस में युक्त और प्रमादरहित होकर अपनी प्रजा का पालन निरन्तर करे ॥ ५ ॥ जिस भृत्यसहित देखते हुए राजा के राज्य में से डाकू लोग रोती विलाप करती प्रजा के पदार्थ और प्राणों को हरते रहते हैं वह जानो भृत्य अमात्यसहित मृतक है जीता नहीं और महादुःख का पाने वाला है ॥ ६ ॥ इसलिये राजाओं का प्रजापालन करना ही परमधर्म है और जो मनुस्मृति के सप्तमाध्याय में कर लेना लिखा है और जैसा सभा नियत करे उसका भोक्ता राजा धर्म से युक्त होकर सुख पाता है इससे विपरीत दुःख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।
हुताग्निर्ब्राह्मणाँश्चार्च्य प्रविशेत्स शुभां सभाम् ॥ १ ॥
तत्र स्थिताः प्रजाः सर्वाः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत् ।
विसृज्य च प्रजाः सर्वा मन्त्रयेत्सह मन्त्रिभिः ॥ २ ॥

गिरिपृष्ठं समारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ।
अरण्ये निःशलाके वा मन्त्रयेदविभावितः ॥ ३ ॥
यस्य मन्त्रं न जानन्ति समागम्य पृथग्जनाः ।
स कृत्स्नां पृथिवीं भुङ्क्ते कोशहीनोऽपि पार्थिवः ॥ ४ ॥
मनु० [७ । १४५-१४८]

जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच और सावधान होकर परमेश्वर का ध्यान अग्निहोत्र धार्मिक विद्वानों का सत्कार और भोजन करके भीतर सभा में प्रवेश करे ॥ १ ॥ वहां खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों उनको मान्य दे और उनको छोड़कर मुख्य मन्त्री के साथ राज्यव्यवस्था का विचार करे ॥ २ ॥ पश्चात् उसके साथ घूमने को चला जाय पर्वत की शिखर अथवा एकान्त घर वा जङ्गल जिसमें एक शलाका भी न हो वैसे एकान्त स्थान में बैठकर विरुद्ध भावना को छोड़ मंत्री के साथ विचार करे ॥ ३ ॥ जिस राजा के गूढ़ विचार को अन्य जन मिलकर नहीं जान सकते अर्थात् जिसका विचार गम्भीर शुद्ध परोपकारार्थ सदा गुप्त रहे वह धनहीन भी राजा सब पृथिवी के राज्य करने में समर्थ होता है इसलिये अपने मन से एक भी काम न करे कि जबतक सभासदों की अनुमति न हो ॥

आसनं चैव यानं च संधिं विग्रहमेव च ।
कार्यं वीक्ष्य प्रयुञ्जीत द्वैधं संश्रयमेव च ॥ १ ॥
संधिं तु द्विविधं विद्याद्राजा विग्रहमेव च ।
उभे यानासने चैव द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ २ ॥
समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तथा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥ ३ ॥
स्वयंकृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ ४ ॥
एकाकिनश्चात्ययिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ ५ ॥

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा ।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम् ॥ ६ ॥
बलस्य स्वामिनश्चैव स्थितिः कार्यार्थसिद्धये ।
द्विविधं कीर्त्यते द्वैधं षाड्गुण्यगुणवेदिभिः ॥ ७ ॥
अर्थसंपादनार्थं च पीड्यमानः स शत्रुभिः ।
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविधः संश्रयः स्मृतः ॥ ८ ॥
यदावगच्छेदायत्यामाधिक्यं ध्रुवमात्मनः ।
तदात्वे चाल्पिकां पीडां तदा सन्धिं समाश्रयेत् ॥ ९ ॥
यदा प्रहृष्टा मन्येत सर्वास्तु प्रकृतीर्भृशम् ।
अत्युच्छ्रितं तथात्मानं तदा कुर्वीत विग्रहम् ॥ १० ॥
यदा मन्येत भावेन हृष्टं पुष्टं बलं स्वकम् ।
परस्य विपरीतं च तदा यायाद्रिपुं प्रति ॥ ११ ॥
यदा तु स्यात्परिक्षीणो वाहनेन बलेन च ।
तदासीत प्रयत्नेन शनकैः सांत्वयन्नरीन् ॥ १२ ॥
मन्येतारिं यदा राजा सर्वथा बलवत्तरम् ।
तदा द्विधा बलं कृत्वा साधयेत्कार्य्यमात्मनः ॥ १३ ॥
यदा परबलानां तु गमनीयतमो भवेत् ।
तदा तु संश्रयेत् क्षिप्रं धार्मिकं बलिनं नृपम् ॥ १४ ॥
निग्रहं प्रकृतीनां च कुर्याद्योरिबलस्य च ।
उपसेवेत तं नित्यं सर्वयत्नैर्गुरुं यथा ॥ १५ ॥
यदि तत्रापि संपश्येद्दोषं संश्रयकारितम् ।
सुयुद्धमेव तत्राऽपि निर्विशंकः समाचरेत् ॥ १६ ॥

मनु० [७ ॥ १६१–१७६]

सब राजादि राजपुरुषों को यह बात लक्ष्य में रखने योग्य है जो (आसन) स्थिरता (यान) शत्रु से लड़ने के लिये जाना (संधि) उनसे मेल करलेना (विग्रह) दुष्ट शत्रुओं से लड़ाई करना (द्वैध०) दो प्रकार की सेना

करके स्वविनय कर लेना और (संश्रय) निर्बलता में दूसरे प्रबल राजा का आश्रय लेना ये छः प्रकार के कर्म यथायोग्य कार्य्य को विचार कर उसमें युक्त करना चाहिये ॥ १ ॥ राजा जो संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय दो २ प्रकार के होते हैं उनको यथावत् जाने ॥ २ ॥ (संधि) शत्रु से मेल अथवा उससे विपरीतता करे परन्तु वर्त्तमान और भविष्यत् में करने के काम बराबर करता जाय यह दो प्रकार का मेल कहाता है ॥ ३ ॥ (विग्रह) कार्य्यसिद्धि के लिये उचित समय वा अनुचित समय में स्वयं किया वा मित्र के अपराध करने वाले शत्रु के साथ विरोध दो प्रकार से करना चाहिये ॥ ४ ॥ (यान) अकस्मात् कोई कार्य्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिल के शत्रु की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है ॥ ५ ॥ स्वयं किसी प्रकार क्रम से क्षीण होजाय अर्थात् निर्बल होजाय अथवा मित्र के रोकने से अपने स्थान में बैठ रहना यह दो प्रकार का आसन कहाता है ॥ ६ ॥ कार्यसिद्धि के लिये सेनापति और सेना के दो विभाग करके विजय करना दो प्रकार का द्वैध कहाता है ॥ ७ ॥ एक किसी अर्थ की सिद्धि के लिये किसी बलवान् राजा वा किसी महात्मा का शरण लेना जिससे शत्रु से पीड़ित न हो दो प्रकार का आश्रय लेना कहाता है ॥ ८ ॥ जब यह जान ले कि इस समय युद्ध करने से थोड़ी पीड़ा प्राप्त होगी और पश्चात् करने से अपनी वृद्धि और विजय अवश्य होगा तब शत्रु से मेल करके उचित समय तक धीरज करे ॥ ९ ॥ जब अपनी सब प्रजा वा सेना अत्यन्त प्रसन्न उन्नतिशील और श्रेष्ठ जाने, वैसे अपने को भी समझे तभी शत्रु से विग्रह (युद्ध) करलेवे ॥ १० ॥ जब अपने बल अर्थात् सेना को हर्ष और पुष्टियुक्त प्रसन्न भाव से जाने और शत्रु का बल अपने से विपरीत निर्बल होजावे तब शत्र की ओर युद्ध करने के लिये जावे ॥ ११ ॥ जब सेना बल वाहन से क्षीण होजाय तब शत्रुओं को धीरे २ प्रयत्न से शान्त करता हुआ अपने स्थान में बैठा रहै ॥ १२ ॥ जब राजा शत्रु को अत्यन्त बलवान् जाने तब द्विगुण वा दो प्रकार की सेना करके अपना कार्य सिद्ध करे ॥ १३ ॥ जब आप समझ लेवे कि अब शीघ्र शत्रुओं की चढ़ाई मुझ पर होगी तभी किसी धार्मिक बलवान् राजा

का आश्रय शीघ्र ले लेवे ॥ १४ ॥ जो प्रजा और अपनी सेना शत्रु के बल का निग्रह करे अर्थात् रोके उसकी सेवा सब यत्नों से गुरु के सदृश नित्य किया करे ॥ १५ ॥ जिसका आश्रय लेवे उस पुरुष के कर्मों में दोष देखे तो वहां भी अच्छे प्रकार युद्ध ही को निःशंक होकर करे ॥ १६ ॥ जो धार्मिक राजा हो उससे विरोध कभी न करे किन्तु उससे सदा मेल रक्खे और जो दुष्ट प्रबल हो उसी के जीतने के लिये ये पूर्वोक्त प्रयोग करना उचित है ॥

सर्वोपायैस्तथा कुर्यान्नीतिज्ञः पृथिवीपतिः ।
यथास्याभ्यधिका न स्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ॥ १ ॥
आयतिं सर्वकार्याणां तदात्वं च विचारयेत् ।
अतीतानां च सर्वेषां गुणदोषौ च तत्त्वतः ॥ २ ॥
आयत्यां गुणदोषज्ञस्तदात्वे क्षिप्रनिश्चयः ।
अतीते कार्य्यशेषज्ञः शत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ३ ॥
यथैनं नाभिसंदध्युर्मित्रोदासीनशत्रवः ।
तथा सर्वं संविदध्यादेष सामासिको नयः ॥ ४ ॥

मनु० [७ ॥ १७७-१८०]

नीति का जाननेवाला पृथिवीपति राजा जिस प्रकार इसके मित्र उदासीन (मध्यस्थ) और शत्रु अधिक न हों ऐसे सब उपायों से वर्त्ते ॥ १ ॥ सब कार्यों का वर्त्तमान में कर्त्तव्य और भविष्यत् में जो २ करना चाहिये और जो २ काम कर चुके उन सब के यथार्थता से गुण दोषों को विचार करे ॥ २ ॥ पश्चात् दोषों के निवारण और गुणों की स्थिरता में यत्न करे जो राजा भविष्यत् अर्थात् आगे करनेवाले कर्मों में गुण दोषों का ज्ञाता वर्त्तमान में तुरन्त निश्चय का कर्त्ता और किये हुए कार्यों में शेष कर्त्तव्य को जानता है वह शत्रुओं से पराजित कभी नहीं होता ॥ ३ ॥ सब प्रकार से राजपुरुष विशेष सभापति राजा ऐसा प्रयत्न करे कि जिस प्रकार राजादि जनों के मित्र उदासीन और शत्रु को वश में करके अन्यथा न करावे ऐसे मोह में कभी न फँसे यही संक्षेप से विनय अर्थात् राजनीति कहाती है ॥ ४ ॥

कृत्वा विधानं मूले तु यात्रिकं च यथाविधि ।
उपगृह्यास्पदं चैव चारान् सम्यग्विधाय च ॥ १ ॥
संशोध्य त्रिविधं मार्गं षड्विधं च बलं स्वकम् ।
सांपरायिककल्पेन यायादरिपुरं शनैः ॥ २ ॥
शत्रुसेविनि मित्रे च गूढे युक्ततरो भवेत् ।
गतप्रत्यागते चैव स हि कष्टतरो रिपुः ॥ ३ ॥
दण्डव्यूहेन तन्मार्गं यायात्तु शकटेन वा ।
वराहमकराभ्यां वा सूच्या वा गरुडेन वा ॥ ४ ॥
यतश्च भयमाशंकेत्ततो विस्तारयेद् बलम् ।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयम् ॥ ५ ॥
सेनापतिबलाध्यक्षौ सर्वदिक्षु निवेशयेत् ।
यतश्च भयमाशङ्केत् प्राचीं तां कल्पयेद्दिशम् ॥ ६ ॥
गुल्मांश्च स्थापयेदाप्तान् कृतसंज्ञान् समन्ततः ।
स्थाने युद्धे च कुशलानभीरूनविकारिणः ॥ ७ ॥
संहतान् योधयेदल्पान् कामं विस्तारयेद् बहून् ।
सूच्या वज्रेण चैवैतान् व्यूहेन व्यूह्य योधयेत् ॥ ८ ॥
स्यन्दनाश्वैः समे युध्येदनूपे नौद्विपैस्तथा ।
वृक्षगुल्मावृते चापैरसिचर्मायुधैः स्थले ॥ ९ ॥
प्रहर्षयेद् बलं व्यूह्य तांश्च सम्यक् परीक्षयेत् ।
चेष्टाश्चैव विजानीयादरीन् योधयतामपि ॥ १० ॥
उपरुध्यारिमासीत राष्ट्रं चास्योपपीडयेत् ।
दूषयेच्चास्य सततं यवसान्नोदकेन्धनम् ॥ ११ ॥
भिन्द्याच्चैव तडागानि प्राकारपरिखास्तथा ।
समवस्कन्दयेच्चैनं रात्रौ वित्रासयेत्तथा ॥ १२ ॥
प्रमाणानि च कुर्वीत तेषां धर्म्यान्यथोदितान् ।
रत्नैश्च पूजयेदेनं प्रधानपुरुषैः सह ॥ १३ ॥

आदानमप्रियकरं दानञ्च प्रियकारकम् ।
अभीप्सितानामर्थानां काले युक्तं प्रशस्यते ॥ १४ ॥
मनु० [७ ॥ १८४-१९२ । १९४-१९६ । २०३ । २०४]

जब राजा शत्रुओं के साथ युद्ध करने को जावे तब अपने राज्य की रक्षा का प्रबन्ध और यात्रा की सब सामग्री यथाविधि करके सब सेना, यान, वाहन, शस्त्रास्त्रादि पूर्ण लकर सर्वत्र दूतों अर्थात् चारों ओर के समाचारों को देनेवाले पुरुषों को गुप्त स्थापन करके शत्रुओं की ओर युद्ध करने को जावे ॥ १ ॥ तीन प्रकार के मार्ग अर्थात् एक स्थल (भूमि) में दूसरा जल (समुद्र वा नदियों) में तीसरा आकाशमार्गों को शुद्ध बनाकर भूमिमार्ग में रथ, अश्व, हाथी, जल में नौका और आकाश में विमानादि यानों से जावे और पैदल, रथ, हाथी, घोड़े, शस्त्र और अस्त्र खानपानादि सामग्री को यथावत् साथ ले बलयुक्त पूर्ण करके किसी निमित्त को प्रसिद्ध करके शत्रु के नगर के समीप धीरे २ जावे ॥ २ ॥ जो भीतर से शत्रु से मिला हो और अपने साथ भी ऊपर से मित्रता रक्खे गुप्तता से शत्रु को भेद देवे उसके आने जाने में उससे बात करने में अत्यन्त सावधानी रक्खे क्योंकि भीतर शत्रु ऊपर मित्र पुरुष को बड़ा शत्रु समझना चाहिये ॥ ३ ॥ सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनों को सिखावे जो पूर्व शिक्षित योद्धा होते हैं वे ही अच्छे प्रकार लड़ लड़ा जानते हैं जब शिक्षा करे तब (दण्डव्यूह) दण्ड के समान सेना को चलावे (शकट०) जैसा शकट अर्थात् गाड़ी के समान (वराह०) जैसे सुअर एक दूसरे के पीछे दौड़ते जाते हैं और कभी २ सब मिलकर झुंड होजाते हैं वैसे (मकर०) जैसे मगर पानी में चलते हैं वैसे सेना को बनावे (सूचीव्यूह) जैसे सूई का अग्रभाग सूक्ष्म पश्चात् स्थूल और उससे सूत्र स्थूल होता है वैसी शिक्षा से सेना को बनावे, जैसे (नीलकण्ठ) ऊपर नीचे झपट मारता है इस प्रकार सेना को बनाकर लड़ावे ॥ ४ ॥ जिधर भय विदित हो उसी ओर सेना को फैलावे, सब सेना के पतियों को चारों ओर रख के (पद्मव्यूह) अर्थात् पद्माकार चारों ओर से सेनाओं को रखके मध्य

में आप रहै ॥ ५ ॥ सेनापति और बलाध्यक्ष अर्थात् आज्ञा का देने और सेना के साथ लड़ने लड़ानेवाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे, जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर सब सेना का मुख रक्खे परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रक्खे नहीं तो पीछे वा पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव होता है ॥ ६ ॥ जो गुल्म अर्थात् दृढ़ स्तम्भों के तुल्य युद्ध-विद्या से सुशिक्षित धार्मिक स्थित होने और युद्ध करने में चतुर भयरहित और जिनके मन में किसी प्रकार का विकार न हो उनको चारों ओर सेना के रक्खे ॥ ७ ॥ जो थोड़े से पुरुषों से बहुतों के साथ युद्ध करना हो तो मिलकर लड़ावे और काम पड़े तो उन्हीं को झट फैला देवे जब नगर दुर्ग वा शत्रु की सेना में प्रविष्ट होकर युद्ध करना हो तब (सूचीव्यूह) अथवा (वज्रव्यूह) जैसे दुधारा खड्ग दोनों ओर काट [करता वैसे] युद्ध करते जायँ और प्रविष्ट भी होते चलें वैसे अनेक प्रकार के व्यूह अर्थात् सेना को बनाकर लड़ावें जो सामने शतघ्नी (तोप) वा भुशुंडी (बन्दूक) छूट रही हो तो (सर्पव्यूह) अर्थात् सर्प के समान सोते २ चले जायें जब तोपों के पास पहुंचें तब उनको मार वा पकड़ तोपों का मुख शत्रु की ओर फेर उन्हीं तोपों से वा बन्दूक आदि से उन शत्रुओं को मारें अथवा वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा दौड़ावें और मारें बीच में अच्छे २ सवार रहें एक वार धावा कर शत्रु की सेना को छिन्न भिन्न कर पकड़ लें अथवा भगा दें ॥ ८ ॥ जो समभूमि में युद्ध करना हो तो रथ घोड़े और पदातियों से और जो समुद्र में युद्ध करना हो तो नौका और थोड़े जल में हाथियों पर, वृक्ष और झाड़ी में बाण तथा स्थल बालू में तलवार और ढाल से युद्ध करें करावें ॥ ९ ॥ जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़नेवालों को उत्साहित और हर्षित करें जब युद्ध बन्द होजाय तब जिससे शौर्य और युद्ध में उत्साह हो वैसे वक्तृत्वों से सब के चित्त को खान पान अन्न शस्त्र सहाय और औषधादि से प्रसन्न रक्खें व्यूह के विना लड़ाई न करे न करावे, लड़ती हुई अपनी सेना की चेष्टा को देखा करे कि ठीक २ लड़ती है वा कपट रखती है ॥ १० ॥ किसी समय उचित समझे तो शत्रु को चारों ओर से घेर कर रोक रक्खे और इसके राज्य

को पीड़ित कर शत्रु के चारा, अन्न, जल और इन्धन को नष्ट दूषित करदे ॥ ११ ॥ शत्रु तालाब नगर के प्रकोट और खाई को तोड़ फोड़ दे, रात्रि में उनको (त्रास) भय देवे और जीतने का उपाय करे ॥ १२ ॥ जीत कर उनके साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवे और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उससे लिखा लेवे कि तुमको हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राजनीति है उसके अनुसार चल के न्याय से प्रजा का पालन करना होगा ऐसे उपदेश करे और ऐसे पुरुष उनके पास रक्खे कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हारजाय उसका सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करे और ऐसा न करे कि जिससे उसका योगक्षेम भी न हो जो उसको बन्दीगृह करे तो भी उसका सत्कार यथायोग्य रक्खे जिससे वह हारने के शोक से रहित होकर आनन्द में रहे ॥ १३ ॥ क्योंकि संसार में दूसरे का पदार्थ ग्रहण करना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है और विशेष करके समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित के मनोवाञ्छित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है और कभी उसको चिड़ावे नहीं न हँसी और [न] ठट्ठा करे, न उसके सामने हमने तुझ को पराजित किया है ऐसा भी कहे, किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान्य प्रतिष्ठा सदा करे ॥ १४ ॥

हिरण्यभूमिसंप्राप्त्या पार्थिवो न तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्यायतिक्षमम् ॥ १ ॥
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लघुमित्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥
प्राज्ञं कुलीनं शूरं च दक्षं दातारमेव च ।
कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः ॥ ३ ॥
आर्य्यता पुरुषज्ञानं शौर्य्यं करुणवेदिता ।
स्थौललक्ष्यं च सततमुदासीनगुणोदयः ॥ ४ ॥

मनु० [७ ॥ २०८–२११]

मित्र का लक्षण यह है कि राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता कि जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्ध करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है ॥ १ ॥ धर्म को जानने और कृतज्ञ अर्थात् किये हुए उपकार को सदा माननेवाले प्रसन्न स्वभाव अनुरागी स्थिरारम्भी लघु छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है ॥ २ ॥ सदा इस बात को दृढ़ रक्खे कि कभी बुद्धिमान्, कुलीन, शूर, वीर, चतुर, दाता, किये हुए को जाननेहारे और धैर्यवान् पुरुष को शत्रु न बनावे क्योंकि जो ऐसे को शत्रु बनावेगा वह दुःख पावेगा ॥ ३ ॥ उदासीन का लक्षण—जिसमें प्रशंसित गुण युक्त अच्छे बुरे मनुष्यों का ज्ञान, शूरवीरता और करुणा भी स्थूललक्ष्य अर्थात् ऊपर २ की बातों को निरन्तर सुनाया करे वह उदासीन कहाता है ॥ ४ ॥

एवं सर्वमिदं राजा सह संमन्त्र्य मन्त्रिभिः ।
व्यायाम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमन्तःपुरं विशेत् ॥

मनु० [७ । २१६]

पूर्वोक्त प्रातःकाल समय उठ शौचादि सन्ध्योपासन अग्निहोत्र कर वा करा सब मन्त्रियों से विचार कर सभा में जा सब भृत्य और सेनाध्यक्षों के साथ मिल, उनको हर्षित कर, नाना प्रकार की व्यूहशिक्षा अर्थात् क़वायद कर करा, सब घोड़े, हाथी, गाय आदि [का] स्थान शस्त्र और अस्त्र का कोश तथा वैद्यालय, धन के कोशों को देख सब पर दृष्टि नित्यप्रति देकर जो कुछ उनमें खोट हों उनको निकाल व्यायामशाला में जा व्यायाम करके [मध्याह्न समय] भोजन के लिये "अन्तःपुर" अर्थात् पत्नी आदि के निवासस्थान में प्रवेश करे और भोजन सुपरीक्षित, बुद्धिबलपराक्रमवर्द्धक, रोगविनाशक, अनेक प्रकार के अन्न व्यञ्जन पान आदि सुगन्धित मिष्टादि अनेक रसयुक्त उत्तम करे कि जिससे सदा सुखी रहे, इस प्रकार सब राज्य के कार्यों की उन्नति किया करे ॥ प्रजा से कर लेने का प्रकारः—

पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः ।
धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा ॥
मनु० [७ । १३०]

जो व्यापार करनेवाले वा शिल्पी को सुवर्ण और चांदी का जितना लाभ हो उसमें से पचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां वा बारहवां भाग लिया करे और जो धन लेवे तो भी उस प्रकार से लेवे कि जिससे किसान आदि खाने पीने और धन से रहित होकर दुःख न पावें ॥ १ ॥ क्योंकि प्रजा के धनाढ्य आरोग्य खान पान आदि से सम्पन्न रहने पर राजा की बड़ी उन्नति होती है प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा अपने पिता सदृश राजा और राजपुरुषों को जाने यह बात ठीक है कि राजाओं के राजा किसान आदि परिश्रम करनेवाले हैं और राजा उनका रक्षक है जो प्रजा न हो तो राजा किसका ? और राजा न हो तो प्रजा किसकी कहावे ? दोनों अपने अपने काम में स्वतन्त्र और मिले हुए प्रीतियुक्त काम में परतन्त्र रहें। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा वा राजपुरुष न हों राजा की आज्ञा के विरुद्ध राजपुरुष वा प्रजा न चले, यह राजा का राजकीय निज काम अर्थात् जिसको "पोलिटिकल" कहते हैं संक्षेप से कह दिया अब जो विशेष देखना चाहे वह चारों वेद मनुस्मृति शुक्रनीति महाभारतादि में देखकर निश्चय करे और जो प्रजा का न्याय करना है वह व्यवहार मनुस्मृति के अष्टम और नवमाध्याय आदि की रीति से करना चाहिये, परन्तु यहां भी संक्षेप से लिखते हैं:—

प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ।
अष्टादशसु मार्गेषु निबद्धानि पृथक् पृथक् ॥ १ ॥
तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः ।
संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च ॥ २ ॥
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः ।
क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः ॥ ३ ॥

सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके ।
स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसङ्ग्रहणमेव च ॥ ४ ॥
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च ।
पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारस्थिताविह ॥ ५ ॥
एषु स्थानेषु भूयिष्ठं विवादं चरतां नृणाम् ।
धर्मं शाश्वतमाश्रित्य कुर्यात्कार्यविनिर्णयम् ॥ ६ ॥
धर्मो विद्धस्त्वधर्मेण सभां यत्रोपतिष्ठते ।
शल्यं चास्य न कृन्तन्ति विद्धास्तत्र सभासदः ॥ ७ ॥
सभां वा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वासमंजसम् ।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्विषी ॥ ८ ॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः ॥ ९ ॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥ १० ॥
वृषो हि भगवान् धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् ।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत् ॥ ११ ॥
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १२ ॥
पादो धर्मस्य कर्त्तारं पादः साक्षिणमृच्छति ।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति ॥ १३ ॥
राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः ।
एनो गच्छति कर्त्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते ॥ १४ ॥

मनु० [८ । ३-८ । १२-१९]

सभा राजा और राजपुरुष सब लोग देशाचार और शास्त्रव्यवहार हेतुओं से निम्नलिखित अठारह विवादास्पद मार्गों में विवादयुक्त कर्मों का निर्णय प्रतिदिन किया करें और जो २ नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की

आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधें कि जिससे राजा और प्रजा की उन्नति हो ॥ १ ॥ अठारह मार्ग ये हैं–उनमें से १–(ऋणादान) किसी से ऋण लेने देने का विवाद । २–(निक्षेप) धरावट अर्थात् किसी ने किसी के पास पदार्थ धरा हो और मांगे पर न देना । ३–(अस्वामिविक्रय) दूसरे के पदार्थ को दूसरा बेंच लेवे । ४–(संभूय च समुत्थानम्) मिल मिला के किसी पर अत्याचार करना । ५–(दत्तस्यानपकर्म च) दिये हुए पदार्थ का न देना ॥ २ ॥ ६–(वेतनस्यैव चादानम्) वेतन अर्थात् किसी की "नौकरी" में से लेलेना वा कम देना अथवा न देना । ७–(प्रतिज्ञा) प्रतिज्ञा से विरुद्ध वर्त्तना । ८–(क्रयविक्रयानुशय) अर्थात् लेन देन में झगड़ा होना । ९–पशु के स्वामी और पालनेवाले का झगड़ा ॥ ३ ॥ १०–सीमा का विवाद । ११–किसी को कठोर दण्ड देना । १२–कठोर वाणी का बोलना । १३–चोरी डांका मारना । १४–किसी काम को बलात्कार से करना । १५–किसी की स्त्री वा पुरुष का व्यभिचार होना ॥ ४ ॥ १६–स्त्री और पुरुष के धर्म में व्यतिक्रम होना । १७–विभाग अर्थात् दायभाग में वाद उठना । १८–द्यूत अर्थात् जड़पदार्थ और समाह्वय अर्थात् चेतन को दाव में धर के जुआ खेलना । ये अठारह प्रकार के परस्पर विरुद्ध व्यवहार के स्थान हैं ॥ ५ ॥ इन व्यवहारों में बहुत से विवाद करनेवाले पुरुषों के न्याय को सनातनधर्म के आश्रय करके किया करे अर्थात् किसी का पक्षपात कभी न करे ॥ ६ ॥ जिस सभा में अधर्म से घायल होकर धर्म उपस्थित होता है जो उसका शल्य अर्थात् तीरवत् धर्म के कलङ्क को निकालना और अधर्म का छेदन नहीं करते अर्थात् धर्मी को मान अधर्मी को दण्ड नहीं मिलता उस सभा में जितने सभासद् हैं वे सब घायल के समान समझे जाते हैं ॥ ७ ॥ धार्मिक मनुष्य को योग्य है कि सभा में कभी प्रवेश न करे और जो प्रवेश किया हो तो सत्य ही बोले जो कोई सभा में अन्याय होते हुए को देखकर मौन रहे अथवा सत्य न्याय के विरुद्ध बोले वह महापापी होता है ॥ ८ ॥ जिस सभा में अधर्म से धर्म, असत्य से सत्य, सब सभासदों के देखते हुए मारा जाता है उस सभा में सब मृतक के समान हैं जानो उनमें कोई भी नहीं जीता ॥ ९ ॥ मरा हुआ धर्म मारनेवाले का नाश

और रक्षित किया हुआ धर्म रक्षक की रक्षा करता है इसलिये धर्म का हनन कभी न करना इस डर से कि मारा हुआ धर्म कभी हमको न मारडाले ॥१०॥ जो सब ऐश्वर्यों के देने और सुखों की वर्षा करनेवाला धर्म है उसका लोप करता है उसी को विद्वान् लोग वृषल अर्थात् शूद्र और नीच जानते हैं इसलिये किसी मनुष्य को धर्म का लोप करना उचित नहीं ॥ ११ ॥ इस संसार में एक धर्म ही सुहृद् है जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ चलता है और सब पदार्थ वा संगी शरीर के नाश के साथ ही नाश को प्राप्त होते हैं अर्थात् सब का सङ्ग छूट जाता है ॥ १२ ॥ परन्तु धर्म का सङ्ग कभी नहीं छूटता जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है वहां अधर्म के चार विभाग होजाते हैं उनमें से एक अधर्म के कर्त्ता, दूसरा साक्षी, तीसरा सभासदों और चौथा पाद अधर्मी सभा के सभापति राजा को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जिस सभा में निन्दा के योग्य की निन्दा, स्तुति के योग्य की स्तुति, दण्ड के योग्य को दण्ड और मान्य के योग्य का मान्य होता है वहां राजा और सब सभासद् पाप से रहित और पवित्र होजाते हैं पाप के कर्त्ता ही को पाप प्राप्त होता है ॥ १४ ॥ अब साक्षी कैसे करने चाहियें:—

आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्य्याः कार्येषु साक्षिणः ।
सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत् ॥ १ ॥
स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजाः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥ २ ॥
साहसेषु च सर्वेषु स्तेयसङ्ग्रहणेषु च ।
वाग्दण्डयोश्च पारुष्ये न परीक्षेत साक्षिणः ॥ ३ ॥
बहुत्वं परिगृह्णीयात्साक्षिद्वैधे नराधिपः ।
समेषु तु गुणोत्कृष्टान् गुणिद्वैधे द्विजोत्तमान् ॥ ४ ॥
समक्षदर्शनात्साक्ष्यं श्रवणाच्चैव सिध्यति ।
तत्र सत्यं ब्रुवन्साक्षी धर्मार्थाभ्यां न हीयते ॥ ५ ॥
साक्षी दृष्टश्रुतादन्यद्विब्रुवन्नार्य्यसंसदि ।

अवाङ्नरकमभ्येति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते ॥ ६ ॥
स्वभावेनैव यद् ब्रूयुस्तद् ग्राह्यं व्यावहारिकम् ।
अतो यदन्यद्विब्रूयुर्धर्मार्थं तदपार्थकम् ॥ ७ ॥
सभान्तः साक्षिणः प्राप्तानर्थिप्रत्यर्थिसन्निधौ ।
प्राड्विवाकोऽनुयुञ्जीत विधिनाऽनेन सान्त्वयन् ॥ ८ ॥
यद् द्वयोरनयोर्वेत्थ कार्येऽस्मिन् चेष्टितं मिथः ।
तद् ब्रूत सर्वं सत्येन युष्माकं ह्यत्र साक्षिता ॥ ९ ॥
सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान् ।
इह चानुत्तमां कीर्त्तिं वागेषा ब्रह्मपूजिता ॥ १० ॥
सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्द्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥ ११ ॥
आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥ १२ ॥
यस्य विद्वान् हि वदतः क्षेत्रज्ञो नाभिशङ्कते ।
तस्मान्न देवाः श्रेयांसं लोकेऽन्यं पुरुषं विदुः ॥ १३ ॥
एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥ १४ ॥

मनु० [८ ॥ ६३ । ६८ । ७२-७५ । ७८-८१ । ८३ । ८४ । ९६ । ९१]

सब वर्णों में धार्मिक, विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार धर्म को जाननेवाले, लोभरहित सत्यवादी को न्यायव्यवस्था में साक्षी करे इससे विपरीतों को कभी न करे ॥ १ ॥ स्त्रियों की साक्षी स्त्री, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और अन्त्यजों के अन्त्यज साक्षी हों ॥ २ ॥ जितने बलात्कार काम चोरी, व्यभिचार, कठोर वचन, दण्डनिपात रूप अपराध हैं उनमें साक्षी की परीक्षा न करे और अत्यावश्यक भी समझे क्योंकि ये काम सब गुप्त होते हैं ॥ ३ ॥ दोनों ओर के साक्षियों में से बहुपक्षानुसार, तुल्य साक्षियों में उत्तम गुणी पुरुष की साक्षी के अनुकूल और दोनों के साक्षी उत्तम गुणी और तुल्य हों तो द्विजोत्तम

अर्थात् ऋषि महर्षि और यतियों की साक्षी के अनुसार न्याय करे ॥ ४ ॥ दो प्रकार के साक्षी होना सिद्ध होता है एक साक्षात् देखने और दूसरा सुनने से, जब सभा में पूछे तब जो साक्षी सत्य बोलें वे धर्महीन और दण्ड के योग्य न होवें और जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों ॥ ५ ॥ जो राजसभा वा किसी उत्तम पुरुषों की सभा में साक्षी देखने और सुनने से विरुद्ध बोले तो वह (अवाङ्नरक) अर्थात् जिह्वा के छेदन से दुःखरूप नरक को वर्त्तमान समय में प्राप्त होवे और मरे पश्चात् सुख से हीन होजाय ॥ ६ ॥ साक्षी के उस वचन को मानना कि जो स्वभाव ही से व्यवहार सम्बन्धी बोले और इससे भिन्न सिखाये हुए जो २ वचन बोले उस २ को न्यायाधीश व्यर्थ समझे ॥ ७ ॥ जब अर्थी (वादी) और प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के सामने सभा के समीप प्राप्त हुए साक्षियों को शान्तिपूर्वक न्यायाधीश और प्राड्विवाक अर्थात् वकील वा बारिस्टर इस प्रकार से पूछें ॥ ८ ॥ हे साक्षी लोगो ! इस कार्य्य में इन दोनों के परस्पर कर्मों में जो तुम जानते हो उसको सत्य के साथ बोलो क्योंकि तुम्हारी इस कार्य्य में साक्षी है ॥ ९ ॥ जो साक्षी सत्य बोलता है वह जन्मान्तर में उत्तम जन्म और उत्तम लोकान्तरों में जन्म को प्राप्त होके सुख भोगता है इस जन्म वा पर जन्म में उत्तम कीर्त्ति को प्राप्त होता है क्योंकि जो यह वाणी है वही वेदों में सत्कार और तिरस्कार का कारण लिखी है। जो सत्य बोलता है वह प्रतिष्ठित और मिथ्यावादी निन्दित होता है ॥ १० ॥ सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता और सत्य ही बोलने से धर्म बढ़ता है इससे सब वर्णों में साक्षियों को सत्य ही बोलना योग्य है ॥ ११ ॥ आत्मा का साक्षी आत्मा और आत्मा की गति आत्मा है इसको जान के हे पुरुष ! तू सब मनुष्यों का उत्तम साक्षी अपने आत्मा का अपमान मत कर अर्थात् सत्यभाषण जो कि तेरे आत्मा मन वाणी में है वह सत्य और जो इससे विपरीत है वह मिथ्याभाषण है ॥ १२ ॥ जिस बोलते हुए पुरुष का विद्वान् क्षेत्रज्ञ अर्थात् शरीर का जानने हारा आत्मा भीतर शङ्का को प्राप्त नहीं होता उससे भिन्न विद्वान् लोग किसी को उत्तम पुरुष नहीं जानते ॥ १३ ॥ हे कल्याण की इच्छा करनेहारे पुरुष ! जो तू "मैं अकेला हूं" ऐसा अपने आत्मा में जानकर

मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है किन्तु जो दूसरा तेरे हृदय में अन्तर्यामीरूप से परमेश्वर पुण्य पाप का देखनेवाला मुनि स्थित है उस परमात्मा से डरकर सदा सत्य बोला कर ॥ १४ ॥

लोभान्मोहाद्भयान्मैत्रात्कामात् क्रोधात्तथैव च ।
अज्ञानाद्बालभावाच्च साक्ष्यं वितथमुच्यते ॥ १ ॥
एषामन्यतमे स्थाने यः साक्ष्यमनृतं वदेत् ।
तस्य दण्डविशेषांस्तु प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः ॥ २ ॥
लोभात्सहस्रदण्ड्यस्तु मोहात्पूर्वन्तु साहसम् ।
भयाद्द्वौ मध्यमौ दण्ड्यौ मैत्रात्पूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
कामाद्दशगुणं पूर्वं क्रोधात्तु त्रिगुणं परम् ।
अज्ञानाद्द्वे शते पूर्णे बालिश्याच्छतमेव तु ॥ ४ ॥
उपस्थमुदरं जिह्वा हस्तौ पादौ च पञ्चमम् ।
चक्षुर्नासा च कर्णौ च धनं देहस्तथैव च ॥ ५ ॥
अनुबन्धं परिज्ञाय देशकालौ च तत्त्वतः ।
साराऽपराधौ चालोक्य दण्डं दण्ड्येषु पातयेत् ॥ ६ ॥
अधर्मदण्डनं लोके यशोघ्नं कीर्त्तिनाशनम् ।
अस्वर्ग्यञ्च परत्रापि तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ ७ ॥
अदण्ड्यान्दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन् ।
अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति ॥ ८ ॥
वाग्दण्डं प्रथमं कुर्याद्धिग्दण्डं तदनन्तरम् ।
तृतीयं धनदण्डं तु बधदण्डमतः परम् ॥ ९ ॥

मनु० [८। ११८-१२१। १२५-१२९]

जो लोभ, मोह, भय, मित्रता, काम, क्रोध, अज्ञान और बालकपन से साक्षी देवे वह सब मिथ्या समझी जावे ॥ १ ॥ इन में से किसी स्थान में साक्षी झूठ बोले उसको वक्ष्यमाण अनेकविध दण्ड दिया करे ॥ २ ॥ जो लोभ से झूठी साक्षी देवे तो उससे १५॥=) (पन्द्रह रुपये दश आने) दण्ड

लेवे, जो मोह से झूठी साक्षी देवे उससे ३≈) (तीन रुपये दो आने) दण्ड लेवे, जो भय से मिथ्या साक्षी देवे उससे ६।) (सवा छः रुपये) दण्ड लेवे और जो पुरुष मित्रता से झूठी साक्षी देवे उससे १२॥) (साढ़े बारह रुपये) दण्ड लेवे ॥ ३ ॥ जो पुरुष कामना से मिथ्या साक्षी देवे उससे २५) (पच्चीस रुपये) दण्ड लेवे, जो पुरुष क्रोध से झूठी साक्षी देवे उससे ४६॥≈) (छयालीस रुपये चौदह आने) दण्ड लेवे, जो पुरुष अज्ञानता से झूठी साक्षी देवे उससे ६) (छः रुपये) दण्ड लेवे और जो बालकपन से मिथ्या साक्षी देवे तो उससे १॥-) (एक रुपया नौ आने) दण्ड लेवे ॥ ४ ॥ दण्ड के उपस्थेन्द्रिय, उदर, जिह्वा, हाथ, पग, आंख, नाक, कान, धन और देह ये दश स्थान हैं कि जिन पर दण्ड दिया जाता है ॥ ५ ॥ परन्तु जो २ दण्ड लिखा है और लिखेंगे जैसे लोभ से साक्षी देने में पन्द्रह रुपये दश आने दण्ड लिखा है परन्तु जो अत्यन्त निर्धन हो तो उससे कम और धनाढ्य हो तो उससे दूना तिगुना और चौगुना तक भी ले लेवे अर्थात् जैसा देश, जैसा काल और पुरुष हो उसका जैसा अपराध हो वैसा ही दण्ड करे ॥ ६ ॥ क्योंकि इस संसार में जो अधर्म से दण्ड करना है वह पूर्व प्रतिष्ठा वर्त्तमान और भविष्यत् में और परजन्म में होने वाली कीर्ति का नाश करनेहारा है और परजन्म में भी दुःखदायक होता है इसलिये अधर्मयुक्त दण्ड किसी पर न करे ॥ ७ ॥ जो राजा दण्डनीयों को न दण्ड और अदण्डनीयों को दण्ड देता है अर्थात् दण्ड देने योग्य को छोड़ देता और जिसको दण्ड देना न चाहिये उसको दण्ड देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है इसलिये जो अपराध करे उसको सदा दण्ड देवे और अनपराधी को दण्ड कभी न देवे ॥ ८ ॥ प्रथम वाणी का दण्ड अर्थात् उसकी "निन्दा" दूसरा "धिक्" दण्ड अर्थात् तुझको धिक्कार है तू ने ऐसा बुरा काम क्यों किया, तीसरा उससे "धन लेना" और चौथा "बध" दण्ड अर्थात् उसको कोड़ा वा बेंत से मारना वा शिर काट देना ॥ ९ ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ १ ॥

पिताचार्य्यः सुहृन्माता भार्य्या पुत्रः पुरोहितः ।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥ २ ॥
कार्षापणं भवेद्दण्ड्यो यत्रान्यः प्राकृतो जनः ।
तत्र राजा भवेद्दण्ड्यः सहस्रमिति धारणा ॥ ३ ॥
अष्टापाद्यन्तु शूद्रस्य स्तेये भवति किल्विषम् ।
षोडशैव तु वैश्यस्य द्वात्रिंशत् क्षत्रियस्य च ॥ ४ ॥
ब्राह्मणस्य चतुःषष्टिः पूर्णं वापि शतं भवेत् ।
द्विगुणा वा चतुःषष्टिस्तद्दोषगुणविद्धि सः ॥ ५ ॥
ऐन्द्रं स्थानमभिप्रेप्सुर्यशश्चाक्षयमव्ययम् ।
नोपेक्षेत क्षणमपि राजा साहसिकं नरम् ॥ ६ ॥
वाग्दुष्टात्तस्कराच्चैव दण्डेनैव च हिंसतः ।
साहसस्य नरः कर्त्ता विज्ञेयः पापकृत्तमः ॥ ७ ॥
साहसे वर्त्तमानन्तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ८ ॥
न मित्रकारणाद्राजा विपुलाद्वा धनागमात् ।
समुत्सृजेत् साहसिकान्सर्वभूतभयावहान् ॥ ९ ॥
गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ १० ॥
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ॥ ११ ॥
यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥ १२ ॥

मनु० [८ । ३३४-३३८ । ३४४-३४७ । ३५० । ३५१ । ३८६]

चोर जिस प्रकार जिस २ अङ्ग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है उस उस अङ्ग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिये राजा हरण अर्थात् छेदन करदे ॥ १ ॥ चाहे पिता, आचार्य्य, मित्र, स्त्री, पुत्र और पुरोहित क्यों न हो जो

स्वधर्म में स्थित नहीं रहता वह राजा का अदण्ड्य नहीं होता अर्थात् जब राजा न्यायासन पर बैठ न्याय करे तब किसी का पक्षपात न करे किन्तु यथोचित दण्ड देवे ॥ २ ॥ जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड होवे अर्थात् साधारण मनुष्य से राजा को सहस्र गुणा दण्ड होना चाहिये मन्त्री अर्थात् राजा के दीवान को आठसौ गुणा उससे न्यून को सातसौ गुणा और उससे भी न्यून को छःसौ गुणा इसी प्रकार उत्तम २ अर्थात् जो एक छोटे से छोटा भृत्य अर्थात् चपरासी है उसको आठगुणे दण्ड से कम न होना चाहिये क्योंकि यदि प्रजापुरुषों से राजपुरुषों को अधिक दण्ड न होवे तो राजपुरुष प्रजापुरुषों का नाश कर देवें जैसे सिंह अधिक और बकरी थोड़े दण्ड से ही वश में आजाती है इसलिये राजा से लेकर छोटे से छोटे भृत्य पर्य्यन्त राजपुरुषों को अपराध में प्रजापुरुषों से अधिक दण्ड होना चाहिये ॥ ३ ॥ और वैसे ही जो कुछ विवेकी होकर चोरी करे उस शूद्र को चोरी से आठ गुणा, वैश्य को सोलह गुणा, क्षत्रिय को बीस गुणा ॥ ४ ॥ ब्राह्मण को चौंसठ गुणा वा सौ गुणा अथवा एकसौ अट्ठाईस गुणा दंड होना चाहिये अर्थात् जिसका जितना ज्ञान और जितनी प्रतिष्ठा अधिक हो उसको अपराध में उतना ही अधिक दण्ड होना चाहिये ॥ ५ ॥ राज्य के अधिकारी धर्म्म और ऐश्वर्य की इच्छा करनेवाला राजा बलात्कार काम करने-वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे ॥ ६ ॥ साहसिक पुरुष का लक्षण—

जो दुष्ट वचन बोलने, चोरी करने, विना अपराध से दण्ड देनेवाले से भी साहस बलात्कार काम करनेवाला है वह अतीव पापी दुष्ट है ॥ ७ ॥ जो राजा साहस में वर्त्तमान पुरुष को न दण्ड देकर सहन करता है वह राजा शीघ्र ही नाश को प्राप्त होता है और राज्य में द्वेष उठता है ॥ ८ ॥ न मित्रता [और] न पुष्कल धन की प्राप्ति से भी राजा सब प्राणियों को दुःख देनेवाले साहसिक मनुष्य को बंधन छेदन किये विना कभी छोड़े ॥ ९ ॥ चाहे गुरु हो, चाहे पुत्रादि बालक हों, चाहे पिता आदि वृद्ध, चाहे ब्राह्मण और चाहे बहुत

शास्त्रों का श्रोता क्यों न हो जो धर्म को छोड़ अधर्म में वर्त्तमान दूसरे को विना अपराध मारनेवाले हैं उनको विना विचारे मारडालना अर्थात् मार के पश्चात् विचार करना चाहिये ॥ १० ॥ दुष्ट पुरुषों के मारने में हन्ता को पाप नहीं होता चाहे प्रसिद्ध मारे चाहे अप्रसिद्ध क्योंकि क्रोधी को क्रोध से मारना जानो क्रोध से क्रोध की लड़ाई है ॥ ११ ॥ जिस राजा के राज्य में न चोर, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वचन का बोलनेहारा, न साहसिक डाकू और न दण्डघ्न अर्थात् राजा की आज्ञा का भङ्ग करनेवाला है वह राजा अतीव श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

भर्त्तारं लंघयेद्या स्त्री स्वज्ञातिगुणदर्पिता ।
तां श्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ १ ॥
पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ॥ २ ॥
दीर्घाध्वनि यथादेशं यथाकालङ्करो भवेत् ।
नदीतीरेषु तद्विद्यात्समुद्रे नास्ति लक्षणम् ॥ ३ ॥
अहन्यहन्यवेक्षेत कर्मान्तान्वाहनानि च ।
आयव्ययौ च नियतावाकरान्कोषमेव च ॥ ४ ॥
एवं सर्वानिमान्राजा व्यवहारान्समापयन् ।
व्यपोह्य किल्विषं सर्वं प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ ५ ॥
मनु० [८ । ३७१-३७२ । ४०६ । ४१९ । ४२०]

जो स्त्री अपनी जाति गुण के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे उसको बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले ॥ १ ॥ उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़ के परस्त्री वा वेश्यागमन करे उस पापी को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा के लाल कर उस पर सुला के जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर देवे ॥ २ ॥ (प्रश्न) जो राजा वा राणी अथवा न्यायाधीश वा उसकी स्त्री व्यभिचारादि कुकर्म करे तो उसको कौन दण्ड देवे ? (उत्तर) सभा अर्थात् उनको तो प्रजापुरुषों से भी अधिक दण्ड होना चाहिये, (प्रश्न) राजादि उन से दण्ड क्यों ग्रहण करेंगे (उत्तर)

राजा भी एक पुण्यात्मा भाग्यशाली मनुष्य है जब उसी को दण्ड न दिया जाय और वह दण्ड ग्रहण न करे तो दूसरे मनुष्य दण्ड को क्यों मानेंगे ? और जब सब प्रजा और प्रधान राज्याधिकारी और सभा धार्मिकता से दण्ड देना चाहें तो अकेला राजा क्या कर सकता है जो ऐसी व्यवस्था न हो तो राजा प्रधान और सब समर्थ पुरुष अन्याय में डूब कर न्याय धर्म को डुबा के सब प्रजा का नाशकर आप भी नष्ट होजाएं अर्थात् उस श्लोक के अर्थ को स्मरण करो कि न्याययुक्त दण्ड ही का नाम राजा और धर्म है जो उसका लोप करता है उससे नीच पुरुष दूसरा कौन होगा ॥

(प्रश्न) यह कड़ा दण्ड होना उचित नहीं क्योंकि मनुष्य किसी अङ्ग का बनानेहारा वा जिलानेवाला नहीं है इसलिये ऐसा दण्ड न देना चाहिये (उत्तर) जो इसको कड़ा दण्ड जानते हैं वे राजनीति को नहीं समझते क्योंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे और बुरे काम को छोड़कर धर्म मार्ग में स्थित रहेंगे । सच पूछो तो यही है कि एक राई भर भी यह दण्ड सब के भाग में न आवेगा और जो सुगम दण्ड दिया जाय तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें वह जिसको तुम सुगम दण्ड कहते हो वह क्रोड़ों गुणा अधिक होने से क्रोड़ों गुणा कठिन होता है क्योंकि जब बहुत मनुष्य दुष्ट कर्म करेंगे तब थोड़ा २ दण्ड भी देना पड़ेगा अर्थात् जैसे एक को मनभर दण्ड हुआ और दूसरे को पावभर तो पावभर अधिक एक मन दण्ड होता है तो प्रत्येक मनुष्य के भाग में आधपाव बीससेर दण्ड पड़ा तो ऐसे सुगम दण्ड को दुष्ट लोग क्या समझते हैं ? जैसे एक को मन और सहस्र मनुष्यों को पाव २ दण्ड हुआ तो ६। (सवाछः) मन मनुष्य जाति पर दण्ड होनेसे अधिक और यही कड़ा तथा वह एक मन दण्ड न्यून और सुगम होता है । जो लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां वा नदी तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे और महासमुद्र में निश्चित कर स्थापन नहीं हो सकता किन्तु जैसा अनुकूल देखे कि जिससे राजा और बड़े २ नौकाओं के समुद्र में चलानेवाले दोनों लाभयुक्त हों वैसी व्यवस्था करे

परन्तु यह ध्यान में रखना चाहिये कि जो कहते हैं कि प्रथम जहाज नहीं चलते थे वे झूठे हैं और देश-देशान्तर द्वीप-द्वीपान्तरों में नौका से जानेवाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकार का दुःख न होने देवे ॥ ३ ॥ [राजा प्रतिदिन कर्मों की समाप्तियों को, हाथी घोड़े आदि वाहनों को नियत लाभ और खरच, "आकर" रत्नादिकों की खानें और कोष (ख़ज़ाने) को देखा करे ॥४॥] राजा इस प्रकार सब व्यवहारों को यथावत् समाप्त करता कराता हुआ सब पापों को छुड़ा के परमगति मोक्ष सुख को प्राप्त होता है ॥५॥
(प्रश्न) संस्कृतविद्या में पूरी २ राजनीति है वा अधूरी ? (उत्तर) पूरी है क्योंकि जो २ भूगोल में राजनीति चली और चलेगी वह सब संस्कृत विद्या से ली है और जिनका प्रत्यक्ष लेख नहीं है उनके लिये:—

प्रत्यहं लोकदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः ॥ मनुः ८ । ३ ॥

जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझें उन २ नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे। परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहांतक बन सके वहांतक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवें। युवावस्था में भी विना प्रसन्नता के विवाह न करना कराना और न करने देना। ब्रह्मचर्य का यथावत् सेवन करना कराना। व्यभिचार और बहुविवाह को बन्द करें कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे। क्योंकि जो केवल आत्मा का बल अर्थात् विद्या ज्ञान बढ़ाये जायँ और शरीर का बल न बढ़ावें तो एक ही बलवान् पुरुष ज्ञानी और सैकड़ों विद्वानों को जीत सकता है। और जो केवल शरीर ही का बल बढ़ाया जाय आत्मा का नहीं तो भी राज्यपालन की उत्तम व्यवस्था विना विद्या के कभी नहीं हो सकती। विना व्यवस्था के सब आपस में ही फूट टूट विरोध लड़ाई झगड़ा करके नष्ट भ्रष्ट होजायें। इसलिये सर्वदा शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाते रहना चाहिये। जैसा बल और बुद्धि का नाशक व्यवहार व्यभिचार और अति विषयासक्ति है वैसा और कोई नहीं है। विशेषतः क्षत्रियों को दृढांग और बलयुक्त होना चाहिये। क्योंकि जब वे ही विषयासक्त होंगे तो राज्यधर्म ही नष्ट होजायगा। और इस पर भी

ध्यान रखना चाहिये कि "यथा राजा तथा प्रजा" जैसा राजा होता है वैसी ही उसकी प्रजा होती है। इसलिये राजा और राजपुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें, किन्तु सब दिन धर्म न्याय से वर्त्तकर सब के सुधार का दृष्टान्त बनें ॥

यह संक्षेप से राजधर्म का वर्णन यहां किया है विशेष वेद, मनुस्मृति के सप्तम, अष्टम, नवम अध्याय में और शुक्रनीति तथा विदुरप्रजागर और महाभारत शान्तिपर्व के राजधर्म और आपद्धर्म आदि पुस्तकों में देखकर पूर्ण राजनीति को धारण करके माण्डलिक अथवा सार्वभौम चक्रवर्त्ती राज्य करें और यह समझें कि "वयं प्रजापतेः प्रजा अभूम" १८।२९ (यह यजुर्वेद का वचन है) हम प्रजापति अर्थात् परमेश्वर की प्रजा और परमात्मा हमारा राजा हम उसके किंकर भृत्यवत् हैं वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे। अब आगे ईश्वर और वेदविषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते राजधर्मविषये षष्ठः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमसमुल्लासारम्भः

अथेश्वरवेदविषयं व्याख्यास्यामः

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ १ ॥ ऋ० ॥ मं० १ । सू० १६४ । मं० ३९ ॥

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ २ ॥ यजु० ॥ अ० ४० । मं० १ ॥

अहम्भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः । मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम् ॥ ३ ॥ अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन । सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥ ४ ॥ ऋ० ॥ मं० १० । सू० ४८ । मं० १ । ५ ॥

(ऋचो अक्षरे०) इस मन्त्र का अर्थ ब्रह्मचर्य्याश्रम की शिक्षा में लिख चुके हैं अर्थात् जो सब दिव्य गुण कर्म स्वभाव विद्यायुक्त और जिसमें पृथिवी सूर्य्यादि लोक स्थित हैं और जो आकाश के समान व्यापक सब देवों का देव परमेश्वर है उसको जो मनुष्य न जानते न मानते और उसका ध्यान नहीं करते वे नास्तिक मन्दमति सदा दुःखसागर में डूबे ही रहते हैं इसलिये सर्वदा उसी को जानकर सब मनुष्य सुखी होते हैं (प्रश्न) वेद में ईश्वर अनेक हैं इस बात को तुम मानते हो वा नहीं ? (उत्तर) नहीं मानते, क्योंकि चारों वेदों में ऐसा कहीं नहीं लिखा जिससे अनेक ईश्वर सिद्ध हों किन्तु यह तो लिखा है कि ईश्वर एक है (प्रश्न) वेदों में जो अनेक देवता लिखे हैं उसका क्या अभिप्राय है ? (उत्तर) देवता दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण कहाते हैं जैसी

कि पृथिवी, परन्तु इसको कहीं ईश्वर वा उपासनीय नहीं माना है। देखो ! इसी मन्त्र में कि 'जिसमें सब देवता स्थित हैं वह जानने और उपासना करने योग्य ईश्वर है।' यह उनकी भूल है जो देवता शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हैं। परमेश्वर देवों का देव होने से महादेव इसीलिये कहाता है कि वही सब जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्त्ता न्यायाधीश अधिष्ठाता। "त्रयस्त्रिंशन्त्रिशता०" इत्यादि वेदों में प्रमाण हैं इसकी व्याख्या शतपथ में की है कि तेंतीस देव अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवासस्थान होने से [ये] आठ वसु। प्राण, अपान, व्यान, [उदान], समान, नाग, कूर्म्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ग्यारह रुद्र इसलिये कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं। संवत्सर के बारह महीने बारह आदित्य इसलिये हैं कि ये सब की आयु को लेते जाते हैं। बिजुली का नाम इन्द्र इस हेतु से है कि परम ऐश्वर्य्य का हेतु है। यज्ञ को प्रजापति कहने का कारण यह है कि जिससे वायु वृष्टि जल ओषधी की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा का पालन होता है। ये तेंतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से देव कहाते हैं। इनका स्वामी और सब से बड़ा होने से परमात्मा चौंतीसवां उपास्यदेव शतपथ के चौदहवें काण्ड में स्पष्ट लिखा है। इसी प्रकार अन्यत्र भी लिखा है। जो ये इन शास्त्रों को देखते तो वेदों में अनेक ईश्वर माननेरूप भ्रमजाल में गिरकर क्यों बहकते ॥ १ ॥ हे मनुष्य ! जो कुछ इस संसार में जगत् है उस सब में व्याप्त होकर नियन्ता है वह ईश्वर कहाता है उससे डर कर तू अन्याय से किसी के धन की आकांक्षा मत कर उस अन्याय का त्याग और न्यायाचरणरूप धर्म से अपने आत्मा से आनन्द को भोग ॥ २ ॥ ईश्वर सब को उपदेश करता है कि हे मनुष्यो ! मैं ईश्वर सब के पूर्व विद्यमान सब जगत् का पति हूं मैं सनातन जगत्कारण और सब धनों का विजय करनेवाला और दाता हूं मुझ ही को सब जीव जैसे पिता को सन्तान पुकारते हैं वैसे पुकारें मैं सब को सुख देनेहारे जगत् के लिये नाना प्रकार के भोजनों का विभाग पालन के लिये करता हूं ॥ ३ ॥ मैं परमैश्वर्य्यवान् सूर्य के सदृश सब जगत् का प्रकाशक हूं कभी

पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूं मैं ही जगत्-रूप धन का निर्माता हूं सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले मुझ ही को जानो, हे जीवो ! ऐश्वर्य्य प्राप्ति के यत्न करते हुए तुम लोग विज्ञानादि धन को मुझ से मांगो और तुम लोग मेरी मित्रता से अलग मत होओ, हे मनुष्यो ! मैं सत्यभाषणरूप स्तुति करनेवाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूं मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करनेहारा और मुझको वह वेद यथावत् कहता उससे सब के ज्ञान को मैं बढ़ाता मैं सत्पुरुष का प्रेरक यज्ञ करनेहारे को फल-प्रदाता और इस विश्व में जो कुछ है उस सब कार्य्य का बनाने और धारण करनेवाला हूं इसलिये तुम लोग मुझ को छोड़ किसी दूसरे को मेरे स्थान में मत पूजो, मत मानो और मत जानो ॥ ४ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ [अ० १३ । ४]

यह यजुर्वेद का मन्त्र है—हे मनुष्यो ! जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्य्यादि तेजवाले लोकों का उत्पत्ति स्थान आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा उसका स्वामी था, है और होगा वह पृथिवी से लेके सूर्य्यलोक पर्य्यन्त सृष्टि को बना के धारण कर रहा है । उस सुखस्वरूप परमात्मा ही की भक्ति जैसे हम करें वैसे तुम लोग भी करो ॥ १ ॥ (प्रश्न) आप ईश्वर २ कहते हो परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो ? (उत्तर) सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से (प्रश्न) ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते ? (उत्तर):—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥ [अ० १ । सू० ४]

यह गोतम महर्षिकृत न्यायदर्शन का सूत्र है—जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण और मन का शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख, दुःख, सत्या-सत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु वह निर्भ्रम हो । अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन

से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मायुक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है। और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय, जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाती है। उसी क्षण में आत्मा के भतिर से बुरे काम करने में भय, शङ्का और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशङ्कता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु परमात्मा की ओर से है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य्य को देख के कारण का अनुमान होता है (प्रश्न) ईश्वर व्यापक है वा किसी देशविशेष में रहता है? (उत्तर) व्यापक है क्योंकि जो एकदेश में रहता तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब का स्रष्टा, सब का धर्त्ता और प्रलयकर्त्ता नहीं हो सकता अप्राप्त देश में कर्त्ता की क्रिया का असम्भव है (प्रश्न) परमेश्वर दयालु और न्यायकारी है वा नहीं? (उत्तर) है (प्रश्न) ये दोनों गुण परस्पर विरुद्ध हैं जो न्याय करे तो दया और दया करे तो न्याय छूट जाय। क्योंकि न्याय उसको कहते हैं कि जो कर्मों के अनुसार न अधिक न न्यून सुख दुःख पहुंचाना। और दया उसको कहते हैं जो अपराधी को विना दण्ड दिये छोड़ देना। (उत्तर) न्याय और दया का नाममात्र ही भेद है क्योंकि जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हों। वही दया कहाती है जो पराये दुःखों का छुड़ाना। और जैसा अर्थ दया और न्याय का तुमने किया वह ठीक नहीं, क्योंकि जिसने जैसा जितना बुरा कर्म किया हो उसको उतना वैसा ही दण्ड देना चाहिये उसी का नाम न्याय है। और जो अपराधी को

दण्ड न दिया जाय तो दया का नाश होजाय। क्योंकि एक अपराधी डांकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्म्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। जब एक के छोड़ने में सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त होता है वह दया किस प्रकार हो सकती है। दया वही है कि उस डांकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना डांकू पर और उस डांकू को मार देने से अन्य सहस्रों मनुष्यों पर दया प्रकाशित होती है (प्रश्न) फिर दया और न्याय दो शब्द क्यों हुए? क्योंकि उन दोनों का अर्थ एक ही होता है तो दो शब्दों का होना व्यर्थ है इसलिये एक शब्द का रहना तो अच्छा था। इससे क्या विदित होता है कि दया और न्याय का एक प्रयोजन नहीं है। (उत्तर) क्या एक अर्थ के अनेक नाम और एक नाम के अनेक अर्थ नहीं होते? (प्रश्न) होते हैं। (उत्तर) तो पुनः तुमको शङ्का क्यों हुई (प्रश्न) संसार में सुनते हैं, इसलिये। (उत्तर) संसार में तो सच्चा झूठा दोनों सुनने में आता है परन्तु उसको विचार से निश्चय करना अपना काम है। देखो ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रक्खे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौनसी है? अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना (प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार? (उत्तर) निराकार, क्योंकि जो साकार होता तो व्यापक न होता। जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञादि गुण भी ईश्वर में न घट सकते क्योंकि परिमित वस्तु में गुण कर्म्म स्वभाव भी परिमित रहते हैं तथा शीतोष्ण, क्षुधा, तृषा और रोग, दोष, छेदन, भेदन आदि से रहित नहीं होसकता। इससे यही निश्चित है कि ईश्वर निराकार है। जो साकार हो तो उसके नाक, कान, आंख आदि अवयवों का बनानेहारा दूसरा होना चाहिये। क्योंकि जो संयोग से उत्पन्न होता है उसको संयुक्त करनेवाला

निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये। जो कोई यहां ऐसा कहे कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप ही आप अपना शरीर बना लिया तो भी वही सिद्ध हुआ कि शरीर बनने के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है। (प्रश्न) ईश्वर सर्वशक्तिमान् है वा नहीं ? (उत्तर) है, परन्तु जैसा तुम सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जानते हो वैसा नहीं। किन्तु सर्वशक्तिमान् शब्द का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने काम अर्थात् उत्पत्ति, पालन, प्रलय आदि और सब जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेता। अर्थात् अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूर्ण कर लेता है। (प्रश्न) हम तो ऐसा मानते हैं कि ईश्वर चाहे सो करे क्योंकि उसके ऊपर दूसरा कोई नहीं है। (उत्तर) वह क्या चाहता है ? जो तुम कहो कि सब कुछ चाहता और कर सकता है तो हम तुम से पूछते हैं कि परमेश्वर अपने को मार, अनेक ईश्वर बना स्वयं अविद्वान् चोरी व्यभिचारादि पाप कर्म कर और दुःखी भी हो सकता है ? जैसे ये काम ईश्वर के गुण कर्म्म स्वभाव से विरुद्ध हैं तो जो तुम्हारा कहना है कि वह सब कुछ कर सकता है यह कभी नहीं घट सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ जो हमने कहा वही ठीक है। (प्रश्न) परमेश्वर सादि है वा अनादि ? (उत्तर) अनादि अर्थात् जिसका आदि कोई कारण वा समय न हो उसको अनादि कहते हैं इत्यादि सब अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है देख लीजिये (प्रश्न) परमेश्वर क्या चाहता है ? (उत्तर) सब की भलाई और सब के लिये सुख चाहता है परन्तु स्वतन्त्रता के साथ किसी को विना पाप किये पराधीन नहीं करता (प्रश्न) परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये वा नहीं ? (उत्तर) करनी चाहिये (प्रश्न) क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करनेवाले का पाप छुड़ा देगा। (उत्तर) नहीं (प्रश्न) तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना ? (उत्तर) उनके करने का फल अन्य ही है। (प्रश्न) क्या है ? (उत्तर) स्तुति से ईश्वर में प्रीति उसके गुण कर्म स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से

निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। (प्रश्न) इनको स्पष्ट करके समझाओ, (उत्तर) जैसे—

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ यजु०॥ अ० ४०। मं० ८॥

(ईश्वर की स्तुति) वह परमात्मा सब में व्यापक, शीघ्रकारी और अनन्त बलवान् जो शुद्ध, सर्वज्ञ, सब का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान, सनातन, स्वयंसिद्ध, परमेश्वर अपनी जीवरूप सनातन अनादि प्रजा को अपनी सनातन विद्या से यथावत् अर्थों का बोध वेदद्वारा कराता है यह सगुण स्तुति अर्थात् जिस २ गुण से सहित परमेश्वर की स्तुति करना यह सगुण, (अकाय) अर्थात् वह कभी शरीर धारण वा जन्म नहीं लेता जिसमें छिद्र नहीं होता नाड़ी आदि के बन्धन में नहीं आता और कभी पापाचरण नहीं करता जिसमें क्लेश दुःख अज्ञान कभी नहीं होता इत्यादि जिस २ राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मानकर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुण कर्म स्वभाव अपने भी करना। जैसे वह न्यायकारी है तो आप भी न्यायकारी होवे। और जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुणकीर्त्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है॥ प्रार्थना—

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ १॥ यजु०॥ अ० ३२। मं० १४॥

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि। वीर्य्यमसि वीर्य्यं मयि धेहि। बलमसि बलं मयि धेहि। ओजोऽस्योजो मयि धेहि। मन्युरसि मन्युं मयि धेहि। सहोऽसि सहो मयि धेहि॥ २॥ यजु०॥ अ० १९। मं० ९॥

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवन्तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ३ ॥ येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ४ ॥ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्नऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ५ ॥ येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥ यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ७ ॥ सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ८ ॥ यजु० ॥ अ० ३४ । मं० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ ॥

हे अग्ने ! अर्थात् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर आप कृपा से जिस बुद्धि की उपासना विद्वान्, ज्ञानी और योगी लोग करते हैं उसी बुद्धि से युक्त हमको इसी वर्त्तमान समय में बुद्धिमान् आप कीजिये ॥ १ ॥ आप प्रकाशस्वरूप हैं कृपा कर मुझ में भी प्रकाश स्थापन कीजिये । आप अनन्त पराक्रमयुक्त हैं इसलिये मुझ में भी कृपाकटाक्ष से पूर्ण पराक्रम धरिये । आप अनन्त बलयुक्त हैं [इसलिये] मुझ में भी बल धारण कीजिये । आप अनन्त सामर्थ्ययुक्त हैं इसलिये मुझको भी पूर्ण सामर्थ्य दीजिये । आप दुष्ट काम और दुष्टों पर क्रोधकारी हैं । मुझको भी वैसा ही कीजिये । आप निन्दा, स्तुति और स्वअपराधियों का सहन करनेवाले हैं, कृपा से मुझको भी वैसा ही कीजिये ॥ २ ॥ हे दयानिधे ! आप की कृपा से मेरा मन जागते में दूर २ जाता, दिव्य गुणयुक्त रहता है और वही सोते हुए मेरा मन सुषुप्ति को प्राप्त होता वा स्वप्न में दूर २ जाने के समान व्यवहार करता, सब प्रकाशकों का प्रकाशक, एक वह मेरा मन शिवसङ्कल्प अर्थात् अपने और दूसरे प्राणियों के अर्थ कल्याण का सङ्कल्प करनेहारा होवे । किसी की हानि करने की इच्छायुक्त कभी न होवे ॥ ३ ॥ हे सर्वान्तर्यामी ! जिससे कर्म करनेहारे धर्मयुक्त विद्वान् लोग यज्ञ और युद्धादि

में कर्म करते हैं जो अपूर्व सामर्थ्ययुक्त, पूजनीय और प्रजा के भीतर रहनेवाला है वह मेरा मन धर्म करने की इच्छायुक्त होकर अधर्म को सर्वथा छोड़ देवे ॥ ४ ॥ जो उत्कृष्ट ज्ञान और दूसरे को चितानेहारा निश्चयात्मकवृत्ति है और जो प्रजाओं में भीतर प्रकाशयुक्त और नाशरहित है जिसके विना कोई कुछ भी कर्म नहीं कर सकता वह मेरा मन शुद्ध गुणों की इच्छा करके दुष्ट गुणों से पृथक् रहै ॥ ५ ॥ हे जगदीश्वर ! जिससे सब योगी लोग इन सब भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान व्यवहारों को जानते जो नाशरहित जीवात्मा को परमात्मा के साथ मिलके सब प्रकार त्रिकालज्ञ करता है जिसमें ज्ञान और क्रिया है, पांच ज्ञानेन्द्रिय बुद्धि और आत्मायुक्त रहता है, उस योगरूप यज्ञ को जिससे बढ़ाते हैं वह मेरा मन योग विज्ञानयुक्त होकर अविद्यादि क्लेशों से पृथक् रहै ॥ ६ ॥ हे परम विद्वान् परमेश्वर ! आप की कृपा से मेरे मन में जैसे रथ के मध्य धुरा में आरा लगे रहते हैं वैसे ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और जिसमें अथर्ववेद भी प्रतिष्ठित होता है और जिसमें सर्वज्ञ सर्वव्यापक प्रजा का साक्षी चित्त चेतन विदित होता है वह मेरा मन अविद्या का अभाव कर विद्याप्रिय सदा रहै ॥७॥ हे सर्वनियन्ता ईश्वर ! जो मेरा मन रस्सी से घोड़ों के समान अथवा घोड़ों के नियन्ता सारथी के तुल्य मनुष्यों को अत्यन्त इधर उधर डुलाता है, जो हृदय में प्रतिष्ठित गतिमान् और अत्यन्त वेग वाला है वह मेरा मन सब इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक के धर्मपथ में सदा चलाया करे ऐसी कृपा मुझ पर कीजिये ॥ ८ ॥

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥ यजु० ॥ अ० ४० । मं० १६ ॥

हे सुख के दाता स्वप्रकाशस्वरूप सबको जाननेहारे परमात्मन् ! आप हमको श्रेष्ठ मार्ग से सम्पूर्ण प्रज्ञानों को प्राप्त कराइये और जो हम में कुटिल पापाचरणरूप मार्ग है उससे पृथक् कीजिये । इसीलिये हम लोग नम्रतापूर्वक आपकी बहुतसी स्तुति करते हैं कि आप हम को पवित्र करें ।

मा नो महान्तमुत मा नोऽअर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् । मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥ यजु० ॥ अ० १६ । मं० १५ ॥

हे रुद्र ! (दुष्टों को पाप के दुःखस्वरूप फल को देके रुलाने वाले परमेश्वर) आप हमारे छोटे बड़े जन, गर्भ, माता, पिता और प्रिय, बन्धुवर्ग तथा शरीरों का हनन करने के लिये प्रेरित मत कीजिये, ऐसे मार्ग से हम को चलाइये जिससे हम आपके दण्डनीय न हों ।

असतो मा सद् गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥ शतपथब्रा० [१४ । ३ । १ । ३०]

हे परमगुरो परमात्मन् ! आप हमको असत् मार्ग से पृथक् कर सन्मार्ग में प्राप्त कीजिये । अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये । और मृत्यु रोग से पृथक् करके मोक्ष के आनन्दरूप अमृत को प्राप्त कीजिये । अर्थात् जिस २ दोष वा दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक् मान के परमेश्वर की प्रार्थना कीजाती है वह विधि निषेधमुख होने से सगुण, निर्गुण प्रार्थना । जो मनुष्य जिस बात की प्रार्थना करता है उसको वैसाही वर्त्तमान करना चाहिये अर्थात् जैसे सर्वोत्तम बुद्धि की प्राप्ति के लिये परमेश्वर की प्रार्थना करे उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न होसके उतना किया करे । अर्थात् अपने पुरुषार्थ के उपरान्त प्रार्थना करनी योग्य है । ऐसी प्रार्थना कभी न करनी चाहिये और न परमेश्वर उसका स्वीकार करता है कि जैसे हे परमेश्वर ! आप मेरे शत्रुओं का नाश, मुझको सब से बड़ा, मेरे ही प्रतिष्ठा और मेरे आधीन सब हो जायँ इत्यादि क्योंकि जब दोनों शत्रु एक दूसरे के नाश के लिये प्रार्थना करें तो क्या परमेश्वर दोनों का नाश करदे ? जो कोई कहे कि जिसका प्रेम अधिक उसकी प्रार्थना सफल हो जावे तब हम कह सकते हैं कि जिसका प्रेम न्यून हो उसके शत्रु का भी न्यून नाश होना चाहिये । ऐसी मूर्खता की प्रार्थना करते २ कोई ऐसी भी प्रार्थना करेगा हे परमेश्वर ! आप हमको रोटी बनाकर खिलाइये,

मेरे मकान में झाड़ू लगाइये, वस्त्र धो दीजिये और खेती बाड़ी भी कीजिये। इस प्रकार जो परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते वे महामूर्ख हैं क्योंकि जो परमेश्वर की पुरुषार्थ करने की आज्ञा है उसको जो कोई तोड़ेगा वह सुख कभी नहीं पावेगा। जैसे—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ॥ यजु० ॥ अ० ४० । मं० २ ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यन्त अर्थात् जबतक जीवे तबतक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे आलसी कभी न हो। देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं वे सब अपने २ कर्म और यत्न करते ही रहते हैं। जैसे पिपीलिका आदि सदा प्रयत्न करते, पृथिवी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि सदा बढ़ते घटते रहते हैं वैसे यह दृष्टान्त मनुष्यों को भी ग्रहण करना योग्य है। जैसे पुरुषार्थ करते हुए पुरुष का सहाय दूसरा भी करता है वैसे धर्म से पुरुषार्थी पुरुष का सहाय ईश्वर भी करता है। जैसे काम करने वाले पुरुष को भृत्य करते हैं और अन्य आलसी को नहीं, देखने की इच्छा करने और नेत्रवाले को दिखलाते हैं अन्धे को नहीं, इसी प्रकार परमेश्वर भी सब के उपकार करने की प्रार्थना में सहायक होता है हानिकारक कर्म में नहीं। जो कोई गुड़ मीठा है ऐसा कहता है उसको गुड़ प्राप्त वा उसको स्वाद प्राप्त कभी नहीं होता और जो यत्न करता है उसको शीघ्र वा विलम्ब से गुड़ मिल ही जाता है। अब तीसरी उपासना—

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयन्तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

यह उपनिषद् का वचन है—जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्यादि मल नष्ट होगये हैं, आत्मस्थ होकर परमात्मा में चित्त जिसने लगाया है, उसको जो परमात्मा के योग का सुख होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता क्योंकि उस आनन्द को जीवात्मा अपने अन्तःकरण से ग्रहण करता है। उपासना

शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है। अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने और उसको सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामीरूप से प्रत्यक्ष करने के लिये जो २ काम करना होता है वह २ सब करना चाहिये, अर्थात्—

तत्राऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः [साधनपादे। सू० ३०]

इत्यादि सूत्र पातञ्जलयोगशास्त्र के हैं—जो उपासना का आरम्भ करना चाहे उसके लिये यही आरम्भ है कि वह किसी से वैर न रक्खे, सर्वदा सब से प्रीति करे, सत्य बोले, मिथ्या कभी न बोले, चोरी न करे, सत्य व्यवहार करे, जितेन्द्रिय हो, लम्पट न हो और निरभिमानी हो, अभिमान कभी न करे। ये पांच प्रकार के यम मिल के उपासना योग का प्रथम अङ्ग है।

शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः॥ योगसू० [साधनपादे। सू० ३२]

राग द्वेष छोड़ भीतर और जलादि से बाहर पवित्र रहै, धर्म से पुरुषार्थ करने से लाभ में न प्रसन्नता और हानि में न अप्रसन्नता करे प्रसन्न होकर आलस्य छोड़ सदा पुरुषार्थ किया करे, सदा दुःख सुखों का सहन और धर्म ही का अनुष्ठान करे अधर्म का नहीं। सर्वदा सत्य शास्त्रों को पढ़े पढ़ावे सत्पुरुषों का सङ्ग करे और "ओ३म्" इस एक परमात्मा के नाम का अर्थ विचार कर नित्यप्रति जप किया करे। अपने आत्मा को परमेश्वर की आज्ञानुकूल समर्पित कर देवे। इन पांच प्रकार के नियमों को मिला के उपासनायोग का दूसरा अङ्ग कहाता है। इसके आगे छः अङ्ग योगशास्त्र व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका * में देख लेवें। जब उपासना करना चाहैं तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा, प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होजाने

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के उपासना विषय में इनका वर्णन है। स० दा०

से संयमी होवें । जब इन साधनों को करता है तब उसका आत्मा और अन्तः-करण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण होजाता है । नित्यप्रति ज्ञान विज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है । जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त होजाता है । वहां सर्वज्ञादि गुणों के साथ परमेश्वर की उपासना करनी सगुण और द्वेष, रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि गुणों से पृथक् मान अतिसूक्ष्म आत्मा के भीतर बाहर व्यापक परमेश्वर में दृढ़ स्थित होजाना निर्गुणोपासना कहाती है । इसका फल—जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त होजाता है वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष दुःख छूट कर परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण कर्म स्वभाव पवित्र होजाते हैं । इसलिये परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये । इससे इसका फल पृथक् होगा। परन्तु आत्मा का बल इतना बढ़ेगा वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा और सब को सहन कर सकेगा । क्या यह छोटी बात है ? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत् के सब पदार्थ जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं उसका गुण भूल जाना ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है । (प्रश्न) जब परमेश्वर के श्रोत्र नेत्रादि इन्द्रियां नहीं हैं फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ? (उत्तर)—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥
[श्वेताश्वतर उपनिषद् । अ० ३ । मं० १६]

यह उपनिषद् का बचन है । परमेश्वर के हाथ नहीं परन्तु अपनी शक्तिरूप हाथ से सब का रचन ग्रहण करता, पग नहीं परन्तु व्यापक होने से सब से अधिक वेगवान्, चक्षु का गोलक नहीं परन्तु सब को यथावत् देखता, श्रोत्र नहीं तथापि सब की बातें सुनता, अन्तःकरण नहीं परन्तु सब जगत् को जानता है और उसको अवधिसहित जाननेवाला कोई भी नहीं।

उसी को सनातन, सब से श्रेष्ठ सब में पूर्ण होने से पुरुष कहते हैं। वह इन्द्रियों और अन्तःकरण से [होनेवाले] काम अपने सामर्थ्य से करता है। (प्रश्न) उसको बहुतसे मनुष्य निष्क्रिय और निर्गुण कहते हैं ? (उत्तर)—

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥
[श्वेताश्वतर उपनिषद् अ० ६। मं० ८]

यह उपनिषद् का वचन है। परमात्मा से कोई तद्रूप कार्य्य और उसको करण अर्थात् साधकतम दूसरा अपेक्षित नहीं। न कोई उसके तुल्य और न अधिक है। सर्वोत्तमशक्ति अर्थात् जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त क्रिया है वह स्वाभाविक अर्थात् सहज उसमें सुनी जाती है। जो परमेश्वर निष्क्रिय होता तो जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय न कर सकता। इसलिये वह विभु तथापि चेतन होने से उसमें क्रिया भी है। (प्रश्न) जब वह क्रिया करता होगा तब अन्तवाली क्रिया होती होगी वा अनन्त ? (उत्तर) जितने देश काल में क्रिया करनी उचित समझता है उतने ही देश काल में क्रिया करता है। न अधिक न न्यून, क्योंकि वह विद्वान् है। (प्रश्न) परमेश्वर अपना अन्त जानता है वा नहीं ? (उत्तर) परमात्मा पूर्ण ज्ञानी है क्योंकि ज्ञान उसको कहते हैं कि जिससे ज्यों का त्यों जाना जाय अर्थात् जो पदार्थ जिस प्रकार का हो उसको उसी प्रकार जानने का नाम ज्ञान है। जब परमेश्वर अनन्त है तो अपने को अनन्त ही जानना ज्ञान, उससे विरुद्ध अज्ञान अर्थात् अनन्त को सान्त और सान्त को अनन्त जानना भ्रम कहाता है। "यथार्थदर्शनं ज्ञानमिति" जिसका जैसा गुण, कर्म स्वभाव हो उस पदार्थ को वैसा ही जानकर मानना ही ज्ञान और विज्ञान कहाता है, [इससे] उलटा अज्ञान। इसलिये—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥
योग सू० [समाधिपादे। सू० २४]

जो अविद्यादि क्लेश, कुशल, अकुशल, इष्ट, अनिष्ट और मिश्र फलदायक कर्मों की वासना से रहित है वह सब जीवों से विशेष ईश्वर कहाता है (प्रश्न)—

ईश्वरासिद्धेः ॥ १ ॥ [सां० अ० १ । सू० १२]
प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः ॥ २ ॥ [सां० अ० ५ । सू० १०]
सम्बन्धाभावान्नानुमानम् ॥ ३ ॥ सांख्यसू० [अ० ५ । सू० ११]

प्रत्यक्ष से घट सकते ईश्वर की सिद्धि नहीं होती ॥ १ ॥ क्योंकि जब उसकी सिद्धि में प्रत्यक्ष ही नहीं तो अनुमानादि प्रमाण नहीं हो सकता ॥२॥ और व्याप्ति सम्बन्ध न होने से अनुमान भी नहीं हो सकता। पुनः प्रत्यक्षानुमान के न होने से शब्दप्रमाण आदि भी नहीं घट सकते। इस कारण ईश्वर की सिद्धि नहीं हो सकती ॥ ३ ॥ (उत्तर) यहां ईश्वर की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। और न ईश्वर जगत् का उपादान कारण है। और पुरुष से विलक्षण अर्थात् सर्वत्र पूर्ण होने से परमात्मा का नाम पुरुष, और शरीर में शयन करने से जीव का भी नाम पुरुष है, क्योंकि इसी प्रकरण में कहा है—

प्रधानशक्तियोगाच्चेत्सङ्गापत्तिः ॥१॥ सत्तामात्राच्चेत्सर्वैश्वर्य्यम् ॥२॥
श्रुतिरपि प्रधानकार्य्यत्वस्य ॥ ३ ॥ सांख्यसू० [अ० ५ । सू० ८ । ९ । १२]

यदि पुरुष को प्रधानशक्ति का योग हो तो पुरुष में सङ्गापत्ति होजाय अर्थात् जैसे प्रकृति सूक्ष्म से मिलकर कार्यरूप में सङ्गत हुई है वैसे परमेश्वर भी स्थूल होजाय। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है ॥१॥ जो चेतन से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसा संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये, सो नहीं है। इसलिये परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है ॥२॥ क्योंकि उपनिषद् भी प्रधान ही को जगत् का उपादान कारण कहती है ॥३॥ जैसे—

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजा सृजमानां स्वरूपाः ॥ यह श्वेताश्वतर उपनिषद् [अ० ४ । मं० ५] का वचन है।

जो जन्मरहित सत्व, रज, तमोगुणरूप प्रकृति है वही स्वरूपाकार से बहुत प्रजारूप हो जाती है अर्थात् प्रकृति परिणामिनी होने से अवस्थान्तर हो जाती है और पुरुष अपरिणामी होने से वह अवस्थान्तर होकर दूसरे रूप में कभी नहीं प्राप्त होता, सदा कूटस्थ निर्विकार रहता है। इसलिये जो कोई कपिलाचार्य्य को अनीश्वरवादी कहता है जानो वही अनीश्वरवादी है, कपिलाचार्य्य नहीं। तथा मीमांसा का धर्म धर्मी से ईश्वर। वैशेषिक और न्याय भी "आत्म" शब्द से अनीश्वरवादी नहीं क्योंकि सर्वज्ञत्वादि धर्मयुक्त और "अतति सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा" जो सर्वत्र व्यापक और सर्वज्ञादि धर्मयुक्त सब जीवों का आत्मा है उसको मीमांसा वैशेषिक और न्याय ईश्वर मानते हैं। (प्रश्न) ईश्वर अवतार लेता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं क्योंकि "अज एकपात्" [३४।५३] "सपर्य्यगाच्छुक्रमकायम्" [४०।८] ये यजुर्वेद के वचन हैं। इत्यादि वचनों से [सिद्ध है कि] परमेश्वर जन्म नहीं लेता। (प्रश्न)—

> यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
> अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
> भ० गी० [अ० ४। श्लो० ७]

श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जब २ धर्म का लोप होता है तब तब मैं शरीर धारण करता हूं। (उत्तर) यह बात वेदविरुद्ध होने से प्रमाण नहीं। और ऐसा हो सकता है कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा और धर्म की रक्षा करना चाहते थे कि मैं युग २ में जन्म लेके श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों का नाश करूं तो कुछ दोष नहीं। क्योंकि "परोपकाराय सतां विभूतयः" परोपकार के लिये सत्पुरुषों का तन, मन, धन होता है। तथापि इससे श्रीकृष्ण ईश्वर नहीं हो सकते। (प्रश्न) जो ऐसा है तो संसार में चौबीस ईश्वर के अवतार होते हैं और इनको अवतार क्यों मानते हैं? (उत्तर) वेदार्थ के न जानने, सम्प्रदायी लोगों के बहकाने और अपने आप अविद्वान् होने से भ्रमजाल में फँस के ऐसी २ अप्रामाणिक बातें करते और मानते हैं। (प्रश्न) जो ईश्वर अवतार न लेवे तो कंस रावणादि दुष्टों का नाश कैसे हो सके? (उत्तर) प्रथम जो जन्मा है वह

अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो ईश्वर अवतार शरीर धारण किये विना जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करता है उसके सामने कंस और रावणादि एक कीड़ी के समान भी नहीं। वह सर्वव्यापक होने से कंस रावणादि के शरीरों में भी परिपूर्ण हो रहा है, जब चाहे उसी समय मर्मच्छेदन कर नाश कर सकता है। भला इस अनन्त गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा को एक क्षुद्र जीव के मारने के लिये जन्म मरणयुक्त कहनेवाले को मूर्खपन से अन्य कुछ विशेष उपमा मिल सकती है? और जो कोई कहे कि भक्तजनों के उद्धार करने के लिये जन्म लेता है तो भी सत्य नहीं क्योंकि जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य ईश्वर में है। क्या ईश्वर के पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि जगत् का बनाने, धारण और प्रलय करने रूप कर्मों से कंस रावणादि का बध और गोवर्धनादि पर्वतों का उठाना बड़े कर्म हैं? जो कोई इस सृष्टि में परमेश्वर के कर्मों का विचार करे तो "न भूतो न भविष्यति" ईश्वर के सदृश कोई न है, न होगा। और युक्ति से भी ईश्वर का जन्म सिद्ध नहीं होता। जैसे कोई अनन्त आकाश को कहे कि गर्भ में आया वा मूठी में धर लिया, ऐसा कहना कभी सच नहीं हो सकता क्योंकि आकाश अनन्त और सब में व्यापक है। इससे न आकाश बाहर आता और न भीतर जाता, वैसे ही अनन्त सर्वव्यापक परमात्मा के होने से उसका आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। जाना वा आना वहां हो सकता है जहां न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया? और बाहर नहीं था जो भीतर से निकला? ऐसा ईश्वर के विषय में कहना और मानना विद्याहीनों के सिवाय कौन कह और मान सकेगा। इसलिये परमेश्वर का जाना आना जन्म मरण कभी सिद्ध नहीं हो सकता इसलिये "ईसा" आदि भी ईश्वर के अवतार नहीं ऐसा समझ लेना। क्योंकि राग, द्वेष, क्षुधा, तृषा, भय, शोक, दुःख, सुख, जन्म, मरण आदि गुणयुक्त होने से मनुष्य थे। (प्रश्न) ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट होजाय और सब मनुष्य महापापी होजायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और

उत्साह होजाये। जैसे राजा अपराध को क्षमा करदे तो वे उत्साहपूर्वक अधिक २ बड़े २ पाप करें क्योंकि राजा अपना अपराध क्षमा करदेगा और उनको भी भरोसा होजाय कि राजा से हम हाथ जोड़ने आदि चेष्टा कर अपने अपराध छुड़ा लेंगे और जो अपराध नहीं करते वे भी अपराध करने से न डरकर पाप करने में प्रवृत्त हो जायंगे इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है क्षमा करना नहीं। (प्रश्न) जीव स्वतन्त्र है वा परतन्त्र? (उत्तर) अपने कर्त्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है "स्वतन्त्रः कर्त्ता" यह पाणिनीय व्याकरण का सूत्र है जो स्वतन्त्र अर्थात् स्वाधीन है वही कर्त्ता है। (प्रश्न) स्वतन्त्र किसको कहते हैं? (उत्तर) जिसके आधीन शरीर, प्राण, इन्द्रिय और अन्तःकरणादि हों। जो स्वतन्त्र न हो तो उसको पाप पुण्य का फल प्राप्त कभी नहीं हो सकता क्योंकि जैसे भृत्य, स्वामी और सेना, सेनाध्यक्ष की आज्ञा अथवा प्रेरणा से युद्ध में अनेक पुरुषों को मारके अपराधी नहीं होते, वैसे परमेश्वर की प्रेरणा और आधीनता से काम सिद्ध हों तो जीव को पाप वा पुण्य न लगे। उस फल का भागी प्रेरक परमेश्वर होवे। नरक स्वर्ग अर्थात् दुःख सुख की प्राप्ति भी परमेश्वर को होवे। जैसे किसी मनुष्य ने शस्त्रविशेष से किसी को मारडाला तो वही मारनेवाला पकड़ा जाता है और वही दण्ड पाता है, शस्त्र नहीं। वैसे ही पराधीन जीव पाप पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये अपने सामर्थ्यानुकूल कर्म करने में जीव स्वतन्त्र परन्तु जब वह पाप कर चुकता है तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन होकर पाप के फल भोगता है। इसलिये कर्म करने में जीव स्वतन्त्र और पाप के दुःखरूप फल भोगने में परतन्त्र होता है। (प्रश्न) जो परमेश्वर जीव को न बनाता और सामर्थ्य न देता तो जीव कुछ भी न कर सकता इसलिये परमेश्वर की प्रेरणा ही से जीव कर्म करता है। (उत्तर) जीव उत्पन्न कभी न हुआ, अनादि है जैसा ईश्वर और जगत् का उपादान कारण नित्य है और जीव का शरीर तथा इन्द्रियों के गोलक परमेश्वर के बनाये हुए हैं परन्तु वे सब जीव के आधीन हैं। जो कोई मन, कर्म, वचन से पाप पुण्य करता है वह भोक्ता है ईश्वर नहीं। जैसे किसी कारीगर ने पहाड़ से लोहा निकाला, उस लोहे को किसी व्यापारी ने

लिया, उसकी दुकान से लोहार ने ले तलवार बनाई, उससे किसी सिपाही ने तलवार लेली, फिर उससे किसी को मारडाला। अब यहां जैसे वह लोहे को उत्पन्न करने, उससे लेने, तलवार बनानेवाले और तलवार को पकड़ कर राजा दण्ड नहीं देता किन्तु जिसने तलवार से मारा वही दण्ड पाता है। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करनेवाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता किन्तु जीव को भुगानेवाला होता है। जो परमेश्वर कर्म करता तो कोई जीव पाप नहीं करता क्योंकि परमेश्वर पवित्र और धार्मिक होने से किसी जीव को पाप करने में प्रेरणा नहीं करता। इसलिये जीव अपने काम करने में स्वतन्त्र है। जैसे जीव अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है वैसे ही परमेश्वर भी अपने कामों के करने में स्वतन्त्र है। (प्रश्न) जीव और ईश्वर का स्वरूप, गुण, कर्म और स्वभाव कैसा है ? (उत्तर) दोनों चेतनस्वरूप हैं। स्वभाव दोनों का पवित्र, अविनाशी और धार्मिकता आदि है। परन्तु परमेश्वर के सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, सब को नियम में रखना, जीवों को पाप पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं। और जीव के सन्तानोत्पत्ति उनका पालन, शिल्पविद्यादि अच्छे बुरे कर्म हैं। ईश्वर के नित्यज्ञान, आनन्द, अनन्त बल आदि गुण हैं और जीव के—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति ॥
न्यायसू० [अ० आ० १ । सू० १०]

प्राणापाननिमेषोन्मेषमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ॥ वैशेषिक सू० [अ० ३ । आ० २ । सू० ४]

(इच्छा) पदार्थों की प्राप्ति की अभिलाषा (द्वेष) दुःखादि की अनिच्छा वैर (प्रयत्न) पुरुषार्थ बल (सुख) आनन्द (दुःख) विलाप अप्रसन्नता (ज्ञान) विवेक पहिचानना ये तुल्य हैं परन्तु वैशेषिक में (प्राण) प्राणवायु को बाहर निकालना (अपान) प्राण को बाहर से भीतर को लेना (निमेष) आंख को मीचना (उन्मेष) आंख को खोलना (मन) निश्चय

स्मरण और अहङ्कार करना (गति) चलना (इन्द्रिय) सब इन्द्रियों का चलाना (अन्तर्विकार) भिन्न २ क्षुधा, तृषा, हर्ष, शोकादियुक्त होना ये जीवात्मा के गुण परमात्मा से भिन्न हैं इन्हीं से आत्मा की प्रतीति करनी, क्योंकि वह स्थूल नहीं है। जबतक आत्मा देह में होता है तभी तक ये गुण प्रकाशित रहते हैं और जब शरीर छोड़ चला जाता है तब ये गुण शरीर में नहीं रहते। जिसके होने से जो हों और न होने से न हों वे गुण उसी के होते हैं। जैसे दीप और सूर्य्यादि के न होने से प्रकाशादि का न होना और होने से होना है, वैसे ही जीव और परमात्मा का विज्ञान गुणद्वारा होता है। (प्रश्न) परमेश्वर त्रिकालदर्शी है इससे भविष्यत् की बातें जानता है। वह जैसा निश्चय करेगा जीव वैसा ही करेगा। इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। और जीव को ईश्वर दण्ड भी नहीं दे सकता क्योंकि जैसा ईश्वर ने अपने ज्ञान से निश्चित किया है वैसा ही जीव करता है। (उत्तर) ईश्वर को त्रिकालदर्शी कहना मूर्खता का काम है, क्योंकि जो होकर न रहै वह भूतकाल और न होके होवे यह भविष्यत्काल कहाता है। क्या ईश्वर को कोई ज्ञान होके नहीं रहता तथा न हो के होता है? इसलिये परमेश्वर का ज्ञान सदा एक रस, अखण्डित वर्त्तमान रहता है। भूत, भविष्यत् जीवों के लिये हैं। हां ! जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है वैसा ही सर्वज्ञता से ईश्वर जानता है। और जैसा ईश्वर जानता है वैसा जीव करता है। अर्थात् भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान के ज्ञान और फल देने में ईश्वर स्वतन्त्र और जीव किञ्चित् वर्त्तमान और कर्म करने में स्वतन्त्र है। ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उस के सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सच्चा और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है ? इसलिये इसमें कोई दोष नहीं आता। (प्रश्न) जीव शरीर में भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न ? (उत्तर) परिच्छिन्न, जो विभु होता तो जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना कभी नहीं हो सकता। इसलिये जीव का स्वरूप अल्पज्ञ, अल्प अर्थात् सूक्ष्म है और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर, अनन्त, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक स्वरूप है। इसीलिये जीव और परमेश्वर का व्याप्य

व्यापक सम्बन्ध है। (प्रश्न) जिस जगह में एक वस्तु होती है उस जगह में दूसरी वस्तु नहीं रह सकती। इसलिये जीव और ईश्वर का संयोग सम्बन्ध हो सकता है व्याप्य व्यापक नहीं। (उत्तर) यह नियम समान आकारवाले पदार्थों में घट सकता है, असमानाकृति में नहीं। जैसे लोहा स्थूल, अग्नि सूक्ष्म होता है, इस कारण से लोहे में विद्युत् अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वर से स्थूल और परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है। जैसे यह व्याप्य व्यापक सम्बन्ध जीव ईश्वर का है वैसे ही सेव्य सेवक, आधाराधेय, स्वामिभृत्य, राजा प्रजा और पिता पुत्र आदि भी सम्बन्ध हैं। (प्रश्न) जो पृथक् २ हैं तो—

प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ १ ॥ अहं ब्रह्मास्मि ॥ २ ॥
तत्त्वमसि ॥ ३ ॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥ ४ ॥

वेदों के इन महावाक्यों का अर्थ क्या है ? (उत्तर) ये वेदवाक्य ही नहीं हैं किन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों के वचन हैं और इनका नाम महावाक्य कहीं सत्यशास्त्रों में नहीं लिखा। अर्थ—(अहम्) मैं (ब्रह्म) अर्थात् ब्रह्मस्थ (अस्मि) हूं। यहां तात्स्थ्योपाधि है जैसे "मञ्चाः क्रोशन्ति" मञ्चान पुकारते हैं। मञ्चान जड़ हैं, उनमें पुकारने का सामर्थ्य नहीं, इसलिये मञ्चस्थ मनुष्य पुकारते हैं। इसी प्रकार यहां भी जानना। कोई कहे कि ब्रह्मस्थ सब पदार्थ हैं, पुनः जीव को ब्रह्मस्थ कहने में क्या विशेष है ? इसका उत्तर यह है कि सब पदार्थ ब्रह्मस्थ हैं परन्तु जैसा साधर्म्ययुक्त निकटस्थ जीव है वैसा अन्य नहीं और जीव को ब्रह्म का ज्ञान और मुक्ति में वह ब्रह्म के साक्षात्सम्बन्ध में रहता है। इसलिये जीव का ब्रह्म के साथ तात्स्थ्य व तत्सहचरितोपाधि अर्थात् ब्रह्म का सहकारी जीव है। इससे जीव और ब्रह्म एक नहीं। जैसे कोई किसी से कहे कि मैं और यह एक हैं अर्थात् अविरोधी हैं, वैसे जो जीव समाधिस्थ परमेश्वर में प्रेमबद्ध होकर निमग्न होता है वह कह सकता है कि मैं और ब्रह्म एक अर्थात् अविरोधी एक अवकाशस्थ हैं। जो जीव परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करता है वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ

एकता कह सकता है। (प्रश्न) अच्छा तो इसका अर्थ कैसा करोगे ? (तत्) ब्रह्म (त्वं) तू जीव (असि) है। हे जीव ! (त्वम्) तू (तत्) वह ब्रह्म (असि) है। (उत्तर) तुम 'तत्' शब्द से क्या लेते हो ? "ब्रह्म"। ब्रह्म-पद की अनुवृत्ति कहां से लाये ?

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

इस पूर्व वाक्य से। तुमने इस छान्दोग्य उपनिषद् का दर्शन भी नहीं किया। जो वह देखी होती तो वहां ब्रह्म शब्द का पाठ ही नहीं है ऐसा झूठ क्यों कहते। किन्तु छान्दोग्य में तोः—

सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् ॥
[छां० प्र० ६ । खं० २ । मं० १]

ऐसा पाठ है वहां ब्रह्म शब्द नहीं। (प्रश्न) तो आप तच्छब्द से क्या लेते हैं ? (उत्तर)

स य एषोऽणिमा ॥ ऐतदात्म्यमिदꣳ सर्वं तत्सत्यꣳ स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो इति ॥ छान्दो० [प्र० ६ । खं० ८ । मं० ६ । ७]

वह परमात्मा जानने योग्य है। जो वह अत्यन्तसूक्ष्म और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है। वही सत्यस्वरूप और अपना आत्मा आप ही है। हे श्वेतकेतो प्रियपुत्र !

तदात्मकस्तदन्तर्यामी त्वमसि ॥

उस परमात्मा अन्तर्य्यामी से तू युक्त है। यही अर्थ उपनिषदों से अविरुद्ध है क्योंकिः—

य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनोऽन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम्। आत्मनोऽन्तरोयमयति स त आत्मान्तर्याम्यमृतः ॥

यह बृहदारण्यक का वचन है। महर्षि याज्ञवल्क्य अपनी स्त्री मैत्रेयी से कहते हैं कि हे मैत्रेयि! जो परमेश्वर आत्मा अर्थात् जीव में स्थित और जवात्मा से भिन्न है जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है, जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर अर्थात् जैसे शरीर में जीव रहता है वैसे ही जीव में परमेश्वर व्यापक है, जीवात्मा से भिन्न रहकर जीव के पाप पुण्यों का साक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है, वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्य्यामी आत्मा अर्थात् तेरे भीतर व्यापक है उसको तू जान। क्या कोई इत्यादि वचनों का अन्यथा अर्थ कर सकता है? "अयमात्मा ब्रह्म" अर्थात् समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है। इसलिये जो आजकल के वेदान्ती जीव ब्रह्म की एकता करते हैं वे वेदान्तशास्त्र को नहीं जानते। (प्रश्न):–

अनेन आत्मना जीवेनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि ॥
[छां० प्र० ६। खं० ३। मं० २]

तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् ॥ तैत्तिरीय० [ब्रह्मान० अनु० ६]

परमेश्वर कहता है कि मैं जगत् और शरीर को रचकर जगत् में व्यापक और जीवरूप होके शरीर में प्रविष्ट होता हुआ नाम और रूप की व्याख्या करूं। परमेश्वर ने उस जगत् और शरीर को बना कर उसमें वही प्रविष्ट हुआ इत्यादि श्रुतियों का अर्थ दूसरा कैसे कर सकोगे? (उत्तर) जो तुम पद, पदार्थ और वाक्यार्थ जानते तो ऐसा अनर्थ कभी न करते! क्योंकि यहां ऐसा समझो एक प्रवेश और दूसरा अनुप्रवेश अर्थात् पश्चात् प्रवेश कहाता है परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेदद्वारा सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रकट करता है। और शरीर में जीव को प्रवेश करा आप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट होरहा है। जो तुम अनु शब्द का अर्थ जानते तो वैसा विपरीत अर्थ कभी न करते। (प्रश्न) "सोऽयं देवदत्तो

य उष्णकाले काश्यां दृष्टः स इदानीं प्रावृट्समये मथुरायां दृश्यते" अर्थात् जो देवदत्त मैंने उष्णकाल में काशी में देखा था उसी को वर्षा समय में मथुरा में देखता हूं। यहां काशी देश उष्णकाल को छोड़ कर शरीरमात्र में लक्ष्य करके देवदत्त लक्षित होता है वैसे इस भागत्यागलक्षणा से ईश्वर का परोक्ष देश, काल, माया, उपाधि और जीव का यह देश, काल, अविद्या और अल्पज्ञता उपाधि छोड़ चेतनमात्र में लक्ष्य देने से एक ही ब्रह्म वस्तु दोनों में लक्षित होता है। इस भागत्यागलक्षणा अर्थात् कुछ ग्रहण करना और कुछ छोड़ देना जैसा सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़ कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से अद्वैत सिद्ध होता है यहां क्या कह सकोगे ? (उत्तर) प्रथम तुम जीव और ईश्वर को नित्य मानते हो वा अनित्य ? (प्रश्न) इन दोनों को उपाधिजन्य कल्पित होने से अनित्य मानते हैं। (उत्तर) उस उपाधि को नित्य मानते हो वा अनित्य ? (प्रश्न) हमारे मत में—

जीवेशौ च विशुद्धाचिद्विभेदस्तु तयोर्द्वयोः।
अविद्या तच्चितोर्योगः षडस्माकमनादयः॥ १॥
कार्य्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः।
कार्य्यकारणतां हित्वा पूर्णबोधोऽवशिष्यते॥ २॥

ये "संक्षेपशारीरिक" और "शारीरिकभाष्य" में कारिका हैं—हम वेदान्ती छः पदार्थों अर्थात् एक जीव, दूसरा ईश्वर, तीसरा ब्रह्म, चौथा जीव और ईश्वर का विशेष भेद, पांचवां अविद्या अज्ञान और छठा अविद्या और चेतन का योग इनको अनादि मानते हैं। परन्तु एक ब्रह्म अनादि, अनन्त और अन्य पांच अनादि सान्त हैं, जैसा कि प्रागभाव होता है। जबतक अज्ञान रहता है तबतक ये पांच रहते हैं और इन पांच की आदि विदित नहीं होती इसलिये अनादि और ज्ञान होने के पश्चात् नष्ट होजाते हैं। इसलिये सान्त अर्थात् नाशवाले कहाते हैं। (उत्तर) यह तुम्हारे दोनों श्लोक अशुद्ध हैं क्योंकि अविद्या के योग के विना जीव और माया के योग के विना ईश्वर तुम्हारे मत में सिद्ध नहीं हो "सकता। इससे तच्चितोर्योगः" जो छठा पदार्थ तुमने गिना है वह

नहीं रहा क्योंकि वह अविद्या माया जीव ईश्वर में चरितार्थ होगया और ब्रह्म तथा माया और विद्या के योग के विना ईश्वर नहीं बनता फिर ईश्वर को अविद्या और ब्रह्म से पृथक् गिनना व्यर्थ है। इसलिये दो ही पदार्थ अर्थात् ब्रह्म और अविद्या तुम्हारे मत में सिद्ध हो सकते हैं छः नहीं। तथा आप का प्रथम कार्योपाधि कारणोपाधि से जीव और ईश्वर का सिद्ध करना तब हो सकता कि जब अनन्त, नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्तस्वभाव, सर्वव्यापक ब्रह्म में अज्ञान सिद्ध करें। जो उसके एक देश में स्वाश्रय और स्वविषयक अज्ञान अनादि सर्वत्र मानोगे तो सब ब्रह्म शुद्ध नहीं हो सकता। और जब एक देश में अज्ञान मानोगे तो वह परिच्छिन्न होने से इधर उधर आता जाता रहेगा। जहां २ जायगा वहां २ का ब्रह्म अज्ञानी और जिस २ देश को छोड़ता जायगा उस २ देश का ब्रह्म ज्ञानी होता रहेगा तो किसी देश के ब्रह्म को अनादि शुद्ध ज्ञानयुक्त न कह सकोगे। और जो अज्ञान की सीमा में ब्रह्म है वह अज्ञान को जानेगा। बाहर और भीतर के ब्रह्म के टुकड़े हो जायेंगे। जो कहो कि टुकड़ा हो जाओ, ब्रह्म की क्या हानि तो अखण्ड नहीं। और जो अखण्ड है तो अज्ञानी नहीं। तथा ज्ञान के अभाव वा विपरीत ज्ञान भी गुण होने से किसी द्रव्य के साथ नित्य सम्बन्ध से रहेगा। यदि ऐसा है तो समवाय सम्बन्ध होने से अनित्य कभी नहीं हो सकता। और जैसे शरीर के एक देश में फोड़ा होने से सर्वत्र दुःख फैल जाता है वैसे ही एक देश में अज्ञान सुख दुःख क्लेशों की उपलब्धि होने से सब ब्रह्म दुःखादि के अनुभव से ही कार्योपाधि अर्थात् अन्तःकरण की उपाधि के योग से ब्रह्म को जीव मानोगे तो हम पूछते हैं कि ब्रह्म व्यापक है वा परिच्छिन्न? जो कहो व्यापक और उपाधि परिच्छिन्न है अर्थात् एकदेशी और पृथक् २ हैं तो अन्तःकरण चलता फिरता है वा नहीं? (उत्तर) चलता फिरता है। (प्रश्न) अन्तःकरण के साथ ब्रह्म भी चलता फिरता है वा स्थिर रहता है? (उत्तर) स्थिर रहता है। (प्रश्न) जब अन्तःकरण जिस २ देश को छोड़ता है उस २ देश का ब्रह्म अज्ञानरहित और जिस २ देश को प्राप्त होता है उस २ देश का शुद्ध ब्रह्म अज्ञानी होता होगा। वैसे क्षण में ज्ञानी और अज्ञानी ब्रह्म होता रहेगा।

इससे मोक्ष और बन्ध भी क्षणभङ्ग होगा। और जैसे अन्य के देखे का अन्य स्मरण नहीं कर सकता वैसे कल की देखी सुनी हुई वस्तु वा बात का ज्ञान नहीं रह सकता। क्योंकि जिस समय देखा सुना था वह दूसरा देश और दूसरा काल, जिस समय स्मरण करता वह दूसरा देश और काल है। जो कहो कि ब्रह्म एक है तो सर्वज्ञ क्यों नहीं? जो कहो कि अन्तःकरण भिन्न २ हैं, इससे वह भी भिन्न २ हो जाता होगा, तो वह जड़ है उस में ज्ञान नहीं हो सकता। जो कहो कि न केवल ब्रह्म और न केवल अन्तःकरण को ज्ञान होता है किन्तु अन्तःकरणस्थ चिदाभास को ज्ञान होता है तो भी चेतन ही को अन्तःकरण द्वारा ज्ञान हुआ तो वह नेत्रद्वारा अल्प अल्पज्ञ क्यों है?। इसलिये कारणोपाधि और कार्योपाधि के योग से ब्रह्म जीव और ईश्वर नहीं बना सकोगे। किन्तु ईश्वर नाम ब्रह्म का है और ब्रह्म से भिन्न अनादि, अनुत्पन्न और अमृतस्वरूप जीव का नाम जीव है। जो तुम कहो कि जीव चिदाभास का नाम है तो वह क्षणभङ्ग होने से नष्ट हो जायगा तो मोक्ष का सुख कौन भोगेगा? इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ न है और न होगा। (प्रश्न) तो "सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" छान्दोग्य० अद्वैतसिद्धि कैसी होगी? हमारे मत में तो ब्रह्म से पृथक् कोई सजातीय, विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है। जब जीव दूसरा है तो अद्वैतसिद्धि कैसे हो सकती है? (उत्तर) इस भ्रम में पड़ क्यों डरते हो? विशेष्य विशेषण विद्या का ज्ञान करो कि उसका क्या फल है। जो कहो कि "व्यावर्त्तकं विशेषणं भवतीति" विशेषण भेदकारक होता है तो इतना और भी मानो कि "प्रवर्त्तकं प्रकाशकमपि विशेषणं भवतीति" विशेषण प्रवर्त्तक और प्रकाशक भी होता है। तो समझो कि अद्वैत विशेषण ब्रह्म का है। इस में व्यावर्त्तक धर्म यह है कि अद्वैत वस्तु अर्थात् जो अनेक जीव और तत्त्व हैं उन से ब्रह्म को पृथक् करता है और विशेषण का प्रकाशक धर्म यह है कि ब्रह्म के एक होने की प्रवृत्ति करता है जैसे "अस्मिन्नगरेऽद्वितीयो धनाढ्यो देवदत्तः। अस्यां सेनायामद्वितीयः शूरवीरो विक्रमसिंहः"। किसी ने किसी से कहा कि इस नगर में अद्वितीय धनाढ्य देवदत्त और इस सेना में अद्वितीय शूरवीर

विक्रमसिंह है। इससे क्या सिद्ध हुआ कि देवदत्त के सदृश इस नगर में दूसरा धनाढ्य और इस सेना में विक्रमसिंह के समान दूसरा शूरवीर नहीं है न्यून तो हैं। और पृथिवी आदि जड़ पदार्थ, पश्वादि प्राणि और वृक्षादि भी हैं उनका निषेध नहीं हो सकता। वैसे ही ब्रह्म के सदृश जीव वा प्रकृति नहीं है किन्तु न्यून तो है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ब्रह्म सदा एक है और जीव तथा प्रकृतिस्थ तत्त्व अनेक हैं। उनसे भिन्न कर ब्रह्म के एकत्व को सिद्ध करने हारा अद्वैत वा अद्वितीय विशेषण है। इससे जीव वा प्रकृति का और कार्य्य-रूप जगत् का अभाव और निषेध नहीं हो सकता, किन्तु ये सब हैं, परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं। इससे न अद्वैतसिद्धि और न द्वैतसिद्धि की हानि होती है। घबराहट में मत पड़ो, सोचो और समझो। (**प्रश्न**) ब्रह्म के सत्, चित्, आनन्द और जीव के अस्ति, भाति, प्रियरूप से एकता होती है। फिर क्यों खण्डन करते हो? (**उत्तर**) किञ्चित् साधर्म्य मिलने से एकता नहीं हो सकती। जैसे पृथिवी जड़, दृश्य है वैसे जल और अग्नि आदि भी जड़ और दृश्य हैं, इतने से एकता नहीं होती। इनमें वैधर्म्य भेदकारक अर्थात् विरुद्ध धर्म जैसे गन्ध, रूक्षता, काठिन्य आदि गुण पृथिवी और रस द्रवत्व कोमल-त्वादि धर्म जल और रूप दाहकत्वादि धर्म अग्नि के होने से एकता नहीं। जैसे मनुष्य और कीड़ी आंख से देखते, मुख से खाते और पग से चलते हैं तथापि मनुष्य की आकृति दो पग और कीड़ी की आकृति अनेक पग आदि भिन्न होने से एकता नहीं होती, वैसे परमेश्वर के अनन्त ज्ञान, आनन्द, बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता जीव से और जीव के अल्पज्ञान, अल्पबल, अल्पस्वरूप सब भ्रान्तित्व और परिच्छिन्नतादि गुण ब्रह्म से भिन्न होने से जीव और परमेश्वर एक नहीं क्योंकि इनका स्वरूप भी (परमेश्वर अतिसूक्ष्म और जीव उससे कुछ स्थूल होने से) भिन्न है (**प्रश्न**)—

अथोदरमन्तरं कुरुते। अथ तस्य भयं भवति द्वितीयाद्वै भयं भवति॥

यह बृहदारण्यक का वचन है। जो ब्रह्म और जीव में थोड़ा भी भेद करता है उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि दूसरे ही से भय होता है। (**उत्तर**)

इस का अर्थ यह नहीं है किन्तु जो जीव परमेश्वर का निषेध वा किसी एक देश काल में परिच्छिन्न परमात्मा को माने वा उसकी आज्ञा और गुण कर्म स्वभाव से विरुद्ध होवे अथवा किसी दूसरे मनुष्य से वैर करे उसको भय प्राप्त होता है क्योंकि द्वितीय बुद्धि अर्थात् ईश्वर से मुझ से कुछ सम्बन्ध नहीं तथा किसी मनुष्य से कहे कि तुझ को मैं कुछ नहीं समझता तू मेरा कुछ भी नहीं कर सकता वा किसी की हानि करता और दुःख देता जाय तो उसको उनसे भय होता है। और सब प्रकार का अविरोध हो तो वे एक कहाते हैं जैसा संसार में कहते हैं कि देवदत्त, यज्ञदत्त और विष्णुमित्र एक हैं अर्थात् अविरुद्ध हैं। विरोध न रहने से सुख और विरोध से दुःख प्राप्त होता है। (प्रश्न) ब्रह्म और जीव की सदा एकता अनेकता रहती है वा कभी दोनों मिलके एक भी होते हैं वा नहीं ? (उत्तर) अभी इसके पूर्व कुछ उत्तर देदिया है परन्तु साधर्म्य अन्वयभाव से एकता होती है। जैसे आकाश से मूर्त्त द्रव्य जड़त्व होने से और कभी पृथक् न रहने से एकता और आकाश के विभु, सूक्ष्म, अरूप, अनन्त आदि गुण और मूर्त्त के परिच्छिन्न दृश्यत्व आदि वैधर्म्य से भेद होता है अर्थात् जैसे पृथिव्यादि द्रव्य आकाश से भिन्न कभी नहीं रहते क्योंकि अन्वय अर्थात् अवकाश के विना मूर्त्त द्रव्य कभी नहीं रह सकता और व्यतिरेक अर्थात् स्वरूप से भिन्न होने से पृथक्ता है वैसे ब्रह्म के व्यापक होने से जीव और पृथिवी आदि द्रव्य उससे अलग नहीं रहते और स्वरूप से एक भी नहीं होते जैसे घर के बनाने के पूर्व भिन्न २ देश में मट्टी लकड़ी और लोहा आदि पदार्थ आकाश ही में रहते हैं जब घर बनगया तब भी आकाश में हैं और जब वह नष्ट होगया अर्थात् उस घर के सब अवयव भिन्न २ देश में प्राप्त होगये तब भी आकाश में हैं अर्थात् तीन काल में आकाश से भिन्न नहीं हो सकते और स्वरूप से भिन्न होने से न कभी एक थे, हैं और होंगे, इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते। आज कल के वेदान्तियों की दृष्टि काणे पुरुष के समान अन्वय की ओर पड़ के व्यतिरेकभाव से छूट विरुद्ध होगई है। कोई भी ऐसा द्रव्य नहीं है कि जिसमें

सगुणनिर्गुणता, अन्वय, व्यतिरेक, साधर्म्य, वैधर्म्य और विशेषण भाव न हो। (प्रश्न) परमेश्वर सगुण है वा निर्गुण? (उत्तर) दोनों प्रकार है। (प्रश्न) भला एक घर में दो तलवार कभी रह सकती हैं। एक पदार्थ में सगुणता और निर्गुणता कैसे रह सकती हैं? (उत्तर) जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं हैं वैसे चेतन में इच्छादि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं हैं। इसलिये "यद्गुणैस्सह वर्त्तमानं तत्सगुणम्" "गुणेभ्यो यन्निर्गतं पृथग्भूतं तन्निर्गुणम्" जो गुणों से सहित वह सगुण और जो गुणों से रहित वह निर्गुण कहाता है। अपने २ स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता वा केवल सगुणता हो किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान, बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से निर्गुण कहाता है। (प्रश्न) संसार में निराकार को निर्गुण और साकार को सगुण कहते हैं। अर्थात् जब परमेश्वर जन्म नहीं लेता तब निर्गुण और जब अवतार लेता है तब सगुण कहाता है? (उत्तर) यह कल्पना केवल अज्ञानी और अविद्वानों की है। जिनको विद्या नहीं होती वे पशु के समान यथा तथा बर्ड़ाया करते हैं। जैसे सन्निपात ज्वरयुक्त मनुष्य अण्डबण्ड बकता है वैसे ही अविद्वानों के कहे वा लेख को व्यर्थ समझना चाहिये। (प्रश्न) परमेश्वर रागी है वा विरक्त? (उत्तर) दोनों में नहीं। क्योंकि राग अपने से भिन्न उत्तम पदार्थों में होता है, सो परमेश्वर से कोई पदार्थ पृथक् वा उत्तम नहीं। इसलिये उसमें राग का सम्भव नहीं। और जो प्राप्त को छोड़ देवे उसको विरक्त कहते हैं। ईश्वर व्यापक होने से किसी पदार्थ को छोड़ ही नहीं सकता, इसलिये विरक्त भी नहीं। (प्रश्न) ईश्वर में इच्छा है वा नहीं? (उत्तर) वैसी इच्छा नहीं। क्योंकि इच्छा भी अप्राप्त, उत्तम और जिसकी प्राप्ति से सुख विशेष होवे [उसकी होती है] तो ईश्वर में इच्छा होसके, न उससे कोई अप्राप्त पदार्थ, न कोई उससे उत्तम और पूर्ण सुखयुक्त होने से सुख की अभि-

लाषा भी नहीं है, इसलिये ईश्वर में इच्छा का तो सम्भव नहीं किन्तु ईक्षण अर्थात् सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना कहाता है वह ईक्षण है। इत्यादि संक्षिप्त विषयों से ही सज्जन लोग बहुत विस्तरण कर लेंगे ॥

अब संक्षेप से ईश्वर का विषय लिखकर वेद का विषय लिखते हैं ॥

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भन्तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ॥ अथर्व० कां० १०। प्रपा० २३। अनु० ४। मं० २० ॥

जिस परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद प्रकाशित हुए हैं वह कौनसा देव है? इसका (उत्तर) जो सब को उत्पन्न करके धारण कर रहा है वह परमात्मा है ॥

स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
यजु० अ० ४०। मं० ८ ॥

जो स्वयम्भू, सर्वव्यापक, शुद्ध, सनातन, निराकार परमेश्वर है वह सनातन जीवरूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीतिपूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करता है। (प्रश्न) परमेश्वर को आप निराकार मानते हो वा साकार? (उत्तर) निराकार मानते हैं। (प्रश्न) जब निराकार है तो वेदविद्या का उपदेश विना मुख के वर्णोच्चारण कैसे होसका होगा? क्योंकि वर्णों के उच्चारण में ताल्वादि स्थान, जिह्वा का प्रयत्न अवश्य होना चाहिये। (उत्तर) परमेश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने से जीवों को अपनी व्याप्ति से वेदविद्या के उपदेश करने में कुछ भी मुखादि की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि मुख जिह्वा से वर्णोच्चारण अपने से भिन्न के बोध होने के लिये किया जाता है, कुछ अपने लिये नहीं। क्योंकि मुख जिह्वा के व्यापार करे विना ही मन में अनेक व्यवहारों का विचार और शब्दोच्चारण होता रहता है। कानों को अंगुलियों से मूंद के देखो, सुनो कि विना मुख जिह्वा ताल्वादि स्थानों के कैसे २ शब्द हो रहे हैं, वैसे जीवों को अन्तर्यामीरूप से उपदेश किया है। किन्तु केवल

दूसरों को समझाने के लिये उच्चारण करने की आवश्यकता है। जब परमेश्वर निराकार सर्वव्यापक है तो अपनी अखिल वेदविद्या का उपदेश जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में प्रकाशित कर देता है। फिर वह मनुष्य अपने मुख से उच्चारण करके दूसरों को सुनाता है इसलिये ईश्वर में यह दोष नहीं आसकता। (प्रश्न) किनके आत्मा में कब वेदों का प्रकाश किया। (उत्तर)—

अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात्सामवेदः ॥
शत० [११ । ४ । २ । ३]

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अङ्गिरा इन ऋषियों के आत्मा में एक २ वेद का प्रकाश किया। (प्रश्न)—

यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥
[श्वेताश्व० अ० ६ । मं० १८]

यह उपनिषद् का वचन है। इस वचन से ब्रह्माजी के हृदय में वेदों का उपदेश किया है। फिर अग्न्यादि ऋषियों के आत्मा में क्यों कहा ? (उत्तर) ब्रह्मा के आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया, देखो ! मनु ने क्या लिखा है—

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥
मनु० [१ । २३]

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि आदि चारों महर्षियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये और उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा से ऋग्यजुः साम और अथर्ववेद का ग्रहण किया। (प्रश्न) उन चारों ही में वेदों का प्रकाश किया अन्य में नहीं इससे ईश्वर पक्षपाती होता है। (उत्तर) वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे अन्य उनके सदृश नहीं थे इसलिये पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं में किया (प्रश्न)

किसी देशभाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया ? (उत्तर) जो किसी देशभाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती होजाता, क्योंकि जिस देश की भाषा में प्रकाश करता उनको सुगमता और विदेशियों को कठिनता वेदों के पढ़ने पढ़ाने की होती। इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया, जो किसी देश की भाषा नहीं। और वेदभाषा अन्य सब भाषाओं का कारण है। उसी में वेदों का प्रकाश किया। जैसे ईश्वर की पृथिवी आदि सृष्टि सब देश और देशवालों के लिये एकसी और सब शिल्पविद्या का कारण है वैसे परमेश्वर की विद्या की भाषा भी एकसी होनी चाहिये कि सब देशवालों को पढ़ने पढ़ाने में तुल्य परिश्रम होने से ईश्वर पक्षपाती नहीं होता। और सब भाषाओं का कारण भी है (प्रश्न) वेद ईश्वरकृत हैं अन्यकृत नहीं, इसमें क्या प्रमाण ? (उत्तर) जैसा ईश्वर, पवित्र, सर्वविद्यावित्, शुद्धगुणकर्मस्वभाव, न्यायकारी, दयालु आदि गुण वाला है वैसे जिस पुस्तक में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल कथन हो वह ईश्वरकृत अन्य नहीं और जिसमें सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाण आप्तों के और पवित्रात्मा के व्यवहार से विरुद्ध कथन न हो वह ईश्वरोक्त। जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त, जैसा परमेश्वर है और जैसा सृष्टिक्रम रक्खा है वैसा ही ईश्वर, सृष्टिकार्य, कारण और जीव का प्रतिपादन जिसमें होवे वह परमेश्वरोक्त पुस्तक होता है और जो प्रत्यक्षादि प्रमाण विषयों से अविरुद्ध शुद्धात्मा के स्वभाव से विरुद्ध न हो, इस प्रकार के वेद हैं। अन्य बाइबल कुरान आदि पुस्तकें नहीं इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरान के प्रकरण में तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी। (प्रश्न) वेद को ईश्वर से होने की आवश्यकता कुछ भी नहीं क्योंकि मनुष्य लोग क्रमशः ज्ञान बढ़ाते जाकर पश्चात् पुस्तक भी बना लेंगे। (उत्तर) कभी नहीं बना सकते, क्योंकि विना कारण के कार्योत्पत्ति का होना असम्भव है। जैसे जङ्गली मनुष्य सृष्टि को देखकर भी विद्वान् नहीं होते और जब उनको कोई शिक्षक मिलजाय तो विद्वान् होजाते हैं और अब भी किसी से पढ़े विना कोई भी विद्वान् नहीं होता। इस प्रकार जो परमात्मा उन आदिसृष्टि के ऋषियों को वेदविद्या न पढ़ाता और वे अन्य को न

पढ़ाते तो सब लोग अविद्वान् ही रह जाते । जैसे किसी के बालक को जन्म से एकान्त देश अविद्वानों वा पशुओं के सङ्ग में रख देवे तो वह जैसा सङ्ग है वैसा ही हो जायगा । इसका दृष्टान्त जङ्गली भील आदि हैं जबतक आर्यावर्त्त देश से शिक्षा नहीं गई थी तबतक मिश्र यूनान और यूरोप देश आदिस्थ मनुष्यों में कुछ भी विद्या नहीं हुई थी और इङ्गलेण्ड के कुलुम्बस आदि पुरुष अमेरिका में जबतक नहीं गये थे तबतक वे भी सहस्रों, लाखों, क्रोड़ों वर्षों से मूर्ख अर्थात् विद्याहीन थे, पुनः सुशिक्षा के पाने से विद्वान् होगये हैं, वैसे ही परमात्मा से सृष्टि की आदि में विद्या शिक्षा की प्राप्ति से उत्तरोत्तर काल में विद्वान् होते आये ।

स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥
योगसू० [समाधिपादे सू० २६]

जैसे वर्त्तमान समय में हम लोग अध्यापकों से पढ़ ही के विद्वान् होते हैं वैसे परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न हुए अग्नि आदि ऋषियों का गुरु अर्थात् पढ़ानेहारा है क्योंकि जैसे जीव सुषुप्ति और प्रलय में ज्ञानरहित होजाते हैं वैसा परमेश्वर नहीं होता । उसका ज्ञान नित्य है । इसलिये यह निश्चित जानना चाहिये कि विना निमित्त से नैमित्तिक अर्थ सिद्ध कभी नहीं होता । (प्रश्न) वेद संस्कृतभाषा में प्रकाशित हुए और वे अग्नि आदि ऋषि लोग उस संस्कृतभाषा को नहीं जानते थे फिर वेदों का अर्थ उन्होंने कैसे जाना ? (उत्तर) परमेश्वर ने जनाया और धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब २ जिस २ के अर्थ को जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थित हुए तब २ परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये । जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थप्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने वह अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहासपूर्वक ग्रन्थ बनाये । उनका नाम ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्म जो वेद उसका व्याख्यान ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ । और—

ऋषयो (मन्त्रदृष्टयः)····मन्त्रान्सम्प्रादुः ॥ निरु० [१ । २०]

जिस २ मन्त्रार्थ का दर्शन जिस २ ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिये अद्यावधि उस २ मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। जो कोई ऋषियों को मन्त्रकर्त्ता बतलावें उनको मिथ्यावादी समझें। वे तो मन्त्रों के अर्थप्रकाशक हैं। (प्रश्न) वेद किन ग्रन्थों का नाम है ? (उत्तर) ऋक्, यजुः, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का अन्य का नहीं (प्रश्न)—

मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् ॥

इत्यादि कात्यायनादिकृत प्रतिज्ञा सूत्रादि का अर्थ क्या करोगे ? (उत्तर) देखो संहिता पुस्तक के आरम्भ अध्याय की समाप्ति में वेद शब्द सनातन से लिखा आता है और ब्राह्मण पुस्तक के आरम्भ वा अध्याय की समाप्ति में कहीं नहीं लिखा। और निरुक्त में—

इत्यपि निगमो भवति। इति ब्राह्मणम् ॥
[नि० अ० ५ । खं० ३ । ४]

छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि ॥ [अष्टाध्या० ४ । २ । ६६]

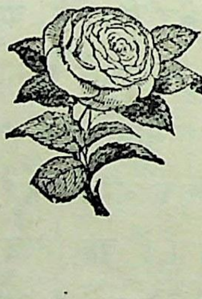
यह पाणिनीय सूत्र है। इससे भी स्पष्ट विदित होता है कि वेद मन्त्रभाग और ब्राह्मण व्याख्याभाग है। इसमें जो विशेष देखना चाहें तो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। वहां अनेकशः प्रमाणों से विरुद्ध होने से यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता ऐसा ही सिद्ध किया गया है। क्योंकि जो माने तो वेद सनातन कभी नहीं हो सकें। क्योंकि ब्राह्मण पुस्तकों में बहुतसे ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं। और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है। वह ग्रन्थ भी उसके जन्म के पश्चात् होता है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं, किन्तु जिस २ शब्द से विद्या का बोध होवे उस २ शब्द का प्रयोग किया है। किसी विशेष मनुष्य

की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं। (प्रश्न) वेदों की कितनी शाखा हैं? (उत्तर) ग्यारह सौ सत्ताईस (प्रश्न) शाखा क्या कहाती हैं? (उत्तर) व्याख्यान को शाखा कहते हैं। (प्रश्न) संसार में विद्वान् वेद के अवयवभूत विभागों को शाखा मानते हैं? (उत्तर) तनिकसा विचार करो तो ठीक, क्योंकि जितनी शाखा हैं वे आश्वलायन आदि ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं और मन्त्रसंहिता परमेश्वर के नाम से प्रसिद्ध है। जैसा चारों वेदों को परमेश्वरकृत मानते हैं वैसे आश्वलायनी आदि शाखाओं को उस २ ऋषिकृत मानते हैं और सब शाखाओं में मन्त्रों की प्रतीक धर के व्याख्या करते हैं, जैसे तैत्तिरीय शाखा में "इषेत्वोर्जे त्वेति" इत्यादि प्रतीकें धर के व्याख्यान किया है। और वेदसंहिताओं में किसी की प्रतीक नहीं धरी। इसलिये परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष और आश्वलायनादि सब शाखा ऋषि मुनिकृत है परमेश्वरकृत नहीं। जो इस विषय की विशेष व्याख्या देखना चाहें वे "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लेवें। जैसे माता पिता अपने सन्तानों पर कृपादृष्टि कर उन्नति चाहते हैं वैसे ही परमात्मा ने सब मनुष्यों पर कृपा करके वेदों को प्रकाशित किया है, जिससे मनुष्य अविद्यान्धकार भ्रमजाल से छूटकर विद्या विज्ञानरूप सूर्य को प्राप्त होकर अत्यानन्द में रहें और विद्या तथा सुखों की वृद्धि करते जायें। (प्रश्न) वेद नित्य हैं वा अनित्य? (उत्तर) नित्य हैं क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं। जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव नित्य और अनित्य द्रव्य के अनित्य होते हैं। (प्रश्न) क्या यह पुस्तक भी नित्य है? (उत्तर) नहीं, क्योंकि पुस्तक तो पत्र और स्याही का बना है वह नित्य कैसे हो सकता है? किन्तु जो शब्द अर्थ और सम्बन्ध हैं वे नित्य हैं (प्रश्न) ईश्वर ने उन ऋषियों को ज्ञान दिया होगा और उस ज्ञान से उन लोगों ने वेद बना लिये होंगे? (उत्तर) ज्ञान ज्ञेय के विना नहीं होता गायत्र्यादि छन्द षड्जादि और उदात्ताऽनुदात्तादि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ के विना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र बनासकें हां, वेद को पढ़ने के पश्चात् व्याकरण, निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने

विद्याओं के प्रकाश के लिये किये हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिये वेद परमेश्वरोक्त हैं। इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये। और जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद, अर्थात् जो कुछ वेदों में कहा है हम उसको मानते हैं।

अब इसके आगे सृष्टि के विषय में लिखेंगे। यह संक्षेप से ईश्वर और वेदविषय में व्याख्यान किया है॥ ७॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित ईश्वरवेदविषये सप्तमः
समुल्लासः सम्पूर्णः॥ ७॥



अथ अष्टमसमुल्लासारम्भः

अथ सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयविषयान् व्याख्यास्यामः

इयं विसृष्टिर्यत आ बभूव यदि वा दधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ १ ॥

तम आसीत्तमसा गूढमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् । तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ २ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १२९ । मं० ७ । ३ ॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १ ॥

पुरुष एवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ ४ ॥ यजुः० अ० ३१ । मं० २ ॥

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति । यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म ॥ ५ ॥ तैत्तिरीयोपनि० [भृगुवल्ली । अनु० १]

हे (अङ्ग) मनुष्य ! जिससे यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है, जो धारण और प्रलय करता है, जो इस जगत् का स्वामी जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है । उसको तू जान और दूसरे को सृष्टिकर्त्ता मत मान ॥ १ ॥ यह सब जगत् सृष्टि के पहिले अन्धकार से आवृत, रात्रिरूप में जानने के अयोग्य, आकाशरूप सब जगत्

तथा तुच्छ अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सन्मुख एकदेशी आच्छादित था पश्चात् परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारणरूप से कार्यरूप करदिया ॥ २ ॥ हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् हुआ है और होगा उसका एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था और जिसने पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें ॥ ३ ॥ हे मनुष्यो ! जो सब में पूर्ण पुरुष और जो नाश रहित कारण और जीव का स्वामी जो पृथिव्यादि जड़ और जीव से अतिरिक्त है वही पुरुष इस सब भूत, भविष्यत् और वर्तमानस्थ जगत् को बनानेवाला है ॥ ४ ॥ जिस परमात्मा की रचना से ये सब पृथिव्यादि भूत उत्पन्न होते हैं जिससे जीव और जिसमें प्रलय को प्राप्त होते हैं, वह ब्रह्म है उसके जानने की इच्छा करो ॥ ५ ॥

जन्माद्यस्य यतः ॥ शारीरिक सू० अ० १ । पा० १ । सू० २ ॥

जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है। (प्रश्न) यह जगत् परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है वा अन्य से ? (उत्तर) निमित्त कारण परमात्मा से उत्पन्न हुआ है परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। (प्रश्न) क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ? (उत्तर) नहीं वह अनादि है। (प्रश्न) आदि किसको कहते और कितने पदार्थ अनादि हैं ? (उत्तर) ईश्वर, जीव और जगत् का कारण ये तीन अनादि हैं (प्रश्न) इसमें क्या प्रमाण है ? (उत्तर):—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ॥ १ ॥ ऋ० मं० १ । सू० १६४ । मं० २० ॥

शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ २ ॥ यजु० अ० ४० । मं० ८ ॥

(द्वा) जो ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखाया) परस्पर

मित्रतायुक्त सनातन अनादि हैं और (समानम्) वैसा ही (वृक्षम्) अनादि मूलरूप कारण और शाखारूप कार्ययुक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है वह तीसरा अनादि पदार्थ इन तीनों के गुण, कर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्षरूप संसार में पापपुण्यरूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छे प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान होरहा है। जीव से ईश्वर, ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं ॥ १ ॥ (शाश्वती) अर्थात् अनादि सनातन जीवरूप प्रजा के लिये वेद द्वारा परमात्मा ने सब विद्याओं का बोध किया है ॥ २ ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः । अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ [श्वेताश्वतरोपनिषदि । अ० ४ । मं० ५]

यह उपनिषद् का वचन है। प्रकृति जीव और परमात्मा तीनों अज अर्थात् जिनका जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये जन्म लेते अर्थात् ये तीन सब जगत् के कारण हैं। इनका कारण कोई नहीं। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता है और उसमें परमात्मा न फँसता और न उस का भोग करता है। ईश्वर और जीव का लक्षण ईश्वर विषय में कह आये। अब प्रकृति का लक्षण लिखते हैं—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः प्रकृतेर्महान् महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं पञ्चतन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः ॥ साङ्ख्यसू० [अ० १ । सू० ६१]

(सत्व) शुद्ध (रज) मध्य (तमः) जाड्य अर्थात् जड़ता तीन वस्तु मिलकर जो एक संघात है उस का नाम प्रकृति है। उससे महत्तत्व बुद्धि, उससे अहङ्कार, उससे पांच तन्मात्रा सूक्ष्म भूत और दश इन्द्रियां तथा ग्यारहवां मन,

पांच तन्मात्राओं से पृथिव्यादि पांच भूत, ये चौबीस और पचीसवां पुरुष अर्थात् जीव और परमेश्वर है। इनमें से प्रकृति अविकारिणी और महत्तत्त्व अहङ्कार तथा पांच सूक्ष्म भूत प्रकृति का कार्य्य और इन्द्रियां मन तथा स्थूल-भूतों का कारण है। पुरुष न किसी की प्रकृति उपादान कारण और न किसी का कार्य्य है (प्रश्न):—

सदेव सोम्येदमग्र आसीत् ॥ १ ॥ [छान्दो० । प्र० ६ । खं० २] असद्वा इदमग्र आसीत् ॥ २ ॥ [तैत्तिरीयोपनि० । ब्रह्मानन्दव० अनु० ७] आत्मैवेदमग्र आसीत् ॥ ३ ॥ [बृह० अ० १ । ब्रा० ४ । मं० १] ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् ॥ ४ ॥ [शत० ११ । १ । ११ । १]

ये उपनिषदों के वचन हैं। हे श्वेतकेतो ! यह जगत् सृष्टि के पूर्व, सत् । १ । असत् । २ । आत्मा । ३ । और ब्रह्मस्वरूप था । ४ । पश्चात्:—

तदैक्षत बहुः स्यां प्रजायेयेति । सोऽकामयत बहुः स्यां प्रजायेयेति ॥ तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दवल्ली । अनु० ६ ॥

वही परमात्मा अपनी इच्छा से बहुरूप हो गया है ॥

सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन ॥

यह भी उपनिषद् का वचन है—जो यह जगत् है वह सब निश्चय करके ब्रह्म है उसमें दूसरे नाना प्रकार के पदार्थ कुछ भी नहीं किन्तु सब ब्रह्मरूप हैं (उत्तर) क्यों इन वचनों का अनर्थ करते हो ? क्योंकि उन्हीं उपनिषदों में:—

[एवमेव खलु] सोम्यान्नेन शुङ्गेनापो मूलमन्विच्छाद्भिस्सोम्य शुङ्गेन तेजोमूलमन्विच्छ तेजसा सोम्य शुङ्गेन सन्मूलमन्विच्छ सन्मूलाः सोम्येमाः सर्वाः प्रजाः सदायतनाः सत्प्रतिष्ठाः ॥ छान्दोग्य उपनि० प्र० ६ । खं० ८ । मं० ४ ॥

हे श्वेतकेतो ! अन्नरूप पृथिवी कार्य्य से जलरूप मूल कारण को तू जान। कार्यरूप जल से तेजोरूप मूल और तेजोरूप कार्य से सद्रूप कारण जो नित्य

प्रकृति है उस को जान । यही सत्यस्वरूप प्रकृति सब जगत् का मूल घर और स्थिति का स्थान है । यह सब जगत् सृष्टि के पूर्व असत् के सदृश और जीवात्मा, ब्रह्म और प्रकृति में लीन होकर वर्त्तमान था, अभाव न था । और जो (सर्वं खलु) यह वचन ऐसा है जैसा कि "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुंडवा जोड़ा" ऐसी लीला का है क्योंकि—

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ॥
छान्दोग्य० [प्र० ३ ॥ खं० १४ । मं० १] और—

नेह नानास्ति किंचन ॥ [कठोपनि० अ० २ । वल्ली० ४ । मं० ११]

जैसे शरीर के अङ्ग जबतक शरीर के साथ रहते हैं तबतक काम के और अलग होने से निकम्मे हो जाते हैं, वैसे ही प्रकरणस्थ वाक्य सार्थक और प्रकरण से अलग करने वा किसी अन्य के साथ जोड़ने से अनर्थक हो जाते हैं । सुनो, इसका अर्थ यह है । हे जीव ! तू ब्रह्म की उपासना कर, जिस ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और जीवन होता है, जिसके बनाने और धारण से यह सब जगत् विद्यमान हुआ है, वा ब्रह्म से सहचरित है, उसको छोड़ दूसरे की उपासना न करनी । इस चेतनमात्र अखण्डैकरस ब्रह्मरूप में नाना वस्तुओं का मेल नहीं है किन्तु ये सब पृथक् २ स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं । (प्रश्न) जगत् के कारण कितने होते हैं ? (उत्तर) तीन, एक निमित्त, दूसरा उपादान, तीसरा साधारण । निमित्त कारण उसको कहते हैं कि जिसके बनाने से कुछ बने न बनाने से न बने । आप स्वयं बने नहीं दूसरे को प्रकारान्तर बना देवे । दूसरा उपादान कारण उसको कहते हैं जिसके विना कुछ न बने, वही अवस्थान्तर रूप होके बने और बिगड़े भी । तीसरा साधारण कारण उसको कहते हैं कि जो बनाने में साधन और साधारण निमित्त हो । निमित्त कारण दो प्रकार के हैं । एक सब सृष्टि को कारण से बनाने धारने और प्रलय करने तथा सब की व्यवस्था रखनेवाला मुख्य निमित्त कारण परमात्मा । दूसरा—परमेश्वर की सृष्टि में से पदार्थों को लेकर अनेक विध कार्य्या-

न्तर बनानेवाला साधारण निमित्त कारण जीव । उपादान कारण प्रकृति, परमाणु जिसको सब संसार के बनाने की सामग्री कहते हैं । वह जड़ होने से आपसे आप न बन और न बिगड़ सकती है किन्तु दूसरे के बनाने से बनती और बिगाड़ने से बिगड़ती है । कहीं २ जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है, जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार होजाते हैं और अग्नि आदि जड़ के संयोग से बिगड़ भी जाते हैं परन्तु इनका नियम पूर्वक बनना वा बिगड़ना परमेश्वर और जीव के आधीन है । जब कोई वस्तु बनाई जाती है तब जिन २ साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन और दिशा काल और आकाश साधारण कारण जैसे घड़े को बनाने वाला कुम्हार निमित्त, मट्टी उपादान और दण्ड चक्र आदि सामान्य निमित्त दिशा, काल, आकाश, प्रकाश, आंख, हाथ, ज्ञान, क्रिया आदि निमित्त साधारण और निमित्त कारण भी होते हैं । इन तीन कारणों के विना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है । (प्रश्न) नवीन वेदान्ति लोग केवल परमेश्वर ही को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं—

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च ॥ [मुण्डको० मुं० १ । खं० १ । मं० ७]

यह उपनिषद् का वचन है । जैसे मकरी बाहर से कोई पदार्थ नहीं लेती अपने ही में से तन्तु निकाल जाला बनाकर आप ही उसमें खेलती है वैसे ब्रह्म अपने में से जगत् को बना आप जगदाकार बन आप ही क्रीड़ा कर रहा है । सो ब्रह्म इच्छा और कामना करता हुआ कि मैं बहुरूप अर्थात् जगदाकार होजाऊं । सङ्कल्पमात्र से सब जगद्रूप बनगया क्योंकि—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा ॥ [गौड़पादीय का० श्लोक ३१]

यह माण्डूक्योपनिषद् पर कारिका है । जो प्रथम न हो अन्त में न रहे वह वर्त्तमान में भी नहीं है । किन्तु सृष्टि की आदि में जगत् न था ब्रह्म था । प्रलय के अन्त में संसार न रहेगा और केवल ब्रह्म रहेगा तो वर्त्तमान में सब

जगत् ब्रह्म क्यों नहीं ? (उत्तर) जो तुम्हारे कहने के अनुसार जगत् का उपादान कारण ब्रह्म होवे तो वह परिणामी, अवस्थान्तरयुक्त विकारी होजावे । और उपादान कारण के गुण कर्म स्वभाव कार्य में भी आते हैं:—

कारणगुणपूर्वकः कार्य्यगुणो दृष्टः ॥ वैशेषिक सू० [अ० २ । आ० १ । सू० २४]

उपादान कारण के सदृश कार्य में गुण होते हैं तो ब्रह्म सच्चिदानन्दस्वरूप जगत्कार्य्यरूप से असत् जड़ और आनन्द रहित; ब्रह्म अज और जगत् उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म अदृश्य और जगत् दृश्य है, ब्रह्म अखण्ड और जगत् खण्डरूप है, जो ब्रह्म से पृथिव्यादि कार्य्य उत्पन्न होवें तो पृथिव्यादि में कार्य्य के जड़ादि गुण ब्रह्म में भी होवें अर्थात् जैसे पृथिव्यादि जड़ हैं वैसा ब्रह्म भी जड़ होजाय और जैसा परमेश्वर चेतन है वैसा पृथिव्यादि कार्य्य भी चेतन होना चाहिये । और जो मकरी का दृष्टान्त दिया वह तुम्हारे मत का साधक नहीं किन्तु बाधक है क्योंकि वह जड़रूप शरीर तन्तु का उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है और यह भी परमात्मा की अद्भुत रचना का प्रभाव है क्योंकि अन्य जन्तु के शरीर से जीव तन्तु नहीं निकाल सकता । वैसे ही व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति और परमाणु कारण से स्थूल जगत् को बनाकर बाहर स्थूलरूप कर आप उसी में व्यापक होके साक्षीभूत आनन्दमय होरहा है ॥ और जो परमात्मा ने ईक्षण अर्थात् दर्शन, विचार और कामना की कि मैं सब जगत् को बनाकर प्रसिद्ध होऊं अर्थात् जब जगत् उत्पन्न होता है तभी जीवों के विचार, ज्ञान, ध्यान, उपदेश, श्रवण में परमेश्वर प्रसिद्ध और बहुत स्थूल पदार्थों से सह वर्त्तमान होता है । जब प्रलय होता है तब परमेश्वर और मुक्त-जीवों को छोड़ के उसको कोई नहीं जानता । और जो यह कारिका है वह भ्रममूलक है क्योंकि सृष्टि की आदि अर्थात् प्रलय में जगत् प्रसिद्ध नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जबतक दूसरी वार सृष्टि न होगी तबतक भी जगत् का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध रहता है क्योंकिः—

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ ॥ [ऋ० मं० १० । सू० १२९ । मं० ३]

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ मनु० १ । ५ ॥

यह सब जगत् सृष्टि के पहिले प्रलय में अन्धकार से आवृत आच्छादित था और प्रलयारम्भ के पश्चात् भी वैसा ही होता है । उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त इन्द्रियों से जानने योग्य था, और न होगा, किन्तु वर्त्तमान में जाना जाता है और प्रसिद्ध चिह्नों से युक्त जानने के योग्य होता और यथावत् उपलब्ध है । पुनः उस कारिकाकार ने वर्त्तमान में भी जगत् का अभाव लिखा सो सर्वथा अप्रमाण है क्योंकि जिसको प्रमाता प्रमाणों से जानता और प्राप्त होता है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकता । (प्रश्न) जगत् के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ? (उत्तर) नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ? (प्रश्न) जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता और जीवों को भी सुख दुःख प्राप्त न होता । (उत्तर) यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें हैं पुरुषार्थी की नहीं । और जीवों को प्रलय में क्या सुख वा दुःख है ? जो सृष्टि के सुख दुःख की तुलना की जाय तो सुख कई गुणा अधिक होता और बहुतसे पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन कर मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं । प्रलय में निकम्मे जैसे सुषुप्ति में पड़े रहते हैं वैसे रहते हैं । और प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के लिये पाप पुण्य कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकता और जीव क्योंकर भोग सकते ? जो तुम से कोई पूछे कि आंख के होने में क्या प्रयोजन है ? तुम यही कहोगे, देखना । तो जो ईश्वर में जगत् की रचना करने का विज्ञान, बल और क्रिया है उसका क्या प्रयोजन, विना जगत् की उत्पत्ति करने के ? दूसरा कुछ भी न कह सकोगे और परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब जगत् को बनावे । उसका अनन्त सामर्थ्य जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था करने ही से सफल है । जैसे नेत्र का स्वाभाविक गुण देखना है वैसे परमेश्वर का स्वाभाविक गुण जगत् की उत्पत्ति करके सब जीवों को असंख्य पदार्थ देकर परोपकार करना है । (प्रश्न) बीज

पहले है वा वृत्त ? (उत्तर) बीज, क्योंकि बजि, हेतु, निदान, निमित्त और कारण इत्यादि शब्द एकार्थवाचक हैं। कारण का नाम बीज होने से कार्य के प्रथम ही होता है। (प्रश्न) जब परमेश्वर सर्वशक्तिमान् है तो वह कारण और जीव को भी उत्पन्न कर सकता है। जो नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमान् भी नहीं रह सकता ? (उत्तर) सर्वशक्तिमान् शब्द का अर्थ पूर्व लिख आये हैं। परन्तु क्या सर्वशक्तिमान् वह कहाता है कि जो असम्भव बात को भी कर सके ? जो कोई असम्भव बात अर्थात् जैसा कारण के विना कार्य्य को कर सकता है तो विना कारण दूसरे ईश्वर की उत्पत्ति और स्वयं मृत्यु को प्राप्त जड़, दुःखी, अन्यायकारी, अपवित्र और कुकर्मी आदि हो सकता है वा नहीं ? जो स्वाभाविक नियम अर्थात् जैसा अग्नि उष्ण, जल शीतल और पृथिव्यादि सब जड़ों को विपरीत गुणवाले ईश्वर भी नहीं कर सकता। और ईश्वर के नियम सत्य और पूरे हैं इसलिये परिवर्त्तन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वशक्तिमान् का अर्थ इतना ही है कि परमात्मा विना किसी के सहाय के अपने सब कार्य पूर्ण कर सकता है। (प्रश्न) ईश्वर साकार है वा निराकार ? जो निराकार है तो विना हाथ आदि साधनों के जगत् को न बना सकेगा और जो साकार है तो कोई दोष नहीं आता। (उत्तर) ईश्वर निराकार है, जो साकार अर्थात् शरीर युक्त है वह ईश्वर नहीं क्योंकि वह परिमित शक्तियुक्त, देश काल वस्तुओं में परिच्छिन्न, क्षुधा, तृषा, छेदन, भेदन, शीतोष्ण, ज्वर, पीड़ादि सहित होवे। उस में जीव के विना ईश्वर के गुण कभी नहीं घट सकते। जैसे तुम और हम साकार अर्थात् शरीरधारी हैं इससे त्रसरेणु अणु, परमाणु और प्रकृति को अपने वश में नहीं ला सकते हैं वैसे ही स्थूल देहधारी परमेश्वर भी उन सूक्ष्म पदार्थों से स्थूल जगत् नहीं बना सकता। जो परमेश्वर भौतिक इन्द्रियगोलक हस्त पादादि अवयवों से रहित है, परन्तु उसकी अनन्त शक्ति बल पराक्रम हैं, उनसे सब काम करता है जो जीव और प्रकृति से कभी न हो सकते। जब वह प्रकृति से भी सूक्ष्म और उन में व्यापक है तभी उनको पकड़ कर जगदाकार कर देता है। (प्रश्न) जैसे मनुष्यादि के मा बाप साकार हैं उनका सन्तान भी साकार होता है, जो ये निराकार होते तो इन के

लड़के भी निराकार होते, वैसे परमेश्वर निराकार हो तो उस का बनाया जगत् भी निराकार होना चाहिये। (उत्तर) यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है क्योंकि हम अभी कह चुके हैं कि परमेश्वर जगत् का उपादान कारण नहीं किन्तु निमित्त कारण है। और जो स्थूल होता है वह प्रकृति और परमाणु जगत् का उपादान कारण है और वे सर्वथा निराकार नहीं, किन्तु परमेश्वर से स्थूल और अन्य कार्य्य से सूक्ष्म आकार रखते हैं। (प्रश्न) क्या कारण के विना परमेश्वर कार्य्य को नहीं कर सकता? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जिसका अभाव अर्थात् जो वर्त्तमान नहीं है उसका भाव वर्त्तमान होना सर्वथा असम्भव है। जैसा कोई गपोड़ा हांक दे कि मैंने बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह देखा, वह नरशृङ्ग का धनुष् और दोनों खपुष्प की माला पहिरे हुए थे, मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते और गन्धर्वनगर में रहते थे, वहां बद्दल के विना वर्षा, पृथिवी के विना सब अन्नों की उत्पत्ति आदि होती थी, वैसा ही कारण के विना कार्य्य का होना असम्भव है जैसे कोई कहे कि "मम मातापितरौ न स्तोऽहमेवमेव जातः। मम मुखे जिह्वा नास्ति वदामि च" अर्थात् मेरे माता पिता न थे ऐसे ही मैं उत्पन्न हुआ हूं, मेरे मुख में जीभ नहीं है परन्तु बोलता हूं, बिल में सर्प न था निकल आया, मैं कहीं नहीं था, ये भी कहीं न थे और हम सब जने आये हैं, ऐसी असम्भव बात प्रमत्तगीत अर्थात् पागल लोगों की है। (प्रश्न) जो कारण के विना कार्य्य नहीं होता तो कारण का कारण कौन है? (उत्तर) जो केवल कारणरूप ही हैं वे कार्य्य किसी के नहीं होते और जो किसी का कारण और किसी का कार्य्य होता है वह दूसरा कहाता है। जैसे पृथिवी घर आदि का कारण और जल आदि का कार्य्य होता है परन्तु जो आदि कारण प्रकृति है वह अनादि है।

मूले मूलाभावादमूलं मूलम्॥ सांख्यसू० [अ० १। सू० ६७]

मूल का मूल अर्थात् कारण का कारण नहीं होता। इससे अकारण सब कार्य्यों का कारण होता है क्योंकि किसी कार्य्य के आरम्भ समय के पूर्व तीनों कारण अवश्य होते हैं जैसे कपड़े बनाने के पूर्व तन्तुवाय, रुई का सूत और

नलिका आदि पूर्व वर्त्तमान होने से वस्त्र बनता है वैसे जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। यदि इन में से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

अत्र नास्तिका आहुः—शून्यं तत्त्वं भावो विनश्यति वस्तुधर्मत्वाद्विनाशस्य ॥ १ ॥ सांख्यसू० [अ० १ । सू० ४४]

अभावात्भावोत्पत्तिर्नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् ॥ २ ॥
ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ॥ ३ ॥
अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादिदर्शनात् ॥ ४ ॥
सर्वमनित्यमुत्पत्तिविनाशधर्मकत्वात् ॥ ५ ॥
सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् ॥ ६ ॥
सर्वं पृथग् भावलक्षणपृथक्त्वात् ॥ ७ ॥
सर्वमभावो भावेष्वितरेतराभावसिद्धेः ॥ ८ ॥
न्यायसू० अ० ४ । आ० १ ॥

यहां नास्तिक लोग ऐसा कहते हैं कि शून्य ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था अन्त में शून्य होगा क्योंकि जो भाव है अर्थात् वर्त्तमान पदार्थ है उसका अभाव होकर शून्य हो जायगा। (उत्तर) शून्य आकाश, अदृश्य, अवकाश और विन्दु को भी कहते हैं। शून्य जड़ पदार्थ । इस शून्य में सब पदार्थ अदृश्य रहते हैं। जैसे एक बिन्दु से रेखा, रेखाओं से वर्तुलाकार होने से भूमि पर्वतादि ईश्वर की रचना से बनते हैं और शून्य का जाननेवाला शून्य नहीं होता ॥ १ ॥ दूसरा नास्तिक—अभाव से भाव की उत्पत्ति है, जैसे बीज का मर्दन किये विना अंकुर उत्पन्न नहीं होता और बीज को तोड़ कर देखें तो अंकुर का अभाव है। जब प्रथम अंकुर नहीं दीखता था तो अभाव से उत्पत्ति हुई (उत्तर) जो बीज का उपमर्दन करता है वह प्रथम ही बीज में था जो न होता तो उत्पन्न कभी नहीं होता ॥ २ ॥ तीसरा नास्तिक—कहता है कि कर्मों का फल पुरुष के कर्म करने से नहीं प्राप्त होता। कितने ही कर्म निष्फल देखने में आते हैं। इसलिये अनुमान किया जाता है कि कर्मों का फल प्राप्त होना

ईश्वर के आधीन है । जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहे देता है, जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता नहीं देता । इस बात से कर्मफल ईश्वराधीन है । (उत्तर) जो कर्म का फल ईश्वराधीन हो तो विना कर्म किये ईश्वर फल क्यों नहीं देता ? इसलिये जैसा कर्म मनुष्य करता है वैसा ही फल ईश्वर देता है । इससे ईश्वर स्वतन्त्र पुरुष को कर्म का फल नहीं दे सकता किन्तु जैसा कर्म जीव करता है वैसे ही फल ईश्वर देता है ॥ ३ ॥ चौथा नास्तिक—कहता है कि विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है । जैसा बबूल आदि वृक्षों के कांटे तीक्ष्ण अणिवाले देखने में आते हैं । इससे विदित होता है कि जब २ सृष्टि का आरम्भ होता है तब २ शरीरादि पदार्थ विना निमित्त के होते हैं । (उत्तर) जिससे पदार्थ उत्पन्न होता है वही उसका निमित्त है । विना कंटकी वृक्ष के कांटे उत्पन्न क्यों नहीं होते ? ॥ ४ ॥ पांचवां नास्तिक—कहता है कि सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं इसलिये सब अनित्य हैं ॥

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थकोटिभिः ।
ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ॥

यह किसी ग्रन्थ का श्लोक है—नवीन वेदान्ति लोग पांचवें नास्तिक की कोटी में हैं क्योंकि वे ऐसा कहते हैं कि क्रोड़ों ग्रन्थों का यह सिद्धान्त है, 'ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं ।' (उत्तर) जो सब की नित्यता नित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकता । (प्रश्न) सब की नित्यता भी अनित्य है जैसे अग्नि काष्ठों को नष्ट कर आप भी नष्ट होजाता है । (उत्तर) जो यथावत् उपलब्ध होता है उसका वर्त्तमान में अनित्यत्व और परमसूक्ष्म कारण को अनित्य कहना कभी नहीं हो सकता । जो वेदान्ति लोग ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उस का कार्य्य असत्य कभी नहीं हो सकता । जो स्वप्न रज्जु सर्प्पादिवत् कल्पित कहैं तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि कल्पना गुण है । गुण से द्रव्य नहीं और गुण द्रव्य से पृथक् नहीं रह सकता । जब कल्पना का कर्त्ता नित्य है तो उसकी कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उसको भी अनित्य मानो । जैसे स्वप्न विना देखे सुने कभी नहीं

आता, जो जागृत अर्थात् वर्त्तमान समय में सत्य पदार्थ है उनके साक्षात् सम्बन्ध से प्रत्यक्षादि ज्ञान होने पर संस्कार अर्थात् उनका वासनारूप ज्ञान आत्मा में स्थित होता है, स्वप्न में उन्हीं को प्रत्यक्ष देखता है। जैसे सुषुप्ति होने से बाह्य पदार्थों के ज्ञान के अभाव में भी बाह्य पदार्थ विद्यमान रहते हैं वैसे प्रलय में भी कारण द्रव्य वर्त्तमान रहता है। जो संस्कार के विना स्वप्न होवे तो जन्मान्ध को भी रूप का स्वप्न होवे। इसलिये वहां उनका ज्ञानमात्र है और बाहर सब पदार्थ वर्त्तमान हैं (प्रश्न) जैसे जागृत के पदार्थ स्वप्न और दोनों के सुषुप्ति में अनित्य होजाते हैं वैसे जागृत के पदार्थों को भी स्वप्न के तुल्य मानना चाहिये। (उत्तर) ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है अभाव नहीं जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्ट रहते हैं उनका अभाव नहीं होता वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है। इसलिये जो पूर्व कह आये कि ब्रह्म जीव और जगत् का कारण अनादि नित्य है वही सत्य है॥ ५॥ छठा नास्तिक-कहता है कि पांच भूतों के नित्य होने से सब जगत् नित्य है। (उत्तर) यह बात सत्य नहीं क्योंकि जिन पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश का कारण देखने में आता है वे सब नित्य हों तो सब स्थूल जगत् तथा शरीर घट पटादि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं इससे कार्य को नित्य नहीं मान सकते॥ ६॥ सातवां नास्तिक-कहता है कि सब पृथक् २ हैं कोई एक पदार्थ नहीं है जिस २ पदार्थ को हम देखते हैं कि उनमें दूसरा एक पदार्थ कोई भी नहीं दीखता। (उत्तर) अवयवों में अवयवी, वर्त्तमानकाल, आकाश परमात्मा और जाति पृथक २ पदार्थ समूहों में एक २ हैं। उनसे पृथक् कोई पदार्थ नहीं हो सकता। इसलिये सब पृथक् पदार्थ नहीं किन्तु स्वरूप से पृथक् २ हैं और पृथक् २ पदार्थों में एक पदार्थ भी है॥ ७॥ आठवां नास्तिक-कहता है कि सब पदार्थों में इतरेतर अभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं जैसे "अनश्वो गौः। अगौरश्वः" गाय घोड़ा नहीं और घोड़ा गाय नहीं, इसलिये सब को अभावरूप मानना चाहिये, (उत्तर) सब पदार्थों में इतरेतराभाव का योग हो परन्तु "गवि गौरश्वेऽश्वोभावरूपो वर्त्तत एव" गाय में गाय और घोड़े में घोड़े का

भाव ही है अभाव कभी नहीं हो सकता। जो पदार्थों का भाव न हो तो इतरेतराभाव भी किस में कहा जावे ॥ ८ ॥ नववां नास्तिक–कहता है कि स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पानी, अन्न एकत्र हो सड़ने से कृमि उत्पन्न होते हैं। और बीज पृथिवी जल के मिलने से घास वृक्षादि और पाषाणादि उत्पन्न होते हैं जैसे समुद्र वायु के योग से तरङ्ग और तरङ्गों से समुद्रफेन, हल्दी, चूना और नींबू के रस मिलाने से रोरी बन जाती है वैसे सब जगत् तत्त्वों के स्वभाव गुणों से उत्पन्न हुआ है। इस का बनाने वाला कोई भी नहीं। (उत्तर) जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति होवे तो विनाश कभी न होवे और जो विनाश भी स्वभाव से मानो तो उत्पत्ति न होगी और जो दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी। और जो निमित्त के होने से उत्पत्ति और नाश मानोगे तो निमित्त उत्पन्न और विनष्ट होनेवाले द्रव्यों से पृथक् मानना पड़ेगा। जो स्वभाव ही से उत्पत्ति और विनाश होता तो समय ही में उत्पत्ति और विनाश का होना सम्भव नहीं। जो स्वभाव से उत्पन्न होता हो तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल चन्द्र सूर्य्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते? और जिस २ के योग से जो २ उत्पन्न होता है वह २ ईश्वर के उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न, जलादि के संयोग से घास, वृक्ष और कृमि आदि उत्पन्न होते हैं, विना उनके नहीं। जैसे हल्दी, चूना और नींबू का रस दूर २ देश से आकर आप नहीं मिलते। किसी के मिलाने से मिलते हैं। उस में भी यथायोग्य मिलाने से रोरी होती है, अधिक न्यून वा अन्यथा करने से रोरी नहीं होती। वैसे ही प्रकृति, परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये विना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते। इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती किन्तु परमेश्वर की रचना से होती है ॥ ९ ॥ (प्रश्न) इस जगत् का कर्त्ता न था, न है और न होगा किन्तु अनादि काल से यह जैसा का वैसा बना है। न कभी इस की उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होगा। (उत्तर) विना कर्त्ता के कोई भी क्रिया वा क्रियाजन्य पदार्थ नहीं बन सकता। जिन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना दीखती है वे अनादि कभी नहीं हो सकते और जो संयोग से बनता है

वह संयोग के पूर्व नहीं होता और वियोग के अन्त में नहीं रहता। जो तुम इस को न मानो तो कठिन से कठिन पाषाण हीरा और पोलाद आदि तोड़, टुकड़े कर, गला वा भस्म कर देखो कि इनमें परमाणु पृथक् २ मिले हैं वा नहीं ? जो मिले हैं तो वे समय पाकर अलग २ भी अवश्य होते हैं॥ १०॥ (प्रश्न) अनादि ईश्वर कोई नहीं किन्तु जो योगाभ्यास से अणिमादि ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सर्वज्ञादि गुणयुक्त केवल ज्ञानी होता है वही जीव परमेश्वर कहाता है। (उत्तर) जो अनादि ईश्वर जगत् का स्रष्टा न हो तो साधनों से सिद्ध होने वाले जीवों का आधार जीवनरूप जगत् शरीर और इन्द्रियों के गोलक कैसे बनते ? इन के विना जीव साधन नहीं कर सकता। जब साधन न होते तो सिद्ध कहां से होता ? जीव चाहे जैसा साधन कर सिद्ध होवे तो भी ईश्वर की जो स्वयं सनातन अनादि सिद्धि है, जिसमें अनन्त सिद्धि हैं, उसके तुल्य कोई भी जीव नहीं हो सकता। क्योंकि जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी परिमित ज्ञान और सामर्थ्यवाला होता है। अनन्त ज्ञान और सामर्थ्यवाला कभी नहीं हो सकता। देखो कोई भी योगी आजतक ईश्वरकृत सृष्टिक्रम को बदलनेहारा नहीं हुआ है और न होगा। जैसे अनादि सिद्ध परमेश्वर ने नेत्र से देखने और कानों से सुनने का निबन्ध किया है इसको कोई भी योगी बदल नहीं सकता, जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता। (प्रश्न) कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण २ बनाता है अथवा एकसी ? (उत्तर) जैसी कि अब है वैसी पहिले थी और आगे होगी भेद नहीं करता—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ०॥ मं० १०। सू० १९०। मं० ३॥

(धाता) परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि को बनाता हुआ वैसे ही [उसने] अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा। इसलिये परमेश्वर के काम विना भूल चूक के होने से सदा एकसे ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ और जिसका ज्ञान वृद्धि क्षय को प्राप्त होता है उसी के काम में भूल चूक होती है, ईश्वर के काम में नहीं। (प्रश्न)

सृष्टि विषय में वेदादि शास्त्रों का अविरोध है वा विरोध ? (उत्तर) अविरोध है। (प्रश्न) जो अविरोध है तो—

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः॥ [तैत्तिरीयोपनि० ब्रह्मानन्दव० अनु० १]

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन है। उस परमेश्वर और प्रकृति से आकाश अवकाश अर्थात् जो कारणरूप द्रव्य सर्वत्र फैल रहा था, उस को इकट्ठा करने से अवकाश उत्पन्नसा होता है, वास्तव में आकाश की उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि विना आकाश के प्रकृति और परमाणु कहां ठहर सकें, आकाश के पश्चात् वायु, वायु के पश्चात् अग्नि, अग्नि के पश्चात् जल, जल के पश्चात् पृथिवी, पृथिवी से ओषधि, ओषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य्य, वीर्य्य से पुरुष अर्थात् शरीर उत्पन्न होता है। यहां आकाशादि क्रम से, और छान्दोग्य में अग्न्यादि, ऐतरेय में जलादि क्रम से सृष्टि हुई, वेदों में कहीं पुरुष, कहीं हिरण्यगर्भ आदि से, मीमांसा में कर्म, वैशेषिक में काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ, सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। अब किसको सच्चा और किसको झूठा मानें ? (उत्तर) इस में सब सच्चे कोई झूठा नहीं। झूठा वह है जो विपरीत समझता है, क्योंकि परमेश्वर निमित्त और प्रकृति जगत् का उपादान कारण है। जब महाप्रलय होता है उस के पश्चात् आकाशादि क्रम, अर्थात् जब आकाश और वायु का प्रलय नहीं होता और अग्न्यादि का होता है अग्न्यादि क्रम से, और जब विद्युत् अग्नि का भी नाश नहीं होता तब जल क्रम से सृष्टि होती है अर्थात् जिस २ प्रलय में जहां २ तक प्रलय होता है वहां २ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। पुरुष और हिरण्यगर्भादि प्रथमसमुल्लास में लिख भी आये हैं वे सब नाम परमेश्वर के हैं। परन्तु विरोध उसको कहते हैं कि एक कार्य्य में एक ही विषय पर विरुद्ध वाद होवे। छः शास्त्रों में अविरोध देखो इस प्रकार

है । मीमांसा में "ऐसा कोई भी कार्य्य जगत् में नहीं होता कि जिसके बनाने में कर्मचेष्टा न की जाय" वैशेषिक में "समय न लगे विना बने ही नहीं" न्याय में "उपादान कारण न होने से कुछ भी नहीं बन सकता" योग में "विद्या, ज्ञान, विचार न किया जाय तो नहीं बन सकता" सांख्य में "तत्त्वों का मेल न होने से नहीं बन सकता" और वेदान्त में "बनानेवाला न बनावे तो कोई भी पदार्थ उत्पन्न न हो सके" इसलिये सृष्टि छः कारणों से बनती है। उन छः कारणों की व्याख्या एक २ की एक २ शास्त्र में है । इसलिये उन में विरोध कुछ भी नहीं । जैसे छः पुरुष मिल के एक छप्पर उठाकर भित्तियों पर धरें वैसा ही सृष्टिरूप कार्य्य की व्याख्या छः शास्त्रकारों ने मिलकर पूरी की है । जैसे पांच अन्धे और एक मन्ददृष्टि को किसी ने हाथी का एक २ देश बतलाया । उनसे पूछा कि हाथी कैसा है ? उनमें से एक ने कहा खंभे, दूसरे ने कहा सूप, तीसरे ने कहा मूसल, चौथे ने कहा झाड़ू, पांचवें ने कहा चौतरा और छठे ने कहा काला २ चार खंभों के ऊपर कुछ भैंसासा आकार वाला है । इसी प्रकार आज कल के अनार्ष, नवीन ग्रन्थों के पढ़ने और प्राकृत भाषा वालों ने ऋषिप्रणीत ग्रन्थ न पढ़कर नवीन क्षुद्रबुद्धिकल्पित संस्कृत और भाषाओं के ग्रन्थ पढ़कर एक दूसरे की निन्दा में तत्पर होके झूठा झगड़ा मचाया है । इन का कथन बुद्धिमानों के वा अन्य के मानने योग्य नहीं । क्योंकि जो अन्धों के पीछे अन्धे चलें तो दुःख क्यों न पावें ? वैसे ही आज कल के अल्प विद्यायुक्त, स्वार्थी, इन्द्रियाराम पुरुषों की लीला संसार का नाश करनेवाली है । (प्रश्न) जब कारण के विना कार्य्य नहीं होता तो कारण का कारण क्यों नहीं ? (उत्तर) अरे भोले भाइयो ! कुछ अपनी बुद्धि को काम में क्यों नहीं लाते ? देखो संसार में दो ही पदार्थ होते हैं, एक कारण दूसरा कार्य्य । जो कारण है वह कार्य्य नहीं और जिस समय कार्य्य है वह कारण नहीं । जबतक मनुष्य सृष्टि को यथावत् नहीं समझता तब तक उसको यथावत् ज्ञान प्राप्त नहीं होता—

नित्यायाः सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्थायाः प्रकृतेरुत्पन्नानां परमसू-

द्माणां पृथक् पृथग्वर्त्तमानानां तत्त्वपरमाणूनां प्रथमः संयोगारम्भः संयोगविशेषादवस्थान्तरस्य स्थूलाकारप्राप्तिः सृष्टिरुच्यते ॥

अनादि नित्यस्वरूप सत्व, रजस् और तमोगुणों की एकावस्थारूप प्रकृति से उत्पन्न जो परमसूक्ष्म पृथक् २ तत्त्वावयव विद्यमान हैं उन्हीं का प्रथम ही जो संयोग का आरम्भ है संयोग विशेषों से अवस्थान्तर दूसरी अवस्था को सूक्ष्म स्थूल २ बनते बनाते विचित्ररूप बनी है इसी से यह संसर्ग होने से सृष्टि कहाती है। भला जो प्रथम संयोग में मिलने और मिलानेवाला पदार्थ है, जो संयोग का आदि और वियोग का अन्त अर्थात् जिसका विभाग नहीं हो सकता, उसको कारण और जो संयोग के पीछे बनता और वियोग के पश्चात् वैसा नहीं रहता वह कार्य्य कहाता है। जो उस कारण का कारण, कार्य्य का कार्य्य, कर्त्ता का कर्त्ता, साधन का साधन और साध्य का साध्य कहाता है, वह देखता अन्धा, सुनता बहिरा और जानता हुआ मूढ़ है। क्या आंख की आंख, दीपक का दीपक और सूर्य का सूर्य कभी हो सकता है ? जो जिससे उत्पन्न होता है वह कारण, और जो उत्पन्न होता है वह कार्य्य, और जो कारण को कार्यरूप बनानेहारा है वह कर्त्ता कहाता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
भगवद्गीता [अ० २ । १६]

कभी असत् का भाव वर्त्तमान और सत् का अभाव अवर्तमान नहीं होता इन दोनों का निर्णय तत्त्वदर्शी लोगों ने जाना है, अन्य पक्षपाती आग्रही मलीनात्मा अविद्वान् लोग इस बात को सहज में कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि जो मनुष्य विद्वान् , सत्संगी होकर पूरा विचार नहीं करता वह सदा भ्रमजाल में पड़ा रहता है। धन्य ! वे पुरुष हैं कि सब विद्याओं के सिद्धान्तों को जानते हैं और जानने के लिये परिश्रम करते हैं, जानकर औरों को निष्कपटता से जनाते हैं। इससे जो कोई कारण के विना सृष्टि मानता है वह कुछ भी नहीं

जानता। जब सृष्टि का समय आता है तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है उसका नाम महत्तत्व और जो उससे कुछ स्थूल होता है उसका नाम अहङ्कार और अहङ्कार से भिन्न २ पांच सूक्ष्मभूत श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, घ्राण, पांच ज्ञान इन्द्रियां, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा, ये पांच कर्म इन्द्रिय हैं और ग्यारहवां मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है। और उन पञ्चतन्मात्राओं से अनेक स्थूलावस्थाओं को प्राप्त होते हुए क्रम से पांच स्थूलभूत जिनको हम लोग प्रत्यक्ष देखते हैं उत्पन्न होते हैं। उनसे नाना प्रकार की ओषधियां, वृक्ष आदि उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदिसृष्टि मैथुनी नहीं होती। क्योंकि जब स्त्री पुरुषों के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता है तदनन्तर मैथुनी सृष्टि चलती है। देखो! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं। भीतर हाड़ों का जोड़, नाड़ियों का बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढकन, प्लीहा, यकृत्, फेफड़ा, पंखा कला का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूलरचन, लोम नखादि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्था के भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागकरण, कला, कौशल स्थापनादि अद्भुत सृष्टि को विना परमेश्वर के कौन कर सकता है? इसके विना नाना प्रकार के रत्न धातु से जड़ित भूमि, विविध प्रकार वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित, श्वेत, पीत, कृष्ण, चित्र, मध्यरूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूलनिर्माण, मिष्ट, क्षार, कटुक, कषाय, तिक्त, अम्लादि विविध रस सुगन्धादि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कन्द, मूलादि रचन, अनेकानेक क्रोड़ों भूगोल सूर्य चन्द्रादि लोकनिर्माण, धारण, भ्रामण, नियमों में रखना आदि परमेश्वर के विना कोई भी नहीं कर सकता। जब कोई किसी पदार्थ को देखता है तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। एक जैसा वह पदार्थ है और दूसरा उसमें रचना देखकर बनानेवाले का ज्ञान है। जैसा किसी पुरुष ने सुन्दर आभूषण जङ्गल में

पाया, देखा तो विदित हुआ कि यह सुवर्ण का है और किसी बुद्धिमान् कारीगर ने बनाया है। इसी प्रकार यह नाना प्रकार सृष्टि में विविध रचना बनानेवाले परमेश्वर को सिद्ध करती है। (प्रश्न) मनुष्य की सृष्टि प्रथम हुई वा पृथिवी आदि की? (उत्तर) पृथिवी आदि की, क्योंकि पृथिव्यादि के विना मनुष्य की स्थिति और पालन नहीं हो सकता (प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या? (उत्तर) अनेक क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता क्योंकि "मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त" यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मा बाप के सन्तान हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्या, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में? (उत्तर) युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इसलिये युवावस्था में सृष्टि की है। (प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं (उत्तर) नहीं, जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बराबर चला आता है इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के आगे सृष्टि अनादि काल से चक्र चला आता है। इसकी आदि वा अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन वा रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है क्योंकि जैसे परमात्मा, जीव, जगत् का कारण तीन स्वरूप से अनादि हैं, जैसे जगत् की उत्पत्ति; स्थिति और वर्त्तमान प्रवाह से अनादि हैं, जैसे नदी का प्रवाह वैसा ही दीखता है कभी सूख जाता कभी नहीं दीखता फिर बरसात में दीखता और उष्णकाल में नहीं दीखता, ऐसे व्यवहारों को प्रवाहरूप जानना चाहिये। जैसे परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं वैसे ही उस के जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करना भी अनादि हैं जैसे कभी ईश्वर के गुण, कर्म,

स्वभाव का आरम्भ और अन्त नहीं इसी प्रकार उसके कर्त्तव्य कर्मों का भी आरम्भ और अन्त नहीं। (प्रश्न) ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंहादि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि कृमि कीट पतङ्गादि जन्म दिये हैं, इससे परमात्मा में पक्षपात आता है। (उत्तर) पक्षपात नहीं आता क्योंकि उन जीवों के पूर्व सृष्टि में किये हुए कर्मानुसार व्यवस्था करने से जो कर्म के विना जन्म देता तो पक्षपात आता (प्रश्न) मनुष्यों की आदि सृष्टि किस स्थल में हुई ? (उत्तर) त्रिविष्टप अर्थात् जिसको "तिब्बत" कहते हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में एक जाति थी वा अनेक ? (उत्तर) एक मनुष्य जाति थी पश्चात् "विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः" [१ । ५१ । ८] यह ऋग्वेद का वचन है। श्रेष्ठों का नाम आर्य्य, विद्वान्, देव और दुष्टों के दस्यु अर्थात् डाकू, मूर्ख नाम होने से आर्य्य और दस्यु दो नाम हुए। "उत शूद्रे उतार्ये" अथर्ववेद वचन। आर्य्यों में पूर्वोक्त प्रकार से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार भेद हुए। द्विज विद्वानों का नाम आर्य्य और मूर्खों का नाम शूद्र और अनार्य अर्थात् अनाड़ी नाम हुआ। (प्रश्न) फिर वे यहां कैसे आये ? (उत्तर) जब आर्य्य और दस्युओं में अर्थात् विद्वान् जो देव, अविद्वान् जो असुर, उन में सदा लड़ाई बखेड़ा हुआ किया, जब बहुत उपद्रव होने लगा तब आर्य्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमि के खण्ड को जानकर यहीं आकर बसे इसीसे इस देश का नाम "आर्य्यावर्त्त" हुआ। (प्रश्न) आर्य्यावर्त्त की अवधि कहांतक है ? (उत्तर)—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु पश्चिमात्।
तयोरेवान्तरं गिर्य्योरार्य्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥ १ ॥
सरस्वतीदृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशमार्यावर्त्तं प्रचक्षते ॥ २ ॥ मनु० [२ । २२ । १७]

उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पूर्व और पश्चिम में समुद्र ॥ १ ॥ तथा सरस्वती पश्चिम में अटक नदी, पूर्व में दृषद्वती जो नैपाल के पूर्व भाग पहाड़ से निकल के बंगाल के आसाम के पूर्व और ब्रह्मा के पश्चिम

ओर होकर दक्षिण के समुद्र में मिली है जिसको ब्रह्मपुत्रा कहते हैं और जो उत्तर के पहाड़ों से निकल के दक्षिण के समुद्र की खाड़ी में अटक मिली है हिमालय की मध्यरेखा से दक्षिण और पहाड़ों के भीतर और रामेश्वर पर्यन्त विन्ध्याचल के भीतर जितने देश हैं उन सब को आर्य्यावर्त्त इसलिये कहते हैं कि यह आर्य्यावर्त्त देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया और आर्यजनों के निवास करने से आर्य्यावर्त्त कहाया है। (प्रश्न) प्रथम इस देश का नाम क्या था और इसमें कौन बसते थे? (उत्तर) इस के पूर्व इस देश का नाम कोई भी नहीं था और न कोई आर्य्यों के पूर्व इस देश में बसते थे। क्योंकि आर्य्य लोग सृष्टि की आदि में कुछ काल के पश्चात् तिब्बत से सूधे इसी देश में आकर बसे थे। (प्रश्न) कोई कहते हैं कि यह लोग ईरान से आये इसीसे इन लोगों का नाम आर्य हुआ है। इनके पूर्व यहां जंगली लोग बसते थे कि जिनको असुर और राक्षस कहते थे। आर्य लोग अपने को देवता बतलाते थे और उनका जब संग्राम हुआ उसका नाम देवासुर संग्राम कथाओं में ठहराया। (उत्तर) यह बात सर्वथा झूठ है क्योंकि--

विजा॑नी॒ह्यार्या॒न्ये च॒ दस्य॑वो ब॒र्हिष्म॑ते रन्धया॒ शास॑दव्र॒तान् ॥
ऋ० मं० १। सू० ५१। मं० ८॥

उ॒त शू॒द्रे उ॒तार्ये॑ ॥ [अथर्व० कां० १९। व० ६२]

यह लिख चुके हैं कि आर्य नाम धार्मिक, विद्वान्, आप्त पुरुषों का और इनसे विपरीत जनों का नाम दस्यु अर्थात् डाकू, दुष्ट, अधार्मिक और अविद्वान् है। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य द्विजों का नाम आर्य्य और शूद्र का नाम अनार्य्य अर्थात् अनाड़ी है। जब वेद ऐसे कहता है तो दूसरे विदेशियों के कपोलकल्पित को बुद्धिमान् लोग कभी नहीं मान सकते। और देवासुर संग्राम में आर्य्यावर्त्तीय अर्जुन तथा महाराजा दशरथ आदि, हिमालय पहाड़ में आर्य और दस्यु म्लेच्छ असुरों का जो युद्ध हुआ था, उसमें देव अर्थात् आर्य्यों की रक्षा और असुरों के पराजय करने को सहायक हुए थे। इससे यही सिद्ध

होता है कि आर्य्यावर्त्त के बाहर चारों ओर जो हिमालय के पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर, ईशान देश में मनुष्य रहते हैं उन्हीं का नाम असुर सिद्ध होता है। क्योंकि जब जब हिमालय प्रदेशस्थ आर्य्यों पर लड़ने को चढ़ाई करते थे तब २ यहां के राजा महाराजा लोग उन्हीं उत्तर आदि देशों में आर्य्यों के सहायक होते थे। और जो श्रीरामचन्द्रजी से दक्षिण में युद्ध हुआ है उसका नाम देवासुर संग्राम नहीं है, किन्तु उसको रामरावण अथवा आर्य्य और राक्षसों का संग्राम कहते हैं। किसी संस्कृत ग्रन्थ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य्य लोग ईरान से आये और यहां के जङ्गलियों को लड़ कर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है ? और:—

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ मनु० १० । ४५ ॥
म्लेच्छदेशस्त्वतः परः ॥ [मनु० २ । २३]

जो आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न देश हैं वे दस्युदेश और म्लेच्छदेश कहाते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि आर्य्यावर्त्त से भिन्न पूर्व देश से लेकर ईशान, उत्तर, वायव्य और पश्चिम देशों में रहनेवालों का नाम दस्यु और म्लेच्छ तथा असुर है। और नैर्ऋत्य, दक्षिण तथा आग्नेय दिशाओं में आर्य्यावर्त्त देश से भिन्न में रहनेवाले मनुष्यों का नाम राक्षस था। अब भी देख लो हवशी लोगों का स्वरूप भयंकर जैसा राक्षसों का वर्णन किया है वैसा ही दीख पड़ता है। और आर्य्यावर्त्त की सूध पर नीचे रहनेवालों का नाम नाग और उस देश का नाम पाताल इसलिये कहते हैं कि वह देश आर्य्यावर्त्तीय मनुष्यों के पाद अर्थात् पग के तले है। और उनके नागवंशी अर्थात् नाग नामवाले पुरुष के वंश के राजा होते थे उसी की उलोपी राजकन्या से अर्जुन का विवाह हुआ था। अर्थात् इक्ष्वाकु से लेकर कौरव पांडव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा २ प्रचार आर्य्यावर्त्त से भिन्न देशों में भी रहता था। इसमें यह प्रमाण है कि ब्रह्मा का पुत्र विराट्, विराट् का मनु, मनु के मरीच्यादि दश इनके स्वायंभवादि सात राजा और उनके सन्तान इक्ष्वाकु आदि

राजा जो आर्य्यावर्त्त के प्रथम राजा हुए जिन्होंने यह आर्य्यावर्त्त बसाया है। अब अभाग्योदय से और आर्य्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्य्यावर्त्त में भी आर्य्यों का अखंड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देशवासियों को अनेक प्रकार के दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात-शून्य प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा, अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। विना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है। इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था वा इतिहास लिखे हैं उसी का मान्य करना भद्रपुरुषों का काम है। (प्रश्न) जगत् की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ? (उत्तर) एक अर्ब, छानवें क्रोड़ कई लाख और कई सहस्र वर्ष जगत् की उत्पत्ति और वेदों के प्रकाश होने में हुए हैं। इसका स्पष्ट व्याख्यान मेरी बनाई भूमिका * में लिखा है, देख लीजिये। इत्यादि प्रकार सृष्टि के बनाने और बनने में हैं। और यह भी है कि सब से सूक्ष्म टुकड़ा अर्थात् जो काटा नहीं जाता उसका नाम परमाणु, साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्व्यणुक जो स्थूल वायु है, तीन द्व्यणुक का अग्नि, चार द्व्यणुक का जल, पांच द्व्यणुक की पृथिवी अर्थात् तीन द्व्यणुक का त्रसरेणु और उसका दूना होने से पृथिवी आदि दृश्य पदार्थ होते हैं। इसी प्रकार क्रम से मिलकर भूगोलादि परमात्मा ने बनाये हैं। (प्रश्न) इसका धारण कौन करता है? कोई कहता है शेष अर्थात् सहस्र फणवाले सर्प्प के शिर पर पृथिवी है। दूसरा कहता है कि बैल के सींग पर, तीसरा कहता है किसी पर नहीं, चौथा कहता है कि वायु के आधार, पांचवां कहता है सूर्य के आकर्षण से खैंची हुई अपने

* ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय को देखो।

ठिकाने पर स्थित, छठा कहता है कि पृथिवी भारी होने से नीचे २ आकाश में चली जाती है। इत्यादि में किस बात को सत्य मानें? (उत्तर) जो शेष सर्प्प और बैल के सींग पर धरी हुई पृथिवी स्थित बतलाता है उस को पूछना चाहिये कि सर्प्प और बैल के मा बाप के जन्म समय किस पर थी। सर्प्प और बैल आदि किस पर हैं? बैलवाले मुसलमान तो चुप ही कर जायेंगे परन्तु सर्प्पवाले कहेंगे कि सर्प्प कूर्म पर, कूर्म जल पर, जल अग्नि पर, अग्नि वायु पर और वायु आकाश में ठहरा है। उन से पूछना चाहिये कि सब किस पर है? तो अवश्य कहेंगे परमेश्वर पर जब उन से कोई पूछेगा कि शेष और बैल किस का बच्चा है? कहेंगे कश्यप कद्रू और बैल गाय का। कश्यप मरीची, मरीची मनु, मनु विराट् और विराट् ब्रह्मा का पुत्र, ब्रह्मा आदि सृष्टि का था। जब शेष का जन्म न हुआ था उस के पहिले पांच पीढ़ी हो चुकी हैं तब किसने धारण की थी? अर्थात् कश्यप के जन्म समय में पृथिवी किस पर थी तो "तेरी चुप मेरी भी चुप" और लड़ने लग जायेंगे। इसका सच्चा अभिप्राय यह है कि जो "बाक़ी" रहता है उसको शेष कहते हैं। सो किसी कवि ने "शेषाधारा पृथिवीत्युक्तम्" ऐसा कहा कि शेष के आधार पृथिवी है। दूसरे ने उसके अभिप्राय को न समझ कर सर्प्प की मिथ्या कल्पना करली। परन्तु जिसलिये परमेश्वर उत्पत्ति और प्रलय से बाक़ी अर्थात् पृथक् रहता है इससे उस को "शेष" कहते हैं और उसी के आधार पृथिवी है—

सत्येनोत्तभिता भूमिः ॥ १० । ८५ । १ ॥

यह ऋग्वेद का वचन है। (सत्य) अर्थात् जो त्रैकाल्याबाध्य, जिसका कभी नाश नहीं होता उस परमेश्वर ने भूमि, आदित्य और सब लोकों का धारण किया है॥

उक्षा दाधार पृथिवीमुत द्याम् * ॥

* ऋग्वेद में "उक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्त्ति"। यह वचन है। अथर्ववेद में—अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्याम्" ॥ ४ । ११ । १ ॥ है॥

यह भी ऋग्वेद का वचन है—इसी (उक्षा) शब्द को देखकर किसी ने बैल का ग्रहण किया होगा क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है। परन्तु उस मूढ़ को यह विदित न हुआ कि इतने बड़े भूगोल के धारण करने का सामर्थ्य बैल में कहां से आवेगा ? इसलिये उक्षा वर्षाद्वारा भूगोल के सेचन करने से सूर्य्य का नाम है। उसने अपने आकर्षण से पृथिवी को धारण किया है। परन्तु सूर्य्यादि का धारण करने वाला विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं है। (प्रश्न) इतने २ बड़े भूगोलों को परमेश्वर कैसे धारण कर सकता होगा ? (उत्तर) जैसे अनन्त आकाश के सामने बड़े २ भूगोल कुछ भी अर्थात् समुद्र के आगे जल के छोटे कण के तुल्य भी नहीं हैं वैसे अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं कह सकते। वह बाहर भीतर सर्वत्र व्यापक अर्थात् "विभुः प्रजासु" [३२ । ८] यह यजुर्वेद का वचन है वह परमात्मा सब प्रजाओं में व्यापक होकर सबको धारण कर रहा है। जो वह ईसाई मुसलमान पुराणियों के कथनानुसार विभु न होता तो इस सब सृष्टि का धारण कभी न कर सकता। क्योंकि विना प्राप्ति के किसी को कोई धारण नहीं कर सकता। कोई कहे कि ये सब लोक परस्पर आकर्षण से धारित होंगे पुनः परमेश्वर के धारण करने की क्या अपेक्षा है। उन को यह उत्तर देना चाहिये कि यह सृष्टि अनन्त है वा सान्त ? जो अनन्त कहें तो आकारवाली वस्तु अनन्त कभी नहीं हो सकती और जो सान्त कहें तो उन के पर भाग सीमा अर्थात् जिस के परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है वहां किस के आकर्षण से धारण होगा जैसे समष्टि और व्यष्टि अर्थात् जब सब समुदाय का नाम वन रखते हैं तो समष्टि कहाता है और एक २ वृक्षादि को भिन्न २ गणना करें तो व्यष्टि कहाता है, वैसे सब भूगोलों को समष्टि गिनकर जगत् कहें तो सब जगत् का धारण और आकर्षण का कर्त्ता विना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं इसलिये जो सब जगत् को रचता है वही—

स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमाम् ॥ [यजु० १३ । ४]

यह यजुर्वेद का वचन है। जो पृथिव्यादि प्रकाशरहित लोकलोकान्तर

पदार्थ तथा सूर्य्यादि प्रकाशसहित लोक और पदार्थों का रचन धारण परमात्मा करता है, जो सब में व्यापक हो रहा है वही सब जगत् का कर्त्ता और धारण करनेवाला है। (प्रश्न) पृथिव्यादि लोक घूमते हैं वा स्थिर ? (उत्तर) घूमते हैं। (प्रश्न) कितने ही लोग कहते हैं कि सूर्य्य घूमता है और पृथिवी नहीं घूमती। दूसरे कहते हैं कि पृथिवी घूमती है सूर्य्य नहीं घूमता। इस में सत्य क्या माना जाय ? (उत्तर) ये दोनों आधे झूठे हैं क्योंकि वेद में लिखा है कि—

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः॥ यजु० अ० ३। मं० ६॥

अर्थात् यह भूगोल जल के सहित सूर्य्य के चारों ओर घूमता जाता है इसलिये भूमि घूमा करती है॥

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च। हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ यजु० अ० ३३। मं० ४३॥

जो सविता अर्थात् सूर्य्य वर्षादि का कर्त्ता, प्रकाशस्वरूप, तेजोमय, रमणीय स्वरूप के साथ वर्त्तमान, सब प्राणि अप्राणियों में अमृतरूप वृष्टि वा किरणद्वारा अमृत का प्रवेश करा और सब मूर्तिमान द्रव्यों को दिखलाता हुआ सब लोकों के साथ आकर्षण गुण से सह वर्त्तमान, अपनी परिधि में घूमता रहता है किन्तु किसी लोक के चारों ओर नहीं घूमता। वैसे ही एक २ ब्रह्माण्ड में एक सूर्य प्रकाशक और दूसरे सब लोक लोकान्तर प्रकाश्य हैं, जैसे—

दिवि सोमो अधि श्रितः॥ अथ० कां० १४। अनु० १। मं० १॥

जैसे यह चन्द्रलोक सूर्य से प्रकाशित होता है वैसे ही पृथिव्यादि लोक भी सूर्य के प्रकाश ही से प्रकाशित होते हैं परन्तु रात और दिन सर्वदा वर्त्तमान रहते हैं क्योंकि पृथिव्यादि लोक घूम कर जितना भाग सूर्य के सामने आता है उतने में दिन और जितना पृष्ठ में अर्थात् आड़ में होता जाता है उतने में

रात। अर्थात् उदय, अस्त, संध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् "अमेरिका" में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात्रि है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) पृथिवी से लाखगुना बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे २ चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जंबूद्वीप में बतलाते हैं वे तो गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं, क्यों ? जो नीचे २ चली जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्नस्थलों में रहनेवालों को वायु का स्पर्श न होता, नीचेवालों को अधिक होता और एकसी वायु की गति होती, दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है। (प्रश्न) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ? (उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ शत० कां० १४। [प्र० ६। ब्रा० ७। कं० ४]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती हैं और ये ही सब को बसाते हैं। जिसलिये वास के निवास करने के घर हैं इसलिये इनका नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटासा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है। (प्रश्न) जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव हैं वैसे ही अन्य लोकों में भी होंगी वा विपरीत? (उत्तर) कुछ २ आकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस देश में चीन, हब्स और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग रूप और आकृति का भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस २ शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अंग हैं उसी २ प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ०॥ मं० १०। सू० १९०॥

(धाता) परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरों में भी बनाये गये हैं। भेद किंचिन्मात्र नहीं होता। (प्रश्न) जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं? (उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एकसी है। (प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं

रात। अर्थात् उदय, अस्त, संध्या, मध्याह्न, मध्यरात्रि आदि जितने कालावयव हैं वे देशदेशान्तरों में सदा वर्त्तमान रहते हैं। अर्थात् जब आर्य्यावर्त्त में सूर्योदय होता है उस समय पाताल अर्थात् "अमेरिका" में अस्त होता है और जब आर्य्यावर्त्त में अस्त होता है तब पाताल देश में उदय होता है। जब आर्य्यावर्त्त में मध्य दिन वा मध्य रात्रि है उसी समय पाताल देश में मध्य रात और मध्य दिन रहता है। जो लोग कहते हैं कि सूर्य घूमता और पृथिवी नहीं घूमती वे सब अज्ञ हैं क्योंकि जो ऐसा होता तो कई सहस्र वर्ष के दिन और रात होते अर्थात् सूर्य का नाम (ब्रध्नः) पृथिवी से लाखगुना बड़ा और क्रोड़ों कोश दूर है। जैसे राई के सामने पहाड़ घूमे तो बहुत देर लगती और राई के घूमने में बहुत समय नहीं लगता वैसे ही पृथिवी के घूमने से यथायोग्य दिन रात होता है, सूर्य के घूमने से नहीं। और जो सूर्य को स्थिर कहते हैं वे भी ज्योतिर्विद्यावित् नहीं। क्योंकि यदि सूर्य न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। और गुरु पदार्थ विना घूमे आकाश में नियत स्थान पर कभी नहीं रह सकता। और जो जैनी कहते हैं कि पृथिवी घूमती नहीं किन्तु नीचे २ चली जाती है और दो सूर्य और दो चन्द्र केवल जंबूद्वीप में बतलाते हैं वे तो गहरी भांग के नशे में निमग्न हैं, क्यों ? जो नीचे २ चली जाती तो चारों ओर वायु के चक्र न बनने से पृथिवी छिन्न भिन्न होती और निम्नस्थलों में रहनेवालों को वायु का स्पर्श न होता, नीचेवालों को अधिक होता और एकसी वायु की गति होती, दो सूर्य चन्द्र होते तो रात और कृष्णपक्ष का होना ही नष्ट भ्रष्ट होता। इसलिये एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है। (प्रश्न) सूर्य चन्द्र और तारे क्या वस्तु हैं और उनमें मनुष्यादि सृष्टि है वा नहीं ? (उत्तर) ये सब भूगोल लोक और इनमें मनुष्यादि प्रजा भी रहती हैं क्योंकि—

एतेषु हीदꣳ सर्वं वसु हितमेते हीदꣳ सर्वं वासयन्ते तद्यदिदꣳ सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति ॥ शत० कां० १४ । [प्र० ६ । ब्रा० ७ । कं० ४]

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका वसु नाम इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती हैं और ये ही सब को बसाते हैं। जिसलिये वास के निवास करने के घर हैं इसलिये इनका नाम वसु है। जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा के होने में क्या सन्देह? और जैसे परमेश्वर का यह छोटासा लोक मनुष्यादि सृष्टि से भरा हुआ है तो क्या यह सब लोक शून्य होंगे? परमेश्वर का कोई भी काम निष्प्रयोजन नहीं होता तो क्या इतने असंख्य लोकों में मनुष्यादि सृष्टि न हो तो सफल कभी हो सकता है? इसलिये सर्वत्र मनुष्यादि सृष्टि है। (प्रश्न) जैसे इस देश में मनुष्यादि सृष्टि की आकृति अवयव हैं वैसे ही अन्य लोकों में भी होंगी वा विपरीत? (उत्तर) कुछ २ आकृति में भेद होने का सम्भव है। जैसे इस देश में चीन, हब्स और आर्य्यावर्त्त, यूरोप में अवयव और रङ्ग रूप और आकृति का भी थोड़ा २ भेद होता है इसी प्रकार लोक लोकान्तरों में भी भेद होते हैं। परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोकों में भी है। जिस २ शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अंग हैं उसी २ प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं क्योंकि—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ऋ०॥ मं० १०। सू० १९०॥

(धाता) परमात्मा ने जिस प्रकार के सूर्य, चन्द्र, द्यौ, भूमि, अन्तरिक्ष और तत्रस्थ सुख विशेष पदार्थ पूर्व कल्प में रचे थे वैसे ही इस कल्प अर्थात् इस सृष्टि में रचे हैं तथा सब लोक लोकान्तरों में भी बनाये गये हैं। भेद किंचिन्मात्र नहीं होता। (प्रश्न) जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है उन्हीं का उन लोकों में भी प्रकाश है वा नहीं? (उत्तर) उन्हीं का है। जैसे एक राजा की राज्यव्यवस्था नीति सब देशों में समान होती है उसी प्रकार परमात्मा राजराजेश्वर की वेदोक्त नीति अपने अपने सृष्टिरूप सब राज्य में एकसी है। (प्रश्न) जब ये जीव और प्रकृतिस्थ तत्त्व अनादि और ईश्वर के बनाये नहीं

हैं तो ईश्वर का अधिकार भी इन पर न होना चाहिये क्योंकि सब स्वतन्त्र हुए ? (उत्तर) जैसे राजा और प्रजा समकाल में होते हैं और राजा के आधीन प्रजा होती है वैसे ही परमेश्वर के आधीन जीव और जड़ पदार्थ हैं। जब परमेश्वर सब सृष्टि का बनाने, जीवों के कर्मफलों के देने, सब का यथावत् रक्षक और अनन्त सामर्थ्य वाला है तो अल्प सामर्थ्य भी और जड़ पदार्थ उसके आधीन क्यों न हो ? इसलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र परन्तु कर्मों के फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र है, वैसे ही सर्वशक्तिमान् सृष्टि संहार और पालन सब विश्व का करता है ॥

इसके आगे विद्या, अविद्या, बन्ध और मोक्ष विषय में लिखा जायगा, यह आठवां समुल्लास पूरा हुआ ॥ ८ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते सृष्ट्युत्पत्तिस्थितिप्रलयवि-
षयेऽष्टमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ८ ॥

अथ नवमसमुल्लासारम्भः

अथ विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषयान् व्याख्यास्यामः

विद्यां चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयंꣳसह । अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥ यजुः ॥ अ० ४० । मं० १४ ॥

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है । अविद्या का लक्षण—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥
[पातं० द० साधनपादे सू० ५]

यह योगसूत्र का वचन है—जो अनित्य संसार और देहादि में नित्य, अर्थात् जो कार्य जगत् देखा सुना जाता है, सदा रहेगा, सदा से है और योग बल से यही देवों का शरीर सदा रहता है वैसी विपरीत बुद्धि होना अविद्या का प्रथम भाग है । अशुचि अर्थात् मलमय स्त्र्यादि के और मिथ्याभाषण, चोरी आदि अपवित्र में पवित्र बुद्धि दूसरा; अत्यन्त विषयसेवनरूप दुःख में सुखबुद्धि आदि तीसरा, अनात्मा में आत्मबुद्धि करना अविद्या का चौथा भाग है। यह चार प्रकार का विपरीत ज्ञान अविद्या कहाती है । इससे विपरीत अर्थात् अनित्य में अनित्य और नित्य में नित्य, अपवित्र में अपवित्र, और पवित्र में पवित्र, दुःख में दुःख, सुख में सुख, अनात्मा में अनात्मा और आत्मा में आत्मा का ज्ञान होना विद्या है । अर्थात् "वेत्ति यथावत्तत्त्वपदार्थस्वरूपं यया सा विद्या यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति यया साऽविद्या" जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिससे

तत्त्वस्वरूप न जान पड़े अन्य में अन्य बुद्धि होवे वह अविद्या कहाती है। अर्थात् कर्म और उपासना अविद्या इसलिये है कि यह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष है ज्ञानविशेष नहीं। इसी से मंत्र में कहा है कि विना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख से पार कोई नहीं होता। अर्थात् पवित्र कर्म, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान ही से मुक्ति और अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म पाषाणमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है। कोई भी मनुष्य क्षणमात्र भी कर्म, उपासना और ज्ञान से रहित नहीं होता। इसलिये धर्मयुक्त सत्यभाषणादि कर्म करना और मिथ्याभाषणादि अधर्म को छोड़ देना ही मुक्ति का साधन है। (प्रश्न) मुक्ति किसको प्राप्त नहीं होती ? (उत्तर) जो बद्ध है। (प्रश्न) बद्ध कौन है ? (उत्तर) जो अधर्म अज्ञान में फँसा हुआ जीव है। (प्रश्न) बन्ध और मोक्ष स्वभाव से होता है वा निमित्त से ? (उत्तर) निमित्त से, क्योंकि जो स्वभाव से होता तो बन्ध और मुक्ति की निवृत्ति कभी नहीं होती। (प्रश्न)—

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता॥
[गौडपादीयकारिका। प्र० २। कां० ३२]

यह श्लोक माण्डूक्योपनिषद् पर है—जीव ब्रह्म होने से वस्तुतः जीव का निरोध अर्थात् न कभी आवरण में आया न जन्म लेता न बन्ध है और न साधक अर्थात् न कुछ साधना करनेहारा है, न छूटने की इच्छा करता और न इसकी कभी मुक्ति है क्योंकि जब परमार्थ से बन्ध ही नहीं हुआ तो मुक्ति क्या ? (उत्तर) यह नवीन वेदान्तियों का कहना सत्य नहीं। क्योंकि जीव का स्वरूप अल्प होने से आवरण में आता, शरीर के साथ प्रकट होने रूप जन्म लेता, पापरूप कर्मों के फल भोगरूप बन्धन में फँसता, उसके छुड़ाने का साधन करता, दुःख से छूटने की इच्छा करता और दुःखों से छूटकर परमानन्द परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति को भी भोगता है। (प्रश्न) ये सब धर्म देह और अन्तःकरण के हैं जीव के नहीं। क्योंकि जीव तो पाप

पुण्य से रहित साक्षीमात्र है। शीतोष्णादि शरीरादि के धर्म्म हैं, आत्मा निर्लेप है। (उत्तर) देह और अन्तःकरण जड़ हैं उनको शीतोष्ण प्राप्ति और भोग नहीं है। जो चेतन मनुष्यादि प्राणि उसको स्पर्श करता है उसी को शीत उष्ण का भान और भोग होता है। वैसे प्राण भी जड़ हैं न उनको भूख न पिपासा, किन्तु प्राणवाले जीव को क्षुधा, तृषा लगती है। वैसे ही मन भी जड़ है न उसको हर्ष न शोक हो सकता है किन्तु मन से हर्ष शोक दुःख सुख का भोग जीव करता है। जैसे बहिष्करण श्रोत्रादि इन्द्रियों से अच्छे बुरे शब्दादि विषयों का ग्रहण करके जीव सुखी दुखी होता है वैसे ही अन्तःकरण अर्थात् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार से संकल्प, विकल्प, निश्चय, स्मरण और अभिमान का करनेवाला दण्ड और मान्य का भागी होता है। जैसे तलवार से मारने वाला दण्डनीय होता है तलवार नहीं होती, वैसे ही देहेन्द्रिय अन्तःकरण और प्राणरूप साधनों से अच्छे बुरे कर्मों का कर्त्ता जीव सुख दुःख का भोक्ता है जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है, वह ईश्वरसाक्षी नहीं। (प्रश्न) जीव ब्रह्म का प्रतिबिम्ब है जैसे दर्प्पण के टूटने फूटने से बिम्ब की कुछ हानि नहीं होती इसी प्रकार अन्तःकरण में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जीव तबतक है कि जबतक वह अन्तःकरणोपाधि है। जब अन्तःकरण नष्ट होगया तब जीव मुक्त है। (उत्तर) यह बालकपन की बात है क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है जैसे मुख और दर्प्पण आकारवाले हैं और पृथक् भी हैं। जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म निराकार, सर्वव्यापक होने से उसका प्रतिबिम्ब ही नहीं हो सकता। (प्रश्न) देखो गम्भीर स्वच्छ जल में निराकार और व्यापक आकाश का आभास पड़ता है। इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास है। इसलिये इसको चिदाभास कहते हैं (उत्तर) यह बालबुद्धि का मिथ्या प्रलाप है। क्योंकि आकाश दृश्य नहीं तो उसको आंख से कोई भी क्योंकर देख सकता है। (प्रश्न) यह जो ऊपर को नीला और धुंधलापन दीखता है वह आकाश नीला दीखता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं (प्रश्न)

तो वह क्या है ? (उत्तर) अलग २ पृथिवी जल और अग्नि के त्रसरेणु दीखते हैं। उसमें जो नीलता दीखती है, वह अधिक जल जो कि वर्षता है सो वही नील, जो धूंधलापन दीखता है वह पृथिवी से धूली उड़कर वायु में घूमती है, वह दीखती, और उसी का प्रतिबिम्ब जल वा दर्पण में दीखता है, आकाश का कभी नहीं। (प्रश्न) जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाश के भेद व्यवहार में होते हैं वैसे ही ब्रह्म के ब्रह्माण्ड और अन्तःकरण उपाधि के भेद से ईश्वर और जीव नाम होता है। जब घटादि नष्ट होजाते हैं तब महाकाश ही कहाता है। (उत्तर) यह भी बात अविद्वानों की है। क्योंकि आकाश कभी छिन्न भिन्न नहीं होता। व्यवहार में भी "घड़ा लाओ" इत्यादि व्यवहार होते हैं कोई नहीं कहता कि घड़े का आकाश लाओ। इसलिये यह बात ठीक नहीं। (प्रश्न) जैसे समुद्र के बीच में मच्छी कीड़े और आकाश के बीच में पक्षी आदि घूमते हैं वैसे ही चिदाकाश ब्रह्म में सब अन्तःकरण घूमते हैं वे स्वयं तो जड़ हैं परन्तु सर्वव्यापक परमात्मा की सत्ता से जैसा कि अग्नि से लोहा वैसे चेतन हो रहे हैं। जैसे वे चलते फिरते और आकाश तथा ब्रह्म निश्चल है, वैसे जीव को ब्रह्म मानने में कोई दोष नहीं आता। (उत्तर) यह भी तुम्हारा दृष्टान्त सत्य नहीं क्योंकि जो सर्वव्यापी ब्रह्म अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो सर्वज्ञादि गुण उस में होते हैं वा नहीं ? जो कहो कि आवरण होने से सर्वज्ञता नहीं होती तो कहो कि ब्रह्म आवृत और खण्डित है वा अखण्डित ? जो कहो कि अखण्डित है तो बीच में कोई भी पड़दा नहीं डाल सकता। जब पड़दा नहीं तो सर्वज्ञता क्यों नहीं ? जो कहो कि अपने स्वरूप को भूलकर अन्तःकरण के साथ चलतासा है, स्वरूप से नहीं, जब स्वयं नहीं चलता तो अन्तःकरण जितना २ पूर्व प्राप्त देश छोड़ता और आगे आगे जहां २ सरकता जायगा वहां २ का ब्रह्म भ्रान्त, अज्ञानी हो जायगा और जितना २ छूटता जायगा वहां २ का ज्ञानी, पवित्र और मुक्त होता जायगा। इसी प्रकार सर्वत्र सृष्टि के ब्रह्म को अन्तःकरण बिगाड़ा करेंगे और बन्ध मुक्ति भी क्षण क्षण में हुआ करेगी। तुम्हारे कहे प्रमाणे जो वैसा होता तो किसी जीव को पूर्व देखे सुने का

स्मरण न होता क्योंकि जिस ब्रह्म ने देखा वह नहीं रहा इसलिये ब्रह्म जीव, जीव ब्रह्म एक कभी नहीं होता, सदा पृथक् २ हैं (प्रश्न) यह सब अध्यारोपमात्र है। अर्थात् अन्य वस्तु में अन्य वस्तु का स्थापन करना अध्यारोप कहाता है वैसे ही ब्रह्म वस्तु में सब जगत् और इसके व्यवहार का अध्यारोप करने से जिज्ञासु को बोध कराना होता है, वास्तव में सब ब्रह्म ही हैं (प्रश्न) अध्यारोप का करनेवाला कौन है? (उत्तर) जीव (प्रश्न) जीव किसको कहते हो? (उत्तर) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन को (प्रश्न) अन्तःकरणावच्छिन्न चेतन दूसरा है वा वही ब्रह्म? (उत्तर) वही ब्रह्म है (प्रश्न) तो क्या ब्रह्म ही ने अपने में जगत् की झूठी कल्पना करली? (उत्तर) हो, ब्रह्म की इससे क्या हानि। (प्रश्न) जो मिथ्या कल्पना करता है क्या वह झूठा नहीं होता? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो मन, वाणी से कल्पित वा कथित है वह सब झूठा है। (प्रश्न) फिर मन वाणी से झूठी कल्पना करने और मिथ्या बोलनेवाला ब्रह्म कल्पित और मिथ्यावादी हुआ वा नहीं? (उत्तर) हो, हमको इष्टापत्ति है! वाह रे झूठ वेदान्तियो! तुमने सत्यस्वरूप, सत्यकाम, सत्यसङ्कल्प परमात्मा को मिथ्याचारी कर दिया। क्या यह तुम्हारी दुर्गति का कारण नहीं है? किस उपनिषद् सूत्र वा वेद में लिखा है कि परमेश्वर मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी है? क्योंकि जैसे किसी चोर ने कोतवाल को दण्ड दिया अर्थात् "उलटि चोर कोतवाल को दण्डे" इस कहानी के सदृश तुम्हारी बात हुई। यह तो बात उचित है कि कोतवाल चोर को दण्डे परन्तु यह बात विपरीत है कि चोर कोतवाल को दण्ड देवे। वैसे ही तुम मिथ्यासङ्कल्प और मिथ्यावादी होकर वही अपना दोष ब्रह्म में व्यर्थ लगाते हो। जो ब्रह्म मिथ्याज्ञानी, मिथ्यावादी, मिथ्याकारी, होवे तो सब अनन्त ब्रह्म वैसा ही होजाय क्योंकि वह एकरस है, सत्यस्वरूप सत्यमानी सत्यवादी और सत्यकारी है। ये सब दोष तुम्हारे हैं, ब्रह्म के नहीं जिसको तुम विद्या कहते हो वह अविद्या है और तुम्हारा अध्यारोप भी मिथ्या है क्योंकि आप ब्रह्म न होकर अपने को ब्रह्म और ब्रह्म को जीव मानना यह मिथ्या ज्ञान नहीं तो क्या है? जो सर्वव्यापक है वह परिच्छिन्न, अज्ञान और बन्ध में कभी नहीं गिरता, क्योंकि अज्ञान परिच्छिन्न एकदेशी अल्प अल्पज्ञ जीव होता है, सर्वज्ञ सर्वव्यापी ब्रह्म नहीं।

अब मुक्ति बन्ध का वर्णन करते हैं ॥

(प्रश्न) मुक्ति किसको कहते हैं ? (उत्तर) "मुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः" जिस में छूट जाना हो उसका नाम मुक्ति है । (प्रश्न) किससे छूट जाना ? (उत्तर) जिससे छूटने की इच्छा सब जीव करते हैं । (प्रश्न) किससे छूटने की इच्छा करते हैं ? (उत्तर) जिससे छूटना चाहते हैं । (प्रश्न) किससे छूटना चाहते हैं ? (उत्तर) दुःख से । (प्रश्न) छूट कर किसको प्राप्त होते और कहां रहते हैं ? (उत्तर) सुख को प्राप्त होते और ब्रह्म में रहते हैं । (प्रश्न) मुक्ति और बन्ध किन २ बातों से होता है ? (उत्तर) परमेश्वर की आज्ञा पालने, अधर्म्म, अविद्या, कुसङ्ग, कुसंस्कार, बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार, विद्या पक्षपातरहित न्याय धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने, पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सबसे उत्तम साधनों को करने और जो कुछ करे वह सब पक्षपातरहित न्यायधर्मानुसार ही करे इत्यादि साधनों से मुक्ति और इनसे विपरीत ईश्वराज्ञाभङ्ग करने आदि काम से बन्ध होता है । (प्रश्न) मुक्ति में जीव का लय होता है वा विद्यमान रहता है ? (उत्तर) विद्यमान रहता है । (प्रश्न) कहां रहता है ? (उत्तर) ब्रह्म में । (प्रश्न) ब्रह्म कहां है और वह मुक्त जीव एक ठिकाने रहता है वा स्वेच्छाचारी होकर सर्वत्र विचरता है ? (उत्तर) जो ब्रह्म सर्वत्र पूर्ण है उसी में मुक्त जीव अव्याहतगति अर्थात् उसको कहीं रुकावट नहीं विज्ञान आनन्दपूर्वक स्वतन्त्र विचरता है । (प्रश्न) मुक्त जीव का स्थूल शरीर होता है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं रहता (प्रश्न) फिर वह सुख और आनन्दभोग कैसे करता है ? (उत्तर) उसके सत्य सङ्कल्पादि स्वाभाविक गुण सामर्थ्य सब रहते हैं भौतिकसङ्ग नहीं रहता, जैसेः—

शृण्वन् श्रोत्रं भवति, स्पर्शयन् त्वग्भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति, रसयन् रसना भवति, जिघ्रन् घ्राणं भवति, मन्वानो मनो भवति, बोधयन् बुद्धिर्भवति, चेतयंश्चित्तम्भवत्यहङ्कुर्वाणोऽहङ्कारो भवति ॥ शतपथ कां० १४ ॥

मोक्ष में भौतिक शरीर वा इन्द्रियों के गोलक जीवात्मा के साथ नहीं रहते किन्तु अपने स्वाभाविक शुद्ध गुण रहते हैं जब सुनना चाहता है तब श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा, देखने के सङ्कल्प से चक्षु, स्वाद के अर्थ रसना, गन्ध के लिये घ्राण, सङ्कल्प विकल्प करते समय मन, निश्चय करने के लिये बुद्धि, स्मरण करने के लिये चित्त और अहङ्कार के अर्थ अहङ्काररूप अपनी स्वशक्ति से जीवात्मा मुक्ति में हो जाता है और सङ्कल्पमात्र शरीर होता है जैसे शरीर के आधार रहकर इन्द्रियों के गोलक के द्वारा जीव स्वकार्य्य करता है वैसे अपनी शक्ति से मुक्ति में सब आनन्द भोग लेता है। (प्रश्न) उसकी शक्ति कै प्रकार की और कितनी है ? (उत्तर) मुख्य एक प्रकार की शक्ति है परन्तु बल, पराक्रम, आकर्षण, प्रेरणा, गति, भीषण, विवेचन, क्रिया, उत्साह, स्मरण, निश्चय, इच्छा, प्रेम, द्वेष, संयोग, विभाग, संयोजक, विभाजक, श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, स्वादन और गन्धग्रहण तथा ज्ञान इन २४ (चौबीस) प्रकार के सामर्थ्ययुक्त जीव है। इससे मुक्ति में भी आनन्द की प्राप्ति भोग करता है। जो मुक्ति में जीव का लय होता तो मुक्ति का सुख कौन भोगता ? और जो जीव के नाश ही को मुक्ति समझते हैं वे महामूढ़ हैं क्योंकि मुक्ति जीव की यह है कि दुःखों से छूटकर आनन्दस्वरूप सर्वव्यापक अनन्त परमेश्वर में जीव का आनन्द में रहना। देखो वेदान्त शारीरिकसूत्रों में—

अभावं वादरिराह ह्येवम् ॥ [वेदान्तद० ४ । ४ । १०]

जो वादरि व्यासजी का पिता है वह मुक्ति में जीव का और उसके साथ मन का भाव मानता है अर्थात् जीव और मन का लय पराशरजी नहीं मानते वैसे ही—

भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ॥ [वेदान्तद० ४ । ४ । ११]

और जैमिनि आचार्य्य मुक्त पुरुष का मन के समान सूक्ष्म शरीर, इन्द्रियों और प्राण आदि को भी विद्यमान मानते हैं अभाव नहीं ॥

द्वादशाहवदुभयविधं वादरायणोऽतः ॥ [वेदान्तद० ४ । ४ । १२]

व्यास मुनि मुक्ति में भाव और अभाव इन दोनों को मानते हैं अर्थात्

शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है, अपवित्रता, पापाचरण, दुःख, अज्ञानादि का अभाव मानते हैं ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ [कठो० अ० २ । व० ६ । मं० १०]

यह उपनिषद् का वचन है। जब शुद्ध मनयुक्त पांच ज्ञानेन्द्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते हैं॥

य आत्मा अपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोकोऽविजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः सोऽन्वेष्टव्यः स विजिज्ञासितव्यः सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान् यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥ [छान्दो० प्र० ८ । खं० ७ । मं० १]

स वा एष एतेन दैवेन चक्षुषा मनसतान् कामान् पश्यन् रमते ॥ य एते ब्रह्मलोके तं वा एतं देवा आत्मानमुपासते तस्मात्तेषांसर्वे च लोका आत्ताः सर्वे च कामाः स सर्वांश्च लोकानाप्नोति सर्वांश्च कामान्यस्तमात्मानमनुविद्य विजानातीति ॥ [छान्दो० प्र० ८ । खं० १२ । मं० ५ । ६]

मघवन्मर्त्यं वा इदं शरीरमात्तं मृत्युना तदस्याऽमृतस्याशरीरस्यात्मनोधिष्ठानमात्तो वै सशरीरः प्रियाप्रियाभ्यां न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिरस्त्यशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः ॥ [छान्दो० प्र० ८ । खं० १२ । मं० १]

जो परमात्मा अपहतपाप्मा सर्व पाप, जरा, मृत्यु, शोक, क्षुधा, पिपासा से रहित, सत्यकाम सत्यसंकल्प है उसकी खोज और उसी की जानने की इच्छा करनी चाहिये। जिस परमात्मा के सम्बन्ध से मुक्त जीव सब लोकों और सब कामों को प्राप्त होता है, जो परमात्मा को जानके मोक्ष के साधन और अपने को शुद्ध करना जानता है सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और शुद्ध मन से कामों को देखता, प्राप्त होता हुआ रमण करता है। जो ये ब्रह्म-

लोक अर्थात् दर्शनीय परमात्मा में स्थित होके मोक्ष सुख को भोगते हैं और इसी परमात्मा का जो कि सब का अन्तर्यामी आत्मा है उसकी उपासना मुक्ति को प्राप्त करनेवाले विद्वान् लोग करते हैं। उससे उनको सब लोक और सब काम प्राप्त होते हैं अर्थात् जो २ संकल्प करते हैं वह २ लोक और वह २ काम प्राप्त होता है और वे मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़कर संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। क्योंकि जो शरीर वाले होते हैं वे सांसारिक दुःख से रहित नहीं हो सकते। जैसे इन्द्र से प्रजापति ने कहा है कि हे परमपूजित धनयुक्त पुरुष! यह स्थूल शरीर मरणधर्मा है और जैसे सिंह के मुख में बकरी होवे वैसे यह शरीर मृत्यु के मुख के बीच है सो शरीर इस मरण और शरीररहित जीवात्मा का निवासस्थान है। इसीलिये यह जीव सुख और दुःख से सदा ग्रस्त रहता है क्योंकि शरीर सहित जीव की सांसारिक प्रसन्नता की निवृत्ति होती ही है और जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है। उस को सांसारिक सुख दुःख का स्पर्श भी नहीं होता किन्तु सदा आनन्द में रहता है। (प्रश्न) जीव मुक्ति को प्राप्त होकर पुनः जन्म मरणरूप दुःख में कभी आते हैं वा नहीं? क्योंकि—

न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते इति ॥ उपनिषद्वचनम् [छां० प्र० ८। खं० १५] अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ॥ शारीरिक सूत्र [४। ४। ३३]

यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ भगवद्गीता ॥

इत्यादि वचनों से विदित होता है कि मुक्ति वही है कि जिससे निवृत्त होकर पुनः संसार में कभी नहीं आता। (उत्तर) यह बात ठीक नहीं क्योंकि वेद में इस बात का निषेध किया है:—

कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑।
को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ १ ॥

अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।
स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात् पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥ २ ॥
ऋ० ॥ मं० १ । सू० २४ । मं० १ । २ ॥

इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः ॥ ३ ॥ सांख्यसूत्र १ । १५९ ॥

(प्रश्न) हम लोग किसका नाम पवित्र जानें ? कौन नाशरहित पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता तथा पिता का दर्शन कराता है ? ॥१॥ (उत्तर) हम इस स्वप्रकाशस्वरूप अनादि सदा मुक्त परमात्मा का नाम पवित्र जानें जो हमको मुक्ति में आनन्द भुगा कर पृथिवी में पुनः माता पिता के सम्बन्ध में जन्म देकर माता पिता का दर्शन कराता है । वही परमात्मा मुक्ति की व्यवस्था करता सब का स्वामी है ॥ २ ॥ जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं अत्यन्त विच्छेद बन्ध मुक्ति का कभी नहीं होता किन्तु बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती ॥ ३ ॥ (प्रश्न)—

तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः ।

दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः ॥ न्यायसूत्र [१ । २२ । २]

जो दुःख का अत्यन्त विच्छेद होता है वही मुक्ति कहाती है क्योंकि जब मिथ्या ज्ञान अविद्या, लोभादि दोष, विषय दुष्ट व्यसनों में प्रवृत्ति, जन्म और दुःख का उत्तर २ के छूटने से पूर्व २ के निवृत्त होने ही से मोक्ष होता है जो कि सदा बना रहता है । (उत्तर) यह आवश्यक नहीं है कि अत्यन्त शब्द अत्यन्ताभाव ही का नाम होवे । जैसे "अत्यन्तं दुःखमत्यन्तं सुखं चास्य वर्त्तते" बहुत दुःख और बहुत सुख इस मनुष्य को है । इससे यही विदित होता है कि इसको बहुत सुख वा दुःख है । इसी प्रकार यहां भी अत्यन्त शब्द का अर्थ जानना चाहिये । (प्रश्न) जो मुक्ति से भी जीव फिर आता है तो वह कितने समय तक मुक्ति में रहता है ? (उत्तर):—

ते ब्रह्मलोके ह परान्तकाले परामृतात् परिमुच्यन्ति सर्वे ॥
[मुण्डक ३ । खं० २ । मं० ६]

यह मुण्डक उपनिषद् का वचन है । वे मुक्त जीव मुक्ति में प्राप्त होके ब्रह्म में आनन्द को तबतक भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं । इसकी संख्या यह है कि तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों की एक चतुर्युगी, दो सहस्र चतुर्युगियों का एक अहोरात्र, ऐसे तीस अहोरात्रों का एक महीना, ऐसे बारह महीनों का एक वर्ष, ऐसे शत वर्षों का परान्तकाल होता है । इसको गणित की रीति से यथावत् समझ लीजिये । इतना समय मुक्ति में सुख भोगने का है । (प्रश्न) सब संसार और ग्रन्थकारों का यही मत है कि जिससे पुनः जन्म मरण में कभी न आवें । (उत्तर) यह बात कभी नहीं हो सकती क्योंकि प्रथम तो जीव का सामर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं पुनः उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य कर्म और साधन जीवों में नहीं इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते । जिनके साधन अनित्य हैं उनका फल नित्य कभी नहीं हो सकता । और जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष होजाने चाहियें । (प्रश्न) जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है इसलिये निश्शेष नहीं होते । (उत्तर) जो ऐसा होवे तो जीव अनित्य होजायें क्योंकि जिसकी उत्पत्ति होती है उसका नाश अवश्य होता है फिर तुम्हारे मतानुसार मुक्ति पाकर भी विनष्ट होजायें मुक्ति अनित्य होगई और मुक्ति के स्थान में बहुतसा भीड़ भड़क्का हो जायेगा क्योंकि वहां आगम अधिक और व्यय कुछ भी नहीं होने से बढ़ती का पारावार न रहेगा और दुःख के अनुभव के विना सुख कुछ भी नहीं हो सकता । जैसे कटु न हो तो मधुर क्या जो मधुर न हो तो कटु क्या कहावे ? क्योंकि एक स्वाद के एक रस के विरुद्ध होने से दोनों की परीक्षा होती है । जैसे कोई मनुष्य मीठा मधुर ही खाता पीता जाय उसको वैसा सुख नहीं होता जैसा सब प्रकार के

रसों के भोगनेवाले को होता है। और जो ईश्वर अन्तवाले कर्मों का अनन्त फल देवे तो उसका न्याय नष्ट हो जाय, जो जितना भार उठासके उतना उस पर धरना बुद्धिमानों का काम है। जैसे एक मन भर उठानेवाले के शिर पर दश मन धरने से भार धरनेवाले की निन्दा होती है वैसे अल्पज्ञ अल्प सामर्थ्यवाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिये ठीक नहीं। और जो परमेश्वर नये जीव उत्पन्न करता है तो जिस कारण से उत्पन्न होते हैं वह चुक जायगा क्योंकि चाहे कितना बड़ा धनकोश हो परन्तु जिसमें व्यय है और आय नहीं उसका कभी न कभी दिवाला निकल ही जाता है। इसलिये यही व्यवस्था ठीक है कि मुक्ति में जाना वहां से पुनः आना ही अच्छा है। क्या थोड़े से कारागार से जन्म कारागार दण्डवाले प्राणी अथवा फांसी को कोई अच्छा मानता है? जब वहां से आना ही न हो तो जन्म कारागार से इतना ही अन्तर है कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती और ब्रह्म में लय होना समुद्र में डूब मरना है। (प्रश्न) जैसे परमेश्वर नित्यमुक्त पूर्ण सुखी है वैसे ही जीव भी नित्यमुक्त और सुखी रहेगा तो कोई भी दोष न आवेगा। (उत्तर) परमेश्वर अनन्त स्वरूप, सामर्थ्य, गुण, कर्म, स्वभाववाला है इसलिये वह कभी अविद्या और दुःख बन्धन में नहीं गिर सकता। जीव मुक्त होकर भी शुद्धस्वरूप, अल्पज्ञ और परिमित गुण कर्म स्वभाववाला रहता है परमेश्वर के सदृश कभी नहीं होता। (प्रश्न) जब ऐसी तो मुक्ति भी जन्म मरण के सदृश है इसलिये श्रम करना व्यर्थ है। (उत्तर) मुक्ति जन्म मरण के सदृश नहीं क्योंकि जबतक ३६००० (छतीस सहस्र) वार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्य्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना दुःख का न होना क्या छोटी बात है? जब आज खाते पीते हो कल भूख लगनेवाली है पुनः इसका उपाय क्यों करते हो? जब क्षुधा, तृषा, क्षुद्र धन, राज्य, प्रतिष्ठा, स्त्री, सन्तान आदि के लिये उपाय करना आवश्यक है तो मुक्ति के लिये क्यों न करना? जैसे मरना अवश्य है तो भी जीवन का उपाय किया जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौटकर जन्म में आना है तथापि उसका करना उपाय अत्यावश्यक है (प्रश्न) मुक्ति के क्या साधन हैं? (उत्तर) कुछ साधन तो प्रथम लिख आये हैं परन्तु विशेष

उपाय ये हैं । जो मुक्ति चाहे वह जीवनमुक्त अर्थात् जिन मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों का फल दुःख है उनको छोड़ सुखरूप फल को देनेवाले सत्यभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे जो कोई दुःख को छुड़ाना और सुख को प्राप्त होना चाहे वह अधर्म को छोड़ धर्म अवश्य करे । क्योंकि दुःख का पापाचरण और सुख का धर्माचरण मूलकारण है । सत्पुरुषों के संग से विवेक अर्थात् सत्याऽसत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय अवश्य करें पृथक् २ जानें और शरीर अर्थात् जीव पंच कोशों का विवेचन करें । एक "अन्नमय" जो त्वचा से लेकर अस्थिपर्यन्त का समुदाय पृथिवीमय है, दूसरा "प्राणमय" जिसमें "प्राण" अर्थात् जो भीतर से बाहर जाता "अपान" जो बाहर से भीतर आता "समान" जो नाभिस्थ होकर सर्वत्र शरीर में रस पहुंचाता "उदान" जिससे कण्ठस्थ अन्न पान खैंचा जाता और बल पराक्रम होता है "व्यान" जिससे सब शरीर में चेष्टा आदि कर्म जीव करता है । तीसरा "मनोमय" जिसमें मन के साथ अहङ्कार, वाक्, पाद, पाणि, पायु और उपस्थ पांच कर्म इन्द्रियां हैं । चौथा "विज्ञानमय" जिसमें बुद्धि, चित्त, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका ये पांच ज्ञान इन्द्रियां जिनसे जीव ज्ञानादि व्यवहार करता है । पांचवां "आनन्दमयकोश" जिसमें प्रीति प्रसन्नता, न्यून आनन्द अधिकानन्द, आनन्द और आधार कारणरूप प्रकृति है । ये पांच कोश कहाते हैं इन्हीं से जीव सब प्रकार के कर्म, उपासना और ज्ञानादि व्यवहारों को करता है । तीन अवस्था, एक "जागृत" दूसरी "स्वप्न" और तीसरी "सुषुप्ति" अवस्था कहाती है । तीन शरीर हैं, एक "स्थूल" जो यह दीखता है । दूसरा पांच प्राण, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच सूक्ष्मभूत और मन तथा बुद्धि इन सत्तरह तत्वों का समुदाय "सूक्ष्मशरीर" कहाता है यह सूक्ष्म शरीर जन्ममरणादि में भी जीव के साथ रहता है । इसके दो भेद हैं एक भौतिक अर्थात् जो सूक्ष्मभूतों के अंशों से बना है । दूसरा स्वाभाविक जो जीव के स्वाभाविक गुणरूप हैं यह दूसरा अभौतिक शरीर मुक्ति में भी रहता है । इसीसे जीव मुक्ति में सुख को भोगता है । तीसरा कारण जिसमें सुषुप्ति अर्थात् गाढ़निद्रा होती है वह प्रकृतिरूप होने से सर्वत्र विभु और सब जीवों के लिये एक है । चौथा तुरीय शरीर वह

कहाता है जिसमें समाधि से परमात्मा के आनन्दस्वरूप में मग्न जीव होते हैं। इसी समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर का पराक्रम मुक्ति में भी यथावत् सहायक रहता है इन सब कोश अवस्थाओं से जीव पृथक् है क्योंकि यह सब को विदित है कि अवस्थाओं से जीव पृथक् है क्योंकि जब मृत्यु होता है तब सब कोई कहते हैं कि जीव निकल गया यही जीव सब का प्रेरक, सब का धर्त्ता, साक्षी, कर्त्ता, भोक्ता कहाता है। जो कोई ऐसा कहे कि जीव कर्त्ता भोक्ता नहीं तो उसको जानो कि वह अज्ञानी, अविवेकी है क्योंकि विना जीव के जो ये सब जड़ पदार्थ हैं इनको सुख दुःख का भोग व पाप पुण्य कर्तृत्व कभी नहीं हो सकता। हां, इनके सम्बन्ध से जीव पाप पुण्यों का कर्त्ता और सुख दुःखों का भोक्ता है। जब इन्द्रियां अर्थों में मन इन्द्रियों और आत्मा मनके साथ संयुक्त होकर प्राणों को प्रेरणा करके अच्छे वा बुरे कर्मों में लगाता है तभी वह बहिर्मुख होजाता है उसी समय भीतर से आनन्द, उत्साह, निर्भयता और बुरे कर्मों में भय, शङ्का, लज्जा उत्पन्न होती है वह अन्तर्यामी परमात्मा की शिक्षा है। जो कोई इस शिक्षा के अनुकूल वर्त्तता है वही मुक्तिजन्य सुखों को प्राप्त होता है। और जो विपरीत वर्त्तता है वह बन्धजन्य दुःख भोगता है। दूसरा साधन "वैराग्य" अर्थात् जो विवेक से सत्यासत्य को जाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना विवेक है। जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव से जानकर उसकी आज्ञा पालन और उपासना में तत्पर होना, उससे विरुद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना विवेक कहाता है। तत्पश्चात् तीसरा साधन "षट्क सम्पत्ति" अर्थात् छः प्रकार के कर्म करना एक "शम" जिससे अपने आत्मा और अन्तःकरण को अधर्माचरण से हटाकर धर्माचरण नें सदा प्रवृत्त रखना, दूसरा "दम" जिससे श्रोत्रादि इन्द्रियों और शरीर को व्यभिचारादि बुरे कर्मों से हटाकर जितेन्द्रिय-त्वादि शुभ कर्मों में प्रवृत्त रखना, तीसरा "उपरति" जिससे दुष्ट कर्म करने-वाले पुरुषों से सदा दूर रहना, चौथा "तितिक्षा" चाहे निन्दा, स्तुति, हानि, लाभ कितना ही क्यों न हो परन्तु हर्ष शोक को छोड़ मुक्तिसाधनों में सदा लगे रहना, पांचवां "श्रद्धा" जो वेदादि सत्य शास्त्र और इनके बोध से पूर्ण

आप्त विद्वान् सत्योपदेष्टा महाशयों के वचनों पर विश्वास करना, छठा "समाधान" चित्त की एकाग्रता ये छः मिलकर एक "साधन" तीसरा कहाता है। चौथा "मुमुक्षुत्व" अर्थात् जैसे क्षुधा तृषातुर को सिवाय अन्न जल के दूसरा कुछ भी अच्छा नहीं लगता वैसे विना मुक्ति के साधन और मुक्ति के दूसरे में प्रीति न होना। ये चार साधन और चार अनुबन्ध अर्थात् साधनों के पश्चात् ये कर्म करने होते हैं। इनमें से जो इन चार साधनों स युक्त पुरुष होता है वही मोक्ष का अधिकारी होता है। दूसरा "सम्बन्ध" ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति प्रतिपाद्य और वेदादि शास्त्र प्रतिपादक को यथावत् समझ कर अन्वित करना, तीसरा "विषयी" सब शास्त्रों का प्रतिपादन विषय ब्रह्म उसकी प्राप्तिरूप विषय वाले पुरुष का नाम विषयी है, चौथा "प्रयोजन" सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द को प्राप्त होकर मुक्तिसुख का होना ये चार अनुबन्ध कहाते हैं। "तदनन्तर श्रवणचतुष्टय" एक "श्रवण" जब कोई विद्वान् उपदेश करे तब शान्त ध्यान देकर सुनना विशेष ब्रह्मविद्या के सुनने में अत्यन्त ध्यान देना चाहिये कि यह सब विद्याओं में सूक्ष्म विद्या है, सुनकर दूसरा "मनन" एकान्त देश में बैठ के सुने हुए का विचार करना जिस बात में शंका हो पुनः पूछना और सुनने समय भी वक्ता और श्रोता उचित समझें तो पूछना और समाधान करना, तीसरा "निदिध्यासन" जब सुनने और मनन करने से निस्सन्देह होजाय तब समाधिस्थ होकर उस बात को देखना समझना कि वह जैसा सुना था विचारा था वैसा ही है वा नहीं ध्यान योग से देखना, चौथा "साक्षात्कार" अर्थात् जैसा पदार्थ का स्वरूप गुण और स्वभाव हो वैसा याथातथ्य जान लेना श्रवणचतुष्टय कहाता है। सदा तमोगुण अर्थात् क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि रजोगुण अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्य अर्थात् शान्त प्रकृति, पवित्रता, विद्या, विचार आदि गुणों को धारण करे (मैत्री) सुखी जनों में मित्रता, (करुणा) दुखी जनों पर दया, (मुदिता) पुण्यात्माओं से हर्षित होना, (उपेक्षा) दुष्टात्माओं में न प्रीति और न वैर करना। नित्यप्रति न्यून से न्यून दो घंटा पर्यन्त मुमुक्षु ध्यान अवश्य करे जिससे भीतर के मन आदि पदार्थ साक्षात् हों। देखो! अपने

चेतनस्वरूप हैं इसीसे ज्ञानस्वरूप और मन के साक्षी हैं क्योंकि जब मन शान्त, चंचल, आनन्दित वा विषादयुक्त होता है उसको यथावत् देखते हैं वैसे ही इन्द्रियां प्राण आदि का ज्ञाता पूर्वदृष्ट का स्मरणकर्त्ता और एक काल में अनेक पदार्थों के वेत्ता धारणाकर्षणकर्त्ता और सबसे पृथक् हैं जो पृथक् न होते तो स्वतन्त्र कर्त्ता इन के प्रेरक अधिष्ठाता कभी नहीं हो सकते ।

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥
योगशास्त्रे पादे २ । सू० ३ ॥

इनमें से अविद्या का स्वरूप कह आये पृथक् वर्त्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना अस्मिता, सुख में प्रीति राग दुःख में अप्रीति द्वेष और सब प्राणिमात्र को यह इच्छा सदा रहती है कि मैं सदा शरीरस्थ रहूं मरूं नहीं मृत्युदुःख से त्रास अभिनिवेश कहाता है । इन पांच क्लेशों को योगाभ्यास विज्ञान से छुड़ा के ब्रह्म को प्राप्त होके मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये । (प्रश्न) जैसी मुक्ति आप मानते हैं वैसी अन्य कोई नहीं मानता, देखो ! जैनी लोग मोक्षशिला, शिवपुर में जा के चुप चाप बैठे रहना, ईसाई चौथा आसमान जिसमें विवाह लड़ाई बाजे गाजे वस्त्रादि धारण से आनन्द भोगना, वैसे ही मुसलमान सातवें आसमान, वाममार्गी श्रीपुर, शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ और गोकुलिये गोसाईं गोलोक आदि में जाके उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने को मुक्ति मानते हैं । पौराणिक लोग (सालोक्य) ईश्वर के लोक में निवास, (सानुज्य) छोटे भाई के सदृश ईश्वर के साथ रहना, (सारूप्य) जैसी उपासनीय देव की आकृति है वैसा बन जाना, (सामीप्य) सेवक के समान ईश्वर के समीप रहना, (सायुज्य) ईश्वर से संयुक्त होजाना ये चार प्रकार की मुक्ति मानते हैं । वेदान्ति लोग ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं । (उत्तर) जैनी (१२) बारहवें ईसाई (१३) तेरहवें और (१४) चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों की मुक्ति आदि विषय विशेष कर लिखेंगे जो वाममार्गी श्रीपुर में जाकर लक्ष्मी के सदृश स्त्रियां मद्य मांसादि खाना पीना रंग राग भोग करना मानते हैं वह यहां से कुछ विशेष

नहीं। वैसे ही महादेव और विष्णु के सदृश आकृति वाले पार्वती और लक्ष्मी के सदृश स्त्रीयुक्त होकर आनन्द भोगना यहां के धनाढ्य राजाओं से अधिक इतना ही लिखते हैं कि वहां रोग न होंगे और युवावस्था सदा रहेगी यह उनकी बात मिथ्या है क्योंकि जहां भोग वहां रोग और जहां रोग वहां वृद्धावस्था अवश्य होती है। और पौराणिकों से पूछना चाहिये कि जैसी तुम्हारी चार प्रकार की मुक्ति है वैसी तो कृमि कीट पतङ्ग पश्वादिकों की भी स्वतःसिद्ध प्राप्त है क्योंकि ये जितने लोक हैं वे सब ईश्वर के हैं इन्हीं में सब जीव रहते हैं इसलिये "सालोक्य" मुक्ति अनायास प्राप्त है "सामीप्य" ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होने से सब उसके समीप हैं इसलिये "सामीप्य" मुक्ति स्वतःसिद्ध है "सानुज्य" जीव ईश्वर से सब प्रकार छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है इससे "सानुज्य" मुक्ति भी विना प्रयत्न के सिद्ध है और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मा में व्याप्य होने से संयुक्त हैं इससे "सायुज्य" मुक्ति भी स्वतःसिद्ध है। और जो अन्य साधारण नास्तिक लोग मरने से तत्वों में तत्व मिलकर परम मुक्ति मानते हैं वह तो कुत्ते गदहे आदि को भी प्राप्त है। ये मुक्तियां नहीं हैं किन्तु एक प्रकार का बन्धन है क्योंकि ये लोग शिवपुर, मोक्षशिला, चौथे आसमान, सातवें आसमान, श्रीपुर, कैलाश, वैकुण्ठ, गोलोक को एक देश में स्थान विशेष मानते हैं जो वे उन स्थानों से पृथक् हों तो मुक्ति छूट जाय इसीलिये जैसे १२ (बारह) पत्थर के भीतर दृष्टि बन्ध होते हैं उसके समान बन्धन में होंगे, मुक्ति तो यही है कि जहां इच्छा हो वहां विचरे कहीं अटके नहीं। न भय, न शङ्का, न दुःख होता है जो जन्म है वह उत्पत्ति और मरना प्रलय कहा है समय पर जन्म लेते हैं। (प्रश्न) जन्म एक है वा अनेक? (उत्तर) अनेक। (प्रश्न) जो अनेक हों तो पूर्व जन्म और मृत्यु की बातों का स्मरण क्यों नहीं? (उत्तर) जीव अल्पज्ञ है त्रिकालदर्शी नहीं इसलिये स्मरण नहीं रहता। और जिस मन से ज्ञान करता है वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता। भला पूर्व जन्म की बात तो दूर रहने दीजिये इसी देह में जब गर्भ में जीव था शरीर बना पश्चात् जन्मा पांचवें वर्ष से पूर्व तक जो २ बातें हुई हैं उनका स्मरण क्यों नहीं कर सकता? और जागृत वा स्वप्न में बहुतसा व्यवहार प्रत्यक्ष में करके जब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़-

निद्रा होती है तब जागृत आदि व्यवहार का स्मरण क्यों नहीं कर सकता ? और तुम से कोई पूछे कि बारह वर्ष के पूर्व तेरहवें वर्ष के पांचवें महीने के नववें दिन दश बजे पर पहिली मिनट में तुमने क्या किया था ? तुम्हारा मुख, हाथ, कान, नेत्र, शरीर किस ओर किस प्रकार का था ? और मन में क्या विचारा था ? जब इसी शरीर में ऐसा है तो पूर्व जन्म की बातों के स्मरण में शङ्का करना केवल लड़कपन की बात है और जो स्मरण नहीं होता है इसी से जीव सुखी है नहीं तो सब जन्मों के दुःखों को देख २ दुःखित होकर मरजाता। जो कोई पूर्व और पीछे जन्म के वर्त्तमान को जानना चाहे तो भी नहीं जान सकता क्योंकि जीव का ज्ञान और स्वरूप अल्प है यह बात ईश्वर के जानने योग्य है जीव के नहीं। (प्रश्न) जब जीव को पूर्व का ज्ञान नहीं और ईश्वर इसको दण्ड देता है तो जीव का सुधार नहीं हो सकता क्योंकि जब उसको ज्ञान हो कि हमने अमुक काम किया था उसी का यह फल है तभी वह पाप कर्मों से बच सके ? (उत्तर) तुम ज्ञान कै प्रकार का मानते हो ? (प्रश्न) प्रत्यक्षादि प्रमाणों से आठ प्रकार का। (उत्तर) तो जब तुम जन्म से लेकर समय २ में राज, धन, बुद्धि, विद्या, दारिद्र्य, निर्बुद्धि, मूर्खता आदि सुख दुःख संसार में देख कर पूर्व जन्म का ज्ञान क्यों नहीं करते। जैसे एक अवैद्य और एक वैद्य को कोई रोग हो उसका निदान अर्थात् कारण वैद्य जान लेता है और अविद्वान् नहीं जान सकता उसने वैद्यक विद्या पढ़ी है और दूसरे ने नहीं परन्तु ज्वरादि रोग के होने से अवैद्य भी इतना जान सकता है कि मुझ से कोई कुपथ्य हो गया है जिससे मुझे यह रोग हुआ है वैसे ही जगत् में विचित्र सुख दुःख आदि की घटती बढ़ती देख के पूर्व जन्म का अनुमान क्यों नहीं जान लेते ? और जो पूर्व जन्म को न मानोगे तो परमेश्वर पक्षपाती हो जाता है क्योंकि विना पाप के दारिद्र्यादि दुःख और विना पूर्वसञ्चित पुण्य के राज्य धनाढ्यता और निर्बुद्धिता उसको क्यों दी ? और पूर्व जन्म के पाप पुण्य के अनुसार दुःख सुख के देने से परमेश्वर न्यायकारी यथावत् रहता है (प्रश्न) एक जन्म होने से भी परमेश्वर न्यायकारी हो सकता है। जैसे सर्वोपरि राजा जो करे सो न्याय जैसे माली अपने उपवन में छोटे और बड़े वृक्ष

लगाता किसी को काटता उखाड़ता और किसी की रक्षा करता बढ़ाता है। जिसकी जो वस्तु है उसको वह चाहे जैसे रक्खे उसके ऊपर कोई भी दूसरा न्याय करनेवाला नहीं जो उसको दण्ड दे सके वा ईश्वर किसी से डरे। (उत्तर) परमात्मा जिसलिये न्याय चाहता करता अन्याय कभी नहीं करता इसलिये वह पूजनीय और बड़ा है जो न्यायविरुद्ध करे वह ईश्वर ही नहीं जैसे माली युक्ति के विना मार्ग वा अस्थान में वृक्ष लगाने, न काटने योग्य को काटने, अयोग्य को बढ़ाने, योग्य को न बढ़ाने से दूषित होता है इसी प्रकार विना कारण के करने से ईश्वर को दोष लगे परमेश्वर के ऊपर न्याययुक्त काम करना अवश्य है क्योंकि वह स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है जो उन्मत्त के समान काम करे तो जगत् के श्रेष्ठ न्यायाधीश से भी न्यून और अप्रतिष्ठित होवे। क्या इस जगत् में विना योग्यता के उत्तम काम किये प्रतिष्ठा और दुष्ट काम किये विना दण्ड देनेवाले निन्दनीय अप्रतिष्ठित नहीं होता? इसलिये ईश्वर अन्याय नहीं करता इसीसे किसी से नहीं डरता। (प्रश्न) परमात्मा ने प्रथम ही से जिस के लिये जितना देना विचारा है उतना देता और जितना काम करना है उतना करता है। (उत्तर) उसका विचार जीवों के कर्मानुसार होता है अन्यथा नहीं जो अन्यथा हो तो वही अपराधी अन्यायकारी होवे (प्रश्न) बड़े छोटों को एकसा ही सुख दुःख है बड़ों को बड़ी चिन्ता और छोटों को छोटी—जैसे किसी साहूकार का विवाद राजघर में लाख रुपये का हो तो वह अपने घर से पालकी में बैठकर कचहरी में उष्णकाल में जाता हो बाजार में हो के उसको जाता देखकर अज्ञानी लोग कहते हैं कि देखो पुण्य पाप का फल, एक पालकी में आनन्दपूर्वक बैठा है और दूसरे विना जूते पहिरे ऊपर नीचे से तप्यमान होते हुए पालकी को उठाकर ले जाते हैं परन्तु बुद्धिमान् लोग इसमें यह जानते हैं कि जैसे २ कचहरी निकट आती जाती है वैसे २ साहूकार को बड़ा शोक और सन्देह बढ़ता जाता और कहारों को आनन्द होता जाता है जब कचहरी में पहुंचते हैं तब सेठजी इधर उधर जाने का विचार करते हैं कि प्राड्विवाक् (वकील) के पास जाऊं वा सरिश्तेदार के पास, आज हारूंगा वा जीतूंगा न जाने क्या होगा और कहार लोग तमाखू पीते परस्पर

बातें चीतें करते हुए प्रसन्न होकर आनन्द में सो जाते हैं। जो वह जीत जाय तो कुछ सुख और हारजाय तो सेठजी दुःखसागर में डूब जायं और वे कहार जैसे के वैसे रहते हैं इसी प्रकार जब राजा सुन्दर कोमल बिछौने में सोता है तो भी शीघ्र निद्रा नहीं आती और मजूर कंकर पत्थर और मट्टी ऊंचे नीचे स्थल पर सोता है उसको झट ही निद्रा आती है ऐसे ही सर्वत्र समझो (उत्तर) यह समझ अज्ञानियों की है। क्या किसी साहूकार से कहें कि तू कहार बनजा और कहार से कहें कि तू साहूकार बनजा तो साहूकार कभी कहार बनना नहीं और कहार साहूकार बनना चाहते हैं। जो सुख दुःख बराबर होता तो अपनी २ अवस्था छोड़ नीच और ऊंच बनना दोनों न चाहते। देखो एक जीव विद्वान्, पुण्यात्मा, श्रीमान् राजा की राणी के गर्भ में आता और दूसरा महादरिद्र घसियारी के गर्भ में आता है। एक को गर्भ से लेकर सर्वथा सुख और दूसरे को सब प्रकार दुःख मिलता है। एक जब जन्मता है तब सुन्दर सुगन्धियुक्त जलादि से स्नान युक्ति से नाड़ीछेदन दुग्धपानादि यथायोग्य प्राप्त होते हैं। जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ट मिलता है। उसको प्रसन्न रखने के लिये नौकर चाकर खिलौना सवारी उत्तम स्थानों में लाड़ से आनन्द होता है दूसरे का जन्म जङ्गल में होता स्नान के लिये जल भी नहीं मिलता जब दूध पीना चाहता तब दूधके बदले में घूंसा थपेड़ा आदि से पीटा जाता है। अत्यन्त आर्तस्वर से रोता है। कोई नहीं पूंछता; इत्यादि जीवों को विना पुण्य पाप के सुख दुःख होने से परमेश्वर पर दोष आता है। दूसरा जैसे विना किये कर्मों के सुख दुःख मिलते हैं तो आगे नरक स्वर्ग भी न होना चाहिये क्योंकि जैसे परमेश्वर ने इस समय विना कर्मों के सुख दुःख दिया है वैसे मरे पीछे भी जिसको चाहेगा उसको स्वर्ग में और जिसको चाहे नरक में भेज देगा पुनः सब जीव अधर्मयुक्त हो जावेंगे धर्म क्यों करें? क्योंकि धर्म का फल मिलने में सन्देह है। परमेश्वर के हाथ है जैसी उसकी प्रसन्नता होगी वैसा करेगा तो पापकर्मों में भय न होकर संसार में पापकी वृद्धि और धर्म का क्षय हो जायगा। इसलिये पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्त्तमान जन्म और वर्त्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते

हैं। (प्रश्न) मनुष्य और अन्य पश्वादि के शरीर में जीव एकसा है वा भिन्न भिन्न जाति के? (उत्तर) जीव एकसे हैं परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं। (प्रश्न) मनुष्य का जीव पश्वादि में और पश्वादि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं? (उत्तर) हां जाता आता है क्योंकि जब पाप बढ़जाता पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य पाप बराबर होता है तब साधारण मनुष्यजन्म होता है। इसमें भी पुण्य पाप के उत्तम मध्यम निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीरादि सामग्रीवाले होते हैं और जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता और पुण्य के फल भोगकर फिर भी मध्यस्थ मनुष्य के शरीर में आता है जब शरीर से निकलता है उसी का नाम "मृत्यु" और शरीर के साथ संयोग होने का नाम "जन्म" है जब शरीर छोड़ता तब यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता क्योंकि "यमेन वायुना" वेद में लिखा है कि यम नाम वायु का है गरुड़पुराण का कल्पित यम नहीं। इसका विशेष खण्डन मण्डन ग्यारहवें समुल्लास में लिखेंगे पश्चात् धर्मराज अर्थात् परमेश्वर उस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देता है वह वायु, अन्न, जल अथवा शरीर के छिद्रद्वारा दूसरे के शरीर में ईश्वर की प्रेरणा से प्रविष्ट होता है। जो प्रविष्ट होकर क्रमशः वीर्य्य में जा, गर्भ में स्थित हो, शरीर धारण कर, बाहर आता है जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है और नपुंसक गर्भ की स्थिति समय स्त्री पुरुष के शरीर में सम्बन्ध करके रजवीर्य के बराबर होने से होता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म मरण में तबतक जीव पड़ा रहता है कि जबतक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को करके मुक्ति को नहीं पाता, क्योंकि उत्तम कर्मादि करने से मनुष्यों में उत्तम जन्म और मुक्ति में महाकल्पपर्यन्त जन्म मरण दुःखों से रहित होकर आनन्द में रहता है। (प्रश्न) मुक्ति एक जन्म में

होती है वा अनेक जन्मों में ? (उत्तर) अनेक जन्मों में क्योंकि--

भिद्यन्ते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे पराऽवरे ॥
मुण्डक [२ । खं० २ । मं० ८]

जब इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी उस परमात्मा जो कि अपने आत्मा के भीतर और बाहर व्याप रहा है उसमें निवास करता है। (प्रश्न) मुक्ति में परमेश्वर में जीव मिल जाता है वा पृथक् रहता है ? (उत्तर) पृथक् रहता है, क्योंकि जो मिल जाय तो मुक्ति का सुख कौन भोगे और मुक्ति के जितने साधन हैं वे सब निष्फल होजावें, वह मुक्ति तो नहीं किन्तु जीव का प्रलय जानना चाहिये। जब जीव परमेश्वर की आज्ञापालन उत्तम कर्म सत्सङ्ग योगाभ्यास पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को पाता है।

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥
तैत्तिरी० । [आनन्दवल्ली । अनु० १]

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थित सत्य ज्ञान और अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापकरूप ब्रह्म में स्थित होके उस "विपश्चित्" अनन्तविद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामों को प्राप्त होता है अर्थात् जिस २ आनन्द की कामना करता है उस २ कामों को प्राप्त होता है यही मुक्ति कहाती है। (प्रश्न) जैसे शरीर के विना सांसारिक सुख नहीं भोग सकता वैसे मुक्ति में विना शरीर आनन्द कैसे भोग सकेगा ? (उत्तर) इसका समाधान पूर्व कह आये हैं और इतना अधिक सुनो–जैसे सांसारिक सुख शरीर के आधार से भोगता है वैसे परमेश्वर के आधार मुक्ति के आनन्द को जीवात्मा भोगता है। वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता,

शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में अर्थात् जितने ये लोक दीखते हैं और नहीं दीखते उन सब में घूमता है वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे हैं देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है। मुक्ति में जीवात्मा निर्मल होने से पूर्ण ज्ञानी होकर उसको सब सन्निहित पदार्थों का भान यथावत् होता है। यही सुखविशेष स्वर्ग और विषयतृष्णा में फँसकर दुःखविशेष भोग करना नरक कहाता है। "स्वः" सुख का नाम है "स्वः सुखं गच्छति यस्मिन् स स्वर्गः" "अतो विपरीतो दुःखभोगो नरक इति" जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। सब जीव स्वभाव से सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का वियोग होना चाहते हैं परन्तु जब तक धर्म नहीं करते और पाप नहीं छोड़ते तबतक उनको सुख का मिलना और दुःख का छूटना न होगा क्योंकि जिस का कारण अर्थात् मूल होता है वह नष्ट कभी नहीं होता जैसे—

छिन्ने मूले वृक्षो नश्यति तथा पापे क्षीणे दुःखं नश्यति।

जैसे मूल कटजाने से वृक्ष नष्ट होता है वैसे पाप को छोड़ने से दुःख नष्ट होता है देखो मनुस्मृति में पाप और पुण्य की बहुत प्रकार की गति—

मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाऽशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥ १॥
शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्॥ २॥
यो यदैषां गुणो देहे साकल्येनातिरिच्यते।
स तदा तद्गुणप्रायं तं करोति शरीरिणम्॥ ३॥
सत्त्वं ज्ञानं तमोऽज्ञानं रागद्वेषौ रजःस्मृतम्।
एतद् व्याप्तिमदेतेषां सर्वभूताश्रितं वपुः॥ ४॥

तत्र यत्प्रीतिसंयुक्तं किञ्चिदात्मनि लक्षयेत् ।
प्रशान्तमिव शुद्धाभं सत्त्वं तदुपधारयेत् ॥ ५ ॥
यत्तु दुःखसमायुक्तमप्रीतिकरमात्मनः ।
तद्रजोऽप्रतिपं विद्यात्सततं हारि देहिनाम् ॥ ६ ॥
यत्तु स्यान्मोहसंयुक्तमव्यक्तं विषयात्मकम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं तमस्तदुपधारयेत् ॥ ७ ॥
त्रयाणामपि चैतेषां गुणानां यः फलोदयः ।
अग्र्यो मध्यो जघन्यश्च तं प्रवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ८ ॥
वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धर्मक्रियात्मचिन्ता च सात्त्विकं गुणलक्षणम् ॥ ९ ॥
आरम्भरुचिताऽधैर्य्यमसत्कार्यपरिग्रहः ।
विषयोपसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम् ॥ १० ॥
लोभः स्वप्नो धृतिः क्रौर्य्यं नास्तिक्यं भिन्नवृत्तिता ।
याचिष्णुता प्रमादश्च तामसं गुणलक्षणम् ॥ ११ ॥
यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यँश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥ १२ ॥
येनास्मिन्कर्मणा लोके ख्यातिमिच्छति पुष्कलाम् ।
न च शोचत्यसम्पत्तौ तद्विज्ञेयं तु राजसम् ॥ १३ ॥
यत्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुणलक्षणम् ॥ १४ ॥
तमसो लक्षणं कामो रजसस्त्वर्थ उच्यते ।
सत्त्वस्य लक्षणं धर्मः श्रैष्ठ्यमेषां यथोत्तरम् ॥ १५ ॥
मनु० अ० १२ ॥ [श्लो० ८ । ९ । २५–३३ । ३५–३८]

अर्थात् मनुष्य इस प्रकार अपने श्रेष्ठ, मध्य और निकृष्ट स्वभाव को जानकर उत्तम स्वभाव का ग्रहण मध्य और निकृष्ट का त्याग करे और यह भी निश्चय जाने कि यह जीव मन से जिस शुभ वा अशुभ कर्म को करता है उसको

मन, वाणी से किये को वाणी और शरीर से किये को शरीर अर्थात् सुख दुःख को भोगता है ॥ १ ॥ जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्ट कर्म करता है उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है ॥ २ ॥ जो गुण इन जीवों के देह में अधिकता से वर्त्तता है वह गुण उस जीव को अपने सदृश कर देता है ॥ ३ ॥ जब आत्मा में ज्ञान हो तब सत्त्व, जब अज्ञान रहे तब तम और जब राग द्वेष में आत्मा लगे तब रजोगुण जानना चाहिये, ये तीन प्रकृति के गुण सब संसारस्थ पदार्थों में व्याप्त होकर रहते हैं ॥ ४ ॥ उसका विवेक इस प्रकार करना चाहिये कि जब आत्मा में प्रसन्नता मन प्रसन्न प्रशान्त के सदृश शुद्धभानयुक्त वर्त्ते तब समझना कि सत्त्वगुण प्रधान और रजोगुण तथा तमोगुण अप्रधान है ॥ ५ ॥ जब आत्मा और मन दुःखसंयुक्त प्रसन्नतारहित विषय में इधर उधर गमन आगमन में लगे तब समझना कि रजोगुण प्रधान सत्त्वगुण और तमोगुण अप्रधान है ॥ ६ ॥ जब मोह अर्थात् सांसारिक पदार्थों में फँसा हुआ आत्मा और मन हो, जब आत्मा और मन में कुछ विवेक न रहे विषयों में आसक्त तर्क वितर्करहित जानने के योग्य न हो तब निश्चय समझना चाहिये कि इस समय मुझ में तमोगुण प्रधान और सत्त्वगुण तथा रजोगुण अप्रधान है ॥ ७ ॥ अब जो इन तीनों गुणों का उत्तम मध्यम और निकृष्ट फलोदय होता है उसको पूर्णभाव से कहते हैं ॥ ८ ॥ जो वेदों का अभ्यास, धर्मानुष्ठान, ज्ञान की वृद्धि, पवित्रता की इच्छा, इन्द्रियों का निग्रह, धर्म क्रिया और आत्मा का चिन्तन होता है यही सत्त्वगुण का लक्षण है ॥ ९ ॥ जब रजोगुण का उदय सत्त्व और तमोगुण का अन्तर्भाव होता है तब आरम्भ में रुचिता धैर्य्यत्याग असत् कर्मों का ग्रहण निरन्तर विषयों की सेवा में प्रीति होती है तभी समझना कि रजोगुण प्रधानता से मुझ में वर्त्त रहा है ॥ १० ॥ जब तमोगुण का उदय और दोनों का अन्तर्भाव होता है तब अत्यन्त लोभ अर्थात् सब पापों का मूल बढ़ता, अत्यन्त आलस्य और निद्रा, धैर्य्य का नाश, क्रूरता का होना, नास्तिक्य अर्थात् वेद और ईश्वर में श्रद्धा का न रहना, भिन्न २ अन्तःकरण की वृत्ति

और एकाग्रता का अभाव और किन्हीं व्यसनों में फँसना होवे तब तमोगुण का लक्षण विद्वान् को जानने योग्य है ॥ ११ ॥ तथा जब अपना आत्मा जिस कर्म को करके करता हुआ और करने की इच्छा से लज्जा, शंका और भय को प्राप्त होवे तब जानो कि मुझ में प्रवृद्ध तमोगुण है ॥ १२ ॥ जिस कर्म से इस लोक में जीवात्मा पुष्कल प्रसिद्धि चाहता, दरिद्रता होने में भी चारण भाट आदि को दान देना नहीं छोड़ता तब समझना कि मुझ में रजोगुण प्रबल है ॥ १३ ॥ और जब मनुष्य का आत्मा सब से जानने को चाहे गुण ग्रहण करता जाय अच्छे कामों में लज्जा न करे और जिस कर्म्म से आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात् धर्माचरण ही में रुचि रहे तब समझना कि मुझ में सत्त्वगुण प्रबल है ॥१४॥ तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थसंग्रह की इच्छा और सत्त्वगुण का लक्षण धर्मसेवा करना है परन्तु तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ अब जिस २ गुण से जिस २ गति को जीव प्राप्त होता है उस २ को आगे लिखते हैं—

देवत्वं सात्त्विका यान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः ॥ १ ॥
स्थावराः कृमिकीटाश्च मत्स्याः सर्पाश्च कच्छपाः ।
पशवश्च मृगाश्चैव जघन्या तामसी गतिः ॥ २ ॥
हस्तिनश्च तुरङ्गाश्च शूद्रा म्लेच्छाश्च गर्हिताः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च मध्यमा तामसी गतिः ॥ ३ ॥
चारणाश्च सुपर्णाश्च पुरुषाश्चैव दाम्भिकाः ।
रक्षांसि च पिशाचाश्च तामसीषूत्तमा गतिः ॥ ४ ॥
झल्ला मल्ला नटाश्चैव पुरुषाः शस्त्रवृत्तयः ।
द्यूतपानप्रसक्ताश्च जघन्या राजसी गतिः ॥ ५ ॥
राजानः क्षत्रियाश्चैव राज्ञां चैव पुरोहिताः ।
वादयुद्धप्रधानाश्च मध्यमा राजसी गतिः ॥ ६ ॥
गन्धर्वा गुह्यका यक्षा विबुधानुचराश्च ये ।
तथैवाप्सरसः सर्वा राजसीषूत्तमा गतिः ॥ ७ ॥

तापसा यतयो विप्रा ये च वैमानिका गणाः ।
नक्षत्राणि च दैत्याश्च प्रथमा सात्त्विकी गतिः ॥ ८ ॥
यज्वान ऋषयो देवा वेदा ज्योतींषि वत्सराः ।
पितरश्चैव साध्याश्च द्वितीया सात्त्विकी गतिः ॥ ९ ॥
ब्रह्मा विश्वसृजो धर्म्मो महानव्यक्तमेव च ।
उत्तमां सात्त्विकीमेतां गतिमाहुर्मनीषिणः ॥ १० ॥
इन्द्रियाणां प्रसंगेन धर्मस्यासेवनेन च ।
पापान्संयान्ति संसारानविद्वांसो नराधमाः ॥ ११ ॥
[मनु० अ० १२ । श्लो० ४० । ४२-५० । ५२]

जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुणयुक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जो अत्यन्त तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीट, मत्स्य, सर्प्प, कच्छप, पशु और मृग के जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ जो मध्यम तमोगुणी हैं वे हाथी, घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ निन्दित कर्म करनेहारे, सिंह, व्याघ्र, वराह अर्थात् सूकर के जन्म को प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥ जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण (जो कि कवित्त दोहा आदि बनाकर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी, दांभिक पुरुष अर्थात् अपने सुख के लिये अपनी प्रशंसा करनेहारे, राक्षस जो हिंसक, पिशाच अनाचारी अर्थात् मद्यादि के आहारकर्त्ता और मलिन रहते हैं वह उत्तम तमोगुण के कर्म का फल है ॥ ४ ॥ जो उत्तम रजोगुणी हैं वे झल्ला अर्थात् तलवार आदि से मारने वा कुदार आदि से खोदनेहारे मल्ला अर्थात नौका आदि के चलाने वाले नट जो बांस आदि पर कला कूदना चढ़ना उतरना आदि करते हैं शस्त्रधारी भृत्य और मद्य पीने में आसक्त हों ऐसे जन्म नीच रजोगुण का फल है ॥ ५ ॥ जो मध्यम रजोगुणी होते हैं वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के पुरोहित, वादविवाद करनेवाले, दूत, प्राड्विवाक (वकील वारिष्टर), युद्धविभाग के अध्यक्ष के जन्म पाते हैं ॥ ६ ॥ जो उत्तम रजोगुणी हैं वे गन्धर्व (गानेवाले), गुह्यक (वादित्र बजानेहारे),

यक्ष (धनाढ्य), विद्वानों के सेवक और अप्सरा अर्थात् जो उत्तम रूपवाली स्त्री उनका जन्म पाते हैं ॥ ७ ॥ जो तपस्वी, यति, संन्यासी, वेदपाठी विमान के चलानेवाले ज्योतिषी और दैत्य अर्थात् देहपोषक मनुष्य होते हैं उनको प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानो ॥ ८ ॥ जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त होकर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्ता, वेदार्थवित्, विद्वान् वेद विद्युत् आदि और काल विद्या के ज्ञाता, रक्षक, ज्ञानी और (साध्य) कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं ॥ ९ ॥ जो उत्तम सत्त्वगुणयुक्त होके उत्तम कर्म्म करते हैं वे ब्रह्मा सब वेदों का वेत्ता विश्वसृज सब सृष्टिक्रम विद्या को जानकर विविध विमानादि यानों को बनानेहारे धार्मिक सर्वोत्तम बुद्धियुक्त और अव्यक्त के जन्म और प्रकृतिवशित्व सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १० ॥ जो इन्द्रिय के वश होकर विषयी धर्म को छोड़कर अधर्म करनेहारे अविद्वान् हैं वे मनुष्यों में नीच जन्म बुरे २ दुःखरूप जन्म को पाते हैं ॥ ११ ॥ इस प्रकार सत्त्व रज और तमो-गुण युक्त वेग से जिस २ प्रकार का कर्म जीव करता है उस २ को उसी २ प्रकार फल प्राप्त होता है जो मुक्त होते हैं वे गुणातीत अर्थात् सब गुणों के स्वभावों में न फँस कर महायोगी होके मुक्ति का साधन करें क्योंकि—

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ १ ॥ [पा० १ । २]

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ॥ २ ॥ [पा० १ । ३]

ये योगशास्त्र पातञ्जल के सूत्र हैं—मनुष्य रजोगुण तमोगुण युक्त कर्मों से मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त कर्मों से भी मन को रोक शुद्ध सत्त्वगुणयुक्त हो पश्चात् उसका निरोध कर एकाग्र अर्थात् एक परमात्मा और धर्मयुक्त कर्म इनके अग्रभाग में चित्त को ठहरा रखना निरुद्ध अर्थात् सब ओर से मन की वृत्ति को रोकना ॥ १ ॥ जब चित्त एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है ॥ २ ॥ इत्यादि साधन मुक्ति के लिये करे और—

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ॥

यह सांख्य [१ । १] का सूत्र है। जो आध्यात्मिक अर्थात् शरीर-सम्बन्धी पीड़ा, आधिभौतिक जो दूसरे प्राणियों से दुःखित होना, आधिदैविक जो अतिवृष्टि अतिताप अतिशीत मन इन्द्रियों की चञ्चलता से होता है इस त्रिविध दुःख को छुड़ाकर मुक्ति पाना अत्यन्त पुरुषार्थ है। इसके आगे आचार अनाचार और भक्ष्याऽभक्ष्य का विषय लिखेंगे ॥ ९ ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते विद्याऽविद्याबन्धमोक्षविषये
नवमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ९ ॥

अथ दशमसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्यविषयान् व्याख्यास्यामः

अब जो धर्मयुक्त कामों का आचरण, सुशीलता, सत्पुरुषों का संग और सद्विद्या के ग्रहण में रुचि आदि आचार और इनसे विपरीत अनाचार कहाता है उसको लिखते हैं—

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्यमद्वेषरागिभिः ।
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तन्निबोधत ॥ १ ॥
कामात्मता न प्रशस्ता न चैवेहास्त्यकामता ।
काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः ॥ २ ॥
सङ्कल्पमूलः कामो वै यज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः ।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे सङ्कल्पजाः स्मृताः ॥ ३ ॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित् ।
यद्यद्धि कुरुते किञ्चित् तत्तत्कामस्य चेष्टितम् ॥ ४ ॥
वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च ॥ ५ ॥
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाण्यतो विद्वान् स्वधर्मे निविशेत वै ॥ ६ ॥
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः ।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ ७ ॥
योऽवमन्येत ते मूले हेतुशास्त्राश्रयाद् द्विजः ।
स साधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ ८ ॥

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥
अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते ।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः ॥ १० ॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम् ।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ॥ ११ ॥
केशान्तः षोडशे वर्षे ब्राह्मणस्य विधीयते ।
राजन्यबन्धोर्द्वाविंशे वैश्यस्य द्व्यधिके ततः ॥ १२ ॥

मनु॰ अ॰ २ । [श्लो॰ १-४ । ६ । ८ । ९ । ११-१३ । २६ । ६५]

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्त्तव्य जानें वही धर्म माननीय और करणीय है ॥ १ ॥ क्योंकि इस संसार में अत्यन्त कामात्मता और निष्कामता श्रेष्ठ नहीं है वेदार्थज्ञान और वेदोक्त कर्म ये सब कामना ही से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥ जो कोई कहे कि मैं निरिच्छ और निष्काम हूं वा होजाऊं तो वह कभी नहीं हो सकता क्योंकि सब काम अर्थात् यज्ञ, सत्यभाषणादि व्रत, यम, नियमरूपी धर्म आदि संकल्प ही से बनते हैं ॥३॥ क्योंकि जो २ हस्त, पाद, नेत्र, मन आदि चलाये जाते हैं वे सब कामना ही से चलते हैं जो इच्छा न हो तो आंख का खोलना और मीचना भी नहीं हो सकता ॥ ४ ॥ इसलिये सम्पूर्ण वेद मनुस्मृति तथा ऋषिप्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस २ कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् भय, शंका, लज्जा जिनमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है देखो ! जब कोई मिथ्याभाषण चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उसके आत्मा में भय, शंका, लज्जा अवश्य उत्पन्न होती है इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं ॥ ५ ॥ मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरुषों का आचार, अपने आत्मा के अविरुद्ध अच्छे प्रकार विचार कर ज्ञाननेत्र करके श्रुति प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे ॥ ६ ॥ क्योंकि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म और जो वेद से अविरुद्ध स्मृत्युक्त

धर्म का अनुष्ठान करता है वह इस लोक में कीर्त्ति और मरके सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होता है ॥ ७ ॥ श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं इनसे सब कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये जो कोई मनुष्य वेद और वेदानुकूल आप्तग्रन्थों का अपमान करे उस को श्रेष्ठ लोग जातिबाह्य करदें क्योंकि जो वेद की निन्दा करता है वही नास्तिक कहाता है ॥ ८ ॥ इसलिये वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचार और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण अर्थात् इन्हीं से धर्म लक्षित होता है ॥ ९ ॥ परन्तु जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषयसेवा में फँसा हुआ नहीं होता उसी को धर्म का ज्ञान होता है जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिये वेद ही परम प्रमाण है ॥ १० ॥ इसी से सब मनुष्यों को उचित है कि वेदोक्त पुण्यरूप कर्मों से ब्राह्मण, क्षत्रिय; वैश्य अपने सन्तानों का निषेकादि संस्कार करें जो इस जन्म वा परजन्म में पवित्र करनेवाला है ॥ ११ ॥ ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म क्षौर-मुण्डन हो जाना चाहिये अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य डाढ़ी मूंछ और शिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिये अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है चाहे जितने केश रक्खे और जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखासहित छेदन करा देना चाहिये क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है डाढ़ी मूंछ रखने से भोजन पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ १ ॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ २ ॥
न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ३ ॥

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥ ४ ॥
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ ५ ॥
श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः ।
न हृष्यति ग्लायति वा स विज्ञेयो जितेन्द्रियः ॥ ६ ॥
नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयान्न चान्यायेन पृच्छतः ।
जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत् ॥ ७ ॥
वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ ८ ॥
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम् ॥ ९ ॥
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ॥ १० ॥
विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणान्तु वीर्यतः ।
वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ॥ ११ ॥
न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवा स्थविरं विदुः ॥ १२ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥ १३ ॥
अहिंसयैव भूतानां कार्यं श्रेयोऽनुशासनम् ॥
वाक् चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममिच्छता ॥ १४ ॥

मनु० अ० २ । [श्लो० ८८ । ९३ । ९४ । ९७ । १०० । ९८ । ११० । १३६ । १५३–१५७ । १५९]

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने-वाले विषयों में प्रवृत्त कराती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करे जैसे घोड़े को सारथी

रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है इस प्रकार इनको अपने वश में करके अधर्म-मार्ग से हटा के धर्ममार्ग में सदा चलाया करे ॥ १ ॥ क्योंकि इन्द्रियों को विषयासक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है और जब इनको जीतकर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ २ ॥ यह निश्चय है कि जैसे अग्नि में इन्धन और घी डालने से बढ़ता जाता है वैसे ही कामों के उपभोग से काम शान्त कभी नहीं होता किन्तु बढ़ता ही जाता है इसलिये मनुष्य को विषयासक्त कभी न होना चाहिये ॥ ३ ॥ जो अजितेन्द्रिय पुरुष है उसको विप्रदुष्ट कहते हैं उसके करने से न वेदज्ञान, न त्याग, न यज्ञ, न नियम और न धर्माचरण सिद्धि को प्राप्त होते हैं किन्तु ये सब जितेन्द्रिय धार्मिक जन को सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥ इसलिये पांच कर्म [इन्द्रिय], पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारहवें मन को अपने वश में करके युक्ताहार विहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे ॥ ५ ॥ जितेन्द्रिय उसको कहते हैं कि जो स्तुति सुन के हर्ष और निन्दा सुनके शोक, अच्छा स्पर्श करके सुख और दुष्ट स्पर्श से दुःख, सुन्दर रूप देख के प्रसन्न और दुष्ट-रूप देख अप्रसन्न, उत्तम भोजन करके आनन्दित और निकृष्ट भोजन करके दुःखित, सुगन्ध में रुचि और दुर्गन्ध में अरुचि नहीं करता ॥ ६ ॥ कभी विना पूछे वा अन्याय से पूछने वाले को कि जो कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे उनके सामने बुद्धिमान् जड़ के समान रहे हां जो निष्कपट और जिज्ञासु हों उनको विना पूछे भी उपदेश करे ॥ ७ ॥ एक धन, दूसरे बन्धु कुटुम्ब कुल, तीसरी अवस्था, चौथा उत्तम कर्म और पांचवीं श्रेष्ठ विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं परन्तु धन से उत्तम बन्धु, बन्धु से अधिक अवस्था, अवस्था से श्रेष्ठ कर्म और कर्म से पवित्र विद्यावाले उत्तरोत्तर अधिक माननीय हैं ॥ ८ ॥ क्योंकि चाहे सौ वर्ष का हो परन्तु जो विद्या विज्ञानरहित है वह बालक और जो विद्या विज्ञान का दाता है उस बालक को भी वृद्ध मानना चाहिये क्योंकि सब शास्त्र आप्त विद्वान् अज्ञानी को बालक और ज्ञानी को पिता कहते हैं ॥ ९ ॥ अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बाल के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता किन्तु ऋषि महात्माओं

का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक है वही वृद्ध पुरुष कहाता है ॥ १० ॥ ब्राह्मण ज्ञान से, क्षत्रिय बल से, वैश्य धनधान्य से और शूद्र जन्म अर्थात् अधिक आयु से वृद्ध होता है ॥ ११ ॥ शिर के बाल श्वेत होने से बुड्ढा नहीं होता किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग बड़ा जानते हैं ॥ १२ ॥ और जो विद्या नहीं पढ़ा है वह जैसा काष्ठ का हाथी चमड़े का मृग होता है वैसा अविद्वान् मनुष्य जगत् में नाममात्र मनुष्य कहाता है ॥ १३ ॥ इसलिये विद्या पढ़ विद्वान् धर्मात्मा होकर निर्वैरता से सब प्राणियों के कल्याण का उपदेश करे और उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले जो सत्योपदेश से धर्म की वृद्धि और अधर्म का नाश करते हैं वे पुरुष धन्य हैं ॥ १४ ॥ नित्य स्नान, वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रक्खे क्योंकि इन के शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है शौच उतना करना योग्य है कि जितने से मल दुर्गन्ध दूर होजाय ॥

आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त्त एव च ॥ मनु० [१ । १०८]

जो सत्यभाषणादि कर्मों का आचरण करना है वही वेद और स्मृति में कहा हुआ आचार है ॥

मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तर॑म् ॥ [यजु० १६ । १५]

आ॒चा॒र्य्य उपनयमानो ब्रह्मचारिण॑मिच्छते ॥

[अथर्व० कां० ११ । व० १५]

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्य्यदेवो भव । अतिथिदेवो भव ॥ [तैत्तिरीयारण्यके ॥ प्र० ७ । अनु० ११]

माता, पिता, आचार्य्य और अतिथि की सेवा करना देवपूजा कहाती है और जिस २ कर्म से जगत् का उपकार हो वह २ कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वास-

घाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का सङ्ग न करे आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकारप्रिय जन हैं उनका सदा सङ्ग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है। (प्रश्न) आर्यावर्त्त देशवासियों का आर्यावर्त्त देश से भिन्न २ देशों में जाने से आचार नष्ट हो जाता है वा नहीं? (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि जो बाहर भीतर की पवित्रता करनी सत्यभाषणादि आचरण करना है वह जहां कहीं करेगा आचार और धर्मभ्रष्ट कभी न होगा और जो आर्य्यावर्त्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचारभ्रष्ट कहावेगा जो ऐसा ही होता तो—

मेरोर्हरेश्च द्वे वर्षे वर्षं हैमवतं ततः ।
क्रमेणैव व्यतिक्रम्य भारतं वर्षमासदत् ॥
स देशान् विविधान् पश्यंश्चीनहूणनिषेवितान् ॥ [अ० ३२७]

ये श्लोक भारत शान्तिपर्व मोक्षधर्म में व्यास शुकसंवाद में हैं—अर्थात् एक समय व्यासजी अपने पुत्र शुक और शिष्य सहित पाताल अर्थात् जिसको इस समय "अमेरिका" कहते हैं उसमें निवास करते थे। शुकाचार्य्य ने पिता से एक प्रश्न पूछा कि आत्मविद्या इतनी ही है वा अधिक? व्यासजी ने जानकर उस बात का प्रत्युत्तर न दिया क्योंकि उस बात का उपदेश कर चुके थे। दूसरे की साक्षी के लिये अपने पुत्र शुक से कहा कि हे पुत्र! तू मिथिलापुरी में जाकर यही प्रश्न जनक राजा से कर वह इसका यथायोग्य उत्तर देगा। पिता का वचन सुनकर शुकाचार्य्य पाताल से मिथिलापुरी की ओर चले। प्रथम मेरु अर्थात् हिमालय से ईशान उत्तर और वायव्य [कोण] में जो देश वसते हैं उनका नाम हरिवर्ष था अर्थात् हरि कहते हैं बन्दर को उस देश के मनुष्य अब भी रक्तमुख अर्थात् वानर के समान भूरे नेत्रवाले होते हैं जिन देशों का नाम इस समय "यूरोप" है उन्हीं को संस्कृत में "हरिवर्ष" कहते थे उन देशों को देखते हुए और जिनको हूण "यहूदी" भी कहते हैं उन देशों को देखकर चीन में आये चीन से हिमालय और हिमालय से मिथिलापुरी को आये। और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन

पाताल में अश्वतरी अर्थात् जिसको अग्नियान नौका कहते हैं उस पर बैठ के पाताल में जाके महाराजा युधिष्ठिर के यज्ञ में उद्दालक ऋषि को ले आये थे। धृतराष्ट्र का विवाह गांधार जिसको "कंधार" कहते हैं वहां की राजपुत्री से हुआ। माद्री पाण्डु की स्त्री "ईरान्" के राजा की कन्या थी। और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसको "अमेरिका" कहते हैं वहां के राजा की लड़की उलोपी के साथ हुआ था। जो देशदेशान्तर, द्वीपद्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं ? मनुस्मृति में जो समुद्र में जानेवाली नौका पर कर लेना लिखा है वह भी आर्य्यावर्त्त से द्वीपान्तर में जाने के कारण है। और जब महाराजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया था उस में सब भूगोल के राजाओं को बुलाने को निमन्त्रण देने के लिये भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों दिशाओं में गये थे जो दोष मानते होते तो कभी न जाते। सो प्रथम आर्य्यावर्त्तदेशीय लोग व्यापार राजकार्य्य और भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। और जो आजकल छूतछात और धर्म नष्ट होने की शंका है वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में जाने आने में शंका नहीं करते वे देशदेशान्तर के अनेकविध मनुष्यों के समागम रीति भांति देखने अपना राज्य और व्यवहार बढ़ाने से निर्भय शूरवीर होने लगते और अच्छे व्यवहार का ग्रहण बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर होके बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचारभ्रष्ट धर्महीन नहीं होते किन्तु देशदेशान्तर के उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानते हैं !!! यह केवल मूर्खता की बात नहीं तो क्या है ?, हां, इतना कारण तो है कि जो लोग मांसभक्षण और मद्यपान करते हैं उनके शरीर और वीर्य्यादि धातु भी दुर्गन्धादि से दूषित होते हैं इसलिये उनके सङ्ग करने से आर्य्यों को भी यह कुलक्षण न लग जायें यह तो ठीक है। परन्तु जब इनसे व्यवहार और गुणग्रहण करने में कोई भी दोष वा पाप नहीं है किन्तु इनके मद्य-पानादि दोषों को छोड़ गुणों को ग्रहण करें तो कुछ भी हानि नहीं जब इनके स्पर्श और देखने से भी मूर्ख जन पाप गिनते हैं इसी से उनसे युद्ध कभी नहीं

कर सकते क्योंकि युद्ध में इनको देखना और स्पर्श होना अवश्य है। सज्जन लोगों को राग, द्वेष, अन्याय, मिथ्याभाषणादि दोषों को छोड़ निर्वैर प्रीति परोपकार सज्जनतादि का धारण करना उत्तम आचार है। और यह भी समझलें कि धर्म हमारे आत्मा और कर्त्तव्य के साथ है जब हम अच्छे काम करते हैं तो हम को देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता दोष तो पाप के काम करने में लगते हैं। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्डमत का खण्डन करना अवश्य सीखलें जिससे कोई हम को झूठा निश्चय न करा सके। क्या विना देशदेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तर में राज्य वा व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है? जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो विना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। पाखण्डी लोग यह समझते हैं कि जो हम इनको विद्या पढ़ावेंगे और देशदेशान्तर में जाने की आज्ञा देवेंगे तो ये बुद्धिमान् होकर हमारे पाखण्ड जाल में न फँसने से हमारी प्रतिष्ठा और जीविका नष्ट होजावेगी इसीलिये भोजन छादन में बखेड़ा डालते हैं कि वे दूसरे देश में न जासकें। हां इतना अवश्य चाहिये कि मद्यमांस का ग्रहण कदापि भूलकर भी न करें क्या सब बुद्धिमानों ने यह निश्चय नहीं किया है कि जो राजपुरुषों में युद्ध समय में भी चौका लगाकर रसोई बना के खाना अवश्य पराजय का हेतु है? किन्तु क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े हाथी रथ पर चढ़ या पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ विरोध करते कराते सब स्वातन्त्र्य, आनन्द, धन, राज्य, विद्या और पुरुषार्थ पर चौका लगाकर हाथ पर हाथ धरे बैठे हैं और इच्छा करते हैं कि कुछ पदार्थ मिले तो पकाकर खावें। परन्तु वैसा न होने पर जानो सब आर्यावर्त्त देश भर में चौका लगा के सर्वथा नष्ट कर दिया है। हां! जहां भोजन करें उस स्थान को धोने, लेपन करने, झाडू लगाने, कूरा कर्कट दूर करने में प्रयत्न अवश्य करना चाहिये न कि मुसलमान वा ईसाइयों के समान भ्रष्ट

पाकशाला करना । (प्रश्न) सखरी निखरी क्या है ? (उत्तर) सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते और जो घी दूध में पकाते हैं वह निखरी अर्थात् चोखी । यह भी इन धूर्तों का चलाया हुआ पाखण्ड है क्योंकि जिसमें घी दूध अधिक लगे उसको खाने में स्वाद और उदर में चिकना पदार्थ अधिक जावे इसीलिये यह प्रपञ्च रचा है नहीं तो जो अग्नि वा काल से पका हुआ पदार्थ पक्का और न पका हुआ कच्चा है जो पक्का खाना और कच्चा न खाना है यह भी सर्वत्र ठीक नहीं क्योंकि चणे आदि कच्चे भी खाये जाते हैं (प्रश्न) द्विज अपने हाथ से रसोई बना के खावें वा शूद्र के हाथ की बनाई खावें ? (उत्तर) शूद्र के हाथ की बनाई खावें, क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्णस्थ स्त्री पुरुष विद्या पढ़ाने, राज्यपालन और पशुपालन खेती व्यापार के काम में तत्पर रहें और शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें, सुनो प्रमाण—

आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्त्तारः स्युः ॥ [आपस्तम्ब धर्मसूत्र । प्रपाठक २ । पटल २ । खण्ड २ । सूत्र ४]

यह आपस्तम्ब का सूत्र है । आर्यों के घर में शूद्र अर्थात् मूर्ख स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें परन्तु वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें आर्यों के घर में जब रसोई बनावें तब मुख बांध के बनावें क्योंकि उनके मुख से उच्छिष्ट और निकला हुआ श्वास भी अन्न में न पड़े । आठवें दिन क्षौर नखच्छेदन करावें स्नान करके पाक बनाया करें आर्यों को खिला के आप खावें । (प्रश्न) शूद्र के छुए हुए पके अन्न के खाने में जब दोष लगाते हैं तो उसके हाथ का बनाया कैसे खा सकते हैं ? (उत्तर) यह बात कपोलकल्पित झूठी है क्योंकि जिन्होंने गुड़, चीनी, घृत, दूध, पिशान, शाक, फल, मूल खाया उन्होंने जानो सब जगत् भर के हाथ का बनाया और उच्छिष्ट खालिया क्योंकि जब शूद्र, चमार, भंगी, मुसलमान, ईसाई आदि लोग खेतों में से ईख को काटते छीलते पील-कर रस निकालते हैं तब मलमूत्रोत्सर्ग करके उन्हीं विना धोये हाथों से छूते, उठाते, धरते आधा सांठा चूंस रस पीके आधा उसी में डाल देते हैं और रस पकाते समय उस रस में रोटी भी पकाकर खाते हैं जब चीनी बनाते हैं तब

पुराने जूते कि जिसके तले में विष्ठा, मूत्र, गोबर, धूली लगी रहती है उन्हीं जूतों से उसको रगड़ते हैं। दूध में अपने घर के उच्छिष्ट पात्रों का जल डालते उसी में घृतादि रखते और आटा पीसते समय भी वैसे ही उच्छिष्ट हाथों से उठाते और पसीना भी आटा में टपकता जाता है इत्यादि और फल मूल कंद में भी ऐसी ही लीला होती है जब इन पदार्थों को खाया तो जानों सब के हाथ का खालिया (प्रश्न) फल, मूल, कंद और रस इत्यादि अदृष्ट में दोष नहीं मानते? (उत्तर) वाहजी वाह! सत्य है कि जो ऐसा उत्तर न देते तो क्या धूल राख खाते गुड़ शक्कर मीठी लगती दूध घी पुष्टि करता है इसीलिये यह मतलबसिन्धु क्या नहीं रचा है अच्छा जो अदृष्ट में दोष नहीं तो भंगी वा मुसलमान अपने हाथों से दूसरे स्थान में बनाकर तुमको आके देवे तो खालोगे वा नहीं? जो कहो कि नहीं तो अदृष्ट में भी दोष है। हां, मुसलमान, ईसाई आदि मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्य-मांसादि खाना पीना अपराध पीछे लग पड़ता है परन्तु आपस में आर्यों का एक भोजन होने में कोई भी दोष नहीं दीखता। जबतक एक मत एक हानि लाभ, एक सुख दुःख परस्पर न मानें तबतक उन्नति होना बहुत कठिन है। परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं हो सकता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तबतक बढ़ती के बदले हानि होती है। विदेशियों के आर्यावर्त्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेदविद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है। क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच सहस्र वर्ष के पहिले हुई थीं उनको भी भूल गये? देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश होगया सो तो हो गया परन्तु अबतक भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा? उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्रहत्यारे,

स्वदेशविनाशक, नीच के दुष्टमार्ग में आर्य लोग अबतक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाय। भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार का होता है एक धर्मशास्त्रोक्त दूसरा वैद्यकशास्त्रोक्त, जैसे धर्मशास्त्र में—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणि च ॥ मनु० [५ । ५]

द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों को भी मलीन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए शाक फल मूलादि न खाना।

वर्जयेन्मधुमांसं च ॥ मनु० [२ । १७७]

जैसे अनेक प्रकार के मद्य, गांजा, भांग, अफीम आदि—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते ॥
[शार्ङ्गधर अ० ४ । श्लो० २१]

जो २ बुद्धि का नाश करनेवाले पदार्थ हैं उनका सेवन कभी न करें और जितने अन्न सड़े, बिगड़े, दुर्गन्धादि से दूषित, अच्छे प्रकार न बने हुए और मद्यमांसाहारी म्लेच्छ कि जिनका शरीर मद्यमांस के परमाणुओं ही से पूरित है उनके हाथ का न खावें जिसमें उपकारक प्राणियों की हिंसा अर्थात् जैसे एक गाय के शरीर से दूध, घी, बैल, गाय उत्पन्न होने से एक पीढ़ी में चार लाख पचहत्तर सहस्र छःसौ मनुष्यों को सुख पहुंचता है वैसे पशुओं को न मारें, न मारने दें। जैसे किसी गाय से बीस सेर और किसी से दो सेर दूध प्रतिदिन होवे उसका मध्यभाग ग्यारह सेर प्रत्येक गाय से दूध होता है, कोई गाय अठारह और कोई छः महीने तक दूध देती है उसका मध्य भाग बारह महीने हुए अब प्रत्येक गाय के जन्म भर के दूध से २४९६० (चौबीस सहस्र नौसौ साठ) मनुष्य एकवार में तृप्त हो सकते हैं उसके छः बछियां छः बछड़े होते हैं उनमें से दो मरजायें तो भी दश रहे उनमें से पांच बछड़ियों के जन्मभर के दूध को मिलाकर १२४८०० (एक लाख चौबीस सहस्र आठसौ)

मनुष्य तृप्त हो सकते हैं अब रहे पांच बैल वे जन्मभर में ५०००ऽ (पांच सहस्र) मन अन्न न्यून से न्यून उत्पन्न कर सकते हैं उस अन्न में से प्रत्येक मनुष्य तीनपाव खावे तो अढ़ाई लाख मनुष्यों की तृप्ति होती है दूध और अन्न मिला ३७४८०० (तीन लाख चौहत्तर सहस्र आठसौ) मनुष्य तृप्त होते हैं दोनों संख्या मिला के एक गाय की एक पीढ़ी में ४७५६०० (चार लाख पचहत्तर सहस्र छःसौ) मनुष्य एक वार पालित होते हैं और पीढ़ी परपीढ़ी बढ़ाकर लेखा करें तो असंख्यात मनुष्यों का पालन होता है इससे भिन्न [बैल] गाड़ी सवारी भार उठाने आदि कर्मों से मनुष्यों के बड़े उपकारक होते हैं तथा गाय दूध में अधिक उपकारक होती है और जैसे बैल उपकारक होते हैं वैसे भैंसे भी हैं परन्तु गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं इससे मुख्योपकारक आर्यों ने गाय को गिना है । और जो कोई अन्य विद्वान् होगा वह भी इसी प्रकार समझेगा । बकरी के दूध से २५९२० (पच्चीस सहस्र नौसौ बीस) आदमियों का पालन होता है वैसे हाथी, घोड़े, ऊंट, भेड़, गदहे आदि से भी बड़े उपकार होते हैं *। इन पशुओं को मारनेवालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाले जानियेगा । देखो ! जब आर्य्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्य्यावर्त्त वा अन्य भूगोलदेशों में बड़े आनन्द में मनुष्यादि प्राणि वर्त्तते थे क्योंकि दूध, घी, बैल आदि पशुओं की बहुताई होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे (जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारनेवाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्य्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है) क्योंकि—

नष्टे मूले नैव फलं न पुष्पम् ॥ [वृद्धचाणक्य अ० १० । १३]

जब वृक्ष का मूल ही काट दिया जाय तो फल फूल कहां से हों ? (प्रश्न) जो सभी अहिंसक होजायें तो व्याघ्रादि पशु इतने बढ़ जायें कि सब गाय आदि पशुओं को मार खायं तुम्हारा पुरुषार्थ ही व्यर्थ होजाय ? (उत्तर) यह

* इसकी विशेष व्याख्या "गोकरुणानिधि" में की है ॥

राजपुरुषों का काम है कि जो हानिकारक पशु वा मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी वियुक्त कर दें। (प्रश्न) फिर क्या उनका मांस फेंकदें ? (उत्तर) चाहें फेंकदें चाहें कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें वा जला देवें अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती किन्तु उस मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी होकर हिंसक हो सकता है जितना हिंसा और चोरी विश्वासघात छल कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है जिन पदार्थों से स्वास्थ्य रोगनाश बुद्धिबलपराक्रमवृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुलादि गोधूम फल मूल कन्द दूध घी मिष्टादि पदार्थों का सेवन यथायोग्य पाक मेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना सब भक्ष्य कहाता है। जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करनेवाले हैं उन २ का सर्वथा त्याग करना और जो २ जिसके लिये विहित हैं उन २ पदार्थों का ग्रहण करना यह भी भक्ष्य है (प्रश्न) एक साथ खाने में कुछ दोष है वा नहीं ? (उत्तर) दोष है, क्योंकि एक के साथ दूसरे का स्वभाव और प्रकृति नहीं मिलती जैसे कुष्ठी आदि के साथ खाने से अच्छे मनुष्य का भी रुधिर बिगड़ जाता है वैसे दूसरे के साथ खाने में भी कुछ बिगाड़ ही होता है सुधार नहीं इसीलिये:—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्यान्नाद्याच्चैव तथान्तरा।
न चैवात्यशनं कुर्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत्॥ मनु०॥ [२।५६]

न किसी को अपना जूठा पदार्थ दे और न किसी के भोजन के बीच आप खावे न अधिक भोजन करे और न भोजन किये पश्चात् हाथ मुख धोये विना कहीं इधर उधर जाय (प्रश्न) "गुरोरुच्छिष्टभोजनम्" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा ? (उत्तर) इसका यह अर्थ है कि गुरु के भोजन किये पश्चात् जो पृथक् अन्न शुद्ध स्थित है उसका भोजन करना अर्थात् गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये। (प्रश्न) जो उच्छिष्टमात्र का निषेध है तो मक्खियों का उच्छिष्ट सहत, बछड़े का उच्छिष्ट दूध और एक

ग्रास खाने के पश्चात् अपना भी उच्छिष्ट होता है पुनः उनको भी न खाना चाहिये। (उत्तर) सहत कथनमात्र ही उच्छिष्ट होता है परन्तु वह बहुतसी औषधियों का सार ग्राह्य, बछड़ा अपनी मा के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता इसलिये उच्छिष्ट नहीं परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मा के स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये। और अपना उच्छिष्ट अपने को विकारकारक नहीं होता देखो! स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि किसी का उच्छिष्ट कोई भी न खावे जैसे अपने मुख, नाक, कान, आंख, उपस्थ और गुह्येन्द्रियों के मलमूत्रादि के स्पर्श में घृणा नहीं होती वैसे किसी दूसरे के मल मूत्र के स्पर्श में होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवहार सृष्टिक्रम से विपरीत नहीं है इसलिये मनुष्यमात्र को उचित है कि किसी का उच्छिष्ट अर्थात् जूठा न खाय। (प्रश्न) भला स्त्री पुरुष भी परस्पर उच्छिष्ट न खावें? (उत्तर) नहीं क्योंकि उनके भी शरीरों का स्वभाव भिन्न २ है। (प्रश्न) कहोजी मनुष्यमात्र के हाथ की कीहुई रसोई के खाने में क्या दोष है? क्योंकि ब्राह्मण से लेके चांडाल पर्यन्त के शरीर हाड़ मांस चमड़े के हैं और जैसा रुधिर ब्राह्मण के शरीर में है वैसा ही चांडाल आदि के, पुनः मनुष्यमात्र के हाथ की पकी हुई रसोई के खाने में क्या दोष है? (उत्तर) दोष है क्योंकि जिन उत्तम पदार्थों के खाने पीने से ब्राह्मण और ब्राह्मणी के शरीर में दुर्गन्धादि दोष रहित रज वीर्य उत्पन्न होता है वैसा चांडाल और चांडाली के शरीर में नहीं, क्योंकि चांडाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है वैसा ब्राह्मणादि वर्णों का नहीं इसलिये ब्राह्मणादि उत्तम वर्णों के हाथ का खाना और चांडालादि नीच भंगी चमार आदि का न खाना। भला जब कोई तुम से पूछेगा कि जैसा चमड़े का शरीर माता, सास, बहिन, कन्या, पुत्रवधू का है वैसा ही अपनी स्त्री का भी है तो क्या माता आदि स्त्रियों के साथ भी स्वस्त्री के समान वर्तोगे? तब तुम को संकुचित होकर चुप ही रहना पड़ेगा जैसे उत्तम अन्न हाथ और मुख से खाया जाता है वैसे दुर्गन्ध भी खाया जासकता है तो क्या मलादि भी खाओगे? क्या ऐसा भी कोई हो सकता है? (प्रश्न) जो गाय के गोबर से चौका

लगाते हो तो अपने गोबर से क्यों नहीं लगाते ? और गोबर के चौके में जाने से चौका अशुद्ध क्यों नहीं होता ? (उत्तर) गाय के गोबर से वैसा दुर्गन्ध नहीं होता जैसा कि मनुष्य के मल से, [गोमय] चिकना होने से शीघ्र नहीं उखड़ता न कपड़ा बिगड़ता न मलीन होता है जैसा मिट्टी से मैल चढ़ता है वैसा सूखे गोबर से नहीं होता। मिट्टी और गोबर से जिस स्थान का लेपन करते हैं वह देखने में अतिसुन्दर होता है और जहां रसोई बनती है वहां भोजनादि करने से घी, मिष्ट और उच्छिष्ट भी गिरता है उससे मक्खी कीड़ी आदि बहुतसे जीव मलिन स्थान के रहने से आते हैं। जो उसमें झाड़ू लेपनादि से शुद्धि प्रतिदिन न कीजावे तो जानो पाखाने के समान वह स्थान हो जाता है। इसलिये प्रतिदिन गोबर मिट्टी झाड़ू से सर्वथा शुद्ध रखना। और जो पक्का मकान हो तो जल से धोकर शुद्ध रखना चाहिये। इससे पूर्वोक्त दोषों की निवृत्ति होजाती है। जैसे मियांजी के रसोई के स्थान में कहीं कोयला, कहीं राख, कहीं लकड़ी, कहीं फूटी हांडी, कहीं जूंठी रकेबी, कहीं हाड़ गोड़ पड़े रहते हैं और मक्खियों का तो क्या कहना ! वह स्थान ऐसा बुरा लगता है कि जो कोई श्रेष्ठ मनुष्य जाकर बैठे तो उसे वांत होने का भी संभव है और उस दुर्गन्ध स्थान के समान ही वही स्थान दीखता है। भला जो कोई इन से पूछे कि यदि गोबर से चौका लगाने में तो तुम दोष गिनते हो परन्तु चूल्हे में कंडे जलाने, उसकी आग से तमाखू पीने, घर की भीति पर लेपन करने आदि से मियांजी का भी चौका भ्रष्ट होजाता होगा इसमें क्या सन्देह। (प्रश्न) चौके में बैठ के भोजन करना अच्छा वा बाहर बैठ के ? (उत्तर) जहां पर अच्छा रमणीय सुन्दर स्थान दीखे वहां भोजन करना चाहिये परन्तु आवश्यक युद्धादिकों में तो घोड़े आदि याना पर बैठ के वा खड़े २ भी खाना पीना अत्यन्त उचित है। (प्रश्न) क्या अपने ही हाथ का खाना और दूसरे के हाथ का नहीं ? (उत्तर) जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने चौका देने वर्त्तन भांडे मांजने आदि बखेड़े में पड़े रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं होसके, देखो ! महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में भूगोल

के राजा ऋषि महर्षि आये थे एक ही पाकशाला से भोजन किया करते थे जब से ईसाई मुसलमान आदि के मतमतान्तर चले, आपस में वैर विरोध हुआ उन्हीं ने मद्यपान गोमांसादि का खाना पीना स्वीकार किया उसी समय से भोजनादि में बखेड़ा होगया । देखो ! क़ाबुल, क़ंधार, ईरान, अमेरिका, यूरोप आदि देशों के राजाओं की कन्या गान्धारी, माद्री, उलोपी आदि के साथ आर्य्यावर्त्तदेशीय राजा लोग विवाह आदि व्यवहार करते थे शकुनि आदि कौरव पांडवों के साथ खाते पीते थे कुछ विरोध नहीं करते थे क्योंकि उस समय सर्व भूगोल में वेदोक्त एक मत था उसी में सब की निष्ठा थी और एक दूसरे का सुख दुःख हानि लाभ आपस में अपने समान समझते थे तभी भूगोल में सुख था । अब तो बहुतसे मत वाले होने से बहुतसा दुःख और विरोध बढ़ गया है इसका निवारण करना बुद्धिमानों का काम है । परमात्मा सब के मन में सत्य मत का ऐसा अंकुर डाले कि जिससे मिथ्या मत शीघ्र ही प्रलय को प्राप्त हों इसमें सब विद्वान् लोग विचार कर विरोधभाव छोड़ के आनन्द को बढ़ावें ॥

यह थोड़ासा आचार अनाचार भक्ष्याभक्ष्य विषय में लिखा । इस ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध इसी दशवें समुल्लास के साथ पूरा होगया । इन समुल्लासों में विशेष खण्डन मण्डन इसलिये नहीं लिखा कि जबतब मनुष्य सत्यासत्य के विचार में कुछ भी सामर्थ्य न बढ़ाते तबतक स्थूल और सूक्ष्म खण्डनों के अभिप्राय को नहीं समझ सकते । इसलिये प्रथम सब को सत्य शिक्षा का उपदेश करके अब उत्तरार्द्ध अर्थात् जिसमें चार समुल्लास हैं उसमें विशेष खण्डन मण्डन लिखेंगे । इन चारों में से प्रथम समुल्लास में आर्य्यावर्त्तीय मतमतान्तर, दूसरे में जैनियों के, तीसरे में ईसाइयों और चौथे में मुसलमानों के मतमतान्तरों के खण्डन मण्डन के विषय में लिखेंगे और पश्चात् चौदहवें समुल्लास के अन्त में स्वमत भी दिखलाया जायगा । जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहें वे इन चारों समुल्लासों में देखें । परन्तु सामान्य करके कहीं २ दश समुल्लासों में भी कुछ थोड़ासा खण्डन मण्डन किया है । इन

चौदह समुल्लासों को पक्षपात छोड़ न्यायदृष्टि से जो देखेगा उसके आत्मा में सत्य अर्थ का प्रकाश होकर आनन्द होगा और जो हठ दुराग्रह और ईर्ष्या से देखे सुनेगा उसको इस ग्रन्थ का अभिप्राय यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। इसलिये जो कोई इसको यथावत् न विचारेगा वह इसका अभिप्राय न पाकर गोता खाया करेगा। विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं वे ही गुणग्राहक पुरुष विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं ॥ १० ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषित आचाराऽनाचारभक्ष्याऽभक्ष्य विषये
दशमः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १० ॥

समाप्तोयम्पूर्वार्द्धः ॥

उत्तरार्द्धः

अनुभूमिका

यह सिद्ध बात है कि पांच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत न था क्योंकि वेदोक्त सब बातें विद्या से अविरुद्ध हैं। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से अविद्याऽन्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसा मत चलाया। उन सब मतों में (४) चार मत अर्थात् जो वेदविरुद्ध पुराणी, जैनी, किरानी और कुरानी सब मतों के मूल हैं वे क्रम से एक के पीछे दूसरा तीसरा चौथा चला है। अब इन चारों की शाखा एक सहस्र से कम नहीं है। इन सब मतवादियों, इनके चेलों और अन्य सब को परस्पर सत्यासत्य के विचार करने में अधिक परिश्रम न हो इसलिये यह ग्रन्थ बनाया है। जो २ इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है वह सब को जानना ही प्रयोजन समझा गया है। इसमें जैसी मेरी बुद्धि, जितनी विद्या और जितना इन चारों मतों के मूल ग्रन्थ देखने से बोध हुआ है उसको सब के आगे निवेदित कर देना मैंने उत्तम समझा है, क्योंकि विज्ञान गुप्त हुए का पुनर्मिलना सहज नहीं है। पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सब को विदित हो जायगा। पश्चात् सब को अपनी २ समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य मत को छोड़ना सहज होगा। इनमें से जो पुराणादि ग्रन्थों से शाखा शाखान्तर रूप मत आर्य्यावर्त्त देश में चले हैं उनका संक्षेप से गुण दोष इस ११ वें समुल्लास में दिखाया जाता है। इस मेरे कर्म से यदि उपकार न मानें तो विरोध भी न करें। क्योंकि मेरा

तात्पर्य्य किसी की हानि वा विरोध करने में नहीं किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्यायदृष्टि से वर्तना अति उचित है। मनुष्यजन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है, न कि वादविवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो २ अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जबतक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा तबतक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने सब को विरोध जाल में फँसा रक्खा है। यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फँसकर सब के प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत होजायें। इसके होने की युक्ति इस ग्रन्थ की पूर्त्ति में लिखेंगे। सर्वशक्तिमान् परमात्मा एक मत में प्रवृत्त होने का उत्साह सब मनुष्यों के आत्माओं में प्रकाशित करे।

अलमतिविस्तरेण विपश्चिद्वरशिरोमणिषु ॥

उत्तरार्द्धः

अथैकादशसमुल्लासारम्भः

अथाऽऽर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डने विधास्यामः ॥

अब आर्य्य लोगों के कि जो आर्य्यावर्त्त देश में बसनेवाले हैं उनके मत का खण्डन तथा मण्डन का विधान करेंगे। यह आर्य्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्ण-भूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य्य लोग इसी देश में आकर बसे। इसीलिये हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि आर्य्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्य्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्य्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य होजाते हैं ॥

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ मनु० [२ । २०]

सृष्टि से ले के पांच सहस्र वर्षों से पूर्व समय पर्यन्त आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्त्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे २ राजा रहते थे क्योंकि कौरव पांडवपर्यन्त यहां के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह मनु[illegible] स्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है उसका प्रमाण है। इसी आर्य्याव[illegible] अपनी सेना

में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने २ योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें और महाराजा युधिष्ठिरजी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहां के राज्याधीन सब राज्य थे। सुनो ! चीन का भगदत्त, अमेरिका का बब्रुवाहन, यूरोपदेश का विडालाक्ष अर्थात् मार्जार के सदृश आंखवाले, यवन जिसको यूनान कह आये और ईरान् का शल्य आदि सब राजा राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्ध में आज्ञानुसार आये थे। जब रघुगण राजा थे तब रावण भी यहां के आधीन था जब रामचन्द्र के समय में विरुद्ध होगया तो उसको रामचन्द्र ने दण्ड देकर राज्य से नष्ट कर उसके भाई बिभीषण को राज्य दिया था। स्वायंभव राजा से लेकर पाण्डवपर्यन्त आर्य्यों का चक्रवर्त्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़ कर नष्ट होगये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुतसा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्य, मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं और जब युद्धविभाग में युद्धविद्याकौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष होजाते हैं तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे; जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवाजी, गोविन्दसिंहजी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया।

अथ किमेतैर्वा परेऽन्ये महाधनुर्धराश्चक्रवर्त्तिनः केचित् सुद्युम्नभूरिद्युम्नेन्द्रद्युम्नकुवलयाश्वयौवनाश्ववद्ध्र्यश्वाश्वपतिशशबिन्दुहरिश्चन्द्राऽम्बरीषनन-

कुसर्यातिययात्यनरण्याक्षसेनादयः । अथ मरुत्तभरतप्रभृतयो राजानः ॥ मैत्र्युपनि० प्र० १ । खं० ४ ॥

इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यंत चक्रवर्त्ती सार्वभौम राजा आर्य्यकुल में ही हुए थे । अब इनके सन्तानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त होरहे हैं । जैसे यहां सुद्युम्न, भूरिद्युम्न इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वद्ध्यश्व, अश्वपति, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्वरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरतसार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्त्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भवादि चक्रवर्त्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रंथों में लिखे हैं । इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है (प्रश्न) जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं ? और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं ? (उत्तर) यह बात सची है ये शस्त्र भी थे क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है (प्रश्न) क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे ? (उत्तर) नहीं, ये सब बातें जिनसे अस्त्र शस्त्रों को सिद्ध करते थे वे "मंत्र" अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे । और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता । और जो कोई कहै कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करनेवाले के हृदय और जिह्वा को भस्म कर देवे । मारने जाय शत्रु को और मर रहै आप । इसलिये मन्त्र नाम है विचार का; जैसे "राजमंत्री" अर्थात् राजकर्मों का विचार करनेवाला कहाता है वैसा मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं । जैसे कोई एक लोहे का बाण वा गोला बनाकर उसमें ऐसे पदार्थ रक्खे कि जो अग्नि के लगाने से वायु में धुआं फैलने और सूर्य की किरण वा वायु के स्पर्श होने से अग्नि जल उठे इसी का नाम आग्नेयास्त्र है । जब दूसरा इसका निवारण करना चाहे तो उसी पर वारुणास्त्र छोड़ दे अर्थात् जैसे शत्रु ने शत्रु की सेना पर आग्नेयास्त्र छोड़ कर नष्ट करना चाहा वैसे ही अपनी सेना

की रक्षार्थ सेनापति वारुणास्त्र से आग्नेयास्त्र का निवारण करे। वह ऐसे द्रव्यों के योग से होता है जिसका धुआं वायु के स्पर्श होते ही बदल होके झट वर्षने लग जावे अग्नि को बुझा देवे। ऐसे ही नागफांस अर्थात् जो शत्रु पर छोड़ने से उसके अङ्गों को जकड़ के बांध लेता है। वैसे ही एक मोहनास्त्र अर्थात् जिसमें नशे की चीज़ डालने से जिसके धुएं के लगने से सब शत्रु की सेना निद्रास्थ अर्थात् मूर्छित होजाय। इसी प्रकार सब शस्त्रास्त्र होते थे। और एक तार से वा शीशे से अथवा किसी और पदार्थ से विद्युत् उत्पन्न करके शत्रुओं का नाश करते थे उसको भी आग्नेयास्त्र तथा पाशुपतास्त्र कहते हैं। "तोप" और "बन्दूक" ये नाम अन्य देशभाषा के हैं। संस्कृत और आर्य्यावर्त्तीय भाषा के नहीं किन्तु जिसको विदेशी जन तोप कहते हैं संस्कृत और भाषा में उनका नाम "शतघ्नी" और जिसको बन्दूक कहते हैं उसको संस्कृत और आर्य्यभाषा में "भुशुण्डी" कहते हैं। जो संस्कृत विद्या को नहीं पढ़े वे भ्रम में पड़कर कुछ का कुछ लिखते और कुछ का कुछ बकते हैं। उसका बुद्धिमान् लोग प्रमाण नहीं कर सकते। और जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्य्यावर्त्त देश से मिश्रवालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोपदेश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्य्यावर्त्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यह बात कहनेमात्र है क्योंकि "यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते" अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरंड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं; वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ासा पढ़ा वही उस देश के लिये अधिक है। परन्तु आर्य्यावर्त्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासी के एक "प्रिंसिपल" के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करनेवाले भी बहुत कम हैं। और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ीसी वेद की व्याख्या देखकर मुझको विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब

ने इधर उधर आर्य्यावर्त्तीय लोगों की कीहुई टीका देख कर कुछ २ यथा तथा लिखा है जैसा कि "युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः। रोचन्ते रोचना दिवि"॥ [ऋ० १। ६। १] इस मन्त्र का अर्थ घोड़ा किया है। इससे तो जो सायणाचार्य्य ने सूर्य्य अर्थ किया है सो अच्छा है। परन्तु इसका ठीक अर्थ परमात्मा है सो मेरी बनाई "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में देख लीजिये। उसमें इस मन्त्र का यथार्थ अर्थ किया है। इतने से जान लीजिये कि जर्मनी देश और मोक्षमूलर साहब में संस्कृत विद्या का कितना पाण्डित्य है। यह निश्चय है कि जितनी विद्या और मत भूगोल में फैले हैं वे सब आर्य्यावर्त्त देश ही से प्रचरित हुए हैं। देखो! कि एक "जैकालयट"* साहब पैरस अर्थात् फ्रांस देश निवासी अपनी "बायबिल इन इण्डिया" में लिखते हैं कि सब विद्या और भलाइयों का भण्डार आर्य्यावर्त्त देश है और सब विद्या तथा मत इसी देश से फैले हैं। और परमात्मा की प्रार्थना करते हैं कि हे परमेश्वर! जैसी उन्नति आर्य्यावर्त्त देश की पूर्व काल में थी वैसी ही हमारे देश की कीजिये, लिखते हैं उस ग्रन्थ में देखलो। तथा "दाराशिकोह" बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है वैसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि मैंने अर्बी आदि बहुतसी भाषा पढ़ी परन्तु मेरे मन का संदेह छूटकर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह होकर मुझको बड़ा आनन्द हुआ है। देखो काशी के "मानमन्दिर" में शिशुमारचक्र को कि जिसकी पूरी रक्षा भी नहीं रही है तो भी कितना उत्तम है कि जिसमें अबतक भी खगोल का बहुतसा वृत्तान्त विदित होता है जो "सवाई जयपुराधीश" उसकी संभाल और फूटे टूटे को बनवाया करेंगे तो बहुत अच्छा होगा। परन्तु ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अबतक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया। क्योंकि जब भाई को भाई मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह?

विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥ [वृद्धचाणक्य। अ० १६। १७]

* मूल में गोलुस्टकर था।

यह किसी कवि का वचन है। जब नाश होने का समय निकट आता है तब उल्टी बुद्धि होकर उल्टे काम करते हैं। कोई उनको सूधा समझावे तो उल्टा मानें और उल्टा समझावें उसको सूधी मानें। जब बड़े २ विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुतसे मारे गये और बहुतसे मरगये तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाबकर राजा बन बैठा। वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में खण्ड खण्ड राज्य होगया। पुनः द्वीपद्वीपान्तर के राज्य की व्यवस्था कौन करे! जब ब्राह्मण लोग विद्याहीन हुए तब क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के अविद्वान् होने में तो कथा ही क्या कहनी? जो परम्परा से वेदादि शास्त्रों का अर्थसहित पढ़ने का प्रचार था वह भी छूटगया। केवल जीविकार्थ पाठमात्र ब्राह्मण लोग पढ़ते रहे सो पाठमात्र भी क्षत्रिय आदि को न पढ़ाया। क्योंकि जब अविद्वान् हुए गुरु बनगये तब छल, कपट, अधर्म भी उनमें बढ़ता चला। ब्राह्मणों ने विचारा कि अपनी जीविका का प्रबन्ध बांधना चाहिये। सम्मति करके यही निश्चय कर क्षत्रिय आदि को उपदेश करने लगे कि हम ही तुम्हारे पूज्यदेव हैं। विना हमारी सेवा किये तुमको स्वर्ग वा मुक्ति न मिलेगी। किन्तु जो तुम हमारी सेवा न करोगे तो घोर नरक में पड़ोगे। जो २ पूर्ण विद्यावाले धार्मिकों का नाम ब्राह्मण और पूजनीय वेद और ऋषि मुनियों के शास्त्र में लिखा था उनको अपने मूर्ख, विषयी, कपटी, लम्पट, अधर्मियों पर घटा बैठे। भला वे आप्त विद्वानों के लक्षण इन मूर्खों में कब घट सकते हैं? परन्तु जब क्षत्रियादि यजमान संस्कृत विद्या से अत्यन्त रहित हुए तब उनके सामने जो २ गप्प मारी सो २ विचारों ने सब मान ली तब इन नाममात्र ब्राह्मणों की बनपड़ी। सबको अपने वचनजाल में बांधकर वशीभूत करलिया और कहने लगे कि—

ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः ॥

अर्थात् जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण आंख के अंधे और

गांठ के पूरे अर्थात् भीतर विद्या की आंख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है ऐसे २ चेले मिले, फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नामवालों को विषयानन्द का उपवन मिलगया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथ्वी में उत्तम पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणों के लिये हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उसको नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहांतक किया कि "हम भूदेव हैं" हमारी सेवा के विना देवलोक किसी को नहीं मिल सकता। इनसे पूछना चाहिये कि तुम किस लोक में पधारोगे? तुम्हारे काम तो घोर नरक भोगने के हैं कृमि, कीट, पतंगादि बनोगे तब तो बड़े क्रोधित होकर कहते हैं—हम "शाप" देंगे तो तुम्हारा नाश होजायगा क्योंकि लिखा है "ब्रह्मद्रोही विनश्यति" कि जो ब्राह्मणों से द्रोह करता है उसका नाश होजाता है। हां, यह बात तो सच्ची है कि जो पूर्ण वेद और परमात्मा को जाननेवाले, धर्मात्मा, सब जगत् के उपकारक पुरुषों से कोई द्वेष करेगा वह अवश्य नष्ट होगा। परन्तु जो ब्राह्मण नहीं हों, उनका न ब्राह्मण नाम और न उनकी सेवा करनी योग्य है। (प्रश्न) तो हम कौन हैं? (उत्तर) तुम पोप हो। (प्रश्न) पोप किसको कहते हैं? (उत्तर) इसकी सूचना रूमन् भाषा में तो बड़ा और पिता का नाम पोप है परन्तु अब छल कपट से दूसरे को ठगकर अपना प्रयोजन साधनेवाले को पोप कहते हैं। (प्रश्न) हम तो ब्राह्मण और साधु हैं क्योंकि हमारा पिता ब्राह्मण और माता ब्राह्मणी तथा हम अमुक साधु के चेले हैं (उत्तर) यह सत्य है परन्तु सुनो भाई! मा बाप ब्राह्मणी ब्राह्मण होने से और किसी साधु के शिष्य होने पर ब्राह्मण वा साधु नहीं हो सकते किन्तु ब्राह्मण और साधु अपने उत्तम गुण कर्म स्वभाव से होते हैं, जो कि परोपकारी हो। सुना है कि जैसे रूम के "पोप" अपने चेलों को कहते थे कि तुम अपने पाप हमारे सामने कहोगे तो हम क्षमा कर देंगे; विना हमारी सेवा और आज्ञा के कोई भी स्वर्ग में नहीं जा सकता; जो तुम स्वर्ग में जाना चाहो तो हमारे पास जितने रुपये जमा करोगे उतने ही की सामग्री स्वर्ग में तुमको मिलेगी; ऐसा सुनकर जब कोई आंख के अंधे और गांठ के पूरे स्वर्ग

में जाने की इच्छा करके "पोपजी" को यथेष्ट रुपया देता था, तब वह "पोपजी" ईसा और मरियम की मूर्त्ति के सामने खड़ा होकर इस प्रकार की हुंडी लिखकर देता था "हे ख़ुदावन्द ईसामसीह ! अमुक मनुष्य ने तेरे नाम पर लाख रुपये स्वर्ग में आने के लिये हमारे पास जमा कर दिये हैं । जब वह स्वर्ग में आवे तब तू अपने पिता के स्वर्ग के राज्य में पच्चीस सहस्र रुपयों में बाग़-बग़ीचा और मकानात, पच्चीस सहस्र में सवारी शिकारी और नौकर चाकर, पच्चीस सहस्र रुपयों में खाना पीना कपड़ा लत्ता और पच्चीस सहस्र रुपये इसके इष्ट मित्र भाई बन्धु आदि के जियाफ़त के वास्ते दिला देना ।" फिर उस हुंडी के नीचे पोपजी अपनी सही करके हुंडी उसके हाथ में देकर कह देते थे कि "जब तू मरे तब इस हुण्डी को क़बर में अपने सिराने धर लेने के लिये अपने कुटुम्ब को कह रखना फिर तुझे लेजाने के लिये फ़रिश्ते आवेंगे तब तुझे और तेरी हुंडी को स्वर्ग में लेजाकर लिखे प्रमाणे सब चीजें तुझको दिला देंगे ।" अब देखिये, जानों स्वर्ग का ठेका पोपजी ने लेलिया हो ! जबतक यूरोप देश में मूर्खता थी तभीतक वहां पोपजी की लीला चलती थी परन्तु अब विद्या के होने से पोपजी की झूठी लीला बहुत नहीं चलती, किन्तु निर्मूल भी नहीं हुई । वैसे ही आर्यावर्त्त देश में भी जानो पोपजी ने लाखों अवतार लेकर लीला फैलाई हो । अर्थात् राजा और प्रजा को विद्या न पढ़ने देना, अच्छे पुरुषों का सङ्ग न होने देना, रात दिन बहकाने के सिवाय दूसरा कुछ भी काम नहीं करना है । परन्तु यह बात ध्यान में रखना कि जो २ छलकपटादि कुत्सित व्यवहार करते हैं वे ही पोप कहाते हैं । जो कोई उनमें भी धार्मिक विद्वान् परोपकारी हैं वे सच्चे ब्राह्मण और साधु हैं । अब उन्हीं छली कपटी स्वार्थी लोगों, मनुष्यों को ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करनेवालों ही का ग्रहण "पोप" शब्द से करना और ब्राह्मण तथा साधु नाम से उत्तम पुरुषों का स्वीकार करना योग्य है । देखो ! जो कोई भी उत्तम ब्राह्मण वा साधु न होता तो वेदादि सत्यशास्त्रों के पुस्तक स्वरसहित का पठनपाठन जैन, मुसलमान, ईसाई आदि के जाल से बचकर आर्यों को वेदादि सत्यशास्त्रों में प्रीतियुक्त वर्णाश्रमों में रखना ऐसा कौन कर सकता ? सिवाय ब्राह्मण साधुओं के ! "विषादप्यमृतं ग्राह्यम् ।

मनु०" विष से भी अमृत के ग्रहण करने के समान पोपलीला से बहकाने में से भी आर्यों का जैन आदि मतों से बच रहना जानो विष में अमृत के समान गुण समझना चाहिये । जब यजमान विद्याहीन हुए और आप कुछ पाठ पूजा पढ़कर अभिमान में आके सब लोगों ने परस्पर सम्मति करके राजा आदि से कहा कि ब्राह्मण और साधु अदण्ड्य हैं; देखो ! "ब्राह्मणो न हन्तव्यः" "साधुर्न हन्तव्यः" ऐसे २ वचन जो कि सच्चे ब्राह्मण और साधुओं के विषय में थे सो पोपों ने अपने पर घटा लिये और भी झूठे २ वचनयुक्त ग्रन्थ रचकर उनमें ऋषि मुनियों के नाम धर के उन्हीं के नाम से सुनाते रहे । उन प्रतिष्ठित ऋषि महर्षियों के नाम से अपने पर से दण्ड की व्यवस्था उठवा दी । पुनः यथेष्टाचार करने लगे अर्थात् ऐसे कड़े नियम चलाये कि उन पोपों की आज्ञा के विना सोना, उठना, बैठना, जाना, आना, खाना, पीना आदि भी नहीं कर सकते थे । राजाओं को ऐसा निश्चय कराया कि पोप संज्ञक कहने मात्र के ब्राह्मण साधु चाहें सो करें उनको कभी दण्ड न देना अर्थात् उन पर मन में दण्ड देने की इच्छा न करनी चाहिये जब ऐसी मूर्खता हुई तब जैसी पोपों की इच्छा हुई वैसा करने कराने लगे । अर्थात् इस बिगाड़ के मूल महाभारत युद्ध से पूर्व एक सहस्र वर्ष से प्रवृत्त हुए थे । क्योंकि उस समय में ऋषि मुनि भी थे तथापि कुछ २ आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर उगे थे, वे बढ़ते २ वृद्ध होगये । जब सच्चा उपदेश न रहा तब आर्य्यावर्त्त में अविद्या फैलकर परस्पर में लड़ने झगड़ने लगे क्योंकि—

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः । इतरथान्धपरम्परा ॥
सांख्यसू० [अ० ३ । ७९ । ८१]

अर्थात् जब उत्तम २ उपदेशक होते हैं तब अच्छे प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सिद्ध होते हैं । और जब उत्तम उपदेशक और श्रोता नहीं रहते तब अन्धपरम्परा चलती है । फिर भी जब सत्पुरुष उत्पन्न होकर सत्योपदेश करते हैं तभी अन्धपरम्परा नष्ट होकर प्रकाश की परम्परा चलती है । पुनः वे पोप लोग अपनी और अपने चरणों की पूजा कराने लगे और कहने लगे कि

इसी में तुम्हारा कल्याण है। जब ये लोग इनके वश में होगये तब प्रमाद और विषयासक्ति में निमग्न होकर गड़रिये के समान झूठे गुरु और चेले फँसे। विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरतादि शुभगुण सब नष्ट होते चले। पश्चात् जब विषयासक्त हुए तो मांस मद्य का सेवन गुप्त २ करने लगे। पश्चात् उन्हीं में से एक वाममार्ग खड़ा किया। "शिव उवाच" "पार्वत्युवाच" "भैरव उवाच" इत्यादि नाम लिखकर तंत्र नाम धरा। उनमें ऐसी २ विचित्र लीला की बातें लिखीं कि—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च।
एते पञ्च मकाराः स्युर्मोक्षदा हि युगे युगे॥ १॥ [कालीतंत्रादि में]

प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः।
निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक् पृथक्॥ २॥ [कुलार्णव तन्त्र]

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा यावत्पतति भूतले।
पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते॥ ३॥ [महानिर्वाण तन्त्र]

मातृयोनिं परित्यज्य विहरेत् सर्वयोनिषु॥ ४॥
वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव।
एकैव शाम्भवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव॥ ५॥ [ज्ञानसंकलनी तन्त्र]

अर्थात् देखो इन गवर्गण्ड पोपों की लीला कि जो वेदविरुद्ध महा अधर्म के काम हैं उन्हीं को श्रेष्ठ वाममार्गियों ने माना। मद्य, मांस, मीन अर्थात् मच्छी, मुद्रा, पूरी कचौरी और बड़े रोटी आदि चर्वण, योनि, पात्राधार, मुद्रा और पांचवां मैथुन अर्थात् पुरुष सब शिव और स्त्री सब पार्वती के समान मानकर—

अहं भैरवस्त्वं भैरवी ह्यावयोरस्तु सङ्गमः।

चाहें कोई पुरुष वा स्त्री हो इस ऊटपटांग वचन को पढ़ के समागम करने में वे वाममार्गी दोष नहीं मानते। अर्थात् जिन नीच स्त्रियों को छूना नहीं उनको अतिपवित्र उन्होंने माना है। जैसे शास्त्रों में रजस्वला आदि स्त्रियों के

स्पर्श का निषेध है उनको वाममार्गियों ने अतिपवित्र माना है। सुनो इनका श्लोक खंडवंड—

रजस्वला पुष्करं तीर्थं चांडाली तु स्वयं काशी चर्मकारी प्रयागः स्याद्रजकी मथुरा मता। अयोध्या पुक्कसी प्रोक्ता॥ [रुद्रयामल तन्त्र]

इत्यादि, रजस्वला के साथ समागम करने से जानो पुष्कर का स्नान, चाण्डाली से समागम में काशी की यात्रा, चमारी से समागम करने से मानो प्रयागस्नान, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने में मथुरायात्रा और कंजरी के साथ लीला करने से मानो अयोध्या तीर्थ कर आये। मद्य का नाम धरा "तीर्थ", मांस का नाम "शुद्धि" और "पुष्प", मच्छी का नाम "तृतीया" "जलतुम्बिका", मुद्रा का नाम "चतुर्थी" और मैथुन का नाम "पंचमी"। इसलिये ऐसे २ नाम धरे हैं कि जिससे दूसरा न समझ सके। अपने कौल, आर्द्रवीर, शाम्भव और गण आदि नाम रक्खे हैं। और जो वाममार्ग मत में नहीं हैं उनका "कंटक", "विमुख", "शुष्कपशु" आदि नाम धरे हैं। और कहते हैं कि जब भैरवीचक्र हो तब उस में ब्राह्मण से लेकर चांडालपर्यन्त का नाम द्विज होजाता है और जब भैरवीचक्र से अलग हों तब सब अपने २ वर्णस्थ होजायें। भैरवीचक्र में वाममार्गी लोग भूमि वा पट्टे पर एक विन्दु त्रिकोण चतुष्कोण वर्त्तुलाकार बनाकर उस पर मद्य का घड़ा रखके उसकी पूजा करते हैं। फिर ऐसा मन्त्र पढ़ते हैं "ब्रह्मशापं विमोचय" हे मद्य! तू ब्रह्मा आदि के शाप से रहित हो। एक गुप्त स्थान में कि जहां सिवाय वाममार्गी के दूसरे को नहीं आने देते, वहां स्त्री और पुरुष इकट्ठे होते हैं। वहां एक स्त्री को नङ्गी कर पूजते और स्त्री लोग किसी पुरुष को नंगा कर पूजती हैं पुनः कोई किसी की स्त्री कोई अपनी वा दूसरे की कन्या कोई किसी की वा अपनी माता, भगिनी, पुत्रवधू आदि आती हैं। पश्चात् एक पात्र में मद्य भरके मांस और बड़े आदि एक स्थाली में धर रखते हैं। उस मद्य के प्याले को जो कि उनका आचार्य्य होता है वह हाथ में लेकर बोलता है कि "भैरवोऽहम्" "शिवोऽहम्" "मैं भैरव वा शिव हूं" कहकर पीजाता है। फिर उसी जूंठे पात्र से

सब पीते हैं। और जब किसी की स्त्री वा वेश्या नङ्गी कर अथवा किसी पुरुष को नङ्गा कर हाथ में तलवार दे के उसका नाम देवी और पुरुष का नाम महादेव धरते हैं, उनके उपस्थ इन्द्रिय की पूजा करते हैं, तब उस देवी वा शिव को मद्य का प्याला पिलाकर उसी जूंठे पात्र से सब लोग एक २ प्याला पीते। फिर उसी प्रकार क्रम से पी पी के उन्मत्त होकर चाहें कोई किसी की बहिन, कन्या वा माता क्यों न हो जिसकी जिसके साथ इच्छा हो उसके साथ कुकर्म करते हैं। कभी २ बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्कामुक्की, केशाकेशी, आपस में लड़ते हैं। किसी २ को वहीं वमन होता है। उन में जो पहुंचा हुआ अघोरी अर्थात् सब में सिद्ध गिना जाता है, वह वमन हुई चीज़ को भी खा लेता है। अर्थात् इनके सब से बड़े सिद्ध की ये बातें हैं कि—

हालां पिबति दीक्षितस्य मन्दिरे सुप्तो निशायां गणिकागृहेषु। विराजते कौलवचक्रवर्ती ॥

जो दीक्षित अर्थात् कलार के घर में जाके बोतल पर बोतल चढ़ावे रंडियों के घर में जाके उनसे कुकर्म करके सोवे, जो इत्यादि कर्म निर्लज्ज, निःशङ्क होकर करे, वही वाममार्गियों में सर्वोपरि मुख्य चक्रवर्त्ती राजा के समान माना जाता है। अर्थात् जो बड़ा कुकर्मी वही उनमें बड़ा, और जो अच्छे काम करे और बुरे कामों से डरे वही छोटा क्योंकिः—

पाशबद्धो भवेज्जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः ॥

[ज्ञानसंकलनी तन्त्र। श्लोक ४३]

ऐसा तन्त्र में कहते हैं कि जो लोकलज्जा, शास्त्रलज्जा, कुललज्जा, देशलज्जा आदि पाशों में बँधा है वह जीव, और जो निर्लज्ज होकर बुरे काम करे वही सदा शिव है ॥

उड्डीस तन्त्र आदि में एक प्रयोग लिखा है कि एक घर में चारों ओर आलय हों। उनमें मद्य के बोतल भर के धर देवे। इस आलय से एक बोतल

पीके दूसरे आलय पर जावे। उसमें से पी तीसरे और तीसरे में से पीके चौथे आलय में जावे। खड़ा २ तबतक मद्य पीवे कि जबतक लकड़ी के समान पृथिवी में न गिर पड़े। फिर जब नशा उतरे तब उसी प्रकार पीकर गिर पड़े। पुनः तीसरी वार इसी प्रकार पीके गिर के उठे तो उसका पुनर्जन्म न हो, अर्थात् सच तो यह है कि ऐसे २ मनुष्यों का पुनः मनुष्यजन्म होना ही कठिन है किन्तु नीच योनि में पड़कर बहुकालपर्यन्त पड़ा रहेगा। वामियों के तन्त्र ग्रन्थों में यह नियम है कि एक माता को छोड़ के किसी स्त्री को भी न छोड़ना चाहिये अर्थात् चाहे कन्या हो वा भगिनी आदि क्यों न हो सब के साथ संगम करना चाहिये। इन वाममार्गियों में दश महाविद्या प्रसिद्ध हैं उनमें से एक मातङ्गी विद्यावाला कहता है कि "मातरमपि न त्यजेत्" अर्थात् माता को भी समागम किये बिना न छोड़ना चाहिये। और स्त्री पुरुष के समागम समय में मन्त्र जपते हैं कि हमको सिद्धि प्राप्त होजायें। ऐसे पागल महामूर्ख मनुष्य भी संसार में बहुत न्यून होंगे !!! जो मनुष्य झूठ चलाना चाहता है वह सत्य की निन्दा अवश्य ही करता है। देखो ! वाममार्गी क्या कहते हैं ? वेद, शास्त्र और पुराण ये सब सामान्य वेश्याओं के समान हैं और जो यह शांभवी वाममार्ग की मुद्रा है वह गुप्तकुल की स्त्री के तुल्य है॥ ५॥ इसीलिये इन लोगों ने केवल वेदविरुद्ध मत खड़ा किया है। पश्चात् इन लोगों का मत बहुत चला। तब धूर्त्तता करके वेदों के नाम से भी वाममार्ग की थोड़ी २ लीला चलाई अर्थात्—

सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्। प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला॥ मनु० [अ० ५। ५६]

सौत्रामणि यज्ञ में मद्य पीवे इसका अर्थ यह है कि सौत्रामणि यज्ञ में सोमरस अर्थात् सोमवल्ली का रस पिये। प्रोक्षित अर्थात् यज्ञ में मांस खाने में दोष नहीं ऐसी पामरपन की बातें वाममार्गियों ने चलाई हैं। उनसे पूछना चाहिये कि जो वैदिकी हिंसा हिंसा न हो तो तुझ और तेरे कुटुम्ब को मार के होम

कर डालें तो क्या चिन्ता है ? मांसभक्षण करने, मद्य पीने, परस्त्रीगमन करने आदि में दोष नहीं है, यह कहना छोकड़ापन है । क्योंकि विना प्राणियों के पीड़ा दिये मांस प्राप्त नहीं होता, और विना अपराध के पीड़ा देना धर्म का काम नहीं । मद्यपान का तो सर्वथा निषेध ही है क्योंकि अबतक वाममार्गियों के विना किसी ग्रन्थ में नहीं लिखा किन्तु सर्वत्र निषेध है । और विना विवाह के मैथुन में भी दोष है, इसको निदोष कहनेवाला सदोष है । ऐसे ऐसे वचन भी ऋषियों के ग्रन्थ में डाल के कितने ही ऋषि मुनियों के नाम से ग्रन्थ बनाकर गोमेध, अश्वमेध नाम के यज्ञ भी कराने लगे थे । अर्थात् इन पशुओं को मारके होम करने से यजमान और पशु को स्वर्ग की प्राप्ति होती है, ऐसी प्रसिद्धि का निश्चय तो यह है कि जो ब्राह्मणग्रन्थों में अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्द हैं उनका ठीक २ अर्थ नहीं जाना है क्योंकि जो जानते तो ऐसा अनर्थ क्यों करते ? (प्रश्न) अश्वमेध, गोमेध, नरमेध आदि शब्दों का अर्थ क्या है ? (उत्तर) इनका अर्थ तो यह है कि—

राष्ट्रं वा अश्वमेधः ॥ [शत० १३ । १ । ६ । ३]

अन्नꣳहि गौः ॥ [शत० ४ । ३ । १ । २५] अग्निर्वा अश्वः । आज्यं मेधः ॥ शतपथब्राह्मणे ॥

घोड़े, गाय आदि पशु तथा मनुष्य मार के होम करना कहीं नहीं लिखा । केवल वाममार्गियों के ग्रन्थों में ऐसा अनर्थ लिखा है । किन्तु यह भी बात वाममार्गियों ने चलाई । और जहां २ लेख है वहां २ भी वाममार्गियों ने प्रक्षेप किया है । देखो ! राजा न्याय धर्म से प्रजा का पालन करे, विद्यादि का देनेहारा यजमान और अग्नि में घी आदि का होम करना अश्वमेध; अन्न, इन्द्रियां, किरण, पृथिवी आदि को पवित्र रखना गोमेध; जब मनुष्य मरजाय तब उसके शरीर का विधिपूर्वक दाह करना नरमेध कहाता है । (प्रश्न) यज्ञकर्ता कहते हैं कि यज्ञ करने से यजमान और पशु स्वर्गगामी तथा होम करके फिर पशु को जीता करते थे, यह बात सच्ची है वा नहीं ? (उत्तर) नहीं, जो स्वर्ग को जाते हो तो ऐसी बात कहने वाले को मार के होम कर स्वर्ग

में पहुंचाना चाहिये वा उसके प्रिय माता, पिता, स्त्री और पुत्रादि को मार होमकर स्वर्ग में क्यों नहीं पहुंचाते ? वा वेदी में से पुनः क्यों नहीं जिला लेते हैं ? (प्रश्न) जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होता तो कहां से पढ़ते ? (उत्तर) मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता, क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मार के होम करना। जैसे "अग्नये स्वाहा" इत्यादि मन्त्रों का अर्थ अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं वे केवल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कुछ भी नहीं जानते, मानते। जब इन पोपों का ऐसा अनाचार देखा और दूसरा मरे का तर्पण श्राद्धादि करने को देखकर एक महाभयंकर वेदादि शास्त्रों का निन्दक बौद्ध वा जैनमत प्रचलित हुआ है। सुनते हैं कि एक इसी देश में गोरखपुर का राजा था। उससे पोपों ने यज्ञ कराया। उसकी प्रियराणी का समागम घोड़े के साथ कराने से उसके मरजाने पर पश्चात् वैराग्यवान् होकर अपने पुत्र को राज्य दे, साधु हो, पोपों की पोल निकालने लगा। इसी की शाखारूप चारवाक और आभाणक मत भी हुआ था। उन्होंने इस प्रकार के श्लोक बनाये हैं—

> पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
> स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥
> मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
> गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥

जो पशु मारकर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाता है, तो यजमान अपने पिता आदि को मारके स्वर्ग में क्यों नहीं भेजते ॥ १ ॥ जो मरे हुए मनुष्यों की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्प्पण होता है तो विदेश में जानेवाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने पीने के लिये बांधना व्यर्थ है। क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध, तर्प्पण से अन्न जल पहुंचता है तो जीते हुए परदेश में रहने-

वाले वा मार्ग में चलनेहारों को घर में रसोई बनी हुई का पत्तल परोस, लोटा भर के उसके नाम पर रखने से क्यों नहीं पहुंचता ? जो जीते हुए दूर देश अथवा दश हाथ पर दूर बैठे हुए को दिया हुआ नहीं पहुंचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार नहीं पहुंच सकता। उनके ऐसे युक्तिसिद्ध उपदेशों को मानने लगे और उनका मत बढ़ने लगा। जब बहुतसे राजा भूमिपति उनके मत में हुए तब पोपजी भी उनकी ओर झुके क्योंकि इनको जिधर गप्फा अच्छा मिले वहीं चले जायें। झट जैन बनने चले। जैन में भी और प्रकार की पोपलीला बहुत है सो १२ वें समुल्लास में लिखेंगे। बहुतों ने इनका मत स्वीकार किया परन्तु कितने कहीं जो पर्वत, काशी, कन्नौज, पश्चिम, दक्षिण देशवाले थे उन्होंने जैनों का मत स्वीकार नहीं किया था। वे जैनी वेद का अर्थ न जानकर बाहर की पोपलीला भ्रान्ति से वेद पर मानकर वेदों की भी निन्दा करने लगे। उसके पठनपाठन यज्ञोपवीतादि और ब्रह्मचर्य्यादि नियमों को भी नाश किया। जहां जितने पुस्तक वेदादि के पाये नष्ट किये। आर्य्यों पर बहुतसी राजसत्ता भी चलाई, दुःख दिया। जब उनको भय शंका न रही तब अपने मत वाले गृहस्थ और साधुओं की प्रतिष्ठा और वेदमार्गियों का अपमान और पक्षपात से दण्ड भी देने लगे। और आप सुख आराम और घमंड में आ फूलकर फिरने लगे। ऋषभदेव से लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी २ मूर्त्तियां बनाकर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्त्तिपूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। परमेश्वर का मानना न्यून हुआ, पाषाणादि मूर्त्तिपूजा में लगे। ऐसा तीनसौ वर्ष पर्यन्त आर्यावर्त्त में जैनों का राज्य रहा। प्रायः वेदार्थ ज्ञान से शून्य होगये थे। इस बात को अनुमान से अढ़ाई सहस्र वर्ष व्यतीत हुऐ होंगे।

बाईससौ वर्ष हुए कि एक शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़कर सोचने लगे कि अहह! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है इनको किसी प्रकार हटाना चाहिये। शंकराचार्य्य शास्त्र तो पढ़े ही थे,

परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें ? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहां उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहां जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिलकर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत को मानते हो, इसलिये आपको मैं कहता हूं कि जैनियों के पंडितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये; इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वाले का मत स्वीकार करले; और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। यद्यपि सुधन्वा जैनमत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था। इससे उनके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जबतक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तबतक सन्देह में थे कि इनमें कौनसा सत्य और कौनसा असत्य है। जब शङ्कराचार्य्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर २ से बुलाकर सभा कराई। उसमें शंकराचार्य्य का वेदमत और जैनियों का वेदविरुद्ध मत था। अर्थात् शंकराचार्य्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खण्डन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खण्डन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं; यह जगत् और जीव अनादि हैं; इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इससे विरुद्ध शंकराचार्य्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्त्ता है। यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया, वही धारण और प्रलय करता है, और यह जीव और प्रपञ्च स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है। बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित

और शंकराचार्य्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पंडित और सुधन्वा राजा ने उस मत को स्वीकार कर लिया, जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिखकर शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये पश्चात् शंकराचार्य्य के सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने करदिया, और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठनपाठन भी चला। दश वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त्त देश में घूम कर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। परन्तु शंकराचार्य के समय में जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्त्तियां जैनियों की निकलती हैं वे शंकराचार्य के समय में टूटी थीं और जो विना टूटी निकलती हैं वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जायें। वे अबतक कहीं भूमि में से निकलती हैं। शंकराचार्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ासा प्रचालित था उसका भी खण्डन किया। वाममार्ग का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियों के मंदिर शंकराचार्य्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तुड़वाये थे क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी। जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्याप्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो जैन ऊपर से कथनमात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द होगई। पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही होगये और जो विद्या का प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया। जो २ उन्होंने शारीरिक भाष्यादि बनाये थे उनका प्रचार शंकराचार्य्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे। दक्षिण में शृङ्गेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोशी और द्वारिका में सारदामठ बांधकर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान्

होकर आनन्द करने लगे, क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी ।

अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीव ब्र की एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्य्य का निज मत था तो वह अच्छा मत नहीं और जो जैनियों के खण्डन के लिये उस मत का स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है । नवीन वेदान्तियों का मत ऐसा है (प्रश्न) जगत् स्वप्नवत्, रज्जू में सर्प, सीप में चांदी, मृगतृष्णिका में जल, गन्धर्व नगर इन्द्रजालवत् यह संसार झूठा है । एक ब्रह्म ही सच्चा है । (सिद्धान्ती) झूठा तुम किसको कहते हो ? (नवीन) जो वस्तु न हो और प्रतीत होवे । (सिद्धान्ती) जो वस्तु ही नहीं उसकी प्रतीति कैसे हो सकती है (नवीन) अध्यारोप से (सिद्धान्ती) अध्यारोप किसको कहते हो ? (नवीन) "वस्तुन्यवस्त्वारोपणमध्यासः" "अध्यारोपापवादाभ्यां निष्प्रपंचं प्रपंच्यते" पदार्थ कुछ और हो उसमें अन्य वस्तु का आरोपण करना अध्यास, अध्यारोप; और उसका निराकरण करना अपवाद कहाता है । इन दोनों से प्रपंच रहित ब्रह्म में प्रपंचरूप जगत् विस्तार करते हैं (सिद्धान्ती) तुम रज्जू को वस्तु और सर्प को अवस्तु मानकर इस भ्रमजाल में पड़े हो । क्या सर्प वस्तु नहीं है ? जो कहो कि रज्जू में नहीं तो देशान्तर में, और उसका संस्कारमात्र हृदय में है । फिर वह सर्प भी अवस्तु नहीं रहा । वैसे ही स्थाणु में पुरुष, सीप में चांदी आदि की व्यवस्था समझ लेना । और स्वप्न में भी जिनका भान होता है वे देशान्तर में हैं और उनके संस्कार आत्मा में भी हैं । इसलिये वह स्वप्न भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के समान नहीं । (नवीन) जो कभी न देखा, न सुना, जैसा कि अपना शिर कटा है और आप रोता है, जल की धारा ऊपर चली जाती है, जो कभी न हुआ था देखा जाता है, वह सत्य क्योंकर हो सके ? (सिद्धान्ती) यह भी दृष्टान्त तुम्हारे पक्ष को सिद्ध नहीं करता क्योंकि विना देखे सुने संस्कार नहीं होता । संस्कार के विना स्मृति, और स्मृति के विना साक्षात् अनुभव नहीं होता । जब किसी से सुना वा देखा कि अमुक का शिर कटा और उसके भाई

वा बाप आदि को लड़ाई में प्रत्यक्ष रोते देखा और फोहारे का जल ऊपर चढ़ते देखा वा सुना उसका संस्कार उसी के आत्मा में होता है। जब यह जाग्रत् के पदार्थ से अलग होके देखता है तब अपने आत्मा में उन्हीं पदार्थों को, जिनको देखा वा सुना होता, देखता है। जब अपने ही में देखता है तब जानो अपना शिर कटा, आप रोता और ऊपर जाती जल की धारा को देखता है। यह भी वस्तु में अवस्तु के आरोपण के सदृश नहीं; किन्तु जैसे नक़शा निकालनेवाले पूर्व दृष्ट श्रुत वा किये हुओं को आत्मा में से निकाल कर काग़ज़ पर लिख देते हैं अथवा प्रतिविम्ब का उतारनेवाला विम्ब को देख आत्मा में आकृति को धर बराबर लिख देता है। हां! इतना है कि कभी २ स्वप्न में स्मरणयुक्त प्रतीति जैसा कि अपने अध्यापक को देखता है और कभी बहुत काल देखने और सुनने में अतीत ज्ञान को साक्षात्कार करता है। तब स्मरण नहीं रहता कि जो मैंने उस समय देखा, सुना वा किया था, उसी को देखता, सुनता वा करता हूं। जैसा जाग्रत् में स्मरण करता है वैसा स्वप्न में नियमपूर्वक नहीं होता। देखो! जन्मान्ध को रूप का स्वप्न नहीं आता। इसलिये तुम्हारा अध्यास और अध्यारोप का लक्षण झूठा है। और जो वेदान्ती लोग विवर्त्तवाद अर्थात् रज्जू में सर्पादि के भान होने का दृष्टान्त, ब्रह्म में जगत् के भान होने में देते हैं, वह भी ठीक नहीं। (नवीन) अधिष्ठान के विना अध्यस्त प्रतीत नहीं होता। जैसे रज्जू न हो तो सर्प का भी भान नहीं हो सकता। जैसे रज्जू में सर्प तीन काल में नहीं है परन्तु अन्धकार और कुछ प्रकाश के मेल में अकस्मात् रज्जू को देखने से सर्प का भ्रम होकर भय से कंपता है। जब उसको दीप आदि से देख लेता है उसी समय भ्रम और भय निवृत्त होजाता है। वैसे ब्रह्म में जो जगत् की मिथ्या प्रतीति हुई है वह ब्रह्म के साक्षात्कार होने में उस [जगत्] की निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति [हो-जाती है] जैसा कि सर्प की निवृत्ति और रज्जू की प्रतीति होती है।

(सिद्धान्ती) ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ ? (नवीन) जीव को (सिद्धान्ती) जीव कहां से हुआ ? (नवीन) अज्ञान से। (सिद्धान्ती)

अज्ञान कहां से हुआ और कहां रहता है ? (नवीन) अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है (सिद्धान्ती) ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का और वह अज्ञान किसको हुआ ? (नवीन) चिदाभास को। (सिद्धान्ती) चिदाभास का स्वरूप क्या है ? (नवीन) ब्रह्म, ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को आप ही भूल जाता है। (सिद्धान्ती) उसके भूलने में निमित्त क्या है ? (नवीन) अविद्या। (सिद्धान्ती) अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ? (नवीन) अल्पज्ञ का। (सिद्धान्ती) तो तुम्हारे मत में विना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहां से आया ? हां, जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा करदेती है, इसी प्रकार ब्रह्म भी एकदेश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभवयुक्त होजाय। (नवीन) यह सब उपाधि का धर्म है, ब्रह्म का नहीं। (सिद्धान्ती) उपाधि जड़ है वा चेतन और सत्य है वा असत्य ? (नवीन) अनिर्वचनीय है अर्थात् जिसको जड़ वा चेतन सत्य वा असत्य नहीं कह सकते। (सिद्धान्ती) यह तुम्हारा कहना "वदतो व्याघातः" के तुल्य है क्योंकि कहते हो अविद्या है जिसको जड़, चेतन, सत्, असत् नहीं कह सकते। यह ऐसी बात है कि जैसे सोने में पीतल मिला हो उसको सराफ के पास परीक्षा करावे कि यह सोना है वा पीतल ? तब यही कहोगे कि इसको हम न सोना न पीतल कह सकते हैं किन्तु इसमें दोनों धातु मिली हैं। (नवीन) देखो जैसे घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश और महदाकाशोपाधि अर्थात् घड़ा घर और मेघ के होने से भिन्न २ प्रतीत होते हैं, वास्तव में महदाकाश ही है; ऐसे ही माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अंतःकरणों की उपाधियों से ब्रह्म अज्ञानियों को पृथक् २ प्रतीत हो रहा है; वास्तव में एक ही है। देखो अग्रिम प्रमाण में क्या कहा है—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव। एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ [कठउ० वल्ली ५ । मं० ९]

जैसे अग्नि लंबे, चौड़े, गोल, छोटे, बड़े सब आकृतिवाले पदार्थों में व्यापक होकर तदाकार दीखता और उनसे पृथक् है, वैसे सर्वव्यापक परमात्मा अन्तःकरणों में व्यापक होके अन्तःकरणाऽऽकार हो रहा है परन्तु उनसे अलग है। (सिद्धान्ती) यह भी तुम्हारा कहना व्यर्थ है क्योंकि जैसे घट, मठ, मेघों और आकाश को भिन्न मानते हो वैसे कारणकार्य्यरूप जगत् और जीव को ब्रह्म से और ब्रह्म को इनसे भिन्न मान लो ? (नवीन) जैसा अग्नि सब में प्रविष्ट होकर देखने में तदाकार दीखता है, इसी प्रकार परमात्मा जड़ और जीव में व्यापक होकर आकारवाला अज्ञानियों को आकारयुक्त दीखता है। वास्तव में ब्रह्म न जड़ और न जीव है। जैसे जल के सहस्र कूंडे धरे हों उनमें सूर्य्य के सहस्रों प्रतिविम्ब दीखते हैं वस्तुतः सूर्य्य एक है। कूंडों के नष्ट होने से जल के चलने व फैलने से सूर्य्य न नष्ट होता न चलता और न फैलता, इसी प्रकार अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास जिसको चिदाभास कहते हैं पड़ा है। जबतक अन्तःकरण है तभीतक जीव है। जब अन्तःकरण ज्ञान से नष्ट होता है तब जीव ब्रह्मस्वरूप है। इस चिदाभास को अपने ब्रह्मस्वरूप का अज्ञानकर्त्ता, भोक्ता, सुखी, दुखी, पापी, पुण्यात्मा, जन्म, मरण अपने में आरोपित करता है तबतक संसार के बन्धनों से नहीं छूटता (सिद्धान्ती) यह दृष्टान्त तुम्हारा व्यर्थ है क्योंकि सूर्य्य आकारवाला, जल कूंड़े भी साकार हैं। सूर्य्य जल कूंड़े से भिन्न और सूर्य से जल कूंड़े भिन्न हैं तभी प्रतिविम्ब पड़ता है। यदि निराकार होते तो उनका प्रतिबिंब कभी न होता। और जैसे परमेश्वर निराकार, सर्वत्र आकाशवत् व्यापक होने से ब्रह्म से कोई पदार्थ वा पदार्थों से ब्रह्म पृथक् नहीं हो सकता और व्याप्यव्यापक सम्बन्ध से एक भी नहीं हो सकता। अर्थात् अन्वयव्यतिरेकभाव से देखने से व्याप्यव्यापक मिले हुए और सदा पृथक् रहते हैं। जो एक हो तो अपने में व्याप्यव्यापक भाव सम्बन्ध कभी नहीं घट सकता। सो बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में स्पष्ट लिखा है। और ब्रह्म का आभास भी नहीं पड़ सकता, क्योंकि विना आकार के आभास का होना असम्भव है। जो अन्तःकरणोपाधि से ब्रह्म को जीव मानते हो सो तुम्हारी बात बालक के समान है। अन्तःकरण चलायमान,

खण्ड २ और ब्रह्म अचल और अखंड है। यदि तुम ब्रह्म और जीव को पृथक् २ न मानोगे तो इसका उत्तर दीजिये कि जहां २ अन्तःकरण चला जायगा वहां २ के ब्रह्म को अज्ञानी और जिस २ देश को छोड़ेगा वहां २ के ब्रह्म को ज्ञानी कर देवेगा वा नहीं ? जैसे छाता प्रकाश के बीच में जहां २ जाता है वहां २ के प्रकाश को आवरणयुक्त और जहां २ से हटता है वहां २ के प्रकाश को आवरण रहित कर देता है; वैसे ही अन्तःकरण ब्रह्म को क्षण क्षण में ज्ञानी, अज्ञानी, बद्ध और मुक्त करता जायगा। अखंड ब्रह्म के एक देश में आवरण का प्रभाव सर्वदेश में होने से सब ब्रह्म अज्ञानी हो जायगा, क्योंकि वह चेतन है। और मथुरा में जिस अन्तःकरणस्थ ब्रह्म ने जो वस्तु देखी उसका स्मरण उसी अंतःकरणस्थ से काशी में नहीं हो सकता। क्योंकि "अन्यदृष्टमन्यो न स्मरतीति न्यायात्" और के देखे का स्मरण और को नहीं होता। जिस चिदाभास ने मथुरा में देखा वह चिदाभास काशी में नहीं रहता किन्तु जो मथुरास्थ अंतःकरण का प्रकाशक है [वह] काशीस्थ ब्रह्म नहीं होता। जो ब्रह्म ही जीव है, पृथक् नहीं; तो जीव को सर्वज्ञ होना चाहिये। यदि ब्रह्म का प्रतिविंब पृथक् है तो प्रत्यभिज्ञा अर्थात् पूर्व दृष्ट, श्रुत का ज्ञान किसी को नहीं हो सकेगा। जो कहो कि ब्रह्म एक है इसलिये स्मरण होता है तो एक ठिकाने अज्ञान वा दुःख होने से सब ब्रह्म को अज्ञान वा दुःख हो जाना चाहिये। और ऐसे २ दृष्टान्तों से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव ब्रह्म को तुमने अशुद्ध अज्ञानी और बद्ध आदि दोषयुक्त कर दिया है और अखंड को खंड २ कर दिया।

(नवीन) निराकार का भी आभास होता है जैसा कि दर्पण वा जलादि में आकाश का आभास पड़ता है वह नीला वा किसी अन्य प्रकार गम्भीर गहरा दीखता है, वैसा ब्रह्म का भी सब अंतःकरणों में आभास पड़ता है। (सिद्धान्ती) जब आकाश में रूप ही नहीं है तो उसको आंख से कोई भी नहीं देख सकता। जो पदार्थ दीखता ही नहीं वह दर्पण और जलादि में कैसे दीखेगा ? गहरा वा छिदरा साकार वस्तु दीखता है, निराकार नहीं। (नवीन) तो फिर जो यह ऊपर नीला सा दीखता है, वही आदर्शवाले में भान होता है, वह क्या

पदार्थ है ? (सिद्धान्ती) वह पृथिवी से उड़ कर जल, पृथिवी और अग्नि के त्रसरेणु हैं। जहां से वर्षा होती है वहां जल न हो तो वर्षा कहां से होवे ? इसलिये जो दूर २ तम्बू के समान दीखता है, वह जल का चक्र है। जैसे कुहिर दूर से घनाकार दीखता है और निकट से छिदरा और डेरे के समान भी दीखता है वैसा आकाश में जल दीखता है। (नवीन) क्या हमारे रज्जू, सर्प और स्वप्नादि के दृष्टान्त मिथ्या हैं ? (सिद्धान्ती) नहीं, तुम्हारी समझ मिथ्या है, सो हमने पूर्व लिख दिया। भला यह तो कहो कि प्रथम अज्ञान किसको होता है ? (नवीन) ब्रह्म को। (सिद्धान्ती) ब्रह्म अल्पज्ञ है वा सर्वज्ञ ? (नवीन) न सर्वज्ञ और न अल्पज्ञ। क्योंकि सर्वज्ञता और अल्पज्ञता उपाधिसहित में होती है। (सिद्धान्ती) उपाधि से सहित कौन है ? (नवीन) ब्रह्म। (सिद्धान्ती) तो ब्रह्म ही सर्वज्ञ और अल्पज्ञ हुआ। तो तुमने सर्वज्ञ और अल्पज्ञ का निषेध क्यों किया था ? जो कहो कि उपाधि कल्पित अर्थात् मिथ्या है तो कल्पक अर्थात् कल्पना करने वाला कौन है ? (नवीन) जीव ब्रह्म है वा अन्य ? (सिद्धान्ती) अन्य है, क्योंकि जो ब्रह्मस्वरूप है तो जिसने मिथ्या कल्पना की वह ब्रह्म ही नहीं हो सकता। जिसकी कल्पना मिथ्या है वह सच्चा कब हो सकता है ? (नवीन) हम सत्य और असत्य को झूठ मानते हैं और वाणी से बोलना भी मिथ्या है। (सिद्धान्ती) जब तुम झूठ कहने और मानने वाले हो तो झूठे क्यों नहीं ? (नवीन) रहो, झूठ और सच हमारे ही में कल्पित है और हम दोनों के साक्षी अधिष्ठान हैं। (सिद्धान्ती) जब तुम सत्य और झूठे के आधार हुए तो साहूकार और चोर के सदृश तुम्हीं हुए। इससे तुम प्रामाणिक भी नहीं रहे क्योंकि प्रामाणिक वह होता है जो सर्वदा सत्य माने, सत्य बोले, सत्य करे, झूठ न माने, झूठ न बोले और झूठ कदाचित् न करे। जब तुम अपनी बात को आप ही झूठ करते हो तो तुम अपने आप मिथ्यावादी हो। (नवीन) अनादि माया जो कि ब्रह्म के आश्रय और ब्रह्म ही का आवरण करती है उसको मानते हो वा नहीं ? (सिद्धान्ती) नहीं मानते, क्योंकि तुम माया का अर्थ ऐसा करते हो कि जो वस्तु न हो और भासे है तो इस बात को वह मानेगा जिसके हृदय की

आंख फूट गई हो। क्योंकि जो वस्तु नहीं उसका भासमान होना सर्वथा असंभव है जैसा बन्ध्या के पुत्र का प्रतिविम्ब कभी नहीं हो सकता। और यह "सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः" इत्यादि छान्दोग्य उपनिषदों के वचनों से विरुद्ध कहते हो ? (नवीन) क्या तुम वसिष्ठ, शङ्कराचार्य आदि और निश्चलदास पर्य्यन्त जो तुमसे अधिक पण्डित हुए हैं उन्होंने लिखा है उसको खण्डन करते हो ? हमको तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास आदि अधिक दीखते हैं ! (सिद्धान्ती) तुम विद्वान् हो वा अविद्वान् ? (नवीन) हम भी कुछ विद्वान् हैं (सिद्धान्ती) अच्छा तो वसिष्ठ, शङ्कराचार्य और निश्चलदास के पक्ष का हमारे सामने स्थापन करो, हम खण्डन करते हैं। जिसका पक्ष सिद्ध हो वही बड़ा है। जो उनकी और तुम्हारी बात अखण्डनीय होती तो तुम उनकी युक्तियां लेकर हमारी बात को खण्डन क्यों न कर सकते ? तब तुम्हारी और उनकी बात माननीय होवे। अनुमान है कि शङ्कराचार्य आदि ने तो जैनियों के मत के खण्डन करने ही के लिये यह मत स्वीकार किया हो क्योंकि देश काल के अनुकूल अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिये बहुतसे स्वार्थी विद्वान् अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध भी कर लेते हैं। और जो इन बातों को अर्थात् जीव ईश्वर की एकता जगत् मिथ्या आदि व्यवहार सच्चा नहीं मानते थे; तो उनकी बात सच्ची नहीं हो सकती। और निश्चलदास का पाण्डित्य देखो ऐसा है "जीवो ब्रह्माऽभिन्नश्चेतनत्वात्" उन्होंने "वृत्तिप्रभाकर" में जीव ब्रह्म की एकता के लिये अनुमान लिखा है कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है। यह बहुत कम समझ पुरुष [की बात] के सदृश बात है। क्योंकि साधर्म्यमात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि "पृथिवी जलाऽभिन्ना जडत्वात्" जड़ के होने से पृथिवी जल से अभिन्न है। जैसा यह वाक्य सङ्गत कभी नहीं हो सकता वैसे निश्चलदासजी का भी लक्षण व्यर्थ है। क्योंकि जो अल्प, अल्पज्ञता और भ्रान्तिमत्वादि धर्म्म जीव में ब्रह्म से और सर्वगत सर्वज्ञता और निर्भ्रान्तित्वादि वैधर्म्य ब्रह्म में जीव से विरुद्ध है इससे ब्रह्म और जीव भिन्न २ हैं। जैसे गन्धवत्व कठिनत्व आदि भूमि के धर्म रसवत्व द्रवत्वादि जल के धर्म से विरुद्ध होने से पृथिवी और

जल एक नहीं । वैसे जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म एक न कभी थे, न हैं और न कभी होंगे । इतने ही से निश्चलदासादि को समझ लीजिये कि उनमें कितना पाण्डित्य था और जिसने योगवासिष्ठ बनाया है वह कोई आधुनिक वेदान्ती था, न वाल्मीकि, वसिष्ठ और रामचन्द्र का बनाया वा कहा सुना है । क्योंकि वे सब वेदानुयायी थे वेद से विरुद्ध न बना सकते और न कह सुन सकते थे । (प्रश्न) व्यासजी ने जो शारीरिक सूत्र बनाये हैं उन में भी जीव ब्रह्म की एकता दीखती है देखो—

सम्पद्याऽऽविर्भावः स्वेन शब्दात् ॥ १ ॥
ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ॥ २ ॥
चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ॥ ३ ॥
एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ॥ ४ ॥
अत एव चानन्याधिपतिः ॥ ५ ॥
[वेदान्तद० अ० ४ । पा० ४ । सू० १ । ५—७ । ६]

अर्थात् जीव अपने स्वरूप को प्राप्त होकर प्रकट होता है जो कि पूर्व ब्रह्मस्वरूप था क्योंकि स्व शब्द से अपने ब्रह्मस्वरूप का ग्रहण होता है ॥ १ ॥ "अयमात्मा अपहतपाप्मा" । इत्यादि उपन्यास ऐश्वर्य प्राप्ति पर्य्यन्त हेतुओं से ब्रह्मस्वरूप से जीव स्थित होता है ऐसा जैमिनि आचार्य्य का मत है ॥ २ ॥ और औडुलोमि आचार्य्य तदात्मकस्वरूप निरूपणादि बृहदारण्यक के हेतुरूप के वचनों से चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव मुक्ति में स्थित रहता है ॥ ३ ॥ व्यासजी इन्हीं पूर्वोक्त उपन्यासादि ऐश्वर्यप्राप्तिरूप हेतुओं से जीव का ब्रह्मस्वरूप होने में अविरोध मानते हैं ॥ ४ ॥ योगी ऐश्वर्यसहित अपने ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होकर अन्य अधिपति से रहित अर्थात् स्वयं आप अपना और सबका अधिपतिरूप ब्रह्मस्वरूप से मुक्ति में स्थित रहता है ॥ ५ ॥ (उत्तर) इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार का नहीं किन्तु इनका यथार्थ अर्थ यह है सुनिये ! जबतक जीव अपने स्वकीय शुद्धस्वरूप को प्राप्त सब मलों से रहित होकर पवित्र नहीं होता तबतक योग से ऐश्वर्य को प्राप्त होकर अपने अन्तर्यामि ब्रह्म

को प्राप्त होके आनन्द में स्थित नहीं हो सकता ॥ १ ॥ इसी प्रकार जब पापादि रहित ऐश्वर्ययुक्त योगी होता है तभी ब्रह्म के साथ मुक्ति के आनन्द को भोग सकता है। ऐसा जैमिनि आचार्य का मत है ॥ २ ॥ जब अविद्यादि दोषों से छूट शुद्ध चैतन्यमात्र स्वरूप से जीव स्थिर होता है तभी "तदात्मकत्व" अर्थात् ब्रह्मस्वरूप के साथ सम्बन्ध को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ जब ब्रह्म के साथ ऐश्वर्य और शुद्ध विज्ञान को जीते ही जीवन्मुक्त होता है तब अपने निर्मल पूर्व स्वरूप को प्राप्त होकर आनन्दित होता है ऐसा व्यासमुनिजी का मत है ॥ ४ ॥ जब योगी का सत्य सङ्कल्प होता है तब स्वयं परमेश्वर को प्राप्त होकर मुक्ति-सुख को पाता है। वहां स्वाधीन स्वतन्त्र रहता है। जैसा संसार में एक प्रधान दूसरा अप्रधान होता है वैसा मुक्ति में नहीं। किन्तु सब मुक्त जीव एक से रहते हैं ॥ ५ ॥ जो ऐसा न हो तो—

नेतरोऽनुपपत्तेः ॥ [१ । १ । १६] १ ॥
भेदव्यपदेशाच्च ॥ [१ । १ । १७] २ ॥
विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यां च नेतरौ ॥ [१ । १ । २२] ३ ॥
अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति ॥ [१ । १ । १९] ४ ॥
अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् ॥ [१ । १ । २०] ५ ॥
भेदव्यपदेशाच्चान्यः ॥ [१ । १ । २१] ६ ॥
गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥ [१ । २ । ११] ७ ॥
अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ॥ [१ । २ । ३] ८ ॥
अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ॥ [१ । २ । १८] ९ ॥
शारीरश्चोऽभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते ॥ [१ । २ । २०] १० ॥
व्यासमुनिकृतवेदान्तसूत्राणि ॥

अर्थ—ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्त्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इससे जीव ब्रह्म नहीं ॥ १ ॥ "रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति" यह उपनिषद् का वचन है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो

स्य अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होनेवाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता। इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं ॥ २ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ मुण्डकोपनिषदि [मुं० २। खं० १। मं० २]

दिव्य, शुद्ध, मूर्त्तिमत्त्वरहित, सब में पूर्ण, बाहर भीतर निरन्तर व्यापक, अज, जन्म मरण शरीरधारणादि रहित, श्वास, प्रश्वास, शरीर और मन के सम्बन्ध से रहित, प्रकाशस्वरूप इत्यादि परमात्मा के विशेषण और अक्षर नाशरहित प्रकृति से परे अर्थात् सूक्ष्म जीव उससे भी परमेश्वर परे अर्थात् ब्रह्म सूक्ष्म है। प्रकृति और जीवों से ब्रह्म का भेद प्रतिपादनरूप हेतुओं से प्रकृति और जीवों से ब्रह्म भिन्न है ॥ ३ ॥ इसी सर्वव्यापक ब्रह्म में जीव का योग वा जीव में ब्रह्म का योग प्रतिपादन करने से जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि योग भिन्न पदार्थों का हुआ करता है ॥ ४ ॥ इस ब्रह्म के अन्तर्यामि आदि धर्म कथन किये हैं और जीव के भीतर व्यापक होने से व्याप्य जीव व्यापक ब्रह्म से भिन्न है क्योंकि व्याप्यव्यापक सम्बन्ध भी भेद में संघटित होता है ॥ ५ ॥ जैसे परमात्मा जीव से भिन्नस्वरूप है वैसे इन्द्रिय, अन्तःकरण, पृथिवी आदि भूत, दिशा, वायु, सूर्यादि दिव्यगुणों के योग से देवतावाच्य विद्वानों से भी परमात्मा भिन्न है ॥ ६ ॥ "गुहां प्रविष्टौ सुकृतस्य लोके" इत्यादि उपनिषदों के वचनों से जीव और परमात्मा भिन्न हैं। वैसा ही उपनिषदों में बहुत ठिकाने दिखलाया है ॥ ७ ॥ "शरीरे भवः शारीरः" शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव जीव में नहीं घटते ॥ ८ ॥ (अधिदैव) सब दिव्य मन आदि इन्द्रियादि पदार्थों (अधिभूत) पृथिव्यादि भूत (अध्यात्म) सब जीवों में परमात्मा अन्तर्यामीरूप से स्थित है क्योंकि उसी परमात्मा के व्यापकत्वादि धर्म सर्वत्र उपनिषदों में व्याख्यात हैं ॥ ९ ॥ शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं है क्योंकि ब्रह्म से जीव का भेद स्वरूप से सिद्ध है ॥ १० ॥ इत्यादि शारीरिक सूत्रों से भी स्वरूप से ही ब्रह्म और जीव का भेद सिद्ध है।

वैसे ही वेदान्तियों का उपक्रम और उपसंहार भी नहीं घट सकता क्योंकि "उपक्रम" अर्थात् आरम्भ ब्रह्म से और "उपसंहार" अर्थात् प्रलय भी ब्रह्म ही में करते हैं। जब दूसरा कोई वस्तु नहीं मानते तो उत्पत्ति और प्रलय भी ब्रह्म के धर्म हो जाते हैं और उत्पत्ति विनाशरहित ब्रह्म का प्रतिपादन वेदादि सत्यशास्त्रों में किया है, वह नवीन वेदान्तियों पर कोप करेगा। क्योंकि निर्विकार, अपरिणामि, शुद्ध, सनातन, निर्भ्रान्तत्वादि विशेषणयुक्त ब्रह्म में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान आदि का संभव किसी प्रकार नहीं हो सकता। तथा उपसंहार (प्रलय) के होने पर भी ब्रह्म कारणात्मक जड़ और जीव बराबर बने रहते हैं। इसलिये उपक्रम और उपसंहार भी इन वेदान्तियों की कल्पना झूठी है। ऐसी अन्य बहुतसी अशुद्ध बातें हैं कि जो शास्त्र और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हैं॥

इसके पश्चात् कुछ जैनियों और कुछ शङ्कराचार्य्य के अनुयायी लोगों के उपदेश के संस्कार आर्यावर्त्त में फैले थे और आपस में खण्डन मण्डन भी चलता था। शङ्कराचार्य के तीनसौ वर्ष के पश्चात् उज्जैन नगरी में विक्रमादित्य राजा कुछ प्रतापी हुआ, जिसने सब राजाओं के मध्य प्रवृत्त हुई लड़ाई को मिटाकर शान्ति स्थापन की। तत्पश्चात् भर्तृहरि राजा काव्यादि शास्त्र और अन्य में भी २ विद्वान् हुआ। उसने वैराग्यवान् होकर राज्य को छोड़ दिया। विक्रमादित्य के पांचसौ वर्ष के पश्चात् राजा भोज हुआ। उसने थोड़ासा व्याकरण और काव्यालङ्कारादि का इतना प्रचार किया कि जिसके राज्य में कालिदास बकरी चरानेवाला भी रघुवंश काव्य का कर्त्ता हुआ। राजा भोज के पास जो कोई अच्छा श्लोक बनाकर लेजाता था उसको बहुतसा धन देते थे और प्रतिष्ठा होती थी। उसके पश्चात् राजाओं और श्रीमानों ने पढ़ना ही छोड़ दिया। यद्यपि शङ्कराचार्य के पूर्व वाममार्गियों के पश्चात् शैव आदि सम्प्रदायस्थ मतवादी भी हुए थे परन्तु उनका बहुत बल नहीं हुआ था महाराजा विक्रमादित्य से लेके शैवों का बल बढ़ता आया। शैवों में पाशुपतादि बहुत सी शाखा हुई थीं, जैसी वाममार्गियों में दश महाविद्यादि की शाखा हैं। लोगों ने शङ्कराचार्य

को शिव का अवतार ठहराया। उनके अनुयायी संन्यासी भी शैवमत में प्रवृत्त होगये और वाममार्गियों को भी मिलाते रहे। वाममार्गी, देवी जो शिवजी की पत्नी है, उसके उपासक और शैव महादेव के उपासक हुए ये दोनों रुद्राक्ष और भस्म अद्यावधि धारण करते हैं परन्तु जितने वाममार्गी वेदविरोधी हैं वैसे शैव नहीं हैं।

धिक् धिक् कपालं भस्मरुद्राक्षविहीनम् ॥ १ ॥
रुद्राक्षान् कण्ठदेशे दशनपरिमितान्मस्तके विंशती द्वे,
षट् षट् कर्णप्रदेशे करयुगलगतान् द्वादशान्द्वादशैव।
बाह्वोरिन्दोः कलाभिः पृथगिति गदितमेकमेवं शिखायाम्,
वक्षस्यष्टाऽधिकं यः कलयति शतकं स स्वयं नीलकण्ठः ॥ २ ॥

इत्यादि बहुत प्रकार के श्लोक [इन लोगों ने] बनाये और कहने लगे कि जिसके कपाल में भस्म और कण्ठ में रुद्राक्ष नहीं है उसको धिक्कार है। "तं त्यजेदन्त्यजं यथा" उसको चांडाल के तुल्य त्याग करना चाहिये ॥ १ ॥ जो कण्ठ में ३२, शिर में ४०, छः छः कानों में, बारह २ करों में, सोलह २ भुजाओं म, १ शिखा में और हृदय में १०८ रुद्राक्ष धारण करता है वह साक्षात् महादेव के सदृश है ॥ २ ॥ ऐसा ही शाक्त भी मानते हैं पश्चात् इन वाममार्गी और शैवों ने सम्मति करके भग लिंग का स्थापन किया, जिसको जलाधारी और लिङ्ग कहते हैं और उसकी पूजा करने लगे। उन निर्लज्जों को तनिक भी लज्जा न आई कि यह पामरपन का काम हम क्यों करते हैं? किसी कवि ने कहा है कि "स्वार्थी दोषं न पश्यति" स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ सिद्धि करने में दुष्ट कामों को भी श्रेष्ठ मान दोष को नहीं देखते हैं। उसी पाषाणादि मूर्त्ति और भग लिङ्ग की पूजा में सारे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि सिद्धियां मानने लगे। जब राजा भोज के पश्चात् जैनी लोग अपने मन्दिरों में मूर्त्तिस्थापन करने और दर्शन, स्पर्शन को आने जाने लगे तब तो इन पोपों के चेले भी जैन-मन्दिर में जाने आने लगे और उधर पश्चिम में कुछ दूसरों के मत और यवन लोग भी आर्य्यावर्त्त में आने जाने लगे। तब पोपों ने यह श्लोक बनाया—

न वदेद्यावनीं भाषां प्राणैः कण्ठगतैरपि ।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम् ।

चाहे कितना ही दुःख प्राप्त हो और प्राण कण्ठगत अर्थात् मृत्यु का समय भी क्यों न आया हो तो भी यावनी अर्थात् म्लेच्छभाषा मुख से न बोलनी और उन्मत्त हस्ती मारने को क्यों न दौड़ा आता हो और जैन के मन्दिर में जाने से प्राण बचता हो तो भी जैनमन्दिर में प्रवेश न करे किन्तु जैनमन्दिर में प्रवेश कर बचने से हाथी के सामने जाकर मरजाना अच्छा है। ऐसे २ अपने चेलों को उपदेश करने लगे। जब उनसे कोई प्रमाण पूछता था कि तुम्हारे मत में किसी माननीय ग्रन्थ का भी प्रमाण है? तो कहते थे कि हां है। जब वे पूछते थे कि दिखलाओ? तब मार्कण्डेय पुराणादि के वचन पढ़ते और सुनाते थे जैसा कि दुर्गापाठ में देवी का वर्णन लिखा है। राजा भोज के राज्य में व्यासजी के नाम से मार्कण्डेय और शिवपुराण किसी ने बनाकर खड़ा किया था उसका समाचार राजा भोज को विदित होने से उन पण्डितों को हस्तच्छेदनादि दण्ड दिया और उनसे कहा कि जो कोई काव्यादि ग्रन्थ बनावे तो अपने नाम से बनावे, ऋषि मुनियों के नाम से नहीं। यह बात राजा भोज के बनाये संजीवनी नामक इतिहास में लिखी है कि जो ग्वालियर के राज्य "भिंड" नामक नगर के तिवाड़ी ब्राह्मणों के घर में है। जिसको लखुना के रावसाहब और उनके गुमाश्ते रामदयाल चौबेजी ने अपनी आंख से देखा है। उसमें स्पष्ट लिखा है कि व्यासजी ने चार सहस्र चारसौ और उनके शिष्यों ने पांच सहस्र छःसौ श्लोकयुक्त अर्थात् सब दश सहस्र श्लोकों के प्रमाण भारत बनाया था। वह महाराजा विक्रमादित्य के समय में बीस सहस्र, महाराजा भोज कहते हैं कि मेरे पिताजी के समय में पचीस और अब मेरी आधी उमर में तीस सहस्र श्लोकयुक्त महाभारत का पुस्तक मिलता है। जो ऐसे ही बढ़ता चला तो महाभारत का पुस्तक एक ऊंट का बोझा होजायगा। और ऋषि मुनियों के नाम से पुराणादि ग्रंथ बनावेंगे तो आर्यावर्त्तीय लोग भ्रमजाल में पड़ के वैदिकधर्मविहीन होके भ्रष्ट हो जायंगे। इससे विदित होता है कि राजा

भोज को कुछ २ वेदों का संस्कार था । इनके भोजप्रबन्ध में लिखा है कि—

घट्यैकया क्रोशदशैकमश्वः सुकृत्रिमो गच्छति चारुगत्या ।
वायुं ददाति व्यजनं सुपुष्कलं विना मनुष्येण चलत्यजस्रम् ॥

राजा भोज के राज्य में और समीप ऐसे २ शिल्पी लोग थे कि जिन्हों ने घोड़े के आकार एक यान यन्त्रकलायुक्त बनाया था कि जो एक कच्ची घड़ी में ग्यारह कोश और एक घन्टे में साढ़े सत्ताईस कोश जाता था । वह भूमि और अन्तरिक्ष में भी चलता था । और दूसरा पंखा ऐसा बनाया था कि बिना मनुष्य के चलाये कलायन्त्र के बल से नित्य चला करता और पुष्कल वायु देता था । जो ये दोनों पदार्थ आज तक बने रहते तो यूरोपियन इतने अभिमान में न चढ़ जाते । जब पोपजी अपने चेलों को जैनियों से रोकने लगे तो भी मन्दिरों में जाने से न रुक सके और जैनियों की कथा में भी लोग जाने लगे । जैनियों के पोप इन पुराणियों के पोपों के चेलों को बहकाने लगे । तब पुराणियों ने विचारा कि इसका कोई उपाय करना चाहिये, नहीं तो अपने चेले जैनी होजायंगे । पश्चात् पोपों ने यही सम्मति की कि जैनियों के सदृश अपने भी अवतार, मंदिर, मूर्त्ति और कथा के पुस्तक बनावें । इन लोगों ने जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों के सदृश चौबीस अवतार, मन्दिर और मूर्त्तियां बनाईं । और जैसे जैनियों के आदि और उत्तर पुराणादि हैं वैसे अठारह पुराण बनाने लगे । राजा भोज के डेढ़सौ वर्ष के पश्चात् वैष्णवमत का आरम्भ हुआ । एक शठकोप नामक कंजरवर्ण में उत्पन्न हुआ था उससे थोड़ासा चला उसके पश्चात् मुनिवाहन भंगी कुलोत्पन्न और तीसरा यावनाचार्य्य यवनकुलोत्पन्न आचार्य्य हुआ । तत्पश्चात् ब्राह्मण कुलज चौथा रामानुज हुआ उसने अपना मत फैलाया । शैवों ने शिवपुराणादि, शाक्तों ने देवीभागवतादि, वैष्णवों ने विष्णुपुराणादि बनाये । उनमें अपना नाम इसलिये नहीं धरा कि हमारे नाम से बनेंगे तो कोई प्रमाण न करेगा । इसलिये व्यास आदि ऋषि मुनियों के नाम धरके पुराण बनाये । नाम भी इनका वास्तव में नवीन रखना चाहिये था परन्तु जैसे कोई दरिद्र अपने बेटे का नाम महाराजाधिराज और आधुनिक

पदार्थ का नाम सनातन रख दे तो क्या आश्चर्य है ? अब इनके आपस के जैसे झगड़े हैं वैसे ही पुराणों में भी धरे हैं।

देखो ! देवीभागवत में "श्री" नामा एक देवी स्त्री जो श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है उसीने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा विष्णु महादेव को भी उसीने रचा । जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा । उससे हाथ में एक छाला हुआ । उसमें से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई उससे देवी ने कहा कि तू मुझ से विवाह कर । ब्रह्मा ने कहा कि तू मेरी माता लगती है । मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता । ऐसा सुनकर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया । और फिर हाथ घिस के उसी प्रकार दूसरा लड़का उत्पन्न किया । उसका नाम विष्णु रक्खा । उससे भी उसी प्रकार कहा । उसने न माना तो उसको भी भस्म कर दिया । पुनः उसी प्रकार तीसरे लड़के को उत्पन्न किया । उसका नाम महादेव रक्खा और उससे कहा कि तू मुझ से विवाह कर । महादेव बोला कि मैं तुझ से विवाह नहीं कर सकता । तू दूसरा स्त्री का शरीर धारण कर । वैसा ही देवी ने किया । तब महादेव बोला कि यह दो ठिकाने राखसी क्या पड़ी है ? देवी ने कहा कि ये दोनों तेरे भाई हैं । इन्होंने मेरी आज्ञा न मानी इसलिये भस्म कर दिये । महादेव ने कहा कि मैं अकेला क्या करूंगा ? इनको जिलादे और दो स्त्री और उत्पन्न कर । तीनों का विवाह तीनों से होगा । ऐसा ही देवी ने किया । फिर तीनों का तीनों के साथ विवाह हुआ । वाहरे ! माता से विवाह न किया और बहिन से कर लिया ! क्या इसको उचित समझना चाहिये ? पश्चात् इन्द्रादि को उत्पन्न किया । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और इन्द्र इनको पालकी के उठानेवाले कहार बनाया, इत्यादि गपोड़े लम्बे चौड़े मनमाने लिखे हैं । कोई उन से पूछे कि उस देवी का शरीर और उस श्रीपुर का बनानेवाला और देवी के पिता माता कौन थे ? जो कहो कि देवी अनादि है तो जो संयोगजन्य वस्तु है वह अनादि कभी नहीं हो सकता । जो माता पुत्र के विवाह करने में डरे तो भाई बहिन के विवाह में कौनसी अच्छी बात निकलती है ? जैसी इस देवीभागवत में महादेव, विष्णु

और ब्रह्मादि की क्षुद्रता और देवी की बड़ाई लिखी है इसी प्रकार शिवपुराण में देवी आदि की बहुत क्षुद्रता लिखी है। अर्थात् ये सब महादेव के दास और महादेव सब का ईश्वर है। जो रुद्राक्ष अर्थात् एक वृक्ष के फल की गोठली और राख धारण करने से मुक्ति मानते हैं तो राख में लोटनेहारे गदहा आदि पशु और घुंघुची आदि के धारण करनेवाले भील कंजर आदि मुक्ति को जावें और सुअर, कुत्ते, गधा आदि राख में लोटनेवालों की मुक्ति क्यों नहीं होती ? (प्रश्न) कालाग्निरुद्रोपनिषद् में भस्म लगाने का विधान लिखा है। वह क्या झूठा है ? और 'त्र्यायुषं जमदग्ने०" यजुर्वेदवचन। इत्यादि वेदमन्त्रों से भी भस्म धारण का विधान और पुराणों में रुद्र की आंख के अश्रुपात से जो वृक्ष हुआ उसी का नाम रुद्राक्ष है। इसीलिये उसके धारण में पुण्य लिखा है। एक भी रुद्राक्ष धारण करे तो सब पापों से छूट स्वर्ग को जाय। यमराज और नरक का डर न रहे (उत्तर) कालाग्निरुद्रोपनिषद् किसी रखोड़िया मनुष्य अर्थात् राख धारण करनेवाले ने बनाई है क्योंकि "यस्य प्रथमा रेखा सा भूर्लोकः" इत्यादि वचन [उस में] अनर्थक हैं। जो प्रतिदिन हाथ से बनाई रेखा है वह भूलोक वा इसका वाचक कैसे हो सकते हैं ? और जो "त्र्यायुषं जमदग्नेः" इत्यादि मन्त्र हैं, वे भस्म वा त्रिपुंड् धारण के वाची नहीं किन्तु "चक्षुर्वै जमदग्निः" शतपथ। हे परमेश्वर ! मेरे नेत्र की ज्योति (त्र्यायुषम्) तिगुणा अर्थात् तीनसौ वर्षपर्यन्त रहे और मैं भी ऐसे धर्म के काम करूं कि जिससे दृष्टि नाश न हो। भला यह कितनी बड़ी मूर्खता की बात है कि आंख के अश्रुपात से भी वृक्ष उत्पन्न हो सकता है ? क्या परमेश्वर के सृष्टिक्रम को कोई अन्यथा कर सकता है ? जैसा जिस वृक्ष का बीज परमात्मा ने रचा है उसी से वह वृक्ष उत्पन्न हो सकता है, अन्यथा नहीं। इससे जितना रुद्राक्ष, भस्म, तुलसी, कमलाक्ष, घास, चन्दन आदि को कण्ठ में धारण करना है वह सब जंगली पशुवत् मनुष्य का काम है। ऐसे वाममार्गी और शैव बहुत मिथ्याचारी, विरोधी और कर्त्तव्य कर्म के त्यागी होते हैं। उनमें जो कोई श्रेष्ठ पुरुष है वह इन बातों का विश्वास न करके अच्छे कर्म करता है। जो रुद्राक्ष भस्म धारण से यमराज के दूत डरते हैं तो पुलिस के सिपाही भी डरते होंगे। जब

रुद्राक्ष भस्म धारण करनेवालों से कुत्ता, सिंह, सर्प्प, बिच्छू, मक्खी और मच्छर आदि भी नहीं डरते तो न्यायाधीश के गण क्यों डरेंगे ? (प्रश्न) वाममार्गी और शैव तो अच्छे नहीं परन्तु वैष्णव तो अच्छे हैं ? (उत्तर) यह भी वेदविरोधी होने से उनसे भी अधिक बुरे हैं (प्रश्न) "नमस्ते रुद्र मन्यवे"। "वैष्णवमसि"। "वामनाय च"। "गणानांत्वा गणपतिꣳ हवामहे"। "भगवती भूयाः"। "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च"। इत्यादि वेदप्रमाणों से शैवादि मत सिद्ध होते हैं, पुनः क्यों खण्डन करते हो ? (उत्तर) इन वचनों से शैवादि संप्रदाय सिद्ध नहीं होते क्योंकि "रुद्र" परमेश्वर, प्राणादि वायु, जीव, अग्नि आदि का नाम है। जो क्रोधकर्त्ता रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलानेवाले परमात्मा को नमस्कार करना, प्राण और जाठराग्नि को अन्न देना, (नम इति अन्ननाम–निघं० २। ७), जो मंगलकारी सब संसार का अत्यन्त कल्याण करनेवाला है उस परमात्मा को नमस्कार करना चाहिये। "शिवस्य परमेश्वरस्यायं भक्तः शैवः"। "विष्णोः परमात्मनोऽयं भक्तो वैष्णवः"। "गणपतेः सकलजगत्स्वामिनोऽयं सेवको गाणपतः"। "भगवत्या वाण्या अयं सेवकः भागवतः"। "सूर्यस्य चराचरात्मनोऽयं सेवकः सौरः" ये सब रुद्र, शिव, विष्णु, गणपति, सूर्यादि परमेश्वर के और भगवती सत्यभाषणयुक्त वाणी का नाम है। इसमें विना समझे ऐसा झगड़ा मचाया है जैसे—

एक किसी वैरागी के दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरु के पग दाबा करते थे। एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करनी बांट ली थी। एक दिन ऐसा हुआ कि एक चेला कहीं बजार हाट को चला गया और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरुजी ने करवट फेरा तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले दंडा पग पर धर मारा ! गुरु ने कहा कि अरे दुष्ट ! तू ने यह क्या किया ? चेला बोला कि मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ? इतने में दूसरा चेला, जो कि बजार हाट को गया था, आ पहुंचा। वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। बोला कि गुरुजी यह मेरे सेव्य पग में

क्या हुआ ? गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला न चाला। चुपचाप दण्डा उठा के बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा। तो गुरु ने उच्चस्वर से पुकार मचाई। तब दोनों चेले दण्डा लेके पड़े और गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुन कर आये। कहने लगे कि साधुजी क्या हुआ ? इनमें से किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुड़ा के पश्चात् इन मूर्ख चेलों को उपदेश किया, कि देखो ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। इन दोनों की सेवा करने से उसी को सुख पहुंचता और दुःख देने से भी उसी एक को दुःख होता है।

जैसे एक गुरु की सेवामें चेलाओं ने लीला की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप परमात्मा के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं, इन नामों का अर्थ जैसा कि प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं उस सत्यार्थ को न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि संप्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण कर्म स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं। भला क्या ऐसे मूर्खों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ? अब देखिये चक्राङ्कित वैष्णवों की अद्भुत माया—

तापः पुण्ड्रं तथा नाम माला मन्त्रस्तथैव च।
। अमी हि पञ्च संस्काराः परमैकान्तहेतवः॥
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। इति श्रुतेः॥ [रामानुजपटलपद्धतौ]

अर्थात् (तापः) शंख, चक्र, गदा और पद्म के चिह्नों को अग्नि में तपा के भुजा के मूल में दाग देकर पश्चात् दुग्धयुक्त पात्र में बुझाते हैं और कोई उस दूध को पी भी लेते हैं। अब देखिये प्रत्यक्ष ही मनुष्य के मांस का भी स्वाद उसमें आता होगा। ऐसे २ कर्मों से परमेश्वर को प्राप्त होने की आशा करते हैं और कहते हैं कि विना शंख चक्रादि से शरीर तपाये जीव परमेश्वर को प्राप्त

नहीं होता क्योंकि वह (आमः) अर्थात् कच्चा है और जैसे राज्य के चपरास आदि चिह्नों के होने से राजपुरुष जान उससे सब लोग डरते हैं वैसे ही विष्णु के शंख चक्रादि आयुधों के चिह्न देखकर यमराज और उनके गण डरते हैं और कहते हैं कि—

दोहा—बाना बड़ा दयाल का, तिलक छाप और माल ।
यम डरपे कालू कहे, भय माने भूपाल ॥

अर्थात् भगवान् का बाना तिलक, छाप और माला धारण करना बड़ा है । जिससे यमराज और राजा भी डरता है (पुण्ड्रम्) त्रिशूल के सदृश ललाट में चित्र निकालना (नाम) नारायणदास विष्णुदास अर्थात् दासशब्दान्त नाम रखना (माला) कमगट्टे की रखना और पांचवां (मन्त्र) जैसेः—

ओं नमो नारायणाय ॥ १ ॥

यह इन्होंने साधारण मनुष्यों के लिये मन्त्र बना रक्खा है तथाः—

श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये ॥ श्रीमते नारायणाय नमः ॥ २ ॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥ ३ ॥

इत्यादि मन्त्र धनाढ्य और माननीयों के लिये बना रक्खे हैं । देखिये यह भी एक दुकान ठहरी ! जैसा मुख वैसा तिलक ! इन पांच संस्कारों को चक्रांकित मुक्ति के हेतु मानते हैं । इन मन्त्रों का अर्थ मैं नारायण को नमस्कार करता हूं ॥ १ ॥ और मैं लक्ष्मीयुक्त नारायण के चरणारविन्द के शरण को प्राप्त होता हूं ॥ और श्रीयुक्त नारायण को नमस्कार करता हूं अर्थात् ॥ २ ॥ जो शोभायुक्त नारायण है उसको मेरा नमस्कार होवे । जैसे वाममार्गी पांच मकार मानते हैं वैसे चक्रांकित पांच संस्कार मानते हैं और अपने शंख चक्र से दागदेने के लिये जो वेदमन्त्र का प्रमाण रक्खा है, उसका इस प्रकार का पाठ और अर्थ है—

पुवित्रं ते वितंतं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः । अतंप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत्समाशत ॥ १ ॥ तपोष्पुवित्रं वितंतं दिवस्पदे ॥ २ ॥ ऋ० मं० ६ । सू० ८३ । मन्त्र १ । २ ॥

हे ब्रह्माण्ड और वेदों के पालन करनेवाले प्रभु सर्वसामर्थ्ययुक्त सर्वशक्तिमान् आपने अपनी व्याप्ति से संसार के सब अवयवों को व्याप्त कर रक्खा है। उस आपका जो व्यापक पवित्रस्वरूप है उसको ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषण, शम, दम, योगाभ्यास, जितेन्द्रिय, सत्संगादि तपश्चर्य्या से रहित जो अपरिपक्व आत्मा अन्तःकरणयुक्त है वह उस तेरे स्वरूप को प्राप्त नहीं होता और जो पूर्वोक्त तप से शुद्ध हैं वे ही इस तप का आचरण करते हुए उस तेरे शुद्धस्वरूप को अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥ जो प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की सृष्टि में विस्तृत पवित्राचरणरूप तप करते हैं वे ही परमात्मा को प्राप्त होने में योग्य होते हैं ॥ २ ॥ अब विचार कीजिये कि रामानुजीयादि लोग इस मंत्र से "चक्रांकित" होना सिद्ध क्योंकर करते हैं ? भला कहिये वे विद्वान् थे वा अविद्वान् ? जो कहो कि विद्वान् थे तो ऐसा असम्भावित अर्थ इस मन्त्र का क्यों करते ? क्योंकि इस मन्त्र में 'अतप्ततनूः" शब्द है किन्तु "अतप्तभुजैकदेशः" [नहीं] पुनः "अतप्ततनूः" यह नख शिखाग्रपर्यन्त समुदाय अर्थ है। इस प्रमाण करके अग्नि ही से तपाना चक्राङ्कित लोग स्वीकार करें तो अपने २ शरीर को भाड़ में झोंक के सब शरीर को जलावें तो भी इस मन्त्र के अर्थ से विरुद्ध है क्योंकि इस मन्त्र में सत्यभाषणादि पवित्र कर्म करना तप लिया है ॥

ऋतं तपः सत्यं [तपः श्रुतं तपः शान्तं] तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः ॥ तैत्तिरीय० प्र० १० । अ० ८ ॥

इत्यादि तप कहाता है अर्थात् (ऋतं तपः) यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरणों में जाने से रोकना अर्थात् शरीर इन्द्रिय और मन से शुभ कर्मों का आचरण करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना पढ़ाना, वेदानुसार

आचरण करना आदि उत्तम धर्मयुक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तपा के चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता। देखो चक्रांकित लोग अपने को बड़े वैष्णव मानते हैं परन्तु अपनी परम्परा और कुकर्म की ओर ध्यान नहीं देते कि प्रथम इनका मूलपुरुष "शठकोप" हुआ कि जो चक्रांकितों ही के ग्रन्थों और भक्तमाल ग्रन्थ जो नाभा डूम ने बनाया है उनमें लिखा है—

विक्रीय शूर्पं विचचार योगी ॥

इत्यादि वचन चक्रांकितों के ग्रन्थों में लिखे हैं। शठकोप योगी सूप को बना, बेंचकर, विचरता था अर्थात् कंजर जाति में उत्पन्न हुआ था। जब उसने ब्राह्मणों से पढ़ना वा सुनना चाहा होगा तब ब्राह्मणों ने तिरस्कार किया होगा। उसने ब्राह्मणों के विरुद्ध सम्प्रदाय तिलक चक्रांकित आदि शास्त्रविरुद्ध मनमानी बातें चलाई होंगी। उसका चेला "मुनिवाहन" जो कि चाण्डाल वर्ण में उत्पन्न हुआ था। उसका चेला "यावनाचार्य" जो कि यवनकुलोत्पन्न था जिसका नाम बदल के कोई २ "यामुनाचार्य" भी कहते हैं। उनके पश्चात् "रामानुज" ब्राह्मणकुल में उत्पन्न होकर चक्रांकित हुआ। उसके पूर्व कुछ भाषा के ग्रन्थ बनाये थे। रामानुज ने कुछ संस्कृत पद्य के संस्कृत में श्लोकबद्ध ग्रन्थ और शारीरिक सूत्र और उपनिषदों की टीका शङ्कराचार्य की टीका से विरुद्ध बनाई। और शङ्कराचार्य की बहुतसी निन्दा की। जैसा शङ्कराचार्य का मत है कि अद्वैत अर्थात् जीव ब्रह्म एक ही हैं दूसरी कोई वस्तु वास्तविक नहीं, जगत् प्रपंच, सब मिथ्या मायारूप अनित्य है। इससे विरुद्ध रामानुज का जीव ब्रह्म और माया तीनों नित्य हैं यहां शंकराचार्य्य का मत ब्रह्म से अतिरिक्त जीव और कारण वस्तु का न मानना अच्छा नहीं। और रामानुज का इस अंश में, जो कि विशिष्टाद्वैत जीव और मायासहित परमेश्वर एक है यह तीन का मानना और अद्वैत का कहना सर्वथा व्यर्थ है। और सर्वथा ईश्वर के आधीन परतन्त्र जीव को मानना, कण्ठी, तिलक, माला, मूर्त्तिपूजनादि पाखण्ड मत चलाने आदि बुरी बातें चक्रांकित आदि में हैं। जैसे चक्रांकित आदि वेदविरोधी हैं वैसे शंकराचार्य्य के मत के नहीं।

(प्रश्न) मूर्त्तिपूजा कहां से चली ? (उत्तर) जैनियों से । (प्रश्न) जैनियों ने कहां से चलाई ? (उत्तर) अपनी मूर्खता से । (प्रश्न) जैनी लोग कहते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्त्ति देखके अपने जीव का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है । (उत्तर) जीव चेतन और मूर्त्ति जड़ । क्या मूर्त्ति के सदृश जीव भी जड़ होजायगा ? यह मूर्त्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है, जैनियों ने चलाई है । इसलिये इनका खण्डन १२ वें समुल्लास में करेंगे । (प्रश्न) शाक्त आदि ने मूर्त्तियों में जैनियों का अनुकरण नहीं किया है क्योंकि जैनियों की मूर्त्तियों के सदृश वैष्णवादि की मूर्त्तियां नहीं हैं । (उत्तर) हां, यह ठीक है । जो जैनियों के तुल्य बनाते तो जैनमत में मिल जाते । इसलिये जैनों की मूर्त्तियों से विरुद्ध बनाईं क्योंकि जैनों से विरोध करना इनका काम और इनसे विरोध करना मुख्य उनका काम था । जैसे जैनों ने मूर्त्तियां नंगी, ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य के समान बनाई हैं, उनसे विरुद्ध वैष्णवादि ने यथेष्ट शृङ्गारित स्त्री के सहित रंग राग भोग विषयासक्ति सहिताकार खड़ी और बैठी हुई बनाई हैं । जैनी लोग बहुत से शंख घंटा घरियार आदि बाजे नहीं बजाते । ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं तब तो ऐसी लीला के रचने से वैष्णवादि सम्प्रदायी पोपों के चेले जैनियों के जाल से बच के इनकी लीला में आ फँसे और बहुत से व्यासादि महर्षियों के नाम से मनमानी असंभव गाथा-युक्त ग्रन्थ बनाये । उनका नाम "पुराण" रखकर कथा भी सुनाने लगे । और फिर ऐसी २ विचित्र माया रचने लगे कि पाषाण की मूर्त्तियां बनाकर गुप्त कहीं पहाड़ वा जङ्गलादि में धर आये वा भूमि में गाड़दीं । पश्चात् अपने चेलों में प्रसिद्ध किया कि मुझ को रात्रि को स्वप्न में महादेव, पार्वती, राधा, कृष्ण, सीता, राम वा लक्ष्मीनारायण और भैरव, हनुमान आदि ने कहा है कि हम अमुक २ ठिकाने हैं । हम को वहां से ला, मन्दिर में स्थापना कर और तू ही हमारा पुजारी होवे तो हम मनवांछित फल देवें । जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे लोगों ने पोपजी की लीला सुनी तब तो सच ही मानली । और उनसे पूछा कि ऐसी वह मूर्त्ति कहां पर है ? तब तो पोपजी बोले कि अमुक पहाड़ वा जङ्गल में है चलो मेरे साथ दिखलादूं । तब तो वे

अन्धे उस धूर्त के साथ चलके वहां पहुंच कर देखा। आश्चर्य होकर उस पोप के पग में गिर कर कहा कि आपके ऊपर इस देवता की बड़ी ही कृपा है अब आप ले चलिये और हम मंदिर बनवा देवेंगे। उसमें इस देवता की स्थापना कर आप ही पूजा करना। और हम लोग भी इस प्रतापी देवता के दर्शन पर्सन करके मनोवांछित फल पावेंगे। इसी प्रकार जब एक ने लीला रची तब तो उसको देख सब पोप लोगों ने अपनी जीविकार्थ छल कपट से मूर्त्तियां स्थापन कीं। (प्रश्न) परमेश्वर निराकार है, वह ध्यान में नहीं आसकता, इसलिये अवश्य मूर्त्ति होनी चाहिये। भला जो कुछ भी नहीं करे तो मूर्ति के सम्मुख जा, हाथ जोड़ परमेश्वर का स्मरण करते और नाम लेते हैं। इसमें क्या हानि है ? (उत्तर) जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उसकी मूर्त्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्त्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्भुत रचना की है क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्त्तियां कि जिन पहाड़ आदि से मनुष्यकृत मूर्त्तियां बनती हैं उनको देखकर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता ? जो तुम कहते हो कि मूर्त्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है। और जब वह मूर्त्ति सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है। क्योंकि वह जानता है कि इस समय यहां मुझे कोई नहीं देखता। इसलिये वह अनर्थ करे विना नहीं चूकता। इत्यादि अनेक दोष पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं। अब देखिये ! जो पाषाणादि मूर्त्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को सब के बुरे भले कर्मों का द्रष्टा जानकर एक क्षणमात्र भी परमात्मा से अपने को पृथक् न जान के, कुकर्म करना तो कहां रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा काम करूंगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से विना दण्ड पाये

कदापि न बचूंगा । और नामस्मरणमात्र से कुछ भी फल नहीं होता । जैसा कि मिशरी २ कहने से मुंह मीठा और नींब २ कहने से कड़वा नहीं होता किन्तु जीभ से चाखने ही से मीठा वा कड़ुवापन जाना जाता है। (प्रश्न) क्या नाम लेना सर्वथा मिथ्या है जो सर्वत्र पुराणों में नामस्मरण का बड़ा माहात्म्य लिखा है ? (उत्तर) नाम लेने की तुम्हारी रीति उत्तम नहीं । जिस प्रकार तुम नामस्मरण करते हो वह रीति झूठी है । (प्रश्न) हमारी कैसी रीति है ? (उत्तर) वेदविरुद्ध । (प्रश्न) भला अब आप हमको वेदोक्त नामस्मरण की रीति बतलाइये ? (उत्तर) नामस्मरण इस प्रकार करना चाहिये । जैसे "न्यायकारी" ईश्वर का एक नाम है इस नाम से इसका अर्थ है कि जैसे पक्षपात रहित होकर परमात्मा सबका यथावत् न्याय करता है वैसे उसको ग्रहण कर न्याययुक्त व्यवहार सर्वदा करना, अन्याय कभी न करना । इस प्रकार एक नाम से भी मनुष्य का कल्याण हो सकता है ।

(प्रश्न) हम भी जानते हैं कि परमेश्वर निराकार है परन्तु उसने शिव, विष्णु, गणेश, सूर्य्य और देवी आदि के शरीर धारण करके राम, कृष्णादि अवतार लिये । इससे उसकी मूर्त्ति बनती है । क्या यह भी बात झूठी है ? (उत्तर) हां २ झूठी । क्योंकि "अज एकपात्" "अकायम्" इत्यादि विशेषणों से परमेश्वर को जन्म मरण और शरीरधारणरहित वेदों में कहा है तथा युक्ति से भी परमेश्वर का अवतार कभी नहीं हो सकता । क्योंकि जो आकाशवत् सर्वत्र व्यापक, अनन्त और सुख, दुःख, दृश्यादि गुणरहित है वह एक छोटे से वीर्य्य, गर्भाशय और शरीर में क्योंकर आसकता है ? आता जाता वह है कि जो एकदेशीय हो । और जो अचल, अदृश्य, जिसके विना एक परमाणु भी खाली नहीं है, उसका अवतार कहना जानो बन्ध्या के पुत्र का विवाह कर उसके पौत्र के दर्शन करने की बात कहना है । (प्रश्न) जब परमेश्वर व्यापक है तो मूर्त्ति में भी है । पुनः चाहे किसी पदार्थ में भावना करके पूजा करना अच्छा क्यों नहीं ? देखो—

न काष्ठे विद्यते देवो न पाषाणे न मृण्मये ।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥

परमेश्वर देव न काष्ठ, न पाषाण, न मृत्तिका से बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है। जहां भाव करें वहां ही परमेश्वर सिद्ध होता है। (उत्तर) जब परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है तो किसी एक वस्तु में परमेश्वर की भावना करना अन्यत्र न करना यह ऐसी बात है कि जैसी चक्रवर्ती राजा को सब राज्य की सत्ता से छुड़ा के एक छोटीसी झोंपड़ी का स्वामी मानना [देखो ! यह] कितना बड़ा अपमान है ? वैसा तुम परमेश्वर का भी अपमान करते हो। जब व्यापक मानते हो तो वाटिका में से पुष्पपत्र तोड़ के क्यों चढ़ाते ? चन्दन घिसके क्यों लगाते ? धूप को जलाके क्यों देते ? घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ? तुम्हारे हाथों में है, क्यों जोड़ते ? शिर में है, क्यों शिर नमाते ? अन्न, जलादि में है, क्यों नैवेद्य धरते ? जल में है, स्नान क्यों कराते ? क्योंकि उन सब पदार्थों में परमात्मा व्यापक है और तुम व्यापक की पूजा करते हो वा व्याप्य की ? जो व्यापक की करते हो तो पाषाण लकड़ी आदि पर चन्दन पुष्पादि क्यों चढ़ाते हो ? और जो व्याप्य की करते हो, तो हम परमेश्वर की पूजा करते हैं, ऐसा झूठ क्यों बोलते हो ? हम पाषाणादि के पुजारी हैं ऐसा सत्य क्यों नहीं बोलते ?

अब कहिये "भाव" सच्चा है वा झूठा ? जो कहो सच्चा है तो तुम्हारे भाव के आधीन होकर परमेश्वर बद्ध हो जायगा और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि, पाषाण में हीरा पन्ना आदि, समुद्रफेन में मोती, जल में घृत दुग्ध दधि आदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उनको वैसे क्यों नहीं बनाते हो ? तुम लोग दुःख की भावना कभी नहीं करते, वह क्यों होता ? और सुख की भावना सदैव करते हो, वह क्यों नहीं प्राप्त होता ? अन्धा पुरुष नेत्र की भावना करके क्यों नहीं देखता ? मरने की भावना नहीं करते, क्यों मरजाते हो ? इसलिये तुम्हारी भावना सच्ची नहीं। क्योंकि जैसे में वैसी करने का नाम भावना कहते हैं। जैसे अग्नि में अग्नि, जल में जल जानना और जल में अग्नि, अग्नि में जल समझना अभावना है। क्योंकि जैसे को वैसा जानना ज्ञान और अन्यथा जानना अज्ञान है। इसलिये तुम अभा

वना को भावना और भावना को अभावना कहते हो (प्रश्न) अजी जबतक वेदमन्त्रों से आवाहन नहीं करते तबतक देवता नहीं आता और आवाहन करने से झट आता और विसर्जन करने से चला जाता है (उत्तर) जो मंत्र को पढ़कर आवाहन करने से देवता आजाता है तो मूर्त्ति चेतन क्यों नहीं होजाती ? और विसर्जन करने से चला क्यों नहीं जाता ? और वह कहां से आता और कहां जाता है ? सुनो अन्धो ! पूर्ण परमात्मा न आता और न जाता है। जो तुम मन्त्रबल से परमेश्वर को बुलालेते हो तो उन्हीं मन्त्रों से अपने मरे हुए पुत्र के शरीर में जीव को क्यों नहीं बुला लेते ? और शत्रु के शरीर में जीवात्मा का विसर्जन करके क्यों नहीं मार सकते। सुनो भाई ! भोले भाले लोगो ! ये पोपजी तुमको ठगकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वेदों में पाषाणादि मूर्त्तिपूजा और परमेश्वर के आवाहन विसर्जन करने का एक अक्षर भी नहीं है (प्रश्न)—

प्राणा इहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा। आत्मेहागच्छतु सुखं चिरं तिष्ठतु स्वाहा। इन्द्रियाणीहागच्छन्तु सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा॥

इत्यादि वेदमंत्र हैं क्यों कहते हो नहीं है ? (उत्तर) अरे भाई ! बुद्धि को थोड़ीसी तो अपने काम में लाओ। ये सब कपोलकल्पित वाममार्गियों की वेदविरुद्ध तन्त्रग्रन्थों की पोपरचित पंक्तियां हैं। वेदवचन नहीं। (प्रश्न) क्या तन्त्र झूठा ? (उत्तर) हां, सर्वथा झूठा है। जैसे आवाहन, प्राणप्रतिष्ठादि पाषाणादि मूर्त्तिविषयक वेदों में एक मन्त्र भी नहीं वैसे "स्नानं समर्पयामि" इत्यादि वचन भी नहीं। अर्थात् इतना भी नहीं है कि "पाषाणादि मूर्त्तिं रचयित्वा मन्दिरेषु संस्थाप्य गन्धादिभिरर्चयेत्" अर्थात् पाषाण की मूर्त्ति बना, मन्दिरों में स्थापन कर, चन्दन अक्षतादि से पूजे। ऐसा लेशमात्र भी नहीं। (प्रश्न) जो वेदों में विधि नहीं तो खण्डन भी नहीं है। और जो खण्डन है तो "प्राप्तौ सत्यां निषेधः" मूर्त्ति के होने ही से खण्डन हो सकता है। (उत्तर) विधि तो नहीं परन्तु परमेश्वर के स्थान में किसी अन्य पदार्थ को पूजनीय न मानना और सर्वथा निषेध किया है। क्या अपूर्वविधि नहीं होता ? सुनो यह है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते । ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याꣳ रताः ॥ १ ॥ यजुः ॥ अ० ४० । मं० ६ ॥ न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ [२] यजुः ॥ अ० ३२ । मं० ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ १ ॥
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ २ ॥
यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ३ ॥
यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदꣳ श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ४ ॥
यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥ केनोपनि० ॥

जो असंभूति अर्थात् अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान में उपासना करते हैं वे अन्धकार अर्थात् अज्ञान और दुःखसागर में डूबते हैं। और संभूति जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथिवी आदि भूत पाषाण और वृक्षादि अवयव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं, वे उस अन्धकार से भी अधिक अन्धकार अर्थात् महामूर्ख चिरकाल घोर दुःखरूप नरक में गिरके महाक्लेश भोगते हैं ॥ १ ॥ जो सब जगत् में व्यापक है उस निराकार परमात्मा की प्रतिमा परिमाण सादृश्य वा मूर्त्ति नहीं है ॥ २ ॥ जो वाणी की इयत्ता अर्थात् यह जल है लीजिये, वैसा विषय नहीं। और जिसके धारण और सत्ता से वाणी की प्रवृत्ति होती है उसी को ब्रह्म जान और उपासना कर और जो उससे भिन्न है वह उपासनीय नहीं ॥ १ ॥ जो मन से "इयत्ता" करके मनन में नहीं आता, जो मन को जानता है, उसी को ब्रह्म तू जान और उसी की उपासना कर जो उससे भिन्न जीव और अन्तःकरण है उसकी उपासना ब्रह्म के स्थान में मत कर ॥ २ ॥ जो आंख से नहीं

दीख पड़ता और जिससे सब आंखें देखती हैं उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और जो उससे भिन्न सूर्य, विद्युत् और अग्नि आदि जड़ पदार्थ हैं उनकी उपासना मत कर॥ ३॥ जो श्रोत्र से नहीं सुना जाता और जिससे श्रोत्र सुनता है उसी को तू ब्रह्म जान और उसी की उपासना कर। और उससे भिन्न शब्दादि की उपासना उसके स्थान में मत कर॥ ४॥ जो प्राणों से चलायमान नहीं होता, जिससे प्राण गमन को प्राप्त होता है उसी ब्रह्म को तू जान और उसी की उपासना कर। जो यह उससे भिन्न वायु है उसकी उपासना मत कर॥ ५॥ इत्यादि बहुतसे निषेध हैं। निषेध प्राप्त और अप्राप्त का भी होता है। "प्राप्त" का जैसे कोई कहीं बैठा हो उसको वहां से उठा देना। "अप्राप्त" का जैसे हे पुत्र! तू चोरी कभी मत करना, कुवे में मत गिरना। दुष्टों का संग मत करना। विद्याहीन मत रहना। इत्यादि अप्राप्त का भी निषेध होता है। सो मनुष्यों के ज्ञान में अप्राप्त, परमेश्वर के ज्ञान में प्राप्त का निषेध किया है। इसलिये पाषाणादि मूर्त्तिपूजा अत्यन्त निषिद्ध है। (प्रश्न) मूर्त्तिपूजा में पुण्य नहीं तो पाप तो नहीं है? (उत्तर) कर्म दो ही प्रकार के होते हैं—विहित—जो कर्त्तव्यता से वेद में सत्यभाषणादि प्रतिपादित हैं। दूसरे निषिद्ध—जो अकर्त्तव्यता से मिथ्याभाषणादि वेद में निषिद्ध हैं। जैसे विहित का अनुष्ठान करना वह धर्म, उसका न करना अधर्म है वैसे ही निषिद्ध कर्म का करना अधर्म और न करना धर्म है। जब वेदों से निषिद्ध मूर्त्तिपूजादि कर्मों को तुम करते हो तो पापी क्यों नहीं? (प्रश्न) देखो! वेद अनादि हैं। उस समय मूर्त्ति का क्या काम था? क्योंकि पहिले तो देवता प्रत्यक्ष थे। यह रीति तो पीछे से तंत्र और पुराणों से चली है। जब मनुष्यों का ज्ञान और सामर्थ्य न्यून होगया तो परमेश्वर को ध्यान में नहीं लासके, और मूर्त्ति का ध्यान तो कर सकते हैं, इस कारण अज्ञानियों के लिये मूर्त्तिपूजा है। क्योंकि सीढ़ी २ से चढ़े तो भवन पर पहुंच जाय। पहिली सीढ़ी छोड़कर ऊपर जाना चाहे तो नहीं जा सकता इसलिये मूर्त्ति प्रथम सीढ़ी है। इसको पूजते २ जब ज्ञान होगा और अन्तःकरण पवित्र होगा तब परमात्मा का ध्यान कर सकेगा जैसे लक्ष्य का मारनेवाला प्रथम स्थूल लक्ष्य में तीर, गोली वा गोला आदि मारता २ पश्चात् सूक्ष्म में भी निशाना

मार सकता है वैसे स्थूल मूर्त्ति की पूजा करता २ पुनः सूक्ष्म ब्रह्म को भी प्राप्त होता है। जैसे लड़कियां गुड़ियों का खेल तबतक करती हैं कि जबतक सच्चे पति को प्राप्त नहीं होतीं इत्यादि प्रकार से मूर्त्तिपूजा करना दुष्ट काम नहीं।
(उत्तर) जब वेदविहित धर्म और वेदविरुद्धाचरण में अधर्म है तो पुनः तुम्हारे कहने से भी मूर्त्तिपूजा करना अधर्म ठहरा। जो २ ग्रन्थ वेद से विरुद्ध हैं उन २ का प्रमाण करना जानो नास्तिक होना है। सुनो—

नास्तिको वेदनिन्दकः ॥ १ ॥ [मनु० २ । ११]
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः ॥ २ ॥
उत्पद्यन्ते च्यवन्ते च यान्यतोन्यानि कानिचित्।
तान्यर्वाक्कालिकतया निष्फलान्यनृतानि च ॥ ३ ॥
मनु० अ० १२ ॥ [९५ । ९६]

मनुजी कहते हैं कि जो वेदों की निन्दा अर्थात् अपमान, त्याग, विरुद्धाचरण करता है वह नास्तिक कहाता है ॥ १ ॥ जो ग्रन्थ वेदबाह्य कुत्सित पुरुषों के बनाये संसार को दुःखसागर में डुबानेवाले हैं वे सब निष्फल, असत्य, अन्धकाररूप, इस लोक और परलोक में दुःखदायक हैं ॥ २ ॥ जो इन वेदों से विरुद्ध ग्रन्थ उत्पन्न होते हैं वे आधुनिक होने से शीघ्र नष्ट होजाते हैं। उनका मानना निष्फल और झूठा है ॥ ३ ॥ इसी प्रकार ब्रह्मा से लेकर जैमिनि महर्षिपर्यन्त का मत है कि वेदविरुद्ध को न मानना किन्तु वेदानुकूल ही का आचरण करना धर्म है। क्यों ? वेद सत्य अर्थ का प्रतिपादक है। इससे विरुद्ध जितने तन्त्र और पुराण हैं वेदविरुद्ध होने से झूठे हैं। जो कि वेद से विरुद्ध पुस्तकें हैं, उनमें कही हुई मूर्त्तिपूजा भी अधर्मरूप है। मनुष्यों का ज्ञान जड़ की पूजा से नहीं बढ़ सकता किन्तु जो कुछ ज्ञान है वह भी नष्ट होजाता है। इसलिये ज्ञानियों की सेवा सङ्ग से ज्ञान बढ़ता है, पाषाणादि से नहीं। क्या पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से परमेश्वर को ध्यान में कभी ला सकता है ? नहीं २ मूर्त्तिपूजा सीढ़ी नहीं, किन्तु एक बड़ी खाई है जिसमें गिरकर चकनाचूर

होजाता है। पुनः उस खाई से निकल नहीं सकता किन्तु उसी में मर जाता है। हां, छोटे धार्मिक विद्वानों से लेकर परम विद्वान् योगियों के संग से सद्विद्या और सत्यभाषणादि परमेश्वर की प्राप्ति की सीढ़ियां हैं। जैसे ऊपर घर में जाने की निःश्रेणी होती है किन्तु मूर्त्तिपूजा करते २ ज्ञानी तो कोई न हुआ प्रत्युत सब मूर्त्तिपूजक अज्ञानी रहकर मनुष्यजन्म व्यर्थ खोके बहुत २ से मर गये और जो अब हैं वा होंगे वे भी मनुष्यजन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्तिरूप फलों से विमुख होकर निरर्थ नष्ट हो जायंगे। मूर्त्तिपूजा ब्रह्म की प्राप्ति में स्थूल लक्षवत् नहीं किन्तु धार्मिक विद्वान् और सृष्टिविद्या है। इसको बढ़ाता २ ब्रह्म को भी पाता है। और मूर्त्ति गुड़ियों के खेलवत् नहीं किन्तु प्रथम अक्षराभ्यास सुशिक्षा का होना गुड़ियों के खेलवत् ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। सुनिये! जब अच्छी शिक्षा और विद्या को प्राप्त होगा तब सच्चे स्वामी परमात्मा को भी प्राप्त हो जायगा। (प्रश्न) साकार में मन स्थिर होता और निराकार में स्थिर होना कठिन है, इसलिये मूर्त्तिपूजा रहना चाहिये। (उत्तर) साकार में मन स्थिर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि उसको मन झट ग्रहण करके उसी के एक २ अवयव में घूमता और दूसरे में दौड़ जाता है। और निराकार परमात्मा के ग्रहण में यावत्सामर्थ्य मन अत्यन्त दौड़ता है तो भी अन्त नहीं पाता। निरवयव होने से चंचल भी नहीं रहता किन्तु उसी के गुण कर्म स्वभाव का विचार करता २ आनन्द में मग्न होकर स्थिर होजाता है। और जो साकार में स्थिर होता तो सब जगत् का मन स्थिर होजाता क्योंकि जगत् में मनुष्य, स्त्री, पुत्र, धन, मित्र आदि साकार में फंसा रहता है, परन्तु किसी का मन स्थिर नहीं होता जबतक निराकार में न लगावे, क्योंकि निरवयव होने से उसमें मन स्थिर हो जाता है। इसलिये मूर्त्ति-पूजन करना अधर्म है। दूसरा—उसमें क्रोड़ों रुपये मन्दिरों में व्यय करके दरिद्र होते हैं और उसमें प्रमाद होता है। तीसरा—स्त्री पुरुषों का मन्दिरों में मेला होने से व्यभिचार, लड़ाई, बखेड़ा और रोगादि उत्पन्न होते हैं। चौथा—उसी को धर्म, अर्थ, काम और मुक्ति का साधन मानके पुरुषार्थरहित होकर मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाता है। पांचवां—नाना प्रकार की विरुद्धस्वरूप नाम चरित्र-

युक्त मूर्त्तियों के पुजारियों का ऐक्यमत नष्ट होके विरुद्धमत में चलकर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं। छठा–उसीके भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं। उनका पराजय होकर राज्य, स्वातन्त्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं। सातवां–जब कोई किसी को कहे कि हम तेरे बैठने के आसन वा नाम पर पत्थर धरें तो जैसे वह उस पर क्रोधित होकर मारता वा गाली प्रदान देता है वैसे ही जो परमेश्वर के उपासना के स्थान हृदय और नाम पर पाषाणादि मूर्त्तियां धरते हैं उन दुष्टबुद्धिवालों का सत्यानाश परमेश्वर क्यों न करे। आठवां–भ्रान्त होकर मन्दिर २ देशदेशान्तर में घूमते २ दुःख पाते, धर्म संसार और परमार्थ का काम नष्ट करते, चोर आदि से पीड़ित होते, ठगों से ठगाते रहते हैं। नववां–दुष्ट पूजारियों को धन देते हैं वे उस धन को वेश्या, परस्त्रीगमन, मद्य मांसाहार, लड़ाई बखेड़ों में व्यय करते हैं जिससे दाता का सुख का मूल नष्ट होकर दुःख होता है। दशवां–माता पिता आदि माननीयों का अपमान कर पाषाणादि मूर्त्तियों का मान करके कृतघ्न होजाते हैं। ग्यारहवां–उन मूर्त्तियों को कोई तोड़ डालता वा चोर ले जाता है तब हा २ करके रोते रहते हैं। बारहवां–पूजारी परस्त्रियों के सङ्ग और पूजारिन परपुरुषों के संग से प्रायः दूषित होकर स्त्री पुरुष के प्रेम के आनन्द को हाथ से खो बैठते हैं। तेरहवां–स्वामी सेवक की आज्ञा का पालन यथावत् न होने से परस्पर विरुद्धभाव होकर नष्ट भ्रष्ट होजाते हैं। चौदहवां–जड़ का ध्यान करनेवाले का आत्मा भी जड़ बुद्धि होजाता है क्योंकि ध्येय का जड़त्व धर्म अन्तःकरण द्वारा आत्मा में अवश्य आता है। पन्द्रहवां–परमेश्वर ने सुगन्धियुक्त पुष्पादि पदार्थ वायु जल के दुर्गन्ध निवारण और आरोग्यता के लिये बनाये हैं, उनको पुजारीजी तोड़ताड़ कर न जाने उन पुष्पों की कितने दिन तक सुगन्धि आकाश में चढ़कर वायु जल की शुद्धि करता और पूर्ण सुगन्धि के समय तक उसका सुगन्ध होता, उसका नाश मध्य में ही कर देते हैं। पुष्पादि कीच के साथ मिल सड़कर उलटा दुर्गन्ध उत्पन्न करते हैं। क्या

परमात्मा ने पत्थर पर चढ़ाने के लिये पुष्पादि सुगन्धियुक्त पदार्थ रचे हैं? सोलहवां—पत्थर पर चढ़े हुए पुष्प चन्दन और अक्षत आदि सब का जल और मृत्तिका के संयोग होने से मोरी वा कुण्ड में आकर सड़ के इतना उससे दुर्गन्ध आकाश में चढ़ता है कि जितना मनुष्य के मल का और सहस्रों जीव उसमें पड़ते उसी में मरते और सड़ते हैं। ऐसे २ अनेक मूर्त्तिपूजा के करने में दोष आते हैं। इसलिये सर्वथा पाषाणादि मूर्त्तिपूजा सज्जन लोगों को त्यक्तव्य है। और जिन्होंने पाषाणमय मूर्त्ति की पूजा की है, करते हैं और करेंगे, वे पूर्वोक्त दोषों से न बचे, न बचते हैं, और न बचेंगे॥

(प्रश्न) किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा करनी करानी नहीं और जो अपने आर्य्यावर्त्त में पंचदेवपूजा शब्द प्राचीन परम्परा से चला आता है उसका यही पंचायतनपूजा जो कि शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य्य की मूर्त्ति बनाकर पूजते हैं यह पंचायतनपूजा है वा नहीं? (उत्तर) किसी प्रकार की मूर्त्तिपूजा न करना किन्तु "मूर्त्तिमान्" जो नीचे कहेंगे उनकी पूजा अर्थात् सत्कार करना चाहिये। वह पंचदेवपूजा, पंचायतनपूजा शब्द बहुत अच्छा अर्थवाला है परन्तु विद्याहीन मूढ़ों ने उसके उत्तम अर्थ को छोड़कर निकृष्ट अर्थ पकड़ लिया। जो आजकल शिवादि पांचों की मूर्त्तियां बनाकर पूजते हैं उनका खण्डन तो अभी कर चुके हैं। यह जो सच्ची पंचायतन वेदोक्त और वेदानुकूलोक्त देवपूजा और मूर्त्तिपूजा है, सुनो—

मा नो वधीः पितरं मोत मातरम्॥ १॥ यजु०॥ [अ० १६। मं० १५]

आचार्य्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥ २॥ अथर्व०॥ [कां० ११। व० ५। मं० १७]

अतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ ३॥ अथर्व०॥ [कां० १५। व० १३। मं० ६]

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत॥ ४॥ ऋग्वेदे॥

त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ॥ तैत्तिरीयोपनि० ॥ ५ ॥ [वल्ली० १ । अनु० १]

कतम एको देव इति स ब्रह्म त्यदित्याचक्षते ॥ ६ ॥ शतपथ० । कां० १४ । प्रपाठ० ६ । ब्राह्म० ७ । कंडिका १० ॥

मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ॥ ७ ॥ तैत्तिरीयो० ॥ [व० १ । अनु० ११]

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा ।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ८ ॥ मनु० अ० ३ । ५५ ॥ पूज्यो देववत्पतिः ॥ ९ ॥ मनुस्मृतौ ॥

प्रथम माता मूर्त्तिमती पूजनीय देवता, अर्थात् सन्तानों को तन मन धन से सेवा करके माता को प्रसन्न रखना हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना। दूसरा पिता सत्कर्त्तव्य देव। उसकी भी माता के समान सेवा करनी ॥ १ ॥ तीसरा आचार्य जो विद्या का देनेवाला है उसकी तन मन धन से सेवा करनी ॥ २ ॥ चौथा अतिथि जो विद्वान्, धार्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहनेवाला, जगत् में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता है उसकी सेवा करें ॥ ३ ॥ पांचवां स्त्री के लिये पति और पुरुष के लिये पत्नी पूजनीय है ॥ ८ ॥ ये पांच मूर्त्तिमान् देव जिनके सङ्ग से मनुष्यदेह की उत्पत्ति, पालन, सत्यशिक्षा, विद्या और सत्योपदेश की प्राप्ति होती है। ये ही परमेश्वर को प्राप्ति होने की सीढ़ियां हैं। इनकी सेवा न करके जो पाषाणादि मूर्त्ति पूजते हैं वे अतीव पामर नरकगामी हैं! (प्रश्न) माता पिता आदि की सेवा करें और मूर्त्तिपूजा भी करें तब तो कोई दोष नहीं? (उत्तर) पाषाणादि मूर्त्तिपूजा तो सर्वथा छोड़ने और मातादि मूर्त्तिमानों की सेवा करने ही में कल्याण है। बड़े अनर्थ की बात है कि साक्षात् माता आदि प्रत्यक्ष सुखदायक देवों को छोड़ के अदेव पाषाणादि में शिर मारना मूढ़ों ने इसीलिये स्वीकार किया है कि जो माता पितादि के सामने नैवेद्य वा भेट पूजा धरेंगे तो वे स्वयं खा लेंगे और भेट पूजा लेंगे तो हमारे मुख वा हाथ में कुछ न पड़ेगा। इससे पाषाणादि

की मूर्त्ति बना, उसके आगे नैवेद्य धर, घंटानाद टंटं पूंपूं, शंख बजा, कोलाहल कर, अंगूठा दिखला अर्थात् "त्वमंगुष्ठं गृहाण भोजनं पदार्थं वाऽहं ग्रहीष्यामि" जैसे कोई किसी को छले वा चिड़ावे कि तू घंटा ले और अंगूठा दिखलावे उसके आगे से सब पदार्थ ले आप भोगे, वैसी ही लीला इन पूजारियों अर्थात् पूजा नाम सत्कर्म के शत्रुओं की है। मूढ़ों को चटक मटक, चलक झलक मूर्तियों को बना ठना, आप वेश्या वा भडुआ के तुल्य बन ठन के विचारे निर्बुद्धि अनाथों का माल मारके मौज करते हैं। जो कोई धार्मिक राजा होता तो इन पाषाणप्रियों को पत्थर तोड़ने बनाने और घर रचने आदि कामों में लगाके खाने पीने को देता, निर्वाह कराता। (प्रश्न) जैसे स्त्री आदि की पाषाणादि मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे वीतराग शान्त की मूर्त्ति देखने से वैराग्य और शान्ति की प्राप्ति क्यों न होगी ? (उत्तर) नहीं हो सकती, क्योंकि वह मूर्त्ति के जड़त्व धर्म आत्मा में आने से विचारशक्ति घट जाती है। विवेक के विना न वैराग्य और वैराग्य के विना विज्ञान, विज्ञान के विना शान्ति नहीं होती। और जो कुछ होता है सो उनके सङ्ग, उपदेश और उनके इतिहासादि के देखने से होता है क्योंकि जिसका गुण वा दोष न जानके उसकी मूर्तिमात्र देखने से प्रीति नहीं होती। प्रीति होने का कारण गुणज्ञान है। ऐसे मूर्तिपूजा आदि बुरे कारणों ही से आर्यावर्त्त में निकम्मे पूजारी भिक्षुक आलसी पुरुषार्थ रहित क्रोड़ों मनुष्य हुए हैं। वे मूढ़ होने से सब संसार में मूढ़ता उन्हींने फैलाई है। झूठ छल भी बहुतसा फैला है (प्रश्न) देखो काशी में 'औरङ्गजेब" बादशाह को "लाटभैरव" आदि ने बड़े २ चमत्कार दिखलाये थे। जब मुसलमान उनको तोड़ने गये और उन्होंने जब उन पर तोप गोला आदि मारे, तब बड़े २ भमरे निकल कर सब फौज को व्याकुल कर भगा दिया। (उत्तर) यह पाषाण का चमत्कार नहीं। किन्तु वहां भमरे के छत्ते लग रहे होंगे उनका स्वभाव ही क्रूर है, जब कोई उनको छेड़े तो वे काटने को दौड़ते हैं। और जो दूध की धारा का चमत्कार होता था वह पूजारीजी की लीला थी। (प्रश्न) देखो महादेव म्लेच्छ को दर्शन न देने के लिये कूप में और वेणीमाधव एक ब्राह्मण के घर में जाछिपे। क्या यह भी चमत्कार नहीं

है ? (उत्तर) भला जिसका कोटपाल कालभैरव लाटभैरव आदि भूत प्रेत और गरुड़ आदि गण, उन्हों ने मुसलमानों को लड़के क्यों न हटाये ? जब महादेव और विष्णु की पुराणों में कथा है कि अनेक त्रिपुरासुर आदि बड़े भयङ्कर दुष्टों को भस्म कर दिया तो मुसलमानों को भस्म क्यों न किया ? इससे यह सिद्ध होता है कि वे विचारे पाषाण क्या लड़ते लड़ाते ? जब मुसलमान मन्दिर और मूर्त्तियों को तोड़ते फोड़ते हुए काशी के पास आए तब पूजारियों ने उस पाषाण के लिङ्ग को कूप में डाल और वेणीमाधव को ब्राह्मण के घर में छिपा दिया । जब काशी में कालभैरव के डर के मारे यमदूत नहीं जाते और प्रलय समय में भी काशी का नाश होने नहीं देते, तो म्लेच्छों के दूत क्यों न डराये ? और अपने राजा के मन्दिर का क्यों नाश होने दिया ? यह सब पोपमाया है ॥

(प्रश्न) गया में श्राद्ध करने से पितरों का पाप छूटकर वहां के श्राद्ध के पुण्यप्रभाव से पितर स्वर्ग में जाते और पितर अपना हाथ निकाल कर पिण्ड लेते हैं, क्या यह भी बात झूठी है ? (उत्तर) सर्वथा झूठ, जो वहां पिण्ड देने का वही प्रभाव है तो जिन पण्डों को पितरों के सुख के लिये लाखों रुपये देते हैं उनका व्यय गयावाले वेश्यागमनादि पाप में करते हैं वह पाप क्यों नहीं छूटता ? और हाथ निकलता आज कल कहीं नहीं दीखता, विना पण्डों के हाथों के । यह कभी किसी धूर्त्त ने पृथिवी में गुफा खोद उसमें एक मनुष्य बैठा दिया होगा । पश्चात् उसके मुख पर कुश बिछा पिण्ड दिया होगा और उस कपटी ने उठा लिया होगा किसी आंख के अन्धे गांठ के पूरे को इस प्रकार ठगा हो तो आश्चर्य नहीं । वैसे ही वैजनाथ को रावण लाया था, यह भी मिथ्या बात है। (प्रश्न) देखो ! कलकत्ते की काली और कामाक्षा आदि देवी को लाखों मनुष्य मानते हैं, क्या यह चमत्कार नहीं है ? (उत्तर) कुछ भी नहीं । ये अंधे लोग भेड़ के तुल्य एक के पीछे दूसरे चलते हैं, कूप खाड़े में गिरते हैं, हट नहीं सकते । वैसे ही एक मूर्ख के पीछे दूसरे चलकर मूर्त्ति-पूजारूप गढ़े में फँसकर दुःख पाते हैं । (प्रश्न) भला यह तो जाने दो पर-

न्तु जगन्नाथजी में प्रत्यक्ष चमत्कार है। एक कलेवर बदलने के समय चंदन का लकड़ा समुद्र में से स्वयमेव आता है। चूल्हे पर ऊपर २ सात हंडे धरने से ऊपर २ के पहिले २ पकते हैं। और जो कोई वहां जगन्नाथ की परसादी न खावे तो कुष्ठी हो जाता है और रथ आपसे आप चलता पापी को दर्शन नहीं होता है। इंद्रदमन के राज्य में देवताओं ने मंदिर बनाया है। कलेवर बदलने के समय एक राजा, एक पंडा, एक बढ़ई मरजाने आदि चमत्कारों को तुम झूठ न कर सकोगे ? (उत्तर) जिसने बारह वर्ष पर्यन्त जगन्नाथ की पूजा की थी वह विरक्त होकर मथुरा में आया था, मुझ से मिला था। मैंने इन बातों का उत्तर पूछा था उसने ये सब बातें झूठ बतलाईं किन्तु विचार से निश्चय यह है कि जब कलेवर बदलने का समय आता है तब नौका में चन्दन की लकड़ी ले समुद्र में डालते हैं। वह समुद्र की लहरियों से किनारे लग जाती है। उसको ले सुतार लोग मूर्त्तियां बनाते हैं। जब रसोई बनती है तब कपाट बन्द करके रसोइयों के विना अन्य किसी को न जाने न देखने देते हैं। भूमि पर चारों ओर छः और बीच में एक चक्राकार चूल्हे बनते हैं। उन हण्डों के नीचे घी, मट्टी और राख लगा छः चूल्हों पर चावल पका, उनके तले मांज-कर, उस बीच के हण्डे में उसी समय चावल डाल छः चूल्हों के मुख लोहे के तवों से बन्ध कर, दर्शन करनेवालों को जो कि धनाढ्य हों, बुला के दिख-लाते हैं। ऊपर २ के हण्डों से चावल निकाल, पके हुए चावलों को दिखला, नीचे के कच्चे चावल निकाल दिखा के, उनसे कहते हैं कि कुछ हण्डों के लिये रख दो। आंख के अन्धे गांठ के पूरे रुपये अशर्फी धरते और कोई २ मासिक भी बांध देते हैं। शूद्र नीच लोग मन्दिर में नैवेद्य लाते हैं। जब नैवेद्य हो चुकता है तब वे शूद्र नीच लोग जूठा कर देते हैं। पश्चात् जो कोई रुपया देकर हण्डा लेवे उसके घर पहुंचाते और दीन गृहस्थ और साधु सन्तों को लेके शूद्र और अन्त्यत्र पर्यन्त एक पंक्ति में बैठ जूठा एक दूसरे का भोजन करते हैं। जब वह पंक्ति उठती है तब उन्हीं पत्तलों पर दूसरों को बैठाते जाते हैं। महा अनाचार है। और बहुतेरे मनुष्य वहां जाकर, उनका जूठा न खाके, अपने हाथ बना खाकर चले आते हैं, कुछ भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और

उस जगन्नाथपुरी में भी बहुतसे परसादी नहीं खाते ; उनको भी कुष्ठादि रोग नहीं होते। और उस जगन्नाथपुरी में भी बहुतसे कुष्ठी हैं, नित्यप्रति जूठा खाने से भी रोग नहीं छूटता। और यह जगन्नाथ में वाममार्गियों ने भैरवीचक्र बनाया है क्योंकि सुभद्रा, श्रीकृष्ण और बलदेव की बहिन लगती है। उसी को दोनों भाइयों के बीच में स्त्री और माता के स्थान बैठाई है। जो भैरवीचक्र न होता तो यह बात कभी न होती। और रथ के पहियों के साथ कला बनाई है। जब उनको सूधी घुमाते हैं घूमती है, तब रथ चलता है। जब मेले के बीच में पहुंचता है तभी उसकी कील को उलटी घुमा देने से रथ खड़ा रह जाता है। पूजारी लोग पुकारते हैं दान देओ, पुण्य करो, जिससे जगन्नाथ प्रसन्न होकर अपना रथ चलावें, अपना धर्म रहे। जबतक भेट आती जाती है तबतक ऐसे ही पुकारते जाते हैं। जब आचुकती है तब एक व्रजवासी अच्छे कपड़े दुसाला ओढ़कर आगे खड़ा रहके हाथ जोड़ स्तुति करता है कि "हे जगन्नाथ स्वामिन्! आप कृपा करके रथ को चलाइये हमारा धर्म रक्खो" इत्यादि बोल के साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम कर रथ पर चढ़ता है। उसी समय कील को सूधा घुमा देते हैं और जय २ शब्द बोल, सहस्रों मनुष्य रस्सी खींचते हैं, रथ चलता है। जब बहुतसे लोग दर्शन को जाते हैं तब इतना बड़ा मन्दिर है कि जिसमें दिन में भी अन्धेरा रहता है और दीपक जलाना पड़ता है। उन मूर्त्तियों के आगे पड़दे खैंच कर लगाने के पर्दे दोनों ओर रहते हैं। पण्डे पूजारी भीतर खड़े रहते हैं। जब एक ओर वाले ने पर्दे को खींचा, झट मूर्त्ति आड़ में आजाती है। तब सब पण्डे और पूजारी पुकारते हैं, तुम भेट धरो, तुम्हारे पाप छूट जायेंगे, तब दर्शन होगा। शीघ्र करो। वे विचारे भोले मनुष्य धूर्त्तों के हाथ लूटे जाते हैं। और झट पर्दा दूसरा खैंच लेते हैं तभी दर्शन होता है। तब जय शब्द बोल के प्रसन्न होकर धक्के खाके तिरस्कृत हो चले आते हैं। इन्द्रदमन वही है कि जिसके कुल के लोग अबतक कलकत्ते में हैं। वह धनाढ्य राजा और देवी का उपासक था। उसने लाखों रुपये लगाकर मन्दिर बनवाया था। इसलिये कि आर्यावर्त्त देश के भोजन का बखेड़ा इस रीति से छुड़ावें। परन्तु वे मूर्ख कब छोड़ते हैं? देव

मानो तो उन्हीं कारीगरों को मानो कि जिन शिल्पियों ने मन्दिर बनाया। राजा पण्डा और बढ़ई उस समय नहीं मरते परन्तु वे तीनों वहां प्रधान रहते हैं, छोटों को दुःख देते होंगे। उन्होंने सम्मति करके उसी समय अर्थात् कलेवर बदलने के समय वे तीनों उपस्थित रहते हैं। मूर्त्ति का हृदय पोला [रक्खा] है। उसमें एक सोने के सम्पुट में एक सालगराम रखते हैं कि जिसको प्रतिदिन धो के चरणामृत बनाते हैं। उस पर रात्री की शयन आर्त्ती में उन लोगों ने विष का तेजाब लपेट दिया होगा। उसको धो के उन्हीं तीनों को पिलाया होगा कि जिससे वे कभी मर गये होंगे। मरे तो इस प्रकार और भोजनभट्टों ने प्रसिद्ध किया होगा कि जगन्नाथजी अपने शरीर बदलने के समय तीनों भक्तों को भी साथ ले गये ऐसी झूठी बातें पराये धन ठगने के लिये बहुतसी हुआ करती हैं।

(प्रश्न) जो रामेश्वर में गंगोत्तरी के जल चढ़ाने समय लिङ्ग बढ़जाता है, क्या यह भी बात झूठी है ? **(उत्तर)** झूठी, क्योंकि उस मन्दिर में भी दिन में अन्धेरा रहता है। दीपक रात दिन जला करते हैं। जब जल की धारा छोड़ते हैं तब उस जल में बिजुली के समान दीपक का प्रतिबिम्ब चलकता है, और कुछ भी नहीं। न पाषाण घटे, न बढ़े। जितना का उतना रहता है ऐसी लीला करके विचारे निर्बुद्धियों को ठगते हैं। **(प्रश्न)** रामेश्वर को रामचन्द्र ने स्थापित किया है। जो मूर्त्तिपूजा वेदविरुद्ध होती तो रामचन्द्र मूर्त्तिस्थापन क्यों करते और वाल्मीकिजी रामायण में क्यों लिखते ? **(उत्तर)** रामचन्द्र के समय में उस लिङ्ग वा मन्दिर का नाम चिह्न भी न था, किन्तु यह ठीक है कि दक्षिण देशस्थ रामनामक राजा ने मन्दिर बनवा, लिंग का नाम रामेश्वर धर दिया है। जब रामचन्द्र सीताजी को ले हनुमान् आदि के साथ लङ्का से [चले] आकाशमार्ग में विमान पर बैठ अयोध्या को आते थे तब सीताजी से कहा है कि—

अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः।
सेतुबन्ध इति विख्यातम् ॥ वाल्मीकि रा० ॥
लंकाकां० । [सर्ग १२५ । श्लोक २०]

हे सीते ! तेरे वियोग से हम व्याकुल होकर घूमते थे और इसी स्थान में चातुर्मास्य किया था और परमेश्वर की उपासना ध्यान भी करते थे । वही जो सर्वत्र विभु (व्यापक) देवों का देव महादेव परमात्मा है उसकी कृपा से हमको सब सामग्री यहां प्राप्त हुई । और देख यह सेतु हमने बांधकर लङ्का में आके, उस रावण को मार, तुझ को ले आये । इसके सिवाय वहां बाल्मीकि में अन्य कुछ भी नहीं लिखा । (प्रश्न)–

"रङ्ग है कालियाकन्त को । जिसने हुक्का पिलाया सन्त को" ॥

दक्षिण में एक कालियाकन्त की मूर्त्ति है । वह अबतक हुक्का पिया करती है जो मूर्त्तिपूजा झूठी होती तो यह चमत्कार भी झूठा होजाय । (उत्तर) झूठी २ । यह सब पोपलीला है । क्योंकि वह मूर्त्ति का मुख पोला होगा । उसका छिद्र पृष्ठ में निकाल के भित्ती के पार दूसरे मकान में नल लगा होगा । जब पूजारी हुक्का भरवा पेचवान लगा, मुख में नली जमा के, पड़दे डाल निकल आता होगा तभी पीछेवाला आदमी मुख से खींचता होगा तो इधर हुक्का गड़ २ बोलता होगा । दूसरा छिद्र नाक और मुख के साथ लगा होगा । जब पीछे फूंकें मार देता होगा तब नाक और मुख के छिद्रों से धुआं निकलता होगा । उस समय बहुतसे मूढ़ों को धनादि पदार्थों से लूट कर धनरहित करते होंगे ।

(प्रश्न) देखो ! डाकोरजी की मूर्त्ति द्वारिका से भगत के साथ चली आई । एक सवारत्ती सोने में कई मन की मूर्त्ति तुल गई । क्या यह भी चमत्कार नहीं ? (उत्तर) नहीं वह भक्त मूर्त्ति को चोर ले आया होगा और सवारत्ती के बराबर मूर्त्ति का तुलना किसी भंगड़ आदमी ने गप्प मारा होगा ।

(प्रश्न) देखो ! सोमनाथजी पृथिवी से ऊपर रहता था और बड़ा चमत्कार था क्या यह भी मिथ्या बात है ? (उत्तर) हां मिथ्या है सुनो ! नीचे ऊपर चुम्बक पाषाण लगा रक्खे थे । उसके आकर्षण से वह मूर्त्ति अधर खड़ी थी । जब "महमूदग़ज़नवी" आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका मन्दिर तोड़ा गया और पूजारी भक्तों की दुर्दशा होगई और लाखों फौज दश सहस्र

फौज से भाग गई । जो पोप पूजारी पूजा, पुरश्चरण, स्तुति, प्रार्थना करते थे कि "हे महादेव ! इस म्लेच्छ को तू मार डाल, हमारी रक्षा कर" और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे "कि आप निश्चिन्त रहिये । महादेवजी, भैरव अथवा वीरभद्र को भेज देंगे । वे सब म्लेच्छों को मारडालेंगे वा अंधा करदेंगे । अभी हमारा देवता प्रसिद्ध होता है । हनुमान्, दुर्गा और भैरव ने स्वप्न दिया है कि हम सब काम करदेंगे" । वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे । कितने ही ज्योतिषी पोपों ने कहा कि अभी तुम्हारी चढ़ाई का मुहूर्त्त नहीं है । एक ने आठवां चन्द्रमा बतलाया । दूसरे ने योगिनी सामने दिखलाई, इत्यादि बहकावट में रहे । जब म्लेच्छों की फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे, कितने ही पोप पूजारी और उनके चेले पकड़े गये । पूजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन क्रोड़ रुपया लेलो मन्दिर और मूर्त्ति मत तोड़ो । मुसलमानों ने कहा कि हम "बुतपरस्त" नहीं किन्तु "बुतशिकन" अर्थात् बुतों के तोड़ने वाले [मूर्त्तिभंजक] हैं । जा के झट मन्दिर तोड़ दिया ! जब ऊपर की छत टूटी तब चुम्बक पाषाण पृथक् होने से मूर्त्ति गिर पड़ी । जब मूर्त्ति तोड़ी तब सुनते हैं कि अठारह क्रोड़ के रत्न निकले । जब पुजारी और पोपों पर कोड़ा पड़े तब रोने लगे । कहा, कि कोष बतलाओ । मार के मारे झट बतला दिया । तब सब कोष लूट मार कूट कर पोप और उनके चेलों को "गुलाम" बिगारी बना, पिसना पिसवाया, घास खुदवाया, मल मूत्रादि उठवाया और चना खाने को दिये ! हाय ! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ! क्यों परमेश्वर की भक्ति न की जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते ! और अपना विजय करते । देखो ! जितनी मूर्त्तिया हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती । पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की परन्तु मूर्त्ति एक भी उन [शत्रुओं] के शिर पर उड़के न लगी । जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्त्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथाशक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता ।

(प्रश्न) द्वारिकाजी के रणछोड़जी जिसने "नर्सीमहता" के पास हुंडी भेज दी और उसका ऋण चुकादिया इत्यादि बात भी क्या झूठ है ? (उत्तर) किसी साहूकार ने रुपये दे दिये होंगे। किसी ने झूठा नाम उड़ा दिया होगा कि श्रीकृष्ण ने भेजे। जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मन्दिर मूर्त्तियां अङ्गरेज़ों ने उड़ा दी थीं तब मूर्त्ति कहां गई थी ? प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्त्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्रीकृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिसका रक्षक मारखाय उसके शरणागत क्यों न पीटे जायें ?

(प्रश्न) ज्वालामुखी तो प्रत्यक्ष देवी है सब को खा जाती है। और प्रसाद देवे तो आधा खाजाती और आधा छोड़ देती है। मुसलमान बादशाहों ने उस पर जल की नहर छुड़वाई और लोहे के तवे जड़वाये थे तो भी ज्वाला न बुझी और न रुकी। वैसे हिंगलाज भी आधी रात को सवारी कर पहाड़ पर दिखाई देती, पहाड़ को गर्जना कराती है, चन्द्रकूप बोलता और योनियंत्र से निकलने से पुनर्जन्म नहीं होता, ठूमरा बांधने से पूरा महापुरुष कहाता। जबतक हिंगलाज न हो आवे तबतक आधा महापुरुष बजता है इत्यादि सब बातें क्या मानने योग्य नहीं ? (उत्तर) नहीं, क्योंकि वह ज्वालामुखी पहाड़ से आगी निकलती है। उसमें पूजारी लोगों की विचित्र लीला है जैसे बघार के घी के चमचे में ज्वाला आजाती अलग करने से वा फूंक मारने से बुझ जाती और थोड़ासा घी को खाजाती, शेष छोड़ जाती है, उसी के समान वहां भी है जैसी चूल्हे की ज्वाला में जो डाला जाय सब भस्म होजाता। जंगल वा घर में लग जाने से सब को खाजाती है इससे वहां क्या विशेष है ? विना एक मन्दिर, कुण्ड और इधर उधर नल रचना के हिंगलाज में न कोई सवारी होती और जो कुछ होता है वह सब पोप पूजारियों की लीला से दूसरा कुछ भी नहीं। एक जल और दल्दल का कुण्ड बना रक्खा है। जिसके नीचे से बुदबुदे उठते हैं। उसको सफलयात्रा होना मूढ़ मानते हैं। योनि का यंत्र

पोपजी ने धन हरने के लिये बनवा रक्खा है और ठुमरे भी उसी प्रकार पोपलीला के हैं। उससे महापुरुष हो तो एक पशु पर ठुमरे का बोझ लाद दें, तो क्या महापुरुष हो जायगा ? महापुरुष तो बड़े उत्तम धर्मयुक्त पुरुषार्थ से होता है।

(प्रश्न) अमृतसर का तालाब अमृतरूप, एक मुरेठी का फल आधा मीठा और एक भित्ती नमती और गिरती नहीं, रेवालसर में बेड़े तरते, अमरनाथ में आप से आप लिंग बन जाते हिमालय से कबूतर के जोड़े आ के सब को दर्शन देकर चले जाते हैं क्या यह भी मानने योग्य नहीं ? (उत्तर) नहीं उस तालाब का नाममात्र अमृतसर है। जब कभी जंगल होगा तब उसका जल अच्छा होगा। इससे उसका नाम अमृतसर धरा होगा। जो अमृत होता तो पुराणियों के मानने के तुल्य कोई क्यों मरता ? भित्ती की कुछ बनावट ऐसी होगी जिससे नमती होगी और गिरती न होगी। रीठे कलम के पैबन्दी होंगे अथवा गपोड़ा होगा। रेवालसर में बेड़ा तरने में कुछ कारीगरी होगी। अमरनाथ में बर्फ के पहाड़ बनते हैं तो जल जम के छोटे लिंग का बनना कौन आश्चर्य है ? और कबूतर के जोड़े पालित होंगे पहाड़ की आड़ में से पोपजी छोड़ते होंगे दिखलाकर टका हरते होंगे।

(प्रश्न) हरद्वार स्वर्ग का द्वार हर की पैढ़ी में स्नान करे तो पाप छूट जाते हैं। और तपोवन में रहने से तपस्वी होता, देवप्रयाग, गंगोत्तरी में गौमुख, उत्तर काशी में गुप्तकाशी, त्रियुगी नारायण के दर्शन होते हैं। केदार और बदरीनारायण की पूजा छः महीने तक मनुष्य और छः महीने तक देवता करते हैं। महादेव का मुख नैपाल में पशुपति, चूतड़ केदार और तुङ्गनाथ में जानु और पग अमरनाथ में। इनके दर्शन स्पर्शन स्नान करने से मुक्ति होजाती है। वहां केदार और बदरी से स्वर्ग जाना चाहै तो जासकता है, इत्यादि बातें कैसी हैं ? (उत्तर) हरद्वार उत्तर पहाड़ों में जाने का एक मार्ग का आरम्भ है। हर की पैढ़ी एक स्नान के लिये कुण्ड की सीढ़ियों को बनाया है। सच पूछो तो "हाड़पैढ़ी" है क्योंकि देशदेशान्तर के मृतकों के हाड़ उसमें पड़ा करते हैं।

पाप कभी नहीं कहीं छूट सकता विना भोगे अथवा नहीं कटते "तपोवन" जब होगा तब होगा। अब तो "भिक्षुकवन" है। तपोवन में जाने रहने से तप नहीं होता, किन्तु तप तो करने से होता है क्योंकि वहां बहुतसे दुकानदार झूठ बोलनेवाले भी रहते हैं। "हिमवतः प्रभवति गंगा" पहाड़ के ऊपर से जल गिरता है। गोमुख का आकार पोपलीला से बनाया होगा और वही पहाड़ पोप का स्वर्ग है। वहां उत्तर काशी आदि स्थान ध्यानियों के लिये अच्छा है परन्तु दुकानदारों के लिये वहां भी दुकानदारी है। देवप्रयाग पुराण के गपोड़ों की लीला है अर्थात् जहां अलखनन्दा और गंगा मिली है इसलिये वहां देवता बसते हैं ऐसे गपोड़े न मारें तो वहां कौन जाय ? और टका कौन देवे ? गुप्त-काशी तो नहीं है वह तो प्रसिद्ध काशी है। तीन युग की धूनी तो नहीं दीखती परन्तु पोपों की दश बीस पीढ़ी की होगी जैसी खाखियों की धूनी और पार्सियों की अग्यारी सदैव जलती रहती है। तप्तकुण्ड भी पहाड़ों के भीतर ऊष्मा गर्मी होती है उसमें तपकर जल आता है। उसके पास दूसरे कुण्ड में ऊपर का जल वा जहां गर्मी नहीं वहां का आता है। इससे ठण्डा है, केदार का स्थान वह भूमि बहुत अच्छी है। परन्तु वहां भी एक जमे हुए पत्थर पर पोप वा पोपों के चेलों ने मन्दिर बना रक्खा है। वहां महन्त पुजारी पंडे आंख के अंधे गांठ के पूरों से माल लेकर विषयानन्द करते हैं। वैसे ही बदरी-नारायण में ठग विद्यावाले बहुतसे बैठे हैं "रावलजी" वहां के मुख्य हैं। एक स्त्री छोड़ अनेक स्त्री रख बैठे हैं। पशुपति एक मन्दिर और पंचमुखी मूर्त्ति का नाम धर रक्खा है। जब कोई न पूछे तभी पोपलीला बलवती होती है। परन्तु जैसे तीर्थ के लोग धूर्त धनहरे होते हैं वैसे पहाड़ी लोग नहीं होते वहां की भूमि बड़ी रमणीय और पवित्र है। (प्रश्न) विन्ध्याचल में विंध्येश्वरी काली अष्टभुजा प्रत्यक्ष सत्य है। विन्ध्येश्वरी तीन समय में तीनरूप बदलती है और उसके बाड़े में मक्खी एक भी नहीं होती। प्रयाग तीर्थराज वहां शिर मुण्डाये सिद्धि गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से इच्छासिद्धि होती है, वैसे ही अयोध्या कई वार उड़कर सब वस्ती सहित स्वर्ग में चली गई। मथुरा सब तीर्थों से अधिक, वृन्दावन लीलास्थान और गोबर्द्धन ब्रजयात्रा बड़े भाग्य

से होती है। सूर्यग्रहण में कुरुक्षेत्र में लाखों मनुष्यों का मेला होता है क्या ये सब बातें मिथ्या हैं ? (उत्तर) प्रत्यक्ष तो आंखों से तीनों मूर्त्तियां दीखती हैं कि पाषाण की मूर्त्तियां हैं और तीन काल में तीन प्रकार के रूप होने का कारण पूजारी लोगों के वस्त्र आदि आभूषण पहिराने की चतुराई है और मक्खियां सहस्रों लाखों होती हैं। मैंने अपनी आंखों से देखा है। प्रयाग में कोई नापित श्लोक बनानेहारा अथवा पोपजी को कुछ धन देके मुण्डन कराने का माहात्म्य बनाया वा बनवाया होगा। प्रयाग में स्नान करके स्वर्ग को जाता तो लौटकर घर में आता कोई भी नहीं दीखता, किन्तु घर को सब आते हुए दीखते हैं अथवा जो कोई वहां डूब मरता और उसका जीव भी आकाश में वायु के साथ घूमकर जन्म लेता होगा। तीर्थराज भी नाम पोपों ने धरा है। जड़ में राजा प्रजाभाव कभी नहीं हो सकता। यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी वस्ती, कुत्ते, गधे, भंगी, चमार, जाजरू सहित तीन वार स्वर्ग में गई। स्वर्ग में तो नहीं गई वहीं की वहीं है परन्तु पोपजी के मुख गपोड़ों में अयोध्या स्वर्ग को उड़गई। यह गपोड़ा शब्दरूप उड़ता फिरता है। ऐसे ही नैमिषारण्य आदि की भी पोपलीला जाननी "मथुरा तीन लोक से निराली" तो नहीं परन्तु उसमें तीन जन्तु बड़े लीलाधारी हैं कि जिनके मारे जल, स्थल और अन्तरिक्ष में किसी को सुख मिलना कठिन है। एक चौबे जो कोई स्नान करने जाय अपना कर लेने को खड़े रहकर बकते रहते हैं। लाओ यजमान ! भांग मर्ची और लड्डू खावें, पीवें। यजमान की जय २ मनावें। दूसरे जल में कछुवे काट ही खाते हैं जिनके मारे स्नान करना भी घाट पर कठिन पड़ता है। तीसरे आकाश के ऊपर लाल मुख के बन्दर पगड़ी, टोपी गहने और जूते तक भी न छोड़ें, काट खावें, धक्के दे गिरा मारडालें और ये तीनों पोप और पोपजी के चेलों के पूजनीय हैं। मनों चना आदि अन्न कछुवे और बन्दरों को चना गुड़ आदि और चौबों की दक्षिणा और लड्डुओं से उनके सेवक सेवा किया करते हैं। और वृन्दावन जब था तब था, अब तो वेश्यावनवत् लल्ला लल्ली और गुरु चेली आदि की लीला फैल रही है। वैसे ही दीपमालिका का मेला गोवर्द्धन और व्रजयात्रा में भी पोपों की बन पड़ती है।

कुरुक्षेत्र में भी वही जीविका की लीला समझ लो। इनमें जो कोई धार्मिक परोपकारी पुरुष है इस पोपलीला से पृथक् हो जाता है। (प्रश्न) यह मूर्त्तिपूजा और तीर्थ सनातन से चले आते हैं झूठे क्योंकर हो सकते हैं? (उत्तर) तुम सनातन किसको कहते हो। जो सदा से चला आता है। जो यह सदा से होता तो वेद और ब्राह्मणादि ऋषिमुनिकृत पुस्तकों में इन का नाम क्यों नहीं? यह मूर्त्तिपूजा अढ़ाई तीन सहस्र वर्ष के इधर २ वाममार्गी और जैनियों से चली है। प्रथम आर्यावर्त्त में नहीं थी। और ये तीर्थ भी नहीं थे। जब जैनियों ने गिरनार, पालिटाना, शिखर, शत्रुञ्जय और आबू आदि तीर्थ बनाये उनके अनुकूल इन लोगों ने भी बना लिये। जो कोई इनके आरम्भ की परीक्षा करना चाहें वे पंडों की पुरानी से पुरानी बही और तांबे के पत्र आदि लेख देखें, तो निश्चय हो जायगा कि ये सब तीर्थ पांचसौ अथवा एक सहस्र वर्ष से इधर ही बने हैं। सहस्र वर्ष के उधर का लेख किसी के पास नहीं निकलता, इससे आधुनिक हैं (प्रश्न) जो २ तीर्थ वा नाम का माहात्म्य अर्थात् जैसे "अन्यक्षेत्रे कृतं पापं काशीक्षेत्रे विनश्यति" इत्यादि बातें हैं वे सच्ची हैं वा नहीं? (उत्तर) नहीं, क्योंकि जो पाप छूट जाते हों तो दरिद्रों को धन, राजपाट, अन्धों को आंख मिल जाती, कोढ़ियों का कोढ़ आदि रोग छूट जाता, ऐसा नहीं होता। इसलिये पाप वा पुण्य किसी का नहीं छूटता (प्रश्न)

गङ्गागङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥ १॥
हरिर्हरति पापानि हरिरित्यक्षरद्वयम्॥ २॥
प्रातःकाले शिवं दृष्ट्वा निशिपापं विनश्यति।
आजन्मकृतं मध्याह्ने सायाह्ने सप्तजन्मनाम्॥ ३॥

इत्यादि श्लोक पोपपुराण के हैं जो सैकड़ों सहस्रों कोश दूर से भी गङ्गा २ कहे तो उसके पाप नष्ट होकर वह विष्णुलोक अर्थात् वैकुण्ठ को जाता है॥ १॥ "हरि" इन दो अक्षरों का नामोच्चारण सब पाप को हर लेता है वैसे ही राम, कृष्ण, शिव, भगवती आदि नामों का माहात्म्य है॥ २॥ और जो

मनुष्य प्रातःकाल में शिव अर्थात् लिंग वा उसकी मूर्त्ति का दर्शन करे तो रात्रि में किया हुआ, मध्याह्न में दर्शन से जन्म भर का, सायङ्काल में दर्शन करने से सात जन्मों का पाप छूट जाता है। यह दर्शन का माहात्म्य है ॥ १ ॥ क्या झूठा होजायगा ? (उत्तर) मिथ्या होने में क्या शङ्का ? क्योंकि गङ्गा २ वा हरे, राम, कृष्ण, नारायण, शिव और भगवती नामस्मरण से पाप कभी नहीं छूटता। जो छूटे तो दुखी कोई न रहे। और पाप करने से कोई भी न डरे। जैसे आजकल पोपलीला में पाप बढ़ कर हो रहे हैं मूढ़ों को विश्वास है कि हम पाप कर नामस्मरण वा तीर्थयात्रा करेंगे तो पापों की निवृत्ति हो जायगी। इसी विश्वास पर पाप करके इस लोक और परलोक का नाश करते हैं। पर किया हुआ पाप भोगना ही पड़ता है। (प्रश्न) तो कोई तीर्थ नामस्मरण सत्य है वा नहीं ? (उत्तर) है—वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग, परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना, सत्य करना, ब्रह्मचर्य्य, आचार्य्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा, परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना, शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारनेवाले होने से तीर्थ हैं। और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि "जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि" मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तरानेवाले नहीं किन्तु डुबाकर मारनेवाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं॥

समानतीर्थे वासी ॥ अ० ४ । पा० ४ । १०८ ॥

नमस्तीर्थ्याय च ॥ यजुः ॥ अ० १६ ॥ [मं० ४२]

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य्य और एक शास्त्र को साथ २ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ्य अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं। नामस्मरण इसको कहते हैं कि—

यस्य नाम महद्यशः ॥ यजुः ॥ [अ० ३२ । मं० ३]

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म सब से बड़ा, परमेश्वर ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी कभी अन्याय नहीं करता, दयालु सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् अपने सामर्थ्य ही से सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता सहाय किसी का नहीं लेता, ब्रह्मा विविध जगत् के पदार्थों का बनानेहारा, विष्णु सब में व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव सब देवों का देव, रुद्र प्रलय करनेहारा आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाय, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रक्खे, सब प्रकार के साधनों को समर्थ करे, शिल्पविद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख दुःख समझे, सब की रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करनेवालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे, इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है। (प्रश्न)–

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इत्यादि गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो रामके तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरुजी कैसा ही पाप करें तो भी अश्रद्धा न करनी, सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग २ में अश्वमेध का फल होता है यह बात ठीक है वा नहीं? (उत्तर) ठीक नहीं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरु-

गीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्घ्य पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ दोष नहीं। जो विद्यादि सद्-गुणों में गुरुत्व नहीं है झूठ मूंठ कण्ठी तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चेले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं वे—

दो०—गुरु लोभी चेला लालची, दोनो खेलें दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पथर की नाव॥

गुरु समझें कि चेले चेली कुछ न कुछ देवेंहींगे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगंद खाने, पाप छुड़ाने आदि। लालच से दोनों कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं, जैसे पत्थर की नौका में बैठनेवाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे जो रहे वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसी इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है (प्रश्न)—

अष्टादशपुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः॥ १॥
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्॥ २॥ महाभारत॥
पुराणान्यखिलानि च॥ ३॥ मनु०॥
इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेदः॥ ४॥
छान्दोग्य०। प्र० ७। खं० १॥

दशमेऽहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत ॥ ५ ॥
पुराणविद्या वेदः ॥ ६ ॥ सूत्र ॥

अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये ॥ १ ॥ इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुकूल हैं ॥ २ ॥ पितृकर्म में पुराण और खिल अर्थात् हरिवंश की कथा सुनें ॥ ३ ॥ अश्वमेध की समाप्ति में दशवें दिन थोड़ीसी पुराण की कथा सुनें ॥ ४ ॥ पुराण विद्या वेदार्थ के जानने ही से वेद हैं ॥ ५ ॥ इतिहास और पुराण पंचम वेद कहाते हैं ॥ ६ ॥ इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इनके प्रमाणों से मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है क्योंकि पुराणों में मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का विधान है। (उत्तर) जो अठारह पुराणों के कर्त्ता व्यासजी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते क्योंकि शारीरिकसूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रंथों के देखने से विदित होता है कि व्यासजी बड़े विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रंथ बनाये हैं उनमें व्यासजी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास सदृश विद्वानों का काम नहीं किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् पामरों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं किन्तु—

ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानि कल्पान् गाथानाराशंसीरिति ॥

यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रंथों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद। (पुराण) जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन। (कल्प) वेद शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन अर्थ निरूपण करना। (गाथा) किसी का दृष्टान्त दार्ष्टान्तरूप कथा प्रसंग कहना।

(नाराशंसी) मनुष्यों के प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मों का कथन करना। इनही से वेदार्थ का बोध होता है। पितृकर्म अर्थात् ज्ञानियों की प्रशंसा में कुछ सुनना, अश्वमेध के अन्त में भी इन्हीं का सुनना लिखा है क्योंकि जो व्यासकृत ग्रंथ हैं उनका सुनना सुनाना व्यासजी के जन्म के पश्चात् हो सकता है पूर्व नहीं। जब व्यासजी का जन्म भी नहीं था तब वेदार्थ को पढ़ते पढ़ाते सुनते सुनाते थे। इसलिये सब से प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थों ही में यह सब घटना हो सकती ह। इन नवीन कपोलकल्पित श्रीमद्भागवत शिवपुराणादि मिथ्या वा दूषित ग्रंथों में नहीं घट सकती। जब व्यासजी ने वेद पढ़े और पढ़ाकर वेदार्थ फैलाया इसलिये उनका नाम "वेदव्यास" हुआ। क्योंकि व्यास कहते हैं वार पार की मध्य रेखा को अर्थात् ऋग्वेद के आरम्भ से लेकर अथर्ववेद के पार पर्यन्त चारों वेद पढ़े थे और शुकदेव तथा जैमिनि आदि शिष्यों को पढ़ाये भी थे। नहीं तो उनका जन्म का नाम "कृष्णद्वैपायन" था। जो कोई यह कहते हैं कि वेदों को व्यासजी ने इकट्ठे किये यह बात झूठी है क्योंकि व्यासजी के पिता, पितामह, प्रपितामह, पराशर शक्ति, वशिष्ठ और ब्रह्मा आदि ने भी चारों वेद पढ़े थे। यह बात क्योंकर घट सके? (प्रश्न) पुराणों में सब बातें झूठी हैं वा कोई सची भी है? (उत्तर) बहुतसी बातें झूठी हैं और कोई घुणाक्षरन्याय से सची भी है। जो सची है वह वेदादि सत्यशास्त्रों की और जो झूठी हैं वे इन पोपों के पुराणरूप घर की हैं। जैसे शिवपुराण में शैवों ने शिव को परमेश्वर मान के विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, गणेश और सूर्य्यादि को उनके दास ठहराये। वैष्णवों ने विष्णुपुराण आदि में विष्णु को परमात्मा माना और शिव आदि को विष्णु के दास। देवीभागवत में देवी को परमेश्वरी और शिव, विष्णु आदि को उसके किंकर बनाये। गणेशखण्ड में गणेश को ईश्वर शेष सब को दास बनाये। भला यह बात इन सम्प्रदायी पोपों की नहीं तो किनकी है? एक मनुष्य के बनाने में ऐसी परस्पर विरुद्ध बात नहीं होती तो विद्वान् के बनाये में कभी नहीं आ सकती। इसमें एक बात को सच्ची मानें तो दूसरी झूठी और जो दूसरी को सच्ची मानें तो तीसरी झूठी और जो तीसरी को सच्ची मानें तो अन्य सब झूठी होती हैं। शिवपुराणवाले

शिव से, विष्णुपुराणवालों ने विष्णु से, देवीपुराणवाले ने देवी से, गणेशखण्डवाले ने गणेश से सूर्य्यपुराणवाले ने सूर्य्य से और वायुपुराणवाले ने वायु से सृष्टि की उत्पत्ति प्रलय लिखके पुनः एक एक से एक एक जो जगत् के कारण लिखे उनकी उत्पत्ति एक एक से लिखी। कोई पूछे कि जो जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलय करनेवाला है वह उत्पन्न और जो उत्पन्न होता है वह सृष्टि का कारण कभी हो सकता है वा नहीं ? तो केवल चुप रहने के सिवाय कुछ भी नहीं कह सकते और इन सब के शरीर की उत्पत्ति भी इसी से हुई होगी फिर वे आप सृष्टिपदार्थ और परिच्छिन्न होकर संसार की उत्पत्ति के कर्त्ता क्योंकर होसकते हैं ? और उत्पत्ति भी विलक्षण २ प्रकार से मानी है जो कि सर्वथा असम्भव है जैसे—

शिवपुराण में शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूं तो एक नारायण जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभी से कमल, कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जलकी अञ्जलि उठा देख जल में पटक दी। उससे एक बुद्बुदा उठा और बुद्बुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र ! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र वर्षपर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे। तब महादेव ने विचार किया कि जिनको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था वे दोनों आपस में लड़ झगड़ रहे हैं। तब उन दोनों के बीच में से एक तेजोमय लिंग उत्पन्न हुआ और वह शीघ्र आकाश में चला गया उसको देख के दोनों आश्चर्य होगये। विचारा कि इस का आदि अन्त लेना चाहिये। जो आदि अन्त लेके शीघ्र आवे वह पिता और जो पीछे वा थाह लेके न आवे वह पुत्र कहावे। विष्णु कूर्म का स्वरूप धर के नीचे को चला और ब्रह्मा हंस का शरीर धारण करके ऊपर को उड़ा। दोनों मनोवेग से चले। दिव्यसहस्र वर्षपर्य्यन्त दोनों चलते रहे तो भी उसका अन्त न पाया। तब नीचे से ऊपर विष्णु और ऊपर से नीचे ब्रह्मा ने विचारा कि जो वह छेड़ा ले आया होगा तो मुझ को पुत्र बनना पड़ेगा। ऐसा सोच रहा था कि उसी समय एक गाय

और एक केतकी का वृक्ष ऊपर से उतर आया उनसे ब्रह्मा ने पूछा कि तुम कहां से आये ? उन्होंने कहा हम सहस्र वर्षों से इस लिंग के आधार से चले आते हैं। ब्रह्मा ने पूछा कि इस लिंग का थाह है वा नहीं ? उन्होंने कहा कि नहीं। ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम हमारे साथ चलो और ऐसी साक्षी देओ कि मैं इस लिंग के शिरपर दूध की धारा वर्षाती थी और वृक्ष कहे कि मैं फूल वर्षाता था, ऐसी साक्षी देओ तो मैं तुमको ठिकाने पर ले चलूं। उन्होंने कहा कि हम झूठी साक्षी नहीं देंगे। तब ब्रह्मा कुपित होकर बोला जो साक्षी नहीं देओगे तो मैं तुमको अभी भस्म करे देता हूं ! तब दोनों ने डर के कहा कि हम जैसी तुम कहते हो वैसी साक्षी देवेंगे ; तब तीनों नीचे की ओर चले। विष्णु प्रथम ही आगये थे ब्रह्मा भी पहुंचा। विष्णु से पूछा कि तू थाह ले आया वा नहीं ? तब विष्णु बोला मुझको इस का थाह नहीं मिला, ब्रह्मा ने कहा मैं ले आया। विष्णु ने कहा कोई साक्षी देओ। तब गाय और वृक्ष ने साक्षी दी। हम दोनों लिंग के शिर पर थे। तब लिंग में से शब्द निकला और वृक्ष को शाप दिया कि जिससे तू झूठ बोला इसलिये तेरा फूल मुझ वा अन्य देवता पर जगत् में कहीं नहीं चढ़ेगा और जो कोई चढ़ावेगा उसका सत्यानाश होगा। गाय को शाप दिया कि जिस मुख से तू झूठ बोली उसीसे विष्ठा खाया करेगी। तेरे मुख की पूजा कोई नहीं करेगा किन्तु पूंछ की करेंगे। और ब्रह्मा को शाप दिया कि जिससे तू मिथ्या बोला इसलिये तेरी पूजा संसार में कहीं न होगी। और विष्णु को वर दिया कि जिससे तू सत्य बोला इससे तेरी पूजा सर्वत्र होगी। पुनः दोनों ने लिंग की स्तुति की। उससे प्रसन्न होकर उस लिंग में से एक जटाजूट मूर्त्ति निकल आई और कहा कि तुमको मैंने सृष्टि करने के लिये भेजा था झगड़े में क्यों लगे रहे ? ब्रह्मा और विष्णु ने कहा कि हम विना सामग्री सृष्टि कहां से करें। तब महादेव ने अपनी जटा में से एक भस्म का गोला निकाल कर दिया कि जाओ इसमें से सब सृष्टि बनाओ इत्यादि। भला कोई इन पुराणों के बनानेवाले पोपों से पूछे कि जब सृष्टि तत्त्व और पंचमहाभूत भी नहीं थे तो ब्रह्मा विष्णु महादेव के शरीर, जल, कमल, लिंग, गाय और केतकी का वृक्ष और भस्म का गोला क्या तुम्हारे बाबा के घर में से आगिरे ?॥१३॥

वैसे ही भागवत में विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दहिने पग के अंगूठे से स्वायंभुव और बायें अंगूठे से सत्यरूपा राणी, ललाट से रुद्र और मरीचि आदि दश पुत्र, उनसे दश प्रजापति, उनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से, उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊंट, गधा, भैंसा, घास, फूस और बबूर आदि वृक्ष कांटे सहित उत्पन्न होगये। वाहरे वाह! भागवत के बनानेवाले लालबुझक्कड़! क्या कहना तुझको, ऐसी २ मिथ्या बातें लिखने में तनिक भी लज्जा और शरम न आई निपट अन्धा ही बनगया। भला स्त्री पुरुष के रजवीर्य के संयोग से मनुष्य तो बनते ही हैं परन्तु परमेश्वर की सृष्टिक्रम के विरुद्ध पशु, पक्षी, सर्प आदि कभी उत्पन्न नहीं होसकते। और हाथी, ऊंट, सिंह, कुत्ता, गधा और वृक्षादि का स्त्री के गर्भाशय में स्थित होने का अवकाश भी कहां हो सकता है? और सिंह आदि उत्पन्न होकर अपने मा बाप को क्यों न खागये? और मनुष्य-शरीर से पशु पक्षी वृक्षादि का उत्पन्न होना क्योंकर संभव होसकता है? धिकार है पोप और पोपरचित इस महा असम्भव लीला को जिसने संसार को अभी तक भ्रमा रक्खा है। भला इन महा झूठ बातों को वे अंधे पोप और बाहर भीतर की फूटी आंखोंवाले उनके चेले सुनते और मानते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है कि ये मनुष्य हैं वा अन्य कोई!!! इन भागवतादि पुराणों के बनानेहारे क्यों नहीं गर्भ ही में नष्ट होगये? वा जन्मते समय मर क्यों न गये? क्योंकि इन पापों से बचते तो आर्यावर्त्त देश दुःखों से बच जाता।

(प्रश्न) इन बातों में विरोध नहीं आसकता क्योंकि "जिसका विवाह उसी का गीत" जब विष्णु की स्तुति करने लगे तब विष्णु को परमेश्वर अन्य को दास, जब शिव के गुण गाने लगे तब शिव को परमात्मा अन्य को किंकर बनाया। और परमेश्वर की माया में सब बन सकता है। मनुष्य से पशु आदि और पशु आदि से मनुष्यादि की उत्पत्ति परमेश्वर कर सकता है देखो! विना कारण अपनी माया से सब सृष्टि खड़ी कर दी है। उस में कौनसी बात अघटित है? जो करना चाहे सो सब कर सकता है। (उत्तर)

अरे भोले लोगो ! विवाह में जिसके गीत गाते हैं उसको सब से बड़ा और दूसरों को छोटा वा निन्दा अथवा उसको सब का बाप तो नहीं बनाते ? कहो पोपजी तुम भाट और खुशामदी चारणों से भी बढ़कर गप्पी हो अथवा नहीं ? कि जिसके पीछे लगो उसी को सब से बड़ा बनाओ और जिससे विरोध करो उसको सब से नीच ठहराओ । तुमको सत्य और धर्म से क्या प्रयोजन ? किन्तु तुमको तो अपने स्वार्थ ही से काम है । माया मनुष्य में हो सकती है । जो कि छली कपटी है उन्हीं को मायावी कहते हैं । परमेश्वर में छल कपटादि दोष न होने से उसको मायावी नहीं कह सकते । जो आदि सृष्टि में कश्यप और कश्यप की स्त्रियों से पशु, पक्षी, सर्प्प, वृक्षादि हुए होते तो आजकल भी वैसे सन्तान क्यों नहीं होते ? सृष्टिक्रम जो पहिले लिख आये वही ठीक है । और अनुमान है कि पोपजी यहीं से धोखा खाकर बके होंगे——

तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः ॥ [शत० ७ । ५ । १ । ५]
शतपथ में यह लिखा है कि यह सब सृष्टि कश्यप की बनाई हुई है ॥
कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति ॥ निरु० [अ० २ । खं० २]

सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर का नाम कश्यप इसलिये है कि पश्यक अर्थात् "पश्यतीति पश्यः पश्य एव पश्यकः" जो निर्भ्रम होकर चराचर जगत्, सब जीव और इनके कर्म, सकल विद्याओं को यथावत् देखता है और "आद्यन्तविपर्ययश्च" इस महाभाष्य के वचन से आदि का अक्षर अन्त और अन्त का वर्ण आदि में आने से "पश्यक" से "कश्यप" बन गया है । इसका अर्थ न जान के भांग के लोटे चढ़ा अपना जन्म सृष्टिविरुद्ध कथन करने में नष्ट किया ॥

जैसे मार्कण्डेयपुराण के दुर्गापाठ में देवों के शरीरों से तेज निकल के एक देवी बनी उसने महिषासुर को मारा । रक्तबीज के शरीर से एक बिन्दु भूमि में पड़ने से उसके सदृश रक्तबीज के उत्पन्न होने से सब जगत् में रक्तबीज भरजाना, रुधिर की नदी बह चलनी आदि गपोड़े बहुत से लिख रक्खे हैं । जब रक्तबीज से सब जगत् भरगया था तो देवी और देवी का सिंह और

उसकी सेना कहां रही थी ? जो कहो कि देवी से दूर २ रक्तबीज थे तो सब जगत् रक्तबीज से नहीं भरा था ? जो भर जाता तो पशु, पक्षी, मनुष्यादि प्राणी और जलस्थ मगर, मच्छ, कच्छप, मत्स्यादि, वनस्पति आदि वृक्ष कहां रहते ? । यहां यही निश्चित जानना कि दुर्गापाठ बनानेवाले पोप के घर में भागकर चले गये होंगे !!! देखिये क्या ही असंभव कथा का गपोड़ा भंग की लहरी में उड़ाया जिनका ठौर न ठिकाना ॥

अब जिसको "श्रीमद्भागवत" कहते हैं उसकी लीला सुनो । ब्रह्माजी को नारायण ने चतुःश्लोकी भागवत का उपदेश किया--

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ॥
[भा० स्कं० २ । अ० ९ । श्लोक ३०]

जब भागवत का मूल ही झूठा है तो उसका वृक्ष क्यों न झूठा होगा ?

अर्थ—हे ब्रह्माजी ! तू मेरा परमगुह्य ज्ञान जो विज्ञान और रहस्ययुक्त और धर्म अर्थ काम मोक्ष का अंग है उसी का मुझ से ग्रहण कर । जब विज्ञानयुक्त ज्ञान कहा तो परम अर्थात् ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है और गुह्य विशेषण से रहस्य भी पुनरुक्त है । जब मूल श्लोक अनर्थक है तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं ? ब्रह्माजी को वर दिया कि–

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥
भाग० [स्कं० २ । अ० ९ । श्लोक ३६]

आप कल्प सृष्टि और विकल्प प्रलय में भी मोह को कभी न प्राप्त होंगे ऐसा लिख के पुनः दशमस्कन्ध में मोहित होके वत्सहरण किया । इन दोनों में से एक बात सच्ची दूसरी झूठी । ऐसा होकर दोनों बात झूठी । जब वैकुण्ठ में राग, द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, दुःख नहीं है तो सनकादिकों को वैकुण्ठ के द्वार में क्रोध क्यों हुआ ? जो क्रोध हुआ तो वह स्वर्ग ही नहीं । तब जय विजय

द्वारपाल थे। स्वामी की आज्ञा पालनी अवश्य थी। उन्होंने सनकादिकों को रोका तो क्या अपराध हुआ ? इस पर विना अपराध शाप ही नहीं लग सकता। जब शाप लगा कि तुम पृथिवी में गिर पड़ो इसके कहने से यह सिद्ध होता है कि वहां पृथिवी न होगी। आकाश, वायु, अग्नि और जल होगा तो ऐसा द्वार मन्दिर और जल किसके आधार थे ? पुनः जय विजय ने सनकादिकों की स्तुति की कि महाराज ! पुनः हम वैकुण्ठ में कब आवेंगे। उन्होंने उनसे कहा कि जो प्रेम से नारायण की भक्ति करोगे तो सातवें जन्म और जो विरोध से भक्ति करोगे तो तीसरे जन्म वैकुण्ठ को प्राप्त होओगे। इसमें विचारना चाहिये कि जय विजय नारायण के नौकर थे। उनकी रक्षा और सहाय करना नारायण का कर्त्तव्य काम था। जो अपने नौकरों को विना अपराध दुःख देवें उनको उनका स्वामी दंड न देवे तो उसके नौकरों की दुर्दशा सब कोई कर डाले। नारायण को उचित था कि जय विजय का सत्कार और सनकादिकों को खूब दण्ड देते क्योंकि उन्होंने भीतर आने के लिये हठ क्यों किया ? और नौकरों से लड़े क्यों ? शाप दिया उनके बदले सनकादिकों को पृथिवी में डाल देना नारायण का न्याय था। जब इतना अन्धेर नारायण के घर में है तो उसके सेवक जो कि वैष्णव कहाते हैं उनकी जितनी दुर्दशा हो उतनी थोड़ी है। पुनः वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु उत्पन्न हुए। उन में से हिरण्याक्ष को वराह ने मारा। उसकी कथा इस प्रकार से लिखी है कि वह पृथिवी को चटाई के समान लपेट शिराने धर सो गया। विष्णु ने वराह का स्वरूप धारण करके उसके शिर के नीचे से पृथिवी को मुख में धर लिया वह उठा। दोनों की लड़ाई हुई। वराह ने हिरण्याक्ष को मारडाला। इन पोपों से कोई पूछे कि पृथिवी गोल है वा चटाई के समान ? तो कुछ न कह सकेंगे, क्योंकि पौराणिक लोग भूगोलविद्या के शत्रु हैं। भला जब लपेट कर शिराने धरली आप किस पर सोया ? और वराह किस पर पग धर के दौड़ आये ? पृथिवी को तो वराहजी ने मुख में रक्खी फिर दोनों किस पर खड़े होके लड़े ? वहां तो और कोई ठहरने की जगह नहीं थी किन्तु भागवतादि पुराण बनानेवाले पोपजी की छाती पर ठड़े होके लड़े होंगे ? परन्तु पोपजी किस पर सोया होगा ? यह बात इस प्रकार की

है जैसे "गप्पी के घर गप्पी आये बोले गप्पीजी" जब मिथ्यावादियों के घर में दूसरे गप्पी लोग आते हैं फिर गप्प मारने में क्या कमती! अब रहा हिरण्यकश्यप उस का लड़का जो प्रह्लाद था वह भक्त हुआ था। उसका पिता पढ़ाने को पाठशाला में भेजता था। तब वह अध्यापकों से कहता था कि मेरी पट्टी में राम राम लिख देओ। जब उसके बाप ने सुना उससे कहा तू हमारे शत्रु का भजन क्यों करता है? छोकरे ने न माना। तब उसके बापने उसको बांध के पहाड़ से गिराया, कूप में डाला, परन्तु उसको कुछ न हुआ। तब उसने एक लोहे का खंभा आगी में तपाके उससे बोला जो तेरा इष्टदेव राम सच्चा हो तो तू इसको पकड़ने से न जलेगा। प्रह्लाद पकड़ने को चला। मन में शङ्का हुई जलने से बचूंगा वा नहीं? नारायण ने उस खंभे पर छोटी २ चीटियों की पंक्ति चलाई। उसको निश्चय हुआ झट खंभे को जा पकड़ा। वह फट गया, उस में से नृसिंह निकला और उसके बाप को पकड़ पेट फाड़डाला। पश्चात् प्रह्लाद को लाड़ से चाटने लगा। प्रह्लाद से कहा वर मांग। उसने अपने पिता की सद्गति होनी मांगी। नृसिंह ने वर दिया कि तेरे इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये। अब देखो! यह भी दूसरे गपोड़े का भाई गपोड़ा है। किसी भागवत सुनने वा बांचनेवाले को पकड़ के ऊपर पहाड़ से गिरावे तो कोई न बचावे चकनाचूर होकर मर ही जावे। प्रह्लाद को उसका पिता पढ़ने के लिये भेजता था क्या बुरा काम किया था? और वह प्रह्लाद ऐसा मूर्ख पढ़ना छोड़ वैरागी होना चाहता था। जो जलते हुए खंभे से कीड़ी चढ़ने लगी और प्रह्लाद स्पर्श करने से न जला इस बात को जो सच्ची माने उसको भी खंभे के साथ लगा देना चाहिये। जो यह न जले तो जानो वह भी न जला होगा और नृसिंह भी क्यों न जला? प्रथम तीसरे जन्म में बैकुण्ठ में आने का वर सनकादिक का था। क्या उसको तुम्हारा नारायण भूल गया? भागवत की रीति से ब्रह्मा, प्रजापति, कश्यप, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु चौथी पीढ़ी में होता है। इक्कीस पीढ़ी प्रह्लाद की हुई भी नहीं पुनः इक्कीस पुरुषे सद्गति को गये कह देना कितना प्रमाद है! और फिर वे ही हिरण्याक्ष, हिरण्यकश्यपु, रावण, कुम्भकरण, पुनः शिशुपाल दन्तवक्र उत्पन्न हुए तो

नृसिंह का वर कहां उड़ गया ? ऐसी प्रमाद की बातें प्रमादी करते, सुनते और मानते हैं विद्वान् नहीं ।

और अक्रूरजी--

रथेन वायुवेगेन ॥ [भा० स्कं० १० । अ० ३९ । श्लोक ३८]

जगाम गोकुलं प्रति ॥ [भा० स्कं० १० । पू० अ० ३८ । श्लोक २४]

अक्रूरजी कंस के भेजने से वायु के वेग के समान दौड़नेवाले घोड़ों के रथ पर बैठके सूर्योदय से चले और चार मील गोकुल में सूर्यास्त समय पहुंचे अथवा घोड़े भागवत बनानेवाले की परिक्रमा करते रहे होंगे ? वा मार्ग भूलकर भागवत बनानेवाले के घर में घोड़े हांकने वाले और अक्रूरजी आकर सोगये होंगे ? ॥

पूतना का शरीर छः कोश चौड़ा और बहुतसा लम्बा लिखा है । मथुरा और गोकुल के बीच में उसको मारकर श्रीकृष्णजी ने डाल दिया । ऐसा होता तो मथुरा और गोकुल दोनों दबकर इस पोपजी का घर भी दब गया होता ॥

और अजामेल की कथा ऊटपटांग लिखी है--उसने नारद के कहने से अपने लड़के का नाम "नारायण" रक्खा था । मरते समय अपने पुत्र को पुकारा । बीच में नारायण कूद पड़े । क्या नारायण उसके अन्तःकरण के भाव को नहीं जानते थे कि वह अपने पुत्र को पुकारता है मुझ को नहीं । जो ऐसा ही नाम माहात्म्य है तो आजकल भी नारायण के स्मरण करनेवालों के दुःख छुड़ाने को क्यों नहीं आते । यदि यह बात सच्ची हो तो कैदी लोग नारायण २ करके क्यों नहीं छूट जाते ? ऐसा ही ज्योतिष् शास्त्र से विरुद्ध सुमेरु पर्वत का परिमाण लिखा है और प्रियव्रत राजा के रथ के चक्र की लीक से समुद्र हुए उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है । इत्यादि मिथ्या बातों का गपोड़ा भागवत में लिखा है जिसका कुछ पारावार नहीं ॥

और यह भागवत बोबदेव का बनाया है जिसके भाई जयदेव ने गीत-गोविन्द बनाया है । देखो ! उसने ये श्लोक अपने बनाये "हिमाद्रि" नामक

ग्रन्थ में लिखे हैं कि श्रीमद्भागवतपुराण मैंने बनाया है उस लेख के तीन पत्र हमारे पास थे। उनमें से एक पत्र खोगया है। उस पत्र में श्लोकों का जो आशय था उस आशय के हमने दो श्लोक बना के नीचे लिखे हैं जिसको देखना हो वह हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे—

हिमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना ।
स्कन्धाऽध्यायकथानां च यत्प्रमाणं समासतः ॥ १ ॥
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम् ।
विदुषा बोबदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोन्वितम् ॥ २ ॥

इसी प्रकार के नष्टपत्र में श्लोक थे अर्थात् राजा के सचिव हिमाद्रि ने बोबदेव पंडित से कहा कि मुझको तुम्हारे बनाये श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण सुनने का अवकाश नहीं है इसलिये तुम संक्षेप से श्लोकबद्ध सूचीपत्र बनाओ जिसको देख के मैं श्रीमद्भागवत की कथा को संक्षेप से जान लूं। सो नीचे लिखा हुआ सूचीपत्र उस बोबदेव ने बनाया। उस में से उस नष्टपत्र में १० श्लोक खोगये हैं ग्यारहवें श्लोक से लिखते हैं, ये नीचे लिखे श्लोक सब बोबदेव के बनाये हैं वे—

बोधन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः ।
पञ्च प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु ॥ ११ ॥
प्रश्नावतारयोश्चैव व्यासस्य निर्वृतिः कृतात् ।
नारदस्यात्र हेतूक्तिः प्रतीत्यर्थं स्वजन्म च ॥ १२ ॥
सुप्तघ्नं द्रौण्यभिभवस्तदस्त्रात्पाण्डवा वनम् ।
भीष्मस्य स्वपदप्राप्तिः कृष्णस्य द्वारिकागमः ॥ १३ ॥
श्रोतुः परीक्षितो जन्म धृतराष्ट्रस्य निर्गमः ।
कृष्णमर्त्यत्यागसूचा ततः पार्थमहापथः ॥ १४ ॥
इत्यष्टादशभिः पादैरध्यायार्थः क्रमात् स्मृतः ।
स्वपरप्रतिबन्धोनं स्फीतं राज्यं जहौ नृपः ॥ १५ ॥
इति वैराग्यो दार्ढ्योक्तौ प्रोक्ता द्रौणिजयादयः ।

इति प्रथमः स्कन्धः ॥ १ ॥

इत्यादि बारह स्कंधों का सूचीपत्र इसी प्रकार बोबदेव पण्डित ने बनाकर हिमाद्रि सचिव को दिया। जो विस्तार देखना चाहे वह बोबदेव के बनाये हिमाद्रि ग्रन्थ में देख लेवे। इसी प्रकार अन्य पुराणों की भी लीला समझनी परन्तु उन्नीस बीस इक्कीस एक दूसरे से बढ़कर हैं॥

देखो! श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरणपर्य्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो ऐसा नहीं लिखा और इस भागवतवाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध, दही, मक्खन आदि की चोरी और कुब्जादासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल, क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्णजी में लगाये हैं। इसको पढ़ पढ़ा सुन सुना के अन्य मत वाले श्रीकृष्णजी की बहुतसी निन्दा करते हैं। जो यह भागवत न होता तो श्रीकृष्णजी के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्योंकर होती? शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिङ्ग और जिनमें प्रकाश का लेश भी नहीं रात्रि को विना दीप किये लिंग भी अन्धेरे में नहीं दीखते ये सब लीला पोपजी की है। (प्रश्न) जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शूद्रों के लिये, क्योंकि इनको वेद पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं है। (उत्तर) यह बात मिथ्या है क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सब को है देखो गार्गी आदि स्त्रियां और छान्दोग्य में जानश्रुति शूद्र ने भी वेद "रैक्यमुनि" के पास प . था और यजुर्वेद के २६ वें अध्याय के २ रे मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। पुनः जो ऐसे २ मिथ्या ग्रंथ बना लोगों को सत्यग्रंथों से विमुख जाल में फँसा अपने प्रयोजन को साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं?॥

देखो ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है। "आकृष्णेन रजसा०"। १। सूर्य्य का मन्त्र। "इमं देवा असपत्नꣳ-

सुवध्वम्०" । २ । चन्द्र० । "अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः०" । ३ । मंगल । "उद्बुध्यस्वाग्ने०" । ४ । बुध । "बृहस्पते अतियदर्यो०" । ५ । बृहस्पति । "शुक्रमन्धसः" । ६ । शुक्र । "शन्नो देवीरभिष्टय०" । ७ । शनि । "कया नश्चित्र आभुव०" । ८ । राहु । और "केतुं कृण्वन्न केतवे०" । ९ । इसको केतु की कण्डिका कहते हैं ॥ (आकृष्णे०) यह सूर्य्य और भूमि का आकर्षण । १ । दूसरा राजगुण विधायक । २ । तीसरा अग्नि । ३ । और चौथा यजमान । ४ । पांचवां विद्वान् । ५ । छठा वीर्य्य अन्न । ६ । सातवां जल प्राण और परमेश्वर । ७ । आठवां मित्र । ८ । नववां ज्ञानग्रहण का विधायक मंत्र है । ९ । ग्रहों के वाचक नहीं । अर्थ न जानने से भ्रमजाल में पड़े हैं (प्रश्न) ग्रहों का फल होता है वा नहीं ? (उत्तर) जैसा पोपलीला का है वैसा नहीं किन्तु जैसा सूर्य्य चन्द्रमा की किरणद्वारा उष्णता शीतता अथवा ऋतुवत्कालचक्र का सम्बन्धमात्र से अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रतिकूल सुख दुःख के निमित्त होते हैं । परन्तु जो पोपलीलावाले कहते हैं सुनो "महाराज सेठजी ! यजमानो तुम्हारे आज आठवां चन्द्र सूर्य्यादि क्रूर घर में आये हैं । अढ़ाई वर्ष का शनैश्चर पग में आया है । तुमको बड़ा विघ्न होगा । घर द्वार छुड़ाकर परदेश में घुमावेगा । परन्तु जो तुम ग्रहों का दान, जप, पाठ, पूजा कराओगे तो दुःख से बचोगे । इनसे कहना चाहिये कि सुनो पोपजी ! तुम्हारा और ग्रहों का क्या सम्बन्ध है ? ग्रह क्या वस्तु है ? (पोपजी)—

दैवाधीनं जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवताः ।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदैवतम् ॥

देखो कैसा प्रमाण है । देवताओं के आधीन सब जगत्, मन्त्रों के आधीन सब देवता और वे मंत्र ब्राह्मणों के आधीन हैं । इसलिये ब्राह्मण देवता कहाते हैं । क्योंकि चाहैं उस देवता को मंत्र के बल से बुला प्रसन्न कर काम सिद्ध कराने का हमारा ही अधिकार है जो हम में मंत्रशक्ति न होती तो तुम्हारे से नास्तिक हमको संसार में रहने ही न देते । (सत्यवादी) जो चोर, डाकू, कुकर्मी लोग हैं वे भी तुम्हारे देवताओं के आधीन होंगे ? देवता ही उनसे दुष्ट

काम कराते होंगे ? जो वैसा है तो तुम्हारे देवता और राक्षसों में कुछ भेद न रहेगा । जो तुम्हारे आधीन मन्त्र हैं उनसे तुम चाहो सो करा सकते हो तो उन मंत्रों से देवताओं को वश कर राजाओं के कोष उठवाकर अपने घर में भरकर बैठ के आनन्द क्यों नहीं भोगते ? घर २ में शनैश्चरादि के तैल आदि का छायादान लेने को मारे २ क्यों फिरते हो ? और जिसको तुम कुबेर मानते हो उसको वश में करके चाहो जितना धन लिया करो ! बिचारे गरीबों को क्यों लूटते हो ? तुमको दान देने से ग्रह प्रसन्न और न देने से अप्रसन्न होते हों तो हमको सूर्य्यादि ग्रहों की प्रसन्नता अप्रसन्नता प्रत्यक्ष दिखलाओ । जिसको ८ वां सूर्य चन्द्र और दूसरे को तीसरा हो उन दोनों को ज्येष्ठ महीने में विना जूते पहिने तपी हुई भूमि पर चलाओ । जिस पर प्रसन्न हैं उनके पग, शरीर न जलने और जिस पर क्रोधित हैं उनके जल जाने चाहियें तथा पौष मास में दोनों को नंगे कर पौर्णमासी की रात्रि भर मैदान में रक्खें । एक को शीत लगे दूसरे को नहीं तो जानो कि ग्रह क्रूर और सौम्यदृष्टि वाले होते हैं । और क्या तुम्हारे ग्रह सम्बन्धी हैं । और तुम्हारी डाक वा तार उनके पास आता जाता है ? अथवा तुम उनके वा वे तुम्हारे पास आते जाते हैं ? जो तुम में मन्त्र शक्ति हो तो तुम स्वयं राजा वा धनाढ्य क्यों नहीं बन जाओ ? वा शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते हो ? नास्तिक वह होता है जो वेद ईश्वर की आज्ञा वेदविरुद्ध पोपलीला चलावे । जब तुमको ग्रहदान न देवे जिस पर ग्रह है वही ग्रहदान को भोगे तो क्या चिन्ता है । जो तुम कहो कि नहीं हम ही को देने से वे प्रसन्न होते हैं अन्य को देने से नहीं, तो क्या तुमने ग्रहों का ठेका ले लिया है ? जो ठेका लिया हो तो सूर्य्यादि को अपने घर में बुला के जल मरो । सच तो यह है कि सूर्य्यादि लोक जड़ हैं । वे न किसी को दुःख और न सुख देने की चेष्टा कर सकते हैं किन्तु जितने तुम ग्रहदानोपजीवी हो वे सब तुम ग्रहों की मूर्त्तियां हो क्योंकि ग्रह शब्द का अर्थ भी तुम में ही घटित होता है । "ये गृह्णन्ति ते ग्रहाः" जो ग्रहण करते हैं उनका नाम ग्रह है । जबतक तुम्हारे चरण राजा रईस सेठ साहूकार और दरिद्रों के पास नहीं पहुंचते तबतक किसी को नवग्रह का स्मरण भी नहीं होता जब तुम साक्षात्

सूर्य शनैश्चरादि मूर्त्तिमान् क्रूर रूप धर उन पर जा चढ़ते हो तब विना ग्रहण किये उनको कभी नहीं छोड़ते और जो कोई तुम्हारे ग्रास में न आवे उसकी निन्दा नास्तिकादि शब्दों से करते फिरते हो ! (पोपजी) देखो ! ज्योतिष् का प्रत्यक्ष फल । आकाश में रहनेवाले सूर्य चन्द्र और राहु केतु का संयोगरूप ग्रहण को पहिले ही कह देते हैं । जैसा यह प्रत्यक्ष होता है वैसा ग्रहों का भी फल प्रत्यक्ष हो जाता है । देखो ! धनाढ्य, दरिद्र, राजा, रंक, सुखी, दुखी ग्रहों ही से होते हैं । (सत्यवादी) जो यह ग्रहणरूप प्रत्यक्ष फल है सो गणितविद्या का है फलित का नहीं । जो गणितविद्या है वह सच्ची और फलितविद्या स्वाभाविक सम्बन्धजन्य को छोड़ के झूठी है । जैसे अनुलोम, प्रतिलोम घूमनेवाले पृथिवी और चन्द्र के गणित से स्पष्ट विदित होता है कि अमुक समय, अमुक देश, अमुक अवयव में सूर्य्य वा चन्द्र-ग्रहण होगा जैसे—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधुं भूमिभाः ॥

यह सिद्धान्तशिरोमणि का वचन है और इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्तादि में भी है अर्थात् जब सूर्य भूमि के मध्य में चन्द्रमा आता है तब सूर्य ग्रहण और जब सूर्य्य और चन्द्र के बीच में भूमि आती है तब चन्द्र ग्रहण होता है । अर्थात् चन्द्रमा की छाया भूमि पर और भूमि की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है । सूर्य प्रकाशरूप होने से उसके सन्मुख छाया किसी की नहीं पड़ती किन्तु जैसे प्रकाशमान सूर्य्य वा दीप से देहादि की छाया उल्टी जाती है वैसे ही ग्रहण में समझो । जो धनाढ्य, दरिद्र, प्रजा, राजा, रंक होते हैं वे अपने कर्मों से होते हैं ग्रहों से नहीं । बहुतसे ज्योतिषी लोग अपने लड़का लड़की का विवाह ग्रहों की गणित [विद्या] के अनुसार करते हैं पुनः उनमें विरोध वा विधवा अथवा मृतस्त्रीक पुरुष होजाता है । जो फल सच्चा होता तो ऐसा क्यों होता ? इसलिये कर्म की गति सच्ची और ग्रहों की गति सुख दुःख भोग में कारण नहीं । भला ग्रह आकाश में और पृथिवी भी आकाश में बहुत दूर पर हैं इनका सम्बन्ध कर्त्ता और कर्मों के साथ साक्षात् नहीं । कर्म्म और कर्म्म के फल का कर्त्ता भोक्ता जीव और कर्मों के फल भोगनेहारा पर-

मात्मा है। जो तुम ग्रहों का फल मानो तो इसका उत्तर देओ कि जिस क्षण में एक मनुष्य का जन्म होता है जिसको तुम ध्रुवा त्रुटि मानकर जन्मपत्र बनाते हो उसी समय में भूगोल पर दूसरे का जन्म होता है वा नहीं? जो कहो नहीं तो झूठ और जो कहो होता है तो एक चक्रवर्त्ती के सदृश भूगोल में दूसरा चक्रवर्त्ती राजा क्यों नहीं होता? हां इतना तुम कह सकते हो कि यह लीला हमारे उदर भरने की है तो कोई मान भी लेवे। (प्रश्न) क्या गरुड़-पुराण भी झूठ है? (उत्तर) हां असत्य है। (प्रश्न) फिर मरे हुए जीव की क्या गति होती है?। (उत्तर) जैसे उसके कर्म हैं (प्रश्न) जो यमराज राजा, चित्रगुप्त मन्त्री, उसके बड़े भयंकर गण कज्जल के पर्वत के तुल्य शरीर-वाले जीव को पकड़कर ले जाते हैं। पाप पुण्य के अनुसार नरक स्वर्ग में डालते हैं। उसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण, गोदानादि वैतरणी नदी तरने के लिये करते हैं। ये सब बातें झूठ क्योंकर हो सकती हैं? (उत्तर) ये सब बातें पोपलीला के गपोड़े हैं। जो अन्यत्र के जीव वहां जाते हैं उनका धर्मराज चित्रगुप्त आदि न्याय करते हैं तो वे यमलोक के जीव पाप करें तो दूसरा यमलोक मानना चाहिये कि वहां के न्यायाधीश उनका न्याय करें और पर्वत के समान यमगणों के शरीर हों तो दीखते क्यों नहीं? और मरनेवाले जीव को लेने में छोटे द्वार में उनकी एक अंगुली भी नहीं जा सकती और सड़क गली में क्यों नहीं रुक जाते। जो कहो कि वे सूक्ष्म देह भी धारण कर लेते ह तो प्रथम पर्वतवत् शरीर के बड़े २ हाड़ पोपजी विना अपने घर के कहां धरेंगे? जब जङ्गल में आगी लगती है तब एक दम पिपीलिकादि जीवों के शरीर छूटते हैं। उनको पकड़ने के लिये असंख्य यम के गण आवें तो वहां अन्धकार होजाना चाहिये और जब आपस में जीवों को पकड़ने को दौड़ेंगे तब कभी उनके शरीर ठोकर खाजायंगे तो जैसे पहाड़ के बड़े २ शिखर टूटकर पृथिवी पर गिरते हैं वैसे उनके बड़े २ अवयव गरुड़पुराण के बांचने सुननेवालों के आंगन में गिर पड़ेंगे तो वे दब मरेंगे वा घर का द्वार अथवा सड़क रुक जायगी तो वे कैसे निकल और चल सकेंगे? श्राद्ध, तर्पण, पिण्ड-प्रदान उन मरे हुए जीवों को तो नहीं पहुंचता किन्तु मृतकों के प्रतिनिधि

पोपजी के घर उदर और हाथ में पहुंचता है। जो वैतरणी के लिये गोदान लेते हैं वह तो पोपजी के घर में अथवा कसाई आदि के घर में पहुंचता है। वैतरणी पर गाय नहीं जाती पुनः किस का पूंछ पकड़ कर तरेगा ? और हाथ तो यहीं जलाया वा गाड़ दिया गया फिर पूंछ को कैसे पकड़ेगा ? यहां एक दृष्टान्त इस बात में उपयुक्त है कि—

एक जाट था। उसके घर में एक गाय बहुत अच्छी और बीस सेर दूध देनेवाली थी। दूध उसका बड़ा स्वादिष्ट होता था। कभी २ पोपजी के मुख में भी पड़ता था। उस का पुरोहित यही ध्यान कर रहा था कि जब जाट का बुड्ढा बाप मरने लगेगा तब इसी गाय का संकल्प करा लूंगा। कुछ दिनों में दैवयोग से उसके बाप का मरण समय आया। जीभ बन्द होगई और खाट से भूमि पर ले लिया अर्थात् प्राण छोड़ने का समय आपहुंचा। उस समय जाट के इष्ट मित्र और सम्बन्धी भी उपस्थित हुए थे। तब पोपजी ने पुकारा कि यजमान ! अब तू इसके हाथ से गोदान करा। जाट १०) रुपया निकाल पिता के हाथ में रखकर बोला पढ़ो संकल्प ! पोपजी बोला वाह २ क्या बाप बारंबार मरता है ? इस समय तो साक्षात् गाय को लाओ जो दूध देती हो, बुड्ढी न हो, सब प्रकार उत्तम हो। ऐसी गौ का दान कराना चाहिये। (जाटजी) हमारे पास तो एक ही गाय है उसके विना हमारे लड़केवालों का निर्वाह न हो सकेगा इसलिये उसको न दूंगा। लो २०) रुपये का सङ्कल्प पढ़ देओ और इन रुपयों से दूसरी दुधार गाय ले लेना (पोपजी) वाहजी वाह ! तुम अपने बाप से भी गाय को अधिक समझते हो ? क्या अपने बाप को वैतरणी नदी में डुबाकर दुःख देना चाहते हो। तुम अच्छे सुपुत्र हुये ? तब तो पोपजी की ओर सब कुटुम्बी होगये क्योंकि उन सबको पहिले ही पोपजी ने बहका रक्खा था और उस समय भी इशारा कर दिया। सब ने मिलकर हठ से उसी गाय का दान उसी पोपजी को दिला दिया। उस समय जाट कुछ भी न बोला। उसका पिता मरगया और पोपजी बच्छासहित गाय और दोहने की बटलोई को ले अपने घर में गौ बांध बटलोई धर पुनः जाट के घर आया

और मृतक के साथ श्मशानभूमि में जाकर दाहकर्म्म कराया। वहां भी कुछ कुछ पोपलीला चलाई। पश्चात् दशगात्र सपिंडी कराने आदि में भी उसको मूंडा। महाब्राह्मणों ने भी लूटा और भुक्कड़ों ने भी बहुतसा माल पेट में भरा अर्थात् जब सब क्रिया हो चुकी तब जाट ने जिस किसी के घर से दूध मांग मूंग निर्वाह किया। चौदहवें दिन प्रातःकाल पोपजी के घर पहुंचा। देखे तो गाय दुह, बटलोई भर, पोपजी की उठने की तैयारी थी। इतने ही में जाटजी पहुंचे। उसको देख पोपजी बोला आइये! यजमान बैठिये! (जाटजी) तुम भी पुरोहितजी इधर आओ। (पोपजी) अच्छा दूध धर आऊं (जाटजी) नहीं २ दूध की बटलोई इधर लाओ। पोपजी विचारे जा बैठे और बटलोई सामने धर दी। (जाटजी) तुम बड़े झूठे हो। (पोपजी) क्या झूठ किया? (जाटजी) कहो तुमने गाय किसलिये ली थी? (पोपजी) तुम्हारे पिता के वैतरणी नदी तरने के लिये। (जाटजी) अच्छा तो तुमने वहां वैतरणी के किनारे पर गाय क्यों नहीं पहुंचाई? हम तो तुम्हारे भरोसे पर रहे और तुम अपने घर बांध बैठे। न जाने मेरे बाप ने वैतरणी में कितने गोते खाये होंगे? (पोपजी) नहीं २ वहां इस दान के पुण्य के प्रभाव से दूसरी गाय बन कर उसको उतार दिया होगा। (जाटजी) वैतरणी नदी यहां से कितनी दूर और किधर की ओर है? (पोपजी) अनुमान से कोई तीस क्रोड़ कोश दूर है क्योंकि उञ्चास कोटि योजन पृथिवी है। और दक्षिण नैर्ऋत्य दिशा में वैतरणी नदी है (जाटजी) इतनी दूर से तुम्हारी चिट्ठी वा तार का समाचार गया हो उसका उत्तर आया हो कि वहां पुण्य की गाय बन गई अमुक के पिता को पार उतार दिया दिखलाओ। (पोपजी) हमारे पास गरुड़पुराण के लेख के विना डाक वा तारवर्की दूसरी कोई नहीं। (जाटजी) इस गरुड़पुराण को हम सच्चा कैसे मानें? (पोपजी) जैसे सब मानते हैं। (जाटजी) यह पुस्तक तुम्हारे पुरुषाओं ने तुम्हारे जीविका के लिये बनाया है क्योंकि पिता को विना अपने पुत्रों के कोई प्रिय नहीं। जब मेरा पिता मेरे पास चिट्ठी पत्री वा तार भेजेगा तभी मैं वैतरणी के किनारे गाय पहुंचा दूंगा और उनको पार उतार पुनः गाय को घर में ले आ दूध को मैं और मेरे लड़केवाले पिया करेंगे,

लाओ ! दूध की भरी हुई बटलोई, गाय, बछड़ा लेकर जाटजी अपने घर को चला। (पोपजी) तुम दान देकर लेते हो तुम्हारा सत्यानाश हो जायगा। (जाटजी) चुप रहो नहीं तो तेरह दिन लों दूध के विना जितना दुःख हमने पाया है सब कसर निकाल दूंगा। तब पोपजी चुप रहे और जाटजी गाय बछड़ा ले अपने घर पहुंचे।

जब ऐसे ही जाटजी के से पुरुष हों तो पोपलीला संसार में न चले। जो ये लोग कहते हैं कि दशगात्र के पिंडों से दश अंग सपिंडी करने से शरीर के साथ जीव का मेल होके अंगुष्ठमात्र शरीर बन के पश्चात् यमलोक को जाता है तो मरती समय यमदूतों का आना व्यर्थ होता है। त्रयोदशाह के पश्चात् आना चाहिये जो शरीर बन जाता हो तो अपनी स्त्री सन्तान और इष्ट मित्रों के मोह से क्यों नहीं लौट आता है ? (प्रश्न) स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता जो दान किया जाता है वही वहां मिलता है। इसलिये सब दान करने चाहियें। (उत्तर) उस तुम्हारे स्वर्ग से यही लोक अच्छा जिसमें धर्मशाला हैं, लोग दान देते हैं, इष्ट मित्र और जाति में खूब निमन्त्रण होते हैं, अच्छे २ वस्त्र मिलते हैं, तुम्हारे कहने प्रमाणे स्वर्ग में कुछ भी नहीं मिलता। ऐसे निर्दय, कृपण, कंगले स्वर्ग में पोपजी जाकर खराब होवें वहां भले २ मनुष्यों का क्या काम (प्रश्न) जब तुम्हारे कहने से यमलोक और यम नहीं हैं तो मरकर जीव कहां जाता ? और इनका न्याय कौन करता है ? (उत्तर) तुम्हारे गरुड़पुराण का कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु जो वेदोक्त है कि—

यमेन, वायुना। सत्यराजन् [य० २० । ४]

इत्यादि वेदवचनों से निश्चय है कि "यम" नाम वायु का है। शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और जो सत्यकर्त्ता पक्षपातरहित परमात्मा "धर्म्मराज" है वही सब का न्यायकर्त्ता है। (प्रश्न) तुम्हारे कहने से गोदानादि दान किसी को न देना और न कुछ दान पुण्य करना ऐसा सिद्ध होता है। (उत्तर) यह तुम्हारा कहना सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि सुपात्रों को,

परोपकारियों को परोपकारार्थ सोना, चांदी, हीरा, मोती, माणिक, अन्न, जल, स्थान, वस्त्रादि दान अवश्य करना उचित है किन्तु कुपात्रों को कभी न देना चाहिये (प्रश्न) कुपात्र और सुपात्र का लक्षण क्या है ? (उत्तर) जो छली, कपटी, स्वार्थी, विषयी, काम क्रोध लोभ मोह से युक्त, परहानि करनेवाले, लंपटी, मिथ्यावादी, अविद्वान्, कुसंगी, आलसी । जो कोई दाता हो उसके पास बारम्बार मांगना, धरना देना, ना किये पश्चात् भी हठता से मांगते ही जाना, सन्तोष न होना, जो न दे उसकी निन्दा करना, शाप और गाली प्रदानादि देना, अनेक वार जो सेवा करे और एक वार न करे तो उसका शत्रु बनजाना, ऊपर से साधु का वेश बना लोगों को बहका कर ठगना और अपने पास पदार्थ हो तो भी मेरे पास कुछ भी नहीं है कहना, सबको फुसला फुसला कर स्वार्थ सिद्ध करना, रात दिन भीख मांगने ही में प्रवृत्त रहना, निमन्त्रण दिये पर यथेष्ट भंगादि मादक द्रव्य खा पीकर बहुतसा पराया पदार्थ खाना, पुनः उन्मत्त होकर प्रमादी होना, सत्य मार्ग का विरोध और झूठ मार्ग में अपने प्रयोजनार्थ चलना, वैसे ही अपने चेलों को केवल अपनी ही सेवा करने का उपदेश करना, अन्य योग्य पुरुषों की सेवा करने का नहीं, सद्विद्यादि प्रवृत्ति के विरोधी, जगत् के व्यवहार अर्थात् स्त्री, पुरुष, माता, पिता, सन्तान, राजा, प्रजा, इष्टमित्रों में अप्रीति कराना कि ये सब असत्य हैं और जगत् भी मिथ्या है, इत्यादि दुष्ट उपदेश करना आदि कुपात्रों के लक्षण हैं । और जो ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय, वेदादि विद्या के पढ़ने पढ़ानेहारे, सुशील, सत्यवादी, परोपकारप्रिय पुरुषार्थी, उदार, विद्या धर्म की निरन्तर उन्नति करनेहारे, धर्मात्मा, शान्त, निन्दा स्तुति में हर्ष शोकरहित, निर्भय, उत्साही, योगी, ज्ञानी, सृष्टिक्रम, वेदाज्ञा, ईश्वर के गुण कर्म स्वभावानुकूल वर्त्तमान करनेहारे, न्याय की रीतियुक्त पक्षपातरहित सत्योपदेश और सत्यशास्त्रों के पढ़ने पढ़ानेहारे के परीक्षक, किसी की लल्लो पत्तो न करें, प्रश्नों के यथार्थ समाधानकर्त्ता, अपने आत्मा के तुल्य अन्य का भी सुख, दुःख, हानि, लाभ समझने वाले अविद्यादि क्लेश, हठ, दुराग्रहाऽभिमानरहित, अमृत के समान अपमान और विष के समान मान को समझनेवाले सन्तोषी, जो कोई प्रीति से जितना देवे उतने ही

से प्रसन्न, एक बार आपत्काल में मांगे भी न देने वा वर्जने पर भी दुःख वा बुरी चेष्टा न करना, वहां से झट लौट जाना, उसकी निन्दा न करना, सुखी पुरुषों के साथ मित्रता दुःखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं से आनन्द और पापियों से "उपेक्षा" अर्थात् रागद्वेषरहित रहना, सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, निष्कपट, ईर्ष्या द्वेषरहित गंभीराशय, सत्पुरुष, धर्म से युक्त और सर्वथा दुष्टाचार से रहित, अपने तन मन धन को परोपकार करने में लगानेवाले, पराये सुख के लिये अपने प्राणों को भी समर्पितकर्त्ता इत्यादि शुभलक्षणयुक्त सुपात्र होते हैं। परन्तु दुर्भिक्षादि आपत्काल में अन्न, जल, वस्त्र और औषध पथ्य स्थान के अधिकारी सब प्राणीमात्र हो सकते हैं॥

(प्रश्न) दाता कितने प्रकार के होते हैं? (उत्तर) तीन प्रकार के—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट। उत्तम दाता उसको कहते हैं जो देश काल और पात्र को जानकर सत्यविद्या धर्म की उन्नतिरूप परोपकारार्थ देवे। मध्यम वह है जो कीर्त्ति वा स्वार्थ के लिये दान करे। नीच वह है कि अपना वा पराया कुछ उपकार न कर सके किन्तु वेश्यागमनादि वा भांड भाट आदि को देवे, देते समय तिरस्कार अपमानादि भी कुचेष्टा करे, पात्र कुपात्र का कुछ भी भेद न जाने किन्तु "सब अन्न बारह पसेरी" बेचनेवालों के समान विवाद लड़ाई, दूसरे धर्मात्मा को दुःख देकर सुखी होने के लिये दिया करे वह अधम दाता है। अर्थात् जो परीक्षापूर्वक विद्वान् धर्मात्माओं का सत्कार करे वह उत्तम और जो कुछ परीक्षा करे वा न करे परन्तु जिसमें अपनी प्रशंसा हो उसको मध्यम और जो अन्धाधुन्ध परीक्षारहित निष्फल दान दिया करे वह नीच दाता कहाता है। (प्रश्न) दान के फल यहां होते हैं वा परलोक में? (उत्तर) सर्वत्र होते हैं। (प्रश्न) स्वयं होते हैं वा कोई फल देनेवाला है? (उत्तर) फलदेने वाला ईश्वर है जैसे कोई चोर डाकू स्वयं बंदीघर में जाना नहीं चाहता। राजा उसको अवश्य भेजता है धर्मात्माओं के सुख की रक्षा करता, भुगाता डाकू आदि से बचाकर उनको सुख में रखता है वैसा ही परमात्मा सबको पाप पुण्य के दुःख और सुखरूप फलों को यथावत् भुगाता

है (प्रश्न) जो ये गरुड़पुराणादि ग्रन्थ हैं वेदार्थ वा वेद की पुष्टि करनेवाले हैं वा नहीं ? (उत्तर) नहीं, किन्तु वेद के विरोधी और उलटे चलते हैं। तथा तंत्र भी वैसे ही हैं। जैसे कोई मनुष्य एक का मित्र सब संसार का शत्रु हो, वैसा ही पुराण और तंत्र का माननेवाला पुरुष होता है क्योंकि एक दूसरे से विरोध कराने वाले ये ग्रन्थ हैं। इनका मानना किसी मनुष्य का काम नहीं किन्तु इनको मानना पशुता है। देखो ! शिवपुराण में त्रयोदशी, सोमवार, आदित्यपुराण में रवि, चन्द्रखण्ड में सोमग्रह वाले मंगल, बुद्ध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतु के वैष्णव एकादशी, वामन की द्वादशी, नृसिंह वा अनन्त की चतुर्दशी, चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पालों की दशमी, दुर्गा की नौमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कार्त्तिकस्वामि की षष्ठी, नाग की पंचमी, गणेश की चतुर्थी, गौरी की तृतीया, अश्वनीकुमार की द्वितीया, आद्यादेवी की प्रतिपदा और पितरों की अमावास्या पुराणरीति से ये दिन उपवास करने के हैं। और सर्वत्र यही लिखा है कि जो मनुष्य इन वार और तिथियों में अन्न-पान ग्रहण करेगा वह नरकगामी होगा। अब पोप और पोपजी के चेलों को चाहिये कि किसी वार अथवा किसी तिथि में भोजन न करें क्योंकि जो भोजन वा पान किया तो नरकगामी होंगे। अब "निर्णयसिंधु" "धर्मसिन्धु" "व्रतार्क" आदि ग्रन्थ जो कि प्रमादी लोगों के बनाये हैं उन्हीं में एक २ व्रत की ऐसी दुर्दशा की है कि जैसे एकादशी को शैव, दशमीविद्धा कोई द्वादशी में एकादशी व्रत करते हैं अर्थात् क्या बड़ी विचित्र पोपलीला है कि भूखे मरने में भी वाद विवाद ही करते हैं जिसने एकादशी का व्रत चलाया है उसमें अपना स्वार्थपन ही है और दया कुछ भी नहीं वे कहते हैं:—

एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति ।

जितने पाप हैं वे सब एकादशी के दिन अन्न में बसते हैं। इस पोपजी से पूछना चाहिये कि किसके पाप बसते हैं ? तेरे वा तेरे पिता आदि के ? जो सब के सब पाप एकादशी में जा बसें तो एकादशी के दिन किसी को दुःख न रहना चाहिये। ऐसा तो नहीं होता किन्तु उलटा क्षुधा आदि से दुःख होता

है दुःख पाप का फल है। इससे भूखे मरना पाप है इसका बड़ा माहात्म्य बनाया है जिसकी कथा बांच के बहुत ठगे जाते हैं। उसमें एक गाथा है कि—

ब्रह्मलोक में एक वेश्या थी। उसने कुछ अपराध किया। उसको शाप हुआ। वह पृथिवी पर गिर उसने स्तुति की कि मैं पुनः स्वर्ग में क्योंकर आसकूंगी ? उसने कहा जब कभी एकादशी के व्रत का फल तुझे कोई देगा तभी तू स्वर्ग में आजायगी। वह विमान सहित किसी नगर में गिर पड़ी। वहां के राजा ने उससे पूछा कि तू कौन है ? तब उसने सब वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि जो कोई मुझ को एकादशी का फल अर्पण करे तो फिर भी स्वर्ग को जा सकती हूं। राजा ने नगर में खोज कराया। कोई भी एकादशी का व्रत करनेवाला न मिला। किन्तु एक दिन किसी शूद्र स्त्री पुरुष में लड़ाई हुई थी। क्रोध से स्त्री दिन रात भूखी रही थी। दैवयोग से उस दिन एकादशी थी। उसने कहा कि मैंने एकादशी जानकर तो नहीं की अकस्मात् उस दिन भूखी रह गई थी। ऐसे राजा के सिपाहियों से कहा। तब तो वे उसको राजा के सामने ले आये। उससे राजा ने कहा कि तू इस विमान को छू। उसने छूआ। देखो ! उसी समय विमान ऊपर को उड़ गया। यह तो विना जाने एकादशी के व्रत का फल है, जो जान के करे तो उसके फल का क्या पारावार है ! ! ! वाहरे आंख के अंधे लोगो ! जो यह बात सच्ची हो तो हम एक पान की बीड़ी, जो कि स्वर्ग में नहीं होती, भेजना चाहते हैं। सब एकादशीवाले अपना फल देदो। जो एक पानबीड़ा ऊपर को चला जायगा तो पुनः लाखों क्रोड़ों पान वहां भेजेंगे और हम भी एकादशी किया करेंगे और जो ऐसा न होगा तो तुम लोगों को इस भूखे मरनेरूप आपत्काल से बचावेंगे। इन चौबीस एकादशियों का नाम पृथक् २ रक्खा है। किसी का "धनदा" किसी का "कामदा" किसी का "पुत्रदा" किसी का "निर्जला"। बहुतसे दरिद्र बहुतसे कामी और बहुतसे निर्वंशी लोग एकादशी करके बूढ़े हो गये और मर भी गये परन्तु धन, कामना और पुत्र प्राप्त न हुआ और ज्येष्ठ महीने के शुक्लपक्ष में कि जिस समय एक घड़ी भर जल न पावे तो मनुष्य व्याकुल हो जाता है व्रत

करने वालों को महादुःख प्राप्त होता है । विशेष कर बंगाले में सब विधवा स्त्रियों की एकादशी के दिन बड़ी दुर्दशा होती है। इस निर्दयी कसाई को लिखते समय कुछ भी मन में दया न आई नहीं तो निर्जला का नाम सजला और पौष महीने की शुक्लपक्ष की एकादशी का नाम निर्जला रख देता तो भी कुछ अच्छा होता । परन्तु इस पोप को दया से क्या काम ? "कोई जीवो वा मरो पोपजी का पेट पूरा भरो" । भला गर्भवती वा सद्योविवाहिता स्त्री, लड़के वा युवा पुरुषों को तो कभी उपवास न करना चाहिये । परन्तु किसी को करना भी हो तो जिस दिन अजीर्ण हो क्षुधा न लगे उस दिन शर्करावत् शर्बत वा दूध पीकर रहना चाहिये । जो भूख में नहीं खाते और विना भूख के भोजन करते हैं दोनों रोगसागर में गोते खा दुःख पाते हैं । इन प्रमादियों के कहने लिखने का प्रमाण कोई भी न करे ॥

अब गुरु शिष्य मन्त्रोपदेश और मतमतान्तर के चरित्रों का वर्त्तमान कहते हैं । मूर्त्तिपूजक संप्रदायी लोग प्रश्न करते हैं कि वेद अनन्त हैं । ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १०१, सामवेद की १००० और अथर्ववेद की ९ शाखा हैं। इनमें से थोड़ी सी शाखा मिलती हैं शेष लोप होगई हैं । उन्हीं में मूर्त्तिपूजा और तीर्थों का प्रमाण होगा । जो न होता तो पुराणों में कहां से आता ? जब कार्य देखकर कारण का अनुमान होता है तब पुराणों को देखकर मूर्त्ति-पूजा में क्या शंका है ? (उत्तर) जैसे शाखा जिस वृक्ष की होती हैं उसके सदृश हुआ करती हैं विरुद्ध नहीं । चाहें शाखा छोटी बड़ी हों परन्तु उनमें विरोध नहीं हो सकता । वैसे ही जितनी शाखा मिलती हैं जब इनमें पाषाणादि मूर्त्ति और जल स्थल विशेष तीर्थों का प्रमाण नहीं मिलता तो उन लुप्त शाखाओं में भी नहीं था । और चार वेद पूर्ण मिलते हैं उनसे विरुद्ध शाखा कभी नहीं हो सकतीं और जो विरुद्ध हैं उनको शाखा कोई भी सिद्ध नहीं कर सकता । जब यह बात है तो पुराण वेदों की शाखा नहीं किन्तु संप्रदायी लोगों ने परस्पर विरुद्धरूप ग्रन्थ बना रक्खे हैं । वेदों को तुम परमेश्वरकृत मानते हो तो "आश्वलायनादि" ऋषि मुनियों के नाम से प्रसिद्ध ग्रंथों को वेद क्यों मानते हो ? जैसे डाली और पत्तों के देखने से पीपल, बड़ और

आम्र आदि वृक्षों की पहिचान होती है वैसे ही ऋषि मुनियों के किये वेदांग चारों ब्राह्मण, अङ्ग उपांग और उपवेद आदि से वेदार्थ पहिचाना जाता है। इसीलिये इन ग्रन्थों को शाखा माना है। जो वेदों से विरुद्ध है उसका प्रमाण और अनुकूल का अप्रमाण नहीं हो सकता। जो तुम अदृष्ट शाखाओं में मूर्त्ति आदि के प्रमाण की कल्पना करोगे तो जब कोई ऐसा पक्ष करेगा कि लुप्त शाखाओं में वर्णाश्रम व्यवस्था उलटी अर्थात् अन्त्यज और शूद्र का नाम ब्राह्मणादि और ब्राह्मणादि का नाम शूद्र अन्त्यजादि, अगमनीयागमन, अकर्त्तव्य कर्त्तव्य, मिथ्याभाषणादि धर्म, सत्यभाषणादि अधर्म आदि लिखा होगा तो तुम उसको वही उत्तर दोगे जो कि हमने दिया अर्थात् वेद और प्रसिद्ध शाखाओं में जैसा ब्राह्मणादि का नाम ब्राह्मणादि और शूद्रादि का नाम शूद्रादि लिखा है वैसा ही अदृष्ट शाखाओं में भी मानना चाहिये नहीं तो वर्णाश्रम व्यवस्था आदि सब अन्यथा हो जायेंगे। भला जैमिनि, व्यास और पतञ्जलि के समय पर्य्यन्त तो सब शाखा विद्यमान थीं वा नहीं? यदि नहीं थीं तो तुम कभी निषेध न कर सकोगे और जो कहो कि नहीं थे तो फिर शाखाओं के होने का क्या प्रमाण है? देखो जैमिनि ने मीमांसा में सब कर्मकाण्ड, पतञ्जलि मुनि ने योगशास्त्र में सब उपासनाकाण्ड और व्यासमुनि ने शारीरिक सूत्रों में सब ज्ञानकाण्ड वेदानुकूल लिखा है। उनमें पाषाणादि मूर्त्तिपूजा वा प्रयागादि तीर्थों का नाम निशान भी नहीं लिखा। लिखें कहां से? जो कहीं वेदों में होता तो लिखे विना कभी न छोड़ते इसलिये लुप्त शाखाओं में भी इन मूर्त्तिपूजादि का प्रमाण नहीं था। ये सब शाखा वेद नहीं हैं क्योंकि इनमें ईश्वरकृत वेदों की प्रतीक धर के व्याख्या और संसारी जनों के इतिहासादि लिखे हैं, इसलिये वेद में कभी नहीं हो सकते। वेदों में तो केवल मनुष्यों को विद्या का उपदेश किया है। किसी मनुष्य का नाममात्र भी नहीं। इसलिये मूर्त्तिपूजा का सर्वथा खंडन है। देखो! मूर्त्तिपूजा से श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण, नारायण और शिवादि की बड़ी निन्दा और उपहास होता है। सब कोई जानते हैं कि वे बड़े महाराजाधिराज और उनकी स्त्री सीता तथा रुक्मिणी लक्ष्मी और पार्वती आदि महारािणयां थीं, परन्तु जब उनकी मूर्त्तियां मन्दिर आदि में रख के पूजारी लोग

उनके नाम से भीख मांगते हैं अर्थात् उनको भिखारी बनाते हैं कि आओ महाराज ! महाराजाजी सेठ साहूकारो ! दर्शन कीजिये, बैठिये, चरणामृत लीजिये, कुछ भेट चढ़ाइये, महाराज ! सीताराम, कृष्ण रुक्मिणी वा राधाकृष्ण, लक्ष्मीनारायण और महादेव पार्वतीजी को तीन दिन से बालभोग वा राजभोग अर्थात् जलपान वा खानपान भी नहीं मिला है। आज इनके पास कुछ भी नहीं है सीता आदि को नथुनी आदि राणीजी वा सेठानीजी बनवा दीजिये, अन्न आदि भेजो तो रामकृष्णादि को भोग लगावें। वस्त्र सब फट गये हैं। मन्दिर के कोने सब गिर पड़े हैं। ऊपर से चूता है और दुष्ट चोर जो कुछ था उसे उठा ले गये कुछ ऊंदरों [चूहों] ने काट कूट डाले देखिये ! एक दिन ऊंदरों ने ऐसा अनर्थ किया कि इनकी आंख भी निकाल के भाग गये। अब हम चांदी की आंख न बना सके इसलिये कौड़ी की लगादी है। रामलीला और रासमण्डल भी करवाते हैं, सीताराम राधाकृष्ण नाच रहे हैं राजा और महन्त आदि उनके सेवक आनन्द में बैठे हैं ! मन्दिर में सीतारामादि खड़े और पूजारी वा महन्तजी आसन अथवा गद्दी पर तकिया लगाये बैठते हैं, महागरमी में भी ताला लगा भीतर बंद कर देते हैं और आप सुन्दर हवा में पलंग बिछाकर सोते हैं। बहुतसे पूजारी अपने नारायण को डब्बी में बंदकर ऊपर से कपड़े आदि बांध गले में लटका लेते हैं जैसे कि बानरी अपने बच्चे को गले में लटका लेती है वैसे पूजारियों के गले में भी लटकते हैं। जब कोई मूर्त्ति को तोड़ता है तब हाय २ कर छाती पीट बकते हैं कि सीतारामजी राधाकृष्णजी और शिवपार्वती को दुष्टों ने तोड़ डाला ! अब दूसरी मूर्त्ति मंगवा कर जो कि अच्छे शिल्पी ने संगमरमर की बनाई हो स्थापन कर पूजनी चाहिये। नारायण को घी के विना भोग नहीं लगता। बहुत नहीं तो थोड़ासा अवश्य भेज देना। इत्यादि बातें इन पर ठहराते हैं। और रासमण्डल वा रामलीला के अन्त में सीताराम वा राधाकृष्ण से भीख मंगवाते हैं। जहां मेला ठेला होता है वहां छोकरे पर मुकट धर कन्हैया बना मार्ग में बैठाकर भीख मंगवाते हैं। इत्यादि बातों को आप लोग विचार लीजिये कि कितने बड़े शोक की बात है। भला कहो तो सीतारामादि ऐसे दरिद्र और

भिक्षुक थे ? यह उनका उपहास और निन्दा नहीं तो क्या है ? इससे बड़ी अपने माननीय पुरुषों की निन्दा होती है। भला जिस समय ये विद्यमान थे उस समय सीता, रुक्मिणी, लक्ष्मी और पार्वती को सड़क पर वा किसी मकान में खड़ी कर पूजारी कहते कि आओ इनका दर्शन करो और कुछ भेट पूजा धरो तो सीतारामादि इन मूर्खों के कहने से ऐसा काम कभी न करते और न करने देते जो कोई ऐसा उपहास उनका करता है उसको विना दंड दिये कभी छोड़ते ? हां, जब उन्हों से दंड न पाया तो इनके कर्मों ने पूजारियों को बहुतसी मूर्त्तिविरोधियों से प्रसादी दिलादी और अब भी मिलती है और जबतक इस कुकर्म को न छोड़ेंगे तबतक मिलेगी। इसमें क्या संदेह है कि जो आर्य्यावर्त्त की प्रतिदिन महाहानि पाषाणादि मूर्त्तिपूजकों का पराजय इन्हीं कर्मों से होता है क्योंकि पाप का फल दुःख है इन्हीं पाषाणादि मूर्त्तियों के विश्वास से बहुतसी हानि होगई। जो न छोड़ेंगे तो प्रतिदिन अधिक २ होती जायगी। इनमें से वाममार्गी बड़ेभारी अपराधी हैं। जब वे चेला करते हैं तब साधारण को—

दं दुर्गायै नमः। भं भैरवाय नमः। ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥

इत्यादि मंत्रों का उपदेश कर देते हैं और बंगाले में विशेष करके एकाक्षरी मन्त्रोपदेश करते हैं जैसाः—

ह्रीं, श्रीं, क्लीं॥ [शावरतं० बं० प्रकी० प्र० ४४]

इत्यादि और धनाढ्यों का पूर्णाभिषेक करते हैं ऐसे ही दश महाविद्याओं के मंत्रः—

ह्रां ह्रीं हुं वगलामुख्यै फट् स्वाहा॥ [शा० प्रकी० प्र० ४१]

कहीं २

हूं फट् स्वाहा॥ [कामरत्न तंत्र बीज मंत्र ४]

और मारण, मोहन, उच्चाटन, विद्वेषण, वशीकरण आदि प्रयोग करते हैं। सो मन्त्र से तो कुछ भी नहीं होता किन्तु क्रिया से सब कुछ करते हैं। जब

किसी को मारने का प्रयोग करते हैं तब इधर करानेवाले से धन ले के आटे वा मिट्टी का पूतला जिस को मारना चाहते हैं उसका बना लेते हैं। उसकी छाती, नाभि, कण्ठ में छुरे प्रवेश कर देते हैं आंख, हाथ, पग में कीलें ठोंकते हैं। उसके ऊपर भैरव वा दुर्गा की मूर्त्ति बना हाथ में त्रिशूल दे उसके हृदय पर लगाते हैं। एक वेदी बनाकर मांस आदि का होम करने लगते हैं और उधर दूत आदि भेज के उसको विष आदि से मारने का उपाय करते हैं। जो अपने पुरश्चरण के बीच में उसको मारडाला तो अपने को भैरव देवी की सिद्धि वाले बतलाते हैं। "भैरवो भूतनाथश्च" इत्यादि का पाठ करते हैं॥

मारय २, उच्चाटय २, विद्वेषय २, छिन्धि २, भिन्धि २, वशीकुरु २, खादय २, भक्षय २, त्रोटय २, नाशय २, मम शत्रून् वशीकुरु २, हुं फट् स्वाहा॥ [कामरत्न तन्त्र उच्चाटन प्रकरण मं० ५-७]

इत्यादि मन्त्र जपते, मद्य मांसादि यथेष्ट खाते पीते, भृकुटी के बीच में सिन्दूर रेखा देते, कभी २ काली आदि के लिये किसी आदमी को पकड़ मार होम कर कुछ २ उसका मांस खाते भी हैं। जो कोई भैरवीचक्र में जावे मद्य मांस न पीवे न खावे तो उसको मार होम कर देते हैं। उनमें से जो अघोरी होता है वह मृतमनुष्य का भी मांस खाता है। अजरी बजरी करनेवाले विष्ठा मूत्र भी खाते पीते हैं।

एक चोलीमार्ग और दूसरे बीजमार्गी भी होते हैं। चोली मार्गवाले एक गुप्त स्थान वा भूमि में एक स्थान बनाते हैं। वहां सब की स्त्रियां, पुरुष, लड़का, लड़की, बहिन, माता, पुत्रवधू आदि सब इकट्ठे हो सब लोग मिलमिला कर मांस खाते, मद्य पीते, एक स्त्री को नंगी कर उसके गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब पुरुष करते हैं और उसका नाम दुर्गादेवी धरते हैं। एक पुरुष को नंगा कर उसके गुप्त इन्द्रिय की पूजा सब स्त्रियां करती हैं। जब मद्य पी २ के उन्मत्त हो जाते हैं तब सब स्त्रियों के छाती के वस्त्र जिस को चोली कहते हैं एक बड़ी मट्टी की नांद में सब वस्त्र मिलाकर रख के एक एक पुरुष उसमें हाथ डाल के

जिसके हाथ में जिसका वस्त्र आवे वह माता, बहिन, कन्या और पुत्रबधू क्यों न हो उस समय के लिये वह उसकी स्त्री होजाती है। आपस में कुकर्म करने और बहुत नशा चढ़ने से जूते आदि से लड़ते भिड़ते हैं। जब प्रातःकाल कुछ अंधेरे अपने २ घर को चले जाते हैं तब माता २, कन्या २, बहिन २, और पुत्रबधू २ होजाती हैं। और बीजमार्गी स्त्री पुरुष के समागम कर जल में वीर्य डाल मिलाकर पीते हैं। ये पामर ऐसे कर्मों को मुक्ति के साधन मानते हैं। विद्या विचार सज्जनतादि रहित होते हैं।

(प्रश्न) शैव मत वाले तो अच्छे होते हैं? (उत्तर) अच्छे कहां से होते हैं! "जैसा प्रेतनाथ वैसा भूतनाथ" जैसे वाममार्गी मन्त्रोपदेशादि से उनका धन हरते हैं वैसे शैव भी "ओं नमः शिवाय" इत्यादि पञ्चाक्षरादि मन्त्रों का उपदेश करते, रुद्राक्ष भस्म धारण करते, मट्टी के और पाषाणादि के लिङ्ग बनाकर पूजते हैं और हर हर बं बं और बकरे के शब्द के समान बड़ बड़ बड़ मुख से शब्द करते हैं। उसका कारण यह कहते हैं कि ताली बजाने और बं बं शब्द बोलने से पार्वती प्रसन्न और महादेव अप्रसन्न होता है। क्योंकि जब भस्मासुर के आगे से महादेव भागे थे तब बं बं और ठट्ठे की तालियां बजी थीं और गाल बजाने से पार्वती अप्रसन्न और महादेव प्रसन्न होते हैं क्योंकि पार्वती के पिता दक्ष प्रजापति का शिर काट आगी में डाल उसके धड़ पर बकरे का शिर लगा दिया था। उसी अनुकरण को बकरे के शब्द की तुल्य गाल बजाना मानते हैं। शिवरात्री प्रदोश का व्रत करते हैं इत्यादि से मुक्ति मानते हैं इसलिये जैसे वाममार्गी भ्रान्त हैं वैसे शैव भी। इन में विशेष कर कनफटे, नाथ, गिरी, पुरी, वन, आरण्य, पर्वत और सागर तथा गृहस्थ भी शैव होते हैं। कोई २ "दोनों घोड़ों पर चढ़ते हैं" अर्थात् वाम और शैव दोनों मतों को मानते हैं और कितने ही वैष्णव भी रहते हैं उनका—

अन्तः शाक्ता बहिश्शैवाः सभामध्ये च वैष्णवाः।
नानारूपधराः कौला विचरन्ति महीतले॥

यह तन्त्र का श्लोक है। भीतर शाक्त अर्थात् वाममार्गी बाहर शैव अर्थात् रुद्राक्ष भस्म धारण करते हैं और सभा में वैष्णव कहते हैं कि हम विष्णु के उपासक हैं ऐसे नाना प्रकार के रूप धारण करके वाममार्गी लोग पृथिवी में विचरते हैं। (प्रश्न) वैष्णव तो अच्छे हैं ? (उत्तर) क्या धूल अच्छे हैं। जैसे वे वैसे ये हैं। देख लो वैष्णवों की लीला अपने को विष्णु का दास मानते हैं। उनमें से श्रीवैष्णव जो कि चक्रांकित होते हैं वे अपने को सर्वोपरि मानते हैं सो कुछ भी नहीं हैं ! (प्रश्न) क्यों ! सब कुछ नहीं ? सब कुछ हैं देखो ! ललाट में नारायण के चरणारविन्द के सदृश तिलक और बीच में पीली रेखा श्री होती है, इसलिये हम श्रीवैष्णव कहाते हैं। एक नारायण को छोड़ दूसरे किसी को नहीं मानते। महादेव के लिंग का दर्शन भी नहीं करते क्योंकि हमारे ललाट में श्री विराजमान है वह लज्जित होती है। आलमन्दारादि स्तोत्रों के पाठ करते हैं। नारायण की मन्त्रपूर्वक पूजा करते हैं। मांस नहीं खाते न मद्य पीते हैं। फिर अच्छे क्यों नहीं ? (उत्तर) इस तिलक को हरिपदाकृति इस पीली रेखा को श्री मानना व्यर्थ है क्योंकि यह तो तुम्हारे हाथ की कारीगरी और ललाट का चित्र है जैसा हाथी का ललाट चित्र विचित्र करते हैं। तुम्हारे ललाट में विष्णु के पद का चिह्न कहां से आया ? क्या कोई वैकुण्ठ में जाकर विष्णु के पग का चिह्न ललाट में कर आया ? (विवेकी) और श्री जड़ है वा चेतन ? (वैष्णव) चेतन है। (विवेकी) तो यह रेखा जड़ होने से श्री नहीं है। हम पूछते हैं कि श्री बनाई हुई है वा विना बनाई ? जो विना बनाई है तो यह श्री नहीं क्योंकि इसको तो तुम नित्य अपने हाथ से बनाते हो फिर श्री नहीं हो सकती। जो तुम्हारे ललाट में श्री हो तो कितने ही वैष्णव का बुरा मुख अर्थात् शोभा रहित क्यों दीखता है ? ललाट में श्री और घर २ भीख मांगते और सदावर्त्त लेकर पेट भरते क्यों फिरते हो ? यह बात सीड़ी और निर्लज्जों की है कि कपाल में श्री और महादरिद्रों के काम हों ॥

इनमें एक "परिकाल" नामक वैष्णव भक्त था। वह चोरी डाका मार छल कपट कर पराया धन हर वैष्णवों के पास धर प्रसन्न होता था। एक

समय उसको चोरी में पदार्थ कोई नहीं मिला कि जिसको लूटे। व्याकुल होकर फिरता था। नारायण ने समझा कि हमारा भक्त दुःख पाता है। सेठ-जी का स्वरूप धर अंगूठी आदि आभूषण पहिन रथ में बैठ के सामने आये। तब तो परिकाल रथ के पास गया। सेठ से कहा सब वस्तु शीघ्र उतार दो नहीं तो मार डालूंगा। उतारते २ अंगूठी उतारने में देर लगी। परिकाल ने नारायण की अंगुली काट अंगूठी ले ली। नारायण बड़े प्रसन्न हो चतुर्भुज शरीर बना दर्शन दिया। कहा कि तू मेरा बड़ा प्रिय भक्त है क्योंकि सब धन मार लूट चोरी कर वैष्णवों की सेवा करता है, इसलिये तू धन्य है। फिर उसने जाकर वैष्णवों के पास सब गहने धर दिये। एक समय परिकाल को कोई साहूकार नौकर कर जहाज में बिठा के देशान्तर में लेगया। वहां से जहाज में सुपारी भरी। परिकाल ने एक सुपारी तोड़ आधा टुकड़ा कर बनिये से कहा यह मेरी आधी सुपारी जहाज में धर दो और लिखदो कि जहाज में आधी सुपारी परिकाल की है। बनिये ने कहा कि चाहे तुम हज़ार सुपारी लेलेना परिकाल ने कहा नहीं हम अधर्मी नहीं हैं जो हम झूठ मूठ लें। हमको तो आधी चाहिये। बनियां ने, जो विचारा भोलाभाला था, लिख दिया। जब अपने देश में बन्दर पर जहाज आया और सुपारी उतारने की तैयारी हुई तब परिकाल ने कहा हमारी आधी सुपारी दे दो। बनियां वही आधी सुपारी देने लगा। तब परिकाल झगड़ने लगा मेरी तो जहाज में आधी सुपारी है, आधा बांट लूंगा। राजपुरुषों तक झगड़ा गया। परिकाल ने बनिये का लेख दिखलाया कि इस ने आधी सुपारी देनी लिखी है। बनियां बहुतसा कहता रहा परन्तु उसने न माना आधी सुपारी लेकर वैष्णवों के अर्पण करदी। तब तो वैष्णव बड़े प्रसन्न हुए। अबतक उस डाकू चोर परिकाल की मूर्त्ति मन्दिरों में रखते हैं। यह कथा भक्तमाल में लिखी है। बुद्धिमान् देखलें कि वैष्णव, उनके सेवक और नारायण तीनों चोरमण्डली हैं वा नहीं? यद्यपि मतमतान्तरों में कोई थोड़ा अच्छा भी होता है तथापि उस मत में रहकर सर्वथा अच्छा नहीं हो सकता। अब जैसा वैष्णवों में फूट टूट भिन्न २ तिलक कण्ठी धारण करते हैं, रामानन्दी बगल में गोपीचन्दन बीच में लाल,

नीमावत दोनों पतली रेखा बीच में काला बिन्दु, माधव काली रेखा और गौड़ बङ्गाली कटारी के तुल्य और रामप्रसादवाले दोनों चांदला रेखा के बीच में एक सफेद गोल टीका इत्यादि इनका कथन विलक्षण २ है। रामानन्दी नारायण के हृदय में लाल रेखा को लक्ष्मी का चिह्न और गोसाईं श्रीकृष्ण-चन्द्रजी के हृदय में राधाजी विराजमान है इत्यादि कथन करते हैं॥

एक कथा भक्तमाल में लिखी है। कोई एक मनुष्य वृक्ष के नीचे सोता था। सोता २ ही मरगया। ऊपर से काक ने विष्ठा करदी। वह ललाट पर तिलकाकार होगई थी। वहां यम के दूत उसको लेने आये। इतने में विष्णु के दूत भी पहुंच गये। दोनों विवाद करते थे कि यह हमारे स्वामी की आज्ञा है हम यमलोक में ले जायंगे। विष्णु के दूतों ने कहा कि हमारे स्वामी की आज्ञा है वैकुण्ठ में ले जाने की। देखो इसके ललाट में वैष्णव का तिलक है। तुम कैसे ले जाओगे। तब तो यम के दूत चुप होकर चले गये। विष्णु के दूत सुख से उसको वैकुण्ठ में लेगये। नारायण ने उसको वैकुण्ठ में रक्खा। देखो जब अकस्मात् तिलक बन जाने का ऐसा माहात्म्य है तो जो अपनी प्रीति और हाथ से तिलक करते हैं वे नरक से छूट वैकुण्ठ में जावें तो इसमें क्या आश्चर्य है!! हम पूछते हैं कि जब छोटे से तिलक के करने से वैकुण्ठ में जावें तो सब मुख के ऊपर लेपन करने वा कालामुख करने वा शरीर पर लेपन करने से वैकुण्ठ से भी आगे सिधार जाते हैं वा नहीं? इससे ये बातें सब व्यर्थ हैं। अब इनमें बहुतसे खाखी लकड़े की लंगोटी लगा, धूनी तापते, जटा बढ़ाते, सिद्ध का वेष कर लेते हैं? बगुले के समान ध्यानावस्थित होते हैं; गांजा, भांग, चरस के दम लगाते लाल नेत्र कर रखते; सब से चुटकी २ अन्न, पिसान, कौड़ी, पैसे मांगते; गृहस्थों के लड़कों को बहकाकर चेले बना लेते हैं। बहुत करके मजूर लोग उनमें होते हैं। कोई विद्या को पढ़ता हो तो उसको पढ़ने नहीं देते किन्तु कहते हैं कि—

पठितव्यं तदपि मर्त्तव्यं दन्तकटाकटेति किं कर्त्तव्यम्।

सन्तों को विद्या पढ़ने से क्या काम क्योंकि विद्या पढ़ने वाले भी मरजाते हैं फिर दन्त कटाकट क्यों करना ? साधुओं को चार धाम फिर आना, सन्तों की सेवा करनी, रामजी का भजन करना ।

जो किसी ने मूर्ख अविद्या की मूर्त्ति न देखी हो तो खाखीजी का दर्शन कर आवें । उनके पास जो कोई जाता है उनको बच्चा बच्ची कहते हैं चाहें वे खाखीजी के बाप मा के समान क्यों न हों ? जैसे खाखीजी हैं वैसे ही रूखड़, सूखड़, गोदड़िये और जमातवाले सुतरेसाईं और अकाली, कनफटे, जोगी, औघड़ आदि सब एकसे हैं । एक खाखी का चेला "श्रीगणेशाय नमः" घोखता घोखता कुवे पर जल भरने को गया। वहां पण्डित बैठा था वह उसको "स्रीगनेसाजन में" घोखते देखकर बोला अरे साधू ! अशुद्ध घोखता है "श्रीगणेशाय नमः" ऐसा घोख । उसने झट लोटा भर गुरूजी के पास जा कहा कि एक बम्मन मेरे घोखने को असुद्ध कहता है ऐसा सुन कर झट खाखीजी उठा कूप पर गया और पण्डित से कहा तूं मेरे चेले को बहकाता है ? तूं गुरू की लण्डी क्या पढ़ा है ? देख तूं एक प्रकार का पाठ जानता है, हम तीन प्रकार का जानते हैं । "स्रीगनेसाजन्नमें" "स्रीगनेसायन्नमें" "श्रीगनेसायनमें" । (पण्डित) सुनो साधूजी ! विद्या की बात बहुत कठिन है, बिना पढ़े नहीं आती । (खाखी) चल बे, सब विद्वान् को हमने रगड़ मारे जो भांग में घोट एक दम सब उड़ा दिये । सन्तों का घर बड़ा है । तूं बाबूड़ा क्या जाने । (पण्डित) देखो जो तुम ने विद्या पढ़ी होती तो ऐसे अपशब्द क्यों बोलते ? सब प्रकार का तुमको ज्ञान होता । (खाखी) अबे तू हमारा गुरू बनता है ? तेरा उपदेश हम नहीं सुनते । (पण्डित) सुनो कहां से ? बुद्धि ही नहीं है । उपदेश सुनने समझने के लिये विद्या चाहिये । (खाखी) जो सब शास्त्र पढ़े सन्तों को न माने तो जानो कि वह कुछ भी नहीं पढ़ा । (पण्डित) हां हम सन्तों की सेवा करते हैं परन्तु तुम्हारे से हुर्दङ्गों की नहीं करते क्योंकि सन्त सज्जन, विद्वान्, धार्मिक, परोपकारी पुरुषों को कहते हैं । (खाखी) देख हम रात दिन नंगे रहते, धूनी तापते, गांजा चरस के सैकड़ों दम लगाते, तीन २ लोटा भांग पीते, गांजा भांग धतूरा की

पत्ती की भाजी बना खाते, संखिया और अफीम भी चट निगल जावे, नशा में ग़र्क़ रात दिन बेगम रहते, दुनियां को कुछ नहीं समझते भीख मांगकर टिक्कड़ बना खाते रात भर ऐसी खांसी उठती जो पास में सोवे उसको भी नींद कभी न आवे इत्यादि सिद्धियां और साधूपन हम में हैं। फिर तू हमारी निन्दा क्यों करता है ? चेत् बाबूड़े जो हमको दिक्क करेगा हम तुमको भसम कर डालेंगे। (पण्डित) ये सब लक्षण असाधु मूर्ख और गवर्गण्डों के हैं साधुओं के नहीं। सुनो "साध्नोति पराणि धर्मकार्याणि स साधुः" जो धर्म-युक्त उत्तम काम करे सदा परोपकार में प्रवृत्त हो, कोई दुर्गुण जिसमें न हो, विद्वान्, सत्योपदेश से सब का उपकार करे उसको साधु कहते हैं। (खाखी) चल वे तू साधू के कर्म क्या जाने ? सन्तों का घर बड़ा है। किसी सन्त से अटकना नहीं, नहीं तो देख एक चीमटा उठाकर मारेगा, कपाल फुड़वा लेगा। (पण्डित) अच्छा खाखी जाओ अपने आसन पर हम से बहुत गुस्से मत हो। जानते हो राज्य कैसा है ? किसी को मारोगे तो पकड़े जाओगे, क़ैद भोगोगे बेत खाओगे वा कोई तुम को भी मार बैठेगा फिर क्या करोगे ? यह साधु का लक्षण नहीं। (खाखी) चलबे चेले किस राक्षस का मुख दिखलाया। (पण्डित) तुमने कभी किसी महात्मा का संग नहीं किया है नहीं तो ऐसे जड़ मूर्ख न रहते। (खाखी) हम आप ही महात्मा हैं। हमको किसी दूसरे की गर्ज़ नहीं। (पण्डित) जिनके भाग्य नष्ट होते हैं उनकी तुम्हारी सी बुद्धि और अभिमान होता है। खाखी चला गया आसन पर और पण्डित घर को गये। जब संध्या आर्ती होगई तब उस खाखी को बुड्ढा समझ बहुतसे खाखी "दण्डोत २" कहते साष्टांग करके बैठे। उस खाखी ने पूछा अबे रामदासिया! तू क्या पढ़ा है ? (रामदास) महाराज मैंने "वेस्नुसहसरनाम" पढ़ा है। अबे गोविन्दासिये ! तू क्या पढ़ा है ? (गोविन्दासिया) मैं "रामसतवराज" पढ़ा हूं अमुक खाखीजी के पास से। तब रामदास बोला कि महाराज आप क्या पढ़े हैं ? (खाखीजी) हम गीता पढ़े हैं। (रामदास) किसके पास ? (खाखीजी) चलबे छोकरे हम किसी को गुरू नहीं करते। देख हम "पराग-राज" में रहते थे। हमको अक्खर नहीं आता था। जब किसी लम्बी धोतीवाले

पण्डित को देखता था तब गीता के गोटके में पूछता था कि इस कलंगीवाले अक्खर का क्या नाम है ? ऐसे पूछता २ अठारा अध्याय गीता रगड़ मारी गुरू एक भी नहीं किया। भला ऐसे विद्या के शत्रुओं को अविद्या घर करके ठहरे नहीं तो कहां जाय ? ॥

ये लोग विना नशा, प्रमाद, लड़ना, खाना, सोना, झांझ पीटना, घंटा घड़ियाल शंख बजाना, धूनी चिता रखनी, नहाना, धोना, सब दिशाओं में व्यर्थ घूमते फिरने के अन्य कुछ भी अच्छा काम नहीं करते। चाहे कोई पत्थर को भी पिघला लेवे, परन्तु इन खाखियों के आत्माओं को बोध कराना कठिन है क्योंकि बहुधा वे शूद्रवर्ण मजूर, किसान, कहार आदि अपनी मजूरी छोड़ केवल खाख रमा के वैरागी खाखी आदि होजाते हैं। उनको विद्या वा सत्संग आदि का माहात्म्य नहीं जान पड़ सकता। इन में से नाथों का मन्त्र "नमः शिवाय"। खाखियों का "नृसिंहाय नमः"। रामावतों का "श्रीरामचन्द्राय नमः" अथवा "सीतारामाभ्यां नमः"। कृष्णोपासकों का "श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः" "नमो भगवते वासुदेवाय" और बंगालियों का "गोविन्दाय नमः"। इन मन्त्रों को कान में पढ़नेमात्र से शिष्य कर लेते हैं और ऐसी २ शिक्षा करते हैं कि बच्चे तूंबे का मन्त्र पढ़ले ॥

जल पवितर सथल पवितर और पवितर कुआ।
शिव कहे सुन पार्वती तूंबा पवितर हुआ ॥

भला ऐसे की योग्यता साधु वा विद्वान् होने अथवा जगत् के उपकार करने की कभी हो सकती है ? खाखी रात दिन लक्कड़ छाने [जंगली कंडे] जलाया करते हैं। एक महीने में कई रुपये की लकड़ी फूंक देते हैं। जो एक महीने की लकड़ी के मूल्य से कम्बलादि वस्त्र लेलें तो शतांश धन से आनन्द में रहें। उनको इतनी बुद्धि कहां से आवे ? और अपना नाम उसी धूनी में तपने ही से तपस्वी धर रक्खा है। जो इस प्रकार तपस्वी होसकें तो जंगली मनुष्य इनसे भी अधिक तपस्वी होजावें। जो जटा बढ़ाने, राख लगाने, तिलक

करने से तपस्वी होजाय तो सब कोई कर सके। ये ऊपर के त्यागस्वरूप और भीतर के महासंग्रही होते हैं॥

(प्रश्न) कबीरपन्थी तो अच्छे हैं? (उत्तर) नहीं। (प्रश्न) क्यों अच्छे नहीं? पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का खण्डन करते हैं, कबीर साहब फूलों से उत्पन्न हुए और अन्त में भी फूल होगये। ब्रह्मा विष्णु महादेव का जन्म जब नहीं था तब भी कबीर साहब थे। बड़े सिद्ध, ऐसे कि जिस बात को वेद पुराण भी नहीं जान सकता उसको कबीर जानते हैं। सच्चा रस्ता है सो कबीर ही ने दिखलाया है। इनका मन्त्र "सत्यनाम कबीर" आदि है (उत्तर) पाषाणादि को छोड़ पलंग, गद्दी तकिये, खड़ाऊं ज्योति अर्थात् दीप आदि का पूजना पाषाणमूर्त्ति से न्यून नहीं। क्या कबीर साहब भुनुगा था वा कलियां थीं जो फूलों से उत्पन्न हुआ? और अन्त में फूल होगया? यहां जो यह बात सुनी जाती है वही सच्ची होगी कि कोई जुलाहा काशी में रहता था। उसके लड़के बालक नहीं थे। एक समय थोड़ीसी रात्री थी। एक गली में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था। वह उसको उठा लेगया, अपनी स्त्री को दिया, उसने पालन किया। जब वह बड़ा हुआ तब जुलाहे का काम करता था किसी पण्डित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये गया उसने उसका अपमान किया। कहा, कि हम जुलाहे को नहीं पढ़ाते। इसी प्रकार कई पण्डितों के पास फिरा परन्तु किसी ने न पढ़ाया। तब ऊट पटांग भाषा बनाकर जुलाहे आदि नीच लोगों को समझाने लगा। तंबूरे लेकर गाता था भजन बनाता था। विशेष पण्डित, शास्त्र, वेदों की निन्दा किया करता था। कुछ मूर्ख लोग उसके जाल में फंस गये। जब मरगया तब लोगों ने उसको सिद्ध बना लिया। जो २ उसने जीते जी बनाया था उसको उसके चेले पढ़ते रहे। कान को मूंद के जो शब्द सुना जाता है उसको अनहत शब्द सिद्धान्त ठहराया। मनकी वृत्ति को "सुरति" कहते हैं। उसको उस शब्द सुनने में लगाना उसीको सन्त और परमेश्वर का ध्यान बतलाते हैं। वहां काल नहीं पहुंचता। बर्छी के समान तिलक और चन्दनादि

लकड़े की कंठी बांधते हैं। भला विचार [के] देखो कि इसमें आत्मा की उन्नति और ज्ञान क्या बढ़ सकता है? यह केवल लड़कों के खेल के समान लीला है। (प्रश्न) पंजाब देश में नानकजी ने एक मार्ग चलाया है क्योंकि वह भी मूर्त्ति का खंडन करते थे मुसलमान होने से बचाये वे साधु भी नहीं हुए किन्तु गृहस्थ बने रहे। देखो उन्होंने यह मंत्र उपदेश किया है इसी से विदित होता है कि उनका आशय अच्छा था—

ओं सत्यनाम कर्त्ता पुरुष निर्भो निर्वैर अकालमूर्त अजोनि सहभंगुरु प्रसाद जप आदि सच जुगादि सच है भी सच नानक होसी भी सच॥ [जपजी पौड़ी १]

(ओ३म्) जिसका सत्य नाम है वह कर्त्ता पुरुष भय और वैररहित अकाल मूर्त्ति जो काल में और जोनि में नहीं आता प्रकाशमान है उसी का जप गुरु की कृपा से कर वह परमात्मा आदि में सच था जुगों की आदि में सच वर्त्तमान में सच और होगा भी सच? (उत्तर) नानकजी का आशय तो अच्छा था परन्तु विद्या कुछ भी नहीं थी। हां भाषा उस देश की जोकि ग्रामों की है उसे जानते थे। वेदादि शास्त्र और संस्कृत कुछ भी नहीं जानते थे। जो जानते होते तो "निर्भय" शब्द को "निर्भो" क्यों लिखते? और इसका दृष्टान्त उनका बनाया संस्कृती स्तोत्र है चाहते थे कि मैं संस्कृत में भी पग अड़ाऊं परन्तु विना पढ़े संस्कृत कैसे आ सक्ता है? हां उन ग्रामीणों के सामने कि जिन्होंने संस्कृत कभी सुना भी नहीं था संस्कृती बनाकर संस्कृत के भी पण्डित बन गये होंगे। भला यह बात अपने मानप्रतिष्ठा और अपनी प्रख्याति की इच्छा के बिना कभी न करते। उनको अपनी प्रतिष्ठा की इच्छा अवश्य थी नहीं तो जैसी भाषा जानते थे कहते रहते और यह भी कह देते कि मैं संस्कृत नहीं पढ़ा। जब कुछ अभिमान था तो मानप्रतिष्ठा के लिये कुछ दंभ भी किया होगा? इसीलिये उनके ग्रन्थ में जहां तहां वेदों की निन्दा और स्तुति भी है क्योंकि जो ऐसा न करते तो उनसे भी कोई वेद का अर्थ पूछता जब न आता तब प्रतिष्ठा नष्ट होती इसलिये पहिले ही अपने शिष्यों के सामने कहीं २ वेदों के विरुद्ध बोलते

थे और कहीं २ वेद के लिये अच्छा भी कहा है क्योंकि जो कहीं अच्छा न कहते तो लोग उनको नास्तिक बनाते जैसे—

वेद पढ़त ब्रह्मा मरे चारों वेद कहानि ।
सन्त [साध] कि महिमा वेद न जाने ॥ [सुखमनी पौड़ी ७ । चो० ८]

नानक ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर ॥ सु० पौ० ८ । चो० ६ ॥

क्या वेद पढ़नेवाले मर गये और नानकजी आदि अपने को अमर समझते थे ? क्या वे नहीं मरगये ? वेद तो सब विद्याओं का भंडार है परन्तु जो चारों वेदों को कहानी कहे उसकी सब बातें कहानी हैं । जो मूर्खों का नाम सन्त होता है वे विचारे वेदों की महिमा कभी नहीं जान सकते ? जो नानकजी वेदों ही का मान करते तो उनका सम्प्रदाय न चलता न वे गुरु बन सकते थे क्योंकि संस्कृत विद्या तो पढ़े ही नहीं थे तो दूसरे को पढ़ाकर शिष्य कैसे बना सकते थे ? यह सच है कि जिस समय नानकजी पञ्जाब में हुए थे उस समय पञ्जाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित मुसलमानों से पीड़ित था । उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया । नानकजी के सामने कुछ उनका सम्प्रदाय वा बहुत से शिष्य नहीं हुए थे क्योंकि अविद्वानों में यह चाल है कि मरे पीछे उनको सिद्ध बना लेते हैं । पश्चात् बहुतसा माहात्म्य करके ईश्वर के समान मान लेते हैं हां ! नानकजी बड़े धनाढ्य और रईस भी नहीं थे परन्तु उनके चेलों ने "नानकचन्द्रोदय" और "जन्मसाखी" आदि में बड़े सिद्ध और बड़े २ ऐश्वर्य्यवाले थे, लिखा है । नानकजी ब्रह्मा आदि से मिले, बड़ी बातचीत की, सब ने इनका मान्य किया, नानकजी के विवाह में बहुतसे घोड़े रथ हाथी सोने चांदी मोती पन्ना आदि रत्नों से जड़े हुए और अमूल्य रत्नों का पारावार न था, लिखा है । भला ये गपोड़े नहीं तो क्या हैं ? इस में इनके चेलों का दोष है नानकजी का नहीं । दूसरा जो उनके पीछे उनके लड़के से उदासी चले और रामदास आदि से निर्मले । कितने ही गद्दीवालों ने भाषा बनाकर ग्रंथ में रक्खी है अर्थात् इनका गुरु गोविन्दसिंहजी दशमा हुआ ।

उनके पीछे उस ग्रंथ में किसी की भाषा नहीं मिलाई गई किन्तु वहां तक के जितने छोटे २ पुस्तक थे उन सब को इकट्ठे करके जिल्द बंधवा दी। इन लोगों ने भी नानकजी के पीछे बहुतसी भाषा बनाई। कितनों ही ने नाना प्रकार की पुराणों की मिथ्या कथा के तुल्य बना दिये परन्तु ब्रह्मज्ञानी आप परमेश्वर बन के उस पर कर्मोपासना छोड़कर इनके शिष्य झुकते आये इसने बहुत बिगाड़ कर दिया, नहीं जो नानकजी ने कुछ भक्ति विशेष ईश्वर की लिखी थी उसे करते आते तो अच्छा था। अब उदासी कहते हैं हम बड़े, निर्मले कहते हैं हम बड़े, अकालिये तथा सूतरहसाई कहते हैं कि सर्वोपरि हम हैं। इनमें गोविन्दसिंहजी शूरवीर हुए जो मुसलमानों ने उन के पुरुषाओं को बहुतसा दुःख दिया था उनसे वैर लेना चाहते थे परन्तु इनके पास कुछ सामग्री न थी और उधर मुसलमानों की बादशाही प्रज्वलित हो रही थी। इन्होंने एक पुरश्चरण करवाया। प्रसिद्धि की कि मुझको देवी ने वर और खड्ग दिया है कि तुम मुसलमानों से लड़ो तुम्हारा विजय होगा। बहुतसे लोग उनके साथी होगये और उन्होंने, जैसे वाममार्गियों ने "पंचमकार" चक्रांकितों ने "पंचसंस्कार" चलाये थे वैसे "पंच ककार" अर्थात् इनके पंच ककार युद्ध के उपयोगी थे। एक "केश" अर्थात् जिसके रखने से लड़ाई में लकड़ी और तलवार से कुछ बचावट हो। दूसरा "कंगण" जो शिर के ऊपर पगड़ी में अकाली लोग रखते हैं और हाथ में "कड़ा" जिससे हाथ और शिर बच सकें। तीसरा "काछ" अर्थात् जानू के ऊपर एक जांघिया कि जो दौड़ने और कूदने में अच्छा होता है बहुत करके अखाड़मल्ल और नट भी इसको इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान बचा रहे और अटकाव न हो। चौथा "कंगा" कि जिससे केश सुधरते हैं। पांचवां काचू [कर्द] कि जिससे शत्रु से भेट भटक्का होने से लड़ाई में काम आवे। इसीलिये यह रीति गोविन्दसिंहजी ने अपनी बुद्धिमत्ता से उस समय के लिये [की] थी अब इस समय में उनका रखना कुछ उपयोगी नहीं है परन्तु अब जो युद्ध के प्रयोजन के लिये बातें कर्त्तव्य थीं उनको धर्म के साथ मान ली हैं। मूर्त्तिपूजा तो नहीं करते किन्तु उससे विशेष ग्रन्थ की पूजा करते हैं। क्या यह मूर्त्तिपूजा नहीं है ? किसी जड़ पदार्थ के सामने शिर झुकाना वा उसकी पूजा

करना सब मूर्त्तिपूजा है। जैसे मूर्त्तिवालों ने अपनी दुकान जमाकर जीविका ठाढ़ी की है वैसे इन लोगों ने भी करली है। जैसे पूजारी लोग मूर्त्ति का दर्शन कराते, भेट चढ़वाते हैं वैसे नानकपंथी लोग ग्रन्थ की पूजा करते, कराते, भेट भी चढ़वाते हैं अर्थात् मूर्त्तिपूजावाले जितना वेद का मान्य करते हैं उतना ये लोग ग्रन्थसाहब वाले नहीं करते। हां यह कहा जा सकता है कि इन्होंने वेदों को न सुना न देखा क्या करें? जो सुनने और देखने में आवें तो बुद्धिमान् लोग जो कि हठी दुराग्रही नहीं हैं वे सब सम्प्रदायवाले वेदमत में आजाते हैं। परन्तु इन सब ने भोजन का बखेड़ा बहुतसा हटा दिया है जैसे इसको हटाया वैसे विषयाशक्ति दुरभिमान को भी हटाकर वेदमत की उन्नति करें तो बहुत अच्छी बात है।

(प्रश्न) दादूपंथी का मार्ग तो अच्छा है? (उत्तर) अच्छा तो वेदमार्ग है जो पकड़ा जाय तो पकड़ो नहीं तो सदा गोता खाते रहोगे। इनके मत में दादूजी का जन्म गुजरात में हुआ था। पुनः जयपुर के पास "आमेर" में रहते थे, तेली का काम करते थे। ईश्वर की सृष्टि की विचित्र लीला है कि दादूजी भी पुजाने लग गये। अब वेदादि शास्त्रों की सब बातें छोड़कर "दादूराम २" में ही मुक्ति मानली है। जब सत्योपदेशक नहीं होता तब ऐसे २ ही बखेड़े चला करते हैं। थोड़े दिन हुए कि एक "रामस्नेही" मत शाहपुरा से चला है। उन्होंने सब वेदोक्त धर्म को छोड़के "राम २" पुकारना अच्छा माना है। उसी में ज्ञान ध्यान मुक्ति मानते हैं। परन्तु जब भूख लगती है तब "रामनाम" में से रोटी शाक नहीं निकलता क्योंकि खानपान आदि तो गृहस्थों के घर ही में मिलते हैं। वे भी मूर्त्तिपूजा को धिक्कारते हैं परन्तु आप स्वयं मूर्त्ति बन रहे हैं। स्त्रियों के संग में बहुत रहते हैं क्योंकि रामजी को "रामकी" के बिना आनन्द ही नहीं मिल सकता। अब थोड़ासा विशेष रामस्नेही के मत विषय में लिखते हैं—

एक रामचरण नामक साधु हुआ है जिसका मत मुख्य कर "शाहपुरा" स्थान मेवाड़ से चला है। वे "राम २" कहने ही को परममंत्र और इसी को

सिद्धान्त मानते हैं। उनका एक ग्रन्थ कि जिसमें सन्तदासजी आदि की वाणी हैं ऐसा लिखते हैं—

उनका वचन ॥

भरम रोग तब ही मिट्या, रट्या निरञ्जन राइ।
तब जम का कागज फट्या, कट्या कर्म तब जाइ ॥ साखी ॥ ६ ॥

अब बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि "राम २" करने से भ्रम जो कि अज्ञान है वा यमराज का पापानुकूल शासन अथवा किये हुए कर्म कभी छूट सकते हैं वा नहीं ? यह केवल मनुष्यों को पापों में फंसाना और मनुष्यजन्म को नष्ट कर देना है ॥ अब इनका जो मुख्य गुरू हुआ है "रामचरण" उसके वचनः—

महमा नांव प्रताप की, सुणौ सरवण चित लाइ।
रामचरण रसना रटौ, क्रम सकल झड़ जाइ ॥
जिन जिन सुमर्यां नांव कूं, सो सब उतरया पार।
रामचरण जो वीसर्या, सो ही जम के द्वार ॥

राम बिना सब झूठ बतायो ॥

राम भजत छूट्या सब क्रम्मा। चंद अरु सूर देइ परकम्मा।
राम कहे तिन कूं भै नाहीं। तीन लोक में कीरति गाहीं ॥

राम रटत जम जोर न लागै।

राम नाम लिख पथर तराई। भगति हेति औतार ही धरही ॥
ऊंच नीच कुल भेद विचारै। सो तो जनम आपणो हारै ॥
संता कै कुल दीसै नांहीं। रांम रांम कह राम सम्हांहीं ॥
ऐसो कुण जो कीरति गावै। हरि हरि जन को पार न पावै ॥
रांम संतां का अन्त न आवै। आप आपकी बुद्धि सम गावै ॥

इनका खण्डन ॥

प्रथम तो रामचरण आदि के ग्रंथ देखने से विदित होता है कि यह ग्रामीण एक सादा सीधा मनुष्य था। न वह कुछ पढ़ा था नहीं तो ऐसी गपड़चौथ क्यों लिखता ? यह केवल इनको भ्रम है कि राम २ कहने से कर्म छूट जायं केवल ये अपना और दूसरों का जन्म खोते हैं। जम का भय तो बड़ाभारी है परन्तु राजसिपाही, चोर, डाकू, व्याघ्र, सर्प, बीछू और मच्छर आदि का भय कभी नहीं छूटता। चाहे रात दिन राम २ किया करें कुछ भी नहीं होगा। जैसे "सक्कर २" कहने से मुख मीठा नहीं होता वैसे सत्यभाषणादि कर्म किये विना राम २ करने से कुछ भी नहीं होगा और यदि राम राम करना इनका राम नहीं सुनता तो जन्म भर कहने से भी नहीं सुनेगा और जो सुनता है तो दूसरी बार भी राम २ कहना व्यर्थ है। इन लोगों ने अपना पेट भरने और दूसरों का भी जन्म नष्ट करने के लिये एक पाखंड खड़ा किया है सो यह बड़ा आश्चर्य हम सुनते और देखते हैं कि नाम तो धरा रामस्नेही और काम करते हैं रांडसनेही का। जहां देखो वहां रांड ही रांड सन्तों को घेररही हैं यदि ऐसे ऐसे पाखण्ड न चलते तो आर्य्यावर्त्त देश की दुर्दशा क्यों होती। ये लोग अपने चेलों को जूंठ खिलाते हैं और स्त्रियां भी लम्बी पड़ के दण्डवत् प्रणाम करती हैं। एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की लीला होती रहती है। अब दूसरी इनकी शाखा "खेड़ापा" ग्राम मारवाड़ देश से चली है। उसका इतिहास—एक रामदास नामक जाति का ढेढ़ बड़ा चालाक था। उसके दो स्त्रियां थीं। वह प्रथम बहुत दिन तक औघड़ होकर त्तों के साथ खाता रहा। पीछे वामी कूण्डापंथी। पीछे "रामदेव" का "कामड़िया" * बना। अपनी दोनों स्त्रियों के साथ गाता था। ऐसे घूमता २ "सीथल" † में ढेढ़ों

* राजपूताने में "चमार" लोग भगवें वस्त्र रंग कर "रामदेव" आदि के गीत, जिन को वे "शब्द" कहते हैं, चमारों और अन्य जातियों को सुनाते हैं वे "कामड़िये" कहलाते हैं ॥ स० दा० ॥

† "सीथल जोधपुर के राज्य में एक बड़ा ग्राम है ॥ स० दा० ॥

का "गुरू रामदास" था उससे मिला। उसने उसको "रामदेव" का पंथ बता के अपना चेला बनाया। उस रामदास ने खेड़ापा ग्राम में जगह बनाई और इसका इधर मत चला। उधर शाहपुरे में रामचरण का। उसका भी इतिहास ऐसा सुना है कि वह जयपुर का बनियां था। उसने "दांतड़ा" ग्राम में एक साधु से वेश लिया और उसको गुरू किया और शाहपुरे में जाके टिक्की जमाई। भोले मनुष्यों में पाखण्ड की जड़ शीघ्र जम जाती है, जमगई। इन सब में ऊपर के रामचरण के वचनों के प्रमाण से चेला करके ऊंच नीच का कुछ भेद नहीं। ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त इन में चेले बनते हैं। अब भी कूंडापन्थी से ही हैं क्योंकि मट्टी के कूंडों में ही खाते हैं। और साधुओं की जूठन खाते हैं। वेदधर्म से माता पिता संसार के व्यवहार से बहका कर छुड़ा देते और चेला बना लेते हैं और राम नाम को महामन्त्र मानते हैं और इसी को "छुच्छम" * वेद भी कहते हैं। राम २ कहने से अनन्त जन्मों के पाप छूट जाते हैं इसके बिना मुक्ति किसी की नहीं होती। जो श्वास और प्रश्वास के साथ राम २ कहना बतावे उसको सत्यगुरू कहते हैं और सत्यगुरू को परमेश्वर से भी बड़ा मानते हैं और उस की मूर्त्ति का ध्यान करते हैं। साधुओं के चरण धोके पीते हैं। जब गुरू से चेला दूर जावे तो गुरू के नख और डाढ़ी के बाल अपने पास रख लेवे। उसका चरणामृत नित्य लेवे, रामदास और हररामदास के वाणी के पुस्तक को वेद से अधिक मानते हैं। उसकी परिक्रमा और आठ दण्डवत् प्रणाम करते हैं और जो गुरू समीप हो तो गुरू को दण्डवत् प्रणाम कर लेते हैं। स्त्री वा पुरुष को राम २ एकसा ही मन्त्रोपदेश करते हैं और नामस्मरण ही से कल्याण मानते पुनः पढ़ने में पाप समझते हैं। उनकी साखी—

पंडताई पाने पड़ी, ओ पूरब लो पाप।
राम २ सुमर्यां विना, रइग्यो रीतो आप॥
वेद पुराण पढ़े पढ़ गीता, रामभजन विन रइ गये रीता॥

* छुच्छम अर्थात् सूक्ष्म॥ स० दा०॥

ऐसे २ पुस्तक बनाये हैं, स्त्री को पति की सेवा करने में पाप और गुरु और साधु की सेवा में धर्म बतलाते हैं वर्णाश्रम को नहीं मानते । जो ब्राह्मण रामस्नेही न हो तो उसको नीच और चांडाल, रामस्नेही हो तो उसको उत्तम जानते हैं अब ईश्वर का अवतार नहीं मानते और रामचरण का वचन जो ऊपर लिख आये कि—

भगति हेति औतार ही धरही ॥

भक्ति और सन्तों के हित अवतार को भी मानते हैं इत्यादि पाखण्ड प्रपञ्च इनका जितना है सो सब आर्यावर्त्त देश का अहितकारक है इतने ही से बुद्धिमान् बहुतसा समझ लेंगे ।

(प्रश्न) गोकुलिये गुसाइयों का मत तो बहुत अच्छा है देखो कैसा ऐश्वर्य भोगते हैं क्या यह ऐश्वर्य्यलीला के विना ऐसा हो सकता है ? (उत्तर) यह ऐश्वर्य्य गृहस्थ लोगों का है गुसाइयों का कुछ नहीं । (प्रश्न) वाह २ गुसाइयों के प्रताप से है क्योंकि ऐसा ऐश्वर्य्य दूसरों को क्यों नहीं मिलता ? (उत्तर) दूसरे भी इसी प्रकार का छल प्रपञ्च रचें तो ऐश्वर्य्य मिलने में क्या सन्देह है ? और जो इनसे अधिक धूर्त्तता करते तो अधिक भी ऐश्वर्य्य हो सकता है । (प्रश्न) वाहजी वाह ! इसमें क्या धूर्त्तता है ? यह तो सब गोलोक की लीला है । (उत्तर) गोलोक की लीला नहीं किन्तु गुसाइयों की लीला है जो गोलोक की लीला है तो गोलोक भी ऐसा ही होगा । यह मत "तैलङ्ग" देश से चला है क्योंकि एक तैलङ्गी लक्ष्मणभट्ट नामक ब्राह्मण विवाह कर किसी कारण से माता पिता और स्त्री को छोड़ काशी में जा के उसने संन्यास ले लिया था और झूठा बोला था कि मेरा विवाह नहीं हुआ । दैवयोग से उसके माता पिता और स्त्री ने सुना कि काशी में संन्यासी हो गया है । उसके माता पिता और स्त्री काशी में पहुंच कर जिसने उसको संन्यास दिया था उससे कहा कि हमारे पुत्र को संन्यासी क्यों किया, देखो ! इसकी यह युवती स्त्री है और स्त्री ने कहा कि यदि आप मेरे पति को मेरे साथ न करें तो मुझ

को भी संन्यास दे दीजिये। तब तो उसको बुला के कहा कि तू बड़ा मिथ्यावादी है, संन्यास छोड़ गृहाश्रम कर, क्योंकि तूने झूठ बोलकर संन्यास लिया। उसने पुनः वैसा ही किया। संन्यास छोड़ उसके साथ हो लिया। देखो! इस मत का मूल ही झूठ कपट से चला। जब तैलङ्ग देश में गये उसको जाति में किसी ने न लिया। तब वहां से निकल कर घूमने लगे। "चरणार्गढ़" जो काशी के पास है उसके समीप "चंपारण्य" नामक जङ्गल में चले जाते थे। वहां कोई एक लड़के को जङ्गल में छोड़ चारों ओर दूर २ आगी जला कर चला गया था क्योंकि छोड़नेवाले ने यह समझा था जो आगी न जलाऊंगा तो अभी कोई जीव मार डालेगा। लक्ष्मणभट्ट और उसकी स्त्री ने लड़के को लेकर अपना पुत्र बना लिया। फिर काशी में जा रहे। जब वह लड़का बड़ा हुआ तब उसके मा बाप का शरीर छूट गया। काशी में बाल्यावस्था से युवावस्था तक कुछ पढ़ता भी रहा, फिर और कहीं जा के एक विष्णुस्वामी के मन्दिर में चेला होगया। वहां से कभी कुछ खटपट होने से काशी को फिर चला गया और संन्यास ले लिया। फिर कोई वैसा ही जातिबहिष्कृत ब्राह्मण काशी में रहता था। उसकी लड़की युवती थी। उसने इससे कहा कि तू संन्यास छोड़ मेरी लड़की से विवाह करले। वैसा ही हुआ। जिसके बाप ने जैसी लीला की थी वैसी पुत्र क्यों न करे? उस स्त्री को लेके वहीं चला गया कि जहां प्रथम विष्णुस्वामी के मंदिर में चेला हुआ था। विवाह करने से उनको वहां से निकाल दिया। फिर व्रजदेश में कि जहां अविद्या ने घर कर रक्खा है जाकर अपना प्रपञ्च अनेक प्रकार की छल युक्तियों से फैलाने लगा और मिथ्या बातों की प्रसिद्धि करने लगा कि श्रीकृष्ण मुझको मिले और कहा कि जो गोलोक से "दैवीजीव" मर्त्यलोक में आये हैं उनको ब्रह्मसम्बन्ध आदि से पवित्र करके गोलोक में भेजो। इत्यादि मूर्खों को प्रलोभन की बातें सुना के थोड़े से लोगों को अर्थात् ८४ (चौरासी) वैष्णव बनाये और निम्नलिखित मन्त्र बना लिये और उन में भी भेद रक्खा जैसे—

श्रीकृष्णः शरणं मम। क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा॥
[गोपालसहस्रनाम]

ये दोनों साधारण मन्त्र हैं परन्तु अगला मन्त्र ब्रह्मसम्बन्ध और समर्पण कराने का है—

श्रीकृष्णः शरणं मम सहस्रपरिवत्सरमितकालजातकृष्णवियोगजनित-तापक्लेशानन्ततिरोभावोऽहं भगवते कृष्णाय देहेन्द्रियप्राणान्तःकरणतद्धर्मांश्च दारागारपुत्राप्तवित्तेहपराण्यात्मना सह समर्प्पयामि दासोऽहं कृष्ण तवास्मि ॥

इस मन्त्र का उपदेश करके शिष्य शिष्याओं को समर्पण कराते हैं। "क्लीं कृष्णायेति"—यह "क्लीं" तन्त्र ग्रन्थ का है। इससे विदित होता है कि यह वल्लभमत भी वाममार्गियों का भेद है। इसीसे स्त्रीसंग गुसाईं लोग बहुधा करते हैं। "गोपीवल्लभेति" क्या कृष्ण गोपियों ही को प्रिय थे अन्य को नहीं? स्त्रियों को प्रिय वह होता है जो स्त्रैण अर्थात् स्त्रीभोग में फंसा हो। क्या श्रीकृष्णजी ऐसे थे? अब "सहस्रपरिवत्सरेति"—सहस्र वर्षों की गणना व्यर्थ है क्योंकि वल्लभ और उसके शिष्य कुछ सर्वज्ञ नहीं हैं। क्या कृष्ण का वियोग सहस्र वर्षों से हुआ और आज लों अर्थात् जब लों वल्लभ का मत न था न वल्लभ जन्मा था उसके पूर्व अपने दैवी जीवों के उद्धार करने को क्यों न आया? "ताप" और "क्लेश" ये दोनों पर्यायवाची हैं। इनमें से एक का ग्रहण करना उचित था, दो का नहीं। "अनन्त" शब्द का पाठ करना व्यर्थ है क्योंकि जो अनन्त शब्द रक्खो तो "सहस्र" शब्द का पाठ न रखना चाहिये और जो सहस्र शब्द का पाठ रक्खो तो अनन्त शब्द का पाठ रखना सर्वथा व्यर्थ है और जो अनन्तकाल लों "तिरोहित" अर्थात् आच्छादित रहे उसकी मुक्ति के लिये वल्लभ का होना भी व्यर्थ है क्योंकि अनन्त का अन्त नहीं होता। भला देहेन्द्रिय, प्राणान्तःकरण और उसके धर्म स्त्री, स्थान, पुत्र, प्राप्तधन का अर्पण कृष्ण को क्यों करना? क्योंकि कृष्ण पूर्णकाम होने से किसी के देहादि की इच्छा नहीं कर सकते और देहादि का अर्पण करना भी नहीं हो सकता क्योंकि देह के अर्पण से नखशिखाग्रपर्यन्त देह कहाता है। उसमें जो कुछ अच्छी बुरी वस्तु है मल मूत्रादि का भी अर्पण कैसे कर सकोगे? और जो पाप पुण्यरूप कर्म होते हैं उनको कृष्णार्पण करने से उनके फलभागी भी

कृष्ण ही होवें अर्थात् नाम तो कृष्ण का लेते हैं और समर्पण अपने लिये करावे हैं। जो कुछ देह में मलमूत्रादि हैं वह भी गोसाईंजी के अर्पण क्यों नहीं होता "क्या मीठा २ गड़प और कड़वा २ थू" और यह भी लिखा है कि गोसाईंजी के अर्पण करना अन्य मत वाले के नहीं। यह सब स्वार्थसिन्धुपन और पराये धनादि पदार्थ हरने और वेदोक्त धर्म के नाश करने की लीला रची है। देखो यह वल्लभ का प्रपञ्च—

श्रावणस्यामले पक्ष एकादश्यां महानिशि।
साक्षाद्भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते॥ १॥
ब्रह्मसम्बन्धकरणात्सर्वेषां देहजीवयोः।
सर्वदोषनिवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः॥ २॥
सहजा देशकालोत्था लोकवेदनिरूपिताः।
संयोगजाः स्पर्शजाश्च न मन्तव्याः कदाचन॥ ३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन।
असमर्पितवस्तूनां तस्माद्वर्जनमाचरेत्॥ ४॥
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्यादिति स्थितिः।
न मतं देवदेवस्य स्वामिभुक्तिसमर्पणम्॥ ५॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्।
दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः॥ ६॥
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति॥ ७॥
तथा कार्य्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः।
गंगात्वे गुणदोषाणां गुणदोषादिवर्णनम्॥ ८॥

इत्यादि श्लोक गोसाइयों के सिद्धान्तरहस्यादि ग्रन्थों में लिखे हैं यही गोसाइयों के मत का मूल तत्त्व है। भला इनसे कोई पूछे कि श्रीकृष्ण के देहान्त हुए कुछ कम पांच सहस्र वर्ष बीते वह वल्लभ से श्रावण मास की आधी रात को कैसे मिल सके?॥ १॥ जो गोसाईं का चेला होता है और उसको

सब पदार्थों का समर्पण करता है उसके शरीर और जीव के सब दोषों की निवृत्ति होजाती है यही वल्लभ का प्रपंच मूर्खों को बहका कर अपने मत में लाने का है जो गोसाईं के चेले चेलियों के सब दोष निवृत्त होजावें तो रोग दारिद्र्यादि दुःखों से पीड़ित क्यों रहें ? और वे दोष पांच प्रकार के होते हैं ॥ २ ॥ एक—सहज दोष जो कि स्वाभाविक अर्थात् काम क्रोधादि से उत्पन्न होते हैं। दूसरे—किसी देशकाल में नाना प्रकार के पाप किये जायें। तीसरे—लोक में जिनको भक्ष्याभक्ष्य कहते और वेदोक्त जो कि मिथ्याभाषणादि हैं। चौथे—संयोगज जो कि बुरे संग से अर्थात् चोरी, जारी, माता, भगिनी, कन्या, पुत्रवधू, गुरुपत्नी आदि से संयोग करना। पांचवें—स्पर्शज अस्पर्शनीयों को स्पर्श करना। इन पांच दोषों को गोसाईं लोगों के मत वाले कभी न मानें अर्थात् यथेष्टाचार करें ॥ ३ ॥ अन्य कोई प्रकार दोषों की निवृत्ति के लिये नहीं है विना गोसाईंजी के मत के। इसलिये विना समर्पण किये पदार्थ को गोसाईंजी के चेले न भोगें। इसीलिये इनके चेले अपनी स्त्री, कन्या, पुत्रबधू और धनादि पदार्थों को भी समर्पित करते हैं परन्तु समर्पण का नियम यह है कि जब लों गोसाईंजी की चरणसेवा में समर्पित न होवे तब लों उसका स्वामी स्वस्त्री को स्पर्श न करे ॥ ४ ॥ इससे गोसाइयों के चेले समर्पण करके पश्चात् अपने अपने पदार्थ का भोग करें क्योंकि स्वामी के भोग करे पश्चात् समर्पण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ इससे प्रथम सब कामों में सब वस्तुओं का समर्पण करें प्रथम गोसाईंजी को भार्यादि समर्पण करके पश्चात् ग्रहण करें वैसे ही हरि को सम्पूर्ण पदार्थ समर्पण करके ग्रहण करें ॥ ६ ॥ गोसाईंजी के मत से भिन्न मार्ग के वाक्यमात्र को भी गोसाइयों के चेला चेली कभी न सुनें न ग्रहण करें यही उनके शिष्यों का व्यवहार प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ वैसे ही सब वस्तुओं का समर्पण करके सब के बीच में ब्रह्मबुद्धि करे। उसके पश्चात् जैसे गङ्गा में अन्य जल मिलकर गङ्गारूप होजाते हैं वैसे ही अपने मत में गुण और दूसरे के मत में दोष हैं इसलिये अपने मत में गुणों का वर्णन किया करें ॥ ८ ॥ अब देखिये गोसाइयों का मत सब मतों से अधिक अपना प्रयोजन सिद्ध करनेहारा है। भला, इन गोसाइयों को कोई पूछे कि ब्रह्म का एक लक्षण भी तुम नहीं जानते तो शिष्य शिष्याओं को ब्रह्मसम्बन्ध कैसे करा सकोगे ? जो कहो कि हम ही

ब्रह्म हैं हमारे साथ सम्बन्ध होने से ब्रह्मसम्बन्ध होजाता है। सो तुम में ब्रह्म के गुण कर्म स्वभाव एक भी नहीं हैं पुनः क्या तुम केवल भोग विलास के लिये ब्रह्म बन बैठे हो? भला शिष्य और शिष्याओं को तो तुम अपने साथ समर्पित करके शुद्ध करते हो परन्तु तुम और तुम्हारी स्त्री, कन्या तथा पुत्रबधू आदि असमर्पित रहजाने से अशुद्ध रहगये वा नहीं? और तुम असमर्पित वस्तु को अशुद्ध मानते हो पुनः उनसे उत्पन्न हुए तुम लोग अशुद्ध क्यों नहीं? इसलिये तुमको भी उचित है कि अपनी स्त्री, कन्या तथा पुत्रबधू आदि को अन्य मत वालों के साथ समर्पित कराया करो। जो कहो कि नहीं नहीं तो तुम भी अन्य स्त्री पुरुष तथा धनादि पदार्थों को समर्पित करना कराना छोड़ देओ। भला अब लों जो हुआ सो हुआ परन्तु अब तो अपनी मिथ्या प्रपञ्चादि बुराइयों को छोड़ो और सुन्दर ईश्वरोक्त वेदविहित सुपथ में आकर अपने मनुष्यरूपी जन्म को सफल कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चतुष्टय फलों को प्राप्त होकर आनन्द भोगो। और देखिये! ये गोसाईं लोग अपने सम्प्रदाय को "पुष्टि" मार्ग कहते हैं अर्थात् खाने, पीने, पुष्ट होने और सब स्त्रियों के संग यथेष्ट भोग विलास करने को पुष्टिमार्ग कहते हैं परन्तु इनसे पूछना चाहिये कि जब बड़े दुःखदायी भगंदरादि रोगग्रस्त होकर ऐसे झींक झींक मरते हैं कि जिसको यही जानते होंगे। सच पूछो तो पुष्टिमार्ग नहीं किन्तु कुष्ठिमार्ग है। जैसे कुष्ठी के शरीर की सब धातु पिघल पिघल के निकल जाती हैं और विलाप करता हुआ शरीर छोड़ता है। ऐसी ही लीला इनकी भी देखने में आती है। इसलिये नरकमार्ग भी इसी को कहना संघटित हो सकता है क्योंकि दुःख का नाम नरक और सुख का नाम स्वर्ग है। इसी प्रकार मिथ्या जाल रचके बिचारे भोले भाले मनुष्यों को जाल में फंसाया और अपने आपको श्रीकृष्ण मान कर सबके स्वामी बनते हैं। यह कहते हैं कि जितने दैवी जीव गोलोक से यहां आये हैं उनके उद्धार करने के लिये हम लीला पुरुषोत्तम जन्मे हैं। जब लों हमारा उपदेश न ले तब लों गोलोक की प्राप्ति नहीं होती। वहां एक श्रीकृष्ण पुरुष और सब स्त्रियां हैं। वाह जी वाह! भला तुम्हारा मत है!! गोसाइयों के जितने चेले हैं वे सब गोपियां बन

जावेंगी। अब विचारिये भला जिस पुरुष के दो स्त्री होती हैं उसकी बड़ी दुर्दशा होजाती है तो जहां एक पुरुष और क्रोड़ों स्त्री एक के पीछे लगी हैं उसके दुःख का क्या पारावार है ? जो कहो कि श्रीकृष्ण में बड़ा भारी सामर्थ्य है सबको प्रसन्न करते हैं तो जो उसकी स्त्री जिसको स्वामिनीजी कहते हैं उसमें भी श्रीकृष्ण के समान सामर्थ्य होगा क्योंकि वह उनकी अर्द्धांगी है। जैसे यहां स्त्री पुरुष की कामचेष्टा तुल्य अथवा पुरुष से स्त्री की अधिक होती है तो गोलोक में क्यों नहीं ? जो ऐसा है तो अन्य स्त्रियों के साथ स्वामिनीजी की अत्यन्त लड़ाई बखेड़ा मचता होगा क्योंकि सपत्नीभाव बहुत बुरा होता है। पुनः गोलोक स्वर्ग के बदले नरकवत् होगया होगा, अथवा जैसे बहुत स्त्रीगामी पुरुष भगन्दरादि रोगों से पीड़ित रहता है वैसा ही गोलोक में भी होगा। छि ! छि !! छि !!! ऐसे गोलोक से मर्त्यलोक ही विचारा भला है। देखो जैसे यहां गोसाईंजी अपने को श्रीकृष्ण मानते हैं और बहुत स्त्रियों के साथ लीला करने से भगन्दर तथा प्रमेहादि रोगों से पीड़ित होकर महादुःख भोगते हैं। अब कहिये जिनका स्वरूप गोसाईं पीड़ित होता है तो गोलोक का स्वामी श्रीकृष्ण इन रोगों से पीड़ित क्यों न होगा ? और जा नहीं है तो उनका स्वरूप गोसाईंजी पीड़ित क्यों होते हैं ? (प्रश्न) मर्त्यलोक में लीलावतार धारण करने से रोग दोष होता है गोलोक में नहीं क्योंकि वहां रोग दोष ही नहीं हैं (उत्तर) "भोगे रोगभयम्" जहां भोग है वहां रोग अवश्य होता है और श्रीकृष्ण के क्रोड़ान्क्रोड़ स्त्रियों से सन्तान होते हैं वा नहीं और जो होते हैं तो लड़के २ होते हैं वा लड़की २ ? अथवा दोनों ? जो कहो कि लड़कियां ही लड़कियां होती हैं तो उनका विवाह किनके साथ होता होगा ? क्योंकि वहां विना श्रीकृष्ण के दूसरा कोई पुरुष नहीं, जो दूसरा है तो तुम्हारी प्रतिज्ञाहानि हुई। जो कहो लड़के ही लड़के होते हैं तो भी यही दोष आन पड़ेगा कि उनका विवाह कहां और किन के साथ होता ह ? अथवा घर के घर ही में गटपट करलेते हैं अथवा अन्य किसी की लड़कियां वा लड़के हैं तो भी तुम्हारी प्रतिज्ञा "गोलोक में एक ही श्रीकृष्ण पुरुष" नष्ट होजायगी और जो कहो कि संतान होते ही नहीं तो श्रीकृष्ण में नपुंसकत्व और स्त्रियों में बन्ध्यापन दोष आवेगा। भला यह गोकुल क्या हुआ ?

जानो दिल्ली के बादशाह की बीबियों की सेना हुई। अब जो गोसाईं लोग शिष्य और शिष्याओं का तन मन तथा धन अपने अर्पण करा लेते हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि तन तो विवाह समय में स्त्री और पति के समर्पण हो जाता है पुनः मन भी दूसरे के समर्पण नहीं हो सक्ता, क्योंकि मन ही के साथ तन का भी समर्पण करना बन सकता और जो करें तो व्यभिचारी कहावेंगे। अब रहा धन उसकी भी यही लीला समझो अर्थात् मन के विना कुछ भी अर्पण नहीं हो सकता। इन गोसाइयों का अभिप्राय यह है कि कमावें तो चेला और आनन्द करें हम। जितने वल्लभ संप्रदायी गोसाईं लोग हैं वे अब लों तैलङ्गी जाति में नहीं हैं और जो कोई इनको भूले भटके लड़की देता है वह भी जातिबाह्य होकर भ्रष्ट हो जाता है क्योंकि ये जाति से पतित किये गये और विद्याहीन रात दिन प्रमाद में रहते हैं। और देखिये! जब कोई गोसाईंजी की पधरावनी करता है तब उसके घर पर जा चुपचाप काठ की पुतली के समान बैठा रहता है, न कुछ बोलता न चालता। विचारा बोले तो तब जो मूर्ख न होवे "मूर्खाणां बलं मौनम्" क्योंकि मूर्खों का बल मौन है जो बोले तो उसकी पोल निकल जाय परन्तु स्त्रियों की ओर खूब ध्यान लगाकर ताकता रहता है और जिसकी ओर गोसाईंजी देखें तो जानो बड़े ही भाग्य की बात है और उसका पति, भाई, बन्धु, माता, पिता बड़े प्रसन्न होते हैं। वहां सब स्त्रियां गोसाईंजी के पग छूती हैं जिस पर गोसाईंजी का मन लगे वा कृपा हो उसकी अंगुली पैर से दबा देते हैं वह स्त्री और उसके पति आदि अपना धन्यभाग्य समझते हैं और उस स्त्री से उसके पति आदि सब कहते भी हैं कि तू गोसाईंजी की चरणसेवा में जा और जहां कहीं उसके पति आदि प्रसन्न नहीं होते वहां दूती और कुटनियों से काम सिद्ध करा लेते हैं। सच पूछो तो ऐसे काम करनेवाले उनके मन्दिरों में और उनके समीप बहुतसे रहा करते हैं। अब इनकी दक्षिणा की लीला अर्थात् इस प्रकार मांगते हैं—लाओ भेट गोसाईंजी की, बहूजी की, लालजी की, बेटीजी की, मुखियाजी की, बाहरियाजी की, गवैयाजी की और ठाकुरजी की। इन सात दुकानों से यथेष्ट माल मारते हैं। जब कोई गोसाईंजी का सेवक मरने लगता है तब उसकी छाती में पग गोसाईंजी धरते हैं

और जो कुछ मिलता है उसको गोसाईंजी गड़क्क कर जाते हैं क्या यह काम महाब्राह्मण और कर्टिया वा मुर्दावली के समान नहीं है ? कोई २ चेला विवाह में गोसाईंजी को बुलाकर उन्हीं से लड़के लड़की का पाणिग्रहण कराते हैं और कोई कोई सेवक जब केशरिया स्नान अर्थात् गोसाईंजी के शरीर पर स्त्री लोग केशर का उबटना करके फिर एक बड़े पात्र में पट्टा रख के गोसाईंजी को स्त्री पुरुष मिल के स्नान कराते हैं परन्तु विशेष स्त्री जन स्नान कराती हैं। पुनः जब गोसाईंजी पीताम्बर पहिर और खड़ाऊं पर चढ़ बाहर निकल आते हैं और धोती उसी में पटक देते हैं। फिर उस जल का आचमन उसके सेवक करते हैं और अच्छे मसाला धरके पान बीड़ी गोसाईंजी को देते हैं। वह चाब कर कुछ निगल जाते हैं शेष एक चांदी के कटोरे में जिसको उनका सेवक मुख के आगे कर देता है उसमें पीक उगल देते हैं। उसकी भी प्रसादी बटती है जिसको "खास" प्रसादी कहते हैं। अब विचारिये कि ये लोग किस प्रकार के मनुष्य हैं जो मूढ़ता और अनाचार होगा तो इतना ही होगा बहुत से समर्पण लेते हैं। उनमें से कितने ही वैष्णवों के हाथ का खाते हैं अन्य का नहीं। कितने ही वैष्णवों के हाथ का भी नहीं खाते लकड़े लों धो लेते हैं परन्तु आटा, गुड़, चीनी, घी आदि धोये से उनका स्पर्श बिगड़ जाता है क्या करें विचारे जो इनको धोवें तो पदार्थ ही हाथ से खो बैठें। वे कहते हैं कि हम ठाकुरजी के रङ्ग, राग, भोग में बहुतसा धन लगा देते हैं परन्तु वे रङ्ग, राग, भोग आप ही करते हैं और सच पूछो तो बड़े २ अनर्थ होते हैं अर्थात् होली के समय पिचकारियां भर कर स्त्रियों के अस्पर्शनीय अवयव अर्थात् गुप्त स्थान हैं उन पर मारते हैं और रसविक्रय ब्राह्मण के लिये निषिद्ध कर्म है उसको भी करते हैं। (प्रश्न) गुसाईंजी रोटी, दाल, कढ़ी, भात, शाक और मठरी तथा लड्डू आदि को प्रत्यक्ष हाट में बैठ के तो नहीं बेचते किन्तु अपने नौकरों चाकरों को पत्तलें बांट देते हैं वे लोग बेचते हैं गुसाईंजी नहीं। (उत्तर) जो गुसाईंजी उनको मासिक रुपये देवें तो वे पत्तलें क्यों लेवें ? गुसाईंजी अपने नौकरों के हाथ दाल भात आदि नौकरी के बदले में बेच देते हैं। वे ले जाकर हाट बजार में बेचते हैं। जो गुसाईंजी स्वयं

बाहर वेचते तो नौकर जो ब्राह्मणादि हैं वे तो रसविक्रय दोष से बच जाते और अकेले गुसाईंजी ही रसविक्रयरूपी पाप के भागी होते। प्रथम तो इस पाप में आप डूबे फिर औरों को भी समेटा और कहीं २ नाथद्वारा आदि में गुसाईंजी भी वेचते हैं। रसविक्रय करना नीचों का काम है उत्तमों का नहीं। ऐसे २ लोगों ने इस आर्य्यावर्त्त की अधोगति करदी।

(प्रश्न) स्वामीनारायण का मत कैसा है? (उत्तर) "यादृशी शीतला देवी तादृशो वाहनः खरः" जैसी गुसाईंजी की धनहरणादि में विचित्र लीला है वैसी ही स्वामीनारायण की भी है। देखिये! एक 'सहजानन्द' नामक अयोध्या के समीप एक ग्राम का जन्मा हुआ था। वह ब्रह्मचारी होकर गुजरात, काठियावाड़, कच्छभुज आदि देशों में फिरता था। उसने देखा कि यह देश मूर्ख और भोला भाला है चाहे जैसे इनको अपने मत में झुकालें वैसे ही ये लोग झुक सकते हैं। वहां उसने दो चार शिष्य बनाये। उनने आपस में सम्मति कर प्रसिद्ध किया कि सहजानन्द नारायण का अवतार और बड़ा सिद्ध है और भक्तों को चतुर्भुज मूर्त्ति धारण कर साक्षात् दर्शन भी देता है। एक वार काठियावाड़ में किसी काठी अर्थात् जिसका नाम "दादाखाचर" गढ़ड़े का भूमिया (ज़िमींदार) था। उसको शिष्यों ने कहा कि तुम चतुर्भुज नारायण का दर्शन करना चाहो तो हम सहजानन्दजी से प्रार्थना करें? उस ने कहा बहुत अच्छी बात है। वह भोला आदमी था। एक कोठरी में सहजानन्द ने शिर पर मुकुट धारण कर और शङ्ख चक्र अपने हाथ में ऊपर को धारण किया और एक दूसरा आदमी उसके पीछे खड़ा रहकर गदा पद्म अपने हाथ में लेकर सहजानन्द की बगल में से आगे को हाथ निकाल चतुर्भुज के तुल्य बन ठन गये। दादाखाचर से उनके चेलों ने कहा कि एक वार आंख उठा देख के फिर आंख मींच लेना और झट इधर को चले आना। जो बहुत देखोगे तो नारायण कोप करेंगे अर्थात् चेलों के मन में तो यह था कि हमारे कपट की परीक्षा न कर लेवे! उसको लेगये वह सहजानन्द कलाबत्तू और चिलकते हुए रेशम के कपड़े धारण कर रहा था। अंधेरी कोठरी में खड़ा था।

उसके चेलों ने एक दम लालटेन से कोठरी के ओर उजाला किया। दादाखाचर ने देखा तो चतुर्भुज मूर्त्ति दीखी फिर झट दीपक को आड़ में कर दिया। वे सब नीचे गिर, नमस्कार कर दूसरी ओर चले आये और उसी समय बीच में बातें कीं कि तुम्हारा धन्य भाग्य है। अब तुम महाराज के चेले होजाओ। उसने कहा बहुत अच्छी बात। जब लों फिर के दूसरे स्थान में गये तब लों दूसरे वस्त्र धारण करके सहजानन्द गद्दी पर बैठा मिला। तब चेलों ने कहा कि देखो अब दूसरा स्वरूप धारण करके यहां विराजमान हैं। वह दादाखाचर इनके जाल में फँस गया। वहीं से उनके मत की जड़ जमी क्योंकि वह एक बड़ा भूमिया था। वहीं अपनी जड़ जमा ली पुनः इधर उधर घूमता रहा, सबको उपदेश करता था, बहुतों को साधु भी बनाता था। कभी २ किसी साधु की कण्ठ की नाड़ी को मलकर मूर्छित भी कर देता था और सब से कहता था कि हम ने इनकी समाधि चढ़ादी है। ऐसी २ धूर्त्तता में काठियावाड़ के भोले भाले लोग उसके पेच में फँस गये। जब वह मर गया तब उसके चेलों ने बहुतसा पाखंड फैलाया। इसमें यह दृष्टान्त उचित होगा कि जैसे कोई एक चोरी करता पकड़ा गया था। न्यायाधीश ने उसका नाक कान काट डालने का दंड दिया। जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त नाचने गाने और हँसने लगा। लोगों ने पूछा कि तू क्यों हँसता है? उसने कहा कुछ कहने की बात नहीं है! लोगों ने पूछा ऐसी कौनसी बात है? उसने कहा बड़ी भारी आश्चर्य की बात है, हमने ऐसी कभी नहीं देखी। लोगों ने कहा कहो, क्या बात है? उसने कहा कि मेरे सामने साक्षात् चतुर्भुज नारायण खड़े मैं देखकर बड़ा प्रसन्न होकर नाचता गाता अपने भाग्य को धन्यवाद देता हूं कि मैं नारायण का साक्षात् दर्शन कर रहा हूं। लोगों ने कहा हमको दर्शन क्यों नहीं होता? वह बोला नाक की आड़ हो रही है जो नाक कटवा डालो तो नारायण दीखे नहीं तो नहीं। उनमें से किसी मूर्ख ने चाहा कि नाक जाय तो जाय परन्तु नारायण का दर्शन अवश्य करना चाहिये। उसने कहा कि मेरी भी नाक काटो नारायण को दिखलाओ। उसने उसकी नाक काट कर कान में कहा कि तू भी ऐसा ही कर नहीं तो मेरा और तेरा उपहास होगा। उसने भी समझा कि अब नाक तो आती नहीं इसलिये ऐसा ही कहना

ठीक है तब तो वह भी वहां उसी के समान नाचने, कूदने, गाने, बजाने, हँसने और कहने लगा कि मुझको भी नारायण दीखता है। वैसे होते २ एक सहस्र मनुष्यों का झुंड होगया और बड़ा कोलाहल मचा और अपने संप्रदाय का नाम "नारायणदर्शी" रक्खा। किसी मूर्ख राजा ने सुना उनको बुलाया। जब राजा उनके पास गया तब तो वे बहुत कुछ नाचने, कूदने, हँसने लगे। तब राजा ने पूछा कि यह क्या बात है ? उन्होंने कहा कि साक्षात् नारायण हमको दीखता है। (राजा) हमको क्यों नहीं दीखता ? (नारायणदर्शी) जबतक नाक है तबतक नहीं दीखेगा और जब नाक कटवा लोगे तब नारायण प्रत्यक्ष दीखेंगे। उस राजा ने विचारा कि यह बात ठीक है [राजा ने कहा] ज्योतिषीजी मुहूर्त्त देखिये। [ज्योतिषीजी ने उत्तर दिया] जो हुक्म, अन्नदाता, दशमी के दिन प्रातःकाल आठ बजे नाक कटवाने और नारायण के दर्शन करने का बड़ा अच्छा मुहूर्त्त है। वाह रे पोपजी ! अपनी पोथी में नाक काटने कटवाने का भी मुहूर्त्त लिख दिया। जब राजा की इच्छा हुई और उन सहस्र नकटों के सीधे बांध दिये तब तो वे बड़े ही प्रसन्न होकर नाचने कूदने और गाने लगे। यह बात राजा के दीवान आदि कुछ २ बुद्धिवालों को अच्छी न लगी। राजा के एक चार पीढ़ी का बूढ़ा ९० वर्ष का दीवान था। उसको जाकर उसके परपोते ने, जो कि उस समय दीवान था, वह बात सुनाई। तब उस वृद्ध ने कहा कि वे धूर्त्त हैं। तू मुझ को राजा के पास ले चल, वह लेगया। बैठते समय राजा ने बड़े हर्षित होके उन नाककटों की बातें सुनाईं। दीवान ने कहा कि सुनिये महाराज ! ऐसे शीघ्रता न करनी चाहिये। विना परीक्षा किये पश्चात्ताप होता है। (राजा) क्या ये सहस्र पुरुष झूठ बोलते होंगे ? (दीवान) झूठ बोलो वा सच विना परीक्षा के सच झूठ कैसे कह सकते हैं ? (राजा) परीक्षा किस प्रकार करनी चाहिये ? (दीवान) विद्या सृष्टिक्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। (राजा) जो पढ़ा न हो वह परीक्षा कैसे करे ? (दीवान) विद्वानों के संग से ज्ञान की वृद्धि करके। (राजा) जो विद्वान् न मिले तो ? (दीवान) पुरुषार्थी को कोई बात दुर्लभ नहीं है। (राजा) तो आप ही कहिये कैसा किया जाय ? (दीवान) मैं बुड्ढा और घर में बैठा रहता हूं

और अब थोड़े दिन जीऊंगा भी। इसलिये प्रथम परीक्षा मैं कर लेऊं तत्पश्चात् जैसा उचित समझें वैसा कीजियेगा। (राजा) बहुत अच्छी बात है। ज्योतिषीजी दीवानजी के लिये मुहूर्त्त देखो। (ज्योतिषी) जो महाराज की आज्ञा। यही शुक्ल पंचमी १० बजे का मुहूर्त्त अच्छा है। जब पंचमी आई तब राजाजी के पास आठ बजे बुड्ढे दीवानजी ने राजाजी से कहा कि सहस्र दो सहस्र सेना लेके चलना चाहिये। (राजा) वहां सेना का क्या काम है? (दीवान) आपको राज्यव्यवस्था की खबर नहीं है। जैसा मैं कहता हूं वैसा कीजिये। (राजा) अच्छा जाओ भाई सेना को तैयार करो। साढ़े नौ बजे सवारी करके राजा सब को लेकर गया। उनको देखकर वे नाचने और गाने लगे। जाकर बैठे। उनके महन्त जिसने यह सम्प्रदाय चलाया था जिसकी प्रथम नाक कटी थी उसको बुलाकर कहा कि आज हमारे दीवानजी को नारायण का दर्शन कराओ। उसने कहा अच्छा; दश बजे का समय जब आया तब एक थाली मनुष्य ने नाक के नीचे पकड़ रक्खी। उसने पैना चक्कू ले नाक काट थाली में डाल दी और दीवानजी की नाक से रुधिर की धार छूटने लगी। दीवानजी का मुख मलिन पड़ गया। फिर उस धूर्त्त ने दीवानजी के कान में मन्त्रोपदेश किया कि आप भी हँसकर सब से कहिये कि मुझको नारायण दीखता है। अब नाक कटी हुई नहीं आवेगी। जो ऐसा न कहोगे तो तुम्हारा बड़ा ठट्ठा होगा, सब लोग हँसी करेंगे। वह इतना कह अलग हुआ और दीवानजी ने अंगोछा हाथ में ले नाक की आड़ में लगा दिया। जब दीवानजी से राजा ने पूछा कहिये नारायण दीखता वा नहीं? दीवानजी ने राजा के कान में कहा कि कुछ भी नहीं दीखता वृथा इस धूर्त्त ने सहस्रों मनुष्यों को खराब किया। राजा ने दीवान से कहा अब क्या करना चाहिये? दीवान ने कहा इनको पकड़ के कठिन दण्ड देना चाहिये जब लों जीवें तब लों बन्दीघर में रखना चाहिये और इस दुष्ट को कि जिसने इन सबको बिगाड़ा है गधे पर चढ़ा बड़ी दुर्दशा के साथ मारना चाहिये। जब राजा और दीवान कान में बातें करने लगे तब उन्होंने डरके भागने की तैयारी की परन्तु चारों ओर फौज ने घेरा दे रक्खा था न भाग सके। राजा ने आज्ञा दी कि सब को पकड़ बेड़ियां डाल दो और इस दुष्ट का

काला मुख कर गधे पर चढ़ा इसके कण्ठ में फटे जूतों का हार पहिना सर्वत्र घुमा छोकरों से धूल राख इस पर डलवा चौक २ में जूतों से पिटवा कुत्तों से लुँचवा मरवा डाला जावे। जो ऐसा न होवे तो पुनः दूसरे भी ऐसा काम करते न डरेंगे। जब ऐसा हुआ तब नाककटे का सम्प्रदाय बंद हुआ। इसी प्रकार सब वेदविरोधी दूसरों के धन हरने में बड़े चतुर हैं। यह सम्प्रदायों की लीला है। ये स्वामीनारायण मत वाले धनहरे छल कपटयुक्त काम करते हैं। कितने ही मूर्खों के बहकाने के लिये मरते समय कहते हैं कि सफेद घोड़े पर बैठ सहजानन्दजी मुक्ति को लेजाने के लिये आये हैं और नित्य इस मन्दिर में एक बार आया करते ह। जब मेला होता है तब मन्दिर के भीतर पूजारी रहते हैं। और नीचे दुकान लगा रक्खी है। मंदिर में से दुकान में जाने का छिद्र रखते हैं। जो किसी ने नारियल चढ़ाया वही दुकान में फेंक दिया अर्थात् इसी प्रकार एक नारियल दिन में सहस्र वार बिकता है ऐसे ही सब पदार्थों को बेचते हैं। जिस जाति का साधु हो उनसे वैसा ही काम कराते हैं। जैसे नापित हो उससे नापित का, कुम्हार से कुम्हार का, शिल्पी से शिल्पी का, बनिये से बनिये का और शूद्र से शूद्रादि का काम लेते हैं। अपने चेलों पर एक कर (टिक्कस) बांध रक्खा है। लाखों क्रोड़ों रुपये ठग के एकत्र कर लिये हैं और करते जाते हैं। जो गद्दी पर बैठता है वह गृहस्थ विवाह करता है आभूषणादि पहिनता है। जहां कहीं पधरावनी होती है वहां गोकुलिये के समान गुसाईंजी बहूजी आदि के नाम से भेट पूजा लेते हैं। अपने को "सत्संगी" और दूसरे मत वालों को "कुसंगी" कहते हैं। अपने सिवाय दूसरा कैसा ही उत्तम धार्मिक विद्वान् पुरुष क्यों न हो परन्तु उसका मान्य और सेवा कभी नहीं करते क्योंकि अन्य मतस्थ की सेवा करने में पाप गिनते हैं। प्रसिद्धि में उनके साधु स्त्रीजनों का मुख नहीं देखते परन्तु गुप्त न जाने क्या लीला होती होगी? इसकी प्रसिद्धि सर्वत्र न्यून हुई है। कहीं २ साधुओं की परस्त्रीगमनादि लीला प्रसिद्ध होगई है और उनमें जो २ बड़े २ हैं वे जब मरते हैं तब उनको गुप्त कुवे में फेंक देकर प्रसिद्ध करते हैं कि अमुक महाराज सदेह वैकुण्ठ में गये। सहजानन्दजी आके लेगये। हमने बहुत प्रार्थना करी कि

महाराज इनको न लेजाइये क्योंकि इस महात्मा के यहां रहने से अच्छा है। सहजानन्दजी ने कहा कि नहीं अब इनकी वैकुण्ठ में बहुत आवश्यकता है इसलिये लेजाते हैं। हमने अपनी आंख से सहजानन्दजी को और विमान को देखा तथा जो मरनेवाले थे उनको विमान में बैठा दिया ऊपर को लेगये और पुष्पों की वर्षा करते गये। और जब कोई साधु बीमार पड़ता है और उसके बचने की आशा नहीं होती तब कहता है कि मैं कल रात को वैकुण्ठ में जाऊंगा। सुना है कि उस रात में जो उसके प्राण न छूटें और मूर्छित होगया हो तो भी कुवे में फेंक देते हैं क्योंकि जो उस रात को न फेंक दें तो झूंठे पड़ें इसलिये ऐसा काम करते होंगे। ऐसे ही जब गोकुलिया गुसाईं मरता है तब उनके चेले कहते हैं कि "गुसाईंजी लीला विस्तार कर गये।" जो इन गुसाईं स्वामीनारायणवालों का उपदेश करने का मन्त्र है वह एक ही है। "श्रीकृष्णः शरणं मम" इसका अर्थ ऐसा करते हैं कि श्रीकृष्ण मेरा शरण है अर्थात् मैं श्रीकृष्ण के शरणागत हूं परन्तु इसका अर्थ श्रीकृष्ण मेरे शरण को प्राप्त अर्थात् मेरे शरणागत हों ऐसा भी हो सकता है। ये सब जितने मत हैं वे विद्याहीन होने से ऊटपटांग शास्त्रविरुद्ध वाक्यरचना करते हैं क्योंकि उनको विद्या के नियमों की खबर नहीं है॥

(प्रश्न) माध्व मत तो अच्छा है? (उत्तर) जैसे अन्य मतावलंबी हैं वैसा ही माध्व भी है क्योंकि ये भी चक्रांकित होते हैं इनमें चक्रांकितों से इतना विशेष है कि रामानुजीय एक बार चक्रांकित होते हैं और माध्व वर्ष २ में फिर २ चक्रांकित होते जाते हैं। चक्रांकित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली रेखा लगाते हैं। एक माध्व पंडित से किसी एक महात्मा का शास्त्रार्थ हुआ था। (महात्मा) तुमने यह काली रेखा और चांदला (तिलक) क्यों लगाया? (शास्त्री) इसके लगाने से हम वैकुण्ठ को जायेंगे और श्रीकृष्ण का भी शरीर श्याम रंग था इसलिये हम काला तिलक करते हैं। (महात्मा) जो काली रेखा और चांदला लगाने से वैकुण्ठ में जाते हों तो सब मुख काला कर लेओ तो कहां जाओगे? क्या वैकुण्ठ के भी पार उतर जाओगे? और जैसा

श्रीकृष्ण का सब शरीर काला था वैसा तुम भी सब शरीर काला कर लिया करो। तब श्रीकृष्ण का सादृश्य हो सकता है। इसलिये यह भी पूर्वों के सदृश है ॥

(प्रश्न) लिङ्गाङ्कित का मत कैसा है? (उत्तर) जैसा चक्रांकित का, जैसे चक्रांकित चक्र से दागे जाते और नारायण के विना किसी को नहीं मानते वैसे लिङ्गाङ्कित लिङ्गाकृति से दागेजाते और बिना महादेव के अन्य किसी को नहीं मानते। इनमें विशेष यह है कि लिङ्गांकित पाषाण का एक लिङ्ग सोने अथवा चांदी में मढ़वा के गले में डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसको दिखा के पीते हैं उनका भी मन्त्र शैव के तुल्य रहता है ॥

अब ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज के गुणदोष कथन ॥

(प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज तो अच्छा है वा नहीं? (उत्तर) कुछ २ बातें अच्छी और बहुतसी बुरी हैं। (प्रश्न) ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाज सब से अच्छा है क्योंकि इसके नियम बहुत अच्छे हैं। (उत्तर) नियम सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेदविद्याहीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सकती है? जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थनासमाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाये और कुछ २ पाषाणादि मूर्त्तिपूजा को हटाया अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दे से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं। परन्तु इन लोगों में स्वदेशभक्ति बहुत न्यून है। ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं। खानपान विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं। २—अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही उसके बदले पेट भर निन्दा करते हैं। व्याख्यानों में ईसाई आदि अंगरेजों की प्रशंसा भरपेट करते हैं। ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि विना अंगरेजों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ। आर्य्यावर्त्ती लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं। इनकी उन्नति कभी नहीं हुई। ३—वेदादिकों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी पृथक् नहीं रहते। ब्राह्मसमाज के उद्देश के पुस्तक में साधुओं की संख्या में "ईसा" "मूसा" "मुहम्मद"

"नानक" और "चैतन्य" लिखे हैं। किसी ऋषि महर्षि का नाम भी नहीं लिखा। इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिनका नाम लिखा है उन्हीं के मतानुसारी मत वाले हैं। भला जब आर्य्यावर्त्त में उत्पन्न हुए हैं और इसी देश का अन्न जल खाया पिया अब भी खाते पीते हैं अपने माता, पिता, पितामहादि के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर अधिक झुक जाना, ब्राह्मसमाजी और प्रार्थनासमाजियों को एतद्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करते हैं। इंगलिश भाषा पढ़के पण्डिताभिमानी होकर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धिकारक काम क्योंकर हो सकता है ? । ४–अंगरेज, यवन, अन्त्यजादि से भी खाने पीने का भेद नहीं रक्खा। इन्होंने यही समझा होगा कि खाने पीने और जातिभेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा। परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां, उलटा बिगाड़ होता है। ५–(प्रश्न) जातिभेद ईश्वरकृत है वा मनुष्यकृत ? (उत्तर) ईश्वर और मनुष्यकृत भी जातिभेद है। (प्रश्न) कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत ? (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल, जन्तु आदि जातियां परमेश्वरकृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियां, वृक्षों में पीपल, वट, आम्र आदि, पक्षियों में हंस, काक, बकादि, जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जातिभेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रमव्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्य है। इसमें मनुष्यकृतत्व उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षापूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है। भोजन भेद भी ईश्वरकृत और मनुष्यकृत है। जैसे सिंह मांसाहारी और अर्णा भैंसा घासादि का आहार करते हैं। यह ईश्वरकृत और देश काल वस्तु भेद से भोजन भेद मनुष्यकृत है। (प्रश्न) देखो यूरोपियन लोग मुण्डे जूते, कोट, पतलून पहरते, होटल में सब के हाथ का खाते हैं इसीलिये अपनी बढ़ती करते जाते हैं (उत्तर) यह तुम्हारी भूल है क्योंकि मुसलमान

अन्त्यज लोग सब के हाथ का खाते हैं पुनः उनकी उन्नति क्यों नहीं होती ? जो यूरोपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्या सुशिक्षा करना कराना, स्वयंवर विवाह होना, बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होता, वे विद्वान् होकर जिस किसी के पाखण्ड में नहीं फँसते जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर बिचार और सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन मन धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं। देखो ! अपने देश के बने हुए जूते को आफिस और कचहरी में जाने देते हैं इस देशी जूते को नहीं। इतने ही में समझ लेओ कि अपने देश के बने जूतों का भी कितना मान प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्यों का नहीं करते। देखो ! कुछ सौ वर्ष से ऊपर इस देश में आये यूरोपियनों को हुए और आजतक यह लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा और तुम में से बहुतसे लोगों ने उनकी नक़ल कर ली इसी से तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं। अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है। आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं। अपने देशवालों को व्यापार आदि में सहाय देते हैं, इत्यादि गुणों और अच्छे २ कर्मों से उनकी उन्नति है। मुण्डे जूते, कोट, पतलून, होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बढ़े हैं और इनमें जातिभेद भी है देखो ! जब कोई यूरोपियन चाहे कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी अन्य देश अन्य मत वालों की लड़की वा यूरोपियन की लड़की अन्य देशवाले से विवाह कर लेती है तो उसी समय उसका निमन्त्रण साथ बैठकर खाने और विवाह आदि अन्य लोग बन्द कर देते हैं। यह जातिभेद नहीं तो क्या ? और तुम भोलेभालों को बहकाते हैं कि हम में जातिभेद नहीं। तुम अपनी मूर्खता से मान भी लेते हो। इसलिये जो कुछ करना वह सोच विचार के करना चाहिये जिसमें पुनः पश्चात्ताप करना न पड़े। देखो ! वैद्य और औषध की आवश्यकता रोगी के लिये है नीरोग के लिये नहीं। विद्यावान् नीरोग और विद्यारहित अविद्यारोग से ग्रस्त रहता है। उस रोग के छुड़ाने के लिये सत्यविद्या और सत्योपदेश है।

उनको अविद्या से यह रोग है कि खाने पीने ही में धर्म्म रहता और जाता है। जब किसी को खाने पीने में अनाचार करता देखते हैं तब कहते और जानते हैं कि वह धर्म्मभ्रष्ट होगया। उसकी बात न सुननी और न उसके पास बैठते, न उसको अपने पास बैठने देते। अब कहिये कि तुम्हारी विद्या स्वार्थ के लिये है अथवा परमार्थ के लिये। परमार्थ तो तभी होता कि जब तुम्हारी विद्या से उन अज्ञानियों को लाभ पहुंचता। जो कहो कि वे नहीं लेते हम क्या करें? यह तुम्हारा दोष है उनका नहीं क्योंकि तुम जो अपना आचरण अच्छा रखते तो तुमसे प्रेम कर वे उपकृत होते सो तुमने सहस्रों का उपकार नाश करके अपना ही सुख किया सो यह तुमको बड़ा अपराध लगा क्योंकि परोपकार करना धर्म्म और परहानि करना अधर्म्म कहाता है। इसलिये विद्वान् को यथायोग्य व्यवहार करके अज्ञानियों को दुःखसागर से तारने के लिये नौकारूप होना चाहिये। सर्वथा मूर्खों के सदृश कर्म न करने चाहियें किन्तु जिसमें उनकी और अपनी दिन २ प्रति उन्नति हो वैसे कर्म करने उचित हैं। (**प्रश्न**) हम कोई पुस्तक ईश्वरप्रणीत वा सर्वांश सत्य नहीं मानते क्योंकि मनुष्यों की बुद्धि निर्भ्रान्त नहीं होती इससे उनके बनाये ग्रन्थ सब भ्रान्त होते हैं। इसलिये हम सब से सत्य ग्रहण करते और असत्य को छोड़ देते हैं। चाहे सत्य वेद में, बाइबिल में वा कुरान में और अन्य किसी ग्रन्थ में हो हम को ग्राह्य है असत्य किसी का नहीं। (**उत्तर**) जिस बात से तुम सत्यग्राही होना चाहते हो उसी बात से असत्यग्राही भी ठहरते हो क्योंकि जब सब मनुष्य भ्रान्तिरहित नहीं हो सकते तो तुम भी मनुष्य होने से भ्रान्तिसहित हो। जब भ्रान्तिसहित के वचन सर्वांश में प्रामाणिक नहीं होते तो तुम्हारे वचन का भी विश्वास नहीं होगा। फिर तुम्हारे वचन पर भी सर्वथा विश्वास न करना चाहिये। जब ऐसा है तो विषयुक्त अन्न के समान त्याग के योग्य हैं। फिर तुम्हारे व्याख्यान पुस्तक बनाये का प्रमाण किसी को भी न करना चाहिये "चले तो चौबेजी छब्बेजी बनने को गांठ के दो खोकर दुबेजी बन गये।" कुछ तुम सर्वज्ञ नहीं जैसे कि अन्य मनुष्य सर्वज्ञ नहीं हैं। कदाचित् भ्रम से असत्य को ग्रहण कर सत्य को छोड़ भी देते होंगे इसलिये सर्वज्ञ परमात्मा के वचन का

सहाय हम अल्पज्ञों को अवश्य होना चाहिये। जैसा कि वेद के व्याख्यान में लिख आये हैं वैसा तुमको अवश्य ही मानना चाहिये। नहीं तो "यतो भ्रष्टस्ततो भ्रष्टः" हो जाना है। जब सर्व सत्य वेदों से प्राप्त होता है जिनमें असत्य कुछ भी नहीं तो उनका ग्रहण करने में शंका करनी अपनी और पराई हानिमात्र कर लेनी है इसी बात से तुमको आर्य्यावर्त्तीय लोग अपना नहीं समझते और तुम आर्य्यावर्त्त की उन्नति के कारण भी नहीं हो सके क्योंकि तुम सब घर के भिक्षुक ठहरे हो। तुमने समझा है कि इस बात से हम लोग अपना और पराया उपकार कर सकेंगे सो न कर सकोगे। जैसे किसी के दो ही माता पिता सब संसार के लड़कों का पालन करने लगें सब का पालन करना तो असंभव है किन्तु उस बात से अपने लड़कों को भी नष्ट कर बैठें वैसे ही आप लोगों की गति है। भला वेदादि सत्य शास्त्रों को माने विना तुम अपने वचनों की सत्यता और असत्यता की परीक्षा और आर्य्यावर्त्त की उन्नति भी कभी कर सकते हो? जिस देश को रोग हुआ है उसकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं और यूरोपियन लोग तुम्हारी अपेक्षा नहीं करते और आर्य्यावर्त्तीय लोग तुमको अन्य मतियों के सदृश समझते हैं। अब भी समझ कर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है। जो तुम यह कहते हो कि सब सत्य परमेश्वर से प्रकाशित होता है पुनः ऋषियों के आत्माओं में ईश्वर से प्रकाशित हुए सत्यार्थ वेदों को क्यों नहीं मानते? हां, यही कारण है कि तुम लोग वेद नहीं पढ़े और न पढ़ने की इच्छा करते हो। क्योंकर तुमको वेदोक्त ज्ञान हो सकेगा?। ६—दूसरा जगत् के उपादान कारण के विना जगत् की उत्पत्ति और जीव को भी उत्पन्न मानते हो, जैसा ईसाई और मुसलमान आदि मानते हैं। इसका उत्तर सृष्ट्युत्पत्ति और जीवेश्वर की व्याख्या में देख लीजिये। कारण के बिना कार्य का होना सर्वथा असम्भव और उत्पन्न वस्तु का नाश न होना भी वैसा ही असम्भव है। ७—एक यह भी तुम्हारा दोष है जो पश्चात्ताप और प्रार्थना से पापों की निवृत्ति मानते हो। इसी बात से जगत् में बहुतसे पाप बढ़ गये हैं क्योंकि पुराणी लोग तीर्थादि यात्रा से, जैनी लोग भी नवकार मन्त्र जप और तीर्थादि

से, ईसाई लोग ईसा के विश्वास से, मुसलमान लोग "तोबा:" करने से पाप का छूटजाना बिना भोग के मानते हैं। इससे पापों से भय न होकर पाप में प्रवृत्ति बहुत होगई है इस बात में ब्राह्म और प्रार्थनासमाजी भी पुराणी आदि के समान हैं। जो वेदों को मानते तो बिना भोग के पाप पुण्य की निवृत्ति न होने से पापों से डरते और धर्म में सदा प्रवृत्त रहते जो भोग के बिना निवृत्ति माने तो ईश्वर अन्यायकारी होता है। ८-जो तुम जीव की अनन्त उन्नति मानते हो सो कभी नहीं हो सकती क्योंकि ससीम जीव के गुण कर्म स्वभाव का फल भी ससीम होना अवश्य है। (प्रश्न) परमेश्वर दयालु है ससीम कर्मों का फल अनन्त दे देगा। (उत्तर) ऐसा करे तो परमेश्वर का न्याय नष्ट होजाय और सत्कर्मों की उन्नति भी कोई न करेगा क्योंकि थोड़े से भी सत्कर्म का अनन्त फल परमेश्वर दे देगा और पश्चात्ताप वा प्रार्थना से पाप चाहें जितने हों छूट जायंगे ऐसी बातों से धर्म की हानि और पापकर्मों की वृद्धि होती है। (प्रश्न) हम स्वाभाविक ज्ञान को वेद से भी बड़ा मानते हैं नैमित्तिक को नहीं क्योंकि जो स्वाभाविक ज्ञान परमेश्वरदत्त हम में न होता तो वेदों को भी कैसे पढ़ पढ़ा समझ समझा सकते। इसलिये हम लोगों का मत बहुत अच्छा है। (उत्तर) यह तुम्हारी बात निरर्थक है क्योंकि जो किसी का दिया हुआ ज्ञान होता है वह स्वाभाविक नहीं होता। जो स्वाभाविक है वह सहज ज्ञान होता है और न वह बढ़ घट सकता उससे उन्नति कोई भी नहीं कर सकता क्योंकि जङ्गली मनुष्यों में भी स्वाभाविक ज्ञान है। क्यों वे अपनी उन्नति नहीं कर सकते? और जो नैमित्तिक ज्ञान है वही उन्नति का कारण है। देखो! तुम हम बाल्यावस्था में कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म कुछ भी ठीक २ नहीं जानते थे। जब हम विद्वानों से पढ़े तभी कर्त्तव्याकर्त्तव्य और धर्माधर्म को समझने लगे। इसलिये स्वाभाविक ज्ञान को सर्वोपरि मानना ठीक नहीं। ९-जो आप लोगों ने पूर्व और पुनर्जन्म नहीं माना है वह ईसाई मुसलमानों से लिया होगा। इसका भी उत्तर पुनर्जन्म की व्याख्या से समझ लेना परन्तु इतना समझो कि जीव शाश्वत् अर्थात् नित्य है और उसके कर्म भी प्रवाहरूप से नित्य हैं। कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है। क्या वह जीव

कहीं निकम्मा बैठा रहा था ? वा रहेगा ? और परमेश्वर भी निकम्मा तुम्हारे कहने से होता है। पूर्वापर जन्म न मानने से कृतहानि और अकृताभ्यागम नैर्घृण्य और वैषम्य दोष भी ईश्वर में आते हैं क्योंकि जन्म न हो तो पाप पुण्य के फल भोग की हानि होजाय। क्योंकि जिस प्रकार दूसरे को सुख, दुःख, हानि, लाभ पहुंचाया होता है वैसा उसका फल विना शरीर धारण किये नहीं होता। दूसरा पूर्वजन्म के पाप पुण्यों के विना सुख, दुःख की प्राप्ति इस जन्म में क्योंकर होवे ? जो पूर्वजन्म के पाप पुण्यानुसार न होवे तो परमेश्वर अन्यायकारी और विना भोग किये नाश के समान कर्म का फल होजावे इसलिये यह भी बात आप लोगों की अच्छी नहीं। १०—और एक यह कि ईश्वर के विना दिव्य गुणवाले पदार्थों और विद्वानों को भी देव न मानना ठीक नहीं क्योंकि परमेश्वर महादेव और जो देव न होता तो सब देवों का स्वामी होने से महादेव क्यों कहाता ?। ११—एक अग्निहोत्रादि परोपकारक कर्मों को कर्त्तव्य न समझना अच्छा नहीं। १२—ऋषि महर्षियों के किये उपकारों को न मानकर ईसा आदि के पीछे झुक पड़ना अच्छा नहीं। १३—और विना कारण विद्या वेदों के अन्य कार्य विद्याओं की प्रवृत्ति मानना सर्वथा असम्भव है। १४—और जो विद्या का चिह्न यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ मुसलमान ईसाइयों के सदृश बन बैठना व्यर्थ है। जब पतलून आदि वस्त्र पहिरते हो और "तमगों" की इच्छा करते हो तो क्या यज्ञोपवीत आदि का कुछ बड़ा भार होगया था ?। १५—और ब्रह्मा से लेकर पीछे २ आर्य्यावर्त्त में बहुतसे विद्वान् होगये हैं उनकी प्रशंसा न करके यूरोपियन ही की स्तुति में उतर पड़ना पक्षपात और खुशामद के विना क्या कहाजाय ? १६—और बीजांकुर के समान जड़ चेतन के योग से जीवोत्पत्ति मानना उत्पत्ति के पूर्व जीवतत्त्व का न मानना और उत्पन्न का नाश न मान पूर्वापर विरुद्ध है। जो उत्पत्ति के पूर्व चेतन और जड़ वस्तु न था तो जीव कहां से आया और संयोग किनका हुआ ? जो इन दोनों को सनातन मानते हो तो ठीक है परन्तु सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना दूसरे किसी तत्त्व को न मानना यह आपका पक्ष व्यर्थ हो जायगा। इसलिये जो उन्नति करना चाहो तो "आर्य्यसमाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण

करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना अब भी पालन होता है, आगे होगा उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें। इसलिये जैसा आर्य्यसमाज आर्य्यावर्त्त देश की उन्नति का कारण है वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें तो बहुत अच्छी बात है क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं। (प्रश्न) आप सब का खण्डन करते ही आते हो परन्तु अपने २ धर्म में सब अच्छे हैं। खण्डन किसी का न करना चाहिये। जो करते हो तो आप इनसे विशेष क्या बतलाते हो? जो बतलाते हो तो क्या आप से अधिक वा तुल्य कोई पुरुष न था और न है? ऐसा अभिमान करना आपको उचित नहीं, क्योंकि परमात्मा की सृष्टि में एक २ से अधिक, तुल्य और न्यून बहुत हैं। किसी को घमंड करना उचित नहीं? (उत्तर) धर्म सब का एक होता है वा अनेक? जो कहो अनेक होते हैं तो एक दूसरे से विरुद्ध होते हैं वा अविरुद्ध? जो कहो कि विरुद्ध होते हैं तो एक के विना दूसरा धर्म नहीं हो सकता और जो कहो अविरुद्ध हैं तो पृथक् २ होना व्यर्थ है। इसलिये धर्म और अधर्म एक ही है अनेक नहीं। यही हम विशेष कहते हैं कि जैसे सब सम्प्रदायों के उपदेशों को कोई राजा इकट्ठा करे तो एक सहस्र से कम नहीं होंगे परन्तु इनका मुख्य भाग देखो तो पुरानी, किरानी, जैनी और कुरानी चार ही हैं क्योंकि इन चारों में सब सम्प्रदाय आजाते हैं। कोई राजा उनकी सभा करके कोई जिज्ञासु होकर प्रथम वाममार्गी से पूछे हे महाराज! मैंने आजतक न कोई गुरु और न किसी धर्म का ग्रहण किया है कहिये सब धर्मों में से उत्तम धर्म किसका है? जिसको मैं ग्रहण करूं। (वाममार्गी) हमारा है। (जिज्ञासु) ये नौसौ निन्न्यानवे कैसे हैं? (वाममार्गी) सब झूठे और नरकगामी हैं क्योंकि "कौलात्परतरं नहि"। इस वचन के प्रमाण से हमारे धर्म से परे कोई धर्म नहीं है। (जिज्ञासु) आपका क्या धर्म है? (वाममार्गी) भगवती का मानना, मद्य मांसादि पंच मकारों का सेवन और रुद्रयामल आदि चौसठ तन्त्रों का मानना इत्यादि, जो तू मुक्ति की

इच्छा करता है तो हमारा चेला हो जा। (जिज्ञासु) अच्छा परन्तु और महात्माओं का भी दर्शन कर पूछ पाछ आऊंगा। पश्चात् जिसमें मेरी श्रद्धा और प्रीति होगी उसका चेला होजाऊंगा। (वाममार्गी) अरे क्यों भ्रान्ति में पड़ा है। ये लोग तुझको बहका कर अपने जाल में फँसा देंगे। किसी के पास मत जावे हमारे ही शरणागत हो जा नहीं तो पछतावेगा। देख! हमारे मत में भोग और मोक्ष दोनों हैं। (जिज्ञासु) अच्छा देख तो आऊं। आगे चलकर शैव के पास जाके पूछा तो ऐसा ही उत्तर उसने दिया। इतना विशेष कहा कि विना शिव, रुद्राक्ष, भस्मधारण और लिङ्गार्चन के मुक्ति कभी नहीं होती। वह उसको छोड़ नवीन वेदान्तीजी के पास गया। (जिज्ञासु) कहो महाराज! आपका धर्म क्या है? (वेदान्ती) हम धर्माधर्म कुछ भी नहीं मानते। हम साक्षात् ब्रह्म हैं। हममें धर्माधर्म कहां है? यह जगत् सब मिथ्या है और जो ज्ञानी शुद्ध चेतन हुआ चाहे तो अपने को ब्रह्म मान जीवभाव को छोड़ नित्यमुक्त होजायगा। (जिज्ञासु) जो तुम ब्रह्म नित्यमुक्त हो तो ब्रह्म के गुण, कर्म, स्वभाव तुम में क्यों नहीं? और शरीर में क्यों बंधे हो? (वेदान्ती) तुझ को शरीर दीखते हैं इसीसे तू भ्रान्त है। हमको कुछ नहीं दीखता विना ब्रह्म के। (जिज्ञासु) तुम देखनेवाले कौन और किसको देखते हो? (वेदान्ती) देखनेवाला ब्रह्म और ब्रह्म को ब्रह्म देखता है। (जिज्ञासु) क्या दो ब्रह्म हैं? (वेदान्ती) नहीं अपने आपको देखता है। (जिज्ञासु) क्या कोई अपने कंधे पर आप चढ़ सकता है? तुम्हारी बात कुछ नहीं केवल पागलपने की है? वह आगे चलकर जैनियों के पास जाके पूछा। उन्होंने भी वैसा ही कहा परन्तु इतना विशेष कहा कि "जिनधर्म" के विना सब धर्म खोटा, जगत् का कर्त्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं, जगत् अनादि काल से जैसा का वैसा बना है और बना रहेगा, आ तू हमारा चेला होजा, क्योंकि हम सम्यक्त्वी अर्थात् सब प्रकार से अच्छे हैं, उत्तम बातों को मानते हैं। जैनमार्ग से भिन्न सब मिथ्यात्वी हैं। आगे चल के ईसाई से पूछा। उसने वाममार्गी के तुल्य सब जवाब सवाल किये। इतना विशेष बतलाया "सब मनुष्य पापी हैं, अपने सामर्थ्य से पाप नहीं छूटता। विना ईसा पर विश्वास के पवित्र होकर मुक्ति

को नहीं पा सकता। ईसा ने सब के प्रायश्चित्त के लिये अपने प्राण देकर दया प्रकाशित की है। तू हमारा ही चेला हो जा"। जिज्ञासु सुनकर मौलवी साहब के पास गया। उनसे भी ऐसे ही जवाब सवाल हुए। इतना विशेष कहा "लाशरीक खुदा उसके पैग़म्बर और कुरानशरीफ़ के विना माने कोई निजात नहीं पा सकता। जो इस मज़हब को नहीं मानता वह दोज़खी और काफ़िर है वाजिबुल्क़त्ल है"। जिज्ञासु सुनकर वैष्णव के पास गया। वैसा ही संवाद हुआ। इतना विशेष कहा कि "हमारे तिलक छापे देखकर यमराज डरता है"। जिज्ञासु ने मन में. समझा कि जब मच्छर, मक्खी, पुलिस के सिपाही, चोर, डाकू और शत्रु नहीं डरते तो यमराज के गण क्यों डरेंगे? फिर आगे चला तो सब मत वालों ने अपने २ को सच्चा कहा। कोई हमारा कबीर सच्चा, कोई नानक, कोई दादू, कोई वल्लभ, कोई सहजानन्द, कोई माधव आदि को बड़ा और अवतार बतलाते सुना। सहस्रों से पूछ उनके परस्पर एक दूसरे का विरोध देख, विशेष निश्चय किया कि इनमें कोई गुरु करने योग्य नहीं क्योंकि एक २ की झूठ में नौसौ निन्न्यानवे गवाह होगये। जैसे झूठे दुकानदार वा वेश्या और भड़ुवा आदि अपनी २ वस्तु की बड़ाई दूसरे की बुराई करते हैं वैसे ही ये हैं ऐसा जानः—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्। समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ १ ॥ तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमन्विताय। येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तान्तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ २ ॥ मुण्डक [१। खं० २। मं० १२। १३]

उस सत्य के विज्ञानार्थ वह समित्पाणि अर्थात् हाथ जोड़ अरिक्त हस्त होकर वेदवित् ब्रह्मनिष्ठ परमात्मा को जाननेहारे गुरु के पास जावे। इन पाखण्डियों के जाल में न गिरे ॥ १ ॥ जब ऐसा जिज्ञासु विद्वान् के पास जाय उस शान्तचित्त जितेन्द्रिय समीप प्राप्त जिज्ञासु को यथार्थ ब्रह्मविद्या परमात्मा के गुण कर्म स्वभाव का उपदेश करे और जिस २ साधन से वह श्रोता धर्मार्थ काम मोक्ष और परमात्मा को जान सके वैसी शिक्षा किया करे ॥ २ ॥ जब वह

ऐसे पुरुष के पास जाकर बोला कि महाराज अब इन संप्रदायों के बखेड़ों से मेरा चित्त भ्रान्त होगया क्योंकि जो मैं इनमें से किसी एक का चेला होऊंगा तो नौसौ निन्यानवे से विरोधी होना पड़ेगा। जिसके नौसौ निन्यानवे शत्रु और एक मित्र है उसको सुख कभी नहीं हो सकता। इसलिये आप मुझको उपदेश कीजिये जिसको मैं ग्रहण करूं। (आप्तविद्वान्) ये सब मत अविद्याजन्य विद्याविरोधी हैं। मूर्ख, पामर और जंगली मनुष्य को बहकाकर अपने जाल में फंसा के अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। वे विचारे अपने मनुष्यजन्म के फल से रहित होकर अपना मनुष्यजन्म व्यर्थ गमाते हैं। देख ! जिस बात में ये सहस्र एक मत हों वह वेदमत ग्राह्य है और जिसमें परस्पर विरोध हो वह कल्पित, झूठा, अधर्म, अग्राह्य है। (जिज्ञासु) इसकी परीक्षा कैसे हो ? (आप्त) तू जाकर इन २ बातों को पूछ। सब की एक सम्मति हो जायगी। तब वह उन सहस्रों की मंडली के बीच में खड़ा होकर बोला कि सुनो सब लोगो ! सत्यभाषण में धर्म है वा मिथ्या में ? सब एकस्वर होकर बोले कि सत्यभाषण में धर्म और असत्यभाषण में अधर्म है। वैसे ही विद्या पढ़ने, ब्रह्मचर्य करने, पूर्ण युवावस्था में विवाह, सत्सङ्ग, पुरुषार्थ, सत्य व्यवहार आदि में धर्म और अविद्या ग्रहण, ब्रह्मचर्य्य न करने, व्यभिचार करने, कुसंग, आलस्य, असत्य व्यवहार, छल, कपट, हिंसा, परहानि करने आदि कर्म्मों में। सब ने एक मत होके कहा कि विद्यादि के ग्रहण में धर्म और अविद्यादि के ग्रहण में अधर्म। तब जिज्ञासु ने सब से कहा कि तुम इसी प्रकार सब जने एकमत हो सत्यधर्म की उन्नति और मिथ्यामार्ग की हानि क्यों नहीं करते हो ? वे सब बोले जो हम ऐसा करें तो हमको कौन पूछे ? हमारे चेले हमारी आज्ञा में न रहें, जीविका नष्ट होजाय फिर जो हम आनन्द कर रहे हैं सो सब हाथ से जाय। इसलिये हम जानते हैं तो भी अपने २ मत का उपदेश और आग्रह करते ही जाते हैं क्योंकि "रोटी खाइये शक्कर से दुनियां ठगिये मक्कर से"। ऐसी बात है देखो ! संसार में सूधे सच्चे मनुष्य को कोई नहीं देता और न पूछता जो कुछ ढोंगबाजी और धूर्त्तता करता है वही पदार्थ पाता है। (जिज्ञासु) जो तुम ऐसा पाखण्ड चलाकर अन्य मनुष्यों को ठगते हो तुमको राजा दण्ड

क्यों नहीं देता ? (मत वाले) हमने राजा को भी अपना चेला बना लिया है। हमने पक्का प्रबन्ध किया है छूटेगा नहीं। (जिज्ञासु) जब तुम छल से अन्य मतस्थ मनुष्यों को ठग उनकी हानि करते हो परमेश्वर के सामने क्या उत्तर दोगे ? और घोर नरक में पड़ोगे, थोड़े जीवन के लिये इतना बड़ा अपराध करना क्यों नहीं छोड़ते ? (मत वाले) जब जैसा होगा तब देखा जायगा। नरक और परमेश्वर का दण्ड जब होगा तब होगा अब तो आनन्द करते हैं। हमको प्रसन्नता से धनादि पदार्थ देते हैं कुछ बलात्कार से नहीं लेते फिर राजा दण्ड क्यों देवे ? (जिज्ञासु) जैसे कोई छोटे बालक को फुसला के धनादि पदार्थ हर लेता है जैसे उसको दण्ड मिलता है वैसे तुमको क्यों नहीं मिलता ? क्योंकिः—

अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः ॥ मनु० [अ० २ । श्लोक ५३]

जो ज्ञानरहित होता है वह बालक और जो ज्ञान का देनेहारा है वह पिता और वृद्ध कहाता है। जो बुद्धिमान् विद्वान् है वह तो तुम्हारी बातों में नहीं फँसता किन्तु अज्ञानी लोग जो बालक के सदृश हैं उनको ठगने में तुमको राजदण्ड अवश्य होना चाहिये। (मत वाले) जब राजा प्रजा सब हमारे मत में हैं तो हमको दण्ड कौन देनेवाला है ? जब ऐसी व्यवस्था होगी तब इन बातों को छोड़कर दूसरी व्यवस्था करेंगे। (जिज्ञासु) जो तुम बैठे २ व्यर्थ माल मारते हो सो विद्याभ्यास कर गृहस्थों के लड़के लड़कियों को पढ़ाओ तो तुम्हारा और गृहस्थों का कल्याण हो जाय (मत वाले) जब हम बाल्यावस्था से लेकर मरण तक के सुखों को छोड़ें, बाल्यावस्था से युवावस्था पर्यन्त विद्या पढ़ने में रहें पश्चात् पढ़ाने में और उपदेश करने में जन्मभर परिश्रम करें हमको क्या प्रयोजन ? हमको ऐसे ही लाखों रुपये मिल जाते हैं, चैन करते हैं, उसको क्यों छोड़ें ? (जिज्ञासु) इसका परिणाम तो बुरा है देखो ! तुमको बड़े रोग होते हैं, शीघ्र मर जाते हो, बुद्धिमानों में निन्दित होते हो, फिर भी क्यों नहीं समझते ? (मत वाले) अरे भाई !

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा ! टका टकटकायते ॥ १ ॥

आना अंशकलाः प्रोक्ता रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम् ।
अतस्तं सर्व इच्छन्ति रूप्यं हि गुणवत्तमम् ॥ २ ॥

तू लड़का है संसार की बातें नहीं जानता देख टके के विना धर्म, टका के विना कर्म, टका के विना परमपद नहीं होता जिसके घर में टका नहीं है वह हाय ! टका टका करता २ उत्तम पदार्थों को टक २ देखता रहता है कि हाय ! मेरे पास टका होता तो इस उत्तम पदार्थ को मैं भोगता ॥ १ ॥ क्योंकि सब कोई सोलह कलायुक्त अदृश्य भगवान् का कथन श्रवण करते हैं सो तो नहीं दीखता परन्तु सोलह आने और पैसे कौड़ीरूप अंश कलायुक्त जो रुपैया है वही साक्षात् भगवान् है । इसीलिये सब कोई रुपयों की खोज में लगे रहते हैं क्योंकि सब काम रुपयों से सिद्ध होते हैं ॥ २ ॥ (जिज्ञासु) ठीक है तुम्हारी भीतर की लीला बाहर आगई तुमने जितना यह पाखण्ड खड़ा किया है वह सब अपने सुख के लिये किया है परन्तु इस में जगत् का नाश होता है क्योंकि जैसा सत्योपदेश में संसार को लाभ पहुंचता है वैसी ही असत्योपदेश से हानि होती है । जब तुमको धन का भी प्रयोजन था तो नौकरी और व्यापारादि कर्म करके धन को इकट्ठा क्यों नहीं कर लेते हो ? (मत वाले) उस में परिश्रम अधिक और हानि भी हो जाती है परन्तु इस हमारी लीला में हानि कभी नहीं होती किन्तु सर्वदा लाभ ही लाभ होता है देखो ! तुलसीदल डाल के चरणामृत दे, कंठी बांध देते चेला मूंडने से जन्मभर को पशुवत् होजाता है फिर चाहैं जैसे चलावें चल सकता है । (जिज्ञासु) ये लोग तुमको बहुतसा धन किसलिये देते हैं ? (मत वाले) धर्म स्वर्ग और मुक्ति के अर्थ । (जिज्ञासु) जब तुम ही मुक्त नहीं और न मुक्ति का स्वरूप व साधन जानते हो तो तुम्हारी सेवा करने वालों को क्या मिलेगा ? (मत वाले) क्या इस लोक में मिलता है ? नहीं किन्तु मरकर पश्चात् परलोक में मिलता है । जितना ये लोग हमको देते हैं और सेवा करते हैं वह सब इन लोगों को परलोक में मिल जाता है ।

(जिज्ञासु) इनको तो दिया हुआ मिल जाता है वा नहीं, तुम लेनेवालों को क्या मिलेगा ? नरक वा अन्य कुछ ? (मत वाले) हम भजन करा करते हैं। इसका सुख हमको मिलेगा। (जिज्ञासु) तुम्हारा भजन तो टका ही के लिये है। वे सब टका यहीं पड़े रहेंगे और जिस मांसपिण्ड को यहां पालते हो वह भी भस्म होकर यहीं रह जायगा। जो तुम परमेश्वर का भजन करते होते तो तुम्हारा आत्मा भी पवित्र होता। (मत वाले) क्या हम अशुद्ध हैं ? (जिज्ञासु) भीतर के बड़े मैले हो। (मत वाले) तुमने कैसे जाना ? (जिज्ञासु) तुम्हारी चाल चलन व्यवहार से। (मत वाले) महात्माओं का व्यवहार हाथी के दांत के समान होता है। जैसे हाथी के दांत खाने के भिन्न और दिखलाने के भिन्न होते हैं वैसे ही भीतर से हम पवित्र हैं और बाहर से लीलामात्र करते हैं। (जिज्ञासु) जो तुम भीतर से शुद्ध होते तो तुम्हारे बाहर के काम भी शुद्ध होते इसलिये भीतर भी मैले हो। (मत वाले) हम चाहें जैसे हों परन्तु हमारे चेले तो अच्छे हैं। (जिज्ञासु) जैसे तुम गुरु हो वैसे तुम्हारे चेले भी होंगे। (मत वाले) एक मत कभी नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्यों के गुण, कर्म, स्वभाव भिन्न २ हैं। (जिज्ञासु) जो बाल्यावस्था में एकसी शिक्षा हो सत्यभाषणादि धर्म का ग्रहण और मिथ्याभाषणादि अधर्म का त्याग करें तो एकमत अवश्य हो जाय और दो मत अर्थात् धर्मात्मा और अधर्मात्मा सदा रहते हैं, वे तो रहैं। परन्तु धर्मात्मा अधिक होने और अधर्मी न्यून होने से संसार में सुख बढ़ता है और जब अधर्मी अधिक होते हैं तब दुःख। जब सब विद्वान् एकसा उपदेश करें तो एकमत होने में कुछ भी विलम्ब न हो। (मत वाले) आजकल कलियुग है सत्ययुग की वात मत चाहो। (जिज्ञासु) कलियुग नाम काल का है, काल निष्क्रिय होने से कुछ धर्माधर्म के करने में साधक बाधक नहीं किन्तु तुम ही कलियुग की मूर्त्तियां बन रहे हो। जो मनुष्य ही सत्युग कलियुग न हों तो कोई भी संसार में धर्मात्मा नहीं होता, ये सब सङ्ग के गुण दोष हैं स्वाभाविक नहीं। इतना कहकर आप्त के पास गया। उनसे कहा कि महाराज ! तुमने मेरा उद्धार किया, नहीं तो मैं भी किसी के जाल में फँसकर नष्ट भ्रष्ट हो जाता, अब मैं भी इन पाखण्डियों का खण्डन और वेदोक्त सत्य मत का मण्डन

किया करूंगा। (आप्त) यही सब मनुष्यों का, विशेष विद्वान् और संन्यासियों का काम है कि सब मनुष्यों को सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन पढ़ा सुना के सत्योपदेश से उपकार पहुंचाना चाहिये।

(प्रश्न) जो ब्रह्मचारी, संन्यासी हैं वे तो ठीक हैं ? (उत्तर) ये आश्रम तो ठीक हैं परन्तु आजकल इन में भी बहुतसी गड़बड़ है। कितने ही नाम ब्रह्मचारी रखते हैं और झूठ मूठ जटा बढ़ाकर सिद्धाई करते और जप पुरश्चरणादि में फँसे रहते हैं विद्या पढ़ने का नाम नहीं लेते कि जिस हेतु से ब्रह्मचारी नाम होता है उस ब्रह्म अर्थात् वेद पढ़ने में परिश्रम कुछ भी नहीं करते। वे ब्रह्मचारी बकरी के गले के स्तन के सदृश निरर्थक हैं। और जो वैसे संन्यासी विद्याहीन दण्ड कमण्डलु ले भिक्षामात्र करते फिरते हैं जो कुछ भी वेदमार्ग की उन्नति नहीं करते छोटी अवस्था में संन्यास लेकर घूमा करते हैं और विद्याऽभ्यास को छोड़ देते हैं। ऐसे ब्रह्मचारी और संन्यासी इधर उधर जल, स्थल, पाषाणादि मूर्त्तियों का दर्शन पूजन करते फिरते, विद्या जानकर भी मौन ही रहते, एकान्त देश में यथेष्ट खा पी कर सोते पड़े रहते हैं और ईर्ष्या द्वेष में फँसकर निन्दा कुचेष्टा करके निर्वाह करते, काषाय वस्त्र और दण्ड ग्रहणमात्र से अपने को कृतकृत्य समझते अपने को सर्वोत्कृष्ट जानकर उत्तम काम नहीं करते वैसे संन्यासी भी जगत् में व्यर्थ वास करते हैं और जो सब जगत् का हित साधते हैं वे ठीक हैं (प्रश्न) गिरी, पुरी, भारती आदि गुसाईं लोग तो अच्छे हैं ? क्योंकि मण्डली बांधकर इधर उधर घूमते हैं सैकड़ों साधुओं को आनन्द कराते हैं और सर्वत्र अद्वैत मत का उपदेश करते हैं और कुछ २ पढ़ते पढ़ाते भी हैं इसलिये वे अच्छे होंगे। (उत्तर) ये सब दश नाम पीछे से कल्पित किये हैं सनातन नहीं, उनकी मण्डलियां केवल भोजनार्थ हैं। बहुतसे साधु भोजन ही के लिये मण्डलियों में रहते हैं दम्भी भी हैं क्योंकि एक को महन्त बना सायंकाल में एक महन्त जो कि उनमें प्रधान होता है वह गद्दी पर बैठ जाता है। सब ब्राह्मण और साधु खड़े होकर हाथ में पुष्प लेः—

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च । व्यासं शुकं गौडपदं महान्तम् ॥

इत्यादि श्लोक पढ़ के हर हर बोल उनके ऊपर पुष्प वर्षा कर साष्टाङ्ग नमस्कार करते हैं । जो कोई ऐसा न करे उसको वहां रहना भी कठिन है । यह दम्भ संसार को दिखलाने के लिये करते हैं जिससे जगत् में प्रतिष्ठा होकर माल मिले । कितने ही मठधारी गृहस्थ होकर भी संन्यास का अभिमानमात्र करते हैं, कर्म कुछ नहीं । संन्यास का वही कर्म है जो पांचवें समुल्लास में लिख आये हैं उसको न करके व्यर्थ समय खोते हैं । जो कोई अच्छा उपदेश करे उसके भी विरोधी होते हैं । बहुधा ये लोग भस्म रुद्राक्ष धारण करते और कोई २ शैव संप्रदाय का अभिमान रखते हैं और जब कभी शास्त्रार्थ करते हैं तो अपने मत का अर्थात् शङ्कराचार्योक्त का स्थापन और चक्रांकित आदि के खण्डन में प्रवृत्त रहते हैं । वेदमार्ग की उन्नति और यावत्पाखण्ड मार्ग हैं तावत् के खण्डन में प्रवृत्त नहीं होते । ये संन्यासी लोग ऐसा समझते हैं कि हम को खण्डन मण्डन से क्या प्रयोजन ? हम तो महात्मा हैं ऐसे लोग भी संसार में भाररूप हैं । जब ऐसे हैं तभी तो वेदमार्गविरोधी वाममार्गादि संप्रदायी, ईसाई, मुसलमान, जैनी आदि बढ़ गये अब भी बढ़ते जाते हैं और इनका नाश होता जाता है तो भी इनकी आंख नहीं खुलती ! खुले कहां से ? जो कुछ उनके मन में परोपकार बुद्धि और कर्त्तव्यकर्म करने में उत्साह होवे किन्तु ये लोग अपनी प्रतिष्ठा खाने पीने के सामने अन्य अधिक कुछ भी नहीं समझते और संसार की निन्दा से बहुत डरते हैं पुनः (लोकैषणा) लोक में प्रतिष्ठा (वित्तैषणा) धन बढ़ाने में तत्पर होकर विषयभोग (पुत्रैषणा) पुत्रवत् शिष्यों पर मोहित होना इन तीन एषणाओं का त्याग करना उचित है जब एषणा ही नहीं छूटी पुनः संन्यास क्योंकर हो सकता है ? अर्थात् पक्षपात रहित वेदमार्गोपदेश से जगत् के कल्याण करने में अहर्निश प्रवृत्त रहना संन्यासियों का मुख्य काम है । जब अपने २ अधिकार कर्मों को नहीं करते पुनः संन्यासादि नाम धराना व्यर्थ है । नहीं तो जैसे गृहस्थ व्यवहार और स्वार्थ में परिश्रम

करते हैं। उनसे अधिक परिश्रम परोपकार करने में संन्यासी भी तत्पर रहैं तभी सब आश्रम उन्नति पर रहैं। देखो! तुम्हारे सामने पाखण्ड मत बढ़ते जाते हैं ईसाई मुसलमान तक होते जाते हैं। तनिक भी तुम से अपने घर की रक्षा और दूसरों को मिलाना नहीं बन सकता। बने तो तब जब तुम करना चाहो! जबलों वर्त्तमान और भविष्यत् में उन्नतिशील नहीं होवे तबलों आर्य्यावर्त्त और अन्य देशस्थ मनुष्यों की वृद्धि नहीं होती। जब वृद्धि के कारण वेदादि सत्यशास्त्रों का पठनपाठन ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान, सत्योपदेश होते हैं तभी देशोन्नति होती है। चेत रक्खो! बहुतसी पाखण्ड की बातें तुमको सचमुच दीख पड़ती हैं। जैसे कोई साधु वा दुकानदार पुत्रादि देने की सिद्धियां बतलाता है तब उसके पास बहुत स्त्री जाती हैं और हाथ जोड़कर पुत्र मांगती हैं और बाबाजी सब को पुत्र होने का आशीर्वाद देता है। उन में से जिस २ के पुत्र होता है वह २ समझती है कि बाबाजी के वचन से हुआ। जब उससे कोई पूछे की सुअरी, कुत्ती, गधी और कुक्कुटी आदि के कच्चे बच्चे किस बाबाजी के वचन से होते हैं? तब कुछ भी उत्तर न दे सकेगी! जो कोई कहे कि मैं लड़के को जीता रख सकता हूं तो आप ही क्यों मर जाता है? कितने ही धूर्त्त लोग ऐसी माया रचते हैं कि बड़े २ बुद्धिमान् भी धोखा खाजाते हैं, जैसे धनसारी के ठग। ये लोग पांच सात मिलके दूर २ देश में जाते हैं। जो शरीर से डौलडाल में अच्छा होता है उसको सिद्ध बना लेते हैं जिस नगर वा ग्राम में धनाढ्य होते हैं उसके समीप जङ्गल में उस सिद्ध को बैठाते हैं। उसके साधक नगर में जाके अजान बनके जिस किसी को पूछते हैं "तुमने ऐसे महात्मा को यहां कहीं देखा वा नहीं?" वे ऐसा सुनकर पूछते हैं कि वह महात्मा कौन और कैसा है? (साधक) बड़ा सिद्ध पुरुष है। मन की बातें बतला देता है। जो मुख से कहता है वह हो जाता है। बड़ा योगीराज है, उसके दर्शन के लिये हम अपने घर द्वार छोड़कर देखते फिरते हैं। मैंने किसी से सुना था कि वे महात्मा इधर की ओर आये हैं। (गृहस्थ) जब वह महात्मा तुमको मिलें तो हम को भी कहना, दर्शन करेंगे और मन की बातें पूछेंगे। इसी प्रकार दिनभर नगर में फिरते और हरएक को उस सिद्ध

की बात कहकर रात्रि को इकट्ठे सिद्ध साधक होकर खाते पीते और सो रहते हैं। फिर भी प्रातःकाल नगर वा ग्राम में जाके उसी प्रकार दो तीन दिन कह-कर फिर चारों साधक किसी एक २ धनाढ्य से बोलते हैं कि वह महात्मा मिल गये। तुमको दर्शन करना हो तो चलो। वे जब तैयार होते हैं तब साधक उनसे पूछते हैं कि तुम क्या बात पूछना चाहते हो? हम से कहो। कोई पुत्र की इच्छा करता, कोई धन की, कोई रोग निवारण की और कोई शत्रु के जीतने की। उनको वे साधक ले जाते हैं। सिद्ध साधकों ने जैसा सङ्केत किया होता है अर्थात् जिसको धन की इच्छा हो उसको दाहनी ओर, जिस को पुत्र की इच्छा हो उसको सन्मुख, जिसको रोग निवारण की इच्छा हो उसको बाईं ओर और जिसको शत्रु जीतने की इच्छा हो उसको पीछे से लेजा के सामनेवाले के बीच में बैठाते हैं। जब नमस्कार करते हैं उसी समय वह सिद्ध अपनी सिद्धाई की झपट से उच्चस्वर से बोलता है "क्या यहां हमारे पास पुत्र रक्खे हैं जो तू पुत्र की इच्छा करके आया है?" इसी प्रकार धन की इच्छावाले से "क्या यहां थैलियां रक्खी हैं जो धन की इच्छा करके आया? फ़कीरों के पास धन कहां धरा है?" रोगवाले से "क्या हम वैद्य हैं जो तू रोग छुड़ाने की इच्छा से आया? हम वैद्य नहीं जो तेरा रोग छुड़ावें। जा किसी वैद्य के पास" परन्तु जब उसका पिता रोगी हो तो उसका साधक अंगूठा, जो माता रोगी हो तो तर्जनी, जो भाई रोगी हो तो मध्यमा, जो स्त्री रोगी हो तो अनामिका, जो कन्या रोगी हो तो कनिष्ठिका अंगुली चला देता है। उसको देख वह सिद्ध कहता है कि तेरा पिता रोगी है, तेरी माता, तेरा भाई, तेरी स्त्री और तेरी कन्या रोगी है। तब तो वे चारों के चारों बड़े मोहित होजाते हैं। साधक लोग उनसे कहते हैं देखो! जैसा हमने कहा था वैसे ही हैं वा नहीं? गृहस्थ हां जैसा तुमने कहा था वैसे ही हैं। तुमने हमारा बड़ा उपकार किया और हमारा भी बड़ा भाग्योदय था जो ऐसे महात्मा मिले जिनके दर्शन करके हम कृतार्थ हुए। साधक—सुनो भाई! ये महात्मा मनोगामी हैं। यहां बहुत दिन रहने वाले नहीं। जो कुछ इनका आशीर्वाद लेना हो तो अपने २ सामर्थ्य के अनुकूल इनकी तन, मन, धन से सेवा करो क्योंकि "सेवा से मेवा मिलती है" जो किसी

पर प्रसन्न होगये तो जाने क्या वर दे दें। "सन्तों की गति अपार है।" गृहस्थ ऐसे लल्लो पत्तो की बातें सुनकर बड़े हर्ष से उनकी प्रशंसा करते हुए घर की ओर जाते हैं साधक भी उनके साथ ही चले जाते हैं क्योंकि कोई उनका पाखण्ड खोल न देवे। उन धनाढ्यों का जो कोई मित्र मिला उससे प्रशंसा करते हैं। इसी प्रकार जो २ साधकों के साथ जाते हैं उन २ का हाल सब कह देते हैं। जब नगर में हल्ला मचता है कि अमुक ठौर एक बड़े भारी सिद्ध आये हैं, चलो उनके पास। जब मेला का मेला जाकर बहुतसे लोग पूछने लगते हैं कि महाराज मेरे मन का हाल कहिये तब तो व्यवस्था के बिगड़ जाने से चुपचाप होकर मौन साध जाता है और कहता है कि हमको बहुत मत सताओ तब तो झट उसके साधक भी कहने लग जाते हैं जो तुम इनको बहुत सताओगे तो चले जायगे और जो कोई बड़ा आदमी होता है वह साधक को अलग बुला के पूछता है कि हमारे मन की बात कहला दो तो हम सच मानें। साधक ने पूछा कि क्या बात है? धनाढ्य ने उससे कहदी। तब उसको उसी प्रकार के संकेत से लेजा के बैठाल देता है? उस सिद्ध ने समझ के झट कह दिया तब तो सब मेला भर ने सुनली कि अहो! बड़े ही सिद्ध पुरुष हैं। कोई मिठाई, कोई पैसा, कोई रुपया, कोई अशर्फ़ी, कोई कपड़ा और कोई सीधा सामग्री भेट करता है। फिर जबतक मानता बहुतसी रही तबतक यथेष्ट लूट करते हैं और किन्हीं २ दो एक आंख के अन्धे गांठ के पूरों को पुत्र होने का आशीर्वाद वा राख उठा के देदेता है और उससे सहस्रों रुपये लेकर कह देता है कि जो तेरी सच्ची भक्ति होगी तो पुत्र हो जायगा। इस प्रकार के बहुत से ठग होते हैं जिनकी विद्वान् ही परीक्षा कर सकते हैं और कोई नहीं। इसलिये वेदादि विद्या का पढ़ना सत्संग करना होता है जिससे कोई उसको ठगाई में न फँसा सके औरों को भी बचा सके। क्योंकि मनुष्य का नेत्र विद्या ही है। विना विद्या शिक्षा के ज्ञान नहीं होता। जो बाल्यावस्था से उत्तम शिक्षा पाते हैं वे ही मनुष्य और विद्वान् होते हैं। जिनको कुसंग है वे दुष्ट पापी महामूर्ख होकर बड़े दुःख पाते हैं। इसलिये ज्ञान को विशेष कहा है कि जो जानता है वही मानता है।

न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति ।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुञ्जाः ॥
[वृ० चा० अ० ११ । श्लो० १२]

यह किसी कवि का श्लोक है । जो जिसका गुण नहीं जानता वह उसकी निन्दा निरन्तर करता है, जैसे जङ्गली भील गजमुक्ताओं को छोड़ गुञ्जा का हार पहिन लेता है वैसे ही जो पुरुष विद्वान्, ज्ञानी, धार्मिक, सत्पुरुषों का संगी, योगी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय, सुशील होता है वही धर्मार्थ काम मोक्ष को प्राप्त होकर इस जन्म और परजन्म में सदा आनन्द में रहता है ।

यह आर्यावर्त्त निवासी लोगों के मत विषय में संक्षेप से लिखा । इसके आगे जो थोड़ासा आर्यराजाओं का इतिहास मिला है इसको सब सज्जनों को जनाने के लिये प्रकाशित किया जाता है ।

अब थोड़ासा आर्यावर्त्त देशीय राजवंश कि जिसमें श्रीमान् महाराज "युधिष्ठिर" से लेके महाराज "यशपाल" तक [हुए हैं] का इतिहास लिखते हैं । और श्रीमान् महाराज "स्वायंभव" मनु से लेके महाराज "युधिष्ठिर" तक का इतिहास महाभारतादि में लिखा ही है और इससे सज्जन लोगों को इधर के कुछ इतिहास का वर्त्तमान विदित होगा । यद्यपि यह बिषय विद्यार्थी सम्मिलित "हरिश्चन्द्रचन्द्रिका" और "मोहनचन्द्रिका" जो कि पाक्षिकपत्र श्रीनाथद्वारे से निकलता था (जो राजपूताना देश मेवाड़ राज उदयपुर चित्तौड़गढ़ में सबको विदित है) उससे हमने अनुवाद किया है । यदि ऐसे ही हमारे आर्य सज्जन लोग इतिहास और विद्या पुस्तकों का खोज कर प्रकाश करेंगे तो देश को बड़ा ही लाभ पहुंचेगा । उस पत्रसम्पादक महाशय ने अपने मित्र से एक प्राचीन पुस्तक जो कि संवत् विक्रम के १७८२ (सत्रहसौ बयासी) का लिखा हुआ था उससे ग्रहण कर अपने संवत् १९३९ मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष १९–२० किरण अर्थात् दो पाक्षिकपत्रों में छापा है सो निम्नलिखे प्रमाणे जानिये ।

आर्य्यावर्त्तदेशीय राजवंशावली ।

इन्द्रप्रस्थ में आर्य लोगों ने श्रीमन्महाराज "यशपाल" पर्यन्त राज्य किया जिनमें श्रीमन्महाराजे "युधिष्ठिर" से महाराजे "यशपाल" तक वंश अर्थात् पीढ़ी अनुमान १२४ (एकसौ चौवीस) राजा वर्ष ४१५७ मास ९ दिन १४ समय में हुए हैं इनका व्यौराः—

राजा	शक	वर्ष	मास	दिन
आर्यराजा	१२४	४१५७	९	१४

श्रीमन्महाराजे युधिष्ठिरादि वंश अनुमान पीढ़ी ३० वर्ष १७७० मास ११ दिन १० इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा युधिष्ठिर	३६	८	२५
२ राजा परीचित	६०	०	०
३ राजा जनमेजय	८४	७	२३
४ राजा अश्वमेध	८२	८	२२
५ द्वितीयराम	८८	२	८
६ छत्रमल	८१	११	२७
७ चित्ररथ	७५	३	१८
८ दुष्टशैल्य	७५	१०	२४
९ राजा उग्रसेन	७८	७	२१
१० राजा शूरसेन	७८	७	२१
११ भुवनपति	६९	५	५
१२ रणजीत	६५	१०	४
१३ ऋत्तक	६४	७	४
१४ सुखदेव	६२	०	२४
१५ नरहरिदेव	५१	१०	२
१६ सुचिरथ	४२	११	२
१७ शूरसेन (दू०)	५८	१०	८
१८ पर्वतसेन	५५	८	१०
१९ मेधावी	५२	१०	१०
२० सोनचीर	५०	८	२१
२१ भीमदेव	४७	९	२०
२२ नृहरिदेव	४५	११	२३
२३ पूर्णमल	४४	८	७
२४ करदवी	४४	१०	८
२५ अलंमिक	५०	११	८
२६ उदयपाल	३८	९	०
२७ दुवनमल	४०	१०	२६
२८ दमात	३२	०	०
२९ भीमपाल	५८	५	८
३० चेमक	४८	११	२१

राजा चेमक के प्रधान विश्रवा ने चेमक राजा को मारकर राज्य किया

पीढ़ी १४ वर्ष ५०० मास ३ दिन १७ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ विश्रवा	१७	३	२९
२ पुरसेनी	४२	८	२१
३ वीरसेनी	५२	१०	७
४ अनङ्गशायी	४७	८	२३
५ हरिजित्	३५	९	१७
६ परमसेनी	४४	२	२३
७ सुखपाताल	३०	२	२१
८ कद्रुत	४२	९	२४
९ सज्ज	३२	२	१४
१० अमरचूड़	२७	३	१६
११ अमीपाल	२२	११	२५
१२ दशरथ	२५	४	१२
१३ वीरसाल	३१	८	११
१४ वीरसालसेन	४७	०	१४

राजा वीरसालसेन को वीरमहा प्रधान ने मारकर राज्य किया वंश १६ वर्ष ४४५ मास ५ दिन ३ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा वीरमहा	३५	१०	८
२ अजितसिंह	२७	७	१९
३ सर्वदत्त	२८	३	१०
४ भुवनपति	१५	४	१०
५ वीरसेन	२१	२	१३
६ महीपाल	४०	८	७
७ शत्रुशाल	२६	४	३
८ संघराज	१७	२	१०
९ तेजपाल	२८	११	१०
१० माणिकचन्द	३७	७	२१
११ कामसेनी	४२	५	१०
१२ शत्रुमर्दन	८	११	१३
१३ जीवनलोक	२८	९	१७
१४ हरिराव	२६	१०	२९
१५ वीरसेन (दू०)	३५	२	२०
१६ आदित्यकेतु	२३	११	१३

राजा आदित्यकेतु मगधदेश के राजा को "धन्धर" नामक राजा प्रयाग के ने मारकर राज्य किया वंश-पीढ़ी ९ वर्ष ३७४ मास ११ दिन २६ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा धन्धर	४२	७	२४
२ महर्षी	४१	२	२९
३ सनरच्ची	५०	१०	१९
४ महायुद्ध	३०	३	८

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
५ दुरनाथ	२८	५	२५
६ जीवनराज	४५	२	५
७ रुद्रसेन	४७	४	२८
८ आरीलक	५२	१०	८
९ राजपाल	३६	०	०

राजा राजपाल को सामन्त महान्पाल ने मारकर राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष १४ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा महान्पाल के राज्यपर राजा विक्रमादित्य ने "अवन्तिका" (उज्जैन) से चढ़ाई करके राजा महान्पाल को मार के राज्य किया पीढ़ी १ वर्ष ९३ मास ० दिन ० इनका विस्तार नहीं है।

राजा विक्रमादित्य को शालिवाहन का उमराव समुद्रपाल योगी पैठण के ने मारकर राज्य किया पीढ़ी १६ वर्ष ३७२ मास ४ दिन २७ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ समुद्रपाल	५४	२	२०
२ चन्द्रपाल	३६	५	४
३ साहायपाल	११	४	११
४ देवपाल	२७	१	२८
५ नरसिंहपाल	१८	०	२०
६ सामपाल	२७	१	१७
७ रघुपाल	२२	३	२५
८ गोविन्दपाल	२७	१	१७
९ अमृतपाल	३६	१०	१३
१० बलीपाल	१२	५	२७
११ महीपाल	१३	८	४
१२ हरीपाल	१४	८	४
१३ सीसपाल *	११	१०	१३
१४ मदनपाल	१७	१०	१९
१५ कर्मपाल	१६	२	२
१६ विक्रमपाल	२४	११	१३

राजा विक्रमपाल ने पश्चिम दिशा का राजा (मलुखचन्द बोहरा था) इन पर चढ़ाई करके मैदान में लड़ाई की, इस लड़ाई में मलुखचन्द ने विक्रमपाल को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया पीढ़ी १० वर्ष १९१ मास १ दिन १६ इनका विस्तारः—

* किसी इतिहास में भीमपाल भी लिखा है।

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ मलुखचन्द	५४	२	१०
२ विक्रमचन्द	१२	७	१२
३ अमीनचन्द*	१०	०	५
४ रामचन्द	१३	११	८
५ हरीचन्द	१४	९	२४
६ कल्याणचन्द	१०	५	४
७ भीमचन्द	१६	२	९
८ लोवचन्द	२६	३	२२
९ गोविन्दचन्द	३१	७	१२
१० रानी पद्मावती †	१	०	०

रानी पद्मावती मरगई इसके पुत्र भी कोई नहीं था इसलिये सब मुत्स-द्दियों ने सलाह करके हरिप्रेम वैरागी को गद्दी पर बैठा के मुत्सद्दी राज्य करने लगे पीढ़ी ४ वर्ष ५० मास ० दिन २१ हरिप्रेम का विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ हरिप्रेम	७	५	१६
२ गोविन्दप्रेम	२०	२	८
३ गोपालप्रेम	१	७	२८
४ महाबाहु	६	८	२९

राजा महाबाहु राज्य छोड़ के बन में तपश्चर्या करने गये, यह बंगाल के राजा आधीसेन ने सुनके इन्द्रप्रस्थ में आके आप राज्य करने लगे पीढ़ी १२ वर्ष १५१ मास ११ दिन २ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ राजा आधीसेन	१८	५	२१
२ विलावलसेन	१२	४	२
३ केशवसेन	१५	७	१२
४ माधसेन	१२	४	२
५ मयूरसेन	२०	११	२७
६ भीमसेन	५	१०	९
७ कल्याणसेन	४	८	२१
८ हरीसेन	१२	०	२५
९ चेमसेन	८	११	१५
१० नारायणसेन	२	२	२९
११ लक्ष्मीसेन	२६	१०	०
१२ दामोदरसेन	११	५	१९

राजा दामोदरसेन ने अपने उम-राव को बहुत दुःख दिया इसलिये राजा के उमराव दीपसिंह ने सेना मिला के राजा के साथ लड़ाई की उस लड़ाई में राजा को मारकर दीप-सिंह आप राज्य करने लगे पीढ़ी ६

---

* इसका नाम कहीं मानकचन्द भी लिखा है।

† यह पद्मावती गोविन्दचन्द की रानी थी।

वर्ष १०७ मास ६ दिन २२ इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ दीपसिंह	१७	१	२६
२ राजसिंह	१४	५	०
३ रणसिंह	९	८	११
४ नरसिंह	४५	०	१५
५ हरिसिंह	१३	२	२९
६ जीवनसिंह	८	०	१

राजा जीवनसिंह ने कुछ कारण के लिये अपनी सब सेना उत्तर दिशा को भेज दी यह ख़बर पृथ्वीराज चौहाण वैराट के राजा ने सुनकर जीवनसिंह के ऊपर चढ़ाई करके आये और लड़ाई में जीवनसिंह को मारकर इन्द्रप्रस्थ का राज्य किया* पीढ़ी ५ वर्ष ८६ मास ० दिन २० इनका विस्तारः—

आर्यराजा	वर्ष	मास	दिन
१ पृथिवीराज	१२	२	१९
२ अभयपाल	१४	५	१७
३ दुर्जनपाल	११	४	१४
४ उदयपाल	११	७	३
५ यशपाल	३६	४	२७

राजा यशपाल के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी गढ़ ग़ज़नी से चढ़ाइ करके आया और राजा यशपाल को प्रयाग के क़िले में संवत् १२४९ साल में पकड़कर क़ैद किया पश्चात् इन्द्रप्रस्थ अर्थात् दिल्ली का राज्य आप (सुलतान शहाबुद्दीन) करने लगा पीढ़ी ५३ वर्ष ७५४ मास १ दिन १७ इनका विस्तार बहुत इतिहास पुस्तकों में लिखा है इसलिये यहां नहीं लिखा ॥ इसके आगे बौद्ध जैनमत विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे सुभाषाविभूषित आर्य्यावर्त्तीयमतखण्डनमण्डनविषय एकादशः समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ ११ ॥

* [इसके आगे और इतिहासों में इस प्रकार है कि महाराज पृथ्वीराज के ऊपर सुलतान शहाबुद्दीन ग़ोरी चढ़कर आया और कई वार हारकर लौट गया अन्त में संवत् १२४९ में आपस की फूट के कारण महाराज पृथ्वीराज को जीत अन्धा कर अपने देश को लेगया पश्चात् दिल्ली (इन्द्रप्रस्थ) का राज्य आप करने लगा, मुसलमानों का राज्य पीढ़ी ४५ वर्ष ६१३ रहा]

अनुभूमिका (२)

जब आर्य्यावर्त्तस्थ मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करनेवाली वेदविद्या छूटकर अविद्या फैल के मतमतान्तर खड़े हुए यही जैन आदि के विद्याविरुद्धमतप्रचार का निमित्त हुआ क्योंकि वाल्मीकीय और महाभारतादि में जैनियों का नाममात्र भी नहीं लिखा और जैनियों के ग्रन्थों में वाल्मीकीय और भारत में कथित "रामकृष्णादि" की गाथा बड़े विस्तारपूर्वक लिखी है इससे यह सिद्ध होता है कि यह मत इनके पीछे चला, क्योंकि जैसा अपने मत को बहुत प्राचीन जैनी लोग लिखते हैं वैसा होता तो वाल्मीकीय आदि ग्रन्थों में उनकी कथा अवश्य होती इसलिये जैनमत इन ग्रन्थों के पीछे चला है। कोई कहे कि जैनियों के ग्रन्थों में से कथाओं को लेकर वाल्मीकीय आदि ग्रन्थ बने होंगे तो उनसे पूछना चाहिये कि वाल्मीकीय आदि में तुम्हारे ग्रन्थों का नाम लेख भी क्यों नहीं? और तुम्हारे ग्रन्थों में क्यों है? क्या पिता के जन्म का दर्शन पुत्र कर सकता है? कभी नहीं। इससे यही सिद्ध होता है कि जैन बौद्ध मत शैव शाक्तादि मतों के पीछे चला है अब इस बारहवें (१२) समुल्लास में जो २ जैनियों के मत विषय में लिखा गया है सो २ उनके ग्रन्थों के पतेपूर्वक लिखा है इस में जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिये क्योंकि जो २ हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी बौद्ध वा अन्य लोग देखेंगे तब सबको सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा जबतक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाय तबतक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्य का निश्चय नहीं होता तभी अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है इसलिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्यजाति का

मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो। और यह बौद्ध जैन मत का विषय विना इन के अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध करनेवाला होगा क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत वाले को देखने पढ़ने वा लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष आर्यसमाज मुंबई के मन्त्री "सेठ सेवकलाल कृष्णदास" के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं तथा काशीस्थ "जैनप्रभाकर" यन्त्रालय में छपने और मुंबई में "प्रकरणरत्नाकर" ग्रन्थ के छपने से भी सब लोगों को जैनियों का मत देखना सहज हुआ है। भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना! इसी से विदित होता है कि इन ग्रन्थों के बनानेवालों को प्रथम ही शंका थी कि इन ग्रन्थों में असम्भव बातें हैं जो दूसरे मत वाले देखेंगे तो खण्डन करेंगे और हमारे मत वाले दूसरों के ग्रन्थ देखेंगे तो इस मत में श्रद्धा न रहेगी। अस्तु जो हो परन्तु बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिनको अपने दोष तो नहीं दीखते किन्तु दूसरों के दोष देखने में अत्युद्युक्त रहते हैं। यह न्याय की बात नहीं क्योंकि प्रथम अपने दोष देख निकाल के पश्चात् दूसरे के दोषों में दृष्टि देके निकालें। अब इन बौद्ध जैनियों के मत का विषय सब सज्जनों के सम्मुख धरता हूं जैसा है वैसा विचारें॥

किमधिकलेखेन बुद्धिमद्वर्येषु॥

अथ द्वादशसमुल्लासारम्भः

अथ नास्तिकमतान्तर्गतचारवाकबौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषयान् व्याख्यास्यामः ॥

कोई एक बृहस्पति नामा पुरुष हुआ था जो वेद, ईश्वर और यज्ञादि उत्तम कर्मों को भी नहीं मानता था देखिये उनका मतः—

यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

कोई मनुष्यादि प्राणी मृत्यु के अगोचर नहीं है अर्थात् सब को मरना है इसलिये जब तक शरीर में जीव रहे तब तक सुख से रहे । जो कोई कहे कि धर्माचरण से कष्ट होता है जो धर्म को छोड़े तो पुनर्जन्म में बड़ा दुःख पावे ! उसको "चारवाक" उत्तर देता है कि अरे भोले भाई ! जो मरे के पश्चात् शरीर भस्म होजाता है कि जिसने खाया पिया है वह पुनः संसार में न आवेगा इसलिये जैसे होसके वैसे आनन्द में रहो लोक में नीति से चलो, ऐश्वर्य्य को बढ़ाओ और उससे इच्छित भोग करो यही लोक समझो परलोक कुछ नहीं । देखो ! पृथिवी, जल, अग्नि, वायु इन चार भूतों के परिणाम से यह शरीर बना है इसमें इनके योग से चैतन्य उत्पन्न होता है जैसे मादक द्रव्य खाने पीने से मद (नशा) उत्पन्न होता है इसी प्रकार जीव शरीर के साथ उत्पन्न होकर शरीर के नाश के साथ आप भी नष्ट हो जाता है फिर किसको पाप पुण्य का फल होगा ? ॥

तच्चैतन्यविशिष्टदेह एव आत्मा देहातिरिक्त आत्मनि प्रमाणाभावात् ॥

इस शरीर में चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर उन्हीं के वियोग के साथ ही नष्ट हो जाता है क्योंकि मरे पीछे कोई भी जीव प्रत्यक्ष

नहीं होता हम एक प्रत्यक्ष ही को मानते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष के विना अनुमानादि होते ही नहीं इसलिये मुख्य प्रत्यक्ष के सामने अनुमानादि गौण होने से उनका ग्रहण नहीं करते सुन्दर स्त्री के आलिङ्गन से आनन्द का करना पुरुषार्थ का फल है। (उत्तर) ये पृथिव्यादि भूत जड़ हैं उनसे चेतन की उत्पत्ति कभी नहीं होसकती। जैसे अब माता पिता के संयोग से देह की उत्पत्ति होती है वैसे ही आदि सृष्टि में मनुष्यादि शरीरों की आकृति परमेश्वर कर्त्ता के विना कभी नहीं हो सकती। मद के समान चेतन की उत्पत्ति और विनाश नहीं होता क्योंकि मद चेतन को होता है जड़ को नहीं। पदार्थ नष्ट अर्थात् अदृष्ट होते हैं परन्तु अभाव किसी का नहीं होता इसी प्रकार अदृश्य होने से जीव का भी अभाव न मानना चाहिये। जब जीवात्मा सदेह होता है तभी उसकी प्रकटता होती है जब शरीर को छोड़ देता है तब यह शरीर जो मृत्यु को प्राप्त हुआ है वह जैसा चेतनयुक्त पूर्व था वैसा नहीं हो सकता। यही बात बृहदारण्यक में कही है:—

नाहं मोहं ब्रवीमि अनुच्छित्तिधर्मायमात्मेति ॥

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि हे मैत्रेयि! मैं मोह से बात नहीं करता किन्तु आत्मा अविनाशी है जिसके योग से शरीर चेष्टा करता है जब जीव शरीर से पृथक् होजाता है तब शरीर में ज्ञान कुछ भी नहीं रहता जो देह से पृथक् आत्मा न हो तो जिसके संयोग से चेतनता और वियोग से जड़ता होती है वह देह से पृथक् है जैसे आंख सब को देखती है परन्तु अपने को नहीं, इसी प्रकार प्रत्यक्ष का करनेवाला अपने को ऐन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं कर सकता जैसे अपनी आंख से सब घट पटादि पदार्थ देखता है वैसे आंख को अपने ज्ञान से देखता है। जो द्रष्टा है वह द्रष्टा ही रहता है दृश्य कभी नहीं होता जैसे विना आधार आधेय, कारण के विना कार्य्य, अवयवी के विना अवयव और कर्त्ता के विना कर्म नहीं रह सकते वैसे कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? जो सुन्दर स्त्री के साथ समागम करने ही को पुरुषार्थ का फल मानो तो क्षणिक सुख और उससे दुःख भी होता है वह भी पुरुषार्थ ही का फल होगा। जब ऐसा है

तो स्वर्ग की हानि होने से दुःख भोगना पड़ेगा जो कहो दुःख के छुड़ाने और सुख के बढ़ाने में यत्न करना चाहिये तो मुक्ति सुख की हानि हो जाती है इसलिये वह पुरुषार्थ का फल नहीं। (चारवाक) जो दुःख संयुक्त सुख का त्याग करते हैं वे मूर्ख हैं जैसे धान्यार्थी धान्य का ग्रहण और बुस का त्याग करता है वैसे संसार में बुद्धिमान् सुख का ग्रहण और दुःख का त्याग करें क्योंकि इस लोक के उपस्थित सुख को छोड़ के अनुपस्थित स्वर्ग के सुख की इच्छा कर धूर्तकथित वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म उपासना और ज्ञानकाण्ड का अनुष्ठान परलोक के लिये करते हैं वे अज्ञानी हैं। जो परलोक है ही नहीं तो उसकी आशा करना मूर्खता का काम है क्योंकिः—

अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥

चारवाकमतप्रचारक "बृहस्पति" कहता है कि अग्निहोत्र, तीन वेद, तीन दण्ड और भस्म का लगाना बुद्धि और पुरुषार्थ रहित पुरुषों ने जीविका बनाली है। किन्तु कांटे लगने आदि से उत्पन्न हुए दुःख का नाम नरक, लोकसिद्ध राजा परमेश्वर और देह का नाश होना मोक्ष अन्य कुछ भी नहीं। (उत्तर) विषयरूपी सुखमात्र को पुरुषार्थ का फल मानकर विषय दुःख निवारणमात्र में कृतकृत्यता और स्वर्ग मानना मूर्खता है अग्निहोत्रादि यज्ञों से वायु, वृष्टि, जल की शुद्धि द्वारा आरोग्यता का होना उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है उसको न जानकर वेद ईश्वर और वेदोक्त धर्म की निन्दा करना धूर्तों का काम है। जो त्रिदण्ड और भस्मधारण का खण्डन है सो ठीक है। यदि कण्टकादि से उत्पन्न ही दुःख का नाम नरक हो तो उससे अधिक महारोगादि नरक क्यों नहीं ?। यद्यपि राजा को ऐश्वर्यवान् और प्रजापालन में समर्थ होने से श्रेष्ठ मानें तो ठीक है परन्तु जो अन्यायकारी पापी राजा हो उसको भी परमेश्वरवत् मानते हो तो तुम्हारे जैसा कोई भी मूर्ख नहीं। शरीर का विच्छेद होनामात्र मोक्ष है तो गदहे कुत्ते आदि और तुम में क्या भेद रहा ? किन्तु आकृति ही मात्र भिन्न रही। (चारवाक):—

अग्निरुष्णो जलं शीतं शीतस्पर्शस्तथाऽनिलः ।
केनेदं चित्रितं तस्मात्स्वभावात्तद्व्यवस्थितिः ॥ १ ॥
न स्वर्गो नाऽपवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः ।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः ॥ २ ॥
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ ३ ॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम् ।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ ४ ॥
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः ।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ ५ ॥
यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ ६ ॥
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः ।
कस्माद्भूयो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः ॥ ७ ॥
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह ।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ ८ ॥
त्रयो वेदस्य कर्त्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः ।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम् ॥ ९ ॥
अश्वस्यात्र हि शिश्नन्तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्त्तितम् ।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्त्तितम् ॥ १० ॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम् ॥ ११ ॥

चारवाक, आभाणक, बौद्ध और जैन भी जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से मानते हैं जो २ स्वाभाविक गुण हैं उस २ से द्रव्यसंयुक्त होकर सब पदार्थ बनते हैं कोई जगत् का कर्त्ता नहीं ॥ १ ॥ परन्तु इनमें से चारवाक ऐसा मानता है किन्तु परलोक और जीवात्मा बौद्ध जैन मानते हैं चारवाक नहीं शेष इन तीनों का मत कोई २ बात छोड़ के एकसा है । न कोई स्वर्ग, न कोई नरक और न कोई परलोक

में जानेवाला आत्मा है और न वर्णाश्रम की क्रिया फलदायक है ॥ २ ॥ जो यज्ञ में पशु को मार होम करने से वह स्वर्ग को जाता हो तो यजमान अपने पितादि को मार होम करके स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता ? ॥ ३ ॥ जो मरे हुए जीवों का श्राद्ध और तर्पण तृप्तिकारक होता है तो परदेश में जाने वाले मार्ग में निर्वाहार्थ अन्न वस्त्र और धनादि को क्यों ले जाते हैं ? क्योंकि जैसे मृतक के नाम से अर्पण किया हुआ पदार्थ स्वर्ग में पहुंचता है तो परदेश में जाने वालों के लिये उनके सम्बन्धी भी घर में उन के नाम से अर्पण करके देशान्तर में पहुंचा देवें जो यह नहीं पहुंचता तो स्वर्ग में वह क्योंकर पहुंच सकता है ? ॥ ४ ॥ जो मर्त्यलोक में दान करने से स्वर्गवासी तृप्त होते हैं तो नीचे देने से घर के ऊपर स्थित पुरुष तृप्त क्यों नहीं होता ? ॥ ५ ॥ इसलिये जब तक जीवे तब तक सुख से जीवे जो घर में पदार्थ न हो तो ऋण लेके आनन्द करे, ऋण देना नहीं पड़ेगा क्योंकि जिस शरीर में जीव ने खाया पिया है उन दोनों का पुनरागमन न होगा फिर किससे कौन मांगेगा और कौन देवेगा ? ॥ ६ ॥ जो लोग कहते हैं कि मृत्युसमय जीव निकल के परलोक को जाता है यह बात मिथ्या है क्योंकि जो ऐसा होता तो कुटुम्ब के मोह से बद्ध होकर पुनः घर में क्यों नहीं आजाता ? ॥ ७ ॥ इसलिये यह सब ब्राह्मणों ने अपनी जीविका का उपाय किया है जो दशगात्रादि मृतकक्रिया करते हैं यह सब उन की जीविका की लीला है ॥ ८ ॥ वेद के बनानेहारे भांड, धूर्त्त और निशाचर अर्थात् राक्षस ये तीन "जर्फरी" "तुर्फरी" इत्यादि पण्डितों के धूर्त्ततायुक्त वचन हैं ॥ ९ ॥ देखो धूर्त्तों की रचना घोड़े के लिङ्ग को स्त्री ग्रहण करे उसके साथ समागम यजमान की स्त्री से कराना कन्या से ठट्ठा आदि लिखना धूर्त्तों के विना नहीं हो सकता ॥ १० ॥ और जो मांस का खाना लिखा है वह वेदभाग राक्षस का बनाया है ॥ ११ ॥

(**उत्तर**) विना चेतन परमेश्वर के निर्माण किये जड़ पदार्थ स्वयं आपस में स्वभाव से नियमपूर्वक मिलकर उत्पन्न नहीं हो सकते । जो स्वभाव से ही होते हों तो द्वितीय सूर्य चन्द्र पृथिवी और नक्षत्रादि लोक आप से आप क्यों

नहीं बन जाते हैं? ॥ १ ॥ स्वर्ग सुख भोग और नरक दुःख भोग का नाम है। जो जीवात्मा न होता तो सुख दुःख का भोक्ता कौन होसके ? जैसे इस समय सुख दुःख का भोक्ता जीव है वैसे परजन्म में भी होता है क्या सत्यभाषण और परोपकारादि क्रिया भी वर्णाश्रमियों की निष्फल होंगी ? कभी नहीं ॥ २ ॥ पशु मार के होम करना वेदादि सत्यशास्त्रों में कहीं नहीं लिखा और मृतकों का श्राद्ध तर्पण करना कपोलकल्पित है क्योंकि यह वेदादि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध होने से भागवतादि पुराणमतवालों का मत है इसलिये इस बात का खण्डन अखण्डनीय है ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ जो वस्तु है उसका अभाव कभी नहीं होता, विद्यमान जीव का अभाव नहीं हो सकता, देह भस्म हो जाता है जीव नहीं, जीव तो दूसरे शरीर में जाता है इसलिये जो कोई ऋणादि कर विराने पदार्थों से इस लोक में भोग कर नहीं देते हैं वे निश्चय पापी होकर दूसरे जन्म में दुःखरूपी नरक भोगते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ देह से निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है और उसको पूर्वजन्म तथा कुटुम्बादि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता इसलिये पुनः कुटुम्ब में नहीं आसकता ॥ ७ ॥ हां ब्राह्मणों ने प्रेतकर्म अपनी जीविकार्थ बना लिया है परन्तु वेदोक्त न होने से खण्डनीय है ॥ ८ ॥ अब कहिये जो चारवाक आदि ने वेदादि सत्यशास्त्र देखे सुने वा पढ़े होते तो वेदों की निन्दा कभी न करते कि वेद भांड धूर्त्त और निशाचरवत् पुरुषों ने बनाये हैं ऐसा वचन कभी न निकालते, हां भांड धूर्त्त निशाचरवत् महीधरादि टीकाकार हुए हैं उनकी धूर्त्तता है वेदों की नहीं परन्तु शोक है चारवाक, आभाणक बौद्ध और जैनियों पर कि इन्होंने मूल चार वेदों की संहिताओं को भी न सुना न देखा और न किसी विद्वान् से पढ़ा इसलिये नष्ट भ्रष्ट बुद्धि होकर ऊटपटांग वेदों की निन्दा करने लगे दुष्ट वाममार्गियों की प्रमाणशून्य कपोलकल्पित भ्रष्ट टीकाओं को देखकर वेदों से विरोधी होकर अविद्यारूपी अगाध समुद्र में जा गिरे ॥ ९ ॥ भला विचारना चाहिये कि स्त्री से अश्व के लिङ्ग का ग्रहण कराके उससे समागम कराना और यजमान की कन्या से हाँसी ठट्ठा आदि करना सिवाय वाममार्गी लोगों से अन्य मनुष्यों का काम नहीं है विना इन महापापी वाममार्गियों

के भ्रष्ट, वेदार्थ से विपरीत, अशुद्ध व्याख्यान कौन करता ? अत्यन्त शोक तो इन चारवाक आदि पर है जो कि विना विचारे वेदों की निन्दा करने पर तत्पर हुए तनिक तो अपनी बुद्धि से काम लेते । क्या करें बिचारे उनमें इतनी विद्या ही नहीं थी जो सत्यासत्य का विचार कर सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन करते ॥ १० ॥ और जो मांस खाना है यह भी उन्हीं वाममार्गी टीकाकारों की लीला है इसलिये उनको राक्षस कहना उचित है परन्तु वेदों में कहीं मांस का खाना नहीं लिखा इसलिये इत्यादि मिथ्या बातों का पाप उन टीकाकारों को और जिन्होंने वेदों के जाने सुने विना मनमानी निन्दा की है निःसन्देह उनको लगेगा सच तो यह है कि जिन्होंने वेदों से विरोध किया और करते हैं और करेंगे वे अवश्य अविद्यारूपी अन्धकार में पड़के सुख के बदले दारुण दुःख जितना पावें उतना ही न्यून है । इसलिये मनुष्यमात्र को वेदानुकूल चलना समुचित है ॥ ११ ॥ जो वाममार्गियों ने मिथ्या कपोलकल्पना करके वेदों के नाम से अपना प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् यथेष्ट मद्यपान, मांस खाने और परस्त्रीगमन करने आदि दुष्ट कामों की प्रवृत्ति होने के अर्थ वेदों को कलङ्क लगाया इन्हीं बातों को देखकर चारवाक बौद्ध तथा जैन लोग वेदों की निन्दा करने लगे और पृथक् एक वेदविरुद्ध अनीश्वरवादी अर्थात् नास्तिक मत चला लिया । जो चारवाकादि वेदों का मूलार्थ विचारते तो झूठी टीकाओं को देखकर सत्य वेदोक्त मत से क्यों हाथ धो बैठते ? क्या करें विचारे "विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" जब नष्ट भ्रष्ट होने का समय आता है तब मनुष्य की उलटी बुद्धि होजाती है ॥

अब जो चारवाकादिकों में भेद है सो लिखते हैं:—ये चारवाकादि बहुतसी बातों में एक हैं परन्तु चारवाक देह की उत्पत्ति के साथ जीवोत्पत्ति और उसके नाश के साथ ही जीव का भी नाश मानता है । पुनर्जन्म और परलोक को नहीं मानता एक प्रत्यक्ष प्रमाण के विना अनुमानादि प्रमाणों को भी नहीं मानता । चारवाक शब्द का अर्थ "जो बोलने में प्रगल्भ और विशेषार्थ वैतण्डिक होता है" । और बौद्ध जैन प्रत्यक्षादि चारों प्रमाण, अनादि जीव, पुनर्जन्म, परलोक और मुक्ति को भी मानते हैं इतना ही चारवाक से बौद्ध और

जैनियों का भेद है परन्तु नास्तिकता, वेद ईश्वर की निन्दा, परमतद्वेष, छः यतना (आगे कहे छः कर्म) और जगत् का कर्त्ता कोई नहीं इत्यादि बातों में सब एक ही हैं । यह चारवाक का मत संक्षेप से दर्शा दिया ॥

अब बौद्धमत के विषय में संक्षेप से लिखते हैं-

कार्य्यकारणभावाद्वा स्वभावाद्वा नियामकात् ।
अविनाभावनियमो दर्शनान्तरदर्शनात् ॥

कार्य्यकारणभाव अर्थात् कार्य्य के दर्शन से कारण और कारण के दर्शन से कार्य्यादि का साक्षात्कार प्रत्यक्ष से शेष में अनुमान होता है इसके विना प्राणियों के संपूर्ण व्यवहार पूर्ण नहीं हो सकते इत्यादि लक्षणों से अनुमान को अधिक मानकर चारवाक से भिन्न शाखा बौद्धों की हुई है बौद्ध चार प्रकार के हैं:—

एक "माध्यमिक" दूसरा "योगाचार" तीसरा "सौत्रान्तिक" और चौथा "वैभाषिक" "बुद्ध्या निर्वर्त्तते स बौद्धः" जो बुद्धि से सिद्ध हो अर्थात् जो २ बात अपनी बुद्धि में आवे उस २ को माने और जो २ बुद्धि में न आवे उस २ को नहीं माने । इनमें से पहिला "माध्यमिक" सर्वशून्य मानता है अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे सब शून्य अर्थात् आदि में नहीं होते अन्त में नहीं रहते, मध्य में जो प्रतीत होता है वह भी प्रतीत समय में है पश्चात् शून्य होजाता है, जैसे उत्पत्ति के पूर्व घट नहीं था प्रध्वंस के पश्चात् नहीं रहता और घटज्ञान समय में भासता और पदार्थान्तर में ज्ञान जाने से घटज्ञान नहीं रहता इसलिये शून्य ही एक तत्त्व है । दूसरा "योगाचार" जो बाह्य शून्य मानता है अर्थात् पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं बाहर नहीं जैसे घटज्ञान आत्मा में है तभी मनुष्य कहता है कि यह घट है जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता ऐसा मानता है । तीसरा "सौत्रान्तिक" जो बाहर अर्थ का अनुमान मानता है क्योंकि बाहर कोई पदार्थ साङ्गोपाङ्ग प्रत्यक्ष नहीं होता किन्तु एकदेश प्रत्यक्ष होने से

शेष में अनुमान किया जाता है इसका ऐसा मत है । चौथा "वैभाषिक" है इसका मत बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होता है भीतर नहीं जैसे "अयं नीलो घटः" इस प्रतीति में नीलयुक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है यह ऐसा मानता है । यद्यपि इनका आचार्य्य बुद्ध एक है तथापि शिष्यों के बुद्धिभेद से चार प्रकार की शाखा होगई है जैसे सूर्य्यास्त होने में चार पुरुष परस्त्रीगमन और विद्वान् सत्यभाषणादि श्रेष्ठ कर्म्म करते हैं । समय एक परन्तु अपनी २ बुद्धि के अनुसार भिन्न २ चेष्टा करते हैं अब इन पूर्वोक्त चारों में "माध्यमिक" सब को क्षणिक मानता है अर्थात् क्षण २ में बुद्धि के परिणाम होने से जो पूर्वक्षण में ज्ञात वस्तु था वैसा ही दूसरे क्षण में नहीं रहता इसलिये सबको क्षणिक मानना चाहिये ऐसे मानता है । दूसरा "योगाचार" जो प्रवृत्ति है सो सब दुःखरूप है क्योंकि प्राप्ति में संतुष्ट कोई भी नहीं रहता एक की प्राप्ति में दूसरे की इच्छा बनी ही रहती है इस प्रकार मानता है । तीसरा "सौत्रान्तिक" सब पदार्थ अपने २ लक्षणों से लक्षित होते हैं जैसे गाय के चिह्नों से गाय और घोड़ों के चिह्नों से घोड़ा ज्ञात होता है वैसे लक्षण लक्ष्य में सदा रहते हैं ऐसा कहता है । चौथा "वैभाषिक" शून्य ही को एक पदार्थ मानता है प्रथम माध्यमिक सबको शून्य मानता था उसीका पक्ष वैभाषिक का भी है इत्यादि बौद्धों में बहुत से विवाद पक्ष हैं इस प्रकार चार प्रकार की भावना मानते हैं । (उत्तर) जो सब शून्य हो तो शून्य का जाननेवाला शून्य नहीं हो सकता और जो सब शून्य होवे तो शून्य को शून्य नहीं जान सके इसलिये शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय दो पदार्थ सिद्ध होते हैं और जो योगाचार बाह्य शून्यत्व मानता है तो पर्वत इसके भीतर होना चाहिये जो कहे कि पर्वत भीतर है तो उसके हृदय में पर्वत के समान अवकाश कहां है इसलिये बाहर पर्वत है और पर्वतज्ञान आत्मा में रहता है सौत्रान्तिक किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता तो वह आप स्वयं और उसका वचन भी अनुमेय होना चाहिये प्रत्यक्ष नहीं जो प्रत्यक्ष न हो तो "अयं घटः" यह प्रयोग भी न होना चाहिये किन्तु "अयं घटैकदेशः" यह घट का एक देश है और एक देश का नाम घट नहीं किन्तु समुदाय का नाम घट है "यह घट है" यह प्रत्यक्ष है अनुमेय नहीं क्योंकि सब अवयवों में अवयवी

एक है उसके प्रत्यक्ष होने से सब घट के अवयव भी प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है । चौथा वैभाषिक बाह्य पदार्थों को प्रत्यक्ष मानता है वह भी ठीक नहीं क्योंकि जहां ज्ञाता और ज्ञान होता है वहीं प्रत्यक्ष होता है यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बाहर होता है तदाकार ज्ञान आत्मा को होता है वैसे जो क्षणिक पदार्थ और उसका ज्ञान क्षणिक हो तो "प्रत्यभिज्ञा" अर्थात् मैंने वह बात की थी ऐसा स्मरण न होना चाहिये परन्तु पूर्व दृष्ट श्रुत का स्मरण होता है इसलिये क्षणिकवाद भी ठीक नहीं जो सब दुःख ही हो और सुख कुछ भी न हो तो सुख की अपेक्षा के विना दुःख सिद्ध नहीं हो सकता जैसे रात्रि की अपेक्षा से दिन और दिन की अपेक्षा से रात्रि होती है इसलिये सब दुःख मानना ठीक नहीं जो स्वलक्षण ही मानें तो नेत्र रूप का लक्षण है और रूप लक्ष्य है जैसा घट का रूप घट के रूप का लक्षण चक्षु लक्ष्य से भिन्न है और गन्ध पृथिवी से अभिन्न है इसी प्रकार भिन्नाभिन्न लक्ष्य लक्षण मानना चाहिये । शून्य का जो उत्तर पूर्व दिया है वही अर्थात् शून्य का जाननेवाला शून्य से भिन्न होता है ।

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थंकरसंगतम् ।

जिनको बौद्ध तीर्थंकर मानते हैं उन्हीं को जैन भी मानते हैं इसीलिये ये दोनों एक हैं और पूर्वोक्त भावना चतुष्टय अर्थात् चार भावनाओं से सकल वासनाओं की निवृत्ति से शून्यरूप निर्वाण अर्थात् मुक्ति मानते हैं अपने शिष्यों को योग आचार का उपदेश करते हैं गुरु के वचन का प्रमाण करना अनादि बुद्धि में वासना होने से बुद्धि ही अनेकाकार भासती है उनमें से प्रथमस्कन्धः—

रूपविज्ञानवेदनासंज्ञासंस्कारसंज्ञकः ॥

(प्रथम) जो इन्द्रियों से रूपादि विषय ग्रहण किया जाता है वह "रूपस्कन्ध" (दूसरा) आलयविज्ञान प्रवृत्ति का जाननारूप व्यवहार को "विज्ञानस्कन्ध" (तीसरा) रूपस्कन्ध और विज्ञानस्कन्ध से उत्पन्न हुआ सुख दुःख आदि प्रतीति रूप व्यवहार को "वेदनास्कन्ध" (चौथा) गौ आदि संज्ञा का

सम्बन्ध नामी के साथ मानने रूप को "संज्ञास्कन्ध" (पांचवां) वेदनास्कन्ध से राग द्वेषादि क्लेश और क्षुधा तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म और अधर्मरूप व्यवहार को "संस्कारस्कन्ध" मानते हैं। सब संसार में दुःखरूप दुःख का घर दुःख का साधनरूप भावना करके संसार से छूटना चारवाकों में अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीव को न मानना बौद्ध मानते हैं ॥

देशना लोकनाथानां सत्त्वाशयवशानुगाः ।
भिद्यन्ते बहुधा लोके उपायैर्बहुभिः किल ॥ १ ॥
गम्भीरोत्तानभेदेन क्वचिच्चोभयलक्षणः ।
भिन्ना हि देशना भिन्न शून्यताद्वयलक्षणा ॥ २ ॥
अर्थानुपार्ज्य बहुशो द्वादशायतनानि वै ।
परितः पूजनीयानि किमन्यैरिह पूजितैः ॥ ३ ॥
ज्ञानेन्द्रियाणि पंचैव तथा कर्मेन्द्रियाणि च ।
मनो बुद्धिरिति प्रोक्तं द्वादशायतनं बुधैः ॥ ४ ॥

अर्थात् जो ज्ञानी, विरक्त, जीवनमुक्त लोकों के नाथ बुद्ध आदि तीर्थंकरों के पदार्थों के स्वरूप को जाननेवाला, जो कि भिन्न २ पदार्थों का उपदेशक है जिसको बहुतसे भेद और बहुतसे उपायों से कहा है उसको मानना ॥ १ ॥ बड़े गम्भीर और प्रसिद्ध भेद से कहीं २ गुप्त और प्रकटता से भिन्न २ गुरुओं के उपदेश जो कि न्यून लक्षणयुक्त पूर्व कह आये उनको मानना ॥ २ ॥ जो द्वादशायतन पूजा है वही मोक्ष करनेवाली है उस पूजा के लिये बहुतसे द्रव्यादि पदार्थों को प्राप्त होके द्वादशायतन अर्थात् बारह प्रकार के स्थान विशेष बना के सब प्रकार से पूजा करनी चाहिये अन्य की पूजा करने से क्या प्रयोजन ॥३॥ इनकी द्वादशायतन पूजा यह है:—पांच ज्ञान इन्द्रिय अर्थात् श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा और नासिका। पांच कर्मेन्द्रिय अर्थात् वाक्, हस्त, पाद, गुह्य और उपस्थ ये १० इन्द्रियां और मन, बुद्धि इनहीं का सत्कार अर्थात् इनको आनन्द में प्रवृत्त रखना इत्यादि बौद्ध का मत है ॥ ४ ॥ (उत्तर) जो सब संसार दुःखरूप होता तो किसी जीव की प्रवृत्ति न होनी चाहिये संसार में जीवों की

प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है इसलिये सब संसार दुःखरूप नहीं हो सकता किन्तु इसमें सुख दुःख दोनों हैं । और जो बौद्ध लोग ऐसा ही सिद्धान्त मानते हैं तो खानपानादि करना और पथ्य तथा ओषध्यादि सेवन करके शरीररक्षण करने में प्रवृत्त होकर सुख क्यों मानते हैं ? जो कहैं कि हम प्रवृत्त तो होते हैं परन्तु इसको दुःख ही मानते हैं तो यह कथन ही सम्भव नहीं क्योंकि जीव सुख जानकर प्रवृत्त और दुःख जानके निवृत्त होता है । संसार में धर्म क्रिया विद्या सत्सङ्गादि श्रेष्ठ व्यवहार सब सुखकारक हैं इनको कोई भी विद्वान् दुःख का लिंग नहीं मान सकता विना बौद्धों के । जो पांच स्कन्ध हैं वे भी पूर्ण अपूर्ण हैं क्योंकि जो ऐसे २ स्कन्ध विचारने लगें तो एक २ के अनेक भेद हो सकते हैं । जिन तीर्थंकरों को उपदेशक और लोकनाथ मानते हैं और अनादि जो नाथों का भी नाथ परमात्मा है उसको नहीं मानते तो उन तीर्थंकरों ने उपदेश किससे पाया ? जो कहैं कि स्वयं प्राप्त हुआ तो ऐसा कथन संभव नहीं क्योंकि कारण के विना कार्य्य नहीं हो सकता । अथवा उनके कथनानुसार ऐसा ही होता तो अब भी उनमें विना पढ़े पढ़ाये सुने सुनाये और ज्ञानियों के सत्संग किये विना ज्ञानी क्यों नहीं होजाते जब नहीं होते तो ऐसा कथन सर्वथा निर्मूल और युक्तिशून्य सन्निपात रोगग्रस्त मनुष्य के बर्डाने के समान है जो शून्यरूप ही अद्वैत उपदेश बौद्धों का है तो विद्यमान वस्तु शून्यरूप कभी नहीं हो सकता, हां सूक्ष्म कारणरूप तो होजाता है इसलिये यह भी कथन भ्रमरूपी है । जो द्रव्यों के उपार्जन से ही पूर्वोक्त द्वादशायतनपूजा मोक्ष का साधन मानते हैं तो दश प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा की पूजा क्यों नहीं करते ? जब इन्द्रिय और अन्तःकरण की पूजा भी मोक्षप्रद है तो इन बौद्धों और विषयिजनों में क्या भेद रहा ? जो उनसे ये बौद्ध नहीं बच सके तो वहां मुक्ति भी कहां रही जहां ऐसी बातें हैं वहां मुक्ति का क्या काम ? क्या ही इन्होंने अपनी अविद्या की उन्नति की है जिसका सादृश्य इनके विना दूसरों से नहीं घट सकता निश्चय तो यही होता है कि इनको वेद ईश्वर से विरोध करने का यही फल मिला । पूर्व तो सब संसार की दुःखरूपी भावना की, फिर बीच में द्वादशायतनपूजा लगादी, क्या इनकी द्वादशायतनपूजा संसार के पदार्थों से बाहर की है जो मुक्ति की

देने हारी होसके तो भला कभी आंख मीच के कोई रत्न ढूंढा चाहै वा ढूंढे कभी प्राप्त हो सकता है ? ऐसी ही इनकी लीला वेद ईश्वर को न मानने से हुई अब भी सुख चाहैं तो वेद ईश्वर का आश्रय लेकर अपना जन्म सफल करें। विवेकविलास ग्रन्थ में बौद्धों का इस प्रकार का मत लिखा है:—

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभंगुरम्।
आर्य्यसत्त्वाख्ययादत्वचतुष्टयमिदं क्रमात् ॥ १ ॥
दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चेत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः ॥ २ ॥
दुःखसंसारिणस्कन्धास्ते च पञ्च प्रकीर्त्तिताः।
विज्ञानं वेदनासंज्ञा संस्कारो रूपमेव च ॥ ३ ॥
पञ्चेन्द्रियाणि शब्दा वा विषयाः पञ्च मानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतनानि तु ॥ ४ ॥
रागादीनां गणो यः स्यात्समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः ॥ ५ ॥
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते ॥ ६ ॥
प्रत्यक्षानुमानं च प्रमाणं द्वितयं तथा।
चतुःप्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः ॥ ७ ॥
अथो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः ॥ ८ ॥
आकारासहिताबुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदां स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः ॥ ९ ॥
रागादि ज्ञानसन्तानवासनाच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्त्तिता ॥ १० ॥
कृत्तिः कमण्डलुर्मौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्णभोजनम्।
संघो रक्तांबरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः ॥ ११ ॥

बौद्धों का सुगतदेव बुद्ध भगवान् पूजनीय देव और जगत् क्षणभंगुर आर्य्य पुरुष और आर्य्या स्त्री तथा तत्त्वों की आख्या संज्ञादि प्रसिद्धि ये चार तत्त्व बौद्धों में मन्तव्य पदार्थ हैं ॥ १ ॥ इस विश्व को दुःख का घर जाने तदनन्तर समुदय अर्थात् उन्नति होती है और इनकी व्याख्या क्रम से सुनो ॥ २ ॥ संसार में दुःख ही है जो पञ्चस्कन्ध पूर्व कह आये हैं उनको जानना ॥ ३ ॥ पञ्च ज्ञानेन्द्रिय उनके शब्दादि विषय पांच और मन बुद्धि अन्तःकरण धर्म का स्थान ये द्वादश हैं ॥ ४ ॥ जो मनुष्यों के हृदय में रागद्वेषादि समूह की उत्पत्ति होती है वह समुदय और जो आत्मा आत्मा के सम्बन्धी और स्वभाव है वह आख्या इन्हीं से फिर समुदय होता है ॥ ५ ॥ सब संस्कार क्षणिक हैं जो यह वासना स्थिर होना वह बौद्धों का मार्ग है और वही शून्य तत्त्व शून्यरूप हो जाना मोक्ष है ॥ ६ ॥ बौद्ध लोग प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण मानते हैं चार प्रकार के इन में भेद हैं वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार और माध्यमिक ॥ ७ ॥ इन में वैभाषिक ज्ञान में जो अर्थ है उसको विद्यमान मानता है क्योंकि जो ज्ञान में नहीं है उसका होना सिद्ध पुरुष नहीं मान सकता । और सौत्रान्तिक भीतर को प्रत्यक्ष पदार्थ मानता है बाहर नहीं ॥ ८ ॥ योगाचार आकार सहित विज्ञानयुक्त बुद्धि को मानता है और माध्यमिक केवल अपने में पदार्थों का ज्ञानमात्र मानता है पदार्थों को नहीं मानता ॥ ९ ॥ और रागादि ज्ञान के प्रवाह की वासना के नाश से उत्पन्न हुई मुक्ति चारों बौद्धों की है ॥ १० ॥ मृगादि का चमड़ा, कमण्डलु, मूण्ड मुड़ाये, वल्कल वस्त्र, पूर्वाह्ण अर्थात् ९ बजे से पूर्व भोजन, अकेला न रहै, रक्त वस्त्र का धारण यह बौद्धों के साधुओं का वेश है ॥ ११ ॥ (उत्तर) जो बौद्धों का सुगत बुद्ध ही देव है तो उसका गुरु कौन था ? और जो विश्व क्षणभंग हो तो चिरदृष्ट पदार्थ का यह वही है ऐसा स्मरण न होना चाहिये जो क्षणभङ्ग होता तो वह पदार्थ ही नहीं रहता पुनः स्मरण किसका होवे जो क्षणिकवाद ही बौद्धों का मार्ग है तो इनका मोक्ष भी क्षणभंग होगा जो ज्ञान से युक्त अर्थ द्रव्य हो तो जड़ द्रव्य में भी ज्ञान होना चाहिये और वह चालनादि क्रिया किस पर करता है ? भला जो बाहर दीखता है वह मिथ्या कैसे होसकता है ? जो आकाश से सहित बुद्धि होवे तो

दृश्य होना चाहिये जो केवल ज्ञान ही हृदय में आत्मस्थ होवे बाह्य पदार्थों को बल ज्ञान ही मानाजाय तो ज्ञेय पदार्थ के विना ज्ञान ही नहीं हो सकता, जो वासना-च्छेद ही मुक्ति है तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी चाहिये ऐसा मानना विद्या से विरुद्ध होने के कारण तिरस्करणीय है। इत्यादि बातें संक्षेपतः बौद्ध मतस्थों की प्रदर्शित कर दी हैं अब बुद्धिमान् विचारशील पुरुष अवलोकन करके जान जायेंगे कि इनकी कैसी विद्या और कैसा मत है। इसको जैन लोग भी मानते हैं॥

यहां से आगे जैनमत का वर्णन है॥

प्रकरणरत्नाकर १ भाग, नयचक्रसार में निम्नलिखित बातें लिखी हैं:—

बौद्ध लोग समय २ में नवीनपन से (१) आकाश, (२) काल, (३) जीव, (४) पुद्गल ये चार द्रव्य मानते हैं और जैनी लोग धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल इन छः द्रव्यों को मानते हैं। इनमें काल को अस्तिकाय नहीं मानते किन्तु ऐसा कहते हैं कि काल उपचार से द्रव्य है वस्तुतः नहीं उनमें से "धर्मास्तिकाय" जो गतिपरिणामीपन से परिणाम को प्राप्त हुआ जीव और पुद्गल इसकी गति के समीप से स्तम्भन करने का हेतु है वह धर्मास्तिकाय और वह असंख्य प्रदेश परिमाण और लोक में व्यापक है। दूसरा "अधर्मास्तिकाय" यह है कि जो स्थिरता से परिणामी हुए जीव तथा पुद्गल की स्थिति के आश्रय का हेतु है। तीसरा "आकाशास्तिकाय" उसको कहते हैं कि जो सब द्रव्यों का आधार जिसमें अवगाहन प्रवेश निर्गम आदि क्रिया करनेवाले जीव तथा पुद्गलों को अवगाहन का हेतु और सर्वव्यापी है। चौथा "पुद्गलास्तिकाय" यह है कि जो कारणरूप सूक्ष्म, नित्य, एक रस, वर्ण, गंध, स्पर्श कार्य का लिङ्ग पूरने और गलने के स्वभाववाला होता है। पांचवां "जीवास्तिकाय" जो चेतनालक्षण ज्ञान दर्शन में उपयुक्त अनन्त पर्यायों से परिणामी होनेवाला कर्त्ता भोक्ता है। और छठा "काल" यह है कि जो पूर्वोक्त पंचास्तिकायों का परत्व अपरत्व नवीन प्राचीनता का चिह्नरूप प्रसिद्ध वर्त्तमानरूप पर्यायों से युक्त है वह काल कहाता है। (समीक्षक) जो बौद्धों ने चार द्रव्य प्रतिसमय में नवीन २ माने हैं वे

झूठे हैं क्योंकि आकाश, काल, जीव और परमाणु ये नये वा पुराने कभी नहीं हो सकते क्योंकि ये अनादि और कारणरूप से अविनाशी हैं पुनः नया और पुरानापन कैसे घट सकता है। और जैनियों का मानना भी ठीक नहीं क्योंकि धर्माधर्म द्रव्य नहीं किन्तु गुण हैं ये दोनों जीवास्तिकाय में आजाते हैं इसलिये आकाश, परमाणु, जीव और काल मानते तो ठीक था और जो नव द्रव्य वैशेषिक में माने हैं वे ही ठीक हैं क्योंकि पृथिव्यादि पांच तत्व, काल, दिशा, आत्मा और मन ये नव पृथक् २ पदार्थ निश्चित हैं, एक जीव को चेतन मानकर ईश्वर को न मानना यह जैन बौद्धों की मिथ्या पक्षपात की बात है।

अब जो बौद्ध और जैनी लोग सप्तभंगी और स्याद्वाद मानते हैं सो यह है कि "सन् घटः" इसको प्रथम भंग कहते हैं क्योंकि घट अपनी वर्त्तमानता से युक्त अर्थात् घड़ा है इसने अभाव का विरोध किया है। दूसरा भंग "असन् घटः" घड़ा नहीं है प्रथम घट के भाव से इस घड़े के असद्भाव से दूसरा भंग है। तीसरा भंग यह है कि "सन्नसन्न घटः" अर्थात् यह घड़ा तो है परन्तु पट नहीं क्योंकि उन दोनों से पृथक् होगया। चौथा भंग "घटोऽघटः" जैसे "अघटः पटः" दूसरे पट के अभाव की अपेक्षा अपने में होने से घट अघट कहाता है युगपत् उसकी दो संज्ञा अर्थात् घट और अघट भी है। पांचवां भंग यह है कि घट को पट कहना अयोग्य अर्थात् उस में घटपन वक्तव्य है और पटपन अवक्तव्य है। छठा भंग यह है कि जो घट नहीं है वह कहने योग्य भी नहीं और जो है वह है और कहने योग्य भी है। और सातवां भंग यह है कि जो कहने को इष्ट है परन्तु वह नहीं है और कहने के योग्य भी घट नहीं यह सप्तमभंग कहाता है इसी प्रकारः—

स्यादस्ति जीवोऽयं प्रथमो भंगः ॥ १ ॥ स्यान्नास्ति जीवो द्वितीयो भंगः ॥ २ ॥ स्यादवक्तव्यो जीवस्तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥ स्यादस्ति नास्ति नास्तिरूपो जीवश्चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥ स्यादस्ति अवक्तव्यो जीवः पंचमो भंगः ॥ ५ ॥ स्यान्नास्ति अवक्तव्यो जीवः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥ स्यादस्ति नास्ति अवक्तव्यो जीव इति सप्तमो भंगः ॥ ७ ॥

अर्थात् हे जीव, ऐसा कथन होवे तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों का जीव में अभावरूप भंग प्रथम कहाता है। दूसरा भंग यह है कि नहीं है जीव जड़ में ऐसा कथन भी होता है इससे यह दूसरा भंग कहाता है। जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं यह तीसरा भंग। जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक् होता है तब अप्रसिद्ध रहता है ऐसा कथन होवे उसको चतुर्थ भंग कहते हैं। जीव है परन्तु कहने योग्य नहीं जो ऐसा कथन है उसको पंचम भंग कहते हैं जीव प्रत्यक्ष प्रमाण से कहने में नहीं आता इसलिये चक्षु प्रत्यक्ष नहीं है ऐसा व्यवहार है उसको छठा भंग कहते हैं एक काल में जीव का अनुमान से होना और अदृश्यपन में न होना और एकसा न रहना किन्तु क्षण २ में परिणाम को प्राप्त होना अस्ति नास्ति न होवे और नास्ति अस्ति व्यवहार भी न होवे यह सातवां भंग कहाता है॥

इसी प्रकार नित्यत्व सप्तभंगी और अनित्यत्व सप्तभंगी तथा सामान्य धर्म विशेष धर्म्म गुण और पर्य्यायों की प्रत्येक वस्तु में सप्तभंगी होती है वैसे द्रव्य, गुण, स्वभाव और पर्यायों के अनन्त होने से सप्तभंगी भी अनन्त होती है ऐसा बौद्ध तथा जैनियों का स्याद्वाद और सप्तभंगी न्याय कहाता है। (समीक्षक) यह कथन एक अन्योऽन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य में चरितार्थ हो सकता है। इस सरल प्रकरण को छोड़कर कठिन जाल रचना केवल अज्ञानियों के फंसाने के लिये होता है। देखो! जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है जैसे जीव और जड़ के वर्त्तमान होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य अर्थात् जीव में चेतनत्व (अस्ति) है और जड़त्व (नास्ति) नहीं है। इसी प्रकार जड़ में जड़त्व है और चेतनत्व नहीं है इससे गुण, कर्म, स्वभाव के समान धर्म और विरुद्ध धर्म्म के विचार से सब इनका सप्तभंगी और स्याद्वाद सहजता से समझ में आता है फिर इतना प्रपञ्च बढ़ाना किस काम का है? इसमें बौद्ध और जैनों का एक मत है। थोड़ासा ही पृथक् होने से भिन्नभाव भी होजाता है॥

अब इसके आगे केवल जैनमत विषय में लिखा जाता है:—

चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम् ।
उपादेयमुपादेयं हेयं हेयं च कुर्वतः ॥ १ ॥
हेयं हि कर्तृरागादि तत् कार्य्यमविवेकिनः ।
उपादेयं परं ज्योतिरुपयोगैकलक्षणम् ॥ २ ॥

जैन लोग "चित्" और "अचित्" अर्थात् चेतन और जड़ दो ही परतत्व मानते हैं उन दोनों के विवेचन का नाम विवेक जो २ ग्रहण के योग्य है उस २ का ग्रहण और जो २ त्याग करने योग्य है उस २ के त्याग करनेवाले को विवेकी कहते हैं ॥ १ ॥ जगत् का कर्त्ता और रागादि तथा ईश्वर ने जगत् किया है इस अविवेकी मत का त्याग और योग से लक्षित परमज्योतिस्वरूप जो जीव है उसका ग्रहण करना उत्तम है ॥ २ ॥ अर्थात् जीव के विना दूसरा चेतन तत्त्व ईश्वर को नहीं मानते, कोई भी अनादि सिद्ध ईश्वर नहीं ऐसा बौद्ध जैन लोग मानते हैं । इसमें राजा शिवप्रसादजी "इतिहासतिमिरनाशक" ग्रन्थ में लिखते हैं कि इनके दो नाम हैं एक जैन और दूसरा बौद्ध, ये पर्यायवाची शब्द हैं परन्तु बौद्धों में वाममार्गी मद्यमांसाहारी बौद्ध हैं उनके साथ जैनियों का विरोध परन्तु जो महावीर और गौतम गणधर हैं उनका नाम बौद्धों ने बुद्ध रक्खा है और जो जैनियों ने गणधर और जिनवर इसमें जिनकी परम्परा जैन-मत है उन राजा शिवप्रसादजी ने अपने "इतिहासतिमिरनाशक" ग्रन्थ के तीसरे खण्ड में लिखा है कि "स्वामी शङ्कराचार्य्य" से पहिले जिनको हुए कुल हज़ार वर्ष के लगभग गुज़रे हैं सारे भारतवर्ष में बौद्ध अथवा जैनधर्म फैला हुआ था इस पर नोट—"बौद्ध कहने से हमारा आशय उस मत से है जो महावीर के गणधर गौतम स्वामी के समय से शङ्कर स्वामी के समय तक वेद-विरुद्ध सारे भारतवर्ष में फैला रहा और जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते । जिन जिससे जैन निकला और बुद्ध जिससे बौद्ध निकला दोनों पर्यायवाची शब्द हैं कोश में दोनों का अर्थ एक ही लिखा है और गौतम को दोनों मानते हैं वर्नो दीपवंश इत्यादि पुराने बौद्ध ग्रन्थों में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध को अकसर महावीर ही के नाम

से लिखा है। पस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा हमने जो जैन न लिखकर गौतम के मत वालों को बौद्ध लिखा उसका प्रयोजन केवल इतना ही है कि उसको दूसरे देशवालों ने बौद्ध ही के नाम से लिखा है" ॥ ऐसा ही अमरकोष में भी लिखा है:—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः ।
समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः ॥ १ ॥
षडभिज्ञो दशबलोऽद्वयवादी विनायकः ।
मुनीन्द्रः श्रीघनः शास्ता मुनिः शाक्यमुनिस्तु यः ॥ २ ॥
स शाक्यसिंहः सर्वार्थः सिद्धश्शौद्धोदनिश्च सः ।
गौतमश्चार्कबन्धुश्च मायादेवी सुतश्च सः ॥ ३ ॥
अमरकोश कां० १ । वर्ग १ । श्लोक ८ से १० तक ॥

अब देखो ! बुद्ध जिन और बौद्ध तथा जैन एक के नाम हैं वा नहीं ? क्या "अमरसिंह भी बुद्ध जिन के एक लिखने में भूल गया है ? जो अविद्वान् जैन हैं वे तो न अपना जानते और न दूसरे का, केवल हठमात्र से बर्डाया करते हैं परन्तु जो जैनों में विद्वान् हैं वे सब जानते हैं कि "बुद्ध" और "जिन" तथा "बौद्ध" और "जैन" पर्यायवाची हैं इसमें कुछ सन्देह नहीं। जैन लोग कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर होजाता है, वे जो अपने तीर्थंकरों को ही केवली मुक्ति प्राप्त और परमेश्वर मानते हैं, अनादि परमेश्वर कोई नहीं सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हन्, केवली, तीर्थंकृत, जिन् ये छः नास्तिकों के देवताओं के नाम हैं। आदिदेव का स्वरूप चन्द्रसूरि ने "आप्तनिश्चयालङ्कार" ग्रन्थ में लिखा है:—

सर्वज्ञो वीतरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः ।
यथा स्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः ॥ १ ॥

वैसे ही "तौतातितों" ने भी लिखा है कि:—

सर्वज्ञो दृश्यते तावन्नेदानीमस्मदादिभिः ।
दृष्टो न चैकदेशोऽस्ति लिङ्गं वा योऽनुमापयेत् ॥ २ ॥

न चागमविधिः कश्चिन्नित्यसर्वज्ञ बोधकः ।
न च तत्रार्थवादानां तात्पर्यमपि कल्पते ॥ ३ ॥
न चान्यार्थप्रधानैस्तैस्तदस्तित्वं विधीयते ।
न चानुवादितुं शक्यः पूर्वमन्यैरबोधितः ॥ ४ ॥

जो रागादि दोषों से रहित, त्रैलोक्य में पूजनीय यथावत् पदार्थों का वक्ता सर्वज्ञ अर्हन् देव है वही परमेश्वर है ॥ १ ॥ जिसलिये हम इस समय परमेश्वर को नहीं देखते इसलिये कोई सर्वज्ञ अनादि परमेश्वर प्रत्यक्ष नहीं, जब ईश्वर में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं तो अनुमान भी नहीं घट सकता क्योंकि एक देश प्रत्यक्ष के विना अनुमान नहीं हो सकता ॥ २ ॥ जब प्रत्यक्ष अनुमान नहीं तो आगम अर्थात् नित्य अनादि सर्वज्ञ परमात्मा का बोधक शब्दप्रमाण भी नहीं हो सकता, जब तीनों प्रमाण नहीं तो अर्थवाद अर्थात् स्तुति निन्दा परकृति अर्थात् पराये चरित्र का वर्णन और पुराकल्प अर्थात् इतिहास का तात्पर्य भी नहीं घट सकता ॥ ३ ॥ और अन्यार्थ-प्रधान अर्थात् बहुव्रीहि समास के तुल्य परोक्ष परमात्मा की सिद्धि का विधान भी नहीं हो सकता, पुनः ईश्वर के उपदेष्टाओं से सुने विना अनुवाद भी कैसे हो सकता है ? ॥ ४ ॥ (इसका प्रत्याख्यान अर्थात् खण्डन) जो अनादि ईश्वर न होता तो "अर्हन्" देव के माता पिता आदि के शरीर का सांचा कौन बनाता ? विना संयोगकर्त्ता के यथायोग्य सर्वाऽवयवसम्पन्न, यथोचित कार्य करने में उपयुक्त शरीर बन ही नहीं सकता और जिन पदार्थों से शरीर बना है उनके जड़ होने से स्वयं इस प्रकार की उत्तम रचना से युक्त शरीर रूप नहीं बन सकते क्योंकि उनमें यथायोग्य बनने का ज्ञान ही नहीं और जो रागादि दोषों से सहित होकर पश्चात् दोष रहित होता है वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिस निमित्त से वह रागादि से मुक्त होता है वह मुक्ति उस निमित्त के छूटने से उसका कार्य मुक्ति भी अनित्य होगी, जो अल्प और अल्पज्ञ है वह सर्वव्यापक और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता क्योंकि जीव का स्वरूप एकदेशी और परिमित गुण, कर्म, स्वभाववाला होता है वह सब विद्याओं

में सब प्रकार यथार्थवक्ता नहीं हो सकता इसलिये तुम्हारे तीर्थंकर परमेश्वर कभी नहीं हो सकते ॥ १ ॥ क्या तुम जो प्रत्यक्ष पदार्थ हैं उन्हीं को मानते हो अप्रत्यक्ष को नहीं ? जैसे कान से रूप और चक्षु से शब्द का ग्रहण नहीं हो सकता वैसे अनादि परमात्मा को देखने का साधन शुद्धान्तःकरण, विद्या और योगाभ्यास से पवित्रात्मा परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है जैसे विना पढ़े विद्या के प्रयोजनों की प्राप्ति नहीं होती वैसे ही योगाभ्यास और विज्ञान के विना परमात्मा भी नहीं दीख पड़ता, जैसे भूमि के रूपादि गुण ही को देख जान के गुणों से अव्यवहित सम्बन्ध से पृथिवी प्रत्यक्ष होती है वैसे इस सृष्टि में परमात्मा की रचना विशेष लिङ्ग देख के परमात्मा प्रत्यक्ष होता है और जो पापाचरणेच्छा समय में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है, वह अन्तर्यामी परमात्मा की ओर से है इससे भी परमात्मा प्रत्यक्ष होता है। अनुमान के होने में क्या संदेह हो सकता है ॥ २ ॥ और प्रत्यक्ष तथा अनुमान के होने से आगम प्रमाण भी नित्य, अनादि, सर्वज्ञ ईश्वर का बोधक होता है इसलिये शब्द प्रमाण भी ईश्वर में है जब तीनों प्रमाणों से ईश्वर को जीव जान सकता है तब अर्थवाद अर्थात् परमेश्वर के गुणों की प्रशंसा करना भी यथार्थ घटता है क्योंकि जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य होते हैं उनकी प्रशंसा करने में कोई भी प्रतिबंधक नहीं ॥ ३ ॥ जैसे मनुष्यों में कर्त्ता के विना कोई भी कार्य नहीं होता वैसे ही इस महत्कार्य का कर्त्ता के विना होना सर्वथा असंभव है। जब ऐसा है तो ईश्वर के होने में मूढ़ को भी सन्देह नहीं हो सकता। जब परमात्मा के उपदेश करनेवालों से सुनेंगे पश्चात् उसका अनुवाद करना भी सरल है ॥ ४ ॥ इससे जैनों के प्रत्यक्षादि प्रमाणों से ईश्वर का खंडन करना आदि व्यवहार अनुचित है ॥

(प्रश्न):—अनादेरागमस्यार्थो न च सर्वज्ञ आदिमान् ।
कृत्रिमेण त्वसत्येन स कथं प्रतिपाद्यते ॥ १ ॥
अथ तद्वचनेनैव सर्वज्ञोऽन्यैः प्रदीयते ।
प्रकल्पेत कथं सिद्धिरन्योऽन्याश्रययोस्तयोः ॥ २ ॥

सर्वज्ञोक्ततया वाक्यं सत्यं तेन तदस्तिता ।
कथं तदुभयं सिध्येत् सिद्धमूलान्तरादृते ॥ ३ ॥

बीच में सर्वज्ञ हुआ अनादि शास्त्र का अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि किये हुए असत्य वचन से उसका प्रतिपादन किस प्रकार से हो सके ? ॥ १ ॥ और जो परमेश्वर ही के वचन से परमेश्वर सिद्ध होता है तो अनादि ईश्वर से अनादि शास्त्र की सिद्धि, अनादि शास्त्र से अनादि ईश्वर की सिद्धि, अन्योऽन्याश्रय दोष आता है ॥ २ ॥ क्योंकि सर्वज्ञ के कथन से वह वेदवाक्य सत्य और उसी वेदवचन से ईश्वर की सिद्धि करते हो यह कैसे सिद्ध हो सकता है ? उस शास्त्र और परमेश्वर की सिद्धि के लिये तीसरा कोई प्रमाण चाहिये जो ऐसा मानोगे तो अनवस्था दोष आवेगा ॥ ३ ॥ (उत्तर) हम लोग परमेश्वर और परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव को अनादि मानते हैं, अनादि नित्य पदार्थों में अन्योऽन्याश्रय दोष नहीं आ सकता जैसे कार्य्य से कारण का ज्ञान और कारण से कार्य्य का बोध होता है, कार्य्य में कारण का स्वभाव और कारण में कार्य्य का स्वभाव नित्य है वैसे परमेश्वर और परमेश्वर के अनन्त विद्यादि गुण नित्य होने से ईश्वरप्रणीत वेद में अनवस्था दोष नहीं आता ॥ १ । २ । ३ ॥ और तुम तीर्थंकरों को परमेश्वर मानते हो यह कभी नहीं घट सकता क्योंकि विना माता पिता के उनका शरीर ही नहीं होता तो वे तपश्चर्य्याज्ञान और मुक्ति को कैसे पा सकते हैं वैसे ही संयोग का आदि अवश्य होता है क्योंकि विना वियोग के संयोग हो ही नहीं सकता इसलिये अनादि सृष्टिकर्त्ता परमात्मा को मानो । देखो ! चाहे कितना ही कोई सिद्ध हो तो भी शरीर आदि की रचना को पूर्णता से नहीं जान सकता, जब सिद्ध जीव सुषुप्ति दशा में जाता है तब उसको कुछ भी भान नहीं रहता, जब जीव दुःख को प्राप्त होता है तब उसका ज्ञान भी न्यून हो जाता है, ऐसे परिच्छिन्न सामर्थ्यवाले एक देश में रहने वाले को ईश्वर मानना विना भ्रान्तिबुद्धियुक्त जैनियों से अन्य कोई भी नहीं मान सकता । जो तुम कहो कि वे तीर्थंकर अपने माता पिताओं से हुए तो वे किन से और उनके माता पिता किन से ? फिर उनके भी माता पिता किन से उत्पन्न हुए ? इत्यादि अनवस्था आवेगी ।

आस्तिक और नास्तिक का संवाद ॥

इसके आगे प्रकरणरत्नाकर के दूसरे भाग आस्तिक नास्तिक के संवाद के प्रश्नोत्तर यहां लिखते हैं जिसको बड़े २ जैनियों ने अपनी सम्मति के साथ माना और मुम्बई में छपवाया है । (नास्तिक) ईश्वर की इच्छा से कुछ नहीं होता जो कुछ होता है वह कर्म से । (आस्तिक) जो सब कर्म से होता है तो कर्म किससे होता है ? जो कहो कि जीव आदि से होता है तो जिन श्रोत्रादि साधनों से जीव कर्म करता है वे किनसे हुए ? जो कहो कि अनादिकाल और स्वभाव से होते हैं तो अनादि का छूटना असम्भव होकर तुम्हारे मत में मुक्ति-का अभाव होगा । जो कहो कि प्रागभाववत् अनादि सान्त हैं तो विना यत्न के सबके कर्म निवृत्त हो जायेंगे । यदि ईश्वर फलप्रदाता न हो तो पाप के फल दुःख को जीव अपनी इच्छा से कभी नहीं भोगेगा जैसे चोर आदि चोरी का फल दण्ड अपनी इच्छा से नहीं भोगते किन्तु राज्यव्यवस्था से भोगते हैं वैसे ही परमेश्वर के भुगाने से जीव पाप और पुण्य के फलों को भोगते हैं अन्यथा कर्मसंकर हो जायेंगे अन्य के कर्म अन्य को भोगने पड़ेंगे । (नास्तिक) ईश्वर अक्रिय है क्योंकि जो कर्म करता होता तो कर्म का फल भी भोगना पड़ता इसलिये जैसे हम केवली प्राप्त मुक्तों को अक्रिय मानते हैं वैसे तुम भी मानो । (आस्तिक) ईश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है जब चेतन है तो कर्त्ता क्यों नहीं ? और जो कर्त्ता है तो वह क्रिया से पृथक् कभी नहीं हो सकता जैसा तुम कृत्रिम बनावट के ईश्वर तीर्थंकर को जीव से बने हुए मानते हो इस प्रकार के ईश्वर को कोई भी विद्वान् नहीं मान सकता क्योंकि जो निमित्त से ईश्वर बने तो अनित्य और पराधीन होजाय क्योंकि ईश्वर बनने के प्रथम जीव था पश्चात् किसी निमित्त से ईश्वर बना तो फिर भी जीव होजायगा अपने जीवत्व स्वभाव को कभी नहीं छोड़ सकता क्योंकि अनन्तकाल से जीव है और अनन्तकाल तक रहेगा इसलिये इस अनादि स्वतःसिद्ध ईश्वर को मानना योग्य है । देखो ! जैसे वर्त्तमान समय में जीव पाप पुण्य करता, सुख दुःख भोगता है वैसे ईश्वर कभी नहीं होता । जो ईश्वर क्रियावान् न होता तो इस जगत् को

कैसे बना सकता ? जो कर्मों को प्रागभाववत् अनादि सान्त मानते हो तो कर्म समवाय सम्बन्ध से नहीं रहेगा जो समवाय सम्बन्ध से नहीं वह संयोगज होके अनित्य होता है, जो मुक्ति में क्रिया ही न मानते हो तो वे मुक्त जीव ज्ञानवाले होते हैं वा नहीं ? जो कहो होते हैं तो अन्तः क्रिया वाले हुए, क्या मुक्ति में पाषाणवत् जड़ हो जाते, एक ठिकाने पड़े रहते और कुछ भी चेष्टा नहीं करते तो मुक्ति क्या हुई किन्तु अन्धकार और बन्धन में पड़गये। (नास्तिक) ईश्वर व्यापक नहीं है जो व्यापक होता तो सब वस्तु चेतन क्यों नहीं होतीं ? और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि की उत्तम, मध्यम, निकृष्ट अवस्था क्यों हुई। क्योंकि सब में ईश्वर एकसा व्याप्त है तो छुटाई बड़ाई न होनी चाहिये। (आस्तिक) व्याप्य और व्यापक एक नहीं होते किन्तु व्याप्य एकदेशी और व्यापक सर्वदेशी होता है जैसे आकाश सब में व्यापक है और भूगोल और घटपटादि सब व्याप्य एकदेशी हैं, जैसे पृथिवी आकाश एक नहीं वैसे ईश्वर और जगत् एक नहीं, जैसे सब घट पटादि में आकाश व्यापक है और घट पटादि आकाश नहीं वैसे परमेश्वर चेतन सब में है और सब चेतन नहीं होता, जैसे विद्वान् अविद्वान् और धर्मात्मा अधर्मात्मा बराबर नहीं होते विद्यादि सद्गुण और सत्यभाषणादि कर्म सुशीलतादि स्वभाव के न्यूनाधिक होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्त्यज बड़े छोटे माने जाते हैं वर्णों की व्याख्या जैसी "चतुर्थसमुल्लास" में लिख आये हैं वहां देखलो। (नास्तिक) जो ईश्वर की रचना से सृष्टि होती तो माता पितादि का क्या काम ? (आस्तिक) ऐश्वरी सृष्टि का ईश्वर कर्त्ता है, जैवी सृष्टि का नहीं, जो जीवों के कर्त्तव्य कर्म हैं उनको ईश्वर नहीं करता किन्तु जीव ही करता है जैसे वृक्ष, फल, ओषधि, अन्नादि ईश्वर ने उत्पन्न किया है उसको लेकर मनुष्य न पीसें, न कूटें, न रोटी आदि पदार्थ बनावें और न खावें तो क्या ईश्वर उसके बदले इन कामों को कभी करेगा ? और जो न करें तो जीव का जीवन भी न होसके इसलिये आदिसृष्टि में जीव के शरीरों और सांचे को बनाना ईश्वराधीन पश्चात् उनसे पुत्रादि की उत्पत्ति करना जीव का कर्त्तव्य काम है। (नास्तिक) जब परमात्मा शाश्वत, अनादि,

चिदानन्द ज्ञानस्वरूप है तो जगत् के प्रपञ्च और दुःख में क्यों पड़ा ? आनन्द छोड़ दुःख का ग्रहण ऐसा काम कोई साधारण मनुष्य भी नहीं करता ईश्वर ने क्यों किया (आस्तिक) परमात्मा किसी प्रपञ्च और दुःख में नहीं गिरता न अपने आनन्द को छोड़ता है क्योंकि प्रपञ्च और दुःख में गिरना जो एकदेशी हो उसका हो सकता है सर्वदेशी का नहीं । जो अनादि, चिदानन्द, ज्ञानस्वरूप परमात्मा जगत् को न बनावे तो अन्य कौन बना सके ? जगत् बनाने का जीव में सामर्थ्य नहीं और जड़ में स्वयं बनने का भी सामर्थ्य नहीं इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मा ही जगत् को बनाता और सदा आनन्द में रहता है, जैसे परमात्मा परमाणुओं से सृष्टि करता है वैसे माता पितारूप निमित्तकारण से भी उत्पत्ति का प्रबन्ध नियम उसी ने किया है। (नास्तिक) ईश्वर मुक्तिरूप सुख को छोड़ जगत् की सृष्टिकरण धारण और प्रलय करने के बखेड़े में क्यों पड़ा ? (आस्तिक) ईश्वर सदा मुक्त होने से, तुम्हारे साधनों से सिद्ध हुए तीर्थंकरों के समान एक देश में रहनेहारे बन्धपूर्वक मुक्ति से युक्त, सनातन परमात्मा नहीं है जो अनन्तस्वरूप गुण, कर्म, स्वभावयुक्त परमात्मा है वह इस किंचिन्मात्र जगत् को बनाता धरता और प्रलय करता हुआ भी बन्ध में नहीं पड़ता क्योंकि बन्ध और मोक्ष सापेक्षता से हैं, जैसे मुक्ति की अपेक्षा से बन्ध और बन्ध की अपेक्षा से मुक्ति होती है, जो कभी बद्ध नहीं था वह मुक्त क्योंकर कहा जा सकता है ? और जो एकदेशी जीव हैं वे ही बद्ध और मुक्त सदा हुआ करते हैं, अनन्त, सर्वदेशी, सर्वव्यापक, ईश्वर बन्धन वा नैमित्तिक मुक्ति के चक्र में, जैसे कि तुम्हारे तीर्थंकर हैं, कभी नहीं पड़ता, इसलिये वह परमात्मा सदैव मुक्त कहाता है । (नास्तिक) जीव कर्मों के फल ऐसे ही भोग सकते हैं जैसे भांग पीने के मद को स्वयमेव भोगता है इसमें ईश्वर का काम नहीं। (आस्तिक) जैसे विना राजा के डाकू लम्पट चोरादि दुष्ट मनुष्य स्वयं फांसी वा कारागृह में नहीं जाते न वे जाना चाहते हैं किन्तु राज्य की न्यायव्यवस्थानुसार बलात्कार से पकड़ा कर यथोचित राजा दंड देता है इसी प्रकार जीव को भी ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्था से स्व २ कर्मानुसार यथायोग्य दंड देता है क्योंकि कोई भी जीव अपने दुष्ट कर्मों के फल भोगना नहीं चाहता इसलिये

अवश्य परमात्मा न्यायाधीश होना चाहिये। (नास्तिक) जगत् में एक ईश्वर नहीं किन्तु जितने मुक्त जीव हैं वे सब ईश्वर हैं। (आस्तिक) यह कथन सर्वथा व्यर्थ है क्योंकि जो प्रथम बद्ध होकर मुक्त हो तो पुनः बन्ध में अवश्य पड़े क्योंकि वे स्वाभाविक सदैव मुक्त नहीं जैसे तुम्हारे चौबीस तीर्थंकर पहिले बद्ध थे पुनः मुक्त हुए फिर भी बन्ध में अवश्य गिरेंगे और जब बहुतसे ईश्वर हैं तो जैसे जीव अनेक होने से लड़ते, भिड़ते फिरते हैं वैसे ईश्वर भी लड़ा भिड़ा करेंगे। (नास्तिक) हे मूढ़ जगत् का कर्त्ता कोई नहीं किन्तु जगत् स्वयंसिद्ध है (आस्तिक) यह जैनियों की कितनी बड़ी भूल है भला विना कर्त्ता के कोई कर्म, कर्म के विना कोई कार्य्य जगत् में होता दीखता है ! यह ऐसी बात है कि जैसे गेहूं के खेत में स्वयंसिद्ध पिसान, रोटी बनके जैनियों के पेट में चली जाती हो ! कपास, सूत, कपड़ा, अङ्गरखा, दुपट्टा, धोती, पगड़ी आदि बनके कभी नहीं आते ! जब ऐसा नहीं तो ईश्वर कर्त्ता के विना यह विविध जगत् और नाना प्रकार की रचना विशेष कैसे बन सकती ? जो हठ-धर्म से स्वयंसिद्ध जगत् को मानो तो स्वयंसिद्ध उपरोक्त वस्त्रादिकों को कर्त्ता के विना प्रत्यक्ष कर दिखलाओ जब ऐसा सिद्ध नहीं कर सकते पुनः तुम्हारे प्रमाण-शून्य कथन को कौन बुद्धिमान् मान सकता है ? (नास्तिक) ईश्वर विरक्त है वा मोहित ? जो विरक्त है तो जगत् के प्रपञ्च में क्यों पड़ा ? जो मोहित है तो जगत् के बनाने को समर्थ नहीं हो सकेगा। (आस्तिक) परमेश्वर में वैराग्य वा मोह कभी नहीं घट सकता, क्योंकि जो सर्वव्यापक है वह किसको छोड़े और किसको ग्रहण करे ईश्वर से उत्तम वा उसको अप्राप्त कोई पदार्थ नहीं है इसलिये किसी में मोह भी नहीं होता वैराग्य और मोह का होना जीव में घटता है ईश्वर में नहीं। (नास्तिक) जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता और जीवों के कर्मों के फलों का दाता मानोगे तो ईश्वर प्रपञ्ची होकर दुखी हो जायगा। (आस्तिक) भला अनेकविध कर्मों का कर्त्ता और प्राणियों को फलों का दाता धार्मिक न्यायाधीश विद्वान् कर्मों में नहीं फँसता न प्रपंची होता है तो परमेश्वर अनन्त सामर्थ्यवाला प्रपंची और दुखी क्योंकर होगा ? हां तुम अपने और अपने तीर्थंकरों के समान परमेश्वर को भी अपने अज्ञान से समझते हो

सो तुम्हारी अविद्या की लीला है जो अविद्यादि दोषों से छूटना चाहो तो वेदादि सत्य शास्त्रों का आश्रय लेओ क्यों भ्रम में पड़े २ ठोकरें खाते हो ? ॥

अब जैन लोग जगत् को जैसा मानते हैं वैसा इनके सूत्रों के अनुसार दिखलाते और संक्षेपतः मूलार्थ के लिये पश्चात् सत्य झूठ की समीक्षा करके दिखलाते हैंः—

मूल—सामिअणाइ अणन्ते च नूगइ संसार घोरकान्तरे । मोहाइ कम्म-गुरु ठिइ विवाग वसनुभमइजीव रो ॥ प्रकरणरत्नाकर भाग दूसरा २ । षष्ठीशतक ६० । सूत्र २ ॥

यह रत्नसार भाग नामक ग्रन्थ के सम्यक्त्वप्रकाश प्रकरण में गौतम और महावीर का संवाद है ॥

इसका संक्षेप से उपयोगी यह अर्थ है कि यह संसार अनादि अनन्त है न कभी इसकी उत्पत्ति हुई न कभी विनाश होता है अर्थात् किसी का बनाया जगत् नहीं सो ही आस्तिक नास्तिक के संवाद में, हे मूढ़ ! जगत् का कर्त्ता कोई नहीं न कभी बना और न कभी नाश होता । (समीक्षक) जो संयोग से उत्पन्न होता है वह अनादि और अनन्त कभी नहीं हो सकता । और उत्पत्ति तथा विनाश हुए विना कर्म नहीं रहता जगत् में जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे सब संयोगज उत्पत्ति विनाशवाले देखे जाते हैं पुनः जगत् उत्पन्न और विनाशवाला क्यों नहीं ? इसलिये तुम्हारे तीर्थंकरों को सम्यक् बोध नहीं था जो उनको सम्यक् ज्ञान होता तो ऐसी असम्भव बातें क्यों लिखते ? जैसे तुम्हारे गुरु हैं वैसे तुम शिष्य भी हो तुम्हारी बातें सुननेवाले को पदार्थज्ञान कभी नहीं हो सकता भला जो प्रत्यक्ष संयुक्त पदार्थ दीखता है उसकी उत्पत्ति और विनाश क्योंकर नहीं मानते अर्थात् इनके आचार्य वा जैनियों को भूगोल खगोल विद्या भी नहीं आती थी और न अब यह विद्या इनमें है नहीं तो निम्नलिखित ऐसी असम्भव बातें क्योंकर मानते और कहते ? देखो ! इस सृष्टि में पृथिवीकाय अर्थात् पृथिवी भी जीव का शरीर है और जलकायादि जीव भी मानते हैं इसको कोई भी नहीं मान सकता । और भी देखो ! इनकी मिथ्या बातें जिन तीर्थंकरों

को जैन लोग सम्यक्ज्ञानी और परमेश्वर मानते हैं उनकी मिथ्या बातों के ये नमूने हैं। "रत्नसारभाग" (इस ग्रन्थ को जैन लोग मानते हैं और यह ईसवी सन् १८७९ अप्रेल ता० २८ में बनारस जैनप्रभाकर प्रेस में नानकचन्द जती ने छपवाकर प्रसिद्ध किया है) के १४५ पृष्ठ में काल की इस प्रकार व्याख्या की है अर्थात् समय का नाम सूक्ष्मकाल है। और असंख्यात समयों को "आवलि" कहते हैं। एक क्रोड़ सर्सठ लाख सत्तर सहस्र दोसौ सोलह आवलियों का एक "मुहूर्त्त" होता है वैसे तीस मुहूर्त्तों का एक "दिवस" वैसे पन्द्रह दिवसों का एक "पक्ष" वैसे दो पक्षों का एक "मास" वैसे बारह महीनों का एक "वर्ष" होता है वैसे सत्तर लाख क्रोड़ छप्पन सहस्र क्रोड़ वर्षों का एक "पूर्व" होता है, ऐसे असंख्यात पूर्वों का एक "पल्योपम" काल कहते हैं। असंख्यात इसको कहते हैं कि एक चार कोश का चौरस और उतना ही गहरा कुआ खोद कर उसको जुगुलिये मनुष्य के शरीर के निम्नलिखित बालों के टुकड़ों से भरना अर्थात् वर्त्तमान मनुष्य के बाल से जुगुलिये मनुष्य का बाल चार हज़ार छानवें भाग सूक्ष्म होता है, जब जुगुलिये मनुष्यों के चार सहस्र छानवे बालों को इकट्ठा करें तो इस समय के मनुष्यों का एक बाल होता है ऐसे जुगुलिये मनुष्य के एक बाल के एक अंगुल भाग के सात बार आठ २ टुकड़े करने से २०९७१५२ अर्थात् बीस लाख सत्तानवें सहस्र एकसौ बावन टुकड़े होते हैं, ऐसे टुकड़ों से पूर्वोक्त कुआ को भरना उसमें से सौ वर्ष के अन्तरे एक २ टुकड़ा निकालना जब सब टुकड़े निकल जावें और कुआ खाली हो जाय तो भी वह संख्यात काल है और जब उनमें से एक २ टुकड़े के असंख्यात टुकड़े करके उन टुकड़ों से उसी कुए को ऐसा ठस के भरना कि उसके ऊपर से चक्रवर्त्ती राजा की सेना चली जाय तो भी न दबे उन टुकड़ों में से सौ वर्ष के अन्तरे एक टुकड़ा निकाले जब वह कुआ रीता हो जाय तब उसमें असंख्यात पूर्व पड़ें तब एक २ पल्योपम काल होता है। वह पल्योपम काल कुआ के दृष्टान्त से जानना, जब दश क्रोड़ान् क्रोड़ पल्योपम काल बीतें तब एक "सागरोपम" काल होता है जब दश क्रोड़ान् क्रोड़ सागरोपम काल बीत जाय तब एक "उत्सर्प्पणी" काल होता है और जब एक उत्सर्प्पणी और एक अवसर्प्पणी काल बीत जाय

तब एक "कालचक्र" होता है, जब अनन्त कालचक्र बीत जावें तब एक "पुद्गलपरावृत्त" होता है अब अनन्तकाल किसको कहते हैं जो सिद्धान्त पुस्तकों में नव दृष्टान्तों से काल की संख्या की है, उससे उपरान्त "अनन्तकाल" कहाता है, वैसे अनन्त पुद्गलपरावृत्त काल जीव को भ्रमते हुए बीते हैं इत्यादि। सुनो भाई गणितविद्यावाले लोगो! जैनियों के ग्रन्थों की काल-संख्या कर सकोगे वा नहीं? और तुम इसको सच भी मान सकोगे वा नहीं? देखो! इन तीर्थंकरों ने ऐसी गणितविद्या पढ़ी थी ऐसे २ तो इनके मत में गुरु और शिष्य हैं जिनकी अविद्या का कुछ पारावार नहीं। और भी इनका अन्धेर सुनो रत्नसार भाग पृ० १३३ से लेके जो कुछ बूटाबोल अर्थात् जैनियों के सिद्धान्त ग्रन्थ जो कि उनके तीर्थंकर अर्थात् ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त चौबीस हुए हैं उनके वचनों का सारसंग्रह है ऐसा रत्नसारभाग पृ० १४८ में लिखा है कि पृथिवीकाय के जीव मट्टी पाषाणादि पृथिवी के भेद जानना, उनमें रहने वाले जीवों के शरीर का परिमाण एक अंगुल का असंख्यातवां समझना, अर्थात् अतीव सूक्ष्म होते हैं उनका आयुमान अर्थात् वे अधिक से अधिक २२ सहस्र वर्ष पर्यन्त जीते हैं। (रत्न० पृ० १४९) वनस्पति के एक शरीर में अनन्त जीव होते हैं वे साधारण वनस्पति कहाती हैं जो कि कन्दमूलप्रमुख और अनन्तकायप्रमुख होते हैं उनको साधारण वनस्पति के जीव कहने चाहियें इनका आयुमान अन्तमुहूर्त्त होता है परन्तु यहां पूर्वोक्त इनका मुहूर्त्त समझना चाहिये और एक शरीर में जो एकेन्द्रिय अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय इनमें है और उसमें एक जीव रहता है उसको प्रत्येक वनस्पति कहते हैं उसका देहमान एक सहस्र योजन अर्थात् पुराणियों का योजन ४ कोश का परन्तु जैनियों का योजन १०००० (दश सहस्र) कोशों का होता है ऐसे चार सहस्र कोश का शरीर होता है उसका आयुमान अधिक से अधिक दश सहस्र वर्ष का होता है अब दो इन्द्रियवाले जीव अर्थात् एक उनका शरीर और एक मुख जो शंख कौड़ी और जूं आदि होते हैं उनका देहमान अधिक से अधिक अड़तालीस कोश का स्थूल शरीर होता है। और उनका आयुमान अधिक से अधिक बारह वर्ष का होता है, यहां बहुत ही भूल गया क्योंकि इतने बड़े शरीर का आयु

अधिक लिखता और अड़तालीस कोश की स्थूल जूं जैनियों के शरीर में पड़ती होगी और उन्हीं ने देखी भी होगी और का भाग्य ऐसा कहां जो इतनी बड़ी जूं को देखें !!! (रत्नसार भाग पृ० १५०) और देखो ! इनका अन्धाधुन्ध बीछू, बगाई, कसारी और मक्खी एक योजन के शरीरवाले होते हैं इनका आयुमान अधिक से अधिक छः महीने का है । देखो भाई ! चार २ कोश का बीछू अन्य किसी ने देखा न होगा जो आठ मीलतक का शरीरवाला बीछू और मक्खी भी जैनियों के मत में होती हैं ऐसे बीछू और मक्खी उन्हीं के घर में रहते होंगे और उन्हीं ने देखे होंगे अन्य किसी ने संसार में नहीं देखे होंगे कभी ऐसे बीछू किसी जैनी को काटें तो उसका क्या होता होगा ! जलचर मच्छी आदि के शरीर का मान एक सहस्र योजन अर्थात् १०००० कोश के योजन के हिसाब से १०००००० (एक क्रोड़) कोश का शरीर होता है और एक क्रोड़ पूर्व वर्षों का इनका आयु होता है वैसा स्थूल जलचर सिवाय जैनियों के अन्य किसी ने न देखा होगा । और चतुष्पाद हाथी आदि का देहमान दो कोश से नव कोशपर्यन्त और आयुमान चौरासी सहस्र वर्षों का इत्यादि, ऐसे बड़े २ शरीरवाले जीव भी जैनी लोगों ने देखे होंगे और मानते हैं और कोई बुद्धिमान् नहीं मान सकता । (रत्नसारभा० पृ० १५१) जलचर गर्भज जीवों का देहमान उत्कृष्ट एक सहस्र योजन अर्थात् १०००००० (एक क्रोड़) कोशों का और आयुमान एक क्रोड़ पूर्व वर्षों का होता है इतने बड़े शरीर और आयुवाले जीवों को भी इन्हीं के आचार्यों ने स्वप्न में देखे होंगे । क्या यह महा झूठ बात नहीं कि जिसका कदापि सम्भव न हो सके ! ॥

अब सुनिये भूमि के परिमाण को । (रत्नसार भा० पृ० १५२) इस तिरछे लोक में असंख्यात द्वीप और असंख्यात समुद्र हैं इन असंख्यात का प्रमाण अर्थात् जो अढ़ाई सागरोपम काल में जितना समय हो उतने द्वीप तथा समुद्र जानना अब इस पृथिवी में "जम्बूद्वीप" प्रथम सब द्वीपों के बीच में है इसका प्रमाण एक लाख योजन अर्थात् एक अरब कोश का है और इसके चारों ओर लवण समुद्र है उसका प्रमाण दो लाख योजन कोश का है अर्थात्

दो अरब कोष का। इस जम्बूद्वीप के चारों ओर जो "धातकीखण्ड" नाम द्वीप है उसका चार लाख योजन अर्थात् चार अरब कोश का प्रमाण है और उसके पीछे "कालोदधि" समुद्र है उसका आठ लाख अर्थात् आठ अरब कोश का प्रमाण है उसके पीछे "पुष्करावर्त्त" द्वीप है उसका प्रमाण सोलह कोश का है उस द्वीप के भीतर की कोरें हैं उस द्वीप के आधे में मनुष्य बसते हैं और उसके उपरांत असंख्यात द्वीप समुद्र हैं उनमें तिर्यग् योनि के जीव रहते हैं। (रत्नसार भा० पृ० १५३) जम्बूद्वीप में एक हिमवन्त, एक ऐरण्डवन्त, एक हरिवर्ष, एक रम्यक, एक देवकुरु, एक उत्तरकुरु ये छः क्षेत्र हैं॥ (समीक्षक) सुनो भाई! भूगोलविद्या के जाननेवाले लोगो! भूगोल के परिमाण करने में तुम भूले वा जैन! जो जैन भूल गये हों तो तुम उनको समझाओ और जो तुम भूले हो तो उनसे समझ लेओ। थोड़ासा विचार कर देखो तो यही निश्चय होता है कि जैनियों के आचार्य्य और शिष्यों ने भूगोल खगोल और गणितविद्या कुछ भी नहीं पढ़ी थी पढ़े होते तो महा असंभव गपोड़ा क्यों मारते? भला ऐसे अविद्वान् पुरुष जगत् को अकर्तृक और ईश्वर को न मानें इसमें क्या आश्चर्य है? इसलिये जैनी लोग अपने पुस्तकों को किन्हीं विद्वान् अन्य मतस्थों को नहीं देते क्योंकि जिनको ये लोग प्रामाणिक तीर्थङ्करों के बनाये हुए सिद्धान्त ग्रन्थ मानते हैं उनमें इसी प्रकार की अविद्यायुक्त बातें भरी पड़ी हैं इसलिये नहीं देखने देते जो देवें तो पोल खुल जाय इनके विना जो कोई मनुष्य कुछ भी बुद्धि रखता होगा वह कदापि इस गपोड़ाध्याय को सत्य नहीं मान सकेगा, यह सब प्रपञ्च जैनियों ने जगत् को अनादि मानने के लिये खड़ा किया है परन्तु यह निरा झूठ है हां! जगत् का कारण अनादि है क्योंकि वह परमाणु आदि तत्त्वस्वरूप अकर्त्तृक है परन्तु उनमें नियमपूर्वक बनने वा बिगड़ने का सामर्थ्य कुछ भी नहीं क्योंकि जब एक परमाणु द्रव्य किसी का नाम है और स्वभाव से पृथक् २ रूप और जड़ हैं वे अपने आप यथायोग्य नहीं बन सकते इसलिये इनका बनानेवाला चेतन अवश्य है और वह बनानेवाला ज्ञानस्वरूप है। देखो! पृथिवी सूर्यादि सब लोकों को नियम में रखना अनन्त अनादि चेतन परमात्मा का काम है, जिस में संयोग रचना विशेष दीखता है

वह स्थूल जगत् अनादि कभी नहीं हो सकता, जो कार्य जगत् को नित्य मानोगे तो उसका कारण कोई न होगा किन्तु वही कार्यकारणरूप होजायगा जो ऐसा कहोगे तो अपना कार्य्य और कारण आपही होने से अन्योऽन्याश्रय और आत्माश्रय दोष आवेगा, जैसे अपने कंधे पर आप चढ़ना और अपना पिता पुत्र आप नहीं हो सकता, इसलिये जगत् का कर्त्ता अवश्य ही मानना है। (प्रश्न) जो ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानते हो तो ईश्वर का कर्त्ता कौन है? (उत्तर) कर्त्ता का कर्त्ता और कारण का कारण कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि प्रथम कर्त्ता और कारण के होने से ही कार्य्य होता है जिसमें संयोग वियोग नहीं होता, जो प्रथम संयोग वियोग का कारण है उसका कर्त्ता वा कारण किसी प्रकार नहीं हो सकता इसकी विशेष व्याख्या आठवें समुल्लास में सृष्टि की व्याख्या में लिखी है देख लेना। इन जैन लोगों को स्थूल बात का भी यथावत् ज्ञान नहीं तो परम सूक्ष्म सृष्टि विद्या का बोध कैसे हो सकता है? इसलिये जो जैनी लोग सृष्टि को अनादि अनन्त मानते और द्रव्यपर्यायों को भी अनादि अनन्त मानते हैं और प्रतिगुण प्रतिदेश में पर्यायों और प्रतिवस्तु में भी अनन्त पर्याय को मानते हैं यह प्रकरणरत्नाकर के प्रथम भाग में लिखा है यह भी बात कभी नहीं घट सकती क्योंकि जिनका अन्त अर्थात् मर्यादा होती है उनके सब सम्बन्धी अन्तवाले ही होते हैं यदि अनन्त को असंख्य कहते तो भी नहीं घट सकता किन्तु जीवापेक्षा में यह बात घट सकती है परमेश्वर के सामने नहीं क्योंकि एक २ द्रव्य में अपने २ एक २ कार्य्यकारण सामर्थ्य को अविभाग पर्यायों से अनन्त सामर्थ्य मानना केवल अविद्या की बात है जब एक परमाणु द्रव्य की सीमा है तो उसमें अनन्त विभागरूप पर्य्याय कैसे रह सकते हैं? ऐसे ही एक २ द्रव्य में अनन्त गुण और एक गुण प्रदेश में अविभागरूप अनन्त पर्यायों को भी अनन्त मानना केवल बालकपन की बात है क्योंकि जिसके अधिकरण का अन्त है तो उस में रहनेवालों का अन्त क्यों नहीं? ऐसी ही लम्बी चौड़ी मिथ्या बातें लिखी हैं, अब जीव और अजीव इन दो पदार्थों के विषय में जैनियों का निश्चय ऐसा है:—

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः ।
सत्कर्मपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः ॥

यह जिनदत्तसूरि का वचन है । और यही प्रकरणरत्नाकर भाग पहिले में नयचक्रसार में भी लिखा है कि चेतनालक्षण जीव और चेतनारहित अजीव अर्थात् जड़ है । सत्कर्मरूप पुद्गल पुण्य और पापकर्मरूप पुद्गल पाप कहाते हैं । (समीक्षक) जीव और जड़ का लक्षण तो ठीक है परन्तु जो जड़रूप पुद्गल हैं वे पापपुण्ययुक्त कभी नहीं हो सकते क्योंकि पाप पुण्य करने का स्वभाव चेतन में होता है देखो ! ये जितने जड़ पदार्थ हैं वे सब पाप पुण्य से रहित हैं जो जीवों को अनादि मानते हैं यह तो ठीक है परन्तु उसी अल्प और अल्पज्ञ जीव को मुक्ति दशा में सर्वज्ञ मानना झूठ है क्योंकि जो अल्प और अल्पज्ञ है उसका सामर्थ्य भी सर्वदा समीप रहेगा । जैनी लोग जगत्, जीव, जीव के कर्म और बन्ध अनादि मानते हैं यहां भी जैनियों के तीर्थंकर भूल गये हैं क्योंकि संयुक्त जगत् का कार्य्यकारण, प्रवाह से कार्य और जीव के कर्म, बन्ध भी अनादि नहीं हो सकते जब ऐसा मानते हो तो कर्म और बन्ध का छूटना क्यों मानते हो ? क्योंकि जो अनादि पदार्थ है वह कभी नहीं छूट सकता । जो अनादि का भी नाश मानोगे तो तुम्हारे सब अनादि पदार्थों के नाश का प्रसंग होगा और जब अनादि को नित्य मानोगे तो कर्म और बन्ध भी नित्य होगा । और जब सब कर्मों के नाश का प्रसंग होगा और जब अनादि को नित्य मानोगे तो कर्म और बन्ध भी नित्य होगा और जब सब कर्मों के छूटने से मुक्ति मानते हो तो सब कर्मों का छूटनारूप मुक्ति का निमित्त हुआ तब नैमित्तिकी मुक्ति होगी तो सदा नहीं रह सकेगी और कर्म कर्त्ता का नित्य सम्बन्ध होने से कर्म भी कभी न छूटेंगे पुनः जब तुमने अपनी मुक्ति और तीर्थंकरों की मुक्ति नित्य मानी है सो नहीं बन सकेगी । (प्रश्न) जैसे धान्य का छिलका उतारने वा अग्नि के संयोग होने से वह बीज पुनः नहीं उगता इसी प्रकार मुक्ति में गया हुआ जीव पुनः जन्ममरणरूप संसार में नहीं आता (उत्तर) जीव और कर्म का सम्बन्ध छिलके और बीज के समान नहीं है किन्तु

इनका समवाय सम्बन्ध है, इससे अनादि काल से जीव और उसमें कर्म और कर्तृत्वशक्ति का सम्बन्ध है, जो उसमें कर्म करने की शक्ति का भी अभाव मानोगे तो सब जीव पाषाणवत् हो जायेंगे और मुक्ति को भोगने का भी सामर्थ्य नहीं रहेगा, जैसे अनादि काल का कर्मबन्धन छूटकर जीव मुक्त होता है तो तुम्हारी नित्य मुक्ति से भी छूट कर बन्धन में पड़ेगा क्योंकि जैसे कर्मरूप मुक्ति के साधनों से भी छूटकर जीव का मुक्त होना मानते हो वैसे ही नित्य मुक्त से भी छूट के बन्धन में पड़ेगा, साधनों से सिद्ध हुआ पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता और जो साधन सिद्ध के विना मुक्ति मानोगे तो कर्मों के विना ही बन्ध प्राप्त हो सकेगा। जैसे वस्त्रों में मैल लगता और धोने से छूट जाता है पुनः मैल लग जाता है वैसे मिथ्यात्वादि हेतुओं से रागद्वेषादि के आश्रय से जीव को कर्मरूप फल लगता है और जो सम्यक्ज्ञान दर्शन चारित्र से निर्मल होता है और मैल लगने के कारणों से मलों का लगना मानते हो तो मुक्त जीव संसारी और संसारी जीव का मुक्त होना अवश्य मानना पड़ेगा क्योंकि जैसे निमित्तों से मलिनता छूटती है वैसे निमित्तों से मलिनता लग भी जायगी इसलिये जीव को बन्ध और मुक्ति प्रवाहरूप से अनादि मानो अनादि अनन्तता से नहीं। (प्रश्न) जीव निर्मल कभी नहीं था किंतु मलसहित है। (उत्तर) जो कभी निर्मल नहीं था तो निर्मल भी कभी नहीं हो सकेगा जैसे शुद्ध वस्त्र में पीछे से लगे हुए मैल को धोने से छुड़ा देते हैं उसके स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा। (प्रश्न) जीव पूर्वोपार्जित कर्म ही से शरीर धारण कर लेता है, ईश्वर का मानना व्यर्थ है। (उत्तर) जो केवल कर्म ही शरीर धारण में निमित्त हो, ईश्वर कारण न हो तो वह जीव बुरा जन्म कि जहां बहुत दुःख हो उसको धारण कभी न करे किन्तु सदा अच्छे २ जन्म धारण किया करे। जो कहो कि कर्म प्रतिबन्धक है तो भी जैसे चोर आप से आके बन्दीगृह में नहीं जाता और स्वयं फांसी भी नहीं खाता किंतु राजा देता है, इसी प्रकार जीव को शरीरधारण कराने और उसके कर्मानुसार फल देने वाले परमेश्वर को तुम भी मानो। (प्रश्न) मद (नशा) के समान कर्म स्वयं प्राप्त होता है फल देने में दूसर की आवश्य-

कता नहीं। (उत्तर) जो ऐसा हो तो जैसे मदपान करनेवालों को मद कम चढ़ता, अनभ्यासी को बहुत चढ़ता है, वैसे नित्य बहुत पाप पुण्य करनेवालों को न्यून और कभी २ थोड़ा २ पाप पुण्य करनेवालों को अधिक फल होना चाहिये और छोटे कर्मवालों को अधिक फल होवे। (प्रश्न) जिसका जैसा स्वभाव होता है उस का वैसा ही फल हुआ करता है। (उत्तर) जो स्वभाव से है तो उसका छूटना वा मिलना नहीं हो सकता, हां जैसे शुद्ध वस्त्र में निमित्तों से मल लगता है उसके छुड़ाने के निमित्तों से छूट भी जाता है ऐसा मानना ठीक है। (प्रश्न) संयोग के विना कर्म परिणाम को प्राप्त नहीं होता, जैसे दूध और खटाई के संयोग के विना दही नहीं होता इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिणाम होता है। (उत्तर) जैसे दही और खटाई का मिलानेवाला तीसरा होता है वैसे ही जीवों को कर्मों के फल के साथ मिलानेवाला तीसरा ईश्वर होना चाहिये क्योंकि जड़ पदार्थ स्वयं नियम से संयुक्त नहीं होते और जीव भी अल्पज्ञ होने से स्वयं अपने कर्मफल को प्राप्त नहीं हो सकते, इससे यह सिद्ध हुआ कि विना ईश्वरस्थापित सृष्टिक्रम के कर्मफलव्यवस्था नहीं हो सकती। (प्रश्न) जो कर्म से मुक्त होता है वही ईश्वर कहाता है। (उत्तर) जब अनादि काल से जीव के साथ कर्म लगे हैं तो उनसे जीव मुक्त कभी नहीं हो सकेंगे। (प्रश्न) कर्म का बन्ध सादि है। (उत्तर) जो सादि है तो कर्म का योग अनादि नहीं और संयोग की आदि में जीव निष्कर्म होगा और जो निष्कर्म को कर्म लग गया तो मुक्तों को भी लग जायगा और कर्म कर्त्ता का समवाय अर्थात् नित्य सम्बन्ध होता है यह कभी नहीं छूटता, इसलिये जैसा ९ वें समुल्लास में लिख आये हैं वैसा ही मानना ठीक है। जीव चाहें जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे तो भी उसमें परिमितज्ञान और ससीम सामर्थ्य रहेगा ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता। हां जितना सामर्थ्य बढना उचित है उतना योग से बढ़ा सकता है और जो जैनियों में आर्हत लोग देह के परिमाण से जीव का भी परिमाण मानते हैं उनसे पूछना चाहिये कि जो ऐसा हो तो हाथी का जीव कीड़ी में और कीड़ी का जीब हाथी में कैसे समा सकेगा? यह भी एक मूर्खता की बात है क्योंकि जीव एक सूक्ष्म पदार्थ

है जो कि एक परमाणु में भी रह सकता है परन्तु उसकी शक्तियां शरीर में प्राण बिजुली और नाड़ी आदि के साथ संयुक्त हो रहती हैं उनसे सब शरीर का वर्त्तमान जानता है अच्छे संग से अच्छा और बुरे संग से बुरा होजाता है। अब जैन लोग धर्म इस प्रकार का मानते हैं:—

मूल-रे जीव भवदुहाइं इक्कं चिय हरइ जिणमयं धम्मं।
इयराणं परमं तो सुहकप्पे मूढमुसि ओस॥
प्रकरणरत्नाकर भाग २। षष्ठीशतक ६०। सूत्राङ्क ३॥

अरे जीव! एक ही जिनमत श्रीवीतरागभाषित धर्म संसार सम्बन्धी जन्म जरामरणादि दुःखों का हरणकर्त्ता है इसी प्रकार सुदेव और सुगुरु भी जैन मतवाले को जानना इतर जो वीतराग ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त वीतराग देवों से भिन्न अन्य हरिहर ब्रह्मादि कुदेव हैं उनकी अपने कल्याणार्थ जो जीव पूजा करते हैं वे सब मनुष्य ठगाये गये हैं। इसका यह भावार्थ है कि जैनमत के सुदेव सुगुरु तथा सुधर्म को छोड़ के अन्य कुदेव कुगुरु तथा कुधर्म को सेवने से कुछ भी कल्याण नहीं होता॥ (समीक्षक) अब विद्वानों को विचारना चाहिये कि कैसे निन्दायुक्त इनके धर्म के पुस्तक हैं!॥

मूल-अरिहं देवो सुगुरु सुद्धं धम्मं च पंच नवकारो।
धन्नाणं कयच्छाणं निरन्तरं वसइ हिययम्मि॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० ६०। सू० १॥

जो अरिहन् देवेन्द्रकृत पूजादिकन के योग्य दूसरा पदार्थ उत्तम कोई नहीं ऐसा जो देवों का देव शोभायमान अरिहन्त देव ज्ञान क्रियावान् शास्त्रों का उपदेष्टा शुद्ध कषाय मलरहित सम्यक्त्व विनय दयामूल श्रीजिनभाषित जो धर्म है वही दुर्गति में पड़नेवाले प्राणियों का उद्धार करनेवाला है और अन्य हरिहरादि का धर्म संसार से उद्धार करनेवाला नहीं और पंच अरिहन्तादिक परमेष्ठी तत्सम्बन्धी उनको नमस्कार ये चार पदार्थ धन्य हैं अर्थात् श्रेष्ठ हैं अर्थात् दया, क्षमा, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन और चारित्र यह जैनों का धर्म है॥ (समीक्षक) जब

मनुष्यमात्र पर दया नहीं वह दया न क्षमा ज्ञान के बदले अज्ञान दर्शन अंधेर और चारित्र के बदले भूखे मरना कौनसी अच्छी बात है ? जैनमत के धर्म की प्रशंसाः—

मूल—जइन कुणसि तव चरणं न पढसि न गुणोसि देसि नो दाणम्।
ता इत्तियं न सक्किसिजं देवो इक्क अरिहन्तो ॥
प्रकरण० भा० २। षष्ठी० सू० २॥

हे मनुष्य ! जो तू तप चारित्र नहीं कर सकता, न सूत्र पढ़ सकता, न प्रकरणादि का विचार कर सकता और सुपात्रादि को दान नहीं दे सकता, तो भी जो तू देवता एक अरिहन्त ही हमारे आराधना के योग्य सुगुरु सुधर्म जैनमत में श्रद्धा रखना सर्वोत्तम बात और उद्धार का कारण है॥ (समीक्षक) यद्यपि दया और क्षमा अच्छी वस्तु है तथापि पक्षपात में फँसने से दया अदया और क्षमा अक्षमा होजाती है इसका प्रयोजन यह है कि किसी जीव को दुःख न देना यह बात सर्वथा संभव नहीं हो सकती क्योंकि दुष्टों को दंड देना भी दया में गणनीय है, जो एक दुष्ट को दंड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त हो इसलिये वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय यह तो ठीक है कि सब प्राणियों के दुःखनाश और सुख की प्राप्ति का उपाय करना दया कहाती है। केवल जल छान के पीना, क्षुद्र जन्तुओं को बचाना ही दया नहा कहाती किन्तु इस प्रकार की दया जैनियों के कथनमात्र ही है क्योंकि वैसा वर्त्तते नहीं। क्या मनुष्यादि पर चाहें किसी मत में क्यों न हो दया करके उसको अन्नपानादि से सत्कार करना और दूसरे मत के विद्वानों का मान्य और सेवा करना दया नहीं है ? जो इनकी सच्ची दया होती तो "विवेकसार" के पृष्ठ २२१ में देखो ! क्या लिखा है "एक परमती की स्तुति" अर्थात् उनका गुणकीर्त्तन कभी न करना। दूसरा "उनको नमस्कार" अर्थात् वन्दना भी नं करनी। तीसरा "आलापन" अर्थात् अन्य मत वालों के साथ थोड़ा बोलना। चौथा "संलपन" अर्थात् उनसे वार २ न बोलना। पांचवां "उनको अन्न वस्त्रादि दान" अर्थात् उनको खाने पीने की वस्तु भी न देनी। छठा " गन्धपुष्पादि

दान" अन्य मत की प्रतिमा पूजन के लिये गंधपुष्पादि भी न देना। ये छः यतना अर्थात् इन छः प्रकार के कर्मों को जैन लोग कभी न करें। (समीक्षक) अब बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि इन जैनी लोगों की अन्य मत वाले मनुष्यों पर कितनी अदया, कुदृष्टि और द्वेष है। जब अन्य मतस्थ मनुष्यों पर इतनी अदया है तो फिर जैनियों को दयाहीन कहना संभव है क्योंकि अपने घरवालों ही की सेवा करना विशेष धर्म नहीं कहाता उनके मत के मनुष्य उनके घर के समान हैं इसलिये उनकी सेवा करते अन्य मतस्थों की नहीं फिर उनको दयावान् कौन बुद्धिमान् कह सकता है?। विवेक० पृष्ठ १०८ में लिखा है कि मथुरा के राजा के नमुची नामक दीवान को जैनमतियों ने अपना विरोधी समझ कर मारडाला और आलोयणा (प्रायश्चित्त) करके शुद्ध होगये। क्या यह भी दया और क्षमा का नाशक कर्म नहीं है? जब अन्य मत वालों पर प्राण लेने पर्य्यन्त वैरबुद्धि रखते हैं तो इनको दयालु के स्थान पर हिंसक कहना ही सार्थक है। अब सम्यक्त्व दर्शनादि के लक्षण आर्हत प्रवचनसंग्रह परमागमनसार में कथित है सम्यक् श्रद्धान, सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चारित्र ये चार मोक्षमार्ग के साधन हैं इनकी व्याख्या योगदेव ने की है जिस रूप से जीवादि द्रव्य अवस्थित हैं उसी रूप से जिनप्रतिपादित ग्रन्थानुसार विपरीत अभिनिवेषादिरहित जो श्रद्धा अर्थात् जिनमत में प्रीति है सो सम्यक् श्रद्धान और सम्यक् दर्शन है॥

रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु सम्यक् श्रद्धानमुच्यते।

जिनोक्त तत्त्वों में सम्यक् श्रद्धा करनी चाहिये अर्थात् अन्यत्र कहीं नहीं॥

यथावस्थिततत्त्वानां संक्षेपाद्विस्तरेण वा।
यो बोधस्तमत्राहुः सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः॥

जिस प्रकार के जीवादि तत्त्व हैं उनका संक्षेप वा विस्तार जे जो बोध होता है उसी को सम्यग्-ज्ञान बुद्धिमान् कहते हैं॥

सर्वथाऽनवद्ययोगानां त्यागश्चारित्रमुच्यते।

कीर्त्तितं तदहिंसादि व्रतभेदेन पञ्चधा ॥
अहिंसासूनृतास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहाः ।

सब प्रकार से निन्दनीय अन्य मतसम्बन्ध का त्याग चारित्र कहाता है और अहिंसादि भेद से पांच प्रकार का व्रत है । एक (अहिंसा) किसी प्राणीमात्र को न मारना । दूसरा (सूनृता) प्रिय वाणी बोलना । तीसरा (अस्तेय) चोरी न करना । चौथा (ब्रह्मचर्य्य) उपस्थ इन्द्रिय का संयमन । और पांचवां (अपरिग्रह) सब वस्तुओं का त्याग करना । इनमें बहुतसी बातें अच्छी हैं अर्थात् अहिंसा और चोरी आदि निन्दनीय कर्मों का त्याग अच्छी बात है परन्तु ये सब अन्य मत की निन्दा करने आदि दोषों से सब अच्छी बातें भी दोषयुक्त होगई हैं जैसे प्रथम सूत्र में लिखी हैं अन्य हरिहरादि का धर्म संसार में उद्धार करनेवाला नहीं । क्या यह छोटी निन्दा है कि जिनके ग्रन्थ देखने से ही पूर्ण विद्या और धार्मिकता पाई जाती है उसको बुरा कहना और अपने महा असंभव जैसा कि पूर्व लिख आये वैसी बातों के कहनेवाले अपने तीर्थंकरों की स्तुति करना केवल हठ की बातें हैं भला जो जैनी कुछ चारित्र न कर सके, न पढ़ सके, न दान देने का सामर्थ्य हो तो भी जैनमत सच्चा है क्या इतना कहने ही से वह उत्तम होजाय ? और अन्य मत वाले श्रेष्ठ भी अश्रेष्ठ होजायें ? ऐसे कथन करनेवाले मनुष्यों को भ्रान्त और बालबुद्धि न कहा जाय तो क्या कहें ? इसमें यही विदित होता है कि इनके आचार्य स्वार्थी थे पूर्ण विद्वान् नहीं क्योंकि जो सबकी निन्दा न करते तो ऐसी झूठी बातों में कोई न फँसता न उनका प्रयोजन सिद्ध होता । देखो यह तो सिद्ध होता है कि जैनियों का मत डुबानेवाला और वेदमत सब का उद्धार करनेहारा हरिहरादि देव सुदेव और इनके ऋषभदेवादि सब कुदेव दूसरे लोग कहें तो क्या वैसा ही उनको बुरा न लगेगा और भी इनके आचार्य और माननेवालों की भूल देखलोः—

मूल-जिणवर आणा भंगं उमग्ग उस्सुत्तले सदेसणउ ।
आणा भंगे पावंता जिणमय दुक्करं धम्मम् ॥
प्रकर० भाग २ । षष्ठी श० ६ । सू० ११ ॥

उन्मार्ग उत्सूत्र के लेश दिखाने से जो जिनवर अर्थात् वीतराग तीर्थंकरों की आज्ञा का भङ्ग होता है वह दुःख का हेतु पाप है जिनेश्वर के कहे सम्यक्त्वादि धर्म ग्रहण करना बड़ा कठिन है इसलिये जिस प्रकार जिन आज्ञा का भङ्ग न हो वैसा करना चाहिये ॥ (समीक्षक) जो अपने ही मुखसे अपनी प्रशंसा और अपने ही धर्म को बड़ा कहना और दूसरे की निन्दा करनी है वह मूर्खता की बात है क्योंकि प्रशंसा उसी की ठीक है कि जिसकी दूसरे विद्वान् करें अपने मुख से अपनी प्रशंसा तो चोर भी करते हैं तो क्या वे प्रशंसनीय हो सकते हैं ? इसी प्रकार की इनकी बातें हैं ॥

मूल–बहुगुणविज्झा निलयो उस्सुत्तभासी तहा विमुत्तव्वो ।
जहवरमणिजुत्तो विहुविग्घकरो विसहरो लोए ॥
प्रकर० भा० २ । षष्ठी० सू० १८ ॥

जैसे विषधर सर्प में मणि त्यागने योग्य है वैसे जो जैनमत में नहीं वह चाहे कितना बड़ा धार्म्मिक पण्डित हो उसको त्याग देना ही जैनियों को उचित है ॥ (समीक्षक) देखिये ! कितनी भूल की बात है जो इनके चेले और आचार्य्य विद्वान् होते तो विद्वानों से प्रेम करते जब इनके तीर्थंकर सहित अविद्वान् हैं तो विद्वानों का मान्य क्यों करें ? क्या सुवर्ण को मल वा धूल में पड़े को कोई त्यागता है इससे यह सिद्ध हुआ कि विना जैनियों के वैसे दूसरे कौन पक्षपाती हठी दुराग्रही विद्याहीन होंगे ? ॥

मूल–अइ सयपा वियपा वाधम्मि अपव्वे सुतो विपावरया ।
न चलन्ति सुद्धधमार धन्ना किविपावपव्वेसु ॥
प्रकर० भा० २ । षष्ठी० सू० २६ ॥

अन्य दर्शनी कुलिंगी अर्थात् जैनमत विरोधी उनका दर्शन भी जैनी लोग न करें ॥ (समीक्षक) बुद्धिमान् लोग विचार लेंगे कि यह कितनी पामरपन की बात है, सच तो यह है कि जिसका मत सत्य है उसको किसी से डर नहीं होता इनके आचार्य्य जानते थे कि हमारा मत पोलपाल है जो दूसरे को सुनावेंगे तो खण्डन हो जायगा इसलिये सब की निन्दा करो और मूर्ख जनों को फँसाओ ॥

मूल-नामं पितरस्सञ्च सुहं जेणनिदिठाइ मिच्छपव्वाइ।
जेसिं अणुसंगा उधम्मीणविहोइ पावमई ॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० ६। सू० २७॥

जो जैनधर्म से विरुद्ध धर्म हैं वे सब मनुष्यों को पापी करनेवाले हैं इसलिये किसी के अन्य धर्म को न मानकर जैनधर्म ही को मानना श्रेष्ठ है॥ (समीक्षक) इससे यह सिद्ध होता है कि सबसे वैर, विरोध, निन्दा, ईर्ष्या आदि दुष्ट कर्मरूप सागर में डुबानेवाला जैनमार्ग है, जैसे जैनी लोग सबके निन्दक हैं वैसा कोई भी दूसरे मत वाला महानिन्दक और अधर्मी न होगा। क्या एक ओर से सबकी निन्दा और अपनी अति प्रशंसा करना शठ मनुष्यों की बातें नहीं हैं ? विवेकी लोग तो चाहें किसी के मत के हों उन में अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहते हैं॥

मूल-हाहा गुरुअअ कज्झं सामीनहु अच्छिक्क्वस्स पुकरिमो।
कह जिण वयण कह सुगुरु सावया कहइय अकज्झं॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० ३५॥

सर्वज्ञभाषित जिन वचन, जैन के सुगुरु और जैनधर्म कहां और उनसे विरुद्ध कुगुरु अन्य मार्गों के उपदेशक कहां अर्थात् हमारे सुगुरु सुदेव सुधर्म और अन्य के कुदेव कुगुरु कुधर्म हैं॥ (समीक्षक) यह बात बेर बेचनेहारी कूंजड़ी के समान है जैसे वह अपने खट्टे बेरों को मीठा और दूसरी के मीठों को खट्टा और निकम्मे बतलाती है, इसी प्रकार की जैनियों की बातें हैं ये लोग अपने मत से भिन्न मत वालों की सेवा में बड़ा अकार्य्य अर्थात् पाप गिनते हैं॥

मूल-सप्पो इक्कं मरणं कुगुरु अणंता इदेइ मरणाइ। तोवरिसप्पं गहियुं मा कुगुरुसेवणं भद्दम्॥ प्रक० भा० २। सू० ३७॥

जैसे प्रथम लिख आये कि सर्प में मणि का भी त्याग करना उचित है वैसे अन्य मार्गियों में श्रेष्ठ धार्मिक पुरुषों का भी त्याग कर देना, अब उससे भी

विशेष निन्दा अन्य मत वालों की करते हैं जैनमत से भिन्न सब कुगुरु अर्थात् वे सर्प्प से भी बुरे हैं उनका दर्शन, सेवा, संग कभी न करना चाहिये क्योंकि सर्प्प के संग से एक वार मरण होता है और अन्यमार्गी कुगुरुओं के संग से अनेक वार जन्म मरण में गिरना पड़ता है इसलिये हे भद्र ! अन्यमार्गियों के गुरुओं के पास भी मत खड़ा रह क्योंकि जो तू अन्यमार्गियों की कुछ भी सेवा करेगा तो दुःख में पड़ेगा ॥ (समीक्षक) देखिये जैनियों के समान कठोर, भ्रान्त, द्वेषी, निन्दक, भूला हुआ दूसरे मत वाले कोई भी न होंगे इन्होंने मन से यह विचारा है कि जो हम अन्य की निन्दा और अपनी प्रशंसा न करेंगे तो हमारी सेवा और प्रतिष्ठा न होगी परन्तु यह बात उनके दौर्भाग्य की है क्योंकि जबतक उत्तम विद्वानों का संग सेवा न करेंगे तबतक इनको यथार्थ ज्ञान और सत्य धर्म की प्राप्ति कभी न होगी इसलिये जैनियों को उचित है कि अपनी विद्याविरुद्ध मिथ्या बातें छोड़ वेदोक्त सत्य बातों का ग्रहण करें तो उनके लिये बड़े कल्याण की बात है ॥

मूल—किं भणिमो किं करिमो ताणहयासाण धिठदुठाणं ।
जे दंसि ऊण लिंगं खिवंति नरयम्मि मुद्धजणं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ४० ॥

जिसकी कल्याण की आशा नष्ट होगई, धीठ, बुरे काम करने में अतिचतुर दुष्ट दोषवाले से क्या कहना ? और क्या करना क्योंकि जो उसका उपकार करो तो उलटा उसका नाश करे जैसे कोई दया करके अन्धे सिंह की आंख खोलने को जाय तो वह उसी को खालेवे वैसे ही कुगुरु अर्थात् अन्यमार्गियों का उपकार करना अपना नाश कर लेना है अर्थात् उनसे सदा अलग ही रहना ॥ (समीक्षक) जैसे जैन लोग विचारते हैं वैसे दूसरे मत वाले भी विचारें तो जैनियों की कितनी दुर्दशा हो ? और उनका कोई किसी प्रकार का उपकार न करे तो उनके वहुतसे काम नष्ट होकर कितना दुःख प्राप्त हो ? वैसा अन्य के लिये जैनी क्यों नहीं विचारते ? ॥

मूल-जहजहतुट्टइ धम्मो जहजह दुठाणहोय अइउदउ ।
समदिठिजियाख तह तह उल्लसइस मत्तं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ४२ ॥

जैसे २ दर्शनभ्रष्ट निह्नव, पाच्छत्ता, उसन्ना तथा कुसीलियादिक और अन्य दर्शनी, त्रिदण्डी, परिव्राजक तथा विप्रादिक दुष्ट लोगों का अतिशय बल सत्कार पूजादिक होवे वैसे २ सम्यगदृष्टि जीवों का सम्यक्त्व विशेष प्रकाशित होवे यह बड़ा आश्चर्य है ॥ (समीक्षक) अब देखो ! क्या इन जैनों से अधिक ईर्ष्या, द्वेष, वैरबुद्धियुक्त दूसरा कोई होगा ? हां दूसरे मत में भी ईर्ष्या, द्वेष है परन्तु जितनी इन जैनियों में है उतनी किसी में नहीं और द्वेष ही पाप का मूल है इसलिये जैनियों में पापाचार क्यों न हो ? ॥

मूल-संगो विजाण अहिउते सिंधम्माइ जेपकुब्बन्ति ।
मुतूण चोरसंगं करन्ति ते चोरियं पावा ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ७५ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन इतना ही है कि जैसे मूढ़जन चोर के संग से नासिकाछेदादि दण्ड से भय नहीं करते वैसे जैनमत से भिन्न चोर धर्मों में स्थित जन अपने अकल्याण से भय नहीं करते ॥ (समीक्षक) जो जैसा मनुष्य होता है वह प्रायः अपने ही सदृश दूसरों को समझता है क्या यह बात सत्य हो सकती है कि अन्य सब चोरमत और जैन का साहूकार मत है ? जबतक मनुष्य में अति अज्ञान और कुसंग से भ्रष्ट बुद्धि होती है तबतक दूसरों के साथ अति ईर्ष्या द्वेषादि दुष्टता नहीं छोड़ता जैसा जैनमत पराया द्वेषी है ऐसा अन्य कोई नहीं ॥

मूल-जच्छ पसुमहिसलरका पव्वंहोमन्ति पावन वमीए ।
पूअन्तितंपि सड्ढाहा ही लावी परायस्सं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ७६ ॥

पूर्व सूत्र में जो मिथ्यात्वी अर्थात् जैनमार्ग भिन्न सब मिथ्यात्वी और आप सम्यक्त्वी अर्थात् अन्य सब पापी, जैन लोग सब पुण्यात्मा इसलिये जो

कोई मिथ्यात्वी के धर्म का स्थापन करे वह पापी है ॥ (समीक्षक) जैसे अन्य के स्थानों में चामुण्डा, कालिका, ज्वाला, प्रमुख के आगे पापनौमी अर्थात् दुर्गानौमी तिथि आदि सब बुरे हैं वैसे क्या तुम्हारे पजूसण आदि व्रत बुरे नहीं हैं जिनसे महा कष्ट होता है ? यहां वाममार्गियों की लीला का खण्डन तो ठीक है परन्तु जो शासनदेवी और मरुतदेवी आदि को मानते हैं उनका भी खण्डन करते तो अच्छा था, जो कहें कि हमारी देवी हिंसक नहीं तो इनका कहना मिथ्या है क्योंकि शासनदेवी ने एक पुरुष और दूसरा बकरे की आंखें निकाल ली थीं पुनः वह राक्षसी और दुर्गा कालिका की सगी बहिन क्यों नहीं ? और अपने पच्चखाण आदि व्रतों को अतिश्रेष्ठ और नवमी आदि को दुष्ट कहना मूढ़ता की बात है, क्योंकि दूसरे के उपवासों की तो निन्दा और अपने उपवासों की स्तुति करना मूर्खता की बात है, हां जो सत्यभाषणादि व्रत धारण करने हैं वे तो सब के लिये उत्तम हैं जैनियों और अन्य किसी का उपवास सत्य नहीं है ॥

मूल-वेसाणवंदियाणय माहणडुं बाणजर कसिरकाणं ।
भत्ता भर कठाणं वियाणं जन्ति दूरेणं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सूत्र ८२ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो वेश्या, चारण, भाटादि लोगों, ब्राह्मण, यक्ष, गणेशादिक मिथ्यादृष्टि देवी आदि देवताओं का भक्त है जो इनके माननेवाले हैं वे सब डुबाने और डूबनेवाले हैं क्योंकि उन्हीं के पास वे सब वस्तुएं मानते हैं और वीतराग पुरुषों से दूर रहते हैं ॥ (समीक्षक) अन्य मार्गियों के देवताओं को झूठ कहना और अपने देवताओं को सच कहना केवल पक्षपात की बात है और अन्य वाममार्गियों की देवी आदि का निषेध करते हैं परन्तु जो श्राद्धदिनकृत्य के पृष्ठ ४६ में लिखा है कि शासनदेवी ने रात्रि में भोजन करने के कारण एक पुरुष के थपेड़ा मारा उसकी आंख निकाल डाली उसके बदले बकरे की आंख निकाल कर उस मनुष्य के लगा दी इस देवी को हिंसक क्यों नहीं मानते ? रत्नसागर भाग १ पृ० ६७ में देखो क्या

लिखा है मरुदेवी पथिकों को पत्थर की मूर्ति होकर सहाय करती थी इसको भी वैसी क्यों नहीं मानते ? ॥

मूल—किंसोपि जणणि जाओ जाणो जणणी इकिं अगोविड्ढि ।
जइमिच्छरओ जाओ गुणे सुतमच्छरं वहइ ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सूत्र ८१ ॥

जो जैनमतविरोधी मिथ्यात्वी अर्थात् मिथ्या धर्मवाले हैं वे क्यों जन्मे ? जो जन्मे तो बढ़े क्यों ? अर्थात् शीघ्र ही नष्ट होजाते तो अच्छा होता ॥ (समीक्षक) देखो ! इनके वीतरागभाषित दया धर्म दूसरे मत वालों का जीवन भी नहीं चाहते केवल इनका दया धर्म कथनमात्र है और जो है सो क्षुद्र जीवों और पशुओं के लिये है जैनभिन्न मनुष्यों के लिये नहीं ॥

मूल—शुद्धे मग्गे जाया सुहेण गच्छन्ति सुद्धिमग्गमि ।
जे पुणअमग्गजाया मग्गे गच्छन्ति ते चुप्पं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ८३ ॥

इसका मुख्य प्रयोजन यह है कि जो जैनकुल में जन्म लेकर मुक्ति को जाय तो कुछ आश्चर्य्य नहीं परन्तु जैनभिन्न कुल में जन्मे हुए मिथ्यात्वी अन्यमार्गी मुक्ति को प्राप्त हों इसमें बड़ा आश्चर्य है इसका फलितार्थ यह है कि जैनमत वाले ही मुक्ति को जाते हैं अन्य कोई नहीं जो जैनमत का ग्रहण नहीं करते वे नरकगामी हैं ॥ (समीक्षक) क्या जैनमत में कोई दुष्ट वा नरकगामी नहीं होता ? सब ही मुक्ति में जाते हैं ? और अन्य कोई नहीं ? क्या यह उन्मत्तपन की बात नहीं है ? विना भोले मनुष्यों के ऐसी बात कौन मान सकता है ? ॥

मूल—तिच्छराणं पूआसंमत्तगुणाणकारिणी भणिया ।
सावियमिच्छत्तयरी जिण समये देसिया पूआ ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ९० ॥

एक जिनमूर्त्तियों की पूजा सार और इससे भिन्नमार्गियों की मूर्त्तिपूजा असार है जो जिनमार्ग की आज्ञा पालता है वह तत्त्वज्ञानी जो नहीं पालता

है वह तत्त्वज्ञानी नहीं ॥ (समीक्षक) वाहजी ! क्या कहना !! क्या तुम्हारी मूर्त्ति पाषाणादि जड़ पदार्थों की नहीं जैसी कि वैष्णवादिकों की हैं ? जैसी तुम्हारी मूर्त्तिपूजा मिथ्या है वैसी ही मूर्तिपूजा वैष्णवादिकों की भी मिथ्या है जो तुम तत्त्वज्ञानी वनते हो और अन्यों को अतत्त्वज्ञानी बनाते हो इससे विदित होता है कि तुम्हारे मत में तत्त्वज्ञान नहीं है ॥

मूल–जिण आणा एधम्मो आणा रहि आण फुडं अहमुत्ति ।
इयमुणि ऊण यतत्तंजिण आणाए कुणहु धम्मं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ९२ ॥

जो जिनदेव की आज्ञा दया क्षमादि रूप धर्म है उससे अन्य सब आज्ञा अधर्म हैं ॥ (समीक्षक) यह कितने बड़े अन्याय की बात है क्या जैनमत से भिन्न कोई भी पुरुष सत्यवादी धर्मात्मा नहीं है ? क्या उस धार्मिक जन को न मानना चाहिये ? हां जो जैनमतस्थ मनुष्यों के मुख जिह्वा चमड़े की न होती और अन्य की चमड़े की होती तो यह बात घट सकती थी इससे अपने ही मत के ग्रन्थ वचन साधु आदि की ऐसी बड़ाई की है कि जानो भाटों के बड़े भाई ही जैन लोग बन रहे हैं ॥

मूल–वन्नेमिनारया उविजेसिन्दुरकाइ सम्भरंताणम् ।
भव्वाण जणइ हरिहररिद्धि समिद्धी विउद्धोसं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० ९५ ॥

इसका मुख्य तात्पर्य यह है कि जो हरिहरादि देवों की विभूति है वह नरक का हेतु है उसको देखके जैनियों के रोमाञ्च खड़े होजाते हैं जैसे राजाज्ञा भंग करने से मनुष्य मरण तक दुःख पाता है वैसे जिनेन्द्र आज्ञा भंग से क्यों न जन्म मरण दुःख पावेगा ? ॥ (समीक्षक) देखिये ! जैनियों के आचार्य्य आदि की मानसी वृत्ति अर्थात् ऊपर के कपट और ढोंग की लीला अब तो इनके भीतर की भी खुलगई हरिहरादि और उनके उपासकों के ऐश्वर्य्य और बढ़ती को देख भी नहीं सकते उनके रोमाञ्च इसलिये खड़े होते

हैं कि दूसरे की बढ़ती क्यों हुई। बहुधा वैसे चाहते होंगे कि इनका सब ऐश्वर्य्य हमको मिल जाय और ये दरिद्र होजायं तो अच्छा और राजाज्ञा का दृष्टान्त इसलिये देते हैं कि ये जैन लोग राज्य के बड़े खुशामदी झूठे और डरपुकने हैं क्या झूठी बात भी राजा की मान लेनी चाहिये जो ईर्ष्या द्वेषी हो तो जैनियों से बढ़ के दूसरा कोई भी न होगा।

मूल—जो देइशुद्धधम्मं सो परमप्पा जयम्मि नहु अन्नो।
किं कप्पदुद्दुम्म सरिसो इयरतरू होइकइयावि॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० १०१॥

वे मूर्ख लोग हैं जो जैनधर्म से विरुद्ध हैं और जो जिनेन्द्रभाषित धर्मोपदेष्टा साधु वा गृहस्थ अथवा ग्रन्थकर्त्ता हैं वे तीर्थंकरों के तुल्य हैं उनके तुल्य कोई भी नहीं।। (समीक्षक) क्यों न हो! जो जैनी लोग छोकर-बुद्धि न होते तो ऐसी बात क्यों मान बैठते? जैसे वेश्या विना अपने के दूसरी की स्तुति नहीं करती वैसे ही यह बात भी दीखती है॥

मूल—जे अमुणि अगुण दोषाते कह अवुआणहुन्तिम झच्छा।
अहते विहुम झच्छाता विसअमि आण तुल्लत्तं॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० १०२॥

जिनेन्द्र देव तदुक्त सिद्धान्त और जिनमत के उपदेष्टाओं का त्याग करना जैनियों को उचित नहीं है॥ (समीक्षक) यह जैनियों का हठ पक्षपात और अविद्या का फल नहीं तो क्या है? किन्तु जैनियों की थोड़ीसी बात छोड़ के अन्य सब त्यक्तव्य हैं। जिसकी कुछ थोड़ीसी भी बुद्धि होगी वह जैनियों के देव, सिद्धान्तग्रन्थ और उपदेष्टाओं को देखे, सुने, विचारे तो उसी समय निस्संदेह छोड़ देगा॥

मूल—वयणे विसुगुरुजिणवल्लहस्सके सिंन उल्लस इसम्मं।
अहकहदिण मणितेयं उलुआणंहरइ अन्धत्तं।
प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० १०८॥

जो जिनवचन के अनुकूल चलते हैं वे पूजनीय और जो विरुद्ध चलते हैं वे अपूज्य हैं जैनगुरुओं को मानना अर्थात् अन्यमार्गियों को न मानना ॥ (समीक्षक) भला जो जैन लोग अन्य अज्ञानियों को पशुवत् चेले करके न बांधते तो उनके जाल में से छूटकर अपनी मुक्ति के साधन कर जन्म सफल कर लेते भला जो कोई तुमको कुमार्गी, कुगुरु, मिथ्यात्वी और कूपदेष्टा कहे तो तुमको कितना दुःख लगे ? वैसे ही जो तुम दूसरे को दुःखदायक हो इसी-लिये तुम्हारे मत में असार बातें बहुतसी भरी हैं ॥

मूल०—तिहुअण जणं मरंतं दठूण निअन्तिजेन अप्पाणं ।
विरमंतिन पावा उधिद्धी धिठत्तणं ताणम् ॥
प्रक० भा० २ । षष्टी० सू० १०६ ॥

जो मृत्युपर्यन्त दुःख हो तो भी कृषि व्यापारादि कर्म जैनी लोग न करें क्योंकि ये कर्म नरक में लेजानेवाले हैं ॥ (समीक्षक) अब कोई जैनियों से पूछे कि तुम व्यापारादि कर्म क्यों करते हो ? इन कर्मों को क्यों नहीं छोड़ देते ? और जो छोड़ देओ तो तुम्हारे शरीर का पालन पोषण भी न होसके और जो तुम्हारे कहने से सब लोग छोड़ दें तो तुम क्या वस्तु खाके जीओगे ? ऐसा अत्याचार का उपदेश करना सर्वथा व्यर्थ है क्या करें विचारे विद्या सत्संग के विना जो मन में आया सो बक दिया ॥

मूल—तइया हमाण अहमा कारण रहिया अनाण गव्वेण ।
जेजंपन्ति उशुत्तं तेसिंदिद्धिछपाम्मिचं ॥
प्रक० भा० २ । षष्टी० सू० १२१ ॥

जो जैनागम से विरुद्ध शास्त्रों के माननेवाले हैं वे अधमाऽधम हैं चाहें कोई प्रयोजन भी सिद्ध होता हो तो भी जैनमत से विरुद्ध न बोले न माने चाहें कोई प्रयोजन सिद्ध होता है तो भी अन्य मत का त्याग करदे । (समीक्षक) तुम्हारे मूलपुरुषों से ले के आजतक जितने होगये और होंगे उन्होंने विना दूसरे मत को गालिप्रदान के अन्य कुछ भी दूसरी बात न की और न करेंगे

भला जहां २ जैनी लोग अपना प्रयोजन सिद्ध होता देखते हैं वहां चेलों के भी चेले बन जाते हैं तो ऐसी मिथ्या लम्बी चौड़ी बातों के हांकने में तनिक भी लज्जा नहीं आती यह बड़े शोक की बात है ॥

मूल-जम्बीर जिणस्सजिओ मिरई उस्सुत्तले सदेसणओ ।
सागर कोड़ा कोड़िंहिं मइ अइ भी भवरणे ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १२२ ॥

जो कोई ऐसा कहे कि जैनसाधुओं में धर्म है हमारे और अन्य में भी धर्म है तो वह मनुष्य क्रोड़ान्क्रोड़ वर्ष तक नरक में रहकर फिर भी नीच जन्म पाता है ॥ (समीक्षक) वाहरे ! वाह !! विद्या के शत्रुओ तुमने यही विचारा होगा कि हमारे मिथ्या वचनों का कोई खण्डन न करे इसीलिये यह भयंकर वचन लिखा है सो असम्भव है अब कहांतक तुमको समझावें तुमने तो झूठ निन्दा और अन्य मतों से वैर विरोध करने पर ही कटिबद्ध होकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना मोहनभोग समान समझ लिया है ॥

मूल-दूरे करणं दूरम्मि साहूणं तहयभावणा दूरे ।
जिणधम्म सद्दहाणं पितिर कदुरकाइनिठवइ ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १२७ ॥

जिस मनुष्य से जैनधर्म का कुछ भी अनुष्ठान न होसके तो भी जो जैन-धर्म सच्चा है अन्य कोई नहीं इतनी श्रद्धामात्र ही से दुःख से तर जाता है ॥ (समीक्षक) भला इससे अधिक मूर्खों को अपने मतजाल में फँसाने की दूसरी कौनसी बात होगी ? क्योंकि कुछ कर्म करना न पड़े और मुक्ति हो ही जाय ऐसा भूंदू मत कौनसा होगा ? ॥

मूल-कइया होही दिवसो जइया सुगुरुण पायमूलम्मि ।
उस्सुच सविसलवर हिलेओनिसुणे सुजिणधम्मं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १२८ ॥

जो मनुष्य हूं तो जिनागम अर्थात् जैनों के शास्त्रों को सुनूंगा उत्सूत्र अर्थात् अन्य मत के ग्रन्थों को कभी न सुनूंगा इतनी इच्छा करे वह इतनी इच्छामात्र ही से दुःखसागर से तरजाता है ॥ (समीक्षक) यह भी बात भोले मनुष्यों को फंसाने के लिये है क्योंकि इस पूर्वोक्त इच्छा से यहां के दुःखसागर से भी नहीं तरता और पूर्वजन्म के भी संचित पापों के दुःखरूपी फल भोगे विना नहीं छूट सकता। जो ऐसी २ झूठ अर्थात् विद्याविरुद्ध बात न लिखते तो इनके अविद्यारूप ग्रन्थों को वेदादि शास्त्र देख सुन सत्यासत्य जानकर इनके पोकल ग्रन्थों को छोड़ देते परन्तु ऐसा जकड़ कर इन अविद्वानों को बांधा है कि इस जाल से कोई एक बुद्धिमान् सत्संगी चाहे छूट सके तो सम्भव है परन्तु अन्य जड़बुद्धियों का छूटना तो अतिकठिन है ॥

मूल-ब्रह्मजेणं हिंभणियं सुयववहारं विसोहियंतस्स ।
जायइ विसुद्ध बोही जिणआणा राह गत्ताओ ॥
प्रक० भा० २। षष्ठी० सू० १३८ ॥

जो जिनाचार्यों ने कहे सूत्र निरुक्ति वृत्ति भाष्यचूर्णी मानते हैं वे ही शुभ व्यवहार और दुःसह व्यवहार के करने से चारित्रयुक्त होकर सुखों को प्राप्त होते हैं अन्य मत के ग्रन्थ देखने से नहीं ॥ (समीक्षक) क्या अत्यन्त भूखे मरने आदि कष्ट सहने को चारित्र कहते हैं जो भूखा प्यासा मरना आदि ही चारित्र है तो बहुतसे मनुष्य अकाल वा जिनको अन्नादि नहीं मिलते भूखे मरते हैं वे शुद्ध होकर शुभ फलों को प्राप्त होने चाहियें सो न ये शुद्ध होवें और न तुम, किन्तु पित्तादि के प्रकोप से रोगी होकर सुख के बदले दुःख को प्राप्त होते हैं धर्म तो न्यायाचरण, ब्रह्मचर्य्य, सत्यभाषणादि है और असत्य-भाषण अन्यायाचरणादि पाप है और सबसे प्रीतिपूर्वक परोपकारार्थ वर्त्तना शुभ चरित्र कहाता है जैनमतस्थों का भूखा प्यासा रहना आदि धर्म नहीं इन सूत्रादि को मानने से थोड़ासा सत्य और अधिक झूठ को प्राप्त होकर दुःखसागर में डूबते हैं ॥

मूल—जइजाणसि जिणनाहो लोयाया राविपरकरभूओ ।
तातंतं मन्नं तो कहमन्नसि लोअ आयारं ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १४८ ॥

जो उत्तम प्रारब्धवान् मनुष्य होते हैं वे ही जिनधर्म का ग्रहण करते हैं अर्थात् जो जिनधर्म का ग्रहण नहीं करते उनका प्रारब्ध नष्ट है ॥ (समीक्षक) क्या यह बात भूल की और झूठ नहीं है ? क्या अन्य मत में श्रेष्ठ प्रारब्धी और जैनमत में नष्ट प्रारब्धी कोई भी नहीं है ? और जो यह कहा कि सधर्मी अर्थात् जैनधर्मवाले आपस में क्लेश न करें किंतु प्रीतिपूर्वक वर्त्तें इससे यह बात सिद्ध होती है कि दूसरे के साथ कलह करने में बुराई जैन लोग नहीं मानते होंगे यह भी इनकी बात अयुक्त है क्योंकि सज्जन पुरुष सज्जनों के साथ प्रेम और दुष्टों को शिक्षा देकर सुशिक्षित करते हैं और जो यह लिखा कि ब्राह्मण, त्रिदण्डी, परिव्राजकाचार्य अर्थात् संन्यासी और तापसादि अर्थात् वैरागी आदि सब जैनमत के शत्रु हैं । अब देखिये कि सब को शत्रुभाव से देखते और निन्दा करते हैं तो जैनियों की दया और क्षमारूप धर्म कहां रहा क्योंकि जब दूसरे पर द्वेष रखना दया क्षमा का नाश और इसके समान कोई दूसरा हिंसारूप दोष नहीं जैसे द्वेषमूर्त्तियां जैनी लोग हैं वैसे दूसरे थोड़े ही होंगे । ऋषभदेव से लेके महावीरपर्यन्त २४ तीर्थंकरों को रागी द्वेषी मिथ्यात्वी कहें और जैनमत माननेवाले को सन्निपातज्वर से फँसे हुए मानें और उनका धर्म नरक और विष के समान समझें तो जैनियों को कितना बुरा लगेगा ? इसलिये जैनी लोग निन्दा और परमतद्वेषरूप नरक में डूबकर महाक्लेश भोग रहे हैं इस बात को छोड़ दें तो बहुत अच्छा होवे ॥

मूल—एगो अगरू एगो विसाव गोचे इआणि विवहाणि ।
तच्छयजं जिणदव्वं परुप्परन्तं न विच्चन्ति ॥
प्रक० भा० २ । षष्ठी० सू० १५० ॥

सब श्रावकों का देवगुरुधर्म एक है चैत्यवन्दन अर्थात् जिनप्रतिबिम्ब मूर्त्ति-

देवल और जिनद्रव्य की रक्षा और मूर्त्ति की पूजा करना धर्म है ॥ (समीक्षक) अब देखो ! जितना मूर्त्तिपूजा का झगड़ा चला है वह सब जैनियों के घर से और पाखण्डों का मूल भी जैनमत है । श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ १ में मूर्त्तिपूजा के प्रमाणः—

नवकारेण विवोहो ॥ १ ॥ अनुसरणं सावउ ॥ २ ॥ वयाइं इमे ॥ ३ ॥ जोगो ॥ ४ ॥ चिय वन्दणगो ॥ ५ ॥ यच्चरखाणं तु विहि पुच्छम् ॥ ६ ॥

इत्यादि श्रावकों को पहिले द्वार में नवकार का जप कर जाना ॥ १ ॥ दूसरा नवकार जपे पीछे मैं श्रावक हूं स्मरण करना ॥ २ ॥ तीसरे अणुव्रतादिक हमारे कितने हैं ॥ ३ ॥ चौथे द्वारे चार वर्ग में अग्रगामी मोक्ष है उस कारण ज्ञानादिक है सो योग उसका सब अतीचार निर्मल करने से छः आवश्यक कारण सो भी उपचार से योग कहाता है सो योग कहेंगे ॥ ४ ॥ पांचवें चैत्यवन्द अर्थात् मूर्त्ति को नमस्कार द्रव्यभाव पूजा कहेंगे ॥ ५ ॥ छठा प्रत्याख्यान द्वार नवकारसीप्रमुख विधिपूर्वक कहूंगा इत्यादि ॥ ६ ॥ और इसी ग्रन्थ में आगे २ बहुतसी विधि लिखी हैं अर्थात् संध्या के भोजन समय में जिनबिम्ब अर्थात् तीर्थंकरों की मूर्त्ति पूजना और द्वार पूजना और द्वारपूजा में बड़े २ बखेड़े हैं । मन्दिर बनाने के नियम पुराने मन्दिरों को बनवाने और सुधारने से मुक्ति होजाती हैं मन्दिर में इस प्रकार जाकर बैठे बड़े भाव प्रीति से पूजा करे "नमो जिनेन्द्रेभ्यः" इत्यादि मन्त्रों से स्नानादि कराना । और "जलचन्दनपुष्पधूपदीपनैः" इत्यादि से गन्धादि चढ़ावें । रत्नसार भाग के १२ वें पृष्ठ में मूर्त्तिपूजा का फल यह लिखा है कि पुजारी को राजा वा प्रजा कोई भी न रोक सके ॥ (समीक्षक) ये बातें सब कपोलकल्पित हैं क्योंकि बहुत से जैन पुजारियों को राजादि रोकते हैं । रत्नसा० पृष्ठ ३ में लिखा है मूर्त्तिपूजा से रोग पीड़ा और महादोष छूट जाते हैं एक किसी ने ५ कौड़ी का फूल चढ़ाया उसने १८ देश का राज पाया उसका नाम कुमारपाल हुआ था इत्यादि सब बातें झूठी और मूर्खों को लुभाने की हैं क्योंकि अनेक जैनी लोग पूजा करते २ रोगी रहते हैं और एक बीघे का भी राज्य पाषाणादि मूर्त्तिपूजा से नहीं मिलता ! और जो पांच कौड़ी का फूल चढ़ाने से

राज्य मिले तो पांच २ कौड़ी के फूल चढ़ा के सब भूगोल का राज्य क्यों नहीं कर लेते ? और राजदंड क्यों भोगते हैं ? और जो मूर्त्तिपूजा करके भवसागर से तर जाते हो तो ज्ञान सम्यग्दर्शन और चारित्र क्यों करते हो ? रत्नसार भाग पृष्ठ १३ में लिखा है कि गोतम के अंगूठे में अमृत और उसके स्मरण से मनवांछित फल पाता है ॥ (समीक्षक) जो ऐसा हो तो सब जैनी लोग अमर हो जाने चाहियें सो नहीं होते इससे यह इनकी केवल मूर्खों के बहकाने की बात है दूसरे इसमें कुछ भी तत्त्व नहीं इनकी पूजा करने का श्लोक रत्नसार भा० पृष्ठ ५२ में:—

जलचन्दनधूपनैरथ दीपाक्षतकैर्नैवेद्यवस्त्रैः ।
उपचारवरैर्जिनेन्द्रान् रुचिरैरद्य यजामहे ॥

हम जल, चन्दन, चावल, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र और अतिश्रेष्ठ उपचारों से जिनेन्द्र अर्थात् तीर्थंकरों की पूजा करें । इसी से हम कहते हैं कि मूर्त्तिपूजा जैनियों से चली है । (विवेकसार पृष्ठ २१) जिनमन्दिर में मोह नहीं आता और भवसागर के पार उतारने वाला है । (विवेकसार पृष्ठ ५१ से ५२) मूर्त्तिपूजा से मुक्ति होती है और जिनमन्दिर में जाने से सद्गुण आते हैं जो जल चन्दनादि से तीर्थंकरों की पूजा करे वह नरक से छूट स्वर्ग को जाय। (विवेकसार पृष्ठ ५५) जिनमन्दिर में ऋषभदेवादि की मूर्त्तियों के पूजने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि होती है । (विवेकसार पृष्ठ ६१) जिन-मूर्त्तियों की पूजा करे तो सब जगत् के क्लेश छूट जायें ॥ (समीक्षक) अब देखो ! इनकी अविद्यायुक्त असंभव बातें जो इस प्रकार से पापादि बुरे कर्म छूट जायें, मोह न आवे, भवसागर से पार उतर जायें, सद्गुण आजायें, नरक को छोड़ स्वर्ग में जायें, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त होंवे और सब क्लेश छूट जायं तो सब जैनी लोग सुखी और सब पदार्थों की सिद्धि को प्राप्त क्यों नहीं होते ? । इसी विवेकसार के ३ पृष्ठ में लिखा है कि जिन्होंने जिनमूर्त्ति का स्थापन किया है उन्होंने अपनी और अपने कुटुम्ब की जीविका खड़ी की है । (विवेकसार पृष्ठ २२५) शिव विष्णु आदि की मूर्त्तियों की पूजा करनी बहुत

बुरी है अर्थात् नरक का साधन है ॥ (समीक्षक) भला जब शिवादि की मूर्त्तियां नरक के साधन हैं तो जैनियों की मूर्त्तियां क्या वैसी नहीं ? जो कहें कि हमारी मूर्त्तियां त्यागी, शान्त और शुभमुद्रायुक्त हैं इसलिये अच्छी और शिवादि की मूर्त्ति वैसी नहीं इसलिये बुरी हैं तो इनसे कहना चाहिये कि तुम्हारी मूर्त्तियां तो लाखों रुपयों के मन्दिर में रहती हैं और चन्दन केशरादि चढ़ता है पुनः त्यागी कैसी ? और शिवादि की मूर्त्तियां तो विना छाया के भी रहती हैं वे त्यागी क्यों नहीं ? और जो शान्त कहो तो जड़ पदार्थ सब निश्चल होने से शान्त हैं सब मतों की मूर्त्तिपूजा व्यर्थ है। (प्रश्न) हमारी मूर्त्तियां वस्त्र आभूषणादि धारण नहीं करतीं इसलिये अच्छी हैं। (उत्तर) सब के सामने नंगी मूर्त्तियों का रहना और रखना पशुवत् लीला है। (प्रश्न) जैसे स्त्री का चित्र या मूर्त्ति देखने से कामोत्पत्ति होती है वैसे साधु और योगियों की मूर्त्तियों को देखने से शुभ गुण प्राप्त होते हैं। (उत्तर) जो पाषाणमूर्त्तियों के देखने से शुभ परिणाम मानते हो तो उसके जड़त्वादि गुण भी तुम्हारे में आजायेंगे। जब जड़बुद्धि होंगे तो सर्वथा नष्ट हो जाओगे दूसरे जो उत्तम विद्वान् हैं उनके संग सेवा से छूटने से मूढ़ता भी अधिक होगी और जो २ दोष ग्यारहवें समुल्लास में लिखे हैं वे सब पाषाणादि मूर्त्तिपूजा करनेवालों को लगते हैं। इसलिये जैसा जैनियों ने मूर्त्तिपूजा में झूठा कोलाहल चलाया है वैसे इनके मन्त्रों मे भी बहुतसी असम्भव बातें लिखी हैं यह इनका मन्त्र है। रत्नसार भाग पृष्ठ १ में:—

नमो अरिहन्ताणं नमो सिद्धाणं नमो आयरियाणं नमो उवज्झायाणं नमो लोए सव्वसाहूणं एसो पञ्च नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो मङ्गलाचरणं च सव्वे सिपढमं हवइ मङ्गलम् ॥ ११ ॥

इस मन्त्र का बड़ा माहात्म्य लिखा है और सब जैनियों का यह गुरुमन्त्र है। इसका ऐसा माहात्म्य धरा है कि तंत्र पुराण भाटों की भी कथा को पराजय कर दिया है, श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ ३:—

नमुक्कार तउपढे ॥ ६ ॥

जउक्कव्वं । मन्ताणमन्तो परमो इमुत्ति धेयाणधेयं परमं इमुत्ति ।
तत्ताणतत्तं परमं पवित्तं संसारसत्ताणदुहाहयाणं ॥ १० ॥

ताणं अन्नन्तु नो अत्थि । जीवाणं भवसायरे ।
बुड्डूं ताणं इमं मुत्तुं । न मुक्कारं सुपोययम् ॥ ११ ॥

कव्वं । अणेगजम्मंतरसं चिआणं । दुहाणं सारीरिअमाणुसाणुसाणं ।
कत्तोय भव्वाणभविज्जनासो न जावपत्तो नवकारमन्तो ॥ १२ ॥

जो यह मंत्र है पवित्र और परममंत्र है वह ध्यान के योग्य में परमध्येय है, तत्त्वों में परमतत्त्व है, दुःखों से पीड़ित संसारी जीवों को नवकार मंत्र ऐसा है कि जैसी समुद्र के पार उतारने की नौका होती है ॥ १० ॥ जो यह नवकार मंत्र है वह नौका के समान है जो इसको छोड़ देते हैं वे भवसागर में डूबते हैं और जो इसका ग्रहण करते हैं वे दुःखों से तर जाते हैं जीवों को दुःखों से पृथक् रखनेवाला, सब पापों का नाशक, मुक्तिकारक इस मंत्र के विना दूसरा कोई नहीं ॥ ११ ॥ अनेक भवान्तर में उत्पन्न हुआ शरीर सम्बन्धी दुःख भव्य जीवों को भवसागर से तारनेवाला यही है, जबतक नवकार मंत्र नहीं पाया तबतक भवसागर से जीव नहीं तर सकता यह अर्थ सूत्र में कहा है और जो अग्निप्रमुख अष्ट महाभयों में सहाय एक नवकार मंत्र को छोड़कर दूसरा कोई नहीं जैसे महारत्न वैदूर्य नामक मणि ग्रहण करने में आवे अथवा शत्रुभय में अमोघ शस्त्र के ग्रहण करने में आवे वैसे श्रुत केवली का ग्रहण करे और सब द्वादशांगा का नवकार मंत्र रहस्य है इस मंत्र का अर्थ यह है। (नमो अरिहन्ताणं) सब तीर्थंकरों को नमस्कार (नमो सिद्धाणं) जैनमत के सब सिद्धों को नमस्कार । (नमो आयरियाणं) जैनमत के सब आचार्य्यों को नमस्कार । (नमो उवज्झायाणं) जैनमत के सब उपाध्यायों को नमस्कार । (नमो लोए सव्व साहूणं) जितने जैनमत के साधु इस लोक में हैं उन सबको नमस्कार है । यद्यपि मन्त्र में जैन पद नहीं है तथापि जैनियों के अनेक ग्रन्थों में विना जैनमत के अन्य किसी को नमस्कार भी न करना लिखा है इसलिये

यही अर्थ ठीक है। (तत्त्वविवेक पृष्ठ १६९) जो मनुष्य लकड़ी पत्थर को देवबुद्धि कर पूजता है वह अच्छे फलों को प्राप्त होता है ॥ (समीक्षक) जो ऐसा हो तो सब कोई दर्शन करके सुखरूप फलों को प्राप्त क्यों नहीं होते ? (रत्नसारभाग पृष्ठ १०) पार्श्वनाथ की मूर्त्ति के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं कल्पभाष्य पृष्ठ ५१ में लिखा है कि सवालाख मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया इत्यादि मूर्त्तिपूजाविषय में इनका बहुतसा लेख है इसी से समझा जाता है कि मूर्त्तिपूजा का मूलकारण जैनमत है। अब इन जैनियों के साधुओं की लीला देखिये (विवेकसार पृष्ठ २२८) एक जैनमत का साधु कोशा वेश्या से भोग करके पश्चात् त्यागी होकर स्वर्गलोक को गया। (विवेकसार पृष्ठ १०) अर्णकमुनि चारित्र से चूककर कई वर्षपर्य्यन्त दत्त सेठ के घर में विषयभोग करके पश्चात् देवलोक को गया श्रीकृष्ण के पुत्र ढंढण मुनि को स्थालिया उठा लेगया पश्चात् देवता हुआ। (विवेकसार पृष्ठ १५६) जैनमत का साधु लिंगधारी अर्थात् वेशधारीमात्र हो तो भी उसका सत्कार श्रावक लोग करें चाहें साधु शुद्धचरित्र हो चाहें अशुद्धचरित्र सब पूजनीय हैं। (विवेकसार पृष्ठ १६८) जैनमत का साधु चरित्रहीन हो तो भी अन्य मत के साधुओं से श्रेष्ठ है। (विवेकसार पृष्ठ १७१) श्रावक लोग जैनमत के साधुओं को चरित्ररहित भ्रष्टाचारी देखें तो भी उनकी सेवा करनी चाहिये। (विवेकसार पृष्ठ २१६) एक चोर ने पांच मूठी लोंच कर चारित्र ग्रहण किया बड़ा कष्ट और पश्चात्ताप किया छठे महीने में केवल ज्ञान पाके सिद्ध होगया॥ (समीक्षक) अब देखिये इनके साधु और गृहस्थों की लीला इनके मत में बहुत कुकर्म करनेवाला साधु भी सद्गति को गया और विवेकसार पृष्ठ १०६ में लिखा है कि श्रीकृष्ण तीसरे नरक में गया। विवेकसार पृ० १४५ में लिखा है कि धन्वन्तरि नरक में गया। विवेकसार पृ० ४८ में जोगी, जंगम, क़ाज़ी, मुल्ला कितने ही अज्ञान से तप कष्ट करके भी कुगति को पाते हैं। रत्नसार भा० पृ० १७१ में लिखा है कि नव वासुदेव अर्थात् त्रिपृष्ठ वासुदेव, द्विपृष्ठ वासुदेव, स्वयंभू वासुदेव, पुरुषोत्तम वासुदेव, सिंहपुरुष वासुदेव, पुरुष पुण्डरीक वासुदेव, दत्तवासुदेव, लक्ष्मण वासुदेव और श्रीकृष्ण वासुदेव ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें,

पन्द्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बाईसवें तीर्थंकरों के समय में नरक को गये और नवप्रतिवासुदेव अर्थात् अश्वग्रीवप्रतिवासुदेव, तारकप्रतिवासुदेव, मोदकप्रतिवासुदेव, मधुप्रतिवासुदेव, निशुम्भप्रतिवासुदेव, बलीप्रतिवासुदेव, प्रहलादप्रतिवासुदेव, रावणप्रतिवासुदेव और जरासिंधुप्रतिवासुदेव ये भी सब नरक को गये। और कल्पभाष्य में लिखा है कि ऋषभदेव से लेके महावीर पर्य्यन्त २४ तीर्थंकर सब मोक्ष को प्राप्त हुए ॥ (समीक्षक) भला कोई बुद्धिमान् पुरुष विचारे कि इनके साधु गृहस्थ और तीर्थंकर जिनमें बहुतसे वेश्यागामी, परस्त्रीगामी, चोर आदि सब जैनमतस्थ स्वर्ग और मुक्ति को गये और श्रीकृष्णादि महाधार्मिक महात्मा सब नरक को गये यह कितनी बड़ी बुरी बात है ? प्रत्युत विचार के देखें तो अच्छे पुरुष को जैनियों का संग करना वा उनको देखना भी बुरा है क्योंकि जो इनका संग करे तो ऐसी ही झूठी २ बातें उसके भी हृदय में स्थित हो जायेंगी क्योंकि इन महाहठी, दुराग्रही मनुष्यों के संग से सिवाय बुराइयों के अन्य कुछ भी पल्ले न पड़ेगा। हां जो जैनियों में उत्तमजन * हैं उन से सत्संगादि करने में भी दोष नहीं। विवेकसार पृष्ठ ५५ में लिखा है कि गङ्गादि तीर्थ और काशी आदि क्षेत्रों के सेवने से कुछ भी परमार्थ सिद्ध नहीं होता और अपने गिरनार, पालीटाणा और आबू आदि तीर्थ क्षेत्र मुक्तिपर्यन्त के देनेवाले हैं ॥ (समीक्षक) यहां विचारना चाहिये कि जैसे शैव वैष्णवादि के तीर्थ और क्षेत्र जल स्थल जड़स्वरूप हैं वैसे जैनियों के भी हैं इनमें से एक की निन्दा और दूसरे की स्तुति करना मूर्खता का काम है ॥

जैनों की मुक्ति का वर्णन ॥

(रत्नसार भा० पृष्ठ २३) महावीर तीर्थंकर गौतमजी से कहते हैं कि ऊर्ध्वलोक में एक सिद्धशिला स्थान है स्वर्गपुरी के ऊपर पैंतालीस लाख योजन लंबी और उतनी ही पोली है तथा ८ योजन मोटी है जैसे मोती का श्वेत हार वा गोदुग्ध है उससे भी उजली है सोने के समान प्रकाशमान और स्फटिक से भी निर्मल है यह सिद्धशिला चौदहवें लोक की शिखा पर है और उस सिद्धशिला

* जो उत्तमजन होगा वह इस असार जैनमत में कभी न रहेगा।

के ऊपर शिवपुर धाम उसमें भी मुक्त पुरुष अधर रहते हैं वहां जन्म मरणादि कोई दोष नहीं और आनन्द करते रहते हैं पुनः जन्ममरण में नहीं आते सब कर्मों से छूट जाते हैं यह जैनियों की मुक्ति है ॥ (समीक्षक) विचारना चाहिये कि जैसे अन्य मत में वैकुण्ठ, कैलास, गोलोक, श्रीपुर आदि पुराणी, चौथे आसमान में ईसाई, सातवें आसमान में मुसलमानों के मत में मुक्ति के स्थान लिखे हैं वैसे ही जैनियों की सिद्धशिला और शिवपुर भी हैं। क्योंकि जिसको जैनी लोग ऊंचा मानते हैं वही नीचे वाले जो कि हमसे भूगोल के नीचे रहते हैं उनकी अपेक्षा में नीचा है ऊंचा नीचा व्यवस्थित पदार्थ नहीं है जो आर्य्यावर्त्तवासी जैनी लोग ऊंचा मानते हैं उसी को अमेरिकावाले नीचा मानते हैं और आर्य्यावर्त्तवासी जिसको नीचा मानते हैं उसी को अमेरिकावाले ऊंचा मानते हैं चाहे वह शिला पैंतालीस लाख से दूनी नव्बेलाख कोश की होती तो भी वे मुक्त बन्धन में हैं क्योंकि उस शिला वा शिवपुर के बाहर निकलने से उनकी मुक्ति छूट जाती होगी। और सदा उसमें रहने की प्रीति और उससे बाहर जाने में अप्रीति भी रहती होगी जहां अटकाव प्रीति और अप्रीति है उसको मुक्ति क्योंकर कह सकते हैं ? मुक्ति तो जैसी नवमें समुल्लास में वर्णन कर आये हैं वैसी मानना ठीक है और यह जैनियों की मुक्ति भी एक प्रकार का बन्धन है ये जैनी भी मुक्ति विषय में भ्रम से फँसे हैं। यह सच है कि विना वेदों के यथार्थ अर्थबोध के मुक्ति के स्वरूप को कभी नहीं जान सकते ॥

अब और थोड़ीसी असम्भव बातें इनकी सुनो। (विवेकसार पृष्ठ ७८) एक करोड़ साठ लाख कलशों से महावीर को जन्मसमय में स्नान कराया। (विवेक० पृष्ठ १३६) दशार्ण राजा महावीर के दर्शन को गया वहां कुछ अभिमान किया उसके निवारण के लिये १६, ७७, ७२, १६००० इतने इन्द्र के स्वरूप और १३, ३७, ०५, ७२, ८०, ००००००० इतनी इन्द्राणी वहां आई थीं देखकर राजा आश्चर्य होगया ॥ (समीक्षक) अब विचारना चाहिये कि इन्द्र और इन्द्राणियों के खड़े रहने के लिये ऐसे २ कितने ही भूगोल चाहियें। श्राद्धदिनकृत्य आत्मनिन्दा भावना पृष्ठ ३१ में लिखा है कि बावड़ी,

कुआ और तालाब न बनवाना चाहिये ॥ (समीक्षक) भला जो सब मनुष्य जैनमत में हो जायें और कुआ, तालाब, बावड़ी आदि कोई भी न बनवावें तो सब लोग जल कहां से पियें ? (प्रश्न) तालाब आदि बनवाने से जीव पड़ते हैं उससे बनवानेवाले को पाप लगता है इसलिये हम जैनी लोग इस काम को नहीं करते । (उत्तर) तुम्हारी बुद्धि नष्ट क्यों होगई ? क्योंकि जैसे क्षुद्र २ जीवों के मरने से पाप गिनते हो तो बड़े २ गाय आदि पशु और मनुष्यादि प्राणियों के जल पीने आदि से महापुण्य होगा उसको क्यों नहीं गिनते ? (तत्त्वविवेक पृष्ठ १९६) इस नगरी में एक नंदमणिकार सेठ ने बावड़ी बनवाई उससे धर्मभ्रष्ट होकर सोलह महारोग हुए, मर के उसी बावड़ी में मैंडुका हुआ, महावीर के दर्शन से उसको जातिस्मरण होगया, महावीर कहते हैं कि मेरा आना सुनकर वह पूर्व जन्म के धर्माचार्य्य जान वन्दना को आने लगा, मार्ग में श्रेणिक के घोड़े की टाप से मरकर शुभध्यान के योग से दर्दुरांक नाम महर्द्धिक देवता हुआ अवधिज्ञान से मुझको यहां आया जान वन्दनापूर्वक ऋद्धि दिखाके गया । (समीक्षक) इत्यादि विद्याविरुद्ध असम्भव मिथ्या बात के कहनेवाले महावीर को सर्वोत्तम मानना महाभ्रान्ति की बात है, श्राद्धदिनकृत्य पृष्ठ ३६ में लिखा है कि मृतकवस्त्र साधु लेलेवें । (समीक्षक) देखिये इनके साधु भी महाब्राह्मण के समान होगये वस्त्र तो साधु लेवें परन्तु मृतक के आभूषण कौन लेवे बहुमूल्य होने से घर में रख लेते होंगे तो आप कौन हुए । (रत्नसार पृष्ठ १०५) भूंजने, कूटने, पीसने, अन्न पकाने आदि में पाप होता है । (समीक्षक) अब देखिये इनकी विद्याहीनता भला ये कर्म न किये जायें तो मनुष्यादि प्राणी कैसे जी सकें ? और जैनी लोग भी पीड़ित होकर मर जायें । (रत्नसार पृष्ठ १०४) बागीचा लगाने से एक लक्ष पाप माली को लगता है । (समीक्षक) जो माली को लक्ष पाप लगता है तो अनेक जीव पत्र, फल, फूल और छाया से आनन्दित होते हैं तो करोड़ों गुणा पुण्य भी होता ही है इस पर कुछ ध्यान भी न दिया यह कितना अन्धेर है । (तत्त्वविवेक पृष्ठ २०२) एक दिन लब्धि साधु भूल से वेश्या के घर में चला गया और धर्म से भिक्षा मांगी वेश्या बोली कि यहां धर्म का काम नहीं किन्तु अर्थ का काम है

तो उस लब्धि साधु ने साढ़े बारह लाख अशर्फी उसके घर में वर्षा दीं। (समीक्षक) इस बात को सत्य विना नष्टबुद्धि पुरुष के कौन मानेगा ?। रत्नसार भाग पृष्ठ ६७ में लिखा है कि एक पाषाण की मूर्त्ति घोड़े पर चढ़ी हुई उसका जहां स्मरण करे वहां उपस्थित होकर रक्षा करती है। (समीक्षक) कहो जैनीजी! आजकल तुम्हारे यहां चोरी, डांका आदि और शत्रु से भय होता ही है तो तुम उसका स्मरण करके अपनी रक्षा क्यों नहीं करा लेते हो ? क्यों जहां तहां पुलिस आदि राजस्थानों में मारे २ फिरते हो ? अब इनके साधुओं के लक्षणः—

सरजोहरणा भैक्षभुजो लुञ्चितमूर्द्धजाः।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसङ्गा जैनसाधवः॥ १॥
लुञ्चिता पिच्छिका हस्ता पाणिपात्रा दिगम्बराः।
ऊर्ध्वासिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः॥ २॥
भुङ्क्ते न केवलं न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः।
प्राहुरेषामयं भेदो महान् श्वेताम्बरैः सह॥ ३॥

जैन के साधुओं के लक्षणार्थ जिनदत्तसूरी ने ये श्लोकों से कहे हैं (सर-जोहरण) चमरी रखना और भिक्षा मांग के खाना, शिर के बाल लुञ्चित कर देना, श्वेत वस्त्र धारण करना, क्षमायुक्त रहना, किसी का संग न करना ऐसे लक्षणयुक्त जैनियों के श्वेताम्बर जिनको यत्ती कहते हैं॥ १॥ दूसरे दिगम्बर अर्थात् वस्त्र धारण न करना, शिर के बाल उखाड़ डालना, पिच्छिका एक ऊन के सूतों का झाड़ू लगाने का साधन बगल में रखना, जो कोई भिक्षा दे तो हाथ में लेकर खालेना ये दिगम्बर दूसरे प्रकार के साधु होते हैं॥ २॥ और भिक्षा देनेवाला गृहस्थ जब भोजन कर चुके उसके पश्चात् भोजन करें वे जिनर्षि अर्थात् तीसरे प्रकार के साधु होते हैं दिगम्बरों का श्वेताम्बरों के साथ इतना ही भेद है कि दिगम्बर लोग स्त्री का अपवर्ग नहीं कहते और श्वेताम्बर कहते हैं इत्यादि बातों से मोक्ष को प्राप्त होते हैं॥ ३॥ यह इनके साधुओं का भेद है। इस से जैन लोगों का केशलुञ्चन सर्वत्र प्रसिद्ध

है और पांच मुष्टि लुञ्चन करना इत्यादि भी लिखा है। विवेकसार भा० पृष्ठ २१६ में लिखा है कि पांच मुष्टि लुञ्चन कर चारित्र ग्रहण किया अर्थात् पांच मूठी शिर के बाल उखाड़ के साधु हुआ। (कल्पसूत्रभाष्य पृष्ठ १०८) केशलुञ्चन करे गौ के बालों के तुल्य रक्खे। (समीक्षक) अब कहिये जैन लोगो! तुम्हारा दया धर्म कहां रहा? क्या यह हिंसा अर्थात् चाहें अपने हाथ से लुञ्चन करे चाहें उसका गुरु करे वा अन्य कोई परन्तु कितना बड़ा कष्ट उस जीव को होता होगा? जीव को कष्ट देना ही हिंसा कहाती है। विवेकसार पृष्ठ संवत् १६३३ के साल में श्वेताम्बरों में से ढूंढिया और ढूंढियों म से तेरहपंथी आदि ढोंगी निकले हैं। ढूंढिये लोग पाषाणादि मूर्त्ति को नहीं मानते और वे भोजन स्नान को छोड़ सर्वदा मुख पर पट्टी बांधे रहते हैं और जती आदि भी जब पुस्तक बांचते हैं तभी मुख पर पट्टी बांधते हैं अन्य समय नहीं। (प्रश्न) मुख पर पट्टी अवश्य बांधना चाहिये क्योंकि "वायुकाय" अर्थात् जो वायु में सूक्ष्म शरीरवाले जीव रहते हैं वे मुख के बाफ की उष्णता से मरते हैं और उस का पाप मुख पर पट्टी न बांधनेवाले पर होता है इसीलिये हम लोग मुख पर पट्टी बांधना अच्छा समझते हैं। (उत्तर) यह बात विद्या और प्रत्यक्ष आदि प्रमाण की रीति से अयुक्त है क्योंकि जीव अजर अमर है फिर वे मुख की बाफ से कभी नहीं मर सकते इनको तुम भी अजर अमर मानते हो। (प्रश्न) जीव तो नहीं मरता परन्तु जो मुख के उष्ण वायु से उनको पीड़ा पहुंचती है उस पीड़ा पहुंचानेवाले को पाप होता है इसीलिये मुख पर पट्टी बांधना अच्छा है। (उत्तर) यह भी तुम्हारी बात सर्वथा असम्भव है क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी जीव का किंचित् भी निर्वाह नहीं हो सकता जब मुख के वायु से तुम्हारे मत में जीवों को पीड़ा पहुंचती है तो चलने, फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि के चलाने में भी पीड़ा अवश्य पहुंचती होगी इसलिये तुम भी जीवों को पीड़ा पहुंचाने से पृथक् नहीं रह सकते। (प्रश्न) हां जहांतक बन सके वहांतक जीवों की रक्षा करनी चाहिये और जहां हम नहीं बचा सकते वहां अशक्त हैं क्योंकि सब वायु आदि पदार्थों में जीव भरे हुये हैं जो हम मुख पर कपड़ा न बांधें तो बहुत जीव मरें कपड़ा बांधने से न्यून मरते हैं। (उत्तर)

यह भी तुम्हारा कथन युक्तिशून्य है क्योंकि कपड़ा बांधने से जीवों को अधिक दुःख पहुंचता है जब कोई मुख पर कपड़ा बांधे तो उसका मुख का वायु रुक के नीचे वा पार्श्व और मौन समय में नासिकाद्वारा इकट्ठा होकर वेग से निकलता है उससे उष्णता अधिक होकर जीवों को विशेष पीड़ा तुम्हारे मतानुसार पहुंचती होगी। देखो! जैसे घर व कोठरी के सब दरवाजे बंद किये व पड़दे डाले जायें तो उसमें उष्णता विशेष होती है खुला रखने से उतनी नहीं होती वैसे मुख पर कपड़ा बांधने से उष्णता अधिक होती है और खुला रहने से न्यून वैसे तुम अपने मतानुसार जीवों को अधिक दुःखदायक हो और जब मुख बंध किया जाता है तब नासिका के छिद्रों से वायु रुक इकट्ठा होकर वेग से निकलता हुआ जीवों को अधिक धक्का और पीड़ा करता होगा देखो! जैसे कोई मनुष्य अग्नि को मुख से फूँकता और कोई नली से तो मुख का वायु फैलने से कम बल और नली का वायु इकट्ठा होने से अधिक बल से अग्नि में लगता है वैसे ही मुख पर पट्टी बांधकर वायु को रोकने से नासिकाद्वारा अतिवेग से निकल कर जीवों को अधिक दुःख देता है इससे मुख पर पट्टी बांधनेवालों से नहीं बांधनेवाले धर्मात्मा हैं। और मुख पर पट्टी बांधने से अक्षरों का यथायोग्य स्थान प्रयत्न के साथ उच्चारण भी नहीं होता निरनुनासिक अक्षरों को सानुनासिक बोलने से तुमको दोष लगता है तथा मुख पर पट्टी बांधने से दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ता है क्योंकि शरीर के भीतर दुर्गन्ध भरा है। शरीर से जितना वायु निकलता है वह दुर्गन्धयुक्त प्रत्यक्ष है जो वह रोका जाय तो दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ जाय जैसा कि बंध "जाजरूर" अधिक दुर्गन्धयुक्त और खुला हुआ न्यून दुर्गन्धयुक्त होता है वैसे ही मुखपट्टी बांधने, दन्तधावन, मुखप्रक्षालन और स्नान न करने तथा वस्त्र न धोने से तुम्हारे शरीर से अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न होकर संसार में बहुतसे रोग करके जीवों को जितनी पीड़ा पहुंचाते हो उतना पाप तुमको अधिक होता है। जैसे मेले आदि में अधिक दुर्गन्ध होने से "विशूचिका" अर्थात् हैजा आदि बहुत प्रकार के रोग उत्पन्न होकर जीवों को दुःखदायक होते हैं और न्यून दुर्गन्ध होने से रोग भी न्यून होकर जीवों को बहुत दुःख नहीं पहुंचता इससे तुम अधिक दुर्गन्ध बढ़ाने में अधिक अप-

राधी और जो मुख पर पट्टी नहीं बांधते, दंतधावन, मुखप्रक्षालन, स्नान करके स्थान, वस्त्रों को शुद्ध रखते हैं वे तुमसे बहुत अच्छे हैं। जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से पृथक् रहनेवाले बहुत अच्छे हैं जैसे अन्त्यजों की दुर्गन्ध के सहवास से निर्मल बुद्धि नहीं होती वैसे तुम और तुम्हारे संगियों की भी बुद्धि नहीं बढ़ती, जैसे रोग की अधिकता और बुद्धि के स्वल्प होने से धर्म्मानुष्ठान की बाधा होती है वैसे ही दुर्गंधयुक्त तुम्हारा और तुम्हारे संगियों का भी वर्त्तमान होता होगा। (प्रश्न) जैसे बन्द मकान में जलाये हुए अग्नि की ज्वाला बाहर निकल के बाहर के जीवों को दुःख नहीं पहुंचा सकती वैसे हम मुखपट्टी बांध के वायु को रोक कर बाहर के जीवों को न्यून दुःख पहुंचाने वाले हैं। मुखपट्टी बांधने से बाहर के वायु के जीवों को पीड़ा नहीं पहुंचती और जैसे सामने अग्नि जलता है उसको आड़ा हाथ देने से कम लगता है और वायु के जीव शरीरवाले होने से उनको पीड़ा अवश्य पहुंचती है। (उत्तर) यह तुम्हारी बात लड़कपन की है प्रथम तो देखो जहां छिद्र और भीतर के वायु का योग बाहर के वायु के साथ न हो तो वहां अग्नि जल ही नहीं सकता जो इनको प्रत्यक्ष देखना चाहो तो किसी फानूस में दीप जलाकर सब छिद्र बन्द करके देखो तो दीप उसी समय बुझ जायगा जैसे पृथिवी पर रहनेवाले मनुष्यादि प्राणी बाहर के वायु के योग के विना नहीं जी सकते वैसे अग्नि भी नहीं जल सकता जब एक ओर से अग्नि का वेग रोका जाय तो दूसरी ओर अधिक वेग से निकलेगा और हाथ की आड़ करने से मुख पर आंच न्यून लगती है परन्तु वह आंच हाथ पर अधिक लग रही है इसलिये तुम्हारी बात ठीक नहीं। (प्रश्न) इसको सब कोई जानता है कि जब किसी बड़े मनुष्य से छोटा मनुष्य कान में वा निकट होकर बात कहता है तब मुख पर पल्ला वा हाथ लगाता है इसलिये कि मुख से थूक उड़कर वा दुर्गन्ध उसको न लगे और जब पुस्तक बांचता है तब अवश्य थूक उड़कर उस पर गिरने से उच्छिष्ट होकर वह बिगड़ जाता है इसलिये मुख पर पट्टी का बांधना अच्छा है। (उत्तर) इससे यह सिद्ध हुआ कि जीवरक्षार्थ मुखपट्टी बांधना व्यर्थ है और जब कोई बड़े मनुष्य से बात करता है तब मुख पर हाथ वा पल्ला इस-

लिये रखता है कि उस गुप्त बात को दूसरा कोई न सुन लेवे क्योंकि जब कोई प्रसिद्ध बात करता है तब कोई भी मुख पर हाथ वा पल्ला नहीं धरता, इससे क्या विदित होता है कि गुप्त बात के लिये यह बात है। दन्तधावनादि न करने से तुम्हारे मुखादि अवयवों से अत्यन्त दुर्गन्ध निकलता है और जब तुम किसी के पास वा कोई तुम्हारे पास बैंठता होगा तो विना दुर्गन्ध के अन्य क्या आता होगा? इत्यादि मुख के आड़ा हाथ वा पल्ला देने के प्रयोजन अन्य बहुत हैं जैसे बहुत मनुष्यों के सामने गुप्त बात करने में जो हाथ वा पल्ला न लगाया जाय तो दूसरों की ओर वायु के फैलने से बात भी फैल जाय, जब वे दोनों एकान्त में बात करते हैं तब मुख पर हाथ वा पल्ला इसलिये नहीं लगाते कि यहां तीसरा कोई सुननेवाला नहीं जो बड़ों ही के ऊपर थूक न गिरे इससे क्या छोटों के ऊपर थूक गिराना चाहिये? और उस थूक से बच भी नहीं सकता क्योंकि हम दूरस्थ बात करें और वायु हमारी ओर से दूसरे की ओर जाता हो तो सूक्ष्म होकर उसके शरीर पर वायु के साथ त्रसरेणु अवश्य गिरेंगे उसका दोष गिनना अविद्या की बात है क्योंकि जो मुख की उष्णता से जीव मरते वा उनको पीड़ा पहुंचती हो तो वैशाख वा ज्येष्ठ महीने में सूर्य्य की महा उष्णता से वायुकाय के जीवों में से मरे विना एक भी न बच सके, सो उस उष्णता से भी वे जीव नहीं मर सकते इसलिये यह तुम्हारा सिद्धान्त झूठा है क्योंकि जो तुम्हारे तीर्थंकर भी पूर्ण विद्वान् होते तो ऐसी व्यर्थ बातें क्यों करते? देखो! पीड़ा उन्हीं जीवों को पहुंचती है जिनकी वृत्ति सब अवयवों के साथ विद्यमान हो, इसमें प्रमाणः—

पञ्चावयवयोगात्सुखसंवित्तिः॥ सांख्य० अ० ५। सू० २७॥

जब पांचों इन्द्रियों का पांचों विषयों के साथ सम्बन्ध होता है तभी सुख वा दुःख की प्राप्ति जीव को होती है जैसे बधिर को गालीप्रदान, अन्धे को रूप वा आगे से सर्प्प व्याघ्रादि भयदायक जीवों का चला जाना, शून्य बहिरीवाले को स्पर्श, पिन्नस रोगवाले को गन्ध और शून्य जिह्वावाले को रस प्राप्त नहीं हो सकता इसी प्रकार उन जीवों की भी व्यवस्था है। देखो! जब मनुष्य का जीव

सुषुप्ति दशा में रहता है तब उसको सुख वा दुःख की प्राप्ति कुछ भी नहीं होती, क्योंकि वह शरीर के भीतर तो है परन्तु उसका बाहर के अवयवों के साथ उस समय सम्बन्ध न रहने से सुख दुःख की प्राप्ति नहीं कर सकता और जैसे वैद्य वा आजकल के डाक्टर लोग नशे की वस्तु खिला वा सुंघा के रोगी पुरुष के शरीर के अवयवों को काटते वा चीरते हैं उसको उस समय कुछ भी दुःख विदित नहीं होता, वैसे वायुकाय अथवा अन्य स्थावर शरीरवाले जीवों को सुख वा दुःख प्राप्त कभी नहीं हो सकता जैसे मूर्छित प्राणी सुख दुःख को प्राप्त नहीं हो सकता वैसे वे वायुकायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्छित होने से सुख दुःख को प्राप्त नहीं हो सकते फिर इनको पीड़ा से बचाने की बात सिद्ध कैसे हो सकती है? जब उनको सुख दुःख की प्राप्ति ही प्रत्यक्ष नहीं होती तो अनुमानादि यहां कैसे युक्त हो सकते हैं। (प्रश्न) जब वे जीव हैं तो उनको सुख दुःख क्यों नहीं होगा (उत्तर) सुनो भोले भाइयो! जब तुम सुषुप्ति में होते हो तब तुम को सुख दुःख प्राप्त क्यों नहीं होते? सुख दुःख की प्राप्ति का हेतु प्रसिद्ध सम्बन्ध है, अभी हम इसका उत्तर दे आये हैं कि नशा सुंघा के डाक्टर लोग अंगों को चीरते फाड़ते और काटते हैं जैसे उनको दुःख विदित नहीं होता इसी प्रकार अतिमूर्च्छित जीवों को सुख दुःख क्योंकर प्राप्त होवे क्योंकि वहां प्राप्ति होने का साधन कोई भी नहीं। (प्रश्न) देखो! निलोति अर्थात् जितने हरे शाक, पात और कंदमूल हैं उनको हम लोग नहीं खाते क्योंकि निलोति में बहुत और कंदमूल में अनन्त जीव हैं जो हम उन को खावें तो उन जीवों को मारने और पीड़ा पहुंचाने से हम लोग पापी होजावें। (उत्तर) यह तुम्हारी बड़ी अविद्या की बात है, क्योंकि हरित शाक खाने में जीव का मरना उनको पीड़ा पहुंचनी क्योंकर मानते हो? भला जब तुमको पीड़ा प्राप्त होती प्रत्यक्ष नहीं दीखती है और जो दीखती है तो हमको भी दिखलाओ, तुम कभी न प्रत्यक्ष देख वा हमको दिखा सकोगे। जब प्रत्यक्ष नहीं तो अनुमान, उपमान और शब्दप्रमाण भी कभी नहीं घट सकता फिर जो हम ऊपर उत्तर दे आये हैं वह इस बात का भी उत्तर है क्योंकि जो अत्यन्त अन्धकार महा-सुषुप्ति और महानशा में जीव हैं इनको सुख दुःख की प्राप्ति मानना तुम्हारे

तीर्थंकरों की भी भूल विदित होती है जिन्होंने तुमको ऐसी युक्ति और विद्या-विरुद्ध उपदेश किया है, भला जब घर का अन्त है तो उसमें रहनेवाले अनन्त क्योंकर हो सकते हैं ? जब कन्द का अन्त हम देखते हैं तो उसमें रहनेवाले जीवों का अन्त क्यों नहीं ? इससे यह तुम्हारी बात बड़ी भूल की है। (प्रश्न) देखो ! तुम लोग विना उष्ण किये कच्चा पानी पीते हो वह बड़ा पाप करते हो, जैसे हम उष्ण पानी पीते हैं वैसे तुम लोग भी पिया करो। (उत्तर) यह भी तुम्हारी बात भ्रमजाल की है क्योंकि जब तुम पानी को उष्ण करते हो तब पानी के जीव सब मरते होंगे और उनका शरीर भी जल में रंधकर वह पानी सौंफ के अर्क के तुल्य होने से जानो तुम उनके शरीरों का "तेजाब" पीते हो इसमें तुम बड़े पापी हो। और जो ठंडा जल पीते हैं वे नहीं क्योंकि जब ठंडा पानी पियेंगे तब उदर में जाने से किंचित् उष्णता पाकर श्वास के साथ वे जीव बाहर निकल जायेंगे, जलकाय जीवों को सुख दुःख प्राप्त पूर्वोक्त रीति से नहीं हो सकता पुनः इसमें पाप किसी को नहीं होगा। (प्रश्न) जैसे जाठराग्नि से वैसे उष्णता पाके जल से बाहर जीव क्यों न निकल जायेंगे ? (उत्तर) हां निकल तो जाते परन्तु जब तुम मुख के वायु की उष्णता से जीव का मरना मानते हो तो जल उष्ण करने से तुम्हारे मतानुसार जीव मर जावेंगे वा अधिक पीड़ा पाकर निकलेंगे और उनके शरीर उस जल में रंध जायेंगे इससे तुम अधिक पापी होगे वा नहीं ? (प्रश्न) हम अपने हाथ से उष्ण जल नहीं करते और न किसी गृहस्थ को उष्ण जल करने की आज्ञा देते हैं इसलिये हमको पाप नहीं (उत्तर) जो तुम उष्ण जल न लेते न पीते तो गृहस्थ उष्ण क्यों करते ? इसलिये उस पाप के भागी तुम ही हो प्रत्युत अधिक पापी हो क्योंकि जो तुम किसी एक गृहस्थ को उष्ण करने को कहते तो एक ही ठिकाने उष्ण होता जब वे गृहस्थ इस भ्रम में रहते हैं कि न जाने साधुजी किसके घर को आवेंगे इसलिये प्रत्येक गृहस्थ अपने २ घर में उष्ण जल कर रखते हैं इस के पाप के भागी मुख्य तुम ही हो। दूसरा अधिक काष्ठ और अग्नि के जलने जलाने से भी ऊपर लिखे प्रमाणे रसोई खेती और व्यापारादि में अधिक पापी और नरकगामी होते हो फिर जब तुम उष्ण जल कराने के मुख्य निमित्त

और तुम उष्ण जल के पीने और ठंडे के न पीने के उपदेश करने से तुमही मुख्य पाप के भागी हो और जो तुम्हारा उपदेश मान कर ऐसी बातें करते हैं वे भी पापी हैं। अब देखो! कि तुम बड़ी अविद्या में होते हो वा नहीं कि छोटे २ जीवों पर दया करनी और अन्य मत वालों की निन्दा, अनुपकार करना क्या थोड़ा पाप है? जो तुम्हारे तीर्थंकरों का मत सच्चा होता तो सृष्टि में इतनी वर्षा नदियों का चलना और इतना जल क्यों उत्पन्न ईश्वर ने किया? और सूर्य्य को भी उत्पन्न न करता क्योंकि इन में क्रोड़ानक्रोड़ जीव तुम्हारे मतानुसार मरते ही होंगे जब वे विद्यमान थे और तुम जिनको ईश्वर मानते हो उन्होंने दया कर सूर्य्य का ताप और मेघ को बन्द क्यों न किया? और पूर्वोक्त प्रकार से बिना विद्यमान प्राणियों के दुःख सुख की प्राप्ति कन्दमूलादि पदार्थों में रहनेवाले जीवों को नहीं होती सर्वथा सब जीवों पर दया करना भी दुःख का कारण होता है क्योंकि जो तुम्हारे मतानुसार सब मनुष्य हो जावें, चोर डाकुओं को कोई भी दंड न देवे तो कितना बड़ा पाप खड़ा हो जाय? इसलिये दुष्टों को यथावत् दंड देने और श्रेष्ठों के पालन करने में दया और इससे विपरीत करने में दया क्षमारूप धर्म का नाश है। कितनेक जैनी लोग दुकान करते, उन व्यवहारों में झूठ बोलते, पराया धन मारते और दीनों को छलना आदि कुकर्म करते हैं उनके निवारण में विशेष उपदेश क्यों नहीं करते? और मुखपट्टी बांधने आदि ढोंग में क्यों रहते हो? जब तुम चेला चेली करते हो तब केशलुञ्चन और बहुत दिवस भूखे रहने में पराये वा अपने आत्मा को पीड़ा दे और पीड़ा को प्राप्त होके दूसरों को दुःख देते और आत्महत्या अर्थात् आत्मा को दुःख देनेवाले होकर हिंसक क्यों बनते हो? जब हाथी, घोड़े, बैल, ऊंट पर चढ़ने और मनुष्यों को मजूरी कराने में पाप जैनी लोग क्यों नहीं गिनते! जब तुम्हारे चेले ऊटपटांग बातों को सत्य नहीं कर सकते तो तुम्हारे तीर्थंकर भी सत्य नहीं कर सकते जब तुम कथा बांचते हो तब मार्ग में श्रोताओं के और तुम्हारे मतानुसार जीव मरते ही होंगे इसलिये तुम इस पाप के मुख्य कारण क्यों होते हो? इस थोड़े कथन से बहुत समझ लेना कि उन जल, स्थल, वायु के स्थावरशरीरवाले अत्यन्तमूर्छित जीवों को दुःख वा सुख कभी नहीं पहुंच सकता।

अब जैनियों की और भी थोड़ीसी असम्भव कथा लिखते हैं सुनना चाहिये और यह भी ध्यान में रखना कि अपने हाथ से साढ़े तीन हाथ का धनुष् होता है और काल की संख्या जैसी पूर्व लिख आये हैं वैसी हीं समझना। रत्नसार भाग १ पृष्ठ १६६–१६७ तक में लिखा है। (१) ऋषभदेव का शरीर ५०० (पांचसौ) धनुष् लम्बा और ८४०००००० (चौरासी लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (२) अजितनाथ का ४५० (चारसौ पचास) धनुष् परिमाण का शरीर और ७२०००००० (बहत्तर लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (३) संभवनाथ का ४०० (चारसौ) धनुष् परिमाण शरीर और ६०००००० (साठ लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (४) अभिनन्दन का ३५० (साढ़े तीनसौ) धनुष् का शरीर और ५०००००० (पचास लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (५) सुमतिनाथ का ३०० (तीनसौ) धनुष् परिमाण का शरीर और ४०००००० (चालीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (६) पद्मप्रभ का १४० (एकसौ चालीस) धनुष् का शरीर और ३०००००० (तीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (७) पार्श्वनाथ का २०० (दोसौ) धनुष् का शरीर और २०००००० (बीस लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (८) चन्द्रप्रभ का १५० (डेढ़सौ) धनुष् परिमाण का शरीर और १०००००० (दश लाख) पूर्व वर्षों का आयु। (९) सुविधिनाथ का १०० (सौ) धनुष् का शरीर और २००००० (दो लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (१०) शीतलनाथ का ९० (नब्बे) धनुष् का शरीर और १००००० (एक लाख) पूर्व वर्ष का आयु। (११) श्रेयांसनाथ का ८० (अस्सी) धनुष् का शरीर और ८४००००० (चौरासी लाख) वर्ष का आयु। (१२) वासुपूज्य स्वामी का ७० (सत्तर) धनुष् का शरीर और ७२००००० (बहत्तर लाख) वर्ष का आयु। (१३) विमलनाथ का ६० (साठ) धनुष् का शरीर और ६०००००० (साठ लाख) वर्षों का आयु। (१४) अनन्तनाथ का ५० (पचास) धनुष् का शरीर और ३०००००० (तीस लाख) वर्षों का आयु। (१५) धर्मनाथ का ४५ (पैंतालीस) धनुषों का शरीर और १०००००० (दश लाख) वर्षों का आयु। (१६) शान्तिनाथ का ४० (चालीस) धनुषों का

शरीर और १००००० (एक लाख) वर्ष का आयु । (१७) कुंथुनाथ का ३५ (पैंतीस) धनुष् का शरीर और ६५००० (पंचानवे सहस्र) वर्षों का आयु । (१८) अमरनाथ का ३० (तीस) धनुषों का शरीर और ८४००० (चौरासी सहस्र) वर्षों का आयु । (१९) मल्लीनाथ का २५ (पचीस) धनुषों का शरीर और ५५००० (पचपन सहस्र) वर्षों का आयु । (२०) मुनिसुव्रत का २० (बीस) धनुषों का शरीर और ३०००० (तीस सहस्र) वर्षों का आयु । (२१) नमिनाथ का १४ (चौदह) धनुषों का शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्ष का आयु । (२२) नेमिनाथ का १० (दश) धनुषों का शरीर और १००० (एक सहस्र) वर्ष का आयु । (२३) पार्श्व-नाथ का ९ (नौ) हाथ का शरीर और १०० (सौ) वर्ष का आयु । (२४) महावीर स्वामी का ७ (सात) हाथ का शरीर और ७२ (बहत्तर) वर्षों का आयु । ये चौबीस तीर्थंकर जैनियों के मत चलानेवाले आचार्य और गुरु हैं इन्हीं को जैनी लोग परमेश्वर मानते हैं और ये सब मोक्ष को गये हैं इसमें बुद्धिमान् लोग विचार लेवें कि इतने बड़े शरीर और इतना आयु मनुष्यदेह का होना कभी संभव है ? इस भूगोल में बहुत ही थोड़े मनुष्य बस सकते हैं । इन्हीं जैनियों के गपोड़े लेकर जो पुराणियों ने एकलाख दश सहस्र और एक सहस्र वर्ष का आयु लिखा सो भी संभव नहीं हो सकता तो जैनियों का कथन संभव कैसे हो सकता है । अब और भी सुनो कल्पभाष्य पृष्ठ ४-नाग-केत ने ग्राम की बराबर एक शिला अंगुली पर धरली (!) । कल्पभाष्य पृष्ठ ३५-महावीर ने अंगूठे से पृथ्वी को दबाई उससे शेषनाग कंप गया (!) । कल्पभाष्य पृष्ठ ४६—महावीर को सर्प ने काटा रुधिर के बदले दूध निकला और वह सर्प ८ वें स्वर्ग को गया (!) । कल्पभाष्य पृष्ठ ४७-महावीर के पग पर खीर पकाई और पग न जले (!) । कल्पभाष्य पृष्ठ १६—छोटे से पात्र में ऊंट बुलाया (!) । रत्नसार भाग १ प्रथम पृष्ठ १४—शरीर के मैल को न उतारे और न खुजलावे । विवेकसार भा० १ पृष्ठ १५—जैनियों के एक दमसार साधु ने क्रोधित होकर उद्वेगजनक सूत्र पढ़कर एक शहर में आग लगादी और महावीर तीर्थंकर का अतिप्रिय था । विवेक० भा० १ पृष्ठ

१२७–राजा की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२७–एक कोशा वेश्या ने थाली में सरसों की ढेरी लगा उसके ऊपर फूलों से ढकी हुई सुई खड़ीकर उस पर अच्छे प्रकार नाच किया परन्तु सुई पग में गड़ने न पाई और सरसों की ढेरी बिखरी नहीं (!!!) तत्वविवेक पृष्ठ २२८–इसी कोशा वेश्या के साथ एक स्थूलमुनि ने १२ वर्ष तक भोग किया और पश्चात् दीक्षा लेकर सद्गति को गया और कोशा वेश्या भी जैनधर्म को पालती हुई सद्गति को गई। विवेक० भा० १ पृष्ठ १८५–एक सिद्ध की कन्था जो गले में पहिनी जाती है वह ५०० अशर्फी एक वैश्य को नित्य देती रही। विवेक० भा० १ पृष्ठ २२८–बलवान् पुरुष की आज्ञा, देव की आज्ञा, घोर बन में कष्ट से निर्वाह, गुरु के रोकने, माता, पिता, कुलाचार्य्य, ज्ञातीय लोग और धर्मोपदेष्टा इन छः के रोकने से धर्म में न्यूनता होने से धर्म की हानि नहीं होती। (समीक्षक) अब देखिये इनकी मिथ्या बातें! एक मनुष्य ग्राम के बराबर पाषाण की शिला को अगुंली पर कभी धर सकता है? और पृथिवी के ऊपर से अगूंठे दाबने से पृथिवी कभी दब सकती है? और जब शेषनाग ही नहीं तो कंपेगा कौन?॥ भला शरीर के काटने से दूध निकलना किसी ने नहीं देखा, सिवाय इन्द्रजाल के दूसरी बात नहीं, उसको काटनेवाला सर्प तो स्वर्ग में गया और महात्मा श्रीकृष्ण आदि तीसरे नरक को गये यह कितनी मिथ्या बात है?॥ जब महावीर के पग पर खीर पकाई तब उसके पग जल क्यों न गये?॥ भला छोटे से पात्र में कभी ऊंट आसकता है?॥ जो शरीर का मैल नहीं उतारते और न खुजलाते होंगे वे दुर्गन्धरूप महानरक भोगते होंगे॥ जिस साधु ने नगर जलाया उसकी दया और क्षमा कहां गई? जब महावीर के संग से भी उसका पवित्र आत्मा न हुआ तो अब महावीर के मरे पीछे उसके आश्रय से जैन लोग कभी पवित्र न होंगे॥ राजा की आज्ञा माननी चाहिये परन्तु जैन लोग बनिये हैं इसलिये राजा से डरकर यह बात लिखदी होगी॥ कोशा वेश्या चाहे उसका शरीर कितना ही हलका हो तो भी सरसों की ढेरी पर सुई खड़ी कर उसके ऊपर नाचना, सुई का न छिदना और सरसों का न बिखरना अतीव झूठ नहीं तो क्या है?॥ धर्म किसी को किसी अवस्था में भी

न छोड़ना चाहिये चाहे कुछ भी होजाय ? ॥ भला कंथा वस्त्र का होता है वह नित्यप्रति ५०० अशर्फी किस प्रकार दे सकता है ? अब ऐसी २ असम्भव कहानी इनकी लिखें तो जैनियों के थोथे पोथों के सदृश बहुत बढ़ जाय इसलिये अधिक नहीं लिखते अर्थात् थोड़ीसी इन जैनियों की बातें छोड़ के शेष सब मिथ्या जाल भरा है देखिये:—

दोससि दोरवि पढमे । दुगुणा लवणं मिधाय ईसं मे । वारससासि वारसरवि । तत्थमि इंनि दिठ ससि रविणो ॥ प्रकरण० भा० ४ । संग्रहणी सूत्र ७७ ॥

जो जम्बूद्वीप लाख योजन अर्थात् ४ (चार) लाख कोश का लिखा है उनमें यह पहिला द्वीप कहाता है इस में दो चन्द्र और दो सूर्य्य हैं और वैसे ही लवण समुद्र में उससे दुगुणे अर्थात् ४ चन्द्रमा और ४ सूर्य्य हैं तथा धातकीखण्ड में बारह चन्द्रमा और बारह सूर्य्य हैं ॥ और इनको तिगुणा करने से छत्तीस होते हैं उनके साथ दो जम्बूद्वीप के और चार लवण समुद्र के मिलकर व्यालीस चन्द्रमा और व्यालीस सूर्य्य कालोदधि समुद्र में हैं इसी प्रकार अगले २ द्वीप और समुद्रों में पूर्वोक्त व्यालीस को तिगुणा करें तो एकसौ छब्बीस होते हैं उनमें धातकीखण्ड के बारह, लवण समुद्र के ४ (चार) और जम्बूद्वीप के जो दो २ इसी रीति से निकाल कर १४४ (एकसौ चवालीस) चन्द्र और १४४ सूर्य्य पुष्करद्वीप में हैं यह भी आधे मनुष्यक्षेत्र की गणना है परन्तु जहांतक मनुष्य नहीं रहते हैं वहां बहुतसे सूर्य्य और बहुतसे चन्द्र हैं और जो पिछले अर्ध पुष्करद्वीप में बहुत चन्द्र और सूर्य्य हैं वे स्थिर हैं, पूर्वोक्त एकसौ चवालीस को तिगुणा करने से ४३२ और उनमें पूर्वोक्त जम्बूद्वीप के दो चन्द्रमा, दो सूर्य, चार २ लवण समुद्र के और बारह २ धातकीखण्ड के और व्यालीस कालोदधि के मिलाने से ४९२ चन्द्र तथा ४९२ सूर्य पुष्कर समुद्र में हैं ये सब बातें श्रीजिनभद्रगणीक्षमाश्रमण ने बड़ी "संघयणी" में तथा "योतीसकरण्डक पयन्ना" मध्ये और "चन्द्रपन्नति" तथा "सूरपन्नति" प्रमुख सिद्धान्तग्रन्थों में इसी प्रकार कहा है । (समीक्षक) अब सुनिये ! भूगोल खगोल के

जानने वालो ! इस एक भूगोल में एक प्रकार ४९२ (चारसौ बानवे) और दूसरे प्रकार असंख्य चन्द्र और सूर्य जैनी लोग मानते हैं ! आप लोगों का बड़ा भाग्य है कि वेदमतानुयायी सूर्य्यसिद्धान्तादि ज्योतिष् ग्रन्थों के अध्ययन से ठीक २ भूगोल खगोल विदित हुए जो कहीं जैन के महाअन्धेर में होते तो जन्मभर अन्धेर में रहते जैसे कि जैनी लोग आजकल हैं इन अविद्वानों को यह शंका हुई कि जम्बूद्वीप में एक सूर्य और एक चन्द्र से काम नहीं चलता क्योंकि इतनी बड़ी पृथिवियों को तीस घड़ी में चन्द्र सूर्य कैसे आसकें क्योंकि पृथिवी को जो लोग सूर्यादि से भी बड़ी मानते हैं यही इनकी बड़ी भूल है ।।

दो ससि दो रवि पंती एगंतरियाछ सठिसंखाया ।
मेरुंपयाहिणंता । माणुसखित्ते परिअडंति ।।
प्रकरण० भा० ४ । संग्रहसू० ७९ ।।

मनुष्यलोक में चन्द्रमा और सूर्य की पंक्ति की संख्या कहते हैं दो चन्द्रमा और दो सूर्य की पंक्ति (श्रेणी) हैं वे एक २ लाख योजन अर्थात् चार लाख कोश के आंतरे से चलते हैं, जैसे सूर्य की पंक्ति के आंतरे एक पंक्ति चन्द्र की है इसी प्रकार चन्द्रमा की पंक्ति के आंतरे सूर्य की पंक्ति है, इसी रीति से चार पंक्ति हैं वे एक २ चंद्रपंक्ती में ६६ चंद्रमा और एक २ सूर्यपंक्ती में ६६ सूर्य हैं वे चारों पंक्ती जंबूद्वीप के मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा करती हुई मनुष्यक्षेत्र में परिभ्रमण करती हैं अर्थात् जिस समय जंबूद्वीप के मेरु से एक सूर्य दक्षिण दिशा में विहरता उस समय दूसरा सूर्य उत्तर दिशा में फिरता है, वैसे ही लवण समुद्र की एक २ दिशा में दो २ चलते फिरते, धातकीखण्ड के ६, कालोदधि के २१, पुष्करार्द्ध के ३६, इस प्रकार सब मिलकर ६६ सूर्य दक्षिण दिशा और ६६ सूर्य उत्तर दिशा में अपने २ क्रम से फिरते हैं । और जब इन दोनों दिशा के सब सूर्य मिलाये जायें तो १३२ सूर्य और ऐसेही बासठ २ में चन्द्रमा की दोनों दिशाओं की पंक्तियां मिलाई जायें तो १३२ चन्द्रमा मनुष्यलोक में चाल चलते हैं । इसी प्रकार चन्द्रमा के साथ नक्षत्रादि की भी पंक्तियां बहुतसी जाननी । (समीक्षक) अब देखो भाई ! इस भूगोल में १३२ सूर्य और

१३२ चन्द्रमा जैनियों के घर पर तपते होंगे भला जो तपते होंगे तो वे जीते कैसे हैं ? और रात्रि में भी शीत के मारे जैनी लोग जकड़ जाते होंगे ? ऐसी असम्भव बात में भूगोल खगोल के न जाननेवाले फँसते हैं अन्य नहीं । जब एक सूर्य इस भूगोल के सदृश अन्य अनेक भूगोलों को प्रकाशता है तब इस छोटे से भूगोल की क्या कथा कहनी ? और जो पृथिवी न घूमे और सूर्य पृथिवी के चारों ओर घूमे तो कई एक वर्षों का दिन और रात होवे । और सुमेरु विना हिमालय के दूसरा कोई नहीं यह सूर्य के सामने ऐसा है कि जैसे घड़े के सामने राई का दाना भी नहीं इन बातों को जैनी लोग जबतक उसी मत में रहेंगे तबतक नहीं जान सकते किंतु सदा अन्धेर में रहेंगे ॥

समत्तचरण सहियासव्वंलोगं फुसे निरवसेसं ।
सत्तय्चउदसभाए पंचयसुपदेसविरईए ॥
प्रकरण० भा० ४ । संग्रहसू० १३५ ॥

सम्यक्चारित्र सहित जो केवली वे केवल समुद्घात अवस्था से सर्व चौदह राज्यलोक अपने आत्मप्रदेश करके फिरेंगे ॥ (समीक्षक) जैनी लोग १४ (चौदह) राज्य मानते हैं उनमें से चौदहवें की शिखा पर सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से ऊपर थोड़े दूर पर सिद्धशिला तथा दिव्य आकाश को शिवपुर कहते हैं उसमें केवली अर्थात् जिनको केवलज्ञान सर्वज्ञता और पूर्ण पवित्रता प्राप्त हुई है वे उस लोक में जाते हैं और अपने आत्मप्रदेश से सर्वज्ञ रहते हैं । जिसका प्रदेश होता है वह विभु नहीं जो विभु नहीं वह सर्वज्ञ केवलज्ञानी कभी नहीं हो सकता क्योंकि जिसका आत्मा एकदेशी है वही जाता आता है और बद्ध, मुक्त, ज्ञानी, अज्ञानी होता है सर्वव्यापी सर्वज्ञ वैसा कभी नहीं हो सकता जो जैनियों के तीर्थंकर जीवरूप अल्प अल्पज्ञ होकर स्थित थे वे सर्वव्यापक सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकते किंतु जो परमात्मा अनाद्यनन्त सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पवित्र, ज्ञानस्वरूप है उसको जैनी लोग मानते नहीं कि जिसमें सर्वज्ञादि गुण याथातथ्य घटते हैं ॥

गब्भनरति पलियाऊ । तिगाउ उक्कोसते जहन्नेणं ।
मुच्छिम दुहावि अन्तमुहु । अङ्गुल असंख भागतणू ॥ २४१ ॥

यहां मनुष्य दो प्रकार के हैं। एक गर्भज दूसरे जो गर्भ के विना उत्पन्न हुए उनमें गर्भज मनुष्य का उत्कृष्ट तीन पल्योपम का आयु जानना और तीन कोश का शरीर। (समीक्षक) भला तीन पल्योपम का आयु और तीन कोश के शरीर वाले मनुष्य इस भूगोल में बहुत थोड़े समा सकें और फिर तीन पल्योपम की आयु जैसा कि पूर्व लिख आये हैं उतने समय तक जीवें तो वैसे ही उनके सन्तान भी तीन कोश के शरीर वाले होने चाहियें जैसे मुम्बई से शहर में दो और कलकत्ता ऐसे शहर में तीन वा चार मनुष्य निवास कर सकते हैं जो ऐसा है तो जैनियों ने एक नगर में लाखों मनुष्य लिखे हैं तो उनके रहने का नगर भी लाखों कोशों का चाहिये तो सब भूगोल में वैसा एक नगर भी न बस सके॥

पणया ललरकयोयण। विरकंभा सिद्धिशिलफलिहविमला।
तदुवरि गजोयणंते लोगन्तो तच्छ सिद्धठिई॥ २५८॥

जो सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा से ऊपर १२ योजन सिद्धशिला है वह वाटला और लंबेपन और पोलपन में ४५ (पैंतालीस) लाख योजन प्रमाण है वह सब धवला अर्जुन सुवर्णमय स्फटिक के समान निर्मल सिद्धशिला की सिद्धभूमि है इसको कोई "ईषत्" "प्राग्भरा" ऐसा नाम कहते हैं यह सर्वार्थसिद्ध शिला विमान से १२ योजन अलोक भी है यह परमार्थ केवली श्रुत जानता है यह सिद्धशिला सर्वार्थ मध्य भाग में ८ योजन स्थूल है वहां से ४ दिशा और ४ उपदिशा में घटती २ मक्खी के पांख के सदृश पतली उत्तानछत्र और आकार करके सिद्धशिला की स्थापना है, उस शिला से ऊपर १ (एक) योजन के अन्तरे लोकान्त है वहां सिद्धों की स्थिति है॥ (समीक्षक) अब विचारना चाहिये कि जैनियों के मुक्ति का स्थान सर्वार्थसिद्धि विमान की ध्वजा के ऊपर ४५ (पैंतालीस) लाख योजन की शिला अर्थात् चाहें ऐसी अच्छी और निर्मल हो तथापि उसमें रहनेवाले मुक्त जीव एक प्रकार के बद्ध हैं क्योंकि उस शिला से बाहर निकलने में मुक्ति के सुख से छूट जाते होंगे और जो भीतर रहते होंगे तो उनको वायु भी न लगता होगा, यह केवल कल्पनामात्र अविद्वानों को फँसाने के लिये भ्रमजाल है॥

वितिचउरिं दिम सरीरं । वार सजोयणति कोसच उकोसं जोयणसहस पणिंदिय । उहे वुच्छन्ति विसेसंतु ॥ प्रकरण० भा० ४ । संग्रह सू० २६७ ॥

सामान्यपन से एकेन्द्रिय का शरीर १ सहस्र योजन के शरीरवाला उत्कृष्ट जानना और दो इन्द्रियवाले जो शंखादि का शरीर १२ योजन का जानना और चतुरिन्द्रिय भ्रमरादि का शरीर ४ कोश का और पञ्चेन्द्रिय एक सहस्र योजन अर्थात् ४ सहस्र कोश के शरीरवाले जानना ॥ (समीक्षक) चार २ सहस्र कोश के प्रमाणवाले शरीरधारी हों तो भूगोल में तो बहुत थोड़े मनुष्य अर्थात् सैकड़ों मनुष्यों से भूगोल ठस भरजाय किसी को चलने की जगह भी न रहे फिर वे जैनियों से रहने का ठिकाना और मार्ग पूछें और जो इन्होंने लिखा है तो अपने घर में रख लें परन्तु चार सहस्र कोश के शरीर वाले को निवासार्थ कोई एक के लिये ३२ (बत्तीस) सहस्र कोश का घर तो चाहिये ऐसे एक घर के बनाने में जैनियों का सब धन चुक जाय तो भी घर न बन सके, इतने बड़े आठ सहस्र कोश की छत्त बनाने के लिये लट्ठे कहां से लावेंगे ? और जो उसमें खंभा लगावें तो वह भीतर प्रवेश भी नहीं कर सकता इसलिये ऐसी बातें मिथ्या हुआ करती हैं ॥

ते थूला पल्ले विहुसं खिज्जाचे वहुति सव्वेवि ।
तेइक्किक असंखे । सुहुमे खम्मे पकप्पेह ॥
प्रकरण० भा० ४ । लघुक्षेत्र । समासप्रकरण सूत्र ४ ॥

पूर्वोक्त एक अंगुल लोम के खण्डों से ४ कोश का चौरस और उतना ही गहिरा कुआ हो, अंगुल प्रमाण लोम का खण्ड सब मिल के बीस लाख सत्तावन सहस्र एकसौ बावन होते हैं और अधिक से अधिक (३३०, ७६२१-०४, २४६५६२५, ४२१९९६०, ९७५३६००, ०००००००) तैंतीस क्रोड़ाक्रोड़ी, सात लाख बासठ हज़ार एकसौ चार कोड़ाकोड़ी, चौबीस लाख पैंसठ हज़ार छः सौ पच्चीस इतने कोड़ाकोड़ी तथा ब्यालीस लाख उन्नीस हज़ार नौसौ साठ इतने कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानवे लाख त्रेपन हज़ार और

छःसौ कोड़ाकोड़ी, इतनी वाटला धन योजन पल्योपम में सर्व स्थूल रोम खण्ड की संख्या होवे यह भी संख्यातकाल होता है पूर्वोक्त एक लोम खण्ड के असंख्यात खण्ड मन से कल्पे तब असंख्यात सूक्ष्म रोमाणु होवें । (समीक्षक) अब देखिये ! इनकी गिनती की रीति एक अंगुल प्रमाण लोम के कितने खण्ड किये यह कभी किसी की गिनती में आ सक्ते हैं ? और इसके उपरान्त मन से असंख्य खण्ड कल्पते हैं इससे यह भी सिद्ध होता है कि पूर्वोक्त खण्ड हाथ से किये होंगे जब हाथ से न होसके तब मन से किये भला यह बात कभी सम्भव हो सकती है कि एक अंगुल रोम के असंख्य खण्ड होसकें ? ॥

जंबूदीपपमाणं गुलजोयाणलरक वट्टविरकंभों ।
लवणाईयासेसा । बलया भाढ्गुणदुगुणाय ॥
प्रकरण० भा० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० १२ ॥

प्रथम जंबूद्वीप का लाख योजन का प्रमाण और पोला है और बाक़ी लवणादि सात समुद्र, सात द्वीप, जंबूद्वीप के प्रमाण से दुगुणे २ हैं इस एक पृथिवी में जंबूद्वीपादि सातद्वीप और सात समुद्र हैं जैसे कि पूर्व लिख आये हैं ॥ (समीक्षक) अब जंबूद्वीप से दूसरा द्वीप दो लाख योजन, तीसरा चार लाख योजन, चौथा आठ लाख योजन, पांचवां सोलह लाख योजन, छठा बत्तीस लाख योजन और सातवां चौसठ लाख योजन और उतने प्रमाण वा उनसे अधिक समुद्र के प्रमाण से इस पन्द्रह सहस्र परिधिवाले भूगोल में क्योंकर समा सकते हैं ? इससे यह बात केवल मिथ्या है ॥

कुरुनइचुलसी सहसा । छचेवन्तनरई उपइ विजयं ।
दोदो महानईउ । चनुदस सहसा उपत्तेयं ॥
प्रकरणरत्ना० भा० ४ । लघुक्षेत्रसमा० सू० ६३ ॥

कुरुक्षेत्र में ८४ (चौरासी) सहस्र नदी हैं ॥ (समीक्षक) भला कुरुक्षेत्र बहुत छोटा देश है उसको न देखकर एक मिथ्या बात लिखने में इनको लज्जा भी न आई ॥

यामुत्तरा उत्ताउ । इगेग सिंहासणाउ अइपुब्वं ।
चउ सु वितास निश्रासण, दिसिभवजिण मज्जणं होई ॥
प्रकरणरत्नाकर भा० लघुक्षेत्रसमा० ४ । सू० ११६ ॥

उस शिला के विशेष दक्षिण और उत्तर दिशा में एक २ सिंहासन जानना चाहिये उन शिलाओं के नाम दक्षिण दिशा में अतिपाण्डु कम्बला, उत्तर दिशा में अतिरिक्त कम्बला शिला है उन सिंहासनों पर तीर्थंकर बैठते हैं ॥ (समीक्षक) देखिये ! इनके तीर्थंकरों के जन्मोत्सवादि करने की शिला को, ऐसी ही मुक्ति की सिद्धशिला है ऐसी इनकी बहुतसी बातें गोलमाल हैं कहांतक लिखें, किन्तु जल छान के पीना और सूक्ष्म जीवों पर नाममात्र दया करना, रात्रि को भोजन न करना ये तीन बातें अच्छी हैं बाक़ी जितना इनका कथन है सब असम्भवग्रस्त है इतने ही लेख से बुद्धिमान् लोग बहुतसा जान लेंगे थोड़ासा यह दृष्टान्तमात्र लिखा है जो इनकी असम्भव बातें सब लिखें तो इतने पुस्तक होजायें कि एक पुरुष आयु भर में पढ़ भी न सके इसलिये जैसे एक हंडे में चुड़ते चावलों में से एक चावल की परीक्षा करने से कच्चे वा पक्के हैं सब चावल विदित हो जाते हैं ऐसे ही इस थोड़े से लेख से सज्जन लोग बहुतसी बातें समझ लेंगे, बुद्धिमानों के सामने बहुत लिखना आवश्यक नहीं क्योंकि दिग्दर्शनवत् सम्पूर्ण आशय को बुद्धिमान् लोग जान ही लेते हैं । इसके आगे ईसाइयों के मत के विषय में लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते नास्तिकमतान्तर्गतचारवाक-
बौद्धजैनमतखण्डनमण्डनविषये द्वादशः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १२ ॥

अनुभूमिका (३)

जो यह बाइबल का मत है वह केवल ईसाइयों का है सो नहीं किन्तु इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं जो यहां १३ (तेरहवें) समुल्लास में ईसाई मत के विषय में लिखा है इसका यही अभिप्राय है कि आजकल बाइबल के मत के ईसाई मुख्य हो रहे हैं और यहूदी आदि गौण हैं मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण होजाता है, इससे यहूदियों का भी ग्रहण समझ लीजिये इसका जो विषय यहां लिखा है सो केवल बाइबल में से कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूलकारण समझते हैं। इस पुस्तक के भाषान्तर बहुतसे हुए हैं जो कि इनके मत में बड़े २ पादरी हैं उन्होंने किये हैं उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर देखकर मुझको बाइबल में बहुतसी शंका हुई हैं उनमें से कुछ थोड़ी सी इस १३ (तेरहवें) समुल्लास में सब के विचारार्थ लिखी हैं यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है न कि किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ। इसका अभिप्राय उत्तर लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना सुनना लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर ईसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत और कर्त्तव्याऽकर्त्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्यकर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्यकर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा। सब मनुष्यों को उचित है कि सब के मतविषयक पुस्तकों को देख समझ कर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें नहीं तो सुना करें, क्योंकि जैसे पढ़ने से पण्डित होता है वैसे सुनने से बहुश्रुत होता है। यदि

श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है, जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं उनको न अपने और न पराये गुण दोष विदित हो सकते हैं मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है जितना अपना पठित वा श्रुत है उतना निश्चय कर सकता है यदि एक मत वाले दूसरे मत वाले के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में घिर जाते हैं ऐसा न हो इसलिये इस ग्रन्थ में प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा २ लिखा है इतने ही से शेष विषयों में अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे, जो २ सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सब में एकसे हैं झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा सा विवाद चलता है। यदि वादीप्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वादप्रतिवाद करें तो अवश्य निश्चय होजाय। अब मैं इस १३ वें समुल्लास में ईसाईमत विषयक थोड़ासा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूं विचारिये कि कैसा है॥

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु॥

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनमतविषयं समीक्षिष्यामः ॥

अब इसके आगे ईसाइयों के मत विषय में लिखते हैं जिससे सब को विदित होजाय कि इनका मत निर्दोष और इनकी बाइबल पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं ? प्रथम बाइबल के तौरेत का विषय लिखा जाता है:—

१—आरम्भ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा और पृथिवी बेडौल और सूनी थी। और गहिराव पर अन्धियारा था और ईश्वर का आत्मा जल के ऊपर डोलता था ॥ पर्व १। आय० १।२॥

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो ? (ईसाई) सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति को। (समीक्षक) क्या यही सृष्टि प्रथम हुई इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी ? (ईसाई) हम नहीं जानते हुई थी वा नहीं ईश्वर जाने। (समीक्षक) जब नहीं जानते तो इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया ? कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह के भरे हुए मत में क्यों फंसाते हो ? और निःसंदेह सर्वशंकानिवारक वेदमत को स्वीकार क्यों नहीं करते ? जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते तो ईश्वर को कैसे जानते होगे ? आकाश किसको मानते हो ? (ईसाई) पोल और ऊपर को। (समीक्षक) पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई क्योंकि यह विभु पदार्थ और अतिसूक्ष्म है और ऊपर नीचे एकसा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और आकाश था वा नहीं ? जो नहीं था तो ईश्वर जगत् का कारण और जीव कहां रहते थे ? विना आकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता इसलिये तुम्हारी बाइबल का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान कर्म बेडौल

होता है वा सब डौलवाला ? (ईसाई) डौलवाला होता है । (समीक्षक) तो यहां ईश्वर की बनाई पृथिवी बेडौल थी ऐसा क्यों लिखा ? (ईसाई) बेडौल का अर्थ यह है कि ऊंची नीची थी बराबर नहीं थी । (समीक्षक) फिर बराबर किसने की ? और क्या अब भी ऊंची नीची नहीं है ? इसलिये ईश्वर का काम बेडौल नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है, उसके काम में न भूल न चूक कभी हो सकती है । और बाइबल में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता है । प्रथम ईश्वर का आत्मा क्या पदार्थ है ? (ईसाई) चेतन । (समीक्षक) वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी । (ईसाई) निराकार चेतन और व्यापक है परन्तु किसी एक सनाई पर्वत, चौथा आसमान आदि स्थानों में विशेष करके रहता है । (समीक्षक) जो निराकार है तो उसको किसने देखा और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता भला जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था तब ईश्वर कहां था ? इससे यही सिद्ध होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने कुछ आत्मा के एक टुकड़े को जल पर डुलाया होगा जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता जो विभु नहीं तो जगत् की रचना धारण पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता क्योंकि जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं जो ऐसा है तो वह ईश्वर नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण कर्म स्वभावयुक्त सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव, अनादि अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा अन्यथा नहीं ॥ १ ॥

२—और ईश्वर ने कहा कि उजियाला होवे और उजियाला होगया ॥ और ईश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है ॥ पर्व १ । आ० ३ । ४ ॥

समीक्षक—क्या ईश्वर की बात जड़रूप उजियाले ने सुन ली ? जो सुनी हो तो इस समय भी सूर्य्य और दीप अग्नि का प्रकाश हमारी तुम्हारी बात क्यों नहीं सुनता ? प्रकाश जड़ होता है वह कभी किसी की बात नहीं सुन

सकता क्या जब ईश्वर ने उजियाले को देखा तभी जाना कि उजियाला अच्छा है ? पहिले नहीं जानता था जो जानता होता तो देखकर अच्छा क्यों कहता ? जो नहीं जानता था तो वह ईश्वर ही नहीं इसलिये तुम्हारी बाइबल ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है ॥ २ ॥

३—और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के ऊपर के पानियों से विभाग किया और ऐसा होगया । और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और विहान दूसरा दिन हुआ ॥ पर्व १ । आ० ६ । ७ । ८ ॥

समीक्षक—क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली ? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहां ? प्रथम आयत में आकाश को सृजा था पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ । जो आकाश को स्वर्ग कहा तो वह सर्वव्यापक है इसलिये सर्वत्र स्वर्ग हुआ फिर ऊपर को स्वर्ग है यह कहना व्यर्थ है । जब सूर्य्य उत्पन्न ही नहीं हुआ था तो पुनः दिन और रात कहां से होगई ऐसी असम्भव बातें आगे की आयतों में भरी हैं ॥ ३ ॥

४—तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें ॥ तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया ॥ और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया ॥ पर्व १ । आ० २६ । २७ । २८ ॥

समीक्षक—यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्तिवाला किया पुनः वह अनित्य क्यों नहीं ? और आदम को उत्पन्न कहां से किया ? (ईसाई) मट्टी से बनाया । (समीक्षक) मट्टी कहां से बनाई ? (ईसाई) अपनी कुदरत

अर्थात् सामर्थ्य से। (समीक्षक) ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन ? (ईसाई) अनादि है। (समीक्षक) जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो ? (ईसाई) सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना कोई वस्तु नहीं थी। (समीक्षक) जो नहीं थी तो यह जगत् कहां से बना ? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण ? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था और जो गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण, कर्म, स्वभाववाला होता, उसके गुण, कर्म, स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना किन्तु जगत् के कारण अर्थात् परमाणु आदि नामवाले जड़ से बना है, जैसी कि जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रों में लिखी है वैसी ही मान लो जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है, जो आदम के भीतर का स्वरूप जीव और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं ? क्योंकि जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिये ॥ ४ ॥

५—तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूल से आदम को बनाया और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूँका और आदम जीवता प्राण हुआ ॥ और परमेश्वर ईश्वर ने अदन में पूर्व की ओर एक बारी लगाई और उस आदम को जिसे उसने बनाया था उसमें रक्खा ॥ और उस बारी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया ॥ पर्व २। आ० ७। ८। ९ ॥

समीक्षक—जब ईश्वर ने अदन में वाड़ी बनाकर उसमें आदम को रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको पुनः यहां से निकालना पड़ेगा ? और जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा ? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न ? जो भिन्न था तो ईश्वर आदम के स्वरूप में नहीं बना जो एक है तो आदम और ईश्वर एक से हुए

और जो एक से हैं तो आदम के सदृश जन्म, मरण, वृद्धि, क्षय, क्षुधा, तृषा आदि दोष ईश्वर में आये, फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है ? इसलिये यह तौरेत की बात ठीक नहीं विदित होती और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है ॥ ५ ॥

६—और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सोगया तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी सन्ति मांस भर दिया और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम के पास लाया ॥ पर्व २ । आ० २१ । २२ ॥

समीक्षक—जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया ? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया ? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से नर नाम भी होना चाहिये और उनमें परस्पर प्रेम भी रहे जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे वैसे पुरुष के साथ स्त्री भी प्रेम करे । देखो विद्वान् लोगो ! ईश्वर की कैसी पदार्थविद्या अर्थात् "फिलासफी" चिलकती है ! जो आदम की एक पसली निकाल कर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती ? और स्त्री के शरीर में एक पसली होनी चाहिये क्योंकि वह एक पसली से बनी है क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ? इसलिये यह बाइबल का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है ॥ ६ ॥

७—अब सर्प्प भूमि के हर एक पशु से जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था धूर्त था और उसने स्त्री से कहा क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बारी के हर एक पेड़ से न खाना ॥ और स्त्री ने सर्प्प से कहा कि हम तो इस बारी के पेड़ों का फल खाते हैं । परन्तु उस पेड़ का फल जो बारी के बीच में है ईश्वर ने कहा कि तुम उसे न खाना और न छूना न हो कि मरजाओ । तब सर्प्प ने स्त्री से कहा कि तुम निश्चय न मरोगे । क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उसे खाओगे तुम्हारी आंखें खुल जायँगी और तुम भले बुरे

की पहिचान में ईश्वर के समान हो जाओगे। और जब स्त्री ने देखा वह पेड़ खाने में सस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति को भी दिया और उसने खाया तब उन दोनों की आंखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं सो उन्होंने अंजीर के पत्तों को मिला के सिया और अपने लिये ओढ़ना बनाया तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प्प से कहा कि जो तू ने यह किया है इस कारण तू सारे ढोर और हर एक बन के पशु से अधिक स्रापित होगा तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवन भर धूल खाया करेगा ॥ और मैं तुझमें और स्त्री में तेरे वंश और उसके वंश में वैर डालूंगा वह तेरे शिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा ॥ और उसने स्त्री को कहा कि मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊंगा, तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति पर होगी और वह तुझ पर प्रभुता करेगा ॥ और उसने आदम से कहा कि तू ने जो अपनी पत्नी को शब्द माना है और जिस पेड़ से मैंने तुझे खाने को बर्जा था तूने खाया है इस कारण भूमि तेरे लिये स्रापित है अपने जीवन भर तू उससे पीड़ा के साथ खायगा ॥ और वह कांटे और ऊंटकटारे तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का साग पात खायगा ॥ तौरेत उत्पत्ति० पर्व ३। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। १४। १५। १६। १७। १८॥

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस धूर्त सर्प्प अर्थात् शैतान को क्यों बनाता ? और जो बनाया तो वही ईश्वर अपराध का भागी है क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता ? और वह पूर्व जन्म नहीं मानता तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया ? और सच पूछो तो वह सर्प्प नहीं था किन्तु मनुष्य था क्योंकि जो मनुष्य न होता तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता ? और जो आप झूठा और दूसरे को झूठ में चलावे उसको शैतान कहना चाहिये सो यहां शैतान सत्यवादी और इससे उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा और ईश्वर ने आदम और हव्वा से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे जब वह पेड़

ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था तो उसके फल खाने से क्यों बर्जा और जो बर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकाने वाला ठहरा। क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुखकारक थे अज्ञान और मृत्युकारक नहीं, जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किसलिये की थी ? जो अपने लिये की तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था ? और जो दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता, क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया ? ऐसी बातों से मनुष्य छली कपटी होता है तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ ? क्योंकि जो कोई दूसरे से छल कपट करेगा वह छली कपटी क्यों न होगा ? और जो इन तीनों को शाप दिया वह विना अपराध से है पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ और यह शाप ईश्वर को होना चाहिये क्योंकि वह झूठ बोला और उनको बहकाया यह "फ़िलासफ़ी" देखो क्या विना पीड़ा के गर्भधारण और बालक का जन्म हो सकता था ? और विना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता है ? क्या प्रथम कांटे आदि के वृक्ष न थे ? और जब शाक पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ तो जो उत्तर में मांस खाना बाइबल में लिखा वह झूठा क्यों नहीं ? और जो वह सच्चा हो तो यह झूठा है जब आदम का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं ? भला ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के सामने योग्य हो सकता है ? ॥ ७ ॥

८—और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि देखो ! आदम भले बुरे के जानने में हम में से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे और अमर होजाय सो उसने आदम को निकाल दिया और अदन की बारी की पूर्व ओर करोबीम चमकते हुए खड्ग जो चारों ओर घूमते थे, लिये हुए ठहराये जिनसे जीवन के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें ॥ पर्व ३ । आ० २२ । २४ ॥

समीक्षक—भला ! ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में हमारे तुल्य हुआ ? क्या यह बुरी बात हुई ? यह शङ्का ही क्यों पड़ी ? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता परन्तु इस लेख से यह भी सिद्ध हो सकता है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु मनुष्य विशेष था, बाइबल में जहां कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है, अब देखो ! आदम के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दुःखी हुआ और फिर अमर वृक्ष के फल खाने में कितनी ईर्ष्या की, और प्रथम जब उसको बारी में रक्खा तब उसको भविष्यत् का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा इसलिये ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था और चमकते खड्ग का पहिरा रक्खा यह भी मनुष्य का काम है ईश्वर का नहीं ॥ ८ ॥

९—और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेट लाया ॥ और हाबील भी अपनी झुंड * में से पहिलौठी और मोटी २ भेड़ लाया और परमेश्वर ने हाबील और उसकी भेट का आदर किया परन्तु काइन का, उसकी भेट का आदर न किया इसलिये काइन अतिकुपित हुआ और अपना मुँह फुलाया ॥ तब परमेश्वर ने काइन से कहा कि तू क्यों क्रुद्ध है और तेरा मुंह क्यों फूल गया ॥ तौ० पर्व ४ । आ० ३ । ४ । ५ । ६ ॥

समीक्षक—यदि ईश्वर मांसाहारी न होता तो भेड़ की भेट और हाबील का सत्कार और काइन का तथा उसकी भेट का तिरस्कार क्यों करता ? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबील के मृत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ और जैसे आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं वैसे ही ईसाइयों के ईश्वर की बातें हैं बग़ीचे में आना जाना उसका बनाना भी मनुष्यों का कर्म है इससे विदित होता है कि यह बाइबल मनुष्यों की बनाई है ईश्वर की नहीं ॥ ९ ॥

१०—जब परमेश्वर ने काइन से कहा तेरा भाई हाबिल कहां है और वह

* भेड़ बकरियों के झुंड ॥

बोला मैं नहीं जानता क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूं ।। तब उसने कहा तूने क्या किया तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है ।। और अब तू पृथिवी से स्रापित है ।। तौ० पर्व० ४ । आ० ९ । १० । ११ ।।

समीक्षक—क्या ईश्वर काइन से विना पूछे हाबिल का हाल नहीं जानता था और लोहू का शब्द भूमि से कभी किसी को पुकार सकता है ? ये सब बातें अविद्वानों की हैं इसीलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है ।। १० ।।

११—और हनूक मतूसिलह की उत्पत्ति के पीछे तीनसौ वर्षलों ईश्वर के साथ साथ चलता था ।। तौ० पर्व ५ । आ० २२ ।।

समीक्षक—भला ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य न होता तो हनूक उसके साथ २ क्यों चलता ! इससे जो वेदोक्त निराकार ईश्वर है उसी को ईसाई लोग मानें तो उनका कल्याण होवे ।। ११ ।।

१२—और उनसे बेटियां उत्पन्न हुईं ।। तो ईश्वर के पुत्रों ने आदम की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें व्याहा ।। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदम की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए जो बलवान् हुए जो आगे से नामी थे ।। और ईश्वर ने देखा कि आदम की दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है ।। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर पछताया और उसे अतिशोक हुआ ।। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को जिसे मैंने उत्पन्न किया आदमी से ले के पशुनलों और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूंगा क्योंकि उन्हें बनाने से मैं पछताता हूं ।। तौ० पर्व ६ । आ० १ । २ । ४ । ५ । ६ । ७ ।।

समीक्षक—ईसाइयों से पूछना चाहिये कि ईश्वर के बेटे कौन हैं ? और ईश्वर की स्त्री, सास, श्वसुर, साला और सम्बन्धी कौन हैं क्योंकि अब तो आदमी की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ और

जो उनसे उत्पन्न होवे हैं वे पुत्र और प्रपौत्र हुए क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है ? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जंगली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है, वह ईश्वर ही नहीं जो सर्वज्ञ न हो न भविष्यत् की बात जाने वह जीव है क्या जब सृष्टि की थी तब आगे मनुष्य दुष्ट होंगे ऐसा नहीं जानता था ? और पछताना अति शोकादि होना भूल से काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है कि ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान् योगी भी नहीं था नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अतिशोकादि से पृथक् हो सकता था। भला पशु पक्षी भी दुष्ट होगये यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता ? इसलिये यह न ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख शोकादि से रहित "सच्चिदानन्दस्वरूप" है, उसको ईसाई लोग मानते वा अब भी मानें तो अपने मनुष्यजन्म को सफल कर सकें ॥ १२ ॥

१३—उस नाव की लम्बाई तीनसौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीस हाथ की होवे ॥ तू नाव में जाना तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरी बेटों की पत्नियां तेरे साथ और सारे शरीरों में से जीवता जन्तु दो २ अपने साथ नाव में लेना जिससे वे तेरे साथ जीते रहें वे नर और नारी होवें ॥ पंछी में से उसके भांति २ के और ढोर * में से उसके भांति २ के और पृथिवी के हरएक रेंगवैयों में से भांति २ के हरएक में से दो २ तुझ पास आवें जिससे जीते रहें ॥ और तू अपने लिये खाने को सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर वह तुम्हारे और उनके लिये भोजन होगा ॥ सो ईश्वर की सारी आज्ञा के समान नूह ने किया ॥ तौ० पर्व ६ । आ० १५ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ ॥

समीक्षक—भला कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है ? क्योंकि इतनी बड़ी चौड़ी ऊंची नाव में हाथी, हथनी, ऊंट, ऊंटनी आदि क्रोड़ों जन्तु और उनके खाने पीने की चीज़ें वे सब

* चौपाये ॥

कुटुम्ब के भी समा सकते हैं ? यह इसीलिये मनुष्यकृत पुस्तक है जिसने यह लेख किया है वह विद्वान् भी नहीं था ॥ १३ ॥

१४—और नूह परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हरएक पवित्र पंछियों में से लिये और होम की भेट उस वेदी पर चढ़ाई और परमेश्वर ने सुगन्ध सूँघा और परमेश्वर ने अपने मन में कहा कि आदमी के लिये मैं पृथिवी को फिर कभी स्राप न दूंगा। इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी लड़काई से बुरी है और जिस रीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा फिर कभी न मारूंगा ॥ तौ० पर्व ८। आ० २०। २१ ॥

समीक्षक—वेदी के बनाने, होम करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से बाइबल में गई हैं क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिससे सुगन्ध सूंघा ? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है ? कि कभी स्राप देता है और कभी पछताता है, कभी कहता है स्राप न दूंगा, पहिले दिया था और फिर भी देगा प्रथम सब को मारडाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा !!! ये बातें सब लड़कों की सी हैं ईश्वर की नहीं और न किसी विद्वान् की क्योंकि विद्वान् की भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है ॥ १४ ॥

१५—और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और उन्हें कहा ॥ कि हरएक जीता चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिये होगा मैंने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु तुम्हें दीं केवल मांस उसके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना ॥ तौ० पर्व ९। आ० १।३।४ ॥

समीक्षक—क्या एक को प्राणकष्ट देकर दूसरों को आनन्द कराने से दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है ? जो माता पिता एक लड़के को मरवाकर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों ? इसी प्रकार यह बात है क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाया है इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं ? ॥ १५ ॥

१६—और सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी ॥ फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्गलों पहुंचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न होजायें ॥ तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्मट के जिसे आदम के सन्तान बनाते थे देखने को उतरा ॥ तब परमेश्वर ने कहा कि देखो ये लोग एक ही हैं और उन सब की एक ही बोली है अब वे ऐसा २ कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे ॥ आओ हम उतरें और वहां उनकी भाषा को गड़बड़ावें जिससे एक दूसरे की बोली न समझें ॥ तब परमेश्वर ने उन्हें वहां से सारी पृथिवी पर छिन्न भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे ॥ तौ० पर्व ११ । आ० १ । ४ । ५ । ६ । ७ । ८ ॥

समीक्षक—जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी उस समय सब मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा परन्तु क्या किया जाय यह ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने सब की भाषा गड़बड़ा के सबका सत्यानाश किया उसने यह बड़ा अपराध किया ! क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है ? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सनाई पहाड़ आदि पर रहता था और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था यह विना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात और यह ईश्वरोक्त पुस्तक क्योंकर हो सकता है ? ॥ १६ ॥

१७—तब उसने अपनी पत्नी सरी से कहा कि देख मैं जानता हूं तू देखने में सुन्दर स्त्री है ॥ इसलिये यों होगा कि जब मिश्री तुझे देखें तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और मुझे मार डालेंगे परन्तु तुझे जीती रक्खेंगे ॥ तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूं जिससे तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहे ॥ तौ० पर्व १२ । आ० ११ । १२ । १३ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! अबिरहाम बड़ा पैग़म्बर ईसाई और मुसलमानों

का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं, भला जिनके ऐसे पैग़म्बर हों उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके ? ॥ १७ ॥

१८—और ईश्वर ने अबिरहाम से कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियों में मेरे नियम को माने तुम मेरा नियम जो मुझ से और तुम से और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह है कि तुम में से हरएक पुरुष का ख़तनः किया जाय । और तुम अपने शरीर की खलड़ी काटो और मेरे और तुम्हारे मध्य में नियम का चिह्न होगा और तुम्हारी पीढ़ियों में रहे एक आठ दिन के पुरुष का ख़तनः किया जाय जो घर में उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशी से जो तेरे वंश का न हो ॥ रूपे से मोल लिया जाय जो तेरे घर में उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूप से मोल लिया गया हो अवश्य उसका ख़तनः किया जाय और मेरा नियम तुम्हारे मांस में सर्वदा नियम के लिये होगा । और जो अख़तनः बालक जिसकी खलड़ी का ख़तनः न हुआ हो सो प्राणी अपने लोग से कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है ॥ तौ० पर्व १७ । आ० ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ ॥

समीक्षक—अब देखिये ईश्वर की अन्यथा आज्ञा कि जो यह ख़तनः करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि सृष्टि में बनाता ही नहीं और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है जैसा आंख के ऊपर का चमड़ा क्योंकि वह गुप्तस्थान अतिकोमल है जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी के भी काटने और थोड़ीसी चोट लगने से बहुतसा दुःख होवे और वह लघुशङ्का के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों में न लगे इत्यादि बातों के लिये इसका काटना बुरा है और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं करते ? यह आज्ञा सदा के लिये है इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि व्यवस्था के पुस्तक का एक विन्दु भी झूठा नहीं है मिथ्या होगई इसका सोच विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते ॥१८॥

१९—जब ईश्वर अबिरहाम से बातें कर चुका तो ऊपर चला गया ॥ तौ० पर्व १७ । आ० २२ ॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता जाता रहता था यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है ॥ १९ ॥

२०—फिर ईश्वर ने उसे ममरे के बलूतों में दिखाई दिया और वह दिन को घाम के समय में अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था ॥ और उसने अपनी आंखें उठाई और क्या देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देख के वह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेट को दौड़ा और भूमि तक दण्डवत की ॥ और कहा हे मेरे स्वामि यदि मैंने अब आप की दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूं कि अपने दास के पास से चले न जाइये ॥ इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये ॥ और मैं एक कौर रोटी लाऊं और आप तृप्त हूजिये उसके पीछे आगे बढ़िये क्योंकि आप इसीलिये अपने दास के पास आये हैं तब वे बोले कि जैसा तूं ने कहा वैसा कर और अबिरहाम तम्बू में सरः पास उतावली से गया और उसे कहा कि फुरती कर और तीन नपुआ चोखा पिसान ले के गूंध और उसके फुलके पका ॥ और अबिरहाम झुंड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा ले के दास को दिया और उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया ॥ और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया ॥ तौ० पर्व १८। आ० १।२।३।४।५।६।७।८॥

समीक्षक—अब देखिये ! सज्जन लोगो ! जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे उसके उपासक गाय बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें ? जिसको कुछ दया नहीं और मांस के खाने में आतुर रहे वह विना हिंसक मनुष्य के ईश्वर कभी हो सकता है ? और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे ? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मंडली थी उनका जो प्रधान मनुष्य था उसका नाम बाइबल में ईश्वर रक्खा होगा इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं ॥ २० ॥

२१—और परमेश्वर ने अबिरहाम से कहा कि सरः क्यों यह कहके मुस्कुराई कि जो मैं बुढ़िया हूं सचमुच बालक जनूंगी क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है ॥ तौ० पर्व १८ । आ० १३ । १४ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! कि क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि जो लड़के वा स्त्रियों के समान चिड़ता और ताना मारता है !!! ॥ २१ ॥

२२—तब परमेश्वर ने सदूममूरा पर गन्धक और आग परमेश्वर की ओर से वर्षाया ॥ और उन नगरों को और सारे चौगान को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था उलटा दिया ॥ तौ० उत्प० पर्व १९ । आ० २४ । २५ ॥

समीक्षक—अब यह भी लीला बाइबल के ईश्वर की देखिये ! कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई । क्या वे सब ही अपराधी थे जो सब को भूमि उलटा के दबा मारा ? यह बात न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है जिनका ईश्वर ऐसा काम करे उनके उपासक क्यों न करें ? ॥ २२ ॥

२३—आओ हम अपने पिता को दाख रस पिलावें और हम उसके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश चलावें । तब उन्होंने उस रात अपने पिता को दाख रस पिलाया और पहिलोठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया ॥ हम उसे आज रात भी दाखरस पिलावें तू जाके शयन कर । सोलूत की दोनों बेटियां अपने पिता से गर्भिणी हुईं ॥ तौ० उत्प० पर्व १९ । आ० ३२ । ३३ । ३४ । ३६ ॥

समीक्षक—देखिये ! पिता पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म करने से न बच सके ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं उनकी बुराई का क्या पारावार है ? इसलिये सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये ॥ २३ ॥

२४—और अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरः से भेट किया और

अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरः के विषय में किया ॥ और सरः गर्भिणी हुई ॥ तौ० उत्प० पर्व २१ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब विचारिये कि सरः से भेट कर गर्भवती की, यह काम कैसे हुआ ? क्यों विना परमेश्वर और सरः के तीसरा कोई गर्भस्थापन का कारण दीखता है ? ऐसा विदित होता है कि सरः परमेश्वर की कृपा से गर्भवती हुई !!! ॥ २४ ॥

२५—तब अविरहाम ने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखाल में जल लिया और हाजिरः के कन्धे पर धर दिया और लड़के को भी उसे सौंप के उसे विदा किया ॥ उसने लड़के को एक झाड़ी के तले डाल दिया ॥ और वह उसके सन्मुख बैठ के चिल्ला २ रोई ॥ तब ईश्वर ने उस बालक का शब्द सुना ॥ तौ० त्प० पर्व २१ । आ० १४ । १५ । १६ । १७ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि प्रथम तो सरः का पक्षपात करके हाजिरः को वहां से निकलवा दी और चिल्ला २ रोई हाजिरः और शब्द सुना लड़के का, यह कैसी अद्भुत बात है ? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है भला यह ईश्वर और ईश्वर की पुस्तक की बात कभी हो सकती है ? विना साधारण मनुष्य के वचन के इस पुस्तक में थोड़ीसी बात सत्य के सब असार भरा है ॥ २५ ॥

२६—और इन बातों के पीछे यों हुआ कि ईश्वर ने अविरहाम की परीक्षा किई और उसे कहा । हे अविरहाम ! तू अपने बेटे को अपने इकलौठे इजहाक को जिसे तू प्यार करता है ले ॥ उसे होम की भेट के लिये चढ़ा और अपने बेटे इजहाक को बांध के उसे वेदी में लकड़ियों पर धरा ॥ और अविरहाम ने छुरी लेके अपने बेटे को घात करने के लिये हाथ बढ़ाया ॥ तब परमेश्वर के दूत ने स्वर्ग पर से उसे पुकारा कि अविरहाम २ अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा उसे कुछ मत कर क्योंकि मैं जानता हूं कि तू ईश्वर से डरता है ॥ तौ० उत्प० पर्व २२ । आ० १ । २ । ६ । १० । ११ । १२ ॥

समीक्षक—अब स्पष्ट होगया कि वह बाइबल का ईश्वर अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं और अविरहाम भी एक भोला मनुष्य था नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता ? और जो बाइबल का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो उसकी भविष्यत् श्रद्धा को भी सर्वज्ञता से जान लेता इससे निश्चित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं ॥२६॥

२७—सो आप हमारी समाधिन में से चुन के एक में अपने मृतक को गाड़िये जिसतें आप अपने मृतक को गाड़ें॥ तौ० उत्प० पर्व २३ । आ० ६ ॥

समीक्षक—मुर्दों के गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है क्योंकि वह सड़ के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है । (प्रश्न) देखो ! जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं और गाड़ना जैसा कि उसको सुला देना है इसलिये गाड़ना अच्छा है । (उत्तर) जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते ? और गाड़ते भी क्यों हो ? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया अब दुर्गन्धमय मट्टी से क्या प्रीति ? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो क्योंकि किसी से कोई कहे कि तुझ को भूमि में गाड़ देवें तो वह सुन कर प्रसन्न कभी नहीं होता उसके मुख आंख और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौनसी प्रीति का काम है ? और सन्दूक में डालके गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल वायु को विगाड़ कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है दूसरा एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये इसी हिसाब से सौ हजार वा लाख अथवा क्रोड़ों मनुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है न वह खेत, न बग़ीचा और न बसने के काम की रहती है इसलिये सब से बुरा गाड़ना है, उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना क्योंकि उसको जल जन्तु उसी समय चीर फाड़ के खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़कर जगत् को दुःखदायक होगा उससे कुछ एक थोड़ा बुरा जङ्गल में छोड़ना है क्योंकि उसको मांसाहारी पशु पक्षी लूंच खायंगे तथापि जो उसके हाड़ की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्ध करेगा उतना जगत् का अनुपकार होगा और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है क्योंकि उस के सब

पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे। (प्रश्न) जलाने से भी दुर्गन्ध होता है। (उत्तर) जो अविधि से जलावें तो थोड़ासा होता है परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है मुर्दे के तीन हाथ गहरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा उतार वेदी खोदकर शरीर के बराबर घी उसमें एक सेर में रत्ती भर कस्तूरी, मासा भर केशर डाल न्यून से न्यून आधमन चन्दन अधिक चाहें जितना ले अगर तगर कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा उस पर मुर्दा रख के पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक २ बीता तक भरके घी की आहुति देकर जलाना चाहिये इस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो किन्तु इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है और जो दरिद्र हो तो बीस सेर से कम घी चिता में न डाले चाहें वह भीख मांगने वा जाति वाले के देने अथवा राज से मिलने से प्राप्त हो परन्तु उसी प्रकार दाह करे और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है क्योंकि एक विश्वाभर भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों क्रोड़ों मृतक जल सकते हैं, भूमि भी गाड़ने के समान अधिक नहीं बिगड़ती और कबर के देखने से भय भी होता है इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है ॥ २७ ॥

२८—परमेश्वर मेरे स्वामी अबिरहाम का ईश्वर धन्य जिसने मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा, मार्ग में परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भाइयों के घर की ओर मेरी अगुआई किई ॥ तौ० उत्प० पर्व २४। आ० २७ ॥

समीक्षक—क्या वह अबिरहाम ही का ईश्वर था ? और जैसे आजकल विगारी व अगवे लोग अगुआई अर्थात् आगे २ चलकर मार्ग दिखलाते हैं तथा ईश्वर ने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता ? और मनुष्यों से बातें क्यों नहीं करता ? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर व ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं किन्तु जङ्गली मनुष्य की हैं ॥ २८ ॥

२९—इस्मअऐल के बेटों के नाम ये हैं—इस्मअऐल का पहिलौठा नबीत और कीदार और अदबिएल और मिबसाम और मिसमाअ और दूमः और मस्सा। हदर और तैमा, इतूर, नफीस और क़िदमः ॥ तौ० उत्प० पर्व २५। आ० १३। १४। १५॥

समीक्षक—यह इसमअऐल अबिरहाम से उसकी हाजिरः दासी का हुआ था ॥ २९ ॥

३०—मैं तेरे पिता की रुचि के समान स्वादित भोजन बनाऊंगी और तू अपने पिता के पास ले जाइयो जिसते वह खाय और अपने मरने से आगे तुझे आशीष देवे ॥ और रिवक़ः ने अपने घर में से अपने जेठे बेटे एसौ का अच्छा पहिरावा लिया और बकरी के मेम्नों का चमड़ा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर लपेटा तब यअ़्क़ूब अपने पिता से बोला कि मैं आप का पहिलौठा एसौ हूं आप के कहने के समान मैंने किया है उठ बैठिये और मेरे अहेर के मांस में से खाइये जिसते आप का प्राण मुझे आशीष दे ॥ तौ० उत्प० पर्व २७। आ० ९। १०। १५। १६। १९॥

समीक्षक—देखिये! ऐसे झूठ कपट से आशीर्वाद ले के पश्चात् सिद्ध और पैग़म्बर बनते हैं क्या यह आश्चर्य्य की बात नहीं है? और ऐसे ईसाइयों के अगुआ हुए हैं पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या न्यूनता हो? ॥ ३० ॥

३१—और यअ़्क़ूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर को जिसे उसने अपना उसीसा किया था खम्भा खड़ा किया और उस पर तेल ढाला ॥ और उस स्थान का नाम बैतएल रक्खा ॥ और यह पत्थर जो मैंने खम्भा खड़ा किया ईश्वर का घर होगा ॥ तौ० उत्प० पर्व २८। आ० १८। १९। २२॥

समीक्षक—अब देखिये! जङ्गलियों के काम, इन्हींने पत्थर पूजे और पुजवाये और इसको मुसलमान लोग "बयतलमुक़द्दस" कहते हैं क्या यही पत्थर ईश्वर का घर और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था? वाह! वाह!! जी क्या कहना है, ईसाई लोगो! महाबुत्परस्त तो तुम्हीं हो ॥ ३१ ॥

३२—और ईश्वर ने राखिल को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी सुनी और उसकी कोख को खोला और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और बोली कि ईश्वर मेरी निन्दा दूर किई ॥ तौ० उत्प० पर्व ३० । आ० २२ । २३ ॥

समीक्षक—वाह ईसाइयों के ईश्वर ! क्या बड़ा डाक्तर है स्त्रियों की कोख खोलन को कौनसे शस्त्र व औषध थे जिनसे खोली ये सब बातें अन्धाधुन्ध की हैं ॥ ३२ ॥

३३—परन्तु ईश्वर आरामी लाबनक ने स्वप्न में रात को आया और उसे कहा कि चौकस रह तू ईश्वर यअकूब को भला बुरा मत कह, क्योंकि अपने पिता के घर का निपट अभिलाषी है तूने किसलिये मेरे देवों को चुराया है ॥ तौ० उत्प० पर्व ३१ । आ० २४ । ३० ॥

समीक्षक—यह हम नमूना लिखते हैं हज़ारों मनुष्यों को स्वप्न में आया, बातें किईं, जागृत् साक्षात् मिला, खाया, पिया, आया, गया आदि बाइबल में लिखा है परन्तु अब न जाने वह है व नहीं ? क्योंकि अब किसी को स्वप्न व जागृत् में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि ये जङ्गली लोग पाषाणादि मूर्त्तियों को देव मानकर पूजते थे परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर ही को देव मानता है नहीं तो देवों का चुराना कैसे घटे ? ॥ ३३ ॥

३४—और यअकूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उससे आ-मिले ॥ और यअकूब ने उन्हें देख के कहा कि यह ईश्वर की सेना है ॥ तौ० उत्प० पर्व ३२ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब ईसाइयों के ईश्वर के मनुष्य होने में कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा क्योंकि सेना भी रखता है जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे और जहां तहां चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयो-जन है ? ॥ ३४ ॥

३५—और यअकूब अकेला रह गया और यहां पौफटेलों एक जन उससे

मल्लयुद्ध करता रहा । और जब उसने देखा कि वह उस पर प्रबल न हुआ तो उसकी जांघ को भीतर से छुआ तब यअकूब के जांघ की नस उसके संग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई ॥ तब वह बोला कि मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है और वह बोला मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे ॥ तब उसने उसे कहा कि तेरा नाम क्या ? और वह बोला कि यअकूब ॥ तब उसने कहा कि तेरा नाम आगे को यअकूब न होगा परन्तु इसरायेल क्योंकि तूने ईश्वर के आगे और मनुष्यों के आगे राजा की नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता ॥ तब यअकूब ने यह कहिके उससे पूछा कि अपना नाम बताइये और वुह बोला कि तू मेरा नाम क्यों पूछता है और उसने उसे वहां आशीष दिया ॥ और यअकूब ने उस स्थान का नाम फनूएल रक्खा क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है ॥ और जब वुह फनूएल से पार चला तो सूर्य्य की ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जांघ से लँगड़ाता था ॥ इसलिये इसरायेल के वंश उस जांघ की नस को जो चढ़ गई थी आज लों नहीं खाते क्योंकि उसने यअकूब के जांघ की नस को चढ़ गई थी छुआ था ॥ तौ० उत्प० पर्व ३२ । आ० २४ । २५ । २६ । २७ । २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ ॥

समीक्षक—जब ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है तभी तो सरः और राखल पर पुत्र होने की कृपा की भला यह कभी ईश्वर हो सकता है ? और देखो ! लीला कि एक जना नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतलावे ? और ईश्वर ने उसकी नाड़ी को चढ़ा तो दी और जीता गया परन्तु जो डाक्तर होता तो जांघ की नाड़ी को अच्छी भी करता और ऐसे ईश्वर की भक्ति से जैसा कि यअकूब लँगड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लँगड़ाते होंगे जब ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया यह बात विना शरीरवाले के कैसे हो सकती है ? यह केवल लड़कपन की लीला है ॥ ३५ ॥

३६—और यहूदाह का पहिलौठा एर परमेश्वर की दृष्टि में दुष्ट था सो परमेश्वर ने उसे मार डाला ॥ तब यहूदाह ने ओनान को कहा कि अपनी भाई

की पत्नी पास जा और उससे व्याह कर अपने भाई के लिये वंश चला ॥ और ओनान ने जाना कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपनी भाई की पत्नी पास गया तो वीर्य्य को भूमि पर गिरा दिया ॥ और उसका वह कार्य्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था इसलिये उसने उसे भी मारडाला ॥ तौ० उत्प० पर्व ३८। आ० ७। ८। ९। १० ॥

समीक्षक—अब देख लीजिये ! ये मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के ? जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मारडाला ? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न करदी और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था यह निश्चय हुआ कि नियोग की बातें सब देशों में चलती थीं ॥ ३६ ॥

तौरेत यात्रा की पुस्तक ॥

३७—जब मूसा सयाना हुआ और अपने भाइयों में से एक इबरानी को देखा कि मिश्री उसे मार रहा है ॥ तब उसने इधर उधर दृष्टि किई देखा कि कोई नहीं तब उसने उस मिश्री को मारडाला और बालू में उसे छिपा दिया ॥ जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा दो इबरानी आपुस में झगड़ रहे हैं तब उसने उस अंधेरी को कहा कि तू अपने परोसी को क्यों मारता है ॥ तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया क्या तू चाहता है कि जिस रीति से तूने मिश्री को मारडाला मुझे भी मार डाले तब मूसा डरा और भाग निकला ॥ तौ० या० प० २। आ० ११। १२। १३। १४। १५ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! जो बाइबल का मुख्य सिद्धकर्त्ता मत का आचार्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुर्गुणों से युक्त मनुष्य की हत्या करनेवाला और चोरवत् राजदंड से बचनेहारा, अर्थात् जब बात को छिपाता था तो झूठ बोलने वाला भी अवश्य होगा ऐसे को भी जो ईश्वर मिला वह पैग़म्बर बना उसने यहूदी आदि का मत चलाया वह भी मूसा ही के सदृश हुआ । इसलिये ईसाइयों के जो मूल पुरुषा हुए हैं वे सब मूसा से आदि ले करके जंगली अवस्था में थे, विद्याऽवस्था में नहीं इत्यादि ॥ ३७ ॥

३८—और फसह मेम्ना मारो ॥ और एक मूठी जूफा लेओ और उसे उस लोहू में जो बासन में है बोर के ऊपर की चोखट के और द्वार की दोनों ओर उससे छापो और तुम में से कोई बिहानलों अपने घर के द्वार से बाहर न जावे ॥ क्योंकि परमेश्वर मिस्र के मारने के लिये आरपार जायगा और जब वह ऊपर की चौखट पर और द्वार की दोनों ओर लोहू को देखे. तब परमेश्वर द्वार से बीत जायगा और नाशक तुम्हारे घरों में न जाने देगा कि मारे ॥ तौ० या० प० १२ । आ० २१ । २२ । २३ ॥

समीक्षक—भला यह जो टोने टामन करनेवाले के समान है वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है ? जब लोहू का छापा देखे तभी इसरायेल कुल का घर जाने अन्यथा नहीं । यह काम क्षुद्र बुद्धिवाले मनुष्य के सदृश है इससे यह विदित होता है कि ये बातें किसी जङ्गली मनुष्य की लिखी हैं ॥ ३८ ॥

३९—और यों हुआ कि परमेश्वर ने आधीरात को मिश्र के देश में सारे पहिलौठ को फिरा ऊन के पहिलौठे से लेके जो अपने सिंहासन पर बैठता था उस बन्धुआ के पहिलौठे लों जो बन्दीगृह में था पशुन के पहिलौठे समेत नाश किये और रात को फिरा ऊन उठा वह और उसके सब सेवक और सारे मिश्री उठे और मिश्र में बड़ा विलाप था क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा ॥ तौ० या० प० १२ । आ० २९ । ३० ॥

समीक्षक—वाह ! अच्छा आधीरात को डाकू के समान निर्दयी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के वाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आई और मिश्र में बड़ा विलाप होता रहा तो भी क्या ईसाइयों के ईश्वर के चित्त से निष्ठुरता नष्ट न हुई ? ऐसा काम ईश्वर का तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्य के भी करने का नहीं है । यह आश्चर्य नहीं क्योंकि लिखा है "मांसाहारिणः कुतो दया" जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया करने से क्या काम है ? ॥ ३९ ॥

४०—परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा ॥ इसरायेल के सन्तान से कहा

कि वे आगे बढ़ें ॥ परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उससे दो भाग कर और इसरायेल के सन्तान समुद्र के बीचों बीच से सूखी भूमि में होकर चले जायेंगे ॥ तौ० या० प० १४ । आ० १४ । १५ । १६ ॥

समीक्षक—क्योंजी आगे तो ईश्वर भेड़ों के पीछे गड़रिये के समान इस्रायेल कुल के पीछे २ डोला करता था अब न जाने कहां अन्तर्ध्यान होगया ? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर के रेलगाड़ियों की सड़क बनवा लेते जिससे सब संसार का उपकार होता और नाव आदि बनाने का श्रम छूट जाता । परन्तु क्या किया जाय ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहां छिप रहा है ? इत्यादि बहुतसी मूसा के साथ असम्भव लीला बाइबल के ईश्वर ने की हैं परन्तु यह विदित हुआ कि जैसा ईसाइयों का ईश्वर है वैसे ही उसके सेवक और ऐसी ही उसकी बनाई पुस्तक है । ऐसी पुस्तक और ऐसा ईश्वर हम लोगों से दूर रहे तभी अच्छा है ॥ ४० ॥

४१—क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूं पितरों के अपराध का दण्ड उनके पुत्रों को जो मेरा वैर रखते हैं उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूं ॥ तौ० या० प० २० । आ० ५ ॥

समीक्षक—भला यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से ४ पीढ़ी तक दण्ड देना अच्छा समझना । क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के अच्छे सन्तान नहीं होते ? जो ऐसा है तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा ? और जो पांचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा, विना अपराध किसी को दण्ड देना अन्यायकारी की बात है ॥ ४१ ॥

४२—विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर ॥ छः दिनलों तू परिश्रम कर ॥ और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है । परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीष दी ॥ तौ० या० प० २० । आ० ८ । ९ । १० । ११ ॥

समीक्षक—क्या रविवार एक ही पवित्र और छः दिन अपवित्र हैं ? और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक बड़ा परिश्रम किया था ? कि जिससे थक के सातवें दिन सोगया ? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनों को क्या दिया ? अर्थात् शाप दिया होगा ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है ? भला रविवार में क्या गुण और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्र तथा वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिये ! ॥ ४२ ॥

४३—अपने परोसी पर झूठी साक्षी मत दे ॥ अपने परोसी की स्त्री और उसके दास उसकी दासी और उस के बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे परोसी की है लालच मत कर ॥ तौ० या० प० २० । आ० १६ । १७ ॥

समीक्षक—वाह ! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर, जैसी यह केवल मतलबसिन्धु और पक्षपात की बात है ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर अवश्य होगा । यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्र को परोसी मानते हैं तो सिवाय मनुष्यों के अन्य कौन स्त्री और दासी वाले हैं कि जिनको अपरोसी गिनें ? इसलिये ये बातें स्वार्थी मनुष्यों की हैं ईश्वर की नहीं ॥ ४३ ॥

४४—सो अब लड़कों में से हरएक बेटे को और हरएक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो ॥ परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं उन्हें अपने लिये जीती रक्खो ॥ तौ० गिनती० प० ३१ । आ० १७ । १८ ॥

समीक्षक—वाहजी ! मूसा पैग़म्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है ! कि जो स्त्री, बालक, वृद्ध और पशु आदि की हत्या करने से भी अलग न रहे और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था, क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये मंगवाता व उनको ऐसी निर्दय व विषयीपन की आज्ञा क्यों देता ? ॥ ४४ ॥

४५–जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वह मरजाय वह निश्चय घात किया जाय ॥ और वह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो तब मैं तुझे भागने का स्थान बता दूंगा ॥ तौ० या० प० २१। आ० १२। १३ ॥

समीक्षक–जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है तो मूसा एक आदमी को मार गाड़कर भाग गया था उसको यह दंड क्यों न हुआ ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के निमित्त सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया ? ॥ ४५ ॥

४६–और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिये चढ़ाया ॥ और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रों में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का ॥ और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिस परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है ॥ और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि पहाड़ पर मुझ पास आ और वहां रह और तुझे पत्थर की पटियां और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है दूंगा ॥ तौ० या० प० २४। आ० ५। ६। ८। १२ ॥

समीक्षक–अब देखिये ! ये सब जंगली लोगों की बातें हैं व नहीं ? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता और वेदी पर लोहू छिड़कता यह कैसी जंगलीपन, असभ्यता की बात है ? जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उस के भक्त गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें ? और जगत् की हानि क्यों न करें ? ऐसी २ बुरी बातें बाइबल में भरी हैं इसी के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं। और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था जब वह खुदा स्याही, लेखनी, काग़ज़ नहीं बना जानता और न उस को प्राप्त था इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख २ देता था और इन्हीं जंगलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा था ॥ ४६ ॥

४७–और बोला कि तू मेरा रूप नहीं देख सकता क्योंकि मुझे देखके कोई मनुष्य न जियेगा ॥ और परमेश्वर ने कहा कि देख एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह ॥ और यों होगा कि जब मेरा विभव चलक निकलेगा तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में रक्खूंगा और जबलों निकलूं तुझे अपने हाथ ले ढांपूंगा ॥ और अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा ॥ तौ० या० प० ३३ । आ० २० । २१ । २२ । २३ ॥

समीक्षक–अब देखिये ! ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी और मूसा से कैसा प्रपञ्च रच के आप स्वयं ईश्वर बन गया जो पीछा देखेगा रूप न देखेगा तो हाथ से उसको ढांप दिया भी न होगा जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा ? ॥ ४७ ॥

लय व्यवस्था की पुस्तक तौ० ।

४८–और परमेश्वर ने मूसा को बुलाया और मण्डली के तम्बू में से यह वचन उसे कहा कि ॥ इसराएल के सन्तान में बोल और उन्हें कह यदि कोई तुम में से परमेश्वर के लिये भेंट लावे तो तुम ढोर में से अर्थात् गाय बैल और भेड़ बकरी में से अपनी भेंट लाओ ॥ तौ० ल० व्यवस्था की पुस्तक प० १ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक–अब विचारिये ! ईसाइयों का परमेश्वर गाय बैल आदि की भेट लेने वाला जो कि अपने लिये बलिदान कराने के लिये उपदेश करता है वह बैल गाय आदि पशुओं के लोहू मांस का भूखा प्यासा है वा नहीं ? इसीसे वह अहिंसक और ईश्वरकोटि में गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है ॥ ४८ ॥

४९–और वह उस बैल को परमेश्वर के आगे बलि करे और हारून के बेटे याजक लोहू को निकट लावें और लोहू को यज्ञ वेदी के चारों ओर जो

मण्डली के तम्बू के द्वार पर हैं छिड़कें ॥ तब वह उस भेंट के बलिदान की खाल निकाले और उसे टुकड़ा २ करे ॥ और हारून के बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खें और उसपर लकड़ी चुनें ॥ और हारून के बेटे याजक उसके टुकड़ों को और शिर और चिकनाई को उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदी की आग पर हैं विधि से धरें ॥ जिससे बलिदान की भेंट होवे जो आग से परमेश्वर के सुगन्ध के लिये भेंट किया गया ॥ तौ० लयव्यवस्था की पुस्तक प० १। आ० ५। ६। ७। ८। ९॥

समीक्षक–तनिक विचारिये ! कि बैल को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहू को चारों ओर छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है ? इसीसे न बाइबल ईश्वरकृत और न वह जङ्गली मनुष्य के सदृश लीलाधारी ईश्वर हो सकता है। ४९॥

५०–फिर परमेश्वर मूसा से यह कहके बोला यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगों के पाप के समान पाप करे तो वह अपने पाप के कारण जो उसने किया है अपने पाप की भेंट के लिये निसखोट एक बछिया परमेश्वर के लिये लावे ॥ और बछिया के शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछिया को परमेश्वर के आगे बली करे ॥ लै व्य० तौ० प० ४। आ० १। ३। ४॥

समीक्षक–अब देखिये ! पापों के छुड़ाने के प्रायश्चित्त, स्वयं पाप करे गाय आदि उत्तम पशुओं की हत्या करे और परमेश्वर करवावे धन्य हैं ईसाई लोग कि ऐसी बातों के करने करानेहारे को भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं !!! ॥ ५०॥

५१–जब कोई अध्यक्ष पाप करे ॥ तब वह बकरी का निसखोट नर मेम्ना अपनी भेंट के लिये लावे ॥ और उसे परमेश्वर के आगे बली करे यह पाप की भेंट है ॥ तौ० लै प० ४। आ० २२। २३। २४॥

समीक्षक—वाहजी ! वाह !! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे ? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बदले में गाय, बछिया, बकरे आदि के प्राण लेवें, तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शङ्कित नहीं होते । सुनो ईसाई लोगो ! अब तो इस जङ्गली मत को छोड़ के सुसभ्य धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो ॥ ५१ ॥

५२—और यदि उसे भेड़ लाने की पूंजी न हो तो वह अपने किये अपराध के लिये दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे ॥ और उसका शिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे ॥ उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करे और उसके लिये क्षमा किया जायगा पर यदि उसे दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो सेर भर चोखा पिसान का दशवां हिस्सा पाप की भेंट के लिये लावे* उस पर तेल न डाले ॥ और वह क्षमा किया जायगा ॥ तौ० लै० प० ५ । आ० ७ । ८ । १० । ११ । १२ । १३ ॥

समीक्षक—अब सुनिये ! ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य भी न डरता होगा और न दरिद्र क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है, एक यह बात ईसाइयों की बाइबल में बड़ी अद्भुत है कि

* इस ईश्वर को धन्य है ! कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान [आटे] तक लेने का नियम किया । अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे "गरदन मरोड़वा के" लेता था अर्थात् गर्दन तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े इन सब बातों के देखने से विदित होता है कि जङ्गलियों में कोई चतुर पुरुष था वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया, जो जङ्गली अज्ञानी थे उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया । अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खाने के लिये पशु पक्षी और अन्नादि मंगा लिया करता था और मौज करता था । उसके दूत फ़रिश्ते काम किया करते थे । सज्जन लोग विचारें कि कहां तो बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और "अच्छे" पिसान का निवाला ईश्वर और कहां सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर ? ।

विना कष्ट किये पाप से पाप छूट जाय क्योंकि एक तो पाप किया और दूसरे जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस खाया और पाप भी छूट गया, भला कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़फता होगा तब भी ईसाइयों को दया नहीं आती । दया क्योंकर आवे इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है और जब सब पापों का ऐसा प्रायश्चित्त है तो ईसा के विश्वास से पाप छूट जाता है यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं ॥ ५२ ॥

५३—सो उसी बलिदान की खाल उसी याजक की होगी जिसने उसे चढ़ाया और समस्त भोजन की भेंट जो तन्दूर में पकाई जावें और सब जो कड़ाही में अथवा तवे पर सो उसी याजक की होगी ॥ तौ० लै० प० ७ । आ० ८ । ९ ॥

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवी के भोपे और मंदिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके पुजारियों की पोपलीला उससे सहस्रगुणा बढ़कर है क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें फिर ईसाइयों ने खूब मौज उड़ाई होगी ? और अब भी उड़ाते होंगे ? भला कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे ऐसा कभी हो सकता है ? वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं । परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता, इसी से यह बाइबल ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके माननेवाले धर्मज्ञ कभी नहीं हो सकते, ऐसी ही सब बातें लयव्यवस्था आदि पुस्तकों में भरी हैं कहां तक गिनावें ॥ ५३ ॥

गिनती की पुस्तक ।

५४—सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खैंचे हुये मार्ग में खड़ा देखा तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआमने गदही को लाठी से मारा ॥ तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन बार मारा ॥ तौ० गि० प० २२ । आ० २३ । २८ ॥

समीक्षक—प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आजकल विशप पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं ? यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं ? वा रोगी अथवा अन्य भूगोल में चले गये ? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये वा अब ईसाइयों से रुष्ट होगये ? अथवा मर गये ? विदित नहीं होता कि क्या हुआ अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते तो तब भी नहीं थे और न दीखते होंगे किन्तु ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं ॥ ५४ ॥

समुएल की दूसरी पुस्तक ।

५५—और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कहके नातन को पहुंचा ।. कि जा और मेरे सेवक दाऊद से कह कि परमेश्वर यों कहता है मेरे निवास के लिये तू एक घर बनावेगा क्यों जब से इसरायल के सन्तान को मिश्र से निकाल लाया मैंने तो आज के दिनलों घर में वास न किया परन्तु तंब में और डेरे में फिरा किया ॥ तौ० समुएल की दूसरी पु० प० ७ । आ० ४ । ५ । ६ ॥

समीक्षक—अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है । और उलहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया इधर उधर डोलता फिरा तो अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं, क्यों ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में लज्जा नहीं आती ? परन्तु क्या करें विचारे फंस ही गये अब निकलने के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है ॥ ५५ ॥

राजाओं का पुस्तक ।

५६—और बाबुल के राजा नबूखुदनजर के राज्य के उन्नीसवें वर्ष के पांचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसर अद्दान जो निज सेना का प्रधान अध्यक्ष था यरूसलम में आया और उसने परमेश्वर का मन्दिर

और राजा का भवन और यरूसलम के सारे घर और हरएक बड़े घर को जला दिया और कसदियों की सारी सेना ने जो उस निज सेना के अध्यक्ष के साथ थी यरूसलम की भीतों को चारों ओर से ढादिया ॥ तौ० रा० प० २५ । आ० ८ । ९ । १० ॥

समीक्षक—क्या किया जाय ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था उसमें आराम करता होगा, परन्तु नबूसर अदान ने ईश्वर के घर को नष्ट भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न करसकी प्रथम तो इनका ईश्वर बड़ी लड़ाइयां मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला तुड़वा बैठा न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा ? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये ? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहां उड़ गया ? यदि यह बात सच्ची हो तो जो २ विजय की बातें प्रथम लिखीं सो २ सब व्यर्थ ही गईं क्या मिस्र के लड़के लड़कियों के मारने में ही शूरवीर बना था अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा ? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा कराली ऐसे ही हज़ारों इस पुस्तक में निकम्मी कहानियां भरी हैं ॥ ५६ ॥

ज़बूर दूसरा भाग ।

कालके समाचार की पहिली पुस्तक ।

५७—सो परमेश्वर मेरे ईश्वर ने इसराएल पर मरी भेजी और इसराएल में से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये ॥ काल० दू० २ । प० २१ । आ० १४ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! इसराएल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला जिस इसराएल कुल को बहुतसे वर दिये थे और रात दिन जिन के पालन में डोलता था अब झट क्रोधित होकर मरी डालके सत्तर सहस्र मनुष्यों को मारडाला जो यह किसी कविने लिखा है सत्य है किः—

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टा रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे ।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः ॥ ६ ॥

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण क्षण में प्रसन्न अप्रसन्न होवे उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है वसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है ॥ ५७ ॥

ऐयूब की पुस्तक ।

५८—और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ खड़े हुए और शैतान भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ । और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि तू कहां से आता है तब शैतान ने उत्तर दे के परमेश्वर से कहा कि पृथिवी पर घूमते और इधर उधर से फिरते चला आता हूं । तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी में कोई नहीं है वह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अबलों अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है । तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि चाम के लिये चाम हां जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा । परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़ मांस को छू तब वह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि देख वह तेरे हाथ में है केवल उसके प्राण को बचा । तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को शिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा ॥ जबूर ऐयू० प० २ । आ० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ७ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है, न शैतान को दंड, न अपने भक्तों को बचा सकता है और न दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है । एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है और ईसाइयों का ईश्वर भी सर्वज्ञ नहीं है जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता ? ॥ ५८ ॥

उपदेश की पुस्तक ।

५९–हां मेरे अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है और मैंने बुद्धि और बौहापन और मूढ़ता जानने को मन लगाया मैंने जान लिया कि यह भी मन का भूंभट है । क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है ॥ ज० उ० प० १ । आ० १६ । १७ । १८ ॥

समीक्षक–अब देखिये ! जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं उनको दो मानते हैं और बुद्धि-वृद्धि में शोक और दुःख मानना विना अविद्वानों के ऐसा लेख कौन कर सकता है ? इसलिये यह बाइबल ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं ह ॥ ५९ ॥

यह थोड़ासा तौरेत ज़बूर के विषय में लिखा, इसके आगे कुछ मत्तीरचित आदि इञ्जील के विषय में खा लिजाता है कि जिसको ईसाई लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं जिसका नाम इञ्जील रक्खा है उसकी परीक्षा थोड़ीसी लिखते हैं कि यह कैसी है ।

मत्तीरचित इंजील ।

६०–यीशुख्रीष्ट का जन्म इस रीति से हुआ उसकी माता मरियम की यूसफ़ से मंगनी हुई थी पर उनके इकट्ठा होने के पहिले ही वह देख पड़ी कि पवित्र आत्मा से गर्भवती है देखो परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा, हे दाऊद के सन्तान यूसफ़ तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर क्योंकि जो गर्भ रहा है सो पवित्र आत्मा से है ॥ इं० प० १ । आ० १८ । २० ॥

समीक्षक–इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं इन बातों का मानना मूर्ख मनुष्य जंगलियों का काम है सभ्य विद्वानों का नहीं, भला जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है ? जो परमेश्वर भी नियम को उलटा पलटा करे तो उसकी

आज्ञा को कोई न माने और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है, ऐसे तो जिस २ कुमारिका के गर्भ रहजाय तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है और झूठ मूठ कहदे कि परमेश्वर के दूत ने मुझ को स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है, जैसा यह असंभव प्रपंच रचा है वैसा ही सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है, ऐसी २ बातों को आंख के अन्धे गांठ के पूरे लोग मानकर भ्रमजाल में गिरते हैं यह ऐसी बात हुई होगी—किसी पुरुष के साथ समागम होने से गर्भवती मरियम हुई होगी, उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असंभव बात उड़ादी होगी कि इस में गर्भ ईश्वर की ओर से है ॥ ६० ॥

६१—तब आत्मा यीशु को जङ्गल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा कीजाय वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ तब परीक्षा करनेहारे ने कहा कि जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कहदे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें ॥ इं० प० ४ । आ० १ । २ । ३ ॥

समीक्षक—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता स्वयं जान लेता भला किसी ईसाई को आजकल चालीस रात चालीस दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा ? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी नहीं तो शैतान के सामने पत्थर की रोटियां क्यों न बना देता ? और आप भूखा क्यों रहता ? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाये हैं उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता क्योंकि वह सर्वज्ञ और उसके सब काम विना भूल चूक के हैं ॥ ६१ ॥

६२—उसने उनसे कहा मेरे पीछे आओ मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा वे तुरन्त जालों को छोड़ के उसके पीछे हो लिये ॥ इं० प० ४ । आ० १९ । २० । २१ ॥

समीक्षक—विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो तौरेत में दश आज्ञाओं में लिखा है कि (सन्तान लोग अपने माता पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उमर बढ़े सो) ईसा ने न अपने माता पिता की सेवा की और दूसरे को भी माता पिता की सेवा से छुड़ाये इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा और यह भी विदित हुआ कि ईसाने मनुष्यों के फँसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत में फँसाकर अपना प्रयोजन साधें जब ईसा ही ऐसा था तो आजकल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फँसावें तो क्या आश्चर्य है ?, क्योंकि जैसे बड़ी २ और बहुत मच्छियों को जाल में फँसानेवाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है ऐसे ही जो बहुतों को अपने मत में फँसाले उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसी से ये लोग जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा न सुना उन बिचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फँसा के उस के मा बाप कुटुम्ब आदि से पृथक् कर देते हैं इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि स्वयं इनके भ्रमजाल से बचकर अन्य अपने भोले भाइयों के बचाने में तत्पर रहें ॥ ६२ ॥

६३—तब यीशु सारे गालील देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हरएक रोग और हर व्याधि को चङ्गा करता हुआ फिरा किया। सब रोगियों को जो नानाप्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगीवाले और अर्द्धाङ्गियों को उस पास लाये और उसने चङ्गा किया ॥ इं० म० प० ४। आ० २३। २४। २५॥

समीक्षक—जैसे आजकल पोपलीला निकालने मन्त्र पुरश्चरण आशीर्वाद बीज और भस्म की चुटुकी देने से भूतों को निकालना रोगों को छुड़ाना सच्चा हो तो वह इञ्जील की बात भी सच्ची होवे इस कारण भोले मनुष्यों को भ्रम में फँसाने के लिये ये बातें हैं जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं तो यहां के देवी भोपों की बातें क्यों नहीं मानते ? क्योंकि वे बातें इन्हीं के सदृश हैं ॥ ६३ ॥

६४—धन्य वे जो मन में दीन हैं क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। क्योंकि मैं तुम से सच कहता हूं कि जब लों आकाश और पृथिवी टल न जायें तबलों व्यवस्था से एक मात्रा अथवा एक बिन्दु बिना पूरा हुए नहीं टलेगा। इसलिये इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे वह स्वर्ग के राज्य में सबसे छोटा कहावेगा॥ इं० मत्ती० प० ५। आ० ३।४।१८।१९॥

समीक्षक—जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये इसलिये जितने दीन हैं वे सब स्वर्ग को जावेंगे तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा अर्थात् परस्पर लड़ाई भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड बण्ड हो जायगी और दीन के कहने से जो कंगले लोगे तब तो ठीक नहीं; जो निरभिमानी लोगे तो भी ठीक नहीं, क्योंकि दीन और अभिमान का एकार्थ नहीं किन्तु जो मन में दीन होता है उसको सन्तोष कभी नहीं होता इसलिये यह बात ठीक नहीं। जब आकाश पृथ्वी टलजायें तब व्यवस्था भी टल जायगी ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सब से छोटा गिना जायगा॥ ६४॥

६५—हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे। अपने लिये पृथिवी पर धन का संचय मत करो॥ इं० म० प० ६। आ० ११। १९॥

समीक्षक—इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ है उस समय लोग जङ्गली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था इसीसे तो दिन भर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर की प्रार्थना करता और सिखलाता है। जब ऐसा है तो ईसाई लोग धन संचय क्यों करते हैं उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चलकर सब दान पुण्य करके दीन होजायें॥ ६५॥

६६—हरएक जो मुझसे हे प्रभु २ कहता है स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा॥ इं० म० प० ७। आ० २१॥

समीक्षक—अब विचारिये बड़े २ पादरी विशप साहेब और कृश्चीन लोग जो यह ईसा का वचन सत्य है ऐसा समझें तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें, यदि इस बात को न मानेंगे तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे ॥ ६६ ॥

६७—उस दिन में बहुतेरे मुझ से कहेंगे तब मैं उनसे खोल के कहूंगा मैंने तुम को कभी नहीं जाना है कुकर्म्म करनेहारे मुझसे दूर होओ ॥ इं० म० प० ७ । आ० २२ । २३ ॥

समीक्षक—देखिये ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिये स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था, यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है ॥ ६७ ॥

६८—और देखो एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा हे प्रभु ! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं, यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा मैं तो चाहता हूं शुद्ध होजा और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध होगया ॥ इं० म० प० ८ । आ० २ । ३ ॥

समीक्षक—ये सब बातें भोले मनुष्यों के फँसाने की हैं क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या, सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बातें जो पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दी, बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़ा २ कर जानवर और मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य ने जीता कर दिया पश्चात् कच को मारकर शुक्राचार्य्य को खिला दिया फिर भी उसको पेट में जीता कर बाहर निकाला, आप मरगया उस को कच ने जीता किया, कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया धन्वन्तरि ने लाखों मुर्दे जिलाये, लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया, लाखों अन्धे और बहिरों को आंख और कान दिये इत्यादि कथा को मिथ्या क्यों कहते हैं ? जो उक्त बातें मिथ्या हैं तो ईसा की बात मिथ्या क्यों नहीं जो

दूसरे की बात को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं तो हठी क्यों नहीं ? इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान हैं ॥६८॥

६९—जब भूतग्रस्त मनुष्य क़बरस्थान में से निकल उससे आमिले जो यहांलों अतिप्रचंड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जासकता था और देखो उन्होंने चिल्ला के कहा हे यीशु ईश्वर के पुत्र ! आप को हम से क्या काम क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहां आये हैं सो भूतों ने उससे विनती कर कहा जो आप हम को निकालते हैं तो सूअरों के झुंड में पैठने दीजिये उसने उनसे कहा जाओ और वे निकल के सूअरों के झुण्ड में पैठे और देखो सूअरों का सारा झुण्ड कड़ाड़े पर से समुद्र में दौड़ गया और पानी में डूब मरा ॥ इं० म० प० ८ । आ० २८ । २९ । ३० । ३१ । ३२ । ३३ ॥

समीक्षक—भला यहां तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं क्योंकि मराहुआ मनुष्य क़बरस्थान से कभी नहीं निकल सकता वे किसी पर न जाते न संवाद करते हैं ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं जो कि महाजंगली हैं वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं और उन सूअरों की हत्या कराई, सूअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा और ईसाई लोग ईसा को पापक्षमा और पवित्र करनेवाला मानते हैं तो उन भूतों को पवित्र क्यों न करसका ? और सूअरवालों की हानि क्यों न भरदी ? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अङ्गरेज़ लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे ? यदि मानते हैं तो भ्रमजाल में पड़े हैं ॥ ६९ ॥

७०—देखो लोग एक अर्धाङ्गी को जो खटोले पर पड़ा था उस पास लाये और यीशु ने उनका विश्वास देखके उस अर्धाङ्गी से कहा हे पुत्र ! ढाढस कर तेरे पाप क्षमा किये गये हैं मैं धर्मियों को नहीं परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने आया हूं ॥ इं० म० प० ९ । आ० २ । १३ ॥

समीक्षक—यह भी बात वैसी ही असम्भव है जैसी पूर्व लिख आये हैं और जो पाप क्षमा करने की बात है वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फँसाना

है। जैसे दूसरे के पीये मद्य भांग और अफीम खाये का नशा दूसरे को नहीं प्राप्त हो सकता वैसे ही किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता किन्तु जो करता है वही भोगता है, यही ईश्वर का न्याय है, यदि दूसरे का किया पाप पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे वा कर्त्ताओं ही को यथायोग्य फल ईश्वर न देवे तो वह अन्यायकारी होजावे, देखो धर्म ही कल्याणकारक है ईसा वा अन्य कोई नहीं और धर्मात्माओं के लिये ईसा आदि की कुछ आवश्यक्ता भी नहीं और न पापियों के लिये, क्योंकि पाप किसी का नहीं छूट सकता ॥ ७० ॥

७१—यीशु ने अपने १२ शिष्यों को अपने पास बुलाके उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हरएक रोग और हर व्याधि को चङ्गा करें। बोलनेहारे तो तुम नहीं हो परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुम में बोलता है। मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को नहीं, परन्तु खड्ग चलवाने को आया हूं। मैं मनुष्य को उसके पिता से और बेटी को उसकी मा से और पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूं। मनुष्य के घर ही के लोग उसके वैरी होंगे ॥ इं० म० प० १०। आ० १। ३४। ३५। ३६॥

समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं जिन में से एक ३०) तीस रु० के लोभ पर ईसा को पकड़ावेगा और अन्य बदल कर अलग २ भागेंगे, भला ये बातें जब विद्या ही से विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना औषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना सृष्टिक्रम से असम्भव है इसलिये ऐसी २ बातों का मानना अज्ञानियों का काम है, यदि जीव बोलनेहारे नहीं ईश्वर बोलनेहारा है तो जीव क्या काम करते हैं ? और सत्य वा मिथ्याभाषण के फल सुख वा दुःख को ईश्वर ही भोगता होगा यह भी एक मिथ्या बात है। और जैसा ईसा फूट कराने और लड़ाने को आया था वही आजकल कलह लोगों में चल रहा है, यह कैसी बड़ी बुरी बात है कि फूट कराने से सर्वथा मनुष्यों को दुःख होता है और ईसाइयों ने इसी को गुरुमंत्र समझ लिया होगा क्योंकि एक दूसरे की

फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो यह क्यों नहीं मानते होंगे ? यह ईसा ही का काम होगा कि घर के लोगों के शत्रु घर के लोगों को बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुष का काम नहीं ॥ ७१ ॥

७२–तब यीशु ने उनसे कहा तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं उन्होंने कहा सात और छोटी मछलियां तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी तब उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को धन्य मान के तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे उनके सात टोकरे भरे उठाये जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे ॥ इं० म० प० १५ । आ० ३४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ३९ ॥

समीक्षक–अब देखिये ! क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली आदि के समान छल की बात नहीं है ? उन रोटियों में अन्य रोटियां कहां से आगईं ? यदि ईसा में ऐसी सिद्धियां होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था, अपने लिये मिट्टी पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग रोटियां क्यों न बनालीं ? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं जैसे कितने ही साधु वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं वैसे ही ये भी हैं ॥ ७२ ॥

७३–और तब वह हरएक मनुष्य को उसके कार्य्य के अनुसार फल देगा ॥ इं० म० प० १६ । आ० २७ ॥

समीक्षक–जब कर्मानुसार फल दिया जायगा तो ईसाइयों का पाप क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है और वह सच्चा हो तो यह झूठा होवे, यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने के योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं यह भी ठीक नहीं क्योंकि सब कर्मों का फल यथायोग्य देने ही से न्याय और पूरी दया होती है ॥ ७३ ॥

७४–हे अविश्वासी और हठीले लोगो ! मैं तुमसे सत्य कहता हूं यदि

तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास हो तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि यहां से वहां चला जाय वह चला जायगा और कोई काम तुम से असाध्य नहीं होगा ॥ इं० म० प० १७। आ० १७। ३०॥

समीक्षक—अब जो ईसाई लोग उपदेश करते फिरते हैं कि "आओ हमारे मत में पाप क्षमा कराओ मुक्ति पाओ" आदि वह सब मिथ्या बात है। क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने विश्वास जमाने और पवित्र करने का सामर्थ्य होता तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप विश्वासी पवित्र क्यों न कर देता ? जो ईसा के साथ २ घूमते थे जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी और कल्याण न कर सका तो वह मरे पर न जाने कहां है ? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा, जब ईसा के चेले राईभर विश्वास से रहित थे और उन्हीं ने यह इञ्जील पुस्तक बनाई है तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता क्योंकि जो अविश्वासी अपवित्रात्मा अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करने वाले मनुष्यों का काम नहीं और इसी से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का वचन सच्चा है तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान विश्वास अर्थात् ईमान नहीं है जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है तो उससे कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हटा देवें यदि उनके हटाने से हटजाय तो भी पूरा विश्वास नहीं किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास, ईमान अर्थात् धर्म का ईसाइयों में नहीं है यदि कोई कहे कि यहां अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तों को चङ्गा कहना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध करके सचेत कुशल किया होगा जो ऐसा मानें तो भी ठीक नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता ? इसलिये असम्भव बात कहना ईसा की अज्ञानता का प्रकाश करता है भला जो कुछ भी ईसा में विद्या होती तो ऐसी अटाटूट जंगलीपन की बातें क्यों कहदेता ? तथापि (निरस्तपादपे देश एरण्डोऽपि द्रुमायते) जैसे जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो

उस देश में एरण्ड का वृक्ष ही सब से बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजङ्गली अविद्वानों के देश में ईसा का भी होना ठीक था पर आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है ? ॥ ७४ ॥

७५–मैं तुम्हें सच कहता हूं जो तुम मन न फिराओ और बालकों के समान न होजाओ तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने पाओगे ॥ इं० म० प० १८ । आ० ३ ॥

समीक्षक–जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है तो कोई किसी का पाप पुण्य कभी नहीं ले सकता ऐसा सिद्ध होता है और बालक के समान होने के लेख से यह विदित होता है कि ईसा की बातें विद्या और सृष्टिक्रम से बहुतसी विरुद्ध थीं और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मानलें, पूछें गाछें कुछ भी नहीं, आंख मीच के मान लेवें बहुतसे ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है नहीं तो ऐसी युक्ति विद्या से विरुद्ध बातें क्यों मानते ? और यह भी सिद्ध हुआ जो ईसा आप विद्याहीन बालबुद्धि न होता तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता ? क्योंकि जो जैसा होता है वह दूसरे को भी अपने सदृश बनाना चाहता ही है ॥ ७५ ॥

७६–मैं तुम से सच कहता हूं धनवानों को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा फिर भी मैं तुम से कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से ऊंट का सूई के नाके में से जाना सहज है ॥ इं० म० प० १९ । आ० २३ । २४ ॥

समीक्षक–इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था धनवान् लोग उस की प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे इसलिये यह लिखा होगा परन्तु यह बात सच नहीं क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों में अच्छे बुरे होते हैं जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं, जब

ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है पुनः उस में प्रवेश करेगा वा न करेगा यह कहना केवल अविद्या की बात है और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं क्या वे सब नरक ही में जायेंगे ? दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे ? भला तनिकसा विचार तो ईसामसीह करते कि जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है उतनी दरिद्रों के पास नहीं यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें तो दरिद्र नीच गति में पड़े रहें और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं ॥ ७६ ॥

७७–यीशु ने उनसे कहा मैं तुम से सच कहता हूं कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा तब तुम भी जो मेरे पीछे होलिये हो बारह सिंहासनों पर बैठ के इस्रायेल के बारह कुलों का न्याय करोगे जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा भाइयों वा बहिनों वा पिता माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है सो सौ गुणा पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा ॥ इं० म० प० १९ । आ० २८ । २९ ॥

समीक्षक–अब देखिये ! ईसा के भीतर की लीला कि मेरे जाल से मरे पीछे भी लोग न निकल जायँ और जिसने ३०) रुपये के लोभ से अपने गुरु को पकड़ मरवाया वैसे पापी भी इसके पास सिंहासन पर बैठेंगे और इस्रायेल के कुल का पक्षपात से न्याय ही न किया जायगा किन्तु उनके सब गुनः माफ़ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे, अनुमान होता है इसीसे ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से निरपराधी कर छोड़ देते हैं ऐसा ही ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा और इससे बड़ा दोष आता है क्योंकि एक सृष्टि की आदि में मरा और एक क़यामत की रात के निकट मरा, एक तो आदि से अन्ततक आशा ही में पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरे का उसी समय न्याय होगया यह कितना बड़ा अन्याय है और जो नरक में जायगा सो अनन्त कालतक नरक भोगे और जो स्वर्ग में जायगा वह सदा स्वर्ग भोगेगा यह भी बड़ा अन्याय है क्योंकि अन्तवाले साधन और कर्मों का फल अन्तवाला होना चाहिये और

तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवों का भी नहीं हो सकता इसलिये तारतम्य से अधिक न्यून सुख दुःख वाले अनेक स्वर्ग और नरक हों तभी सुख दुःख भोग सकते हैं सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं इसालिये यह पुस्तक ईश्वरकृत वा ईसा ईश्वर का बेटा कभी नहीं हो सकता, यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मा बाप सौ सौ नहीं हो सकते किन्तु एक की एक मा और एक ही बाप होता है अनुमान है कि मुसलमानों ने जो एक को ७२ स्त्रियां बहिश्त में मिलती हैं लिखा है सो यहीं से लिया होगा ॥ ७७ ॥

७८—भोर को जब बहम घर को फिर जाता था तब उसको भूख लगी और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देख के वह उस पास आया परन्तु उसमें और कुछ न पाया केवल पत्ते और उसको कहा तुझ में फिर कभी फल न लगेंगे इस पर गूलर का पेड़ तुरन्त सूख गया ॥ इं० म० प० २१ । आ० १८ । १६ ॥

समीक्षक—सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं कि वह बड़ा शान्त शमान्वित और क्रोधादि दोषरहित था परन्तु इस बात को देखने से ज्ञात होता है कि ईसा क्रोधी और ऋतु के ज्ञानरहित था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्तता था, भला जो वृक्ष जड़ पदार्थ है उसका क्या अपराध था कि उसको शाप दिया और वह सूख गया, इसके शाप से तो न सूखा होगा किन्तु कोई ऐसी औषधि डालने से सूख गया हो तो आश्चर्य नहीं ॥ ७८ ॥

७९—उन दिनों क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अँधियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की सेना डिग जायगी ॥ इं० म० प० २४ । आ० २९ ॥

समीक्षक—वाहजी ईसा ! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना और आकाश की सेना कौनसी है जो डिग जायगी ? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता तो अवश्य जान लेता कि ये तारे सब भूगोल हैं क्योंकर गिरेंगे इससे विदित होता है कि ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ था सदा लकड़े चीरने, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा जब तरंग उठी कि मैं भी

इस जंगली देश में पैग़म्बर हो सकूंगा बातें करने लगा, कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुतसी बुरी, वहां के लोग जंगली थे मान बैठे, जैसा आजकल यूरोप देश उन्नतियुक्त है वैसा पूर्व होता तो इसकी सिद्धाई कुछ भी न चलती अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोल मत को न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते यही इनमें न्यूनता है ॥ ७९ ॥

८०—आकाश और पृथिवी टल जायंगे परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी ॥ इं० म० प० २४ । आ० ३५ ॥

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है भला आकाश हिलकर कहां जायगा जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है ? और अपने मुख से अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं ॥ ८० ॥

८१—तब वह उनसे जो बाईं ओर है कहेगा हे स्रापित लोगो ! मेरे पास से उस अनन्त आग में जाओ जो शैतान और उसके दूतों के लिये तैयार की गई है ॥ इं० म० प० २५ । आ० ४१ ॥

समीक्षक—भला यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग और जो दूसरे हैं उनको अनन्त आग में गिराना परन्तु जब आकाश ही न रहेगा तो अनन्त आग नरक बहिश्त कहां रहेगी ? जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता तो इतनी नरक की तैयारी क्यों करनी पड़ती ? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है क्योंकि उसी का दूत होकर बागी होगया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़-कर बन्दीगृह में न डाल सका न मार सका पुनः उसकी ईश्वरता क्या जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया ? ईसा भी उसका कुछ न करसका तो ईश्वर का बेटा होना व्यर्थ हुआ इसलिये ईसा ईश्वर का न बेटा और न बाइबल का ईश्वर, ईश्वर हो सकता है ॥ ८१ ॥

८२—तब बारह शिष्यों में से एक यहूदाह इसकरियोती नाम एक शिष्य प्रधान याजकों के पास गया और कहा जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊं तो आप लोग मुझे क्या देंगे उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया ॥ इं० म० प० २६ । आ० १४ । १५ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहां खुल गई क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ? और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा ॥ ८२ ॥

८३—जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़ के शिष्यों को दिया और कहा लेओ खाओ यह मेरा देह है और उसने कटोरा लेके धन्यवाद माना और उनको देके कहा तुम सब इससे पियो क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का है ॥ इं० म० प० २६ । आ० २६ । २७ । २८ ॥

समीक्षक—भला यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा विना अविद्वान् जंगली मनुष्य के, शिष्यों से खाने की चीज़ को अपने मांस और पीने की चीज़ों को लोहू नहीं कह सकता और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग प्रभुभोजन कहते हैं अर्थात् खाने पीने की चीज़ों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते पीते हैं यह कितनी बुरी बात है ? जिन्होंने अपने गुरु के मांस लोहू को भी खाने पीने की भावना से न छोड़ा तो और को कैसे छोड़ सकते हैं ? ॥ ८३ ॥

८४—और वह पिता को और जब दो के दोनों पुत्रों को अपने संग लेगया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा तब उसने उनसे कहा कि मेरा मन यहांलों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं और थोड़ा आगे बढ़ के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की हे मेरे पिता जो होसके तो यह कटोरा मेरे पास से टलजाय ॥ इं० म० प० २६ । आ० ३७ । ३८ । ३९ ॥

समीक्षक—देखो ! जो वह केवल मनुष्य न होता, ईश्वर का बेटा और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपंच ईसाने अथवा उसके चेलों ने झूठ मूठ बनाया है कि वह ईश्वर का बेटा भूत भविष्यत् का वेत्ता और पाप क्षमा का कर्त्ता है इससे समझना चाहिये यह केवल साधारण सूधा सच्चा अविद्वान् था न विद्वान्, न योगी, न सिद्ध था ॥ ८४ ॥

८५—वह बोलता ही था कि देखो यहूदाह जो बारह शिष्यों में से एक था आपहुंचा और लोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों की ओर से बहुत लोग खड्ग और लाठियां लिये उसके संग यीशु के पकड़वानेहारे ने उन्हें यह पता दिया था जिसको मैं चूमूं उसको पकड़ो और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला हे गुरु प्रणाम और उसको चूमा। तब उन्होंने यीशु पर हाथ डाल के उसे पकड़ा तब सब शिष्य उसे छोड़ के भागे। अन्त में दो झूठे साक्षी आके बोले इसने कहा कि मैं ईश्वर का मन्दिर ढा सकता हूं उसे तीन दिन में फिर बना सकता हूं। तब महायाजक खड़ा हो यीशु से कहा क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्षी देते हैं। परन्तु यीशु चुप रहा इस पर महायाजक ने उससे कहा मैं तुझे जीवते ईश्वर की क्रिया देता हूं हम से कह तू ईश्वर का पुत्र ख्रीष्ट है कि नहीं। यीशु उससे बोला तू तो कहचुका तब महायाजक ने अपने वस्त्र फाड़ के कहा यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है अब हमें साक्षियों का और क्या प्रयोजन देखो तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है। अब क्या विचार करते हो तब उन्होंने उत्तर दिया वह वध के योग्य है। तब उन्होंने उसके मुंह पर थूका और उसे घूंसे मारे औरों ने थपेड़े मार के कहा हे ख्रीष्ट हमसे भविष्यत्वाणी बोल किसने तुझे मारा। पितरस बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उस पास आके बोली तू भी यीशु गालीली के संग था उसने सभों के सामने मुकर के कहा मैं नहीं जानता तू क्या कहती। जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देख के जो लोग वहां थे उनसे कहा यह भी यीशु नासरी के संग था। उसने क्रिया खाके फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्य

को नहीं जानता हूं तब वह धिक्कार देने और किरिया खाने लगा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं ॥ इं० म० प० २६ । आ० ४७ । ४८ । ४९ । ५० । ६१ । ६२ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ । ७४ ॥

समीक्षक—अब देख लीजिये कि जिसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेलों को दृढ़ विश्वास करासके और वे चेले चाहे प्राण भी क्यों न जावें तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़ाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी किरिया खाते और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था, जैसा तौरेत में लिखा है कि लूत के घर पर पाहुनों को बहुतसे मारने को चढ़ आये थे वहां ईश्वर के दो दूत थे उन्होंने उन्हीं को अन्धा कर दिया यद्यपि यह भी बात असम्भव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था और आजकल कितना बढ़ावा उसके नाम पर ईसाइयों ने बढ़ा रक्खा है, भला ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं जूझ वा समाधि चढ़ा अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता तो अच्छा था परन्तु वह बुद्धि विना विद्या के कहां से उपस्थित हो । वह ईसा यह भी कहता है कि ॥ ८५ ॥

८६—मैं अभी अपने पिता से विनती नहीं करता हूं और वह मेरे पास स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुंचा न देगा ॥ इं० म० प० २६ । आ० ५३ ॥

समीक्षक—धमकाता भी जाता अपनी और अपने पिता की बड़ाई भी करता जाता पर कुछ भी नहीं कर सकता देखो आश्चर्य की बात जब महायाजक ने पूछा था कि ये लोग तेरे विरुद्ध साक्षी देते हैं इसका उत्तर दे तो ईसा चुप रहा यह भी ईसा ने अच्छा न किया क्योंकि जो सच था वह वहां अवश्य कह देता तो भी अच्छा होता ऐसी बहुतसी अपने घमण्ड की बातें करनी उचित न थीं और जिन्होंने ईसा पर झूठ दोष लगाकर मारा उनको भी उचित न था क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था जैसा उसके विषय में उन्होंने किया परन्तु वे भी तो जङ्गली थे न्याय की बातों को क्या समझें ? यदि ईसा झूठ मूठ ईश्वर का बेटा न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्त्तते तो

दोनों के लिये उत्तम काम था परन्तु इतनी विद्या धर्म्मात्मता और न्यायशीलता कहां से लावें ? ॥ ८६ ॥

८७–यीशु अध्यक्ष आगे खड़ा हुआ और अध्यक्ष ने उससे पूछा क्या तू यहूदियों का राजा है, यीशु ने उससे कहा आप ही तो कहते हैं । जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उस पर दोष लगाते थे तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया तब पिलात ने उससे कहा क्या तू नहीं सुनता कि वे लोग तेरे विरुद्ध कितनी साक्षी देते हैं । परन्तु उसने एक बात का भी उसको उत्तर न दिया यहांलों कि अध्यक्ष ने बहुत अचंभा किया पिलात ने उनसे कहा तो मैं यीशुसे जो ख्रीष्ट कहावता है क्या करूं सभों ने उससे कहा वह क्रूश पर चढ़ाया जावे और यीशु को कोड़े मार के क्रूश पर चढ़ा जाने को सौंप दिया तब अध्यक्ष के योधाओं ने यीशु को अध्यक्ष भवन में लेजाके सारी पलटन उस पास इकट्ठी की और उन्होंने उसका वस्त्र उतार के उसे लाल बागा पहिराया और कांटों का मुकुट गूंथ के उसके शिर पर रक्खा और उसके दहिने हाथ पर नर्कट दिया और उसके आगे घुटने टेक के यह कहके उसे ठट्ठा किया हे यहूदियों के राजा प्रणाम और उन्होंने उस पर थूका और उस नर्कट को ले उसके शिर पर मारा जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतार के उसी का वस्त्र पहिरा के उसे क्रूश पर चढ़ाने को ले गये । जब वे एक स्थान पर जो गल गया था अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है पहुंचे तब उन्होंने सिरके में पित्त मिला के उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीख के पीना न चाहा तब उन्होंने उसे क्रूश पर चढ़ाया और उन्होंने उसका दोषपत्र उसके शिर के ऊपर लगाया तब दो डाकू एक दहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके संग क्रूशों पर चढ़ाये गये । जो लोग उधर से आते जाते थे उन्होंने अपने शिर हिला के और यह कहके उसकी निंदा की हे मन्दिर के ढाहनेहारे अपने को बचा जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रूश पर से उतर आ । इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संगियों ने ठट्ठा कर कहा उसने औरों को बचाया अपने को बचा नहीं सकता है जो वह इस्राएल का राजा है तो क्रूश पर से अब उतर

आवे और हम उसका विश्वास करेंगे। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है यदि ईश्वर उसको चाहता है तो उसको अब बचावे क्योंकि उसने कहा मैं ईश्वर का पुत्र हूं जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निंदा की दो प्रहर से तीसरे प्रहर लों सारे देश में अन्धकार होगया तीसरे प्रहर के निकट यीशुने बड़े शब्द से पुकार के कहा "एली एलीलामा सबक्तनी" अर्थात् हे मेरे ईश्वर हे मेरे ईश्वर तूने क्यों मुझे त्यागा है जो लोग वहां खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुनके कहा वह एलियाह को बुलाता है उनमें से एक ने तुरन्त दौड़ के इसपंज लेके सिर्के में भिगाया और नल पर रखके उसे पीने को दिया तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा॥ इं० म० प० २७। आ० ११। १२। १३। १४। २२। २३। २४। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३३। ३४। ३७। ३८। ३९। ४०। ४१। ४२। ४३। ४४। ४५। ४६। ४७। ४८। ४९। ५०॥

समीक्षक—सर्वथा यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया परन्तु यीशु का भी दोष है क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र न वह किसी का बाप है क्योंकि जो वह किसी का बाप होवे तो किसी का श्वसुर श्याला सम्बन्धी आदि भी होवे और जब अध्यक्ष ने पूछा था तब जैसा सच था उत्तर देना था और यह ठीक है कि जो २ आश्चर्य्य कर्म्म प्रथम किये हुए सच होते तो अब भी क्रूश पर से उतर कर सब को अपने शिष्य बना लेता और जो वह ईश्वर का पुत्र होता तो ईश्वर भी उस को बचा लेता जो वह त्रिकालदर्शी होता तो सिर्के में पित्त मिले हुए को चीख के क्यों छोड़ता वह पहिले ही से जानता होता और जो वह करामाती होता तो पुकार २ के प्राण क्यों त्यागता? इससे जानना चाहिये कि चाहे कोई कितनी ही चतुराई करे परन्तु अन्त में सच सच और झूठ झूठ हो जाता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समय के जङ्गली मनुष्यों में कुछ अच्छा था न वह करामाती, न ईश्वर का पुत्र और न विद्वान् था क्योंकि जो ऐसा होता तो ऐसा वह दुःख क्यों भोगता?॥ ८७॥

८८—और देखो बड़ा भुईंडोल हुआ कि परमेश्वर का एक दूत उतरा और

आके क़बर के द्वार पर से पत्थर लुढ़का के उस पर बैठा। वह यहां नहीं है जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है। जब वे उसके शिष्यों को संदेश जाती थी देखो यीशु उन से आमिला कहा कल्याण हो और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़ के उसको प्रणाम किया। तब यीशु ने कहा मत डरो जाके मेरे भाइयों से कहदो कि वे गालील को जावें और वहां वे मुझे देखेंगे। ग्यारह शिष्य गालील को उस परवत पर गये जा यीशु ने उन्हें बताया था। और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया पर कितनों को सन्देह हुआ। यीशुने उन पास आ उनसे कहा स्वर्ग में आर पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझ को दिया गया है। और देखो मैं जगत् के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूं॥ इं० म० प० २८। आ० २। ६। ९। १०। १६। १७। १८। २०॥

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है, प्रथम ईश्वर के पास दूतों का होना उनको जहां तहां भेजना ऊपर से उतरना क्या तहसीलदारी कलेक्टरी के समान ईश्वर को बना दिया? क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उनके पग पकड़ के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिनलों सड़ क्यों न गया और अपने मुख से सबका अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करनी असम्भव हैं क्योंकि जो ये बातें सब हों तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग भी क्यों नहीं जाते? यह मत्तीरचित इञ्जील का विषय हो चुका अब मार्करचित इञ्जील के विषय में लिखा जाता है॥ ८८॥

मार्करचित इञ्जील।

८९—यह क्या बढ़ई नहीं॥ इं० मार्क० प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—असल में यूसफ बढ़ई था इसलिये ईसा भी बढ़ई था कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था पश्चात् पैग़म्बर बनता २ ईश्वर का बेटा ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट कूट फूट फाट करना उसका काम है॥ ८९॥

लूकरचित इन्जील ।

९०—यीशु ने उससे कहा तू मुझे उत्तम क्यों कहता है कोई उत्तम नहीं है अर्थात् ईश्वर ॥ लू० प० १८ । आ० १९ ॥

समीक्षक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता है तो ईसाइयों ने पवित्रात्मा पिता और पुत्र तीन कहां से बना दिये ॥ ९० ॥

९१—तब उसे हेरोद के पास भेजा । हेरोद यीशु को देख के अति आनन्दित हुआ क्योंकि वह उसको बहुत दिन से देखना चाहता था इसलिये कि उसके विषय में बहुतसी बातें सुनी थीं और उसका कुछ आश्चर्य कर्म्म देखने की उसको आशा हुई उसने उससे बहुत बातें पूछीं परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया ॥ लूक० प० २३ । आ० ८ । ९ ॥

समीक्षक—यह बात मत्तीरचित में नहीं है इसलिये ये साक्षी बिगड़ गये । क्योंकि साक्षी एक से होने चाहियें और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो (हेरोद को) उत्तर देता और करामात भी दिखलाता इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थी ॥ ९१ ॥

योहनरचित सुसमाचार ।

९२—आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था । वह आदि में ईश्वर के संग था । सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया और जो सृजा गया है कुछ भी उस बिना नहीं सृजा गया । उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था ॥ प० १ । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

समीक्षक—आदि में वचन बिना वक्ता के नहीं हो सक्ता और जो वचन ईश्वर के संग था तो यह कहना व्यर्थ हुआ और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था तो पूर्व वचन वा ईश्वर था यह नहीं घट सकता, वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती जबतक उसका

कारण न हो और वचन के विना भी चुपचाप रह कर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है, जीवन किसमें वा क्या था इस वचन से जीव अनादि मानोगे, जो अनादि हैं तो आदम के नथुनों में श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों ही का उजियाला है पश्वादि का नहीं ॥ ९२ ॥

९३—और बियारी के समय में जब शैतान शिमोन के पुत्र यिहूदा इस्क-रियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था ॥ यो० प० १३ । आ० २ ॥

समीक्षक—यह बात सच नहीं क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछेगा कि शैतान सब को बहकाता है तो शैतान को कौन बहकाता है, जो कहो शैतान आप से आप बहकता है तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं पुनः शैतान का क्या काम और यदि शैतान का बनाने और बहकानेवाला परमेश्वर है तो वही शैतान का शैतान ईसाइयों का ईश्वर ठहरा परमेश्वर ही ने सब को उसके द्वारा बहकाया, भला ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं ? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों का और ईसा ईश्वर का बेटा जिन्होंने बनाये वे शैतान हों तो हों किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा ईश्वर का बेटा हो सकता है ॥ ९३ ॥

९४—तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और मुझ पर विश्वास करो । मेरे पिता के घर में बहुतसे रहने के स्थान हैं नहीं तो मैं तुमसे कहता मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूं । और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं तहां तुम भी रहो । यीशु ने उससे कहा मैं ही मार्ग औ सत्य औ जीवन हूं । विना मेरे द्वारा से कोई पिता के पास नहीं पहुंचता है । जो तुम मुझे जानते तो मेरे पिता को भी जानते ॥ यो० प० १४ । आ० १ । २ । ३ । ४ । ६ । ७ ॥

समीक्षक—अब देखिये ये ईसा के वचन क्या पोपलीला से कमती हैं, जो ऐसा प्रपञ्च न रचता तो उसके मत में कौन फँसता, क्या ईसा ने अपने पिता

को ठेके में ले लिया है और जो वह ईसा के वश्य है तो पराधीन होने से वह ईश्वर ही नहीं क्योंकि ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं सुनता, क्या ईसा के पहिले कोई भी ईश्वर को नहीं प्राप्त हुआ होगा, ऐसा स्थान आदि का प्रलोभन न देता और जो अपने मुख से आप मार्ग सत्य और जीवन बनता है वह सब प्रकार से दंभी कहाता है इससे यह बात सत्य कभी नहीं हो सकती ॥ ९४ ॥

९५–मैं तुम से सच २ कहता हूं जो मुझ पर विश्वास करे जो काम मैं करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम करेगा ॥ यो० प० १४ । आ० १२ ॥

समीक्षक–अब देखिये जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि काम क्यों नहीं कर सकते और जो विश्वास से भी आश्चर्य काम नहीं कर सकते तो ईसा ने भी आश्चर्य कर्म नहीं किये थे ऐसा निश्चित जानना चाहिये क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी आश्चर्य काम करोगे तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता तो किसकी हिये की आंख फूट गई हैं वह ईसा को मुर्दे जिलाने आदि का कामकर्त्ता मान लेवे ॥ ९५ ॥

९६–जो अद्वैत सत्य ईश्वर है ॥ यो० प० १७ । आ० ३ ॥

समीक्षक–जब अद्वैत एक ईश्वर है तो ईसाइयों का तीन कहना सर्वथा मिथ्या है ॥ ९६ ॥

इसी प्रकार बहुत ठिकाने इञ्जील में अन्यथा बातें भरी हैं ॥

योहन के प्रकाशित वाक्य ॥

अब योहन की अदभुत बातें सुनोः—

९७–और अपने २ शिर पर सोने के मुकुट दिये हुए थे । और सात अग्निदीपक सिंहासन के आगे जलते थे जो ईश्वर के सातों आत्मा हैं । और सिंहासन के आगे कांच का समुद्र है और सिंहासन के आस पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रों से भरे हैं ॥ यो० प्र० प० ४ । आ० ४ । ५ । ६ ॥

समीक्षक—अब देखिये एक नगर के तुल्य ईसाइयों का स्वर्ग है और इनका ईश्वर भी दीपक के समान अग्नि है और सोने का मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे पीछे नेत्रों का होना असम्भावित है इन बातों को कौन मान सकता है ? और वहां सिंहादि चार पशु लिखे हैं ॥ ९७ ॥

९८—और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारे के दहिने हाथ में एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापों से उस पर छाप दी हुई थी । यह पुस्तक खोलने और उसकी छापें तोड़ने के योग्य कौन है । और न स्वर्ग में न पृथिवी पर न पृथिवी के नीचे कोई वह पुस्तक खोलने अथवा उसे देखने सकता था । और मैं बहुत रोने लगा इसलिये कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखने के योग्य कोई नहीं मिला ॥ यो० प्र० पर्व ५ । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के स्वर्ग में सिंहासनों और मनुष्यों का ठाठ और पुस्तक कई छापों से बंध किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला, योहन का रोना और पश्चात् एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा खोलनेवाला है, प्रयोजन यह है कि जिसका विवाह उसका गीत देखो ! ईसा ही के ऊपर सब माहात्म्य झुकाये जाते हैं परन्तु ये बातें केवल कथनमात्र हैं ॥ ९८ ॥

९९—और मैंने दृष्टि की और देखो सिंहासन के और चारों प्राणियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक मेम्ना जैसा वध किया हुआ खड़ा है ? जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं जो सारी पृथिवी में भेजे हुए ईश्वर के सातों आत्मा हैं ॥ यो प्र० प० ५ । आ० ६ ॥

समीक्षक—अब देखिये ! इस योहन के स्वप्न का मनोव्यापार उस स्वर्ग के बीच में सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसा के दो नेत्र थे और सींग का नाम भी न था और स्वर्ग में जाके सात सींग और सात नेत्रवाला हुआ ! और वे सातों ईश्वर

के आत्मा ईसा के सींग और नेत्र बन गये थे ! हाय ! ऐसी बातों को ईसाइयों ने क्यों मान लिया ? भला कुछ तो बुद्धि लाते ॥ ९९ ॥

१००—और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन मेम्ने के आगे गिर पड़े और हरएक के पास वीणा थी और धूप से भरे हुए सोने के पियाले जो पवित्र लोगों की प्रार्थनायें हैं ॥ यो० प्र० प० ५ । आ० ८ ॥

समीक्षक—भला जब ईसा स्वर्ग में न होगा तब ये विचारे धूप दीप नैवेद्य आर्ति आदि पूजा किसकी करते होंगे ? और यहां प्राटस्टेंट ईसाई लोग बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) को खण्डन करते हैं और इनका स्वर्ग बुतपरस्ती का घर बन रहा है ॥ १०० ॥

१०१—और जब मेम्ने छापों में से एक को खोला तब मैंने दृष्टि की चारों प्राणियों में से एक को जैसे मेघ गर्जने के शब्द को यह कहते सुना कि आ और देख और मैंने दृष्टि की और देखो एक श्वेत घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उस पास धनुष् है और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करने को निकला । और जब उसने दूसरी छाप खोली । दूसरा घोड़ा जो लाल था निकला उसको यह दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठा देवे । और जब उसने तीसरी छाप खोली देखो एक काला घोड़ा है । और जब उसने चौथी छाप खोली और देखो एक पीला सा घोड़ा है और जो उस पर बैठा है उसका नाम मृत्यु है इत्यादि ॥ यो० प्र० प० ६ । आ० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ७ । ८ ॥

समीक्षक—अब देखिये यह पुराणों से भी अधिक मिथ्या लीला है वा नहीं ? भला पुस्तकों के बन्धनों के छापे के भीतर घोड़ा सवार क्योंकर रह सके होंगे ? यह स्वप्ने का बरड़ाना जिन्होंने इसको भी सत्य माना है । उनमें अविद्या जितनी कहें उतनी ही थोड़ी है ॥ १०१ ॥

१०२—और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि हे स्वामी पवित्र और सत्य

कबलों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवी के निवासियों से हमारे लोहू का पलटा नहीं लेता है। और हरएक को उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जबलों तुम्हारे सङ्गी दास भी और तुम्हारे भाई जो तुम्हारी नाईं बध किये जाने पर हैं पूरे न हों तबलों और थोड़ी बेर विश्राम करो ॥ यो० प्र० प० ६। आ० १०। ११॥

समीक्षक—जो कोई ईसाई होंगे वे दौड़े सुपुर्द होकर ऐसा न्याय कराने के लिये रोया करेंगे, जो वेदमार्ग का स्वीकार करेगा उसके न्याय होने में कुछ भी देर न होगी ईसाइयों से पूछना चाहिये क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्द है ? और न्याय का काम भी नहीं होता न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं ? तो कुछ भी ठीक २ उत्तर न दे सकेंगे और इनका ईश्वर बहक भी जाता है क्योंकि इनके कहने से झट इनके शत्रु से पलटा लेने लगता है और दंशिले स्वभाव-वाले हैं कि मेरे पीछे स्वैर लिया करते हैं शान्ति कुछ भी नहीं और जहां शान्ति नहीं वहां दुःख का क्या पारावार होगा ॥ १०२ ॥

१०३—और जैसे बड़ी बयार से हिलाए जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर गिर पड़े। और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है अलग हो गया॥ यो० प्र० प० ६। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये योहन भविष्यद्वक्ता ने जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड बण्ड कथा गाई, भला तारे सब भूगोल हैं एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं ? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर उधर क्यों आने जाने देगा ॥ और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है ? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके इसलिये योहन आदि सब जङ्गली मनुष्य थे उनको इन बातों की क्या ख़बर ? ॥ १०३ ॥

१०४—मैंने उनकी संख्या सुनी इस्राएल के संतानों के समस्त कुल में से एकलाख चवालीस सहस्र पर छाप दी गई यिहूदा के कुल में से बारहसहस्र पर छाप दी गई ॥ यो० प्र० प० ७। आ० ४। ५ ॥

समीक्षक—क्या जो बाइबल में ईश्वर लिखा है वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है वा सब संसार का ? ऐसा न होता तो उन्हीं जङ्गलियों का साथ क्यों देता ? और उन्हीं का सहाय करता था दूसरे का नाम निशान भी नहीं लेता इससे वह ईश्वर नहीं और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है ॥ १०४ ॥

१०५—इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उसके मंदिर में रात और दिन उसकी सेवा करते हैं ॥ यो० प्र० प० ७ । आ० १५ ॥

समीक्षक—क्या यह महाबुतपरस्ती नहीं है ? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य तुल्य एकदेशी नहीं है ? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है यदि सोता है तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे ? तथा उसकी नींद भी उड़जाती होगी और जो रात दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति रोगी होगा ॥ १०५ ॥

१०६—और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिस पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया और धूप का धूआं पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के संग दूतके हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया। और दूतने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भर के उसे पृथ्वी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजुलियां और भूइंडोल हुए ॥ यो० प्र० प० ८ । आ० ३ । ४ । ५ ॥

समीक्षक—अब देखिये स्वर्ग तक वेदी धूप दीप नैवेद्य तुरही के शब्द होते हैं क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम है ? कुछ धूम धाम अधिक ही है ॥ १०६ ॥

१०७—पहिले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिलेहुए ओले और आग हुए और वे पृथिवी पर डाले गये और पृथिवी की एक तिहाई जलगई ॥ यो० प्र० प० ८ । आ० ७ ॥

समीक्षक—वाहरे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता ! ईश्वर, ईश्वर के दूत तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों ही का खेल दीखता है ॥ १०७ ॥

१०८—और पांचवें दूतने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुण्ड के कूप की कुञ्जी उसको दीगई और उसने अथाह कुण्ड का कूप खोला और कूप में से बड़ी भट्टी के धूएं की नाईं धूआं उठा और उस धूएं में से टिड्डियां पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवी के बीछुओं को अधिकार होता है तैसा उन्हें अधिकार दिया गया और उनसे कहा गया कि उन मनुष्यों को जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है पांच मास उन्हें पीड़ा दी जाय ॥ यो० प्र० प० ९ । आ० १ । २ । ३ । ४ । ५ ॥

समीक्षक—क्या तुरही का शब्द सुनकर तारे उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे ? यहां तो नहीं गिरे भला वह कूप वा टिड्डियां भी प्रलय के लिये ईश्वर ने पाली होंगी और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छाप-वालों को मत काटो ? यह केवल भोले मनुष्यों को डरपाके ईसाई बनालेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे तो तुम को टिड्डियां काटेंगी, ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं आर्य्यावर्त्त में नहीं क्या वह प्रलय की बात हो सकती है ? ॥ १०८ ॥

१०९—और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी ॥ यो० प्र० प० ९ । आ० १६ ॥

समीक्षक—भला इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते कहां चरते और कहां रहते और कितनी लीद करते थे ? और उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा ? बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आर्य्यों ने तिलाञ्जलि दे दी है ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर होजाय तो बहुत अच्छा हो ॥ १०९ ॥

११०—और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके शिर पर मेघ, धनुष् था और उसका मुंह सूर्य्य की नाईं और उसके पांव आग के खम्भों के ऐसे थे । और उसने अपना दहिना पांव समुद्र पर और बांयां पृथिवी पर रक्खा ॥ यो० प्र० प० १० । आ० १ । २ । ३ ॥

समीक्षक—अब देखिये इन दूतों की कथा जो पुराणों वा भाटों की कथाओं से भी बढ़कर है ॥ ११० ॥

१११—और लग्गी के समान एक नर्कट मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ ईश्वर के मन्दिर को और वेदी और उसमें के भजन करनेहारों को नाप ॥ यो० प्र० प० ११ । आ० १ ॥

समीक्षक—यहां तो क्या परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं अच्छा है उनका जैसा स्वर्ग है वैसी ही बातें हैं इसलिये यहां प्रभुभोजन में ईसा के शरीरावयव मांस लोहू की भावना करके खाते पीते हैं और गिर्जा में भी क्रुश आदि का आकार बनाना आदि भी बुतपरस्ती है ॥१११॥

११२—और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके नियम का संदूक उसके मंदिर में दिखाई दिया ॥ यो० प्र० प० ११ । आ० १९ ॥

समीक्षक—स्वर्ग में जो मंदिर है सो हर समय बंद रहता होगा कभी २ खोला जाता होगा क्या परमेश्वर का भी कोई मंदिर हो सक्ता है ? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है उसका कोई भी मंदिर नहीं हो सकता । हां ईसाइयों का जो परमेश्वर आकारवाला है उसका चाहें स्वर्ग में हो चाहें भूमि में हो और जैसी लीला टंटन् पूं पूं की यहां होती है वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी । और नियम का संदूक भी कभी २ ईसाई लोग देखते होंगे उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते होंगे सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को लुभाने की हैं ॥ ११२ ॥

११३–और एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य पहिने है और चाँद उसके पांओं तले है और उसके शिर पर बारह तारों का मुकुट है। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है क्योंकि प्रसव की पीड़ा उसे लगी है और वह जनने को पीड़ित है। और दूसरा आश्चर्य्य स्वर्ग में दिखाई दिया और देखो एक बड़ा लाल अजगर है जिसके सात शिर और दश सींग हैं और उसके शिरों पर सात राजमुकुट हैं। और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक तिहाई को खींच के उन्हें पृथिवी पर डाला॥ यो० प्र० प० १२। आ० १। २। ३। ४॥

समीक्षक–अब देखिये लम्बे चौड़े गपोड़े, इनक स्वर्ग में भी बिचारी स्त्री चिल्लाती है उसका दुःख कोई नहीं सुनता न मिटा सकता है और उस अजगर की पूंछ कितनी बड़ी थी जिसने तारों को एक तिहाई पृथिवी पर डाला, भला पृथिवी तो छोटी है और तारे भी बड़े २ लोक हैं इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता किन्तु यहां यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारों की तिहाई इस बात के लिखने वाले के घर पर गिरे होंगे और जिस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी जिससे सब तारों की तिहाई लपेट कर भूमि पर गिरादी वह अजगर भी उसीके घर में रहता होगा॥ ११३॥

११४–और स्वर्ग में युद्ध हुआ मीखायेल और उसके दूत अजगर से लड़े और अजगर और उसके दूत लड़े॥ यो० प्र० प० १२। आ० ७॥

समीक्षक–जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा वह भी लड़ाई में दुःख पाता होगा ऐसे स्वर्ग की यहीं से आश छोड़ हाथ जोड़ बैठ रहो जहां शान्तिभंग और उपद्रव मचा रहे वह ईसाइयों के योग्य है॥ ११४॥

११५–और वह बड़ा अजगर गिराया गया हां वह प्राचीन सांप जो दियावल और शैतान कहावता है जो सारे संसार का भरमानेहारा है॥ यो० प्र० प० १२। आ० ६॥

समीक्षक–क्या जब वह शैतान स्वर्ग में था तब लोगों को नहीं भरमाता

था ? और उसको जन्म भर वंदी में धिरा अथवा मार क्यों न डाला ? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया ? जो सब संसार का भरमानेवाला शैतान है तो शैतान को भरमानेवाला कौन है ? यदि शैतान स्वयं भर्मा है तो शैतान के विना भरमनेहारे भर्मेंगे और जो उसको भरमानेहारा परमेश्वर है तो वह ईश्वर ही नहीं ठहरा । विदित तो यह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी शैतान से डरता होगा क्योंकि जो शैतान से प्रवल है तो ईश्वर ने उसको अपराध करते समय ही दंड क्यों न दिया ? जगत् में शैतान का जितना राज्य है उसके सामने सहस्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर उसे हटा नहीं सकता होगा इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के राज्याधिकारी ईसाई डाकू चोर आदि को शीघ्र दंड देते हैं वैसा भी ईसाइयों का ईश्वर नहीं, पुनः कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है जो वैदिकमत को छोड़ कपोलकल्पित ईसाइयों का मत स्वीकार करे ? ॥ ११५ ॥

११६—हाय पृथिवी और समुद्र के निवासियो ! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है ॥ यो० प्र० पं० १२ । आ० १२ ॥

समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहीं का रक्षक और स्वामी है ? पृथिवी, मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है ? यदि भूमि का भी राजा है तो शैतान को क्यों न मारसका ? ईश्वर देखता रहता और शैतान बहकाता फिरता है तो भी उसको वर्जता नहीं, विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर हो रहा है ॥ ११६ ॥

११७—और बयालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे दिया गया। और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने को अपना मुंह खोला कि उसके नाम का और उसके तंबू की और स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे । और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उन पर जय करे और हरएक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया ॥ यो० प्र० प० १३ । आ० ५ । ६ । ७ ॥

समीक्षक—भला जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे वह काम डाकुओं के सर्दार के समान है वा नहीं ? ऐसा काम ईश्वर के भक्तों का नहीं हो सकता ॥ ११७ ॥

११८—और मैंने दृष्टि की और देखो मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है और उसके संग एक लाख चवालीस सहस्र जन थे जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है ॥ यो० प्र० प० १४ । आ० १ ॥

समीक्षक—अब देखिये जहां ईसा का बाप रहता था वहीं उसी सियोन पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता था परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की ? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्ग के वासी हुए। शेष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर न मोहर लगी ? क्या ये सब नरक में गये ? ईसाइयों को चाहिये कि सियोन पर्वत पर जाके देखें कि ईसा का बाप और उनकी सेना वहां है वा नहीं ? जो हो तो यह लेख ठीक है नहीं तो मिथ्या, यदि कहीं से वहां आया तो कहां से आया ? जो कहो स्वर्ग से तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर नीचे उड़कर आया जाया करें ? यदि वह आया जाया करता है तो एक ज़िले के न्यायाधीश के समान हुआ और वह एक दो वा तीन हो तो नहीं बन सकेगा किन्तु न्यून से न्यून एक २ भूगोल में एक २ ईश्वर चाहिये क्योंकि एक दो तीन अनेक ब्रह्माण्डों का न्याय करने और सर्वत्र युगपत् घूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते ॥ ११८ ॥

११९—आत्मा कहता है हां कि वे अपने परिश्रम से विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य उनके संग हो लेते हैं ॥ यो० प्र० प० १४ । आ० १३ ॥

समीक्षक—देखिये ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है उनके कर्म उनके संग रहेंगे अर्थात् कर्मानुसार फल सबको दिये जायंगे और यह लोग कहते हैं कि ईसा पापों को लेलेगा और क्षमा भी किये जायेंगे यहां बुद्धिमान् विचारें कि ईश्वर का वचन सच्चा वा ईसाइयों का ? एक बात में दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते इनमें से एक झूठा अवश्य होगा हमको क्या, चाहें ईसाइयों का ईश्वर झूठा हो वा ईसाई लोग ॥ ११९ ॥

१२०—और उस ईश्वर के कोप के बड़े रसके कुण्ड में डाला। और रस के कुण्ड का रौन्दन नगर के बाहर किया गया और रसके कुण्ड में से घोड़ों की लगाम तक लोहू एकसौ कोश तक वह निकला॥ यो० प्र० प० १४। आ० १९। २०॥

समीक्षक—अब देखिये इनके गपोड़े पुराणों से भी बढ़कर हैं वा नहीं! ईसाइयों का ईश्वर कोप करते समय बहुत दुःखित होजाता होगा और जो उसके कोप के कुण्ड भरे हैं क्या उसका कोप जल है? वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिसके कुण्ड भरे हैं? और सौ कोश तक रुधिर का बहना असम्भव है क्योंकि रुधिर वायु लगने से झट जमजाता है पुनः क्योंकर वह सकता है? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं॥ १२०॥

१२१—और देखो स्वर्ग में साक्षी के तंबू का मन्दिर खोला गया॥ यो० प्र० प० १५। आ० ५॥

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इन का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं क्योंकि मनुष्यवत् अल्पज्ञ है वह ईश्वरता का क्या काम कर सकता है? नहिं नहिं नहिं और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी २ असंभव बातें लिखी हैं उनको सत्य कोई नहीं मान सकता कहांतक लिखें इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं॥ १२१॥

१२२—और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण किया है। जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देखो और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ॥ यो० प्र० प० १८। आ० ५। ६॥

समीक्षक—देखो प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है क्योंकि न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना उससे अधिक न्यून देना अन्याय है जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं वे अन्यायकारी क्यों न हों॥ १२२॥

१२३–क्योंकि मेम्ने का विवाह आपहुंचा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है ॥ यो० प्र० प० १९ । आ० ७ ॥

समीक्षक–अब सुनिये ! ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं ! क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया, पूछना चाहिये कि उसके श्वशुर सासु शालादि कौन थे और लड़के वाले कितने हुए ? और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि के भी न्यून होने से अबतक ईसा ने वहां शरीर त्याग किया होगा क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है अबतक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कबतक धोखे में रहेंगे ॥ १२३ ॥

१२४–और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन सांप को जो दियाबल और शैतान है पकड़ के उसे सहस्र वर्ष लों बांध रक्खा । और उसको अथाह कुण्ड में डाला और बन्द करके उसे छापदी जिसते वह जबलों सहस्र वर्ष पूरे न हों तबलों फिर देशों के लोगों को न भरमावे ॥ यो० प्र० प० २० । आ० २ । ३ ॥

समीक्षक–देखो मरूं मरूं करके शैतान को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द किया फिर भी छूटेगा क्या फिर न भरमावेगा ? ऐसे दुष्ट को तो बन्दीगृह में ही रखना वा मारे विना छोड़ना ही नहीं । परन्तु यह शैतान का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है वास्तव में कुछ भी नहीं केवल लोगों को डरा के अपने जाल में लाने का उपाय रचा है । जैसे किसी धूर्त्त ने किन्हीं भोले मनुष्यों से कहा कि चलो तुमको देवता का दर्शन कराऊं किसी एकान्त देश में लेजा के एक मनुष्य को चतुर्भुज बनाकर रक्खा झाड़ी में खड़ा करके कहा कि आंख मीच लो जब मैं कहूं तब खोलना और फिर जब कहूं तभी मीच लो जो न मीचेगा वह अन्धा होजायगा । वैसी इन मत वालों की बातें हैं कि जो हमारा मज़हब न मानेगा वह शैतान का बहकाया हुआ है । जब वह सामने आया तब कहा देखो ! और पुनः शीघ्र कहा कि मीचलो जब फिर झाड़ी में छिप गया तब कहा खोलो ! देखो नारायण को ! सब ने दर्शन किया । वैसी लीला मज़हबियों की है इसलिये इनकी माया में किसी को न फँसना चाहिये ॥१२४॥

१२५—जिसके सन्मुख से पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली। और मैंने क्या छोटे क्या बड़े सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्मों के अनुसार किया गया॥ यो० प्र० प० २०। आ० ११। १२॥

समीक्षक—यह देखो लड़कपन की बात भला पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे? जिन के सामने से भगे और उसका सिंहासन और वह कहां ठहरा? और मुर्दे परमेश्वर के सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा? क्या यहां की कचहरी और दूकान के समान ईश्वर का व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवों का हाल ईश्वर ने लिखा वा उसके गुमाश्तों ने? ऐसी २ बातों से अनीश्वर को ईश्वर और ईश्वर को अनीश्वर ईसाई आदि मत वालों ने बना दिया॥ १२५॥

१२६—उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिन को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊंगा॥ यो० प्र० प० २१। आ० ६॥

समीक्षक—भला ईसा ने स्वर्ग में दुलहिन अर्थात् स्त्री अच्छी पाई मौज करता होगा, जो २ ईसाई वहां जाते होंगे उनको भी स्त्रियां मिलती होंगी और लड़के बाले होते होंगे और बहुत भीड़ के होजाने से रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्ग को दूर से हाथ ही जोड़ना अच्छा है॥ १२६॥

१२७—और उसने उस नल से नगर को नापा कि साढ़े सातसौ कोश का है उसकी लम्बाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान है। और उसने उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के नाप से नापा कि एकसौ चवालीस हाथ की है और उसकी भीत की जुड़ाई सूर्य्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था जो निर्मल कांच के समान था और नगर के भीत की नेवें हरएक

बहुमूल्य पत्थर से सँवारी हुई थीं पहिली नेव सूर्य्यकान्त की थी दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की, पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, एग्यारहवीं धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्टीष की और बारह फाटक बारह मोती थे एक २ मोती से एक २ फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी ॥ यो० प्र० प० २१ । आ० १६ । १७ । १८ । १६ । २० । २१ ॥

समीक्षक–सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन ! यदि ईसाई मरते जाते और जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में कैसे समा सकेंगे ? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम होता है और उससे निकलते नहीं और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है और सर्व सोने की है इत्यादि लेख केवल भोले २ मनुष्यों को बहका कर फँसाने की लीला है । भला लंबाई चौड़ाई तो उस नगर की लिखी सो हो सकती परन्तु ऊंचाई साढ़े सातसौ कोश क्योंकर हो सकती है ? यह सर्वथा मिथ्या कपोल कल्पना की बात है और इतने बड़े मोती कहां से आये होंगे ? इस लेख के लिखनेवाले के घर के घड़े में से, यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है ॥ १२७ ॥

१२८–और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलनेहारा उस में किसी रीति से प्रवेश न करेगा ॥ यो० प्र० प० २० । आ० २७ ॥

समीक्षक–जो ऐसी बात है तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि पापी लोग भी स्वर्ग में ईसाई होने से जा सकते हैं ? यह ठीक बात नहीं है यदि ऐसा है तो योहन्ना स्वप्ने की मिथ्या बातों का कहनेहारा स्वर्ग में प्रवेश कभी न करसका होगा और ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है वह क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है ? ॥ १२८ ॥

१२६—और अब कोई श्राप न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे और ईश्वर का मुंह देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य्य की ज्योति का प्रयोजन नहीं क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा सर्वदा राज्य करेंगे॥ यो० प्र० प० २२। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—देखिये यही ईसाइयों का स्वर्गवास! क्या ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे? अब यह तो कहिये तुम्हारे ईश्वर का मुंह यूरोपियन के सदृश गोरा वा अफ्रीका वालों के सदृश काला अथवा अन्य देश वालों के समान है? यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है क्योंकि जहां छोटाई बड़ाई है और उसी एक नगर में रहना अवश्य है तो वहां दुःख क्यों न होता होगा? जो मुखवाला है वह ईश्वर सर्वज्ञ सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता॥ १२६॥

१३०—देख मैं शीघ्र आता हूं और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हरएक को जैसा उसका कार्य्य ठहरेगा वैसा फल देऊंगा॥ यो० प्र० प० २२। आ० १२॥

समीक्षक—जब यही बात है कि कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती और जो क्षमा होती है तो इञ्जील की बातें झूठी यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी इञ्जील में लिखा है तो पूर्वापर विरुद्ध अर्थात् "हल्फ़-दरोग़ी" हुई तो झूठ है इसका मानना छोड़ देओ। अब कहांतक लिखें इनकी बाइबल में लाखों बातें खंडनीय हैं यह तो थोड़ासा चिह्नमात्र ईसाइयों की बाइबल पुस्तक का दिखलाया है इतने ही से बुद्धिमान् लोग बहुत समझ लेंगे थोड़ीसी

बातों को छोड़ शेष सब झूठ भरा है जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता वैसा ही बाइबल पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है ॥ १३० ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते कृश्चीनमतविषये त्रयोदशः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १३ ॥

अनुभूमिका (४)

जो यह १४ चवदहवां समुल्लास मुसलमानों के मतविषय में लिखा है सो केवल कुरान के अभिप्राय से, अन्य ग्रन्थ के मत से नहीं क्योंकि मुसलमान कुरान पर ही पूरा २ विश्वास रखते हैं, यद्यपि फ़िरक़े होने के कारण किसी शब्द अर्थ आदि विषय में विरुद्ध बात है तथापि कुरान पर सब ऐकमत्य हैं। जो कुरान अर्वी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू में अर्थ लिखा है उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्य्यभाषान्तर कराके पश्चात् अर्वी के बड़े २ विद्वानों से शुद्ध करवाके लिखा गया है यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहिले खण्डन करे पश्चात् इस विषय पर लिखे क्योंकि यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिये सब मतों के विषयों का थोड़ा २ ज्ञान होवे इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खण्डन कर गुणों का ग्रहण करें न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ मूठ बुराई वा भलाई लगाने का प्रयोजन है किन्तु जो २ भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों को ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें करावें क्योंकि पक्षपात से क्या २ अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंग जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उसको सज्जन लोग विदित

कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायगा क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इनको बढ़ाने के अर्थ क्योंकि एक दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुंचाना हमारा मुख्यकर्म है। अब यह चौदहवें समुल्लास में मुसलमानों का मतविषय सब सज्जनों के सामने निवेदन करता हूं विचार कर इष्ट का ग्रहण अनिष्ट का परित्याग कीजिये ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

इत्यनुभूमिका ॥

अथ चतुर्दशसमुल्लासारम्भः

अथ यवनमतविषयं समीक्षिष्यामहे

इसके आगे मुसलमानों के मतविषय में लिखेंगे ॥

१—आरंभ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करनेवाला दयालु ॥ मंजिल १। सिपारा १। सूरत १॥

समीक्षक—मुसलमान लोग ऐसा कहते हैं कि यह कुरान खुदा का कहा है परन्तु इस वचन से विदित होता है कि इसका बनानेवाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरंभ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता किन्तु "आरंभ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता! यदि मनुष्यों को शिक्षा करता है कि तुम ऐसा कहो तो भी ठीक नहीं, क्योंकि इससे पाप का आरंभ भी खुदा के नाम से होकर उसका नाम भी दूषित होजायगा। जो वह क्षमा और दया करनेहारा है तो उसने अपनी सृष्टि में मनुष्यों के सुखार्थ अन्य प्राणियों को मार, दारुण पीड़ा दिलाकर मरवा के मांस खाने की आज्ञा क्यों दी? क्या वे प्राणी अनपराधी और परमेश्वर के बनाये हुए नहीं हैं? और यह भी कहना था कि "परमेश्वर के नाम पर अच्छी बातों का आरंभ" बुरी बातों का नहीं इस कथन में गोलमाल है, क्या चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि अधर्म का भी आरंभ परमेश्वर के नाम पर किया जाय? इसी से देख लो कसाई आदि मुसलमान, गाय आदि के गले काटने में भी "बिस्मिल्लाह" इस वचन को पढ़ते हैं जो यही इसका पूर्वोक्त अर्थ है तो बुराइयों का आरंभ भी परमेश्वर के नाम पर मुसलमान करते हैं और मुसलमानों का "खुदा" दयालु भी न रहेगा क्योंकि उसकी दया उन पशुओं पर न रही! और जो मुसलमान लोग इसका

अर्थ नहीं जानते तो इस वचन का प्रकट होना व्यर्थ है यदि मुसलमान लोग इसका अर्थ और करते हैं तो सूधा अर्थ क्या है ? इत्यादि ॥ १ ॥

२—सब स्तुति परमेश्वर के वास्ते हैं जो परवरदिगार अर्थात् पालन करनेहारा है सब संसार का । क्षमा करने वाला दयालु है ॥ मं० १ । सि० १ । सूरतुल्फ़ातिहा आ० १ । २ ॥

समीक्षक—जो कुरान का खुदा संसार का पालन करनेहारा होता और सब पर क्षमा और दया करता होता तो अन्य मत वाले और पशु आदि को भी मुसलमानों के हाथ से मरवाने का हुक्म न देता । जो क्षमा करनेहारा है तो क्या पापियों पर भी क्षमा करेगा ? और जो वैसा है तो आगे लिखेंगे कि "काफ़िरों को क़तल करो" अर्थात् जो कुरान और पैग़म्बर को न मानें वे काफ़िर हैं ऐसा क्यों कहता ? इसलिये कुरान ईश्वरकृत नहीं दीखता ॥ २ ॥

३—मालिक दिन न्याय का ॥ तुझ ही को हम भक्ति करते हैं और तुझ ही से सहाय चाहते हैं ॥ दिखा हमको सीधा रास्ता ॥ मं० १ । सि० १ सू० १ । आ० ३ । ४ । ५ ॥

समीक्षक—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता ? किसी एक दिन न्याय करता है ? इससे तो अंधेर विदित होता है ! उसी की भक्ति करना और उसी से सहाय चाहना तो ठीक परन्तु क्या बुरी बात का भी सहाय चाहना ? और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है वा दूसरे का भी ? सूधे मार्ग को मुसलमान क्यों नहीं ग्रहण करते ? क्या सूधा रास्ता बुराई की ओर का तो नहीं चाहते ? यदि भलाई सब की एक है तो फिर मुसलमानों ही में विशेष कुछ न रहा और जो दूसरों की भलाई नहीं मानते तो पक्षपाती हैं ॥ ३ ॥

४—उन लोगों का रास्ता कि जिनपर तू ने निआमत की और उनका मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तू ने ग़ज़ब अर्थात् अत्यन्त क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा ॥ मं० १ । सि० १ । सू० १ । आ० ६ । ७ ॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग पूर्वजन्म और पूर्वकृत पाप पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर निआमत अर्थात् फ़ज़ल वा दया करने और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जायगा, क्योंकि विना पाप पुण्य सुख दुःख देना केवल अन्याय की बात है और विना कारण किसी पर दया और किसी पर क्रोधदृष्टि करना भी स्वभाव से बहिः है। वह दया अथवा क्रोध नहीं कर सकता और जब उनके पूर्व संचित पुण्य पाप ही नहीं तो किसी पर दया और किसी पर क्रोध करना नहीं हो सकता। और इस सूरत की टिप्पन "यह सूरः अल्लाह साहेब ने मनुष्यों के मुख से कहलाई कि सदा इस प्रकार से कहा करें" जो यह बात है तो "अलिफ़ बे" आदि अक्षर खुदा ही ने पढ़ाये होंगे, जो कहो कि विना अक्षर ज्ञान के इस सूरः को कैसे पढ़ सके क्या कंठ ही से बुलाए और बोलते गये? जो ऐसा है तो सब कुरान ही कंठ से पढ़ाया होगा इससे ऐसा समझना चाहिये कि जिस पुस्तक में पक्षपात की बातें पाई जायँ वह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता, जैसा कि अरबी भाषा में उतारने से अरबवालों को इसका पढ़ना सुगम अन्य भाषा बोलनेवालों को कठिन होता है इससे खुदा में पक्षपात आता है और जैसे परमेश्वर ने सृष्टिस्थ सब देशस्थ मनुष्यों पर न्याय-दृष्टि से सब देशभाषाओं से विलक्षण संस्कृत भाषा कि जो सब देशवालों के लिये एक से परिश्रम से विदित होती है उसी में वेदों का प्रकाश किया है, करता तो यह दोष नहीं होता॥ ४॥

५—यह पुस्तक कि जिसमें संदेह नहीं परहेजगारों को मार्ग दिखलाती है॥ जो ईमान लाते हैं साथ ग़ैब (परोक्ष) के नमाज़ पढ़ते और उस वस्तु से जो हमने दी ख़र्च करते हैं॥ और वे लोग जो उस किताब पर ईमान लाते हैं जो रखते हैं तेरी ओर वा तुझ से पहिले उतारी गई और विश्वास क़यामत पर रखते हैं॥ ये लोग अपने मालिक की शिक्षा पर हैं और ये ही छुटकारा पाने-वाले हैं॥ निश्चय जो काफ़िर हुए और उन पर तेरा डराना न डराना समान है वे ईमान न लावेंगे॥ अल्लाह ने उनके दिलों कानों पर मोहर करदी और उनकी आंखों पर पर्दा है और उनके वास्ते बड़ा अज़ाब है॥ मं० १। सि० १। सूरत २। आ० १।२।३।४।५।६॥

समीक्षक-क्या अपने ही मुख से अपनी किताब की प्रशंसा करना ख़ुदा की दम्भ की बात नहीं ? जब परहेज़गार अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्ग में हैं और जो झूठे मार्ग पर हैं उनको यह कुरान मार्ग ही नहीं दिखला सकता फिर किस काम का रहा ? क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थ के विना ख़ुदा अपने ही ख़ज़ाने से ख़र्च करने को देता है ? जो देता है तो सब को क्यों नहीं देता ? और मुसलमान लोग परिश्रम क्यों करते हैं और जो बाइबल इञ्जील आदि पर विश्वास करना योग्य है तो मुसलमान इञ्जील आदि पर ईमान जैसा कुरान पर है वैसा क्यों नहीं लाते ? और जो लाते हैं तो कुरान * का होना किसलिये ? जो कहें कि कुरान में अधिक बातें हैं तो पहिली किताब में लिखना ख़ुदा भूल गया होगा ! और जो नहीं भूला तो कुरान का बनाना निष्प्रयोजन है । और हम देखते हैं तो बाइबल और कुरान की बातें कोई २ न मिलती होंगी नहीं तो सब मिलती हैं एक ही पुस्तक जैसा कि वेद है क्यों न बनाया ? क़यामत पर ही विश्वास रखना चाहिये अन्य पर नहीं ? ॥ १ । २ । ३ ॥ क्या ईसाई और मुसलमान ही ख़ुदा की शिक्षा पर हैं उनमें कोई भी पापी नहीं हैं ? क्या ईसाई और मुसलमान अधर्मी हैं वे भी छुटकारा पावें और दूसरे धर्मात्मा भी न पावें तो बड़े अन्याय और अंधेर की बात नहीं है ? ॥ ४ ॥ और क्या जो लोग मुसलमानी मत को न मानें उन्हीं को काफ़िर कहना यह एकतर्फ़ी डिगरी नहीं है ? ॥ जो परमेश्वर ही ने उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं तो उनका कुछ भी दोष नहीं यह दोष ख़ुदा ही का है फिर उन पर सुख दुःख वा पाप पुण्य नहीं हो सकता पुनः उनको सजा क्यों करता है ? क्योंकि उन्होंने पाप वा पुण्य स्वतन्त्रता से नहीं किया ॥ ५ ॥

६—उनके दिलों में रोग है अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ६ ॥

* वास्तव में यह शब्द "कुरआन" है परन्तु भाषा में लोगों के बोलने में कुरान आता है लिये ऐसा ही लिखा है ।

समीक्षक--भला विना अपराध खुदा ने उनका रोग बढ़ाया दया न आई उन विचारों को बड़ा दुःख हुआ होगा ! क्या यह शैतान से बढ़कर शैतानपन का काम नहीं है ? किसी के मन पर मोहर लगाना, किसी का रोग बढ़ाना यह खुदा का काम नहीं हो सकता, क्योंकि रोग का बढ़ाना अपने पापों से है ॥६॥

७–जिसने तुम्हारे वास्ते पृथिवी बिछौना और आसमान की छत को बनाया ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २१ ॥

समीक्षक–भला आसमान छत किसी की हो सकती है ? यह अविद्या की बात है आकाश को छत के समान मानना हंसी की बात है यदि किसी प्रकार की पृथिवी को आसमान मानते हो तो उनके घर की बात है ॥ ७ ॥

८–जो तुम उस वस्तु से सन्देह में हो जो हमने अपने पैग़म्बर के ऊपर उतारी तो उस कैसी एक सूरत ले आओ और अपने साक्षी लोगों को पुकारो अल्लाह के विना तुम सच्चे हो जो तुम ॥ और कभी न करोगे तो उस आग से डरो कि जिसका इन्धन मनुष्य है और काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २२ । २३ ॥

समीक्षक–भला यह कोई बात है कि उसके सदृश कोई सूरत न बने ? क्या अकबर बादशाह के समय में मौलवी फ़ैज़ी ने विना नुक़ते का कुरान नहीं बना लिया था ! वह कौनसी दोज़ख़ की आग है ? क्या इस आग से न डरना चाहिये ? इसका भी इन्धन जो कुछ पड़े सब है । जैसे कुरान में लिखा है कि काफ़िरों के वास्ते पत्थर तैयार किये गये हैं तो वैसे पुराणों में लिखा है कि म्लेच्छों के लिये घोर नरक बना है ! अब कहिये किसकी बात सच्ची मानी जाय ? अपने २ वचन से दोनों स्वर्गगामी और दूसरे के मत से दोनों नरकगामी होते हैं इसलिये इन सबका झगड़ा झूठा है किन्तु जो धार्मिक हैं वे सुख और जो पापी हैं वे सब मतों में दुःख पावेंगे ॥ ८ ॥

९–और आनन्द का सन्देसा दे उन लोगों को कि ईमान लाए और काम

किए अच्छे यह कि उनके वास्ते बिहिश्तें हैं जिनके नीचे से चलती हैं नहरें जब उसमें से मेवों के भोजन दिये जावेंगे तब कहेंगे कि वह वो वस्तु हैं जो हम पहिले इससे दिये गये थे और उनके लिये पवित्र बीबियां सदैव वहां रहनेवाली हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २४ ॥

समीक्षक—भला यह कुरान का बहिश्त संसार से कौनसी उत्तम बात वाला है ? क्योंकि जो पदार्थ संसार में हैं वे ही मुसलमानों के स्वर्ग में हैं और इतना विशेष है कि यहां जैसे पुरुष जन्मते मरते और आते जाते हैं उसी प्रकार स्वर्ग में नहीं किन्तु यहां की स्त्रियां सदा नहीं रहतीं और वहां बीबियां अर्थात् उत्तम स्त्रियां सदा काल रहती हैं तो जबतक क़यामत की रात न आवेगी तबतक उन विचारियों के दिन कैसे कटते होंगे ? हां जो ख़ुदा की उन पर कृपा होती होगी ! और ख़ुदा ही के आश्रय समय काटतीं होंगी तो ठीक है ! क्योंकि यह मुसलमानों का स्वर्ग गोकुलिये गुसाइंयों के गोलोक और मंदिर के सदृश दीखता है क्योंकि वहां स्त्रियों का मान्य बहुत, पुरुषों का नहीं, वैसे ही ख़ुदा के घर में स्त्रियों का मान्य अधिक और उनपर ख़ुदा का प्रेम भी बहुत है, उन पुरुषों पर नहीं, क्योंकि बीबियों को ख़ुदा ने बहिश्त में सदा रक्खा और पुरुषों को नहीं, वे बीबियां बिना ख़ुदा की मर्ज़ी स्वर्ग में कैसे ठहर सकतीं ? जो यह बात ऐसी ही हो तो ख़ुदा स्त्रियों में फँस जाय ! ॥ ९ ॥

१०—आदम को सारे नाम सिखाये फिर फ़रिश्तों के सामने करके कहा जो तुम सच्चे हो मुझे उनके नाम बताओ ॥ कहा हे आदम ! उनके नाम बता दे तब उसने बता दिये तो ख़ुदा ने फ़रिश्तों से कहा कि क्या मैंने तुमसे नहीं कहा था कि निश्चय मैं पृथिवी और आसमान की छिपी वस्तुओं को और प्रकट छिपे कर्मों को जानता हूं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० २९ । ३१ ॥

समीक्षक—भला ऐसे फ़रिश्तों को धोखा देकर अपनी बड़ाई करना ख़ुदा का काम हो सकता है ? यह तो एक दंभ की बात है, इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न ऐसा अभिमान करता । क्या ऐसी बातों से ही ख़ुदा अपनी

सिद्धाई जमाना चाहता है ?, हां जंगली लोगों में कोई कैसा ही पाखण्ड चला लेवे चल सकता है, सभ्यजनों में नहीं ॥ १० ॥

११-जब हमने फ़रिश्तों से कहा कि बाबा आदम को दण्डवत् करो देखा सभों ने दण्डवत् किया परन्तु शैतान ने न माना और अभिमान किया क्योंकि वो भी एक काफ़िर था ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ३२ ॥

समीक्षक-इससे खुदा सर्वज्ञ नहीं अर्थात् भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान की पूरी बातें नहीं जानता जो जानता हो तो शैतान को पैदा ही क्यों किया और खुदा में कुछ तेज नहीं है क्योंकि शैतान ने खुदा का हुक्म ही न माना और खुदा उसका कुछ भी न कर सका ! और देखिये एक शैतान काफ़िर ने खुदा का भी छक्का छुड़ा दिया तो मुसलमानों के कथनानुसार भिन्न जहां क्रोड़ों काफ़िर हैं वहां मुसलमानों के खुदा और मुसलमानों की क्या चल सकती है ? कभी २ खुदा भी किसी का रोग बढ़ा देता, किसी को गुमराह कर देता है, खुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने खुदा से, क्योंकि विना खुदाके शैतान का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

१२-हमने कहा कि जो आदम तू और तेरी जोरू बहिश्त में रहकर आनन्द में जहां चाहो खाओ परन्तु मत समीप जाओ उस वृक्ष के कि पापी हो जाओगे ॥ शैतान ने उनको डिगाया कि और उनको बहिश्त के आनन्द से खोदिया तब हमने कहा कि उतरो तुम्हारे में कोई परस्पर शत्रु है तुम्हारा ठिकाना पृथिवी है और एक समय तक लाभ है आदम अपने मालिक की कुछ बातें सीख कर पृथिवी पर आगया ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ३३ । ३४ । ३५ ॥

समीक्षक-अब देखिये खुदाकी अल्पज्ञता अभी तो स्वर्ग में रहने का आशीर्वाद दिया और पुनः थोड़ी देर में कहा कि निकलो जो भविष्यत् बातों को जानता होता तो वर ही क्यों देता ? और बहकानेवाले शैतान को दण्ड देने से असमर्थ भी दीख पड़ता है और वह वृक्ष किस के लिये उत्पन्न किया था ? क्या अपने लिये वा दूसरे के लिये ? जो दूसरे के लिये तो क्यों रोका ?

इसलिये ऐसी बातें न खुदा की और न उसके बनाये पुस्तक में हो सकती हैं आदम साहेब खुदा से कितनी बातें सीख आये ? और जब पृथिवी पर आदम साहेब आये तब किस प्रकार आये ? क्या वह बहिश्त पहाड़ पर है वा आकाश पर ? उससे कैसे उतर आये ? अथवा पक्षी के तुल्य आये अथवा जैसे ऊपर से पत्थर गिर पड़े ? इसमें यह विदित होता है कि जब आदम साहेब मही से बनाये गये तो इनके स्वर्ग में भी मही होगी ? और जितने वहां और हैं वे भी वैसे ही फ़रिश्ते आदि होंगे क्योंकि मही के शरीर विना इन्द्रिय भाग नहीं हो सकता जब पार्थिव शरीर है तो मृत्यु भी अवश्य होना चाहिये यदि मृत्यु होता है तो वे वहां से कहां जाते हैं ? और मृत्यु नहीं होता तो उनका जन्म भी नहीं हुआ जब जन्म है तो मृत्यु अवश्य ही है यदि ऐसा है तो कुरान में लिखा है कि बीवियां सदैव बहिश्त में रहती हैं सो झूठा हो जायगा क्योंकि उनका भी मृत्यु अवश्य होगा जब ऐसा है तो बहिश्त में जानेवालों का भी मृत्यु अवश्य होगा ॥ १२ ॥

१३—उस दिन से डरो कि जब कोई जीव किसी जीव से भरोसा न रक्खेगा न उसकी सिफ़ारिश स्वीकार की जावेगी न उससे बदला लिया जावेगा और न वे सहाय पावेंगे ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ४६ ॥

समीक्षक—क्या वर्त्तमान दिनों में न डरें ? बुराई करने में सब दिन डरना चाहिये जब सिफ़ारिश न मानी जावेगी तो फिर पैग़म्बर की गवाही वा सिफ़ारिश से खुदा स्वर्ग देगा यह बात क्योंकर सच हो सकेगी ? क्या खुदा बहिश्तवालों ही का सहायक है दोज़ख़वालों का नहीं यदि ऐसा है तो खुदा पक्षपाती है ॥ १३ ॥

१४—हमने मूसा को किताब और मोजिज़े दिये ॥ हमने उनको कहा कि तुम निन्दित बन्दर हो जाओ यह एक भय दिया जो उनके सामने और पीछे थे उनको और शिक्षा ईमानदारों को ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५० । ६१ ॥

समीक्षक—जो मूसा को किताब दी तो कुरान का होना निरर्थक है और उसको आश्चर्यशक्ति दी यह बाइबल और कुरान में भी लिखा है परन्तु यह बात मानने योग्य नहीं क्योंकि जो ऐसा होता तो अब भी होता जो अब नहीं तो पहिले भी न था, जैसे स्वार्थी लोग आजकल भी अविद्वानों के सामने विद्वान् बन जाते हैं वैसे उस समय भी कपट किया होगा क्योंकि खुदा और उसके सेवक अब भी विद्यमान हैं पुनः इस समय खुदा आश्चर्यशक्ति क्यों नहीं देता ? और नहीं कर सकते जो मूसा को किताब दी थी तो पुनः कुरान का देना क्या आवश्यक था क्योंकि जो भलाई बुराई करने न करने का उपदेश सर्वत्र एकसा हो तो पुनः भिन्न २ पुस्तक करने से पुनरुक्त दोष होता है क्या मूसाजी आदि को दी हुई पुस्तकों में खुदा भूल गया था ? जो खुदा ने निन्दित बन्दर हो जाना केवल भय देने के लिये कहा था तो उसका कहना मिथ्या हुआ वा छल किया जो ऐसी बातें करता है और जिसमें ऐसी बातें हैं वह न खुदा और न यह पुस्तक खुदा का बनाया हो सकता है ॥ १४ ॥

१५—इस तरह खुदा मुर्दों को जिलाता है और तुम को ॥ अपनी निशानियां दिखलाता है कि तुम समझो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ६७ ॥

समीक्षक—क्या मुर्दों को खुदा जिलाता था तो अब क्यों नहीं जिलाता ? क्या क़यामत की रात तक क़बरों में पड़े रहेंगे ? आजकल दौरासुपुर्द हैं ? क्या इतनी ही ईश्वर की निशानियां हैं ? पृथिवी, सूर्य, चन्द्रादि निशानियां नहीं हैं ? क्या संसार में जो विविध रचना विशेष प्रत्यक्ष दीखती हैं ये निशानियां कम हैं ? ॥ १५ ॥

१६—वे सदैव काल बहिश्त अर्थात् वैकुण्ठ में वास करनेवाले हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७५ ॥

समीक्षक—कोई भी जीव अनन्त पाप करने का सामर्थ्य नहीं रखता इसलिये सदैव स्वर्ग नरक में नहीं रह सकते और जो खुदा ऐसा करे तो वह अन्यायकारी और अविद्वान् होजावे क़यामत की रात न्याय होगा तो मनुष्यों के पाप

पुण्य बराबर होना उचित है जो कर्म अनन्त नहीं है उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? और सृष्टि हुए सात आठ हज़ार वर्षों से इधर ही बतलाते हैं क्या इसके पूर्व खुदा निकम्मा बैठा था ? और क़यामत के पीछे भी निकम्मा रहेगा ? ये बातें सब लड़कों के समान हैं क्योंकि परमेश्वर के काम सदैव वर्त्तमान रहते हैं और जितने जिसके पाप पुण्य हैं उतना ही उसको फल देता है इसलिये कुरान की यह बात सच्ची नहीं ॥ १६ ॥

१७—जब हमने तुमसे प्रतिज्ञा कराई न बहाना लोहू अपने आपस के और किसी अपने आपस के घरों से न निकलना फिर प्रतिज्ञा की तुम ने इस के तुम ही साची हो ॥ फिर तुम वे लोग हो कि अपने आपस को मार डालते हो एक फ़िरके को आप में से घरों उनके से निकाल देते हो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ ७७ । ७८ ॥

समीक्षक—भला प्रतिज्ञा करानी और करनी अल्पज्ञों की बात है वा परमात्मा की ? जब परमेश्वर सर्वज्ञ है तो ऐसी कड़ाकूट संसारी मनुष्य के समान क्यों करेगा ? भला यह कौनसी भली बात है कि आपस का लोहू न बहाना अपने मत वालों को घर से न निकालना अर्थात् दूसरे मत वालों का लोहू बहाना और घर से निकाल देना ? यह मिथ्या मूर्खता और पक्षपात की बात है । क्या परमेश्वर प्रथम ही से नहीं जानता था कि ये प्रतिज्ञा से विरुद्ध करेंगे ? इससे विदित होता है कि मुसलमानों का खुदा भी ईसाइयों की बहुतसी उपमा रखता है और यह कुरान स्वतंत्र नहीं बन सकता क्योंकि इसमें से थोड़ीसी बातों को छोड़कर बाक़ी सब बातें बाइबल की हैं ॥ १७ ॥

१८—ये वे लोग हैं कि जिन्होंने आख़रत के बदले जिन्दगी यहां की मोल लेली उनसे पाप कभी हलका न किया जावेगा और न उनको सहायता दी जावेगी ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ७९ ॥

समीक्षक—भला ऐसी ईर्ष्या द्वेष की बातें कभी ईश्वर की ओर से हो सकती हैं ? जिन लोगों के पाप हलके किये जायेंगे वा जिनको सहायता दी जावेगी वे

कौन हैं ? यदि वे पापी हैं और पापों का दण्ड दिये विना हलके किये जावेंगे तो अन्याय होगा जो सज़ा देकर हलके किये जावेंगे तो जिनका बयान इस आयत में है ये भी सज़ा पाके हलके हो सकते हैं । और दण्ड देकर भी हलके न किये जावेंगे तो भी अन्याय होगा । जो पापों से हलके किये जाने वालों से प्रयोजन धर्म्मात्माओं का है तो उनके पाप तो आप ही हलके हैं ख़ुदा क्या करेगा ? इससे यह लेख विद्वान् का नहीं । और वास्तव में धर्मात्माओं को सुख और अधर्म्मियों को दुःख उनके कर्म्मों के अनुसार सदैव देना चाहिये ॥ १८ ॥

१९—निश्चय हमने मूसा को किताब दी और उसके पीछे हम पैग़म्बर को लाये और मरियम के पुत्र ईसा को प्रकट मौजिज़े अर्थात् दैवीशक्ति और सामर्थ्य दिये उसके साथ रूहुलकुदस * के जब तुम्हारे पास उस वस्तु सहित पैग़म्बर आया कि जिसको तुम्हारा जी चाहता नहीं फिर तुमने अभिमान किया एक मत को झुठलाया और एक को मार डालते हो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८० ॥

समीक्षक—जब कुरान में साक्षी है कि मूसा को किताब दी तो उसका मानना मुसलमानों को आवश्यक हुआ और जो २ उस पुस्तक में दोष हैं वे भी मुसलमानों के मत में आगिरे और "मौजिज़े" अर्थात् दैवीशक्ति की बातें सब अन्यथा हैं भोले भाले मनुष्यों को बहकाने के लिये झूठ मूठ चलाली हैं क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्या से विरुद्ध सब बातें झूठी ही होती हैं जो उस समय "मौजिज़े" थे तो इस समय क्यों नहीं ? जो इस समय नहीं तो उस समय भी न थे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं ॥ १९ ॥

२०—और इससे पहिले काफ़िरों पर विजय चाहते थे जो कुछ पहिचाना था जब उनके पास वह आया झट काफ़िर होगए काफ़िरों पर लानत है अल्लाह की ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ८२ ॥

* रूहुल्कुद्स कहते हैं जबरईल को जो कि हरदम मसीह के साथ रहता था ।

समीक्षक—क्या जैसे तुम अन्य मत वालों को काफ़िर कहते हो वैसे वे तुमको काफ़िर नहीं कहते हैं ? और उनके मत के ईश्वर की ओर से धिक्कार देते हैं फिर कहो कौन सच्चा और कौन झूठा ? जो विचार करके देखते हैं तो सब मत वालों में झूठ पाया जाता है और जो सच है सो सब में एकसा, ये सब लड़ाइयां मूर्खता की हैं ॥ २० ॥

२१—आनन्द का सन्देशा ईमानदारों को अल्लाह, फ़रिश्तों पैग़म्बरों जिबरईल और मीकाइल का जो शत्रु है अल्लाह भी ऐसे काफ़िरों का शत्रु है ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ९० ॥

समीक्षक—जब मुसलमान कहते हैं कि खुदा लाशरीक है फिर यह फौज की फौज शरीक कहां से करदी ? क्या जो औरों का शत्रु वह खुदा का भी शत्रु है ? यदि ऐसा है तो ठीक नहीं क्योंकि ईश्वर किसी का शत्रु नहीं हो सकता ॥ २१ ॥

२२—और कहो कि क्षमा मांगते हैं हम क्षमा करेंगे तुम्हारे पाप और अधिक भलाई करनेवालों के ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५४ ॥

समीक्षक—भला यह खुदा का उपदेश सब को पापी बनानेवाला है वा नहीं ? क्योंकि जब पाप क्षमा होने का आश्रय मनुष्यों को मिलता है तब पापों से कोई भी नहीं डरता इसलिये ऐसा कहनेवाला खुदा और यह खुदा का बनाया हुआ पुस्तक नहीं हो सकता क्योंकि वह न्यायकारी है अन्याय कभी नहीं करता और पाप क्षमा करने में अन्यायकारी हो सकता है ॥ २२ ॥

२३—जब मूसा ने अपनी क़ौम के लिये पानी मांगा हमने कहा कि अपना असा (दंड) पत्थर पर मार उसमें से बारह चश्मे वह निकले ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ५६ ॥

समीक्षक—अब देखिये इन असंभव बातों के तुल्य दूसरा कोई कहेगा ? एक पत्थर की शिला में डंडा मारने से बारह झरनों का निकलना सर्वथा

असम्भव है, हां उस पत्थर को भीतर से पोला कर उसमें पानी भर बारह छिद्र करने से सम्भव है, अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥

२४—और अल्लाह खास करता है जिसको चाहता है साथ दया अपनी के ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ९७ ॥

समीक्षक—क्या जो मुख्य और दया करने के योग्य न हो उसको भी प्रधान बनाता और उस पर दया करता है ? जो ऐसा है तो खुदा बड़ा गड़बड़िया है क्योंकि फिर अच्छा काम कौन करेगा ? और बुरे कर्म कौन छोड़ेगा ? क्योंकि खुदा की प्रसन्नता पर निर्भर करते हैं कर्मफल पर नहीं इससे सबको अनास्था होकर कर्मोच्छेदप्रसङ्ग होगा ॥ २४ ॥

२५—ऐसा न हो कि काफ़िर लोग ईर्ष्या करके तुमको ईमान से फेर देवें क्योंकि उनमें से ईमानवालों के बहुतसे दोस्त हैं ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १०१ ॥

समीक्षक—अब देखिये खुदा ही उनको चिताता है कि तुम्हारे ईमान को काफ़िर लोग न डिगा देवें क्या वह सर्वज्ञ नहीं है ? ऐसी बातें खुदा की नहीं हो सकती हैं ॥ २५ ॥

२६—तुम जिधर मुंह करो उधर ही मुंह अल्लाह का है ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १०७ ॥

समीक्षक—जो यह बात सच्ची है तो मुसलमान क़िबले की ओर मुंह क्यों करते हैं ? जो कहें कि हमको क़िबले की ओर मुँह करने का हुक्म है तो यह भी हुक्म है कि चाहे जिधर की ओर मुख करो, क्या एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होगी ? और जो अल्लाह का मुख है तो वह सब ओर हो ही नहीं सकता क्योंकि एक मुख एक ओर रहेगा सब ओर क्योंकर रह सकेगा ? इसलिये यह संगत नहीं ॥ २६ ॥

२७—जो आसमान और भूमि का उत्पन्न करने वाला है जब वो कुछ करना चाहता है यह नहीं कि उसको करना पड़ता है किन्तु उसे कहता है कि होजा बस होजाता है ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १०९ ॥

समीक्षक—भला खुदा ने हुक्म दिया कि होजा तो हुक्म किसने सुना ? और किसको सुनाया ? और कौन बन गया ? किस कारण से बनाया ? जब यह लिखते हैं कि सृष्टि के पूर्व सिवाय खुदा के कोई भी दूसरी वस्तु न थी तो यह संसार कहां से आया ? बिना कारण के कोई भी कार्य्य नहीं होता तो इतना बड़ा जगत् कारण के बिना कहां से हुआ ? यह बात केवल लड़कपन की है (पूर्वपक्षी) नहीं २ खुदा की इच्छा से (उत्तरपक्षी) क्या तुम्हारी इच्छा से एक मक्खी की टांग भी बन जासकती है ? जो कहते हो कि खुदा की इच्छा से यह सब कुछ जगत् बन गया (पूर्वपक्षी) खुदा सर्वशक्तिमान् है इसलिये जो चाहे सो कर लेता है । (उत्तरपक्षी) सर्वशक्तिमान् का क्या अर्थ है ? (पूर्वपक्षी) जो चाहे सो करसके । (उत्तरपक्षी) क्या खुदा दूसरा खुदा भी बना सकता है ? अपने आप मर सकता है ? मूर्ख रोगी और अज्ञानी भी बन सकता है ? (पूर्वपक्षी) ऐसा कभी नहीं बन सकता । (उत्तरपक्षी) इसलिये परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी नहीं कर सकता जैसे संसार में किसी वस्तु के बनने बनाने में तीन पदार्थ प्रथम अवश्य होते हैं:—एक बनानेवाला जैसे कुम्हार, दूसरी घड़ा बननेवाली मिट्टी और तीसरा उसका साधन जिससे घड़ा बनाया जाता है, जैसे कुम्हार, मिट्टी और साधन से घड़ा बनता है और बननेवाले घड़े के पूर्व कुम्हार, मिट्टी और साधन होते हैं वैसे ही जगत् के बनने से पूर्व जगत् का कारण प्रकृति और उनके गुण, कर्म, स्वभाव अनादि हैं इसलिये यह कुरान की बात सर्वथा असम्भव है ॥ २७ ॥

२८—जब हमने लोगों के लिये काबे को पवित्र स्थान सुख देनेवाला बनाया तुम नमाज़ के लिये इबराहीम के स्थान को पकड़ो ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० ११७ ॥

समीक्षक—क्या काबे के पहिले पवित्र स्थान ख़ुदा ने कोई भी न बनाया था ? जो बनाया था तो काबे के बनाने की कुछ आवश्यकता न थी, जो नहीं बनाया था तो विचारे पूर्वोत्पन्नों को पवित्र स्थान के विना ही रक्खा था ? पहिले ईश्वर को पवित्र स्थान बनाने का स्मरण न रहा होगा ॥ २८ ॥

२९—वो कौन मनुष्य हैं जो इबराहीम के दीन से फिर जावें परन्तु जिसने अपनी जान को मूर्ख बनाया और निश्चय हमने दुनियां में उसी को पसन्द किया और निश्चय आख़रत में वो ही नेक है ॥ मं० १ । सि० १ । सू० २ । आ० १२२ ॥

समीक्षक—यह कैसे सम्भव है कि इबराहीम के दीन को नहीं मानते वे सब मूर्ख हैं ? इबराहीम को ही ख़ुदा ने पसन्द किया इसका क्या कारण है ? यदि धर्मात्मा होने के कारण से किया तो धर्मात्मा और भी बहुत हो सकते हैं ? यदि विना धर्मात्मा होने के ही पसन्द किया तो अन्याय हुआ । हां यह तो ठीक है कि जो धर्मात्मा है वही ईश्वर को प्रिय होता है अधर्मी नहीं ॥ २९ ॥

३०—निश्चय हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं अवश्य हम तुझे उस क़िबले को फेरेंगे कि पसन्द करे उसको बस अपना मुख मस्जिदुल्हराम की ओर फेर जहां कहीं तुम हो अपना मुख उसकी ओर फेरलो ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १३५ ॥

समीक्षक—क्या यह छोटी बुत्परस्ती है ? नहीं बड़ी । (पूर्वपक्षी) हम मुसलमान लोग बुत्परस्त नहीं हैं किन्तु बुत्शिकन अर्थात् मूर्त्तों को तोड़नेहारे हैं क्योंकि हम क़िबले को ख़ुदा नहीं समझते । (उत्तरपक्षी) जिन को तुम बुत्परस्त समझते हो वे भी उन २ मूर्त्तों को ईश्वर नहीं समझते किन्तु उनके सामने परमेश्वर की भक्ति करते हैं यदि बुतों के तोड़नेहारे हो तो उस मस्जिद क़िबले बड़े बुत् को क्यों न तोड़ा ? (पूर्वपक्षी) वाहजी ! हमारे तो क़िबले की ओर मुख फेरने का कुरान में हुक्म है और इनको वेद में नहीं है फिर वे बुत्परस्त क्यों नहीं ? और हम क्यों ? क्योंकि हम को ख़ुदा का हुक्म

बजाना अवश्य है। (उत्तरपक्षी) जैसे तुम्हारे लिये कुरान में हुक्म है वैसे इनके लिये पुराण में आज्ञा है। जैसे तुम कुरान को खुदा का कलाम समझते हो वैसे पुराणी पुराणों को खुदा के अवतार व्यासजी का वचन समझते हैं, तुममें और इनमें बुतपरस्ती का कुछ भिन्नभाव नहीं है प्रत्युत तुम बड़े बुतपरस्त और ये छोटे हैं क्योंकि जबतक कोई मनुष्य अपने घर में से प्रविष्ट हुई बिल्ली को निकालने लगे तबतक उसके घर में ऊंट प्रविष्ट हो जाय वैसे ही मुहम्मद साहेब ने छोटे बुत् को मुसलमानों के मत से निकाला परन्तु बड़े बुत् ! जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करादी क्या यह छोटी बुतपरस्ती है ? हां जो हम लोग वैदिक हैं वैसे ही तुम लोग भी वैदिक हो जाओ तो बुतपरस्ती आदि बुराइयों से बच सको अन्यथा नहीं, तुमको जबतक अपनी बड़ी बुतपरस्ती को न निकाल दो तबतक दूसरे छोटे बुतपरस्तों के खण्डन से लज्जित होके निवृत्त रहना चाहिये और अपने को बुतपरस्ती से पृथक् करके पवित्र करना चाहिये ॥ ३० ॥

३१—जो लोग अल्लाह के मार्ग में मारे जाते हैं उनके लिये यह मत कहो कि ये मृतक हैं किन्तु वे जीवित हैं॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १४४॥

समीक्षक—भला ईश्वर के मार्ग में मरने मारने की क्या आवश्यकता है ? यह क्यों नहीं कहते हो कि यह बात अपने मतलब सिद्ध करने के लिये है कि यह लोभ देंगे तो लोग खूब लड़ेंगे, अपना विजय होगा, मारने से न डरेंगे, लूट मार कराने से ऐश्वर्य प्राप्त होगा, पश्चात् विषयानन्द करेंगे इत्यादि स्वप्रयोजन के लिये यह विपरीत व्यवहार किया है ॥ ३१ ॥

३२—और यह कि अल्ला कठोर दुःख देनेवाला है। शैतान के पीछे मत चलो निश्चय वो तुम्हारा प्रत्यक्ष शत्रु है उसके विना और कुछ नहीं कि बुराई और निर्लज्जता की आज्ञा दे और यह कि तुम कहो अल्लाह पर जो नहीं जानते ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५१। १५४। १५५ ॥

समीक्षक—क्या कठोर दुःख देने वाला दयालु खुदा पापियों, पुण्यात्माओं

पर है अथवा मुसलमानों पर दयालु और अन्य पर दयाहीन है जो ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता। और पक्षपाती नहीं है तो जो मनुष्य कहीं धर्म करेगा उस पर ईश्वर दयालु और जो अधर्म करेगा उस पर दण्डदाता होगा तो फिर बीच में मुहम्मद साहेब और कुरान को मानना आवश्यक न रहा। और जो सब को बुराई करानेवाला मनुष्यमात्र का शत्रु शैतान है उसको खुदा ने उत्पन्न ही क्यों किया क्या वह भविष्यत् की बात नहीं जानता था? जो कहो कि जानता था परन्तु परीक्षा के लिये बनाया तो भी नहीं बन सकता, क्योंकि परीक्षा करना अल्पज्ञ का काम है सर्वज्ञ तो सब जीवों के अच्छे बुरे कर्मों को सदा से ठीक २ जानता है और शैतान सब को बहकाता है तो शैतान को किसने बहकाया? जो कहो कि शैतान आप बहकता है तो अन्य भी आप से आप बहक सकते हैं बीच में शैतान का क्या काम? और जो खुदा ही ने शैतान को बहकाया तो खुदा शैतान का भी शैतान ठहरेगा ऐसी बात ईश्वर की नहीं हो सकती और जो कोई बहकाता है वह कुसंग तथा अविद्या से भ्रान्त होता है॥३२॥

३३—तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के विना जिस पर कुछ पुकारा जावे॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० १५९॥

समीक्षक—यहां विचारना चाहिये कि मुर्दा चाहे आप से आप मरे वा किसी के मारने से दोनों बराबर हैं, हां इनमें कुछ भेद भी है तथापि मृतकपन में कुछ भेद नहीं और जब एक सूअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है? क्या यह बात अच्छी हो सकती है कि परमेश्वर के नाम पर शत्रु आदि को अत्यन्त दुःख दे के प्राणहत्या करनी? इससे ईश्वर का नाम कलंकित होजाता है, हां ईश्वर ने विना पूर्वजन्म के अपराध के मुसलमानों के हाथ से दारुण दुःख क्यों दिलाया? क्या उन पर दयालु नहीं है? उनको पुत्रवत् नहीं मानता? जिस वस्तु से अधिक उपकार होवे उन गाय आदि के मारने का निषेध न करना जानो हत्या कराकर खुदा जगत् का हानिकारक है हिंसारूप पाप से कलंकित भी होजाता है ऐसी बातें खुदा और खुदा के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं॥ ३३॥

३४—रोज़े की बात तुम्हारे लिये हलाल कीगई कि मदनोत्सव करना अपनी बीबियों से वे तुम्हारे वास्ते पर्दा हैं और तुम उनके लिये पर्दा हो अल्लाह ने जाना कि तुम चोरी करते हो अर्थात् व्यभिचार बस फिर अल्लाह ने क्षमा किया तुम को बस उनसे मिलो और ढूंढो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिये लिख दिया है अर्थात् संतान खाओ पिओ यहांतक कि प्रकट हो तुम्हारे लिये काले तागे से सुपेद तागा वा रात से जब दिन निकले ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १७२ ॥

समीक्षक—यहां यह निश्चित होता है कि जब मुसलमानों का मत चला वा उसके पहिले किसी न किसी पौराणिक को पूछा होगा कि चान्द्रायण व्रत जो एक महीने भर का होता है उसकी विधि क्या ? वह शास्त्रविधि जो कि मध्याह्न में चन्द्र की कला घटने बढ़ने के अनुसार ग्रासों को घटाना बढ़ाना और मध्याह्न दिन में खाना लिखा है उसको न जानकर कहा होगा कि चन्द्रमा का दर्शन करके खाना उसको इन मुसलमान लोगों ने इस प्रकार का कर लिया परन्तु व्रत में स्त्रीसमागम का त्याग है यह एक बात खुदाने बढ़कर कहदी कि तुम स्त्रियों का भी समागम भले ही किया करो और रात में चाहे अनेक वार खाओ, भला यह व्रत क्या हुआ ? दिन को न खाया रात को खाते रहे, यह सृष्टिक्रम से विपरीत है कि दिन में न खाना रात में खाना ॥ ३४ ॥

३५—अल्लाह के मार्ग में लड़ो उन से जो तुम से लड़ते हैं ॥ मार डालो तुम उनको जहां पाओ ॥ क़तल से कुफ्र बुरा है ॥ यहांतक उन से लड़ो कि कुफ्र न रहे और होवे दीन अल्लाह का ॥ उन्होंने जितनी ज़ियादती करी तुम पर उतनी ही तुम उनके साथ करो ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १७४ । १७५ । १७६ । १७८ । १७९ ॥

समीक्षक—जो कुरान में ऐसी बातें न होतीं तो मुसलमान लोग इतना बड़ा अपराध जो कि अन्य मत वालों पर किया है न करते और विना अपराधियों को मारना उन पर बड़ा पाप है । जो मुसलमान के मत का ग्रहण न करना है उसको कुफ्र कहते हैं अर्थात् कुफ्र से क़तल को मुसलमान लोग अच्छा मानते

हैं अर्थात् जो हमारे दीन को न मानेगा उसको हम क़तल करेंगे सो करते ही आये मज़हब पर लड़ते २ आप ही राज्य आदि से नष्ट होगये और उनका मत अन्य मत वालों पर अतिकठोर रहता है क्या चोरी का बदला चोरी है ? कि जितना अपराध हमारा चोर आदि करें क्या हमभी चोरी करें ? यह सर्वथा अन्याय की बात है, क्या कोई अज्ञानी हमको गालियें दे क्या हम भी उसको गाली देवें ? यह बात न ईश्वर की न ईश्वर के भक्त विद्वान् की और न ईश्वरोक्त पुस्तक की हो सकती है यह तो केवल स्वार्थी ज्ञानरहित मनुष्य की है ॥ ३५ ॥

३६–अल्लाह झगड़े को मित्र नहीं रखता ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो इसलाम में प्रवेश करो ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १९० । १९३ ॥

समीक्षक–जो झगड़ा करने को खुदा मित्र नहीं समझता तो क्यों आप ही मुसलमानों को झगड़ा करने में प्रेरणा करता ? और झगड़ालू मुसलमानों से मित्रता क्यों करता है ? क्या मुसलमानों के मत में मिलने ही से ख़ुदा राजी है तो वह मुसलमानों ही का पक्षपाती है सब संसार का ईश्वर नहीं इससे यहां यह विदित होता है कि न कुरान ईश्वरकृत और न इसमें कहा हुआ ईश्वर हो सकता है ॥ ३६ ॥

३७–खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क़ देवे ॥ मं० १ । सि० २ । सू० २ । आ० १९७ ॥

समीक्षक–क्या विना पाप पुण्य के ख़ुदा ऐसे ही रिज़क़ देता है ? फिर भलाई बुराई का करना एकसा ही हुआ क्योंकि सुख दुःख प्राप्त होना उसकी इच्छा पर है इससे धर्म से विमुख होकर मुसलमान लोग यथेष्टाचार करते हैं और कोई २ इस कुरानोक्त पर विश्वास न करके धर्मात्मा भी होते हैं ॥ ३७ ॥

३८–प्रश्न करते हैं तुझ से रजस्वला को कह वो अपवित्र है पृथक् रहो ऋतु समय में उनके समीप मत आओ जबतक कि वे पवित्र न हों जब नहा लेवें उनके पास उस स्थान से जाओ ख़ुदा ने आज्ञा दी ॥ तुम्हारी बीबियां

तुम्हारे लिये खेतियां हैं बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में। तुमको अल्लाह लग़व (बेकार, व्यर्थ) शपथ में नहीं पकड़ता ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० २०५। २०६। २०८॥

समीक्षक—जो यह रजस्वला का स्पर्श संग न करना लिखा है वह अच्छी बात है परन्तु जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और जैसा जिस तरह से चाहो जाओ यह मनुष्यों को विषयी करने का कारण है। जो खुदा बेकारी शपथ पर नहीं पकड़ता तो सब झूठ बोलेंगे शपथ तोड़ेंगे। इससे खुदा झूठ का प्रवर्त्तक होगा ॥ ३८॥

३९—वो कौन मनुष्य है जो अल्लाह को उधार देवे अच्छा बस अल्लाह द्विगुण करे उसको उसके वास्ते ॥ मं० १। सि० २। सू० २। आ० २२७॥

समीक्षक—भला खुदा को क़र्ज़ (उधार) * लेने से क्या प्रयोजन ? जिसने सारे संसार को बनाया वह मनुष्य से क़र्ज़ लेता है ? कदापि नहीं। ऐसा तो विना समझे कहा जासकता है। क्या उसका ख़ज़ाना खाली होगया था ? क्या वह हुंडी पुड़ियां व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार लेने लगा ? और एक का दो २ देना स्वीकार करता है क्या यह साहूकारों का काम है ? किन्तु ऐसा काम तो दिवालियों वा ख़र्च अधिक करनेवाले और आय न्यून होनेवालों को करना पड़ता है ईश्वर को नहीं ॥ ३९॥

४०—उनमें से कोई ईमान न लाया और कोई काफ़िर हुआ जो अल्लाह चाहता न लड़ते जो चाहता है अल्लाह करता है ॥ मं० १। सि० ३। सू० २। आ० २३५॥

समीक्षक—क्या जितनी लड़ाई होती हैं वह ईश्वर ही की इच्छा से ? क्या

* इसी आयत के भाष्य में तफसीरहुसेनी में लिखा है कि एक मनुष्य मुहम्मद साहेब के पास आया उसने कहा कि ऐ रसूलल्लाह खुदा क़र्ज़ क्यों मांगता है ? उन्होंने उत्तर दिया कि तुमको बहिश्त में लेजाने के लिये उसने कहा जो आप ज़मानत लें तो मैं दूं मुहम्मद साहेब ने उसकी ज़मानत लेली खुदा का भरोसा न हुआ उसके दूत का हुआ ॥

वह अधर्म करना चाहे तो कर सकता है ? जो ऐसी बात है तो वह खुदा ही नहीं क्योंकि भले मनुष्यों का यह कर्म नहीं कि शान्तिभंग करके लड़ाई करावें इससे विदित होता है कि यह कुरान न ईश्वर का बनाया और न किसी धार्मिक विद्वान् का रचित है ॥ ४० ॥

४१—जो कुछ आसमान और पृथिवी पर है सब उसी के लिये है ॥ चाहे उसकी कुरसी ने आसमान और पृथिवी का समा लिया है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २३७ ॥

समीक्षक—जो आकाश भूमि में पदार्थ हैं वे सब जीवों के लिये परमात्मा ने उत्पन्न किये हैं अपने लिये नहीं क्योंकि वह पूर्णकाम है उसको किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं जब उसकी कुर्सी है तो वह एकदेशी है जो एकदेशी होता है वह ईश्वर नहीं कहाता क्योंकि ईश्वर तो व्यापक है ॥ ४१ ॥

४२—अल्लाह सूर्य्य को पूर्व से लाता है बस तू पश्चिम से लेआ बस जो काफ़िर हैरान हुआ था निश्चय अल्लाह पापियों को मार्ग नहीं दिखलाता ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४० ॥

समीक्षक—देखिये यह अविद्या की बात ! सूर्य्य न पूर्व से पश्चिम और न पश्चिम से पूर्व कभी आता जाता है वह तो अपनी परिधि में घूमता रहता है इससे निश्चित जाना जाता है कि कुरान के कर्त्ता को न खगोल और न भूगोल विद्या आती थी । जो पापियों को मार्ग नहीं बतलाता तो पुण्यात्माओं के लिये भी मुसलमानों के खुदा की आवश्यकता नहीं क्योंकि धर्मात्मा तो धर्म मार्ग में ही होते हैं, मार्ग तो धर्म से भूले हुए मनुष्यों को बतलाना होता है सो कर्त्तव्य के न करने से कुरान के कर्त्ता की बड़ी भूल है ॥ ४२ ॥

४३—कहा चार जानवरों से ले उनकी सूरत पहिचान रख फिर हर पहाड़ पर उन में से एक २ टुकड़ा रख दे फिर उनको बुला दौड़ते तेरे पास चले आवेंगे ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २४२ ॥

समीक्षक—वाह २ देखो जी मुसलमानों का ख़ुदा भानमती के समान खेल कर रहा है ! क्या ऐसी ही बातों से ख़ुदा की ख़ुदाई है ? बुद्धिमान् लोग ऐसे ख़ुदा को तिलाञ्जलि देकर दूर रहेंगे और मूर्ख लोग फँसेंगे इससे ख़ुदा की बड़ाई के बदले बुराई उसके पल्ले पड़ेगी ॥ ४३ ॥

४४—जिसको चाहे नीति देता है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २५१ ॥

समीक्षक—जब जिसको चाहता है उसको नीति देता है तो जिसको नहीं चाहता है उसको अनीति देता होगा यह बात ईश्वरता की नहीं । किन्तु जो पक्षपात छोड़ सब को नीति का उपदेश करता है वही ईश्वर और आप्त हो सकता है अन्य नहीं ॥ ४४ ॥

४५—वह कि जिसको चाहेगा क्षमा करेगा जिसको चाहे दण्ड देगा क्योंकि वह सब वस्तु पर बलवान् है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० २ । आ० २६६ ॥

समीक्षक—क्या क्षमा के योग्य पर क्षमा न करना अयोग्य पर क्षमा करना गवरगंड राजा के तुल्य यह कर्म नहीं है ? यदि ईश्वर जिसको चाहता पापी वा पुण्यात्मा बनाता है तो जीव को पाप पुण्य न लगाना चाहिये जब ईश्वर ने उसको वैसा ही किया तो जीव को दुःख सुख भी होना न चाहिये, जैसे सेनापति की आज्ञा से किसी भृत्य ने किसी को मारा वा रक्षा की उसका फलभागी वह नहीं होता वैसे वे भी नहीं ॥ ४५ ॥

४६—कह इससे अच्छी और क्या परहेज़गारों को ख़बर दूं कि अल्लाह की ओर से बहिश्तें हैं जिनमें नहरें चलती हैं उन्हीं में सदैव रहनेवाली शुद्ध बीबियां हैं अल्लाह की प्रसन्नता से अल्लाह उनको देखने वाला है साथ बन्दों के ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० ११ ॥

समीक्षक—भला यह स्वर्ग है किंवा वेश्यावन ? इसको ईश्वर कहना वा स्त्रैण ? कोई भी बुद्धिमान् ऐसी बातें जिसमें हों उसको परमेश्वर का किया पुस्तक

मान सकता है ? यह पक्षपात क्यों करता है ? जो बीबियां बहिश्त में सदा रहती हैं वे यहां जन्म पाके वहां गई हैं वा वहीं उत्पन्न हुई हैं ? यदि यहां जन्म पाकर वहां गई हैं और जो क़यामत की रात से पहिले ही वहां बीबियों को बुला लिया तो उनके खाविन्दों को क्यों न बुला लिया ? और क़यामत की रात में सब का न्याय होगा इस नियम को क्यों तोड़ा ? यदि वहीं जन्मी हैं तो क़यामत तक वे क्योंकर निर्वाह करती हैं ? जो उनके लिये पुरुष भी हैं तो यहां से बहिश्त में जानेवाले मुसलमानों को खुदा बीबियां कहां से देगा ? और जैसे बीबियां बहिश्त में सदा रहनेवाली बनाईं वैसे पुरुषों को वहां सदा रहनेवाले क्यों नहीं बनाया ? इसलिये मुसलमानों का खुदा अन्यायकारी, बेसमझ है ॥ ४६ ॥

४७–निश्चय अल्लाह की ओर से दीन इसलाम है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० १६ ॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों ही का है औरों का नहीं ? क्या तेरहसौ वर्षों के पूर्व ईश्वरीय मत था ही नहीं ? इसी से यह कुरान ईश्वर का बनाया तो नहीं किन्तु किसी पक्षपाती का बनाया है ॥ ४७ ॥

४८—प्रत्येक जीव को पूरा दिया जावेगा जो कुछ उसने कमाया और वे न अन्याय किये जावेंगे ॥ कह या अल्लाह तू ही मुल्क का मालिक है जिसको चाहे देता है जिसको चाहे छीनता है जिसको चाहे प्रतिष्ठा देता है जिसको चाहे अप्रतिष्ठा देता है सब कुछ तेरे ही हाथ में है प्रत्येक वस्तु पर तू ही बलवान् है ॥ रात को दिन में और दिन को रात में पैठाता है और मृतक को जीवित से जीवित को मृतक से निकालता है और जिसको चाहे अनन्त अन्न देता है ॥ मुसलमानों को उचित है कि काफ़िरों को मित्र न बनावें सिवाय मुसलमानों के जो कोई यह करे बस वह अल्लाह की ओर से नहीं । कह जो तुम चाहते हो अल्लाह को तो पक्ष करो मेरा अल्लाह चाहेगा तुमको और तुम्हारे पाप को क्षमा करेगा निश्चय करुणामय है ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० २१ । २२ । २३ । २४ । २७ ॥

समीक्षक—जब प्रत्येक जीव को कर्मों का पूरा २ फल दिया जावेगा तो क्षमा नहीं किया जायगा और जो क्षमा किया जायगा तो पूरा फल नहीं दिया जायगा और अन्याय होगा, जब विना उत्तम कर्मों के राज्य देगा तो भी अन्यायकारी होजायगा भला जीवित से मृतक और मृतक से जीवित कभी हो सकता है ? क्योंकि ईश्वर की व्यवस्था अछेद्य अभेद्य है कभी अदल बदल नहीं हो सकती । अब देखिये पक्षपात की बातें कि जो मुसलमान के मज़हब में नहीं हैं उनको काफ़िर ठहराना उनमें श्रेष्ठों से भी मित्रता न रखने और मुसलमानों में दुष्टों से भी मित्रता रखने के लिये उपदेश करना ईश्वर को ईश्वरता से बहिः कर देता है । इससे यह कुरान, कुरान का खुदा और मुसलमान लोग केवल पक्षपात अविद्या के भरे हुए हैं इसीलिये मुसलमान लोग अन्धेर में हैं और देखिये मुहम्मद साहेब की लीला कि जो तुम मेरा पक्ष करोगे तो खुदा तुम्हारा पक्ष करेगा और जो तुम पक्षपातरूप पाप करोगे उसकी क्षमा भी करेगा इससे सिद्ध होता है कि मुहम्मद साहेब का अन्तःकरण शुद्ध नहा था इसीलिये अपने मतलब सिद्ध करने के लिये मुहम्मद साहेब ने कुरान बनाया वा बनवाया ऐसा विदित होता है ॥ ४८ ॥

४९—जिस समय कहा फ़रिश्तों ने कि ऐ मर्य्यम तुझ को अल्लाह ने पसन्द किया और पवित्र किया ऊपर जगत् को स्त्रियों के ॥ मं० १ । सि० ३ । सू० ३ । आ० ३५ ॥

समीक्षक—भला जब आजकल खुदा के फ़रिश्ते और खुदा किसी से बातें करने को नहीं आते तो प्रथम कैसे आये होंगे ? जो कहो कि पहिले के मनुष्य पुण्यात्मा थे अब के नहीं तो यह बात मिथ्या है किन्तु जिस समय ईसाई और मुसलमानों का मत चला था उस समय उन देशों में जंगली और विद्याहीन मनुष्य अधिक थे इसीलिये ऐसे विद्याविरुद्ध मत चल गये अब विद्वान् अधिक हैं इसीलिये नहीं चल सकता किन्तु जो २ ऐसे पोकल मज़हब हैं वे भी अस्त होते जाते हैं वृद्धि की तो कथा ही क्या है ॥ ४९ ॥

५०—उसको कहता है कि हो बस होजाता है। काफ़िरों ने धोका दिया, ईश्वर ने धोका दिया, ईश्वर बहुत मकर करनेवाला है॥ मं० १। सि० ३। सू० ३। आ० ३९। ४६॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग ख़ुदा के सिवाय दूसरी चीज़ नहीं मानते तो ख़ुदा ने किससे कहा? और उसके कहने से कौन होगया? इसका उत्तर मुसलमान सात जन्म में भी नहीं दे सकेंगे क्योंकि विना उपादान कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता विना कारण के कार्य्य कहना जानो अपने मा बाप के विना मेरा शरीर होगया ऐसी बात है। जो धोखा खाता अर्थात् छल और दंभ करता है वह ईश्वर तो कभी नहीं हो सकता किन्तु उत्तम मनुष्य भी ऐसा काम नहीं करता॥ ५०॥

५१—क्या तुम को यह बहुत न होगा कि अल्लाह तुम को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय देवे॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० ११०॥

समीक्षक—जो मुसलमानों को तीन हज़ार फ़रिश्तों के साथ सहाय देता था तो अब मुसलमानों की बादशाही बहुतसी नष्ट होगई और होती जाती है क्यों सहाय नहीं देता? इसलिये यह बात केवल लोभ देके मूर्खों को फंसाने के लिये महा अन्याय की बात है॥ ५१॥

५२—और काफ़िरों पर हमको सहाय कर॥ अल्लाह तुम्हारा उत्तम सहायक और कारसाज़ है जो तुम अल्लाह के मार्ग में मारे जाओ वा मरजाओ अल्लाह की दया बहुत अच्छी है॥ मं० १। सि० ४। सू० ३। आ० १३०। १३३। १४०॥

समीक्षक—अब देखिये मुसलमानों की भूल कि जो अपने मत से भिन्न हैं उनके मारने के लिये ख़ुदा की प्रार्थना करते हैं क्या परमेश्वर भोला है जो इनकी बात मान लेवे? यदि मुसलमानों का कारसाज अल्लाह ही है तो फिर मुसलमानों के कार्य्य नष्ट क्यों होते हैं? और ख़ुदा भी मुसलमानों के साथ

मोह से फंसा हुआ दीख पड़ता है जो ऐसा पक्षपाती खुदा है तो धर्मात्मा पुरुषों का उपासनीय कभी नहीं हो सकता ॥ ५२ ॥

५३—और अल्लाह तुम को परोक्षज्ञ नहीं करता परन्तु अपने पैग़म्बरों से जिसको चाहे पसन्द करे बस अल्लाह और उसके रसूल के साथ ईमान लाओ ॥ मं० १ । सि० ४ । सू० ३ । आ० १५९ ॥

समीक्षक—जब मुसलमान लोग सिवाय खुदा के किसी के साथ ईमान नहीं लाते और न किसी को खुदा का साझी मानते हैं तो पैग़म्बर साहेब को क्यों ईमान में खुदा के साथ शरीक किया ? अल्लाह ने पैग़म्बर के साथ ईमान लाना लिखा इसी से पैग़म्बर भी शरीक होगया पुनः लाशरीक कहना ठीक न हुआ यदि इसका अर्थ यह समझा जाय कि मुहम्मद साहेब के पैग़म्बर होने पर विश्वास लाना चाहिये तो यह प्रश्न होता है कि मोहम्मद साहेब के होने की क्या आवश्यकता है ? यदि खुदा उसको पैग़म्बर किये विना अपना अभीष्टकार्य नहीं कर सकता तो अवश्य असमर्थ हुआ ॥ ५३ ॥

५४—ऐ ईमानवालो ! संतोष करो परस्पर थामे रक्खो और लड़ाई में लगे रहो अल्लाह से डरो कि तुम छुटकारा पाओ ॥ मं० १ । सि० ४ । सू० ३ । आ० १७८ ॥

समीक्षक—यह कुरान का खुदा और पैग़म्बर दोनों लड़ाईबाज़ थे जो लड़ाई की आज्ञा देता है वह शांतिभंग करनेवाला होता है क्या नाममात्र खुदा से डरने से छुटकारा पाया जाता है ? वा अधर्मयुक्त लड़ाई आदि से डरने से, जो प्रथम पक्ष है तो डरना न डरना बराबर और जो द्वितीय पक्ष है तो ठीक है ।।५४।।

५५—ये अल्लाह की हदें हैं जो अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानेगा वह बहिश्त में पहुंचेगा जिनमें नहरें चलती हैं और यही बड़ा प्रयोजन है ॥ जो अल्लाह की और उसके रसूल की आज्ञा भंग करेगा और उसकी हदों से बाहर होजायगा वह सदैव रहने वाली आग में जलाया जायगा और उसके लिये खराब करनेवाला दुःख है ॥ मं० १ । सि० ४ ।सू० ४ । आ० १३ । १४ ॥

समीक्षक—खुदा ही ने मुहम्मद साहेब पैग़म्बर को अपना शरीक कर लिया है और खुदा कुरान ही में लिखा है और देखो खुदा पैग़म्बर साहेब के साथ कैसा फँसा है कि जिसने बहिश्त में रसूल का साझा करदिया है। किसी एक बात में भी मुसलमानों का खुदा स्वतन्त्र नहीं तो लाशरीक कहना व्यर्थ है ऐसी २ बात ईश्वरोक्त पुस्तक में नहीं हो सकतीं ॥ ५५ ॥

५६—और एक त्रसरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसका दुगुण करेगा उसको ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ३७ ॥

समीक्षक—जो एक त्रसरेणु भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य को द्विगुण क्यों देता ? और मुसलमानों का पक्षपात क्यों करता है ? वास्तव में द्विगुण वा न्यून फल कर्मों का देवे तो खुदा अन्यायी होजावे ॥ ५६ ॥

५७—जब तेरे पास से बाहर निकलते हैं तो तेरे कहने के सिवाय (विपरीत) सोचते हैं अल्लाह उनकी सलाह को लिखता है ॥ अल्लाह ने उनकी कमाई वस्तु के कारण से उनको उलटा किया क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह के गुमराह किये हुए को मार्ग पर लाओ बस जिसको अल्लाह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ८०। ८७ ॥

समीक्षक—जो अल्लाह बातों को लिख बही खाता बनाता जाता है तो सर्वज्ञ नहीं ! जो सर्वज्ञ है तो लिखने का क्या काम ? और जो मुसलमान कहते हैं कि शैतान ही सब को बहकाने से दुष्ट हुआ है तो जब खुदा ही जीवों को गुमराह करता है तो खुदा और शतान में क्या भेद रहा ? हां इतना भेद कह सकते हैं कि खुदा बड़ा शैतान वह छोटा शैतान क्योंकि मुसलमानों ही का क़ौल है कि जो बहकाता है वही शैतान है तो इस प्रतिज्ञा से खुदा को भी शैतान बना दिया ॥ ५७ ॥

५८—और अपने हाथों को न रोकें तो उनको पकड़ लो और जहां पाओ

मारडालो ॥ मुसलमान को मुसलमान का मारना योग्य नहीं जो कोई अनजान से मारडाले बस एक गर्दन मुसलमान का छोड़ना है और खून बहा उन लोगों की ओर से हुई जो उस क़ौम से होवे और तुम्हारे लिये जो दान कर देवे जो दुश्मन की क़ौम से हैं ॥ और जो कोई मुसलमान को जानकर मार डाले वह सदैव काल दो में रहेगा उस पर अल्लाह का क्रोध और लानत है ॥ मं० १। सि० ४। सू० ४। आ० ९०। ९१। ९२ ॥

समीक्षक—अब देखिये महापक्षपात की बात है कि जो मुसलमान न हो उसको जहां पाओ मारडालो और मुसलमानों को न मारना भूल से मुसलमानों के मारने में प्रायश्चित्त और अन्य को मारने से बहिश्त मिलेगा ऐसे उपदेश को कूप में डालना चाहिये ऐसे २ पुस्तक ऐसे २ पैग़म्बर ऐसे २ खुदा और ऐसे २ मत से सिवाय हानि के लाभ कुछ भी नहीं ऐसों का न होना अच्छा और ऐसे प्रामादिक मतों से बुद्धिमानों को अलग रहकर वेदोक्त सब बातों को मानना चाहिये क्योंकि उसमें असत्य किञ्चिन्मात्र भी नहीं है और जो मुसलमान को मारे उसको दोज़ख़ मिले और दूसरे मत वाले कहते हैं कि मुसलमान को मारे तो स्वर्ग मिले अब कहो इन दोनों मतों में से किसको मानें किसको छोड़ें किन्तु ऐसे मूढ़ प्रकल्पित मतों को छोड़कर वेदोक्त मत स्वीकार करने योग्य सब मनुष्यों के लिये है कि जिसमें आर्य्य मार्ग अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों के मार्ग में चलना और दस्यु अर्थात् दुष्टों के मार्ग से अलग रहना लिखा है सर्वोत्तम है ॥ ५८ ॥

५९—और शिक्षा प्रकट होने के पीछे जिसने रसूल से विरोध किया और मुसलमानों से विरुद्ध पक्ष किया अवश्य हम उसको दोज़ख़ में भेजेंगे ॥ मं० १। सि० ५। सू० ४। आ० ११३ ॥

समीक्षक—अब देखिये खुदा और रसूल की पक्षपात की बातें, मुहम्मद साहेब आदि समझते थे कि जो खुदा के नाम से ऐसी हम न लिखेंगे तो अपना मज़हब न बढ़ेगा और पदार्थ न मिलेंगे आनन्द भोग न होगा इसीसे विदित

होता है कि वे अपने मतलब करने में पूरे थे और अन्य के प्रयोजन विगाड़ने में, इससे ये अनाप्त थे इनकी बात का प्रमाण आप्त विद्वानों के सामने कभी नहीं हो सकता ॥ ५९ ॥

६०—जो अल्लाह फ़रिश्तों किताबों रसूल और क़यामत के साथ कुफ्र करे निश्चय वह गुमराह है ॥ निश्चय जो लोग ईमान लाये फिर काफ़िर हुए फिर फिर ईमान लाये पुनः फिर गये और कुफ्र में अधिक बढ़े अल्लाह उनको कभी क्षमा न करेगा और न मार्ग दिखलावेगा ॥ मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० १३४ । १३५ ॥

समीक्षक—क्या अब भी खुदा लाशरीक रह सकता है? क्या लाशरीक कहते जाना और उसके साथ बहुत से शरीक भी मानते जाना यह परस्पर विरुद्ध बात नहीं है? क्या तीन वार क्षमा के पश्चात् खुदा क्षमा नहीं करता? और तीन वार कुफ्र करने पर रास्ता दिखलाता है? वा चौथी वार से आगे नहीं दिखलाता, यदि चार चार वार भी कुफ्र सब लोग करें तो कुफ्र बहुत ही बढ़जाये ॥ ६० ॥

६१—निश्चय अल्लाह बुरे लोगों और काफ़िरों को जमा करेगा दोजख़ में ॥ निश्चय बुरे लोग धोखा देते हैं अल्लाह को और उनको वह धोखा देता है ॥ ऐ ईमानवालो मुसलमानों को छोड़ काफ़िरों को मित्र मत बनाओ ॥ मं० १ । सि० ५ । सू० ४ । आ० १३८ । १४१ । १४३ ॥

समीक्षक—मुसलमानों के बहिश्त और अन्य लोगों के दोजख़ में जाने का क्या प्रमाण? वाहजी वाह! जो बुरे लोगों के धोखे में आता और अन्य को धोखा देता है ऐसा खुदा हम से अलग रहे किन्तु जो धोखेबाज हैं उनसे जाकर मेल करे और वे उससे मेल करें क्योंकि—

(यादृशी शीतला देवी तादृशः खरवाहनः)

जैसे को तैसा मिले तभी निर्वाह होता है जिसका खुदा धोखेबाज है उसके

उपासक लोग धोखेबाज़ क्यों न हों ? क्या दुष्ट मुसलमान हो उससे मित्रता और अन्य श्रेष्ठ मुसलमान भिन्न से शत्रुता करना किसी को उचित हो सकता है ॥ ६१ ॥

६२–ऐ लोगो निश्चय तुम्हारे पास सत्य के साथ ख़ुदा की ओर से पैग़म्बर आया बस तुम उनपर ईमान लाओ ॥ अल्लाह माबूद अकेला है ॥ मं० १ । सि० ६ । सू० ४ । आ० १६७ । १६८ ॥

समीक्षक–क्या जब पैग़म्बरों पर ईमान लाना लिखा तो ईमान में पैग़म्बर ख़ुदा का शरीक अर्थात् साझी हुआ वा नहीं ? जब अल्लाह एकदेशी है व्यापक नहीं तभी तो उसके पास से पैग़म्बर आते जाते हैं तो वह ईश्वर भी नहीं हो सकता । कहीं सर्वदेशी लिखते हैं कहीं एकदेशी इससे विदित होता है कि कुरान एक का बनाया नहीं किन्तु बहुतों ने बनाया है ॥ ६२ ॥

६३–तुम पर हराम किया गया मुर्दार, लोहू, सूअर का मांस, जिस पर अल्लाह के विना कुछ और पढ़ा जावे, गला घोटे, लाठी मारे, ऊपर से गिर पड़े, सींग मारे और दरद का खाया हुआ ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ५ । आ० ३ ॥

समीक्षक–क्या इतने ही पदार्थ हराम हैं ? अन्य बहुतसे पशु तथा तिर्य्यक् जीव कीड़ी आदि मुसलमानों को हलाल होंगे ? इस वास्ते यह मनुष्यों की कल्पना है ईश्वर की नहीं इससे इसका प्रमाण भी नहीं ॥ ६३ ॥

६४–और अल्लाह को अच्छा उधार दो अवश्य मैं तुम्हारी बुराई दूर करूंगा और तुम्हें बहिश्तों में भेजूंगा ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ५ । आ० १० ॥

समीक्षक–वाहजी ! मुसलमानों के ख़ुदा के घर में कुछ भी धन विशेष नहीं रहा होगा जो विशेष होता तो उधार क्यों मांगता ? और उनको क्यों बहकाता कि तुम्हारी बुराई छुड़ा के तुम को स्वर्ग में भेजूंगा ? यहां विदित होता है कि ख़ुदा के नाम से मुहम्मद साहेब ने अपना मतलब साधा है ॥ ६४ ॥

६५–जिसको चाहता है क्षमा करता है जिसको चाहे दुःख देता है ॥ जो कुछ किसी को भी न दिया वह तुम्हें दिया ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ५ । आ० १६ । १८ ॥

समीक्षक–जैसे शैतान जिसको चाहता पापी बनाता वैसे ही मुसलमानों का खुदा भी शैतान का काम करता है ? जो ऐसा है तो फिर बहिश्त और दोज़ख में खुदा जावे क्योंकि वह पाप पुण्य करने वाला हुआ, जीव पराधीन है, जैसी सेना सेनापति के आधीन रक्षा करती और किसी को मारती है उसकी भलाई बुराई सेनापति को होती है सेना पर नहीं ॥ ६५ ॥

६६–आज्ञा मानो अल्लाह की और आज्ञा मानो रसूल की ॥ मं० २ । सि० ७ । सू० ५ । आ० ८९ ॥

समीक्षक–देखिये यह बात खुदा के शरीक होने की है, फिर खुदा को "लाशरीक" मानना व्यर्थ है ॥ ६६ ॥

६७–अल्लाह ने माफ़ किया जो हो चुका और जो कोई फिर करेगा अल्लाह उससे बदला लेगा ॥ मं० २ । सि० ७ । सू० ५ । आ० ९२ ॥

समीक्षक–किये हुए पापों का क्षमा करना जानो पापों को करने की आज्ञा दे के बढ़ाना है । पाप क्षमा करने की बात जिस पुस्तक में हो वह न ईश्वर और न किसी विद्वान् का बनाया है किन्तु पापवर्द्धक है, हां आगामी पाप छुड़ाने के लिये किसी से प्रार्थना और स्वयं छोड़ने के लिये पुरुषार्थ पश्चात्ताप करना उचित है परन्तु केवल पश्चात्ताप करता रहे छोड़े नहीं तो भी कुछ नहीं हो सकता ॥ ६७ ॥

६८–और उस मनुष्य से अधिक पापी कौन है जो अल्लाह पर झूठ बांध लेता है और कहता है कि मेरी ओर वही की गई परन्तु वही उसकी ओर नहीं की गई और जो कहता है कि मैं भी उतारूंगा कि जैसे अल्लाह उतारता है ॥ मं० २ । सि० ७ । सू० ६ । आ० ९४ ॥

समीक्षक—इस बात से सिद्ध होता है कि जब मुहम्मद साहेब कहते थे कि मेरे पास ख़ुदा की ओर से आयतें आती हैं तब किसी दूसरे ने भी मुहम्मद साहेब के तुल्य लीला रची होगी कि मेरे पास भी आयतें उतरती हैं मुझ को भी पैग़म्बर मानो इसको हटाने और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये मुहम्मद साहेब ने यह उपाय किया होगा ॥ ६८ ॥

६९—अवश्य हमने तुमको उत्पन्न किया फिर तुम्हारी सूरतें बनाईं, फिर हमने फ़रिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो, बस उन्होंने सिजदा किया परन्तु शैतान सिजदा करनेवालों में से न हुआ ॥ कहा जब मैंने तुझे आज्ञा दी फिर किसने रोका कि तूने सिजदा न किया, कहा मैं उससे अच्छा हूं तूने मुझको आग से और उसको मिट्टी से उत्पन्न किया ॥ कहा बस उसमें से उतर यह तेरे योग्य नहीं है कि तू उसमें अभिमान करे ॥ कहा उस दिन तक ढील दे कि क़बरों में से उठाये जावें ॥ कहा निश्चय तू ढील दिये गयों से है ॥ कहा बस इसकी कसम है कि तूने मुझको गुमराह किया अवश्य मैं उनके लिये तेरे सीधे मार्ग पर बैठूंगा ॥ और प्रायः तू उनको धन्यवाद करनेवाला न पावेगा कहा उससे दुर्दशा के साथ निकल अवश्य जो कोई उनमें से तेरा पक्ष करेगा तुम सब से दोज़ख़ को भरूंगा ॥ मं० २ । सि० ८ । सू० ७ । आ० १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ ॥

समीक्षक—अब ध्यान देकर सुनो ख़ुदा और शैतान के झगड़े को एक फ़रिश्ता जैसा कि चपरासी हो, था वह भी ख़ुदा से न दबा और ख़ुदा उसके आत्मा को पवित्र भी न कर सका, फिर ऐसे बाग़ी को जो पापी बनाकर ग़दर करने वाला था उसको ख़ुदा ने छोड़ दिया । ख़ुदा की यह बड़ी भूल है । शैतान तो सब को बहकाने वाला और ख़ुदा शैतान को बहकाने वाला होने से यह सिद्ध होता है कि शैतान का भी शैतान ख़ुदा है क्योंकि शैतान प्रत्यक्ष कहता है कि तूने मुझे गुमराह किया इससे ख़ुदा में पवित्रता भी नहीं पाई जाती और सब बुराइयों का चलानेवाला मूलकारण ख़ुदा हुआ । ऐसा ख़ुदा मुसलमानों ही का हो सकता है अन्य श्रेष्ठ विद्वानों का नहीं और फ़रिश्तों से मनुष्यवत् वार्त्ता-

लाप करने से देहधारी, अल्पज्ञ, न्यायरहित मुसलमानों का खुदा है इसीसे विद्वान् लोग इसलाम के मज़हब को प्रसन्न नहीं करते ॥ ६९ ॥

७०-निश्चय तुम्हारा मालिक अल्लाह है जिसने आसमानों और पृथिवी को छः दिन में उत्पन्न किया फिर करार पकड़ा अर्श पर। दीनता से अपने मालिक को पुकारो ॥ मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ५३। ५४ ॥

समीक्षक-भला जो छः दिन में जगत् को बनावे (अर्श) अर्थात् ऊपर के प्रकाश में सिंहासन पर आराम करे वह ईश्वर सर्वशक्तिमान् और व्यापक कभी हो सकता है? इसके न होने से वह खुदा भी नहीं कहा सकता। क्या तुम्हारा खुदा बधिर है जो पुकारने से सुनता है? ये सब बातें अनीश्वरकृत हैं इससे कुरान ईश्वरकृत नहीं हो सकता यदि छः दिनों में जगत् बनाया सातवें दिन अर्श पर आराम किया तो थक भी गया होगा और अबतक सोता है वा जागता है? यदि जागता है तो अब कुछ काम करता है वा निकम्मा सैल सपट्टा और ऐश करता फिरता है ॥ ७० ॥

७१-मत फिरो पृथिवी पर झगड़ा करते ॥ मं० २। सि० ८। सू० ७। आ० ७३ ॥

समीक्षक-यह बात तो अच्छी है परन्तु इससे विपरीत दूसरे स्थानों में जिहाद करना और काफ़िरों को मारना भी लिखा है अब कहो पूर्वापर विरुद्ध नहीं है? इससे यह विदित होता है कि जब मुहम्मद साहेब निर्बल हुए होंगे तब उन्होंने यह उपाय रचा होगा और सबल हुए होंगे तब झगड़ा मचाया होगा इसीसे ये बातें परस्पर विरुद्ध होने से दोनों सत्य नहीं हैं ॥ ७१ ॥

७२-बस एक ही बार अपना असा डाल दिया और वह अजगर था प्रत्यक्ष ॥ मं० २। सि० ९। सू० ७। आ० १०५ ॥

समीक्षक-अब इस के लिखने से विदित होता है कि ऐसी झूठी बातों को खुदा और मुहम्मद साहेब भी मानते थे जो ऐसा है तो ये दोनों विद्वान्

नहीं थे क्योंकि जैसे आंख से देखने को और कान से सुनने को अन्यथा कोई नहीं कर सकता इसीसे ये इन्द्रजाल की बातें हैं ॥ ७२ ॥

७३-बस हमने उस पर मेह का तूफ़ान भेजा टीढ़ी, चिचड़ी और मेंडक और लोहू ॥ बस उनसे हम ने बदला लिया और उनको डुबोदिया दरियाव में ॥ और हमने बनी इसराईल को दरियाव से पार उतार दिया ॥ निश्चय वह दीन झूठा है कि जिसमें हैं और उनका कार्य्य भी झूठा है ॥ मं० २ । सि० ९ । सू० ७ । आ० १३० । १३३ । १३७ । १३८ ॥

समीक्षक—अब देखिये जैसा कोई पाखंडी किसी को डरपावे कि हम तुझ पर सर्पों को मारने के लिये भेजेंगे ऐसी यह भी बात है भला जो ऐसा पक्षपाती कि एक जाति को डुबा दे और दूसरे को पार उतारे वह अधर्मी खुदा क्यों नहीं ? जो दूसरे मतों को कि जिसमें हजारों क्रोड़ों मनुष्य हों झूठा बतलावे और अपने को सच्चा उससे परे झूठा दूसरा मत कौन हो सकता है ? क्योंकि किसी मत में सब मनुष्य बुरे और भले नहीं हो सकते यह इकतर्फी डिगरी करना महामूर्खों का मत है क्या तौरेत ज़बूर का दीन, जो कि उनका था, झूठा होगया ? वा उनका कोई अन्य मज़हब था कि जिसको झूठा कहा और जो वह अन्य मजहब था तो कौनसा था कहो जिसका नाम कुरान में हो ॥ ७३ ॥

७४—बस तुझ को अलबत्ता देख सकेगा जब प्रकाश किया उसके मालिक ने पहाड़ की ओर उसको परमाणु २ किया गिर पड़ा मूसा बेहोश ॥ मं० २ । सि० ९ । सू० ७ । आ० १४२ ॥

समीक्षक-जो देखने में आता है वह व्यापक नहीं हो सकता और ऐसे चमत्कार करता फिरता था तो खुदा इस समय ऐसा चमत्कार किसी को क्यों नहीं दिखलाता ? सर्वथा विरुद्ध होने से यह बात मानने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥

७५-और अपने मालिक को दीनता डर से मन में याद कर धीमी आवाज़ से सुबह को और शाम को ॥ मं० २ । सि० ९ । सू० ७ । आ० २०४ ॥

समीक्षक—कहीं २ कुरान में लिखा है कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार और कहीं २ धीरे २ ईश्वर का स्मरण कर, अब कहिये कौनसी बात सच्ची? और कौनसी बात झूठी? जो एक दूसरी बात से विरोध करती है वह बात प्रमत्त गीत के समान होती है यदि कोई बात भ्रम से विरुद्ध निकल जाय उसको मान ले तो कुछ चिन्ता नहीं ॥ ७५ ॥

७६—प्रश्न करते हैं तुझ को लूटों से कह लूटें वास्ते अल्लाह के और रसूल के और डरो अल्लाह से ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० १॥

समीक्षक—जो लूट मचावें, डाकू के कर्म करें करावें और खुदा तथा पैग़म्बर और ईमानदार भी बनें, यह बड़े आश्चर्य की बात है और अल्लाह का डर बतलाते और डांकादि बुरे काम भी करते जायें और "उत्तम मत हमारा है" कहते लज्जा भी नहीं। हठ छोड़ के सत्य वेदमत का ग्रहण न करें इससे अधिक कोई बुराई दूसरी होगी? ॥ ७६ ॥

७७—और काटे जड़ काफ़िरों की ॥ मैं तुमको सहाय दूंगा साथ सहस्र फ़रिश्तों के पीछे २ आनेवाले ॥ अवश्य मैं काफ़िरों के दिलों में भय डालूंगा बस मारो ऊपर गर्दनों के मारो उनमें से प्रत्येक पोरी (संधि) पर ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ७। ९। १२॥

समीक्षक—वाहजी वाह! कैसा खुदा और कैसे पैग़म्बर दयाहीन, जो मुसलमानी मत से भिन्न काफ़िरों की जड़ कटवावे और खुदा आज्ञा देवे उनकी गर्दन मारो और हाथ पग के जोड़ों को काटने का सहाय और सम्मति देवे ऐसा खुदा लंकेश से क्या कुछ कम है? यह सब प्रपञ्च कुरान के कर्त्ता का है खुदा का नहीं, यदि खुदा का हो तो ऐसा खुदा हम से दूर और हम उससे दूर रहैं ॥ ७७॥

७८—अल्लाह मुसलमानों के साथ है॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो पुकारना स्वीकार कर वास्ते अल्लाह के और वास्ते रसूल के ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत चोरी करो अल्लाह की रसूल की और मत चोरी करो अमानत अपनी

को ॥ और मकर करता था अल्लाह और अल्लाह भला मकर करने वालों का है ॥ मं० २ । सि० ६ । सू० ८ । आ० १६ । २४ । २७ । ३० ॥

समीक्षक—क्या अल्लाह मुसलमानों का पक्षपाती है ? जो ऐसा है तो अधर्म करता है । नहीं तो ईश्वर सब सृष्टि भर का है । क्या खुदा विना पुकारे नहीं सुन सकता ? बधिर है ? और उसके साथ रसूल को शरीक करना बहुत बुरी बात नहीं है ? अल्लाह का कौनसा खज़ाना भरा है जो चोरी करेगा ? क्या रसूल और अपने अमानत की चोरी छोड़कर अन्य सब की चोरी किया करे ? ऐसा उपदेश अविद्वान् और अधर्मियों का हो सकता है । भला जो मकर करता और जो मकर करनेवालों का संगी है वह खुदा कपटी छली और अधर्मी क्यों नहीं ? इसलिये यह कुरान खुदा का बनाया हुआ नहीं है किसी कपटी छली का बनाया होगा, नहीं तो ऐसी अन्यथा बातें लिखित क्यों होतीं ? ॥ ७८ ॥

७९—और लड़ो उनसे यहांतक कि न रहे फ़ितना अर्थात् बल काफ़िरों का और होवे दीन तमाम वास्ते अल्लाह के ॥ और जानो तुम यह कि जो कुछ तुम लूटो किसी वस्तु से निश्चय वास्ते अल्लाह के है पांचवां हिस्सा उसका और वास्ते रसूल के ॥ मं० २ । सि० ९ । सू० ८ । आ० ३९ । ४१ ॥

समीक्षक—ऐसे अन्याय से लड़ने लड़ाने वाला मुसलमानों के खुदा से भिन्न शान्तिभङ्गकर्त्ता दूसरा कौन होगा ? अब देखिये मज़हब कि अल्लाह और रसूल के वास्ते सब जगत् को लूटना लुटवाना लुटेरों का काम नहीं है ? और लूट के माल में खुदा का हिस्सेदार बनना जानो डाकू बनना है और ऐसे लुटेरों का पक्षपाती बनना खुदा अपनी खुदाई में बट्टा लगाता है । बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसा पुस्तक, ऐसा खुदा और ऐसा पैग़म्बर संसार में ऐसी उपाधि और शान्तिभंग करके मनुष्यों को दुःख देने के लिये कहां से आया ? जो ऐसे २ मत जगत् में प्रचलित न होते तो सब जगत् आनन्द में बना रहता ॥ ७९ ॥

८०—और कभी देखे जब काफ़िरों को फ़रिश्ते कब्ज़ करते हैं मारते हैं मुख उनके और पीठें उनकी और कहते चखो अजाब जलने का ॥ हमने उनके

पाप से उनको मारा और हमने फ़िरऔन की कौम को डुबो दिया ॥ और तैयारी करो वास्ते उनके जो कुछ तुम कर सको ॥ मं० २। सि० ९। सू० ८। आ० ५०। ५४। ५९॥

समीक्षक—क्योंजी आजकल रूस ने रूम आदि और इङ्गलैण्ड ने मिश्र की दुर्दशा कर डाली फ़रिश्ते कहां सो गये ? और अपने सेवकों के शत्रुओं को खुदा पूर्व मारता डुबाता था यह बात सच्ची हो तो आजकल भी ऐसा करे, जिससे ऐसा नहीं होता इसलिये यह बात मानने योग्य नहीं। अब देखिये यह कैसी बुरी आज्ञा है कि जो कुछ तुम कर सको वह भिन्नमतवालों के लिये दुःखदायक कर्म करो ऐसी आज्ञा विद्वान् और धार्मिक दयालु की नहीं हो सकती, फिर लिखते हैं कि खुदा दया और न्यायकारी है ऐसी बातों से मुसलमानों के खुदा से न्याय और दयादि सद्गुण दूर बसते हैं ॥ ८० ॥

८१—ऐ नबी किफ़ायत है तुझ को अल्लाह और उनको जिन्होंने मुसलमानों से तेरा पक्ष किया ॥ ऐ नबी रग़बत अर्थात् चाह चस्का दे मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के, जो हों तुममें से २० आदमी सन्तोष करने वाले तो पराजय कर दोसौ का ॥ बस खाओ उस वस्तु से कि लूटा है तुमने हलाल पवित्र और डरो अल्लाह से वह क्षमा करनेवाला दयालु है ॥ मं० २। सि० १०। सू० ८। आ० ६३। ६४। ६८॥

समीक्षक—भला यह कौनसी न्याय, विद्वत्ता और धर्म की बात है कि जो अपना पक्ष करे और चाहे अन्याय भी करे उसी का पक्ष और लाभ पहुंचावे ? और जो प्रजा में शान्तिभंग करके लड़ाई करे करावे और लूट मार के पदार्थों को हलाल बतलावे और फ़िर उसी का नाम क्षमावान् दयालु लिखे यह बात खुदा की तो क्या किन्तु किसी भले आदमी की भी नहीं हो सकती ऐसी २ बातों से कुरान ईश्वरवाक्य कभी नहीं हो सकता ॥ ८१ ॥

८२—सदा रहेंगे बीच उसके अल्लाह समीप है उसके पुण्य बड़ा ॥ ऐ लोगो जो ईमान लाये हो मत पकड़ो बापों अपने को और भाइयों अपने को

मित्र जो दोस्त रक्खें कुफ्र को ऊपर ईमान के ॥ फिर उतारी अल्लाह ने तसल्ली अपनी ऊपर रसूल अपने के और ऊपर मुसलमानों के और उतारे लश्कर नहीं देखा तुमने उनको और अज़ाब किया उन लोगों को और यही सज़ा है काफ़िरों को ॥ फिर फिर आवेगा अल्लाह पीछे उसके ऊपर ॥ और लड़ाई करो उन लोगों से जो ईमान नहीं लाते ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ९ । आ० २१ । २२ । २५ । २६ । २८ ॥

समीक्षक—भला जो बहिश्तवालों के समीप अल्लाह रहता है तो सर्वव्यापक क्योंकर हो सकता है ? जो सर्वव्यापक नहीं तो सृष्टिकर्त्ता और न्यायाधीश नहीं हो सकता । और अपने मा, बाप, भाई और मित्र का छुड़वाना केवल अन्याय की बात है, हां जो वे बुरा उपदेश करें, न मानना परन्तु उनकी सेवा सदा करनी चाहिये । जो पहिले ख़ुदा मुसलमानों पर सन्तोषी था और उनके सहाय के लिये लश्कर उतारता था सच होता तो अब ऐसा क्यों नहीं करता ? और जो प्रथम काफ़िरों को दण्ड देता और पुनः उसके ऊपर आता था तो अब कहां गया ? क्या बिना लड़ाई के ईमान ख़ुदा नहीं बना सकता ? ऐसे ख़ुदा को हमारी ओर से सदा तिलांजलि है, ख़ुदा क्या है एक खिलाड़ी है ? ॥८२॥

८३—और हम बाट देखनेवाले हैं वास्ते तुम्हारे यह कि पहुंचावे तुम को अल्लाह अज़ाब अपने पास से वा हमारे हाथों से ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ९ । आ० ५२ ॥

समीक्षक—क्या मुसलमान ही ईश्वर की पुलिस बन गये हैं कि अपने हाथ वा मुसलमानों के हाथ से अन्य किसी मत वालों को पकड़ा देता है ? क्या दूसरे क्रोड़ों मनुष्य ईश्वर को अप्रिय हैं ? मुसलमानों में पापी भी प्रिय हैं ? यदि ऐसा है तो अन्धेर नगरी गवरगण्ड राजा की सी व्यवस्था दीखती है आश्चर्य है कि जो बुद्धिमान् मुसलमान हैं वे भी इस निर्मूल अयुक्त मत को मानते हैं ॥८३॥

८४—प्रतिज्ञा की है अल्लाह ने ईमान वालों से और ईमानवालियों से बहिश्तें चलती हैं नीचे उनके से नहरें सदैव रहनेवाली बीच उसके और घर

पवित्र बीच बहिश्तों अदन के और प्रसन्नता अल्लाह की ओर बड़ी है और यह कि वह है मुराद पाना बड़ा ॥ बस ठट्ठा करते हैं उनसे ठट्ठा किया अल्लाह ने उनसे ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ९ । आ० ७२ । ८० ॥

समीक्षक—यह खुदा के नाम से स्त्री पुरुषों को अपने मतलब के लिये लोभ देना है क्योंकि जो ऐसा प्रलोभ न देते तो कोई मुहम्मद साहेब के जाल में न फंसता ऐसे ही अन्य मत वाले भी किया करते हैं । मनुष्य लोग तो आपस में ठट्ठा किया ही करते हैं परन्तु खुदा को किसी से ठट्ठा करना उचित नहीं है यह कुरान क्या है बड़ा खेल है ॥ ८४ ॥

८५—परन्तु रसूल और जो लोग कि साथ उसके ईमान लाये जिहाद किया इन्होंने साथ धन अपने के तथा जान अपनी के और इन्हीं लोगों के लिये भलाई है ॥ और मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके के बस वे नहीं जानते ॥ मं० २ । सि० १० । सू० ९ । आ० ८९ । ९२ ॥

समीक्षक—अब देखिये मतलबसिन्धु की बात कि वे ही भले हैं जो मुहम्मद साहेब के साथ ईमान लाये और जो नहीं लाये वे बुरे हैं ! क्या यह बात पक्षपात और अविद्या से भरी हुई नहीं है ? जब खुदा ने मोहर ही लगादी तो उनका अपराध पाप करने में कोई भी नहीं किन्तु खुदा ही का अपराध है क्योंकि उन विचारों को भलाई से दिलों पर मोहर लगाकर रोक दिये यह कितना बड़ा अन्याय है !!! ॥ ८५ ॥

८६—ले माल उनके से खैरात कि पवित्र करे तू उन को अर्थात् बाहरी और शुद्ध कर तू उनको साथ उसके अर्थात् गुप्त में ॥ निश्चय अल्लाह ने मोल ली है मुसलमानों से जानें उनकी और माल उनके बदले कि वास्ते उनके बहिश्त है लड़ेंगे बीच मार्ग अल्लाह के बस मारेंगे और मर जावेंगे ॥ मं० २ । सि० ११ । सू० ९ । आ० १०२ । ११० ॥

समीक्षक—वाहजी वाह ! मुहम्मद साहेब आपने तो गोकुलिये गुसाइंयों

की बराबरी करली क्योंकि उनका माल लेना और उनको पवित्र करना यही बात तो गुसाइंयों की है। वाह खुदाजी! आपने अच्छी सौदागरी लगाई कि मुसलमानों के हाथ से अन्य ग़रीबों के प्राण लेना ही लाभ समझा और उन अनाथों को मरवाकर उन निर्दयी मनुष्यों को स्वर्ग देने से दया और न्याय से मुसलमानों का खुदा हाथ धो बैठा और अपनी खुदाई में बट्टा लगा के बुद्धिमान् धार्मिकों में घृणित होगया ॥ ८६ ॥

८७–ऐ लोगो जो ईमान लाये हो लड़ो उन लोगों से कि पास तुम्हारे हैं काफ़िरों से और चाहिये कि पावें बीच तुम्हारे दृढ़ता ॥ क्या नहीं देखते यह कि वे बलाओं में डाले जाते हैं हरबर्ष के एक बार वा दो बार फिर वे नहीं तोबाः करते और न वे शिक्षा पकड़ते हैं ॥ मं० २। सि० ११। सू० ९। आ० १२२। १२५ ॥

समीक्षक–देखिये ये भी एक विश्वासघात की बातें खुदा मुसलमानों को सिखलाता है कि चाहे पड़ोसी हों वा किसी के नौकर हों जब अवसर पावें तभी लड़ाई वा घात करें ऐसी बातें मुसलमानों से बहुत बन गई हैं इसी कुरान के लेख से अब तो मुसलमान समझ के कुरानोक्त बुराइयों को छोड़ दें तो बहुत अच्छा है ॥ ८७ ॥

८८–निश्चय परवरदिगार तुम्हारा अल्लाह है जिसने पैदा किया आसमानों और पृथिवी को बीच छः दिन के फिर क़रार पकड़ा ऊपर अर्श के तदबीर करता है काम की ॥ मं० ३। सि० ११। सू० १०। आ० ३ ॥

समीक्षक–आसमान आकाश एक और बिना बना अनादि है उसका बनाना लिखने से निश्चय हुआ कि वह कुरानकर्त्ता पदार्थविद्या को नहीं जानता था? क्या परमेश्वर के सामने छः दिन तक बनाना पड़ता है? तो जो "हो मेरे हुक्म से और होगया" जब कुरान में ऐसा लिखा है फिर छः दिन कभी नहीं लग सकते, इससे छः दिन लगना झूठ है जो वह व्यापक होता तो ऊपर आकाश के क्यों ठहरता? और जब काम की तदबीर करता है तो ठीक

तुम्हारा खुदा मनुष्य के समान है क्योंकि जो सर्वज्ञ है वह बैठा २ क्या तदबीर करेगा ? इससे विदित होता है कि ईश्वर को न जाननेवाले जंगली लोगों ने यह पुस्तक बनाया होगा ॥ ८८ ॥

८९–शिक्षा और दया वास्ते मुसलमानों के ॥ मं० ३ । सि० ११ । सू० १ । आ० ५५ ॥

समीक्षक–क्या यह खुदा मुसलमानों ही का है ? दूसरों का नहीं और पक्षपाती है । जो मुसलमानों ही पर दया करे अन्य मनुष्यों पर नहीं, यदि मुसलमान ईमानदारों को कहते हैं तो उनके लिये शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं और मुसलमानों से भिन्नों को उपदेश नहीं करता तो खुदा की विद्या ही व्यर्थ है ॥ ८९ ॥

९०–परीक्षा लेवे तुमको कौन तुम में से अच्छा है कर्मों में जो कहे तू अवश्य उठाये जाओगे तुम पीछे मृत्यु के ॥ मं० ३ । सि० ११ । सू० ११ । आ० ७ ॥

समीक्षक–जब कर्मों की परीक्षा करता है तो सर्वज्ञ ही नहीं और जो मृत्यु पीछे उठाता है तो दौड़ासुपुर्द रखता है और अपने नियम जो कि मरे हुए न जीवें उसको तोड़ता है यह खुदा को बट्टा लगना है ॥ ९० ॥

९१–और कहा गया ऐ पृथिवी अपना पानी निगलजा और ऐ आसमान बस कर और पानी सूख गया ॥ और ऐ क़ौम यह है निसानी ऊंटनी अल्लाह की वास्ते तुम्हारे बस छोड़ दो उसको बीच पृथिवी अल्लाह के खाती फिरे ॥ मं० ३ । सि० ११ । सू० ११ । आ० ४३ । ६३ ॥

समीक्षक–क्या लड़कपन की बात है ! पृथिवी और आकाश कभी बात सुन सकते हैं ? वाहजी वाह ! खुदा के ऊंटनी भी है तो ऊंट भी होगा ? तो हाथी, घोड़े, गधे आदि भी होंगे ? और खुदा का ऊंटनी से खेत खिलाना क्या अच्छी बात है ? क्या ऊंटनी पर चढ़ता भी है जो ऐसी बातें हैं तो नवाबी की सी घसड़ फसड़ खुदा के घर में भी हुई ॥ ९१ ॥

९२—और सदैव रहनेवाले बीच उसके जबतक कि रहें आसमान और पृथिवी और जो लोग सुभागी हुए बस बहिश्त के सदा रहनेवाले हैं जबतक रहें आसमान और पृथिवी ॥ मं० ३ । सि० १२ । सू० ११ । आ० १०५ । १०६ ॥

समीक्षक—जब दोज़ख़ और बहिश्त में क़यामत के पश्चात् सब लोग जायेंगे फिर आसमान और पृथिवी किसलिये रहेगी ? और जब दोज़ख़ और बहिश्त के रहने की आसमान पृथिवी के रहने तक अवधि हुई तो सदा रहेंगे बहिश्त वा दोज़ख़ में यह बात झूठी हुई ऐसा कथन अविद्वानों का होता है ईश्वर वा विद्वानों का नहीं ॥ ९२ ॥

९३—जब यूसुफ ने अपने बाप से कहा कि ऐ बाप मेरे, मैंने एक स्वप्न में देखा ॥ मं० ३ । सि० १२ । सू० १२ । आ० ४ से ५९ तक ॥

समीक्षक—इस प्रकरण में पिता पुत्र का संवादरूप किस्सा कहानी भरी है इसलिये कुरान ईश्वर का बनाया नहीं किसी मनुष्य ने मनुष्यों का इतिहास लिख दिया है ॥ ९३ ॥

९४—अल्लाह वह है कि जिसने खड़ा कि आसमान को बिना खंभे के देखते हो तुम उसको फिर ठहरा ऊपर अर्श के आज्ञा वर्तनेवाला किया सूरज और चांद को ॥ और वही है जिसने बिछाया पृथिवी को ॥ उतारा आसमान से पानी बस बहे नाले साथ अन्दाज़ अपने के अल्लाह खोलता है भोजन को वास्ते जिसके चाहे और तंग करता है ॥ मं० ३ । सि० १३ । सू० १३ । आ० २ । ३ । १७ । २६ ॥

समीक्षक—मुसलमानों का ख़ुदा पदार्थविद्या कुछ भी नहीं जानता था जो जानता तो गुरुत्व न होने से आसमान को खंभे लगाने की कथा कहानी कुछ भी न लिखता यदि ख़ुदा अर्शरूप एक स्थान में रहता है तो वह सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक नहीं हो सकता । और जो ख़ुदा मेघविद्या जानता तो आकाश

से पानी उतारा लिख पुनः यह क्यों न लिखा कि पृथिवी से पानी ऊपर चढ़ाया इससे निश्चय हुआ कि कुरान का बनानेवाला मेघ की विद्या को भी नहीं जानता था। और जो विना अच्छे बुरे कामों के सुख दुःख देता है तो पक्षपाती अन्यायकारी निरक्षर भट्ट है ॥ ९४ ॥

९५—कह निश्चय अल्लाह गुमराह करता है जिसको चाहता है और मार्ग दिखलाता है तर्फ अपनी उस मनुष्य को रुजू करता है ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० २७॥

समीक्षक—जब अल्लाह गुमराह करता है तो खुदा और शैतान में क्या भेद हुआ ? जब कि शैतान दूसरों को गुमराह अर्थात् बहकाने से बुरा कहता है तो खुदा भी वैसा ही काम करने से बुरा शैतान क्यों नहीं ? और बहकाने के पाप से दोज़खी क्यों नहीं होना चाहिये ? ॥ ९५ ॥

९६—इसी प्रकार उतारा हमने इस कुरान को अर्बी जो पक्ष करेगा तू उनकी इच्छा का पीछे इसके कि आई तेरे पास विद्या से ॥ बस सिवाय इसके नहीं कि ऊपर तेरे पैग़ाम पहुंचाना है और ऊपर हमारे है हिसाब लेना ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १३। आ० ३७। ४०॥

समीक्षक—कुरान किधर की ओर से उतारा ? क्या खुदा ऊपर रहता है ? जो यह बात सच है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर ही नहीं हो सकता क्योंकि ईश्वर सब ठिकाने एकरस व्यापक है, पैग़ाम पहुंचाना हल्कारे का काम है और हल्कारे की आवश्यकता उसी को होती है जो मनुष्यवत् एकदेशी हो और हिसाब लेना देना भी मनुष्य का काम है ईश्वर का नहीं क्योंकि वह सर्वज्ञ है यह निश्चय होता है कि किसी अल्पज्ञ मनुष्य का बनाया कुरान है ॥ ९६ ॥

९७—और किया सूर्य चन्द्र को सदैव फिरनेवाले ॥ निश्चय आदमी अवश्य अन्याय और पाप करनेवाला है ॥ मं० ३। सि० १३। सू० १४। आ० ३३। ३४॥

समीक्षक—क्या चन्द्र सूर्य सदा फिरते और पृथिवी नहीं फिरती ? जो पृथिवी नहीं फिरे तो कई वर्षों का दिन रात होवे । और जो मनुष्य निश्चय अन्याय और पाप करनेवाला है तो कुरान से शिक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि जिनका स्वभाव पाप ही करने का है तो उनमें पुण्यात्मा कभी न होगा और संसार में पुण्यात्मा और पापात्मा सदा दीखते हैं इसलिये ऐसी बात ईश्वरकृत पुस्तक की नहीं हो सकती ॥ ९७ ॥

९८—बस ठीक करूं मैं उसको और फूंक दूं बीच उसके रूह अपनी से बस गिर पड़ो वास्ते उसके सिजदा करते हुए ॥ कहा ऐ रब मेरे इस कारण कि गुमराह किया तू ने मुझ को अवश्य जीनत दूंगा मैं वास्ते उनके बीच पृथिवी के और गुमराह करूंगा ॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १५ । आ० ३९ से ४६ तक ॥

समीक्षक—जो खुदा ने अपनी रूह आदम साहब में डाली तो वह भी खुदा हुआ और जो वह खुदा न था तो सिजदा अर्थात् नमस्कारादि भक्ति करने में अपना शरीक क्यों किया ? जब शैतान को गुमराह करनेवाला खुदा ही है तो वह शैतान का भी शैतान बड़ा भाई गुरु क्यों नहीं ? क्योंकि तुम लोग बहकनेवाले को शैतान मानते हो तो खुदा ने भी शैतान को बहकाया और प्रत्यक्ष शैतान ने कहा कि मैं बहकाऊंगा फिर भी उसको दण्ड देकर क़ैद क्यों न किया ? और मार क्यों न डाला ? ॥ ९८ ॥

९९—और निश्चय भेजे हमने बीच हर उम्मत के पैग़म्बर ॥ जब चाहते हैं हम उसको यह कहते हैं हम उसको हो बस हो जाती है ॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १६ । आ० ३५ । ३९ ॥

समीक्षक—जो सब क़ौमों पर पैग़म्बर भेजे हैं तो सब लोग जो कि पैग़म्बर की राय पर चलते हैं वे काफ़िर क्यों ? क्या दूसरे पैग़म्बर का मान्य नहीं सिवाय तुम्हारे पैग़म्बर के ? यह सर्वथा पक्षपात की बात है जो सब देश में पैग़म्बर भेजे तो आर्य्यावर्त्त में कौनसा भेजा इसलिये यह बात मानने योग्य

नहीं। जब खुदा चाहता है और कहता है कि पृथिवी हो जा वह जड़ कभी नहीं सुन सकती, खुदा का हुक्म क्योंकर बन सकेगा ? और सिवाय खुदा के दूसरी चीज़ नहीं मानते तो सुना किसने ? और हो कौनसा गया ? यह सब अविद्या की बातें हैं ऐसी बातों को अनजान लोग मान लेवे हैं ॥ ९९ ॥

१००—और नियत करते हैं वास्ते अल्लाह के बेटियां पवित्रता है उसको और वास्ते उनके हैं जो कुछ चाहें ॥ क़सम अल्लाह की अवश्य भेजे हमने पैग़म्बर ॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १६ । आ० ५६ । ६२ ॥

समीक्षक—अल्लाह बेटियों से क्या करेगा ? बेटियां तो किसी मनुष्य को चाहियें, क्यों बेटे नियत नहीं किये जाते और बेटियां नियत की जाती हैं ? इसका क्या कारण है ? बताइये ? क़सम खाना झूठों का काम है खुदा की बात नहीं क्योंकि बहुधा संसार में ऐसा देखने में आता है कि जो झूठा होता है वही क़सम खाता है सच्चा सौगन्ध क्यों खावे ॥ १०० ॥

१०१—ये लोग वे हैं कि मोहर रक्खी अल्लाह ने ऊपर दिलों उनके और कानों उनके और आंखों उनकी के और ये लोग वे हैं बेख़बर ॥ और पूरा दिया जावेगा हर जीव को जो कुछ किया है और वे अन्याय न किये जायेंगे ॥ मं० ३ । सि० १४ । सू० १६ । आ० ११५ । ११८ ॥

समीक्षक—जब खुदा ही ने मोहर लगा दी तो वे बिचारे विना अपराध मारे गये क्योंकि उनको पराधीन कर दिया यह कितना बड़ा अपराध है ? और फिर कहते हैं कि जिसने जितना किया है उतना ही उसको दिया जायगा न्यूनाधिक नहीं, भला उन्होंने स्वतन्त्रता से पाप किये ही नहीं किन्तु खुदा के कराने से किये पुनः उनका अपराध ही न हुआ उनको फल न मिलना चाहिये इसका फल खुदा को मिलना उचित है और जो पूरा दिया जाता है तो क्षमा किस बातकी की जाती है और जो क्षमा की जाती है तो न्याय उड़ जाता है ऐसा गड़बड़ाध्याय ईश्वर का कभी नहीं हो सकता किन्तु निर्बुद्धि छोकरों का होता है ॥ १०१ ॥

१०२–और किया हमने दोज़ख़ को वास्ते काफ़िरों के घेरने वाला स्थान ॥ और हर आदमी को लगा दिया हमने उसको अमलनामा उसका बीच गर्दन उसकी के और निकालेंगे हम वास्ते उसके दिन क़यामत के एक किताब कि देखेगा उसको खुला हुआ ॥ और बहुत मारे हमने कुरनून से पीछे नूह के ॥ मं० ४ । सि० १५ । सू० १७ । आ० ७ । १२ । १६ ॥

समीक्षक–यदि काफ़िर वे ही हैं कि जो कुरान, पैग़म्बर और कुरान के कहे खुदा सातवें आसमान और नमाज़ आदि को न मानें और उन्हीं के लिये दोज़ख़ होवे तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरे क्योंकि कुरान ही के मानने वाले सब अच्छे और अन्य के मानने वाले सब बुरे कभी हो सकते हैं ? यह बड़ी लड़कपन की बात है कि प्रत्येक की गर्दन में कर्मपुस्तक, हम तो किसी एक की भी गर्दन में नहीं देखते । यदि इसका प्रयोजन कर्मों का फल देना है तो फिर मनुष्यों के दिलों नेत्रों आदि पर मोहर रखना और पापों का क्षमा करना क्या खेल मचाया है ? क़यामत की रात को किताब निकालेगा खुदा तो आजकल वह किताब कहां है ? क्या साहूकार की बही समान लिखता रहता है ? यहां यह विचारना चाहिये कि जो पूर्व जन्म नहीं तो जीवों के कर्म ही नहीं हो सकते फिर कर्म की रेखा क्या लिखी ? और जो विना कर्म के लिखा तो उन पर अन्याय किया क्योंकि विना अच्छे बुरे कर्मों के उनको दुःख सुख क्यों दिया ? जो कहो कि खुदा की मरजी, तो भी उसने अन्याय किया, अन्याय उसको कहते हैं कि विना बुरे भले कर्म किये दुःख सुखरूप फल न्यूनाधिक देना और उसी समय खुदा ही किताब बांचेगा वा कोई सरिश्तेदार सुनावेगा ? जो खुदा ही ने दीर्घकाल सम्बन्धी जीवों को विना अपराध मारा तो वह अन्यायकारी होगया जो अन्यायकारी होता है वह खुदा ही नहीं हो सकता ॥ १०२ ॥

१०३–और दिया हमने समूद को ऊंटनी प्रमाण ॥ और बहका जिसको बहका सके ॥ जिस दिन बुलावेंगे हम सब लोगों को साथ पेशवाओं उनके के बस जो कोई दिया गया अमलनामा उसका बीच दाहने हाथ उसके के ॥ मं० ४ । सि० १५ । सू० १७ । आ० ५७ । ६२ । ६९ ॥

समीक्षक—वाहजी जितनी खुदा की साश्चर्य निशानी हैं उनमें से एक ऊंटनी भी खुदाके होने में प्रमाण अथवा परीक्षा में साधक है यदि खुदा ने शैतान को बहकाने का हुक्म दिया तो खुदा ही शैतान का सरदार और सब पाप कराने-वाला ठहरा ऐसे को खुदा कहना केवल कमसमझ की बात है। जब क़यामत को अर्थात् प्रलय ही में न्याय करने कराने के लिये पैग़म्बर और उनके उपदेश माननेवालों को खुदा बुलावेगा तो जबतक प्रलय न होगा तबतक सब दौरासुपुर्द रहेंगे और दौरासुपुर्द सब को दुःखदायक है जबतक न्याय न किया जाय। इसलिये शीघ्र न्याय करना न्यायाधीश का उत्तम काम है यह तो पोपांबाई का न्याय ठहरा जैसे कोई न्यायाधीश कहे कि जबतक पचास वर्ष तक के चोर और साहूकार इकट्ठे न हों तबतक उनको दंड वा प्रतिष्ठा न करनी चाहिये वैसा ही यह हुआ कि एक तो पचास वर्ष तक दौरासुपुर्द रहा और एक आज ही पकड़ा गया ऐसा न्याय का काम नहीं हो सकता न्याय तो वेद और मनुस्मृति देखो जिसमें क्षणमात्र भी विलम्ब नहीं होता और अपने २ कर्मानुसार दंड वा प्रतिष्ठा सदा पाते रहते हैं दूसरा पैग़म्बरों को गवाही के तुल्य रखने से ईश्वर की सर्वज्ञता की हानि है, भला ऐसा पुस्तक ईश्वरकृत और ऐसे पुस्तक का उपदेश करनेवाला ईश्वर कभी हो सकता है ? कभी नहीं ॥ १०३ ॥

१०४—ये लोग वास्ते उनके हैं बाग़ हमेशह रहने के, चलती हैं नीचे उनके से नहरें गहिना पहिराये जावेंगे बीच उसके कंगन सोने के से और पोशाक पहिनेंगे वस्त्र हरित लाही की से और ताफते की से तकिये किये हुए बीच उसके ऊपर तख़्तों के अच्छा है पुण्य और अच्छी है बहिश्त लाभ उठाने की ॥ मं० ४ । सि० १५ । सू० १८ । आ० ३० ॥

समीक्षक—वाहजी वाह ! क्या कुरान का स्वर्ग है जिसमें बाग़, गहने, कपड़े, गद्दी, तकिये आनन्द के लिये हैं भला कोई बुद्धिमान् यहां विचार करे तो यहां से वहां मुसलमानों के बहिश्त में अधिक कुछ भी नहीं है सिवाय अन्याय के, वह यह है कि कर्म उनके अन्तवाले और फल उनके अनन्त और जो मीठा नित्य खावे तो थोड़े दिन में विष के समान प्रतीत होता है जब सदा वे सुख

भोगेंगे तो उनको सुख ही दुःखरूप होजायगा इसलिये महाकल्पपर्यन्त मुक्ति सुख भोग के पुनर्जन्म पाना ही सत्य सिद्धान्त है ॥ १०४ ॥

१०५—और यह बस्तियां हैं कि मारा हमने उनको जब अन्याय किया उन्होंने और हमने उनके मारने की प्रतिज्ञा स्थापन की ॥ मं० ४ । सि० १५ । सू० १८ । आ० ५७ ॥

समीक्षक—भला सब बस्ती भर पापी भी हो सकती है ? और पीछे से प्रतिज्ञा करने से ईश्वर सर्वज्ञ नहीं रहा क्योंकि जब उनका अन्याय देखा तो प्रतिज्ञा की पहिले नहीं जानता था इससे दयाहीन भी ठहरा ॥ १०५ ॥

१०६—और वह जो लड़का बस थे मा बाप उसके ईमान वाले बस डरे हम यह कि पकड़ उनको सरकशी में और कुफ्र में ॥ यहांतक कि पहुंचा जगह डूबने सूर्य्य की पाया उसको डूबता था बीच चश्मे कीचड़ के । कहा उनने ऐ ज़ुलक़रनैन निश्चय याजूज माजूज फ़िसाद करने वाले हैं बीच पृथिवी के ॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० १८ । आ० ७८ । ८४ । ९२ ॥

समीक्षक—भला यह ख़ुदा की कितनी बेसमझ है ! शंका से डरा कि लड़कों के मा बाप कहीं मेरे मार्ग से बहका कर उलटे न कर दिये जावें, वह कभी ईश्वर की बात नहीं हो सकती । अब आगे की अविद्या की बात देखिये कि इस किताब का बनानेवाला सूर्य्य को एक झील में रात्रि को डूबा जानता है फिर प्रातःकाल निकलता है भला सूर्य्य तो पृथिवी से बहुत बड़ा है वह नदी वा झील वा समुद्र में कैसे डूब सकेगा ? इससे यह विदित हुआ कि कुरान के बनानेवाले को भूगोल खगोल की विद्या नहीं थी जो होती तो ऐसी विद्याविरुद्ध बात क्यों लिख देता ? और इस पुस्तक के मानने वालों को भी विद्या नहीं है जो होती तो ऐसी मिथ्या बातों से युक्त पुस्तक को क्यों मानते ? अब देखिये ख़ुदा का अन्याय आप ही पृथिवी को बनानेवाला राजा न्यायाधीश है और याजूज माजूज को पृथिवी में फ़साद भी करने देता है वह ईश्वरता की बात से विरुद्ध है इससे ऐसी पुस्तक को जंगली लोग माना करते हैं विद्वान् नहीं ॥ १०६ ॥

१०७—और याद करो बीच किताब के मर्यम को जब जा पड़ी लोगों अपने से मकान पूर्वी में ॥ बस पड़ा उनसे इधर पर्दा बस भेजा हमने रूह अपनी को अर्थात् फ़रिश्ता बस सूरत पकड़ी वास्ते उसके आदमी पुष्ट की ॥ कहने लगी निश्चय मैं शरण पकड़ती हूं रहमान की तुझ से जो है तू परहेज़गार ॥ कहने लगा सिवाय इसके नहीं कि मैं भेजा हुआ हूं मालिक तेरे के से तो कि दे जाऊं मैं तुझ को लड़का पवित्र ॥ कहा कैसे होगा वास्ते मेरे लड़का नहीं हाथ लगाया मुझको आदमी ने नहीं मैं बुरा काम करनेवाली ॥ बस गर्भित होगई साथ उसके और जापड़ी साथ उसके मकान दूर अर्थात् जंगल में ॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० १९ । आ० १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २१ ॥

समीक्षक—अब बुद्धिमान् विचारलें कि फ़रिश्ते सब ख़ुदा की रूह हैं तो ख़ुदा से अलग पदार्थ नहीं हो सकते दूसरा यह अन्याय कि वह मर्यम कुमारी के लड़का होना, किसी का संग करना नहीं चाहती थी परन्तु ख़ुदा के हुक्म से फ़रिश्ते ने उसको गर्भवती किया यह न्याय से विरुद्ध बात है । यहां अन्य भी असभ्यता की बातें बहुत लिखी हैं उनको लिखना उचित नहीं समझा ॥ १०७॥

१०८—क्या नहीं देखा तू ने यह कि भेजा हमने शैतानों को ऊपर काफ़िरों के बहकाते हैं उनको बहकाने कर ॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० १९ । आ० ८१ ॥

समीक्षक—जब ख़ुदा ही शैतानों को बहकाने के लिये भेजता है तो बहकाने वालों का कुछ दोष नहीं हो सकता और न उनको दण्ड हो सकता और न शैतानों को क्योंकि यह ख़ुदा के हुक्म से सब होता है इसका फल ख़ुदा को होना चाहिये, जो सच्चा न्यायकारी है तो उसका फल दोज़ख़ आपही भोगे और जो न्याय को छोड़ के अन्याय को करे तो अन्यायकारी हुआ अन्यायकारी ही पापी कहाता है ॥ १०८ ॥

१०९—और निश्चय क्षमा करनेवाला हूं वास्ते उस मनुष्य के तोबाः की और ईमान लाया कर्म किये अच्छे फिर मार्ग पाया ॥ मं० ४ । सि० १६ । सू० २० । आ० ७८ ॥

समीक्षक—जो तोबाः से पाप क्षमा करने की बात क़ुरान में है यह सबको पापी करनेवाली है क्योंकि पापियों को इससे पाप करने का साहस बहुत बढ़ जाता है इससे यह पुस्तक और इसका बनानेवाला पापियों को पाप कराने में हौंसला बढ़ानेवाले हैं इससे यह पुस्तक परमेश्वरकृत और इसमें कहा हुआ परमेश्वर भी नहीं हो सकता ॥ १०९ ॥

११०—और किये हमने बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे ॥ मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ३० ॥

समीक्षक—यदि क़ुरान का बनानेवाला पृथिवी का घूमना आदि जानता तो यह बात कभी नहीं कहता कि पहाड़ों के धरने से पृथिवी नहीं हिलती शंका हुई कि जो पहाड़ नहीं धरता तो हिल जाती इतने कहने पर भी भूकम्प में क्यों डिग जाती है ॥ ११० ॥

१११—और शिक्षा दी हमने उस औरत को और रक्षा की उसने अपने गुह्य अंगों की बस फूंक दिया हमने बीच उसके रूह अपनी को ॥ मं० ४। सि० १७। सू० २१। आ० ८८ ॥

समीक्षक—ऐसी अश्लील बातें ख़ुदा की पुस्तक में ख़ुदा की क्या और सभ्य मनुष्य की भी नहीं होतीं, जब कि मनुष्यों में ऐसी बातों का लिखना अच्छा नहीं तो परमेश्वर के सामने क्योंकर अच्छा हो सकता है ? ऐसी बातों से क़ुरान दूषित होता है यदि अच्छी बात होती तो अतिप्रशंसा होती जैसे वेदों की ॥ १११ ॥

११२—क्या नहीं देखा तूने कि अल्लाह को सिजदा करते हैं जो कोई बीच आसमानों और पृथिवी के हैं सूर्य और चन्द्र तारे और पहाड़ वृक्ष और जानवर ॥ पहिनायें जावेंगे बीच उसके कंगन सोने से और मोती और पहिनावा उनका बीच उसके रेशमी है ॥ और पवित्र रख घर मेरे को वास्ते गिर्द फिरनेवालों के और खड़े रहनेवालों के ॥ फिर चाहिये कि दूर करें मैल अपने और

पूरी करें भेटें अपनी और चारों ओर फिरें घर कदीम के ॥ तो कि नाम अल्लाह का याद करें ॥ मं० ४ । सि० १७ । सू० २२ । आ० १६ । २३ । २५ । २८ । ३३ ॥

समीक्षक—भला जो जड़ वस्तु हैं परमेश्वर को जान ही नहीं सकते फिर वे उस की भक्ति क्योंकर कर सकते हैं ? इससे यह पुस्तक ईश्वरकृत तो कभी नहीं हो सकता किन्तु किसी भ्रान्त का बनाया हुआ दीखता है वाह ! बड़ा अच्छा स्वर्ग है जहां सोने मोती के गहने और रेशमी कपड़े पहिरने को मिलें यह बहिश्त यहां के राजाओं के घर से अधिक नहीं दीख पड़ता । और जब परमेश्वर का घर है तो वह उसी घर में रहता भी होगा फिर बुत्परस्ती क्यों न हुई ? और दूसरे बुत्परस्तों का खण्डन क्यों करते हैं ? जब खुदा भेट लेता अपने घर की परिक्रमा करने की आज्ञा देता है और पशुओं को मरवा के खिलाता है तो यह खुदा मन्दिर वाले और भैरव, दुर्गा के सदृश हुआ और महाबुत्परस्ती का चलानेवाला हुआ क्योंकि मूर्त्तियों से मस्जिद बड़ा बुत् है इससे खुदा और मुसलमान बड़े बुत्परस्त और पुराणी तथा जैनी छोटे बुत्परस्त हैं ॥ ११२ ॥

११३—फिर निश्चय तुम दिन क़यामत के उठाये जाओगे ॥ मं० ४ । सि० १८ । सू० २३ । आ० १६ ॥

समीक्षक—क़यामत तक मुर्दे क़बर में रहेंगे वा किसी अन्य जगह ? जो उन्हीं में रहेंगे तो सड़े हुए दुर्गन्धरूप शरीर में रहकर पुण्यात्मा भी दुःख भोग करेंगे ? यह न्याय अन्याय है और दुर्गन्ध अधिक होकर रोगोत्पत्ति करने से खुदा और मुसलमान पापभागी होंगे ॥ ११३ ॥

११४—उस दिन की गवाही देवेंगे ऊपर उनके जबानें उनकी और हाथ उनके और पांव उनके साथ उस वस्तु के कि थे करते ॥ अल्लाह नूर है आसमानों का और पृथिवी का नूर उसके कि मानिन्द ताक की है बीच उसके दीप हो और दीप बीच कंदील शीशों के है वह कंदील मानो कि तारा है चमकता रोशन किया जाता है दीपक वृक्ष मुबारिक जैतून के से न पूर्व की ओर है न

पश्चिम की समीप है तेल उस का रोशन होजावे जो न लगे ऊपर रोशनी के मार्ग दिखाता है अल्लाह नूर अपने के जिसको चाहता है॥ मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० २३। ३४॥

समीक्षक—हाथ पग आदि जड़ होने से गवाही कभी नहीं दे सकते यह बात सृष्टिक्रम से विरुद्ध होने से मिथ्या है क्या ख़ुदा आग बिजुली है? जैसा कि दृष्टान्त देते हैं ऐसा दृष्टान्त ईश्वर में नहीं घट सकता हां किसी साकार वस्तु में घट सकता है॥ ११४॥

११५—और अल्लाह ने उत्पन्न किया हर जानवर को पानी से बस कोई उनमें से वह है कि जो चलता है पेट अपने के॥ और जो कोई आज्ञा पालन करे अल्लाह की रसूल उसके की॥ कह आज्ञा पालन कर ख़ुदा की रसूल उसके की॥ और आज्ञा पालन करो रसूल की ताकि दया किये जाओ॥ मं० ४। सि० १८। सू० २४। आ० ४४। ५१। ५३। ५५॥

समीक्षक—यह कौनसी फ़िलासफ़ी है कि जिन जानवरों के शरीर में सब तत्त्व दीखते हैं और कहना कि केवल पानी से उत्पन्न किया? यह केवल अविद्या की बात है जब अल्लाह के साथ पैग़म्बर की आज्ञा पालन करना होता है तो ख़ुदा का शरीक होगया वा नहीं? यदि ऐसा है तो क्यों ख़ुदा को लाशरीक कुरान में लिखा और कहते हो?॥ ११५॥

११६—और जिस दिन कि फट जावेगा आसमान साथ बदली के और उतारे जावेंगे फ़रिश्ते॥ बस मत कहा मान काफ़िरों का और झगड़ा कर उससे साथ झगड़ा बड़ा॥ और बदल डालता है अल्लाह बुराइयों उनकी को भलाइयों से॥ और जो कोई तोबाः करे और कर्म करे अच्छे बस निश्चय आता है तर्फ़ अल्लाह की॥ मं० ४। सि० १९। सू० २५। आ० २४। ४९। ६७। ६८॥

समीक्षक—यह बात कभी सच नहीं हो सकती है कि आकाश बदलों के साथ फट जावे। यदि आकाश कोई मूर्त्तिमान् पदार्थ हो तो फट सकता है।

यह मुसलमानों का कुरान शान्तिभंग कर गदर झगड़ा मचानेवाला है इसीलिये धार्मिक विद्वान् लोग इसको नहीं मानते। यह भी अच्छा न्याय है कि जो पाप और पुण्य का अदला बदला हो जाय ! क्या यह तिल और उड़द की सी बात जो पलटा हो जावे ? जो तोबाः करने से पाप छूटे और ईश्वर मिले तो कोई भी पाप करने से न डरे इसलिये ये सब बातें विद्या से विरुद्ध हैं ॥ ११६ ॥

११७—वही की हमने तर्फ़ मूसा की यह कि ले चल रात को बन्दों मेरे को निश्चय तुम पीछा किये जाओगे ॥ बस भेजे लोग फिरोन ने बीच नगरों के जमा करनेवाले ॥ और वह पुरुष कि जिसने पैदा किया मुझ को है बस वही मार्ग दिखलाता है ॥ और वह जो खिलाता है मुझ को पिलाता है मुझ को और वह पुरुष कि आशा रखता हूं मैं यह कि क्षमा करे वास्ते मेरे अपराध मेरा दिन क़यामत के ॥ मं० ५ । सि० १९ । सू० २६ । आ० ५० । ५१ । ७६ । ७७ । ८० ॥

समीक्षक—जब खुदा ने मूसा की ओर वही भेजी पुनः दाऊद, ईसा और मुहम्मद साहेब की ओर किताब क्यों भेजी ? क्योंकि परमेश्वर की बात सदा एकसी और बेभूल होती है। और उसके पीछे कुरान तक पुस्तकों का भेजना पहिली पुस्तक को अपूर्ण भूलयुक्त माना जायगा। यदि ये तीन पुस्तक सच्चे हैं तो वह कुरान झूठा होगा। चारों का जो कि परस्पर प्रायः विरोध रखते हैं उनका सर्वथा सत्य होना नहीं हो सकता यदि खुदा ने रूह अर्थात् जीव पैदा किये हैं तो वे मर भी जायंगे अर्थात् उनका कभी अभाव भी होगा ? जो परमेश्वर ही मनुष्यादि प्राणियों को खिलाता पिलाता है तो किसी को रोग होना न चाहिये और सब को तुल्य भोजन देना चाहिये, पक्षपात से एकको उत्तम और दूसरे को निकृष्ट जैसा कि राजा और कंगले को श्रेष्ठ निकृष्ट भोजन मिलता है न होना चाहिये। जब परमेश्वर ही खिलाने पिलाने और पथ्य कराने वाला है तो रोग ही न होना चाहिये परन्तु मुसलमान आदि को भी रोग होते हैं, यदि खुदा ही रोग छुड़ाकर आराम करनेवाला है तो मुसलमानों के शरीर में रोग न रहना चाहिये। यदि रहता है तो खुदा पूरा वैद्य नहीं है। यदि पूरा वैद्य है तो मुसल-

मानों के शरीर में रोग क्यों रहते हैं ? यदि वही मारता और जिलाता है तो उसी ख़ुदा को पाप पुण्य लगता होगा। यदि जन्म जन्मान्तर के कर्मानुसार व्यवस्था करता है तो उसका कुछ भी अपराध नहीं। यदि वह पाप क्षमा और न्याय क़यामत की रात में करता है तो ख़ुदा पाप बढ़ानेवाला होकर पापयुक्त होगा यदि क्षमा नहीं करता तो यह कुरान की बात झूठी होने से बच नहीं सकती है ॥ ११७ ॥

११८—नहीं तू आदमी मानिन्द हमारी बस ले आ कुछ निशानी जो है तू सच्चों से ॥ कहा यह ऊंटनी है वास्ते उसके पानी पीना है एक वार ॥ मं० ५। सि० १९। सू० २६। आ० १५०। १५१ ॥

समीक्षक—भला इस बात को कोई मान सकता है कि पत्थर से ऊंटनी निकले वे लोग जंगली थे कि जिन्होंने इस बात को मान लिया और ऊंटनी की निशानी देनी केवल जंगली व्यवहार है ईश्वरकृत नहीं यदि यह किताब ईश्वरकृत होती तो ऐसी व्यर्थ बातें इसमें न होतीं ॥ ११८ ॥

११९—ऐ मूसा बात यह है कि निश्चय मैं अल्लाह हूं ग़ालिब। और डाल दे असा अपना बस जब कि देखा उसको हिलता था मानो कि वह सांप है ऐ मूसा मत डर निश्चय नहीं डरते समीप मेरे पैग़म्बर ॥ अल्लाह नहीं कोई माबूद परन्तु वह मालिक अर्श बड़े का। यह कि मत सरकशी करो ऊपर मेरे और चले आओ मेरे पास मुसलमान होकर ॥ मं० ५। सि० १९। सू० २७। आ० ९। १०। २६। ३१ ॥

समीक्षक—और भी देखिये अपने मुख आप अल्लाह बड़ा ज़बरदस्त बनता है, अपने मुख से अपनी प्रशंसा करना श्रेष्ठ पुरुष का भी काम नहीं तो ख़ुदा का क्योंकर हो सकता है ? तभी तो इन्द्रजाल का लटका दिखला जंगली मनुष्यों को वशकर आप जंगलस्थ ख़ुदा बन बैठा। ऐसी बात ईश्वर के पुस्तक में कभी नहीं हो सकती यदि वह बड़े अर्श अर्थात् सातवें आसमान का मालिक है तो वह एकदेशी होने से ईश्वर नहीं हो सकता है, यदि सरकशी करना बुरा

है तो खुदा और मुहम्मद साहेब ने अपनी स्तुति से पुस्तक क्यों भर दिये ? मुहम्मद साहेब ने अनेकों को मारे इससे सरकशी हुई वा नहीं ? यह कुरान पुनरुक्त और पूर्वापर विरुद्ध बातों से भरा हुआ है ॥ ११९ ॥

१२०–और देखेगा तू पहाड़ों को अनुमान करता है उनको जमे हुए और वे चले जाते हैं मानिन्द चलने बादलों की कारीगरी अल्लाह कि जिसने दृढ़ किया हर वस्तु को निश्चय वह खबरदार है उस वस्तु के कि करते हो ॥ मं० ५ । सि० २० । सू० २७ । आ० ८८ ॥

समीक्षक–बद्लों के समान पहाड़ का चलना कुरान बनानेवालों के देश में होता होगा अन्यत्र नहीं और खुदा की ख़बरदारी शैतान बाग़ी को न पकड़ने और न दंड देने से ही विदित होती है जिसने एक बाग़ी को भी अबतक न पकड़ पाया न दंड दिया इससे अधिक असावधानी क्या होगी ? ॥ १२० ॥

१२१–बस दुष्ट मारा उसको मूसाने बस पूरी की आयु उसकी । कहा ऐ रब मेरे निश्चय मैंने अन्याय किया जान अपनी को बस क्षमा कर मुझको सब क्षमा कर दिया उसको निश्चय वह क्षमा करनेवाला दयालु है ॥ और मालिक तेरा उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और पसन्द करता है ॥ मं० ५ । सि० २० । सू० २८ । आ० १४ । १५ । ६६ ॥

समीक्षक–अब अन्य भी देखिये मुसलमान और ईसाइयों के पैग़म्बर और खुदा कि मूसा पैग़म्बर मनुष्य की हत्या किया करे और खुदा क्षमा किया करे ये दोनों अन्यायकारी हैं वा नहीं ? क्या अपनी इच्छा ही से जैसा चाहता है वैसी उत्पत्ति करता है ? क्या उसने अपनी इच्छा ही से एक को राजा दूसरे को कंगाल और एक को विद्वान् और दूसरे को मूर्ख आदि किया है ? यदि ऐसा है तो न कुरान सत्य और न न्यायकारी होने से यह खुदा ही हो सकता है ॥ १२१ ॥

१२२–और आज्ञा दी हमने मनुष्य को साथ मा बापके भलाई करना और जो झगड़ा करें तुझ से दोनों यह कि शरीक लावे तू साथ मेरे उस वस्तु

को कि नहीं वास्ते तेरे साथ उसके ज्ञान बस मत कहा मान उन दोनों का तर्फ मेरी है ॥ और अवश्य भेजा हमने नूह को तर्फ क़ौम उसके कि बस रहा बीच उनके हज़ार वर्ष परन्तु पचास वर्ष कम ॥ मं० ५ । सि० २०-२१ । सू० २६ । आ० ७ । १३ ॥

समीक्षक—माता पिता की सेवा करना अच्छा ही है जो खुदा के साथ शरीक करने के लिये कहे तो उनका कहा न मानना यह भी ठीक है परन्तु यदि माता पिता मिथ्याभाषणादि करने की आज्ञा देवे तो क्या मान लेना चाहिये ? इसलिये यह बात आधी अच्छी और आधी बुरी है । क्या नूह आदि पैग़म्बरों ही को खुदा संसार में भेजता है तो अन्य जीवों को कौन भेजता है ? यदि सब को वही भेजता है तो सभी पैग़म्बर क्यों नहीं ? और प्रथम मनुष्यों की हज़ार वर्ष की आयु होती थी तो अब क्यों नहीं होती ? इसलिये यह बात ठीक नहीं ॥ १२२ ॥

१२३—अल्लाह पहिली बार करता है उत्पत्ति फिर दूसरी बार करेगा उसको फिर उसी की ओर फेर जाओगे ॥ और जिस दिन वर्षा अर्थात् खड़ी होगी क़यामत निराश होंगे पापी ॥ बस जो लोग कि ईमान लाये और काम किये अच्छे बस वे बीच बाग़ के सिंगार किये जावेंगे ॥ और जो भेज दें हम एक बाव बस देखें उस खेती को पीली हुई ॥ इसी प्रकार मोहर रखता है अल्लाह ऊपर दिलों उन लोगों के कि नहीं जानते ॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३० । आ० १० । ११ । १४ । ५० । ५८ ॥

समीक्षक—यदि अल्लाह दो वार उत्पत्ति करता है तीसरी बार नहीं तो उत्पत्ति की आदि और दूसरी बार के अन्त में निकम्मा बैठा रहता होगा ? और एक तथा दो वार उत्पत्ति के पश्चात् उसका सामर्थ्य निकम्मा और व्यर्थ होजायगा यदि न्याय करने के दिन पापी लोग निराश हों तो अच्छी बात है परन्तु इसका प्रयोजन यह तो कहीं नहीं है कि मुसलमानों के सिवाय सब पापी समझ कर निराश किये जायं ? क्योंकि कुरान में कई स्थानों में पापियों

से औरों का ही प्रयोजन है । यदि बगीचे में रखना और शृंगार पहिराना ही मुसलमानों का स्वर्ग है तो इस संसार के तुल्य हुआ और वहां माली और सुनार भी होंगे अथवा खुदा ही माली और सुनार आदि का काम करता होगा यदि किसी को कम गहना मिलता होगा तो चोरी भी होती होगी और बहिश्त से चोरी करनेवालों को दोजख में भी डालता होगा, यदि ऐसा होता होगा तो सदा बहिश्त में रहेंगे यह बात झूठ होजायगी, जो किसानों की खेती पर भी खुदा की दृष्टि है सो यह विद्या खेती करने के अनुभव ही से होती है और यदि मानाजाय कि खुदा ने अपनी विद्या से सब बात जानली है तो ऐसा भय देना अपना घमण्ड प्रसिद्ध करना है । यदि अल्लाह ने जीवों के दिलों पर मोहर लगा पाप कराया तो उस पापका भागी वही होवे जीव नहीं हो सकते जैसे जय पराजय सेनाधीश का होता है वैसे ये सब पाप खुदा ही को प्राप्त होवें ॥ १२३ ॥

१२४—ये आयतें हैं किताब हिक्मतवाले की ॥ उत्पन्न किया आसमानों को विना सुतून अर्थात् खंभे के देखते हो तुम उसको और डाले बीच पृथिवी के पहाड़ ऐसा न हो कि हिल जावे ॥ क्या नहीं देखा तू ने यह कि अल्लाह प्रवेश कराता है रात को बीच दिन के और प्रवेश कराता है दिन को बीच रात के ॥ क्या नहीं देखा कि किश्तियां चलती हैं बीच दर्या के साथ निआमतों अल्लाह के तो कि दिखलावे तुमको निशानियां अपनी ॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३१ । आ० १ । ९ । २८ । ३० ॥

समीक्षक—वाहजी वाह ! हिक्मतवाली किताब ! कि जिस में सर्वथा विद्या से विरुद्ध आकाश की उत्पत्ति और उसमें खंभे लगाने की शंका और पृथिवी को स्थिर रखने के लिये पहाड़ रखना ! थोड़ीसी विद्या वाला भी ऐसा लेख कभी नहीं करता और न मानता और हिक्मत देखो कि जहां दिन है वहां रात नहीं और जहां रात है वहां दिन नहीं उसको एक दूसरे में प्रवेश कराना लिखता है यह बड़े अविद्वानों की बात है इसलिये यह कुरान विद्या की पुस्तक नहीं होसकती क्या यह विद्याविरुद्ध बात नहीं है कि नौका मनुष्य और क्रिया कौश-

लादि से चलती है वा ख़ुदा की कृपा से यदि लोहे वा पत्थरों की नौका बनाकर समुद्र में चलावें तो ख़ुदा की निशानी डूब जाय वा नहीं ? इसलिये यह पुस्तक न विद्वान् और न ईश्वर का बनाया हुआ हो सकता है ॥ १२४ ॥

१२५—तदबीर करता है काम की आसमान से तर्फ़ पृथिवी की फिर चढ़जाता है तर्फ़ उसकी बीच एक दिन के कि है अवधि उसकी सहस्र वर्ष उन वर्षों से कि गिनते हो तुम ॥ यह है जानने वाला ग़ैब का और प्रत्यक्ष का ग़ालिब दयालु ॥ फिर पुष्ट किया उसको और फूंका बीच उसके रूह अपनी से कह कब्ज़ करेगा तुम को फ़रिश्ता मौत का वह जो नियत किया गया है साथ तुम्हारे ॥ और जो चाहते हम अवश्य देते हम हरएक जीव को शिक्षा उसकी परन्तु सिद्ध हुई बात मेरी ओर से कि अवश्य भरूंगा मैं दोज़ख़ को जिनों से और आदमियों से इकट्ठे ॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३२ । आ० ४ । ५ । ७ । ९ । ११ ॥

समीक्षक—अब ठीक सिद्ध होगया कि मुसलमानों का ख़ुदा मनुष्यवत् एकदेशी है क्योंकि जो व्यापक होता तो एकदेश से प्रबन्ध करना और उतरना चढ़ना नहीं हो सकता यदि ख़ुदा फ़रिश्ते को भेजता है तो भी आप एकदेशी होगया । आप आसमान पर टंगा बैठा है । और फ़रिश्तों को दौड़ाता है । यदि फ़रिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें वा किसी मुर्दे को छोड़ जायं तो ख़ुदा को क्या मालूम हो सकता है ? मालूम तो उसको हो कि जो सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापक हो सो तो है ही नहीं होता तो फ़रिश्तों के भेजने तथा कई लोगों की कई प्रकार से परीक्षा लेने का क्या काम था ? और एक हज़ार वर्षों में तथा आने जाने प्रबन्ध करने से सर्वशक्तिमान् भी नहीं । यदि मौत का फ़रिश्ता है तो उस फ़रिश्ते का मारने वाला कौनसा मृत्यु है ? यदि वह नित्य है तो अमरपन में ख़ुदा के बराबर शरीक हुआ, एक फ़रिश्ता एक समय में दोज़ख़ भरने के लिये जीवों को शिक्षा नहीं कर सकता और उनको विना पाप किये अपनी मर्ज़ी से दोज़ख़ भर के उनको दुःख देकर तमाशा देखता है तो वह ख़ुदा पापी अन्यायकारी और दयाहीन है । ऐसी बातें जिस पुस्तक में हों न

वह विद्वान् और ईश्वरकृत और जो दया न्यायहीन है वह ईश्वर भी कभी नहीं होसकता ॥ १२५ ॥

१२६—कह कि कभी न लाभ देगा भागना तुझको जो भागो तुम मृत्यु वा क़तल से ॥ ऐ बीबियो नबी की जो कोई आवे तुम में से निर्लज्जता प्रत्यक्ष के दुगुणा किया जावेगा वास्ते उसके अज़ाव और है यह ऊपर अल्लाह के सहल ॥ मं० ५ । सि० २१ । सू० ३३ । आ० १६ । ३० ॥

समीक्षक—यह मुहम्मद साहेब ने इसलिये लिखा लिखवाया होगा कि लड़ाई में कोई न भागे हमारा विजय होवे मरने से भी न डरे ऐश्वर्य्य बढ़े मज़हब बढ़ा लेवें ? और यदि बीबी निर्लज्जता से न आवे तो क्या पैग़म्बर साहेब निर्लज्ज होकर आवें ? बीबियों पर अजाब हो और पैग़म्बर साहेब पर अज़ाब न होवे यह किस घर का न्याय है ॥ १२६ ॥

१२७—और अटकी रहो बीच घरों अपने के आज्ञा पालन करो अल्लाह और रसूल की सिवाय इसके नहीं ॥ बस जब अदा करली ज़ैदने हाजित उससे व्याह दिया हमने तुझ से उसको ताकि न होवें ऊपर ईमानवालों के तंगी बीच बीबियों से लेपालकों उनके के जब अदा करलें उनसे हाजित और है आज्ञा खुदा की कीगई ॥ नहीं है ऊपर नबी के कुछ तंगी बीच उस वस्तु के ॥ नहीं है मुहम्मद बाप किसी मर्दों का ॥ और हलाल की स्त्री ईमानवाली जो देवे बिना मिहर के जान अपनी वास्ते नबी के ॥ ढील देवे तू जिसको चाहे उनमें से और जगह देवे तर्फ अपनी जिसको चाहे नहीं पाप ऊपर तेरे ॥ ऐ लोगो ! जो ईमान लाये हो मत प्रवेश करो घरों में पैग़म्बर के ॥ मं० ५ । सि० २२ । सू० ३३ । आ० ३३ । ३७ । ३८ । ४० । ४७ । ४८ । ५० ॥

समीक्षक—यह बड़े अन्याय की बात है कि स्त्री घर में क़ैद के समान रहे और पुरुष खुले रहें, क्या स्त्रियों का चित्त शुद्ध वायु, शुद्ध देश में भ्रमण करना, सृष्टि के अनेक पदार्थ देखना नहीं चाहता होगा ? इसी अपराध से मुसलमानों के लड़के विशेष कर सयलानी और विषयी होते हैं अल्लाह और रसूल की एक

अविरुद्ध आज्ञा है वा भिन्न २ विरुद्ध ? यदि एक है तो दोनों की आज्ञा पालन करो कहना व्यर्थ है और जो भिन्न २ विरुद्ध है तो एक सच्ची और दूसरी झूठी ? एक खुदा दूसरा शैतान होजायगा। और शरीक भी होगा ? वाह कुरान का खुदा और पैग़म्बर तथा कुरान को ! जिसे दूसरे का मतलब नष्ट कर अपना मतलब सिद्ध करना इष्ट हो ऐसी लीला अवश्य रचता है इससे यह भी सिद्ध हुआ कि मुहम्मद साहेब बड़े विषयी थे यदि न होते तो (लेपालक) बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी अपनी स्त्री क्यों कर लेते ? और फिर ऐसी बातें करनेवाले का खुदा भी पक्षपाती बना और अन्याय को न्याय ठहराया। मनुष्यों में जो जङ्गली भी होगा वह भी बेटे की स्त्री को छोड़ता है और यह कितनी बड़ी अन्याय की बात है कि नबी को विषयासक्ति की लीला करने में कुछ भी अटकाव नहीं होना ! यदि नबी किसी का बाप न था तो जैद (लेपालक) बेटा किसका था ? और क्यों लिखा ? यह उसी मतलब की बात है कि जिससे बेटे की स्त्री को भी घर में डालने से पैग़म्बर साहेब न बचे अन्य से क्याकर बचे होंगे ? ऐसी चतुराई से भी बुरी बात में निन्दा होना कभी नहीं छूट सक्ता क्या जो कोई पराई स्त्री भी नबी से प्रसन्न होकर निकाह करना चाहे तो भी हलाल है ? और यह महा अधर्म की बात है कि नबी तो जिस स्त्री को चाहे छोड़ देवे और मुहम्मद साहेब की स्त्री लोग यदि पैग़म्बर अपराधी भी हो तो कभी न छोड़ सकें ! ॥ जैसे पैग़म्बर के घरों में अन्य कोई व्यभिचार दृष्टि से प्रवेश न करें तो वैसे पैग़म्बर साहेब भी किसी के घर में प्रवेश न करें क्या नबी जिस किसी के घर में चाहें निश्शङ्क प्रवेश करें और माननीय भी रहें ? भला कौन ऐसा हृदय का अन्धा है कि जो इस कुरान को ईश्वरकृत और मुहम्मद साहेब को पैग़म्बर और कुरानोक्त ईश्वर को परमेश्वर मान सके। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसे युक्तिशून्य धर्मविरुद्ध बातों से युक्त इस मत को अर्बदेश निवासी आदि मनुष्यों ने मान लिया ! ॥ १२७ ॥

१२८—नहीं योग्य वास्ते तुम्हारे यह कि दुःख दो रसूल को यह कि निकाह करो बीवियों उसकी को पीछे उसके कभी निश्चय यह है समीप अल्लाह के

बड़ा पाप ॥ निश्चय जो लोग कि दुःख देते हैं अल्लाह को और रसूल उसके को लानत की है उनको अल्लाह ने ॥ और वे लोग कि दुःख देते हैं मुसलमानों को और मुसलमान औरतों को विना इसके बुरा किया है उन्होंने बस निश्चय उठाया उन्होंने बोहतान अर्थात् झूठ और प्रत्यक्ष पाप ॥ लानत मारे जहां पाये जावें पकड़े जावें क़तल किये जावें खूब मारा जाना ॥ ऐ रब हमारे दे उनको द्विगुणा अजाब से और लानत से बड़ी लानत कर ॥ मं० ५ । सि० २२ । सू० ३३ । आ० ५० । ५४ । ५५ । ५८ । ६५ ॥

समीक्षक—वाह क्या खुदा अपनी खुदाई को धर्म के साथ दिखला रहा है ? जैसे रसूल को दुःख देने का निषेध करना तो ठीक है परन्तु दूसरे को दुःख देने में रसूल को भी रोकना योग्य था सो क्यों न रोका ? क्या किसी के दुःख देने से अल्लाह भी दुखी हो जाता है यदि ऐसा है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता । क्या अल्लाह और रसूल को दुःख देने का निषेध करने से यह नहीं सिद्ध होता कि अल्लाह और रसूल जिसको चाहें दुःख देवें ? अन्य सबको दुःख देना चाहिये ? जैसा मुसलमानों और मुसलमानों की स्त्रियों को दुःख देना बुरा है तो इनसे अन्य मनुष्यों को दुःख देना भी अवश्य बुरा है ॥ जो ऐसा न मानें तो उसकी यह बात भी पक्षपात की है, वाह ग़दर मचानेवाले खुदा और नबी जैसे ये निर्दयी संसार में हैं वैसे और बहुत थोड़े होंगे जैसा यह कि अन्य लोग जहां पाये जावें मारे जावें पकड़े जावें लिखा है वैसी ही मुसलमानों पर कोई आज्ञा देवे तो मुसलमानों को यह बात बुरी लगेगी वा नहीं ? वाह क्या हिंसक पैग़म्बर आदि हैं कि जो परमेश्वर से प्रार्थना करके अपने से दूसरों को दुगुण दुःख देने के लिये प्रार्थना करना लिखा है यह भी पक्षपात मतलबसिन्धुपन और महा अधर्म की बात है इससे अबतक भी मुसलमान लोगों में से बहुत से शठ लोग ऐसा ही कर्म करने में नहीं डरते यह ठीक है कि शिक्षा के विना मनुष्य पशु के समान रहता है ॥ १२८ ॥

१२९—और अल्लाह वह पुरुष है कि भेजता है हवाओं को बस उठाती हैं बादलों को बस हांक लेते हैं तर्फ शहर मुर्दे की बस जीवित किया हमने साथ

उसके पृथिवी को पीछे मृत्यु उसकी के इसी प्रकार क़ब्रों में से निकलना है ॥ जिसने उतारा बीच घर सदा रहने के दया अपनी से नहीं लगती हमको बीच उसके महनत और नहीं लगती बीच उसके मांदगी ॥ मं० ५ । सि० २२ । सू० ३५ । आ० ६ । ३५ ॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी खुदा की है भेजता है वायु को वह उठाता फिरता है बद्दलों को और खुदा उससे मुर्दों को जिलाता फिरता है यह बात ईश्वर सम्बन्धी कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर का काम निरन्तर एकसा होता रहता है जो घर होंगे वे विना बनावट के नहीं हो सकते और जो बनावट का है वह सदा नहीं रह सकता जिसके शरीर है वह परिश्रम के विना दुखी होता और शरीरवाला रोगी हुए विना कभी नहीं बचता जो एक स्त्री से समागम करता है वह विना रोग के नहीं बचता तो जो बहुत स्त्रियों से विषयभोग करता है उसकी क्या ही दुर्दशा होती होगी इसलिये मुसलमानों का रहना बहिश्त में भी सुखदायक सदा नहीं हो सकता ॥ १२९ ॥

१३०—क़सम है कुरान दृढ़ की निश्चय तू भेजे हुओं से है ॥ उस पर मार्ग सीधे के उतारा है ग़ालिब दयावान् ने ॥ मं० ५ । सि० २३ । सू० ३६ । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—अब देखिये यह कुरान खुदा का बनाया होता तो वह इसकी सौगंद क्यों खाता ? यदि नबी खुदा का भेजा होता तो (लेपालक) बेटे की स्त्री पर मोहित क्यों होता ? यह कथनमात्र है कि कुरान के माननेवाले सीधे मार्ग पर हैं क्योंकि सीधा मार्ग वही होता है जिसमें सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, पक्षपात रहित न्याय धर्म्म का आचरण करना आदि हैं और इससे विपरीत का त्याग करना सो न कुरान में न मुसलमानों में और न इनके खुदा में ऐसा स्वभाव है यदि सब पर प्रबल पैग़म्बर मुहम्मद साहेब होते तो सबसे अधिक विद्यावान् और शुभगुणयुक्त क्यों न होते ? इसलिये जैसी कूंजड़ी अपने बेरों को खट्टा नहीं बतलाती वैसी यह बात भी है ॥ १३० ॥

१३१–और फूंका जावेगा बीच सूर के बस नागहां वह क़बरों में से मालिक अपने की दौड़ेंगे ॥ और गवाही देंगे पांव उनके साथ उस वस्तु के कमाते थे सिवाय इसके नहीं कि आज्ञा उसकी जब चाहे उत्पन्न करना किसी वस्तु का यह कि कहता वास्ते उसके कि हो जा बस हो जाता है ॥ मं० ५ । सि० २३ । सू० ३६ । आ० ४८ । ६१ । ७८ ॥

समीक्षक–अब सुनिये ऊटपटांग बातें पग कभी गवाही दे सकते हैं ? खुदा के सिवाय उस समय कौन था जिसको आज्ञा दी ? किसने सुना ? और कौन बन गया ! यदि न थी तो यह बात झूठी और जो थी तो वह बात जो सिवाय खुदा के कुछ चीज़ नहीं थी और खुदा ने सब कुछ बना दिया वह झूठी ॥ १३१ ॥

१३२–फिराया जावेगा उसके ऊपर पियाला शराब शुद्ध का ॥ सफ़ैद मज़ा देनेवाली वास्ते पीने वालों के ॥ समीप उनके बैठी होंगी नीचे आंख रखने वालियां सुन्दर आंखों वालियां ॥ मानों कि ये अण्डे हैं छिपाये हुए ॥ क्या बस हम नहीं मरेंगे ॥ और अवश्य लूत निश्चय पैग़म्बरों से था ॥ जब कि मुक्ति दी हमने उसको और लोगों उसके को सबको ॥ परन्तु एक बुढ़िया पीछे रहनेवालों में है ॥ फिर मारा हमने औरों को ॥ मं० ६ । सि० २३ । सू० ३७ । आ० ४३ । ४४ । ४६ । ४७ । ५६ । १२६ । १२७ । १२८ । १२९ ॥

समीक्षक–क्योंजी यहां तो मुसलमान लोग शराब को बुरा बतलाते हैं परन्तु इनके स्वर्ग में तो नदियां की नदियां बहती हैं ॥ इतना अच्छा है कि यहां तो किसी प्रकार मद्य पीना छुड़ाया परन्तु यहां के बदले वहां उनके स्वर्ग में बड़ी ख़राबी है ! मारे स्त्रियों के वहां किसी का चित्त स्थिर नहीं रहता होगा ! और बड़े २ रोग भी होते होंगे ! यदि शरीरवाले होते होंगे तो अवश्य मरेंगे और जो शरीरवाले न होंगे तो भोग विलास ही न कर सकेंगे । फिर उनका स्वर्ग में जाना व्यर्थ है ॥ यदि लूत को पैग़म्बर मानते हो तो जो बाइबल में लिखा है कि उससे उसकी लड़कियों ने समागम करके दो लड़के पैदा किये इस

बात को भी मानते हो वा नहीं ? जो मानते हो तो ऐसे को पैग़म्बर मानना व्यर्थ है और जो ऐसे और ऐसों के सङ्गियों को खुदा मुक्ति देता है तो वह खुदा भी वैसा ही है, क्योंकि बुढ़िया की कहानी कहने वाला और पक्षपात से दूसरों को मारने वाला खुदा कभी नहीं हो सकता ऐसा खुदा मुसलमानों ही के घर में रह सकता है अन्यत्र नहीं ॥ १३२ ॥

१३३—बहिश्तें हैं सदा रहने की खुले हुए हैं दर उनके वास्ते उनके ॥ तकिये किये हुए बीच उनके मंगावेंगे बीच इसके मेवे और पीने की वस्तु ॥ और समीप होंगी उनके नीचे रखनेवालियां दृष्टि और दूसरों से समायु ॥ बस सिजदा किया फ़रिश्तों ने सब ने ॥ परन्तु शैतान ने न माना अभिमान किया और था काफ़िरों से ॥ ऐ शैतान किस वस्तु ने रोका तुझ को यह कि सिजदा करे वास्ते उस वस्तु के कि बनाया मैंने साथ दोनों हाथ अपने के क्या अभिमान किया तूने वा था बड़े अधिकार वालों से ॥ कहा कि मैं अच्छा हूं उस वस्तु से उत्पन्न किया तूने मुझको आग से उसको मट्टी से ॥ कहा बस निकल इन आसमानों में से बस निश्चय तू चलाया गया है ॥ निश्चय ऊपर तेरे लानत है मेरी दिन ज़ज़ा तक ॥ कहा ऐ मालिक मेरे ढील दे उस दिन तक कि उठाये जावेंगे मुर्दे ॥ कहा कि बस निश्चय तू ढील दिये गयों से है ॥ उस दिन समय ज्ञात तक ॥ कहा कि बस क़सम है प्रतिष्ठा तेरी कि अवश्य गुमराह करूंगा उनको मैं इकट्ठे ॥ मं० ६ । सि० २३ । सू० ३८ । आ० ४३ । ४४ । ४५ । ६३ । ६४ । ६५ । ६६ । ६७ । ६८ । ६९ । ७० । ७१ । ७२ ॥

समीक्षक—यदि वहां जैसे कि कुरान में बाग़ बगीचे नहरें मकानादि लिखे हैं वैसे हैं तो वे न सदा से थे न सदा रह सकते हैं क्योंकि जो संयोग से पदार्थ होता है वह संयोग के पूर्व न था अवश्य भावी वियोग के अन्त में न रहेगा, जब वह बहिश्त ही न रहेगी तो उसमें रहनेवाले सदा क्योंकर रह सकते हैं ? क्योंकि लिखा है कि गादी तकिये मेवे और पीने के पदार्थ वहां मिलेंगे इससे यह सिद्ध होता है कि जिस समय मुसलमानों का मज़हब चला उस समय अर्ब देश विशेष धनाढ्य न था इसलिये मुहम्मद साहेब ने तकिये आदि की कथा

सुनाकर ग़रीबों को अपने मत में फँसा लिया और जहां स्त्रियां हैं वहां निरन्तर सुख कहां ? ये स्त्रियां वहां कहां से आई हैं ? अथवा बहिश्त की रहनेवाली हैं यदि आई हैं तो जावेंगी और जो वहीं की रहने वाली हैं तो क़यामत के पूर्व क्या करती थीं क्या निकम्मी अपनी उमर को वहा रही थीं ? अब देखिये खुदा का तेज कि जिसका हुक्म अन्य सब फ़रिश्तों ने माना और आदम साहेब को नमस्कार किया और शैतान ने न माना खुदा ने शैतान से पूछा कहा कि मैंने उसको अपने दोनों हाथों से बनाया तू अभिमान मत कर इससे सिद्ध होता है कि कुरान का खुदा दो हाथ वाला मनुष्य था इसलिये वह व्यापक वा सर्वशक्तिमान् कभी नहीं हो सकता और शैतान ने सत्य कहा कि मैं आदम से उत्तम हूं इस पर खुदा ने गुस्सा क्यों किया ? क्या आसमान ही में खुदा का घर है ? पृथिवी में नहीं ? तो काबे को खुदा का घर प्रथम क्यों लिखा ? भला परमेश्वर अपने में से वा सृष्टि में से अलग कैसे निकाल सकता है ? और वह सृष्टि सब परमेश्वर की है इससे विदित हुआ कि कुरान का खुदा बहिश्त का जिम्मेदार था खुदा ने उसको लानत धिक्कार दिया और क़ैद कर लिया और शैतान ने कहा कि हे मालिक ! मुझको क़यामत तक छोड़ दे खुदा ने खुशामद से क़यामत के दिन तक छोड़ दिया जब शैतान छूटा तो खुदा से कहता है कि अब मैं खूब बहकाऊंगा और ग़दर मचाऊंगा तब खुदा ने कहा कि जितने को तू बहकावेगा मैं उनको दोज़ख में डाल दूंगा और तुझको भी। अब सज्जन लोगो ! विचारिये कि शैतान को बहकानेवाला खुदा है वा आपसे वह बहका ? यदि खुदा ने बहकाया तो वह शैतान का शैतान ठहरा यदि शैतान स्वयं बहका तो अन्य जीव भी स्वयं बहकेंगे शैतान की जरूरत नहीं और जिससे इस शैतान बाग़ी को खुदा ने खुला छोड़ दिया इससे विदित हुआ कि वह भी शैतान का शरीक अधर्म कराने में हुआ यदि स्वयं चोरी कराके दण्ड देवे तो उसके अन्याय का कुछ भी पारावार नहीं ॥ १३३ ॥

१३४—अल्लाह क्षमा करता है पाप सारे निश्चय वह है क्षमा करने वाला दयालु ॥ और पृथिवी सारी मूठी में है उसकी दिन क़यामत के और आसमान

लपेटे हुए हैं बीच दाहने हाथ उसके के ॥ और चमक जावेगी पृथिवी साथ प्रकाश मालिक अपने के और रक्खे जावेंगे कर्मपत्र और लाया जावेगा पैग़म्बरों को और गवाहों को और फ़ैसल किया जावेगा ॥ मं० ६ । सि० २४ । सू० ३९ । आ० ५४ । ६८ । ७० ॥

समीक्षक—यदि समग्र पापों को खुदा क्षमा करता है तो जानो सब संसार को पापी बनाता है और दयाहीन है क्योंकि एक दुष्ट पर दया और क्षमा करने से वह अधिक दुष्टता करेगा और अन्य बहुत धर्मात्माओं को दुःख पहुंचावेगा यदि किञ्चित् भी अपराध क्षमा किया जावे तो अपराध ही अपराध जगत् में छाजावे । क्या परमेश्वर अग्निवत् प्रकाशवाला है ? और कर्मपत्र कहां जमा रहते हैं ? और कौन लिखता है ? यदि पैग़म्बरों और गवाहों के भरोसे खुदा न्याय करता है तो वह असर्वज्ञ और असमर्थ है, यदि वह अन्याय नहीं करता न्याय ही करता है तो कर्मों के अनुसार करता होगा वे कर्म पूर्वापर वर्त्तमान जन्मों के हो सकते हैं तो फिर क्षमा करना, दिलों पर ताला लगाना और शिक्षा न करना, शैतान से बहकवाना, दौरासुपुर्द रखना केवल अन्याय है ॥१३४॥

१३५—उतारना किताब का अल्लाह ग़ालिब जाननेवाले की ओर से है ॥ क्षमा करनेवाला पापों का और स्वीकार करनेवाला तोबाः का ॥ मं० ६ । सि० २४ । सू० ४० । आ० १ । २ ॥

समीक्षक—यह बात इसलिये है कि भोले लोग अल्लाह के नाम से इस पुस्तक को मान लेवें कि जिसमें थोड़ासा सत्य छोड़ असत्य भरा है और वह सत्य भी असत्य के साथ मिलकर बिगड़ासा है इसीलिये कुरान और कुरान का खुदा और इस को माननेवाले पाप बढ़ानेहारे और पाप करने करानेवाले हैं ॥ क्योंकि पाप का क्षमा करना अत्यन्त अधर्म है किन्तु इसी से मुसलमान लोग पाप और उपद्रव करने में कम डरते हैं ॥ १३५ ॥

१३६—बस नियत किया उसको सात आसमान बीच दो दिन के और डाल दिया हमने बीच उसके काम उसका ॥ यहांतक कि जब जावेंगे उसके पास

साक्षी देंगे ऊपर उनके कान उनके और आंखें उनकी और चमड़े उनके उनके कर्म से ॥ और कहेंगे वास्ते चमड़े अपने के क्यों साक्षी दी तूने ऊपर हमारे कहेंगे कि बुलाया है हम को अल्लाह ने जिसने बुलाया हर वस्तु को ॥ अवश्य जिलाने वाला है मुर्दों को ॥ मं० ६ । सि० २४ । सू० ४१ । आ० १२ । २० । २१ । ३९ ॥

समीक्षक—वाहजी वाह मुसलमानो ! तुम्हारा खुदा जिसको तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो तो वह सात आसमानों को दो दिन में बना सका ? वस्तुतः जो सर्वशक्तिमान् है वह क्षणमात्र में सब को बना सकता है । भला कान, आंख और चमड़े को ईश्वर ने जड़ बनाया है वे साक्षी कैसे दे सकेंगे ? यदि साक्षी दिलावें तो उसने प्रथम जड़ क्यों बनाये ? और अपना पूर्वापर नियमविरुद्ध क्यों किया ? एक इससे भी बढ़कर मिथ्या बात यह है कि जब जीवों पर साक्षी दी तब से जीव अपने २ चमड़े से पूछने लगे कि तूने हमारे पर साक्षी क्यों दी चमड़ा बोलेगा कि खुदा ने दिलाई मैं क्या करूं भला यह बात कभी हो सकती है ? जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का मुख मैंने देखा यदि पुत्र है तो बन्ध्या क्यों ? जो बन्ध्या है तो उसके पुत्र ही होना असम्भव है इसी प्रकार की यह भी मिथ्या बात है । यदि वह मुर्दों को जिलाता है तो प्रथम मारा ही क्यों ? क्या आप भी मुर्दा हो सकता है वा नहीं ? यदि नहीं हो सकता तो मुर्देपन को बुरा क्यों समझता है ? और क़यामत की रात तक मृतक जीव किस मुसलमान के घर में रहेंगे ? और खुदा ने विना अपराध क्यों दौरासुपुर्द रक्खा ! शीघ्र न्याय क्यों न किया ? ऐसी २ बातों से ईश्वरता में बट्टा लगता है ॥ १३९ ॥

१३७—वास्ते उसके कूंजियां हैं आसमानों की और पृथिवी की खोलता है भोजन जिसके वास्ते चाहता है और तंग करता है ॥ उत्पन्न करता है जो कुछ चाहता है और देता है जिसको चाहे बेटियां और देता है जिसको चाहे बेटे ॥ वा मिला देता है उनको बेटे और बेटियां और करदेता है जिसको चाहे बांझ ॥ और नहीं है शक्ति किसी आदमी को कि बात करे उससे अल्लाह परन्तु जी में

डालने कर वा पीछे परदे * के सेवा भेजे फ़रिश्ते पैग़ाम लानेवाला ॥ मं० ६। सि० २५। सू० ४२। आ० १०। ४७। ४८। ४९॥

समीक्षक—खुदा के पास कुंजियों का भण्डार भरा होगा। क्योंकि सब ठिकाने के ताले खोलने होते होंगे ! यह लड़कपन की बात है क्या जिसको चाहता है उसको विना पुण्य कर्म के ऐश्वर्य्य देता है ? और तंग करता है ? यदि ऐसा है तो वह बड़ा अन्यायकारी है। अब देखिये कुरान बनानेवाले की चतुराई कि जिससे स्त्रीजन भी मोहित होके फँसें यदि जो कुछ चाहता है उत्पन्न करता है तो दूसरे खुदा को भी उत्पन्न कर सकता है वा नहीं ? यदि नहीं कर सकता तो सर्वशक्तिमत्ता यहां पर अटक गई, भला मनुष्यों को तो जिसको चाहे बेटे बेटियां खुदा देता है परन्तु मुरगे, मच्छी, सूअर आदि जिनके बहुत बेटा बेटियां होती हैं कौन देता है ? और स्त्री पुरुष के समागम विना क्यों नहीं देता ? किसी को अपनी इच्छा से बांझ रख के दुःख क्यों देता है ? वाह क्या खुदा तेजस्वी है कि उसके सामने कोई बात ही नहीं कर सकता ? परन्तु उसने पहिले कहा है कि परदा डाल के बात कर सकता है वा फ़रिश्ते लोग खुदा से बात करते हैं अथवा पैग़म्बर, जो ऐसी बात है तो फ़रिश्ते और पैग़म्बर खूब अपना मतलब करते होंगे ! यदि कोई कहे खुदा सर्वज्ञ सर्वव्यापक है तो परदे से बात करना अथवा डाक के तुल्य खबर मंगा के जानना लिखना व्यर्थ है और जो ऐसा है तो वह खुदा ही नहीं किन्तु कोई चालाक मनुष्य होगा इसलिये यह कुरान ईश्वरकृत कभी नहीं हो सकता ॥ १३७॥

* इस आयत के भाष्य "तफ़सीरहुसैनी" में लिखा है कि मुहम्मद साहेब दो परदों में थे और खुदा की आवाज़ सुनी। एक परदा ज़री का था दूसरा श्वेत मोतियों का और दोनों परदों के बीच में सत्तर वर्ष चलने योग्य मार्ग था ? बुद्धिमान् लोग इस बात को विचारें कि यह खुदा है वा परदे की ओट बात करनेवाली स्त्री ? इन लोगों ने तो ईश्वर ही की दुर्दशा कर डाली। कहां वेद तथा उपनिषदादि सद्ग्रन्थों में प्रतिपादित शुद्ध परमात्मा और कहां कुरानोक्त परदे की ओट से बात करनेवाला खुदा। सच तो यह है कि अरब के अविद्वान् लोग थे उत्तम बात लाते किसके घर से ?॥

१३८-और जब आया ईसा साथ प्रमाण प्रत्यक्ष के ॥ मं० ६ । सि० २५ । सू० ४३ । आ० ६२ ॥

समीक्षक-यदि ईसा भी भेजा हुआ खुदा का है तो उसके उपदेश से विरुद्ध कुरान खुदा ने क्यों बनाया ? और कुरान से विरुद्ध अंजील है इसीलिये ये किताबें ईश्वरकृत नहीं हैं ॥ १३८ ॥

१३९-पकड़ो उसको बस घसीटो उसको बीचों बीच दोज़ख के ॥ इसी प्रकार रहेंगे और व्याह देंगे उनको साथ गोरियों अच्छी आंखवालियों के ॥ मं० ६ । सि० २५ । सू० ४४ । आ० ४४ । ५१ ॥

समीक्षक-वाह क्या खुदा न्यायकारी होकर प्राणियों को पकड़ाता और घसीटवाता है ? जब मुसलमानों का खुदा ही ऐसा है तो उसके उपासक मुसलमान अनाथ निर्बलों को पकड़ें घसीटें तो इसमें क्या आश्चर्य है ? और वह संसारी मनुष्यों के समान विवाह भी कराता है जानो कि मुसलमानों का पुरोहित ही है ॥ १३९ ॥

१४०-बस जब तुम मिलो उन लोगों से कि काफ़िर हुए बस मारो गर्दन उनकी यहांतक कि जब चूर करदो उनको बस दृढ़ करो क़ैद करना और बहुत बस्तियां हैं कि वे बहुत कठिन थीं शक्ति में बस्ती तेरी से जिससे निकाल दिया तुझको मारा हमने उसको बस न कोई हुआ सहाय देनेवाला उनका ॥ तारीफ़ उस बहिश्त की कि प्रतिज्ञा किये गये हैं परहेज़गार बीच उसके नहरें हैं बिन बिगड़े पानी की और नहरें हैं दूध की कि नहीं बदला मज़ा उनका और नहरें हैं शराब की मज़ा देनेवाली वास्ते पीनेवालों के और शहद साफ़ किये गये की और वास्ते उनके बीच उसके मेवे हैं प्रत्येक प्रकार से दान मालिक उनके से ॥ मं० ६ । सि० २६ । सू० ४७ । आ० ४ । १३ । १५ ॥

समीक्षक-इसी से यह कुरान खुदा और मुसलमान गदर मचाने, सब को दुःख देने और अपना मतलब साधनेवाले दयाहीन हैं जैसा यहां लिखा है

वैसा ही दूसरा कोई दूसरे मत वाला मुसलमानों पर करे तो मुसलमानों को वैसा ही दुःख जैसा कि अन्य को देते हैं हो वा नहीं ? और खुदा बड़ा पक्षपाती है कि जिन्होंने मुहम्मद साहेब को निकाल दिया उनको खुदा ने मारा, भला जिस में शुद्ध पानी, दूध, मद्य और शहद की नहरें हैं वह संसार से अधिक हो सकता है ? और दूध की नहरें कभी हो सकती हैं क्योंकि वह थोड़े समय में बिगड़ जाता है इसीलिये बुद्धिमान् लोग कुरान के मत को नहीं मानते ॥ १४० ॥

१४१—जब कि हिलाई जावेगी पृथिवी हिलाये जाने कर ॥ और उड़ाए जावेंगे पहाड़ उड़ाये जाने कर ॥ बस हो जावेंगे भुनगे टुकड़े २ ॥ बस साहब दाहनी ओर वाले क्या हैं साहब दाहनी ओर के ॥ और बाईं ओरवाले क्या हैं बाईं ओर के ॥ ऊपर पलंग सोने के तारों से बुने हुये हैं ॥ तकिये किये हुये हैं ऊपर उनके आमने सामने ॥ और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले ॥ साथ आबख़ोरों के और आफ़ताबों के ॥ और प्यालों के शराब साफ़ से ॥ नहीं माथा दुखाये जावेंगे उससे और न विरुद्ध बोलेंगे ॥ और मेवे उस क़िस्म से कि पसंद करें ॥ और गोश्त जानवर पक्षियों के उस क़िस्म से कि पसंद करें ॥ और वास्ते उनके औरतें हैं अच्छी आंखोंवाली ॥ मानिन्द मोतियों छिपाये हुओं की और बिछौने बड़े ॥ निश्चय हम ने उत्पन्न किया है औरतों को एक प्रकार का उत्पन्न करना है ॥ बस किया है हमने उनको कुमारी ॥ सुहागवालियां बराबर अवस्था वालियां ॥ बस भरनेवाले हो उससे पेटों को ॥ बस क़सम खाता हूं मैं साथ गिरने तारों के ॥ मं० ७ । सि० २७ । सू० ५६ । आ० ४ । ५ । ६ । ८ । ९ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । ३५ । ३६ । ३७ । ३८ । ५४ । ७५ ॥

समीक्षक—अब देखिये कुरान बनानेवाले की लीला को भला पृथिवी तो हिलती ही रहती है; उस समय भी हिलती रहेगी इससे यह सिद्ध होता है कि कुरान बनानेवाला पृथिवी को स्थिर जानता था ! भला पहाड़ों को क्या पक्षीवत् उड़ा देगा ? यदि भुनगे होजावेंगे तो भी सूक्ष्म शरीरधारी रहेंगे तो फिर उनका

दूसरा जन्म क्यों नहीं ? वाहजी जो खुदा शरीरधारी न होता तो उसके दाहिनी ओर और बाईं ओर कैसे खड़े हो सकते ? जब वहां पलङ्ग सोने के तारों से बुने हुए हैं तो बढ़ई सुनार भी वहां रहते होंगे और खटमल काटते होंगे जो उनको रात्रि में सोने भी नहीं देते होंगे क्या वे तकिये लगाकर निकम्मे बहिश्त में बैठे ही रहते हैं ? वा कुछ काम किया करते हैं ? यदि बैठे ही रहते होंगे तो उनको अन्न पचन न होने से वे रोगी होकर शीघ्र मर भी जाते होंगे ? और जो काम किया करते होंगे तो जैसे मिहनत मज़दूरी यहां करते हैं वैसे ही वहां परिश्रम करके निर्वाह करते होंगे फिर यहां से वहां बहिश्त में विशेष क्या है ? कुछ भी नहीं, यदि वहां लड़के सदा रहते हैं तो उनके मा बाप भी रहते होंगे और सासू श्वसुर भी रहते होंगे तब तो बड़ाभारी शहर बसता होगा फिर मलमूत्रादि के बढ़ने से रोग भी बहुतसे होते होंगे क्योंकि जब मेवे खावेंगे गिलासों में पानी पीवेंगे और प्यालों से मद्य पीवेंगे न उनका शिर दूखेगा और न कोई विरुद्ध बोलेगा यथेष्ट मेवा खावेंगे और जानवरों तथा पक्षियों के मांस भी खावेंगे तो अनेक प्रकार के दुःख, पक्षी, जानवर वहां होंगे हत्या होगी और हाड़ जहां तहां विखरे रहेंगे और कसाइयों की दुकानें भी होंगी। वाह क्या कहना इनके बहिश्त की प्रशंसा कि वह अरबदेश से भी बढ़कर दीखती है !!! और जो मद्य मांस पी खा के उन्मत्त होते हैं इसलिये अच्छी २ स्त्रियां और लौंडे भी वहां अवश्य रहने चाहियें नहीं तो ऐसे नशेबाजों के शिर में गरमी चढ़के प्रमत्त होजावें। अवश्य बहुत स्त्री पुरुषों के बैठने सोने के लिये बिछौने बड़े २ चाहियें जब खुदा कुमारियों को बहिश्त में उत्पन्न करता है तभी तो कुमारे लड़कों को भी उत्पन्न करता है भला कुमारियों का तो विवाह जो यहां से उम्मेदवार होकर गये हैं उनके साथ खुदा ने लिखा पर उन सदा रहनेवाले लड़कों का किन्हीं कुमारियों के साथ विवाह न लिखा तो क्या वे भी उन्हीं उम्मेदवारों के साथ कुमारीवत् दे दिये जायंगे ? इसकी व्यवस्था कुछ भी न लिखी यह खुदा में बड़ी भूल क्यों हुई ? यदि बराबर अवस्था वाली सुहागिन स्त्रियां पतियों को पाके बहिश्त में रहती हैं तो ठीक नहीं हुआ क्योंकि स्त्रियों से पुरुष का आयु दूना ढाईगुना चाहिये यह तो मुसलमानों के बहिश्त की कथा

है। और नरकवाले सिंहोड़ अर्थात् थोर के वृक्षों को खाके पेट भरेंगे तो कण्टक वृक्ष भी दोजख में होंगे तो कांटे भी लगते होंगे और गर्म पानी पियेंगे इत्यादि दुःख दोज़ख में पावेंगे क़सम का खाना प्रायः झूठों का काम है सच्चों का नहीं यदि ख़ुदा ही क़सम खाता है तो वह भी झूठ से अलग नहीं हो सकता॥१४१॥

१४२—निश्चय अल्लाह मित्र रखता है उन लोगों को कि लड़ते हैं बीच मार्ग उसके के॥ मं० ७। सि० २८। सू० ५९। आ० ४॥

समीक्षक—वाह ठीक है ऐसी २ बातों का उपदेश करके विचारे अरब देशवासियों को सब से लड़ाके शत्रु बनाकर परस्पर दुःख दिलाया और मज़हब का झंडा खड़ा करके लड़ाई फैलावे ऐसे को कोई बुद्धिमान् ईश्वर कभी नहीं मान सकते जो जाति में विरोध बढ़ावे वही सबको दुःखदाता होता है॥ १४२॥

१४३—ऐ नबी क्यों हराम करता है उस वस्तु को कि हलाल किया है ख़ुदा ने तेरे लिये चाहता है तू प्रसन्नता बीबियों अपनी की और अल्लाह क्षमा करनेवाला दयालु है॥ जल्दी है मालिक उसका जो वह तुम को छोड़ दे तो, यह कि उसको तुमसे अच्छी मुसलमान और ईमान वालियां बीबियां बदल दे सेवा करने वालियां तोबाः करने वालियां भक्ति करनेवालियां रोजा रखनेवालियां पुरुष देखी हुई और बिन देखी हुई॥ मं० ७। सि० २८। सू० ६६। आ० १। ५॥

समीक्षक—ध्यान देकर देखना चाहिये कि ख़ुदा क्या हुआ मुहम्मद साहेब के घर का भीतरी और बाहरी प्रबन्ध करनेवाला भृत्य ठहरा!! प्रथम आयत पर दो कहानियां हैं एक तो यह कि मुहम्मद साहेब को शहद का शर्बत प्रिय था। उनकी कई बीबियां थीं उनमें से एक के घर पीने में देर लगी तो दूसरियों को असह्य प्रतीत हुआ उनके कहने सुनने के पीछे मुहम्मद साहेब सौगंद खा गए कि हम न पीवेंगे। दूसरी यह कि उनकी कई बीबियों में से एक की बारी थी उसके यहां रात्रि को गए तो वह न थी अपने बाप के यहां गई थी। मुहम्मद साहेब ने एक लौंडी अर्थात् दासी को बुलाकर पवित्र किया। जब बीबी को इसकी ख़बर मिली तो अप्रसन्न होगई तब मुहम्मद साहेब ने सौगंद

खाई कि मैं ऐसा न करूंगा। और बीबी से भी कह दिया कि तुम किसी से यह बात मत कहना बीबी ने स्वीकार किया कि न कहूंगी। फिर उन्होंने दूसरी बीबी से जा कहा। इस पर यह आयत ख़ुदा ने उतारी जिस वस्तु को हमने तेरे पर हलाल किया उसको तू हराम क्यों करता है? बुद्धिमान् लोग विचारें कि भला कहीं ख़ुदा भी किसी के घर का निमटेरा करता फिरता है! और मुहम्मद साहेब के तो आचरण इन बातों से प्रगट ही हैं क्योंकि जो अनेक स्त्रियों को रक्खे वह ईश्वर का भक्त वा पैग़म्बर कैसे होसके? और जो एक स्त्री का पक्षपात से अपमान करे और दूसरी का मान्य करे वह पक्षपाती होकर अधर्मी क्यों नहीं और जो बहुतसी स्त्रियों से भी सन्तुष्ट न होकर बांदियों के साथ फँसे उसको लज्जा, भय और धर्म कहां से रहे? किसी ने कहा है किः—

कामातुराणां न भयं न लज्जा॥

जो कामी मनुष्य हैं उनको अधर्म से भय वा लज्जा नहीं होती और इनका ख़ुदा भी मुहम्मद साहेब की स्त्रियों और पैग़म्बर के झगड़े का फ़ैसला करने में जानो सरपञ्च बना है अब बुद्धिमान् लोग विचारलें कि यह क़ुरान विद्वान् वा ईश्वरकृत है वा किसी अविद्वान् मतलबसिन्धु का बनाया? स्पष्ट विदित हो जायगा और दूसरी आयत से प्रतीत होता है कि मुहम्मद साहेब से उसकी कोई बीबी अप्रसन्न होगई होगी उस पर ख़ुदा ने यह आयत उतार कर उसको धमकाया होगा कि यदि तू गड़बड़ करेगी और मुहम्मद साहेब तुझे छोड़ देंगे तो उनको उनका ख़ुदा तुझ से अच्छी बीबियां देगा कि जो पुरुष से न मिली हों। जिस मनुष्य को तनिकसी बुद्धि है वह विचार ले सकता है कि ये ख़ुदा ख़ुदा के काम हैं वा अपने प्रयोजन सिद्धि के, ऐसी २ बातों से ठीक सिद्ध है कि ख़ुदा कोई नहीं कहता था, केवल देशकाल देखकर अपने प्रयोजन के सिद्ध होने के लिये ख़ुदा की तर्फ़ से मुहम्मद साहेब कह देते थे। जो लोग ख़ुदा ही की तर्फ़ लगाते हैं उनको हम क्या, सब बुद्धिमान् यही कहेंगे कि ख़ुदा क्या ठहरा मानो मुहम्मद साहेब के लिये बीबियां लानेवाला नाई ठहरा॥ १४३॥

१४४—ऐ नबी झगड़ा कर काफ़िरों और गुप्त शत्रुओं से और सख़्ती कर ऊपर उनके ॥ मं० ७ । सि० २८ । सू० ६६ । आ० ९ ॥

समीक्षक—देखिये मुसलमानों के ख़ुदा की लीला अन्य मत वालों से लड़ने के लिये पैग़म्बर और मुसलमानों को उचकाता है इसलिये मुसलमान लोग उपद्रव करने में प्रवृत्त रहते हैं परमात्मा मुसलमानों पर कृपादृष्टि करे जिससे ये लोग उपद्रव करना छोड़ के सब से मित्रता से वर्त्तें ॥ १४४ ॥

१४५—फट जावेगा आसमान बस वह उस दिन सुस्त होगा ॥ और फ़रिश्ते होंगे ऊपर किनारों उसके के और उठावेंगे तख़्त मालिक तेरे का ऊपर अपने उस दिन आठ जन ॥ उस दिन सामने लाये जाओगे तुम न छिपी रहेगी कोई बात छिपी हुई ॥ बस जो कोई दिया गया कर्मपत्र अपना बीच दाहिने हाथ अपने के बस कहेगा लो पढ़ो कर्मपत्र मेरा ॥ और जो कोई दिया गया कर्मपत्र बीच बायें हाथ अपने के बस कहेगा हाय न दिया गया होता मैं कर्मपत्र अपना ॥ मं० ७ । सि० २९ । सू० ६९ । आ० १६ । १७ । १८ । १९ । २५ ॥

समीक्षक—वाह क्या फ़िलासफ़ी और न्याय की बात है भला आकाश भी कभी फट सकता है ? क्या वह वस्त्र के समान है जो फट जावे ? यदि ऊपर के लोक को आसमान कहते हैं तो यह बात विद्या से विरुद्ध है ॥ अब कुरान का ख़ुदा शरीरधारी होने में कुछ संदिग्ध न रहा क्योंकि तख़्त पर बैठना आठ कहारों से उठवाना विना मूर्त्तिमान् के कुछ भी नहीं हो सकता ? और सामने वा पीछे भी आना जाना मूर्त्तिमान् ही का हो सकता है जब वह मूर्त्तिमान् है तो एकदेशी होने से सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् नहीं हो सकता और सब जीवों के सब कर्मों को कभी नहीं जान सकता, यह बड़े आश्चर्य की बात है कि पुण्यात्माओं के दाहने हाथ में पत्र देना, बचवाना, बहिश्त में भेजना और पापात्माओं के बायें हाथ में कर्मपत्र का देना, नरक में भेजना, कर्मपत्र बांच के न्याय करना भला यह व्यवहार सर्वज्ञ का हो सकता है कदापि नहीं यह सब लीला लड़कपन की है ॥ १४५ ॥

१४६–चढ़ते हैं फ़रिश्ते और रूह तर्फ उसकी वह अज़ाब होगा बीच उस दिनके कि है परिमाण उसका पचास हज़ार वर्ष ॥ जब कि निकलेंगे क़बरों में से दौड़ते हुए मानो कि वह बुतों के स्थानों की ओर दौड़ते हैं ॥ मं० ७। सि० २९ । सू० ७० । आ० ४ । ४२ ॥

समीक्षक–यदि पचास हज़ार वर्ष दिन का परिमाण है तो पचास हज़ार वर्ष की रात्रि क्यों नहीं ? यदि इतनी बड़ी रात्रि नहीं है तो इतना बड़ा दिन कभी नहीं हो सकता क्या पचास हज़ार वर्षों तक खुदा फ़रिश्ते और कर्मपत्रवाले खड़े वा बैठे अथवा जागते ही रहेंगे यदि ऐसा है तो सब रोगी होकर पुनः मर ही जायेंगे ॥ क्या क़बरों से निकल कर खुदा की कचहरी की ओर दौड़ेंगे ? उनके पास सम्मन क़बरों में क्योंकर पहुंचेंगे ? और उन बिचारों को जो कि पुण्यात्मा वा पापात्मा हैं इतने समय तक सभी को क़बरों में दौरेसुपुर्द क़ैद क्यों रक्खा ? और आजकल खुदा की कचहरी बन्द होगी और खुदा तथा फ़रिश्ते निकम्मे बैठे होंगे ? अथवा क्या काम करते होंगे ? अपने २ स्थानों में बैठे इधर उधर घूमते, सोते, नाच तमाशा देखते वा ऐश आराम करते होंगे ऐसा अंधेर किसी के राज्य में न होगा ऐसी २ बातों को सिवाय जंगलियों के दूसरा कौन मानेगा ॥ १४६ ॥

१४७–निश्चय उत्पन्न किया तुमको कई प्रकार से ॥ क्या नहीं देखा तुमने कैसे उत्पन्न किया अल्लाह ने सात आसमानों को ऊपर तले ॥ और किया चांद को बीच उसके प्रकाशक और किया सूर्य्य को दीपक ॥ मं० ७ । सि० २९ । सू० ७१ । आ० १४ । १५ । १६ ॥

समीक्षक–यदि जीवों को खुदा ने उत्पन्न किया है तो वे नित्य अमर कभी नहीं रह सकते ? फिर बहिश्त में सदा क्योंकर रह सकेंगे ? जो उत्पन्न होता है वह वस्तु अवश्य नष्ट हो जाता है । आसमान को ऊपर तले कैसे बना सकता है ? क्योंकि वह निराकार और विभु पदार्थ है, यदि दूसरी चीज का नाम आकाश रखते हो तो भी उसका आकाश नाम रखना व्यर्थ है यदि ऊपर तले

आसमानों को बनाया है तो उन सब के बीच में चांद सूर्य्य कभी नहीं रह सकते जो बीच में रक्खा जाय तो एक ऊपर और एक नीचे का पदार्थ प्रकाशित है दूसरे से लेकर सब में अन्धकार रहना चाहिये ऐसा नहीं दीखता इसलिये यह बात सर्वथा मिथ्या है ॥ १४७ ॥

१४८—यह कि मसजिदें वास्ते अल्लाह के हैं बस मत पुकारो साथ अल्लाह के किसी को ॥ मं० ७ । सि० २९ । सू० ७२ । आ० १८ ॥

समीक्षक—यदि यह बात सत्य है तो मुसलमान लोग "लाइलाह इल्लिल्लाः महम्मदर्रसूलल्लाः" इस कलमे में खुदा के साथी मुहम्मद साहेब को क्यों पुकारते हैं ? यह बात कुरान से विरुद्ध है और जो विरुद्ध नहीं करते तो इस कुरान की बात को झूठ करते हैं । जब मसजिदें खुदा के घर हैं तो मुसलमान महाबुतपरस्त हुए क्योंकि जैसे पुरानी, जैनी छोटीसी मूर्त्ति को ईश्वर का घर मानने से बुतपरस्त ठहरते हैं तो ये लोग क्यों नहीं ? ॥ १४८ ॥

१४९—इकट्ठा किया जावेगा सूर्य और चांद ॥ मं० ७ । सि० २९ । सू० ७५ । आ० ९ ॥

समीक्षक—भला सूर्य्य चांद कभी इकट्ठे हो सकते हैं ? देखिये यह कितनी बेसमझ की बात है और सूर्य चन्द्र ही के इकट्ठे करने में क्या प्रयोजन था अन्य सब लोकों को इकट्ठे न करने में क्या युक्ति है ऐसी २ असम्भव बातें परमेश्वरकृत कभी हो सकती हैं ? विना अविद्वानों के अन्य किसी विद्वान् की भी नहीं होती ॥ १४९ ॥

१५०—और फिरेंगे ऊपर उनके लड़के सदा रहनेवाले जब देखेगा तू उनको अनुमान करेगा तू उनको मोती बिखरे हुए ॥ और पहनाये जावेंगे कंगन चांदी के और पिलावेगा उनको रब उनको शराब पवित्र ॥ मं० ७ । सि० २९ । सू० ७६ । आ० १९ । २१ ॥

समीक्षक—क्योंजी मोती के वर्ण से लड़के किसलिये वहां रक्खे जाते हैं ?

क्या जवान लोग सेवा वा स्त्रीजन उनको तृप्त नहीं कर सकतीं ? क्या आश्चर्य है कि जो यह महा बुरा कर्म लड़कों के साथ दुष्टजन करते हैं उसका मूल यही कुरान का वचन हो ! और बहिश्त में स्वामी सेवकभाव होने से स्वामी को आनन्द और सेवक को परिश्रम होने से. दुःख तथा पक्षपात क्यों है ? और जब खुदा ही मद्य पिलावेगा तो वह भी उनका सेवकवत् ठहरेगा फिर खुदा की बड़ाई क्योंकर रह सकेगी ? और वहां बहिश्त में स्त्री पुरुष का समागम और गर्भस्थित और लड़केबाले भी होते हैं वा नहीं ? यदि नहीं होते तो उनका विषयसेवन करना व्यर्थ हुआ और जो होते हैं तो वे जीव कहां से आये ? और विना खुदा की सेवा के बहिश्त में क्यों जन्मे ? यदि जन्मे तो उनको विना ईमान लाने और खुदा की भक्ति करने से बहिश्त मुफ्त मिल गया किन्हीं विचारों को ईमान लाने और किन्हीं को विना धर्म के सुख मिलजाय इससे दूसरा बड़ा अन्याय कौनसा होगा ? ॥ १५० ॥

१५१—बदला दिये जावेंगे कर्मानुसार ॥ और प्याले हैं भरे हुए ॥ जिस दिन खड़े होंगे रूह और फ़रिश्ते सफ बांधकर ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ७८ । आ० २६ । ३४ । ३८ ॥

समीक्षक—यदि कर्मानुसार फल दिया जाता तो सदा बहिश्त में रहनेवाले हूरें फ़रिश्ते और मोती के सदृश लड़कों को कौन कर्म के अनुसार सदा के लिये बहिश्त मिला ? जब प्याले भर २ शराब पियेंगे तो मस्त होकर क्यों न लड़ेंगे ? रूह नाम यहां एक फ़रिश्ते का है जो सब फ़रिश्तों से बड़ा है क्या खुदा रूह तथा अन्य फ़रिश्तों को पङ्क्तिबद्ध खड़े करके पलटन बांधेगा ? क्या पलटन से सब जीवों को सज़ा दिलावेगा ? और खुदा उस समय खड़ा होगा वा बैठा ? यदि क़यामत तक खुदा अपनी सब पलटन एकत्र करके शैतान को पकड़ ले तो उसका राज्य निष्कंटक होजाय इसका नाम खुदाई है ॥ १५१ ॥

१५२—जब कि सूर्य लपेटा जावे ॥ और जब कि तारे गदले होजावें ॥ और जब कि पहाड़ चलाये जावें ॥ और जब आसमान की खाल उतारी जावे ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८१ । आ० १ । २ । ३ । ११ ॥

समीक्षक—यह बड़ी बेसमझ की बात है कि गोल सूर्यलोक लपेटा जावेगा ? और तारे गदले क्योंकर हो सकेंगे ? और पहाड़ जड़ होने से कैसे चलेंगे ? और आकाश को क्या पशु समझा कि उसकी खाल निकाली जावेगी ? यह बड़ी ही बेसमझ और जंगलीपन की बात है ॥ १५२ ॥

१५३—और जब कि आसमान फट जावे ॥ और जब तारे झड़ जावें ॥ और जब दर्या चीरे जावें ॥ और जब क़बरें जिला कर उठाई जावें ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८२ । आ० १ । २ । ३ । ४ ॥

समीक्षक—वाहजी कुरान के बनानेवाले फ़िलासफ़र आकाश को क्योंकर फाड़ सकेगा ? और तारों को कैसे झाड़ सकेगा ? और दर्या क्या लकड़ी है जो चीर डालेगा ? और क़बरें क्या मुर्दे हैं जो जिला सकेगा ? ये सब बातें लड़कों के सदृश हैं ॥ १५३ ॥

१५४—क़सम है आसमान बुर्जों वाले की ॥ किन्तु वह कुरान है बड़ा बीच लौह महफ़ूज (रक्षा) के ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८५ । आ० १ । २१ ॥

समीक्षक—इस कुरान के बनानेवाले ने भूगोल खगोल कुछ भी नहीं पढ़ा था नहीं तो आकाश को क़िले के समान बुर्जों वाला क्यों कहता ? यदि मेषादि राशियों को बुर्ज कहता है तो अन्य बुर्ज क्यों नहीं ? इसलिये ये बुर्ज नहीं हैं किन्तु सब तारे लोक हैं ॥ क्या वह कुरान खुदा के पास है ? यदि यह कुरान उसका किया है तो वह भी विद्या और युक्ति से विरुद्ध अविद्या से अधिक भरा होगा ॥ १५४ ॥

१५५—निश्चय वे मकर करते हैं एक मकर ॥ और मैं भी मकर करता हूं एक मकर ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८६ । आ० १५ । १६ ॥

समीक्षक—मकर कहते हैं ठगपन को क्या खुदा भी ठग है ? और क्या चोरी का जवाब चोरी और झूठ का जवाब झूठ है ? क्या कोई चोर भले आदमी के घर में चोरी करे तो क्या भले आदमी को चाहिये कि उसके घर में जाके चोरी करे ? वाह ! वाहजी !! कुरान के बनानेवाले ॥ १५५ ॥

१५६—और जब आवेगा मालिक तेरा और फ़रिश्ते पंक्ति बांधके ॥ और लाया जावेगा उस दिन दोजख को ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ८९ । आ० २१ । २२ ॥

समीक्षक—कहो जी जैसे कोटपालजी सेनाध्यक्ष अपनी सेना को लेकर पंक्ति बांध फिरा करें वैसा ही इनका खुदा है ? क्या दोजख को घड़ासा समझा है कि जिसको उठा के जहां चाहे वहां ले जावे यदि इतना छोटा है तो असंख्य क़ैदी उसमें कैसे समा सकेंगे ? ॥ १५६ ॥

१५७—बस कहा था वास्ते उनके पैग़म्बर खुदा के ने रक्षा करो ऊंटनी खुदा की को और पानी पिलाना उसके को ॥ बस झुठलाया उसको बस पांव काटे उसके बस मरी डाली ऊपर उनके रब उनके ने ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ९१ । आ० १३ । १४ ॥

समीक्षक—क्या खुदा भी ऊंटनी पर चढ़ के सैल किया करता है ? नहीं तो किसलिये रक्खी और विना क़यामत के अपना नियम तोड़ उनपर मरी रोग क्यों डाला ? यदि डाला तो उनको दण्ड किया फिर क़यामत की रात में न्याय और उस रात का होना झूठ समझा जायगा ? इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट, ऊंटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती हैं इससे सिद्ध होता है कि किसी अरबदेशी ने कुरान बनाया है ॥ १५७ ॥

१५८—यों जो न रुकेगा अवश्य घसीटेंगे उसको हम साथवालों माथे के ॥ वह माथा कि झूठा है और अपराधी ॥ हम बुलावेंगे फ़रिश्ते दोजख के को ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ९६ । आ० १५ । १६ । १८ ॥

समीक्षक—इस नीच चपरासियों के काम घसीटने से भी खुदा न बचा । भला माथा भी कभी झूठा और अपराधी हो सकता है ? सिवाय जीव के, भला यह कभी खुदा हो सकता है कि जैसे जेलख़ाने के दरोगा को बुलवा भेजे ? ॥ १५८ ॥

१५९—निश्चय उतारा हमने कुरान को बीच रात क़द्र के ॥ और क्या जाने तू क्या है रात क़द्र ॥ उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्रात्मा बीच उसके साथ आज्ञा मालिक अपने के वास्ते हर काम के ॥ मं० ७ । सि० ३० । सू० ९७ । आ० १ । २ । ४ ॥

समीक्षक—यदि एक ही रात में कुरान उतारा तो वह आयत अर्थात् उस समय में उतरी और धीरे २ उतारा यह बात सत्य क्योंकर होसकेगी ? और रात्रि अंधेरी है इसमें क्या पूछना है, हम लिख आये हैं ऊपर नीचे कुछ भी नहीं हो सकता और यहां लिखते हैं कि फ़रिश्ते और पवित्रात्मा खुदा के हुक्म से संसार का प्रबन्ध करने के लिये आते हैं इससे स्पष्ट हुआ कि खुदा मनुष्यवत् एकदेशी है । अबतक देखा था कि खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर तीन की कथा है अब एक पवित्रात्मा चौथा निकल पड़ा ! अब न जाने यह चौथा पवित्रात्मा क्या है ? यह तो ईसाइयों के मत अर्थात् पिता पुत्र और पवित्रात्मा तीन के मानने से चौथा भी बढ़ गया । यदि कहो कि हम इन तीनों को खुदा नहीं मानते, ऐसा भी हो, परन्तु जब पवित्रात्मा पृथक् है तो खुदा फ़रिश्ते और पैग़म्बर को पवित्रात्मा कहना चाहिये वा नहीं ? यदि पवित्रात्मा है तो एकही का नाम पवित्रात्मा क्यों ? और घोड़े आदि जानवर रात दिन और कुरान आदि की खुदा क़समें खाता है, क़समें खाना भले लोगों का काम नहीं ॥ १५९ ॥

अब इस कुरान के विषय को लिखके बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूं कि यह पुस्तक कैसा है ? मुझ से पूछो तो यह किताब न ईश्वर न विद्वान् की बनाई और न विद्या की हो सकती है । यह तो बहुत थोड़ासा दोष प्रकट किया इसलिये कि लोग धोखे में पड़कर अपना जन्म व्यर्थ न गमावें । जो कुछ इसमें थोड़ासा सत्य है वह वेदादि विद्या पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझको ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपातरहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है इसके विना जो कुछ इसमें है वह सब अविद्या भ्रमजाल और मनुष्य के आत्मा को पशुवत् बनाकर शान्तिभंग कराके उपद्रव मचा मनुष्यों में विद्रोह फैला परस्पर दुःखोन्नति करनेवाला विषय है । और पुनरुक्त

दोष का तो कुरान जानो भंडार ही है, परमात्मा सब मनुष्यों पर कृपा करे कि सब से सब प्रीति, परस्पर मेल और एक दूसरे के सुख की उन्नति करने में प्रवृत्त हों। जैसे मैं अपना वा दूसरे मतमतान्तरों का दोष पक्षपातरहित होकर प्रकाशित करता हूं इसी प्रकार यदि सब विद्वान् लोग करें तो क्या कठिनता है कि परस्पर का विरोध छूट मेल होकर आनन्द में एकमत होके सत्य की प्राप्ति सिद्ध हो। यह थोड़ासा कुरान के विषय में लिखा, इसको बुद्धिमान् धार्मिक लोग ग्रन्थकार के अभिप्राय को समझ लाभ लेवें। यदि कहीं भ्रम से अन्यथा लिखा गया हो तो उसको शुद्ध कर लेवें ॥

अब एक बात यह शेष है कि बहुतसे मुसलमान ऐसा कहा करते और लिखा वा छपवाया करते हैं कि हमारे मज़हब की बात अथर्ववेद में लिखी है इसका यह उत्तर है कि अथर्ववेद में इस बात का नाम निशान भी नहीं है। (प्रश्न) क्या तुमने सब अथर्ववेद देखा है? यदि देखा है तो अल्लोपनिषद् देखो यह साक्षात् उसमें लिखी है, फिर क्यों कहते हो कि अथर्ववेद में मुसलमानों का नाम निशान भी नहीं है ॥

अथाऽल्लोपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥

अस्माल्लां इल्ले मित्रावरुणा दिव्यानि धत्ते ॥ इल्लल्लेवरुणो राजा पुनर्ददुः ॥ हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥ १ ॥ होतारमिन्द्रो होतारमिन्द्र महासुरिन्द्राः ॥ अल्लोज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्माणं अल्लाम् ॥ २ ॥ अल्लोरसूलमहामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ॥ ३ ॥ आदल्लाबूकमेककम् ॥ अल्लाबूक निखातकम् ॥ ४ ॥ अल्लो यज्ञेन हुतहुत्वा ॥ अल्लासूर्य्य चन्द्र सर्व नक्षत्राः ॥ ५ ॥ अल्ला ऋषीणां सर्वदिव्यां इन्द्राय पूर्वं माया परममन्तरिक्षाः ॥ ६ ॥ अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ॥ ७ ॥ इल्लाँ कबर इल्लाँ कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ ८ ॥ ओम् अल्ला-इल्लल्ला अनादिस्वरूपाय अथर्वणाश्यामा हुं ह्रीं जनानपशुनसिद्धान् जल-

चरान् अदृष्टं कुरु कुरु फट ॥ ६ ॥ असुर संहारिणी हुं ह्रीं अल्लोरसूल महमदरकबरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लाः ॥ १० ॥

इत्यल्लोपनिषत् समाप्ता ॥

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा है इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों का मत वेदमूलक है ॥ (उत्तर) यदि तुमने अथर्ववेद न देखा हो तो हमारे पास आओ आदि से पूर्त्ति तक देखो अथवा जिस किसी अथर्ववेदी के पास बीस काण्डयुक्त मन्त्रसंहिता अथर्ववेद को देख लो कहीं तुम्हारे पैग़म्बर साहब का नाम वा मत का निशान न देखोगे और जो यह अल्लोपनिषद् है वह न अथर्ववेद में न उसके गोपथब्राह्मण वा किसी शाखा में है यह तो अकबरशाह के समय में अनुमान है कि किसी ने बनाई है इसका बनानेवाला कुछ अरबी और कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है क्योंकि इसमें अरबी और संस्कृत के पद लिखे हुए दीखते हैं देखो (अस्माल्लां इल्ले मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते) इत्यादि में जो कि दश अङ्क में लिखा है, जैसे—इसमें (अस्माल्लां और इल्ले) अरबी और (मित्रा वरुणा दिव्यानि धत्ते) यह संस्कृत पद लिखे हैं वैसे ही सर्वत्र देखने में आने से किसी संस्कृत और अरबी के पढ़े हुए ने बनाई है । यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम अयुक्त वेद और व्याकरण रीति से विरुद्ध है जैसी यह उपनिषद् बनाई है, वैसी बहुतसी उपनिषदें मतमतान्तरवाले पक्षपातियों ने बनाली हैं जैसी कि स्वरोपोपनिषद्, नृसिंहतापनी, रामतापनी, गोपालतापनी बहुतसी बनाली हैं । (प्रश्न) आजतक किसी ने ऐसा नहीं कहा अब तुम कहते हो, हम तुम्हारी बात कैसे मानें ? (उत्तर) तुम्हारे मानने वा न मानने से हमारी बात झूठ नहीं हो सकती है, जिस प्रकार से मैंने इसको अयुक्त ठहराई है उसी प्रकार से जब तुम अथर्ववेद गोपथ वा इसकी शाखाओं से प्राचीन लिखित पुस्तकों में जैसा का तैसा लेख दिखलाओ और अर्थसंगति से भी शुद्ध करो तब तो सप्रमाण हो सकती है । (प्रश्न) देखो हमारा मत कैसा अच्छा है कि जिस में सब प्रकार का सुख और अन्त में मुक्ति होती है (उत्तर) ऐसे ही अपने २ मत वाले सब कहते

हैं कि हमारा ही मत अच्छा है बाक़ी सब बुरे विना हमारे मत के दूसरे मत में मुक्ति नहीं हो सकती । अब हम तुम्हारी बात को सच्ची मानें वा उनकी ? हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हैं बाक़ी वाद, विवाद, ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्याभाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं । यदि तुमको सत्यमत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिकमत को ग्रहण करो ॥

इसके आगे स्वमन्तव्याऽमन्तव्य का प्रकाश संक्षेप से लिखा जायगा ॥

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिकृते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते यवनमतविषये चतुर्दशः
समुल्लासः सम्पूर्णः ॥ १४ ॥

ओ३म्

स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाशः

सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिसको सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसीलिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिसका विरोधी कोई भी न होसके यदि अविद्यायुक्त जन अथवा किसी मत वाले के भ्रमाये हुए जन जिसको अन्यथा जाने वा माने उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिसको आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक पक्षपातरहित विद्वान् मानते हैं वही सबको मन्तव्य और जिसको नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनिमुनि पर्य्यन्तों के माने हुए ईश्वरादि पदार्थ हैं जिनको कि मैं भी मानता हूं सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूं। मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन काल में सबको एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्य्यावर्त्त में प्रचरित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता किन्तु जो २ आर्य्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चाल चलन हैं उनका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता न करना चाहता हूं क्योंकि ऐसा करना मनुष्यधर्म से बहिः है। मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धमात्मात्र्यों की चाहे वे महा अनाथ निर्बल और गुणरहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्त्ती सनाथ महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहांतक होसके वहांतक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे, इस काम में

चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपनरूप धर्म से पृथक् कभी न होवे, इसमें श्रीमान् महाराजा भर्तृहरिजी आदि ने श्लोक कहे हैं उनका लिखना उपयुक्त समझ कर लिखता हूं—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥ १ ॥ भर्तृहरिः ।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्,
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
धर्मो नित्यः सुखदुःखे त्वनित्ये,
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ २ ॥ महाभारते ।
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ ३ ॥ मनुः ।
सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ४ ॥
नहि सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात् सत्यं समाचरेत् ॥ ५ ॥ उ० नि० ॥

इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल सबको निश्चय रखना योग्य है । अब मैं जिन २ पदार्थों को जैसा २ मानता हूं उन २ का वर्णन संक्षेप से यहां करता हूं कि जिनका विशेष व्याख्यान इस ग्रन्थ में अपने २ प्रकरण में कर दिया है इनमें से:—

१—प्रथम "ईश्वर" की जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है जिसके गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं, जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है उसी को परमेश्वर मानता हूं ॥

२–चारों "वेदों" (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं, वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिन के प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं, जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतः प्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं और चारों वेदों के ब्राह्मण, छः अङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यानरूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं ॥

३–जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण सत्यभाषणादियुक्त ईश्वराज्ञा वेदों से अविरुद्ध है उसको "धर्म" और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभंग वेदविरुद्ध है उसको "अधर्म" मानता हूं ॥

४–जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को "जीव" मानता हूं ॥

५–जीव और ईश्वरस्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्य व्यापक और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था, न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य व्यापक, उपास्य उपासक और पिता पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूं ॥

६–"अनादि पदार्थ" तीन हैं एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति अर्थात् जगत् का कारण इन्हीं को नित्य भी कहते हैं, जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं ॥

७–"प्रवाह से अनादि" जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूं ।

८–"सृष्टि" उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ॥

९—"सृष्टि का प्रयोजन" यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना। जैसे किसी ने किसी से पूछा कि नेत्र किसलिये हैं? उसने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग करना आदि भी॥

१०—"सृष्टि सकर्तृक" है इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से सृष्टि का "कर्त्ता" अवश्य है॥

११—"बन्ध" सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है। जो २ पापकर्म ईश्वर भिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करनेवाले हैं इसीलिये यह "बन्ध" है कि जिसकी इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है॥

१२—"मुक्ति" अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना॥

१३—"मुक्ति के साधन" ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं॥

१४—"अर्थ" वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको अनर्थ कहते हैं॥

१५—"काम" वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय॥

१६—"वर्णाश्रम" गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूं॥

१७—"राजा" उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म की सेवा, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे॥

१८—"प्रजा" उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण करके पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते॥

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे अन्यायकारियों को हटावे और न्यायकारियों को बढ़ावे अपने आत्मा के समान सब का सुख चाहे सो "न्यायकारी" है उसको मैं भी ठीक मानता हूं ॥

२०—"देव" विद्वानों को और अविद्वानों को "असुर" पापियों को "राक्षस" अनाचारियों को "पिशाच" मानता हूं ॥

२१—उन्हीं विद्वानों, माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, न्यायकारी राजा और धर्मात्मा जन, पतिव्रता स्त्री और स्त्रीव्रत पति का सत्कार करना "देवपूजा" कहाती है, इससे विपरीत अदेवपूजा, इनकी मूर्त्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़ मूर्त्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूं ॥

२२—"शिक्षा" जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं ॥

२३—"पुराण" जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी नाम से मानता हूं अन्य भागवतादि को नहीं ॥

२४—"तीर्थ" जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो सत्यभाषण, विद्या, सत्संग, यमादि, योगाभ्यास, पुरुषार्थ, विद्यादानादि शुभ कर्म हैं उन्हीं को तीर्थ समझता हूं इतर जलस्थलादि को नहीं ॥

२५—"पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा" इसलिये है कि जिससे संचित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसीसे प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ॥

२६—"मनुष्य" को सबसे यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूं ॥

२७—"संस्कार" उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवें वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है इसको कर्त्तव्य समझता हूं और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ॥

२८—"यज्ञ" उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य शिल्प अर्थात् रसायन जो कि पदार्थविद्या उससे उपयोग और विद्यादि शुभगुणों

का दान अग्निहोत्रादि जिनसे वायु, वृष्टि, जल, ओषधी की पवित्रता करके सब जीवों को सुख पहुंचाना है, उसको उत्तम समझता हूं ॥

२९-जैसे "आर्य्य" श्रेष्ठ और "दस्यु" दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूं ॥

३०-"आर्य्यावर्त्त" देश इस भूमि का नाम इसलिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इसकी अवधि उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्याचल, पश्चिम में अटक और पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी है, इन चारों के बीच में जितना देश है उसको "आर्य्यावर्त्त" कहते और जो इनमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं ॥

३१-जो साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह "आचार्य" कहाता है ॥

३२-"शिष्य" उसको कहते हैं कि जो सत्यशिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य्य का प्रिय करनेवाला है ॥

३३-"गुरु" माता पिता और जो सत्य को ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी "गुरु" कहाता है ॥

३४-"पुरोहित" जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे ॥

३५-"उपाध्याय" जो वेदों का एकदेश वा अंगों को पढ़ाता हो ॥

३६-"शिष्टाचार" जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह शिष्ट कहाता है ॥

३७-प्रत्यक्षादि आठ "प्रमाणों" को भी मानता हूं ॥

३८-"आप्त" जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को "आप्त" कहता हूं ॥

३९-"परीक्षा" पांच प्रकार की है इस में से प्रथम जो ईश्वर उसके गुण कर्म स्वभाव और वेदविद्या, दूसरी प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टिक्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये ॥

४०—"परोपकार" जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़ें उसके करने को परोपकार कहता हूं ॥

४१—"स्वतन्त्र" "परतन्त्र" जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र, वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ॥

४२—"स्वर्ग" नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है ॥

४३—"नरक" जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति होना है ॥

४४—"जन्म" जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूं ॥

४५—शरीर के संयोग का नाम "जन्म" और वियोगमात्र को "मृत्यु" कहते हैं ॥

४६—"विवाह" जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा करके पाणिग्रहण करना वह "विवाह" कहाता है ॥

४७—"नियोग" विवाह के पश्चात् पति के मरजाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा आपत्काल में पुरुष स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना ॥

४८—"स्तुति" गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इसका फल प्रीति आदि होते हैं ॥

४९—"प्रार्थना" अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं उनके लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है ॥

५०—"उपासना" जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है ॥

५१—"सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना" जो २ गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो २ नहीं हैं उनसे पृथक् मानकर प्रशंसा करना सगुणनिर्गुण स्तुति,

शुभ गुणों के ग्रहण की इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना सगुणनिर्गुण प्रार्थना और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मानकर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना सगुणनिर्गुणोपासना होती है ॥

ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं इनकी विशेष व्याख्या इसी "सत्यार्थप्रकाश" के प्रकरण २ में है तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो २ बात सब के सामने माननीय है उनको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूं और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फँसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्यमत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से "यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावें" जिससे सब लोग सहज से धर्म्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि करके सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है ॥

अलमतिविस्तरेण बुद्धिमद्वर्य्येषु ॥

ओ३म् शन्नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः । शन्नो॑ भवत्वर्य्य॒मा ॥ शन्न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॑ । शन्नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः ॥ नमो॒ ब्रह्म॑णे । नम॑स्ते वायो । त्वमे॒व प्र॒त्यक्षं॒ ब्रह्मा॑सि । त्वामे॒व प्र॒त्यक्षं॒ ब्रह्मा॑वादिषम् । ऋ॒तम॑वादिषम् । स॒त्यम॑वादिषम् । तन्मामा॑वीत् । तद्व॒क्तार॑मावीत् । आवी॒न्माम् । आवी॑द्व॒क्तार॑म् । ओ३म् शान्तिः॒ शान्तिः॒ शान्तिः॑ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां परमविदुषां श्रीविरजानन्दसरस्वती-स्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना विरचितः स्वमन्त-व्यामन्तव्यसिद्धान्तसमन्वितः सुप्रमाणयुक्तः सुभाषाविभूषितः सत्यार्थप्रकाशोऽयं ग्रन्थः सम्पूर्तिमगमत् ॥

शताब्दी-संस्करण

काशीशास्त्रार्थः

पृष्ठ ७९७—८१६.

काशीशास्त्रार्थः

—:o:—

आवृत्ति		सन् ई०		संख्या
प्रथम	...	१८६६	...	१०००
द्वितीय	...	१८८२	...	१०००
तृतीय	...	१८८६	...	१०००
चतुर्थ	...	१८६५	...	१०००
पंचम	...	१६०१	...	१०००
षष्ठ	...	१६०३	...	१०००
सप्तम	...	१६०८	...	१०००
अष्टम	...	१६१२	...	२०००
नवम	...	१६१६	...	२०००
शताब्दीसंस्करण		१६२४	...	१०,०००
				२१,०००

भूमिका

मैं पाठकों को इस काशी के शास्त्रार्थ का (जो कि संवत् १९२६ मि० कार्त्तिक सुदि १२ मंगलवार के दिन "स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी" का काशीस्थ 'स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती' तथा 'बालशास्त्री' आदि पण्डितों के साथ हुआ था) तात्पर्य सहज में प्रकाशित होने के लिये विदित करता हूं, इस संवाद में स्वामीजी का पक्ष पाषाणमूर्त्तिपूजनादिखण्डन विषय और काशीवासी पण्डितजनों का मण्डन विषय था उनको वेदप्रमाण से मण्डन उचित था सो कुछ भी न कर सके क्योंकि जो कोई भी पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादि में वैदिक प्रमाण होता तो क्यों न कहते और स्वपक्ष को वैदिक प्रमाणों से सिद्ध किये विना वेदों को छोड़ कर अन्य मनुस्मृति आदि ग्रन्थ वेदों के अनुकूल हैं वा नहीं इस प्रकरणान्तर में क्यों जा गिरते क्योंकि जो पूर्व प्रतिज्ञा को छोड़ के प्रकरणान्तर में जाना है वही पराजय का स्थान है ऐसे हुए पश्चात् भी जिस २ ग्रन्थान्तर में से जो २ पुराण आदि शब्दों से ब्रह्मवैवर्त्तादि ग्रन्थों को सिद्ध करने लगे थे सो भी सिद्ध न कर सके पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्त्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा था वह भी न हो सका पुनः पुराण शब्द विशेष्य वा विशेषण वाची है इस में स्वामीजी का पक्ष विशेषण वाची और काशीस्थ पण्डितों का पक्ष विशेष्यवाची सिद्ध करना था इसमें बहुत इधर उधर के वचन बोले परन्तु सर्वत्र स्वामीजी ने विशेषणवाची, पुराण शब्द को सिद्ध कर दिया और काशीस्थ पण्डित लोग विशेष्यवाची सिद्ध नहीं कर सके । सो आप लोग देखिये कि शास्त्रार्थ की इन बातों से क्या ठीक २ विदित होता है ? ।

और भी देखने की बात है कि जब माधवाचार्य्य दो पत्रे निकाल के सब के सामने पटक के बोले थे कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है उस पर स्वामीजी ने उसको विशेषणवाची सिद्ध कर दिया परन्तु काशीनिवासी पण्डितों

से कुछ भी न बन पड़ा एक बड़ी शोचनीय यह बात उन्होंने की जो किसी सभ्य मनुष्य के करने योग्य न थी कि ये लोग सभा में काशीराज महाराज और काशीस्थ विद्वानों के सम्मुख असभ्यता का वचन बोले । क्या स्वामीजी के कहने पर भी काशीराज आदि चुप होके बैठे रहें ? और बुरे वचन बोलने वालों को न रोकें क्या स्वामीजी का पांच मिनिट दो पत्रों के देखने में लगा के प्रत्युत्तर देना विद्वानों की बात नहीं थी । और क्या सब से बुरी बात यह नहीं थी कि सब सभा के बीच ताली शब्द लड़कों के सदृश किया और ऐसे महा असभ्यता के व्यवहार करने में कोई भी उन को रोकने वाला न हुआ ? और क्या एक दम उठ के चुप होके बगीचे से बाहर निकल जाना और क्या सभा में वा अन्यत्र झूठा हल्ला करना धार्मिक और विद्वानों के आचरण से विरुद्ध नहीं था ? यह तो हुआ सो हुआ परन्तु एक महा खोटा काम उन्होंने और किया जो सभा के व्यवहार से अत्यन्त विरुद्ध है कि एक पुस्तक स्वामीजी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने में छपाकर प्रसिद्ध किया और चाहा कि उनकी बदनामी करें और करावें परन्तु इतनी झूठी चेष्टा किये पर भी स्वामीजी उन के कर्मों पर ध्यान न देकर वा उपेक्षा करके पुनरपि उनको वेदोक्त उपदेश प्रीति से आज तक बराबर करते ही जाते हैं और उक्त २६ के संवत् से लेके अब संवत् १९३७ तक छठी बार काशीजी में आके सदा विज्ञापन लगाते जाते हैं कि पुनरपि जो कुछ आप लोगों ने वैदिक प्रमाण वा कोई युक्ति पाषाणादि मूर्तिपूजा आदि के सिद्ध करने के लिये पाई हो तो सभ्यतापूर्वक सभा करके फिर भी कुछ कहो वा सुनो इस पर भी कुछ नहीं करते यह भी कितने निश्चय करने की बात है परन्तु ठीक है कि जो कोई दृढ़ प्रमाण वा युक्ति काशीस्थ पण्डित लोग पाते अथवा कहीं वेदशास्त्र में प्रमाण होता तो क्या सन्मुख हो के अपने पक्ष को सिद्ध करने न लगते और स्वामीजी के सामने न होते ? इससे यही निश्चित सिद्धान्त जानना चाहिये कि जो इस विषय में स्वामीजी की बात है वही ठीक है और देखो स्वामीजी की यह बात संवत् १९२६ के विज्ञापन से भी कि जिसमें सभा के होने के अत्युत्तम नियम छपवा के प्रसिद्ध किये थे सत्य ठहरती है । उस पर पण्डित ताराचरण भट्टाचार्य्य ने अनर्थयुक्त विज्ञापन छपवा के प्रसिद्ध किया था उस पर

स्वामीजी के अभिप्राय से युक्त दूसरा विज्ञापन उस के उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने छपवा कर, कि जिसमें स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वतीजी और बालशास्त्रीजी से शास्त्रार्थ होने की सूचना थी, प्रसिद्ध किया था उस पर दोनों में से कोई एक भी शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त न हुआ क्या अब भी किसी को शङ्का रह सकती है कि जो २ स्वामीजी कहते हैं वह २ सत्य है वा नहीं ? किन्तु निश्चय करके जानना चाहिये कि स्वामीजी की सब बातें वेद और युक्ति के अनुकूल होने से सर्वथा सत्य ही हैं । और जहां छान्दोग्य उपनिषद् आदि को स्वामीजी ने वेद नाम से कहा है वहां २ उन पण्डितों के मत के अनुसार कहा है किन्तु ऐसा स्वामीजी का मत नहीं, स्वामीजी मन्त्रसंहिताओं ही को वेद मानते हैं क्योंकि जो मन्त्रसंहिता हैं वे ईश्वरोक्त होने से निर्भ्रान्त सत्यार्थयुक्त हैं और ब्राह्मणग्रन्थ जीवोक्त अर्थात् ऋषि मुनि आदि विद्वानों के कहे हैं वे भी प्रमाण तो हैं परन्तु वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण हो भी सकते हैं और मन्त्रसंहिता तो किसी के विरुद्धार्थ होने से अप्रमाण कभी नहीं हो सकती क्योंकि वे तो स्वतः प्रमाण हैं ॥

प्रबन्धकर्त्ता वैदिक-यन्त्रालय,

ओ३म्

अथ काशी-शास्त्रार्थः

धर्माधर्मयोर्मध्ये शास्त्रार्थविचारो विदितो भवतु । एको दिगम्बरस्सत्य-शास्त्रार्थविद्दयानन्दसरस्वती स्वामी गङ्गातटे विहरति स ऋग्वेदादिसत्यशास्त्रेभ्यो निश्चयं कृत्वैवं वदति–वेदेषु पाषाणादिमूर्तिपूजनविधानं शैवशाक्तगाणपतवैष्णवादिसंप्रदाया रुद्राक्षत्रिपुंड्रादिधारणं च नास्त्येव तस्मादेतत् सर्वं मिथ्यैवास्ति, नाचरणीयं कदाचित् । कुतः ? एतत् वेदविरुद्धाप्रसिद्धाचरणे महत्पापं भवतीतीयं वेदादिषु मर्यादा लिखितास्त्येवं हरद्वारमारभ्य गंगातटे अन्यत्रापि यत्र कुत्रचिद् दयानन्दसरस्वती स्वामी खण्डनं कुर्वन्सन् काशीमागत्य दुर्गाकुण्डसमीप आनन्दारामे यदा स्थितिं कृतवान् तदा काशीनगरे महान् कोलाहलो जातः । बहुभिः पण्डितैर्वेदादिपुस्तकानां मध्ये विचारः कृतः परन्तु क्वापि पाषाणादिमूर्तिपूजनादिविधानं न लब्धम् । प्रायेण बहूनां पाषाणपूजनादिष्वाग्रहो महानस्ति, ततः काशीराजमहाराजेन बहून् पण्डितानाहूय पृष्टं किं कर्त्तव्यमिति ? तदा सर्वैर्जनैर्निश्चयः कृतो येन केन प्रकारेण दयानन्दस्वामिना सह शास्त्रार्थं कृत्वा बहुकालात् प्रवृत्तस्याचारस्य स्थापनं यथा भवेत् तथा कर्त्तव्यमेवेति । पुनः कार्त्तिकशुक्लद्वादश्यामेकोनविंशतिशतषड्विंशतितमे संवत्सरे (१९२६) मंगलवासरे महाराजः काशीनरेशो बहुभिः पण्डितैः सह शास्त्रार्थकरणार्थमानन्दारामं यत्र दयानन्दस्वामिना निवासः कृतः तत्रागतः । तदा दयानन्दस्वामिना महाराजं प्रत्युक्तम् । वेदानां पुस्तकान्यानीतानि न वा, तदा महाराजेनोक्तम्–वेदाः पण्डितानां कण्ठस्थाः सन्ति किं प्रयोजनं पुस्तकानामिति ?, तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्-पुस्तकैर्विना पूर्वापरप्रकरणस्य यथावद्विचारस्तु न भवत्यस्तु तावत् पुस्-

कानि नानीतानि, तदा पण्डितरघुनाथप्रसादकोटपालेन नियमः कृतो दयानन्दस्वामिना सहैकैकः पण्डितो वदतु न तु युगपदिति तदादौ ताराचरणनैयायिको विचारार्थमुद्यतः तं प्रति स्वामिदयानन्देनोक्तं युष्माकं वेदानां प्रामाण्यं स्वीकृतमस्ति न वेति। तदा ताराचरणेनोक्तम्—सर्वेषां वर्णाश्रमस्थानां वेदेषु प्रामाण्यस्वीकारोस्तीति। तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदे पाषाणादिमूर्तिपूजनस्य यत्र प्रमाणं भवेत्तद्दर्शनीयम्? नास्तिचेद्वद नास्तीति। तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्— वेदेषु प्रमाणमस्ति वा नास्ति परन्तु वेदानामेव प्रामाण्यं नान्येषामिति यो ब्रूयात्तं प्रति किं वदेत्तदा स्वामिनोक्तम्—अन्यो विचारस्तु पश्चाद् भविष्यति वेदविचार एव मुख्योस्ति तस्मात्स एवादौ कर्त्तव्यः कुतो वेदोक्तकर्मैवमुख्यमस्त्यतः। मनुस्मृत्यादीन्यपि वेदमूलानि सन्ति तस्मात्तेषामपि प्रामाण्यमस्ति न तु वेदविरुद्धानां वेदाप्रसिद्धानां चेति। तदा ताराचरणभट्टाचार्य्येणोक्तम्—मनुस्मृतेः क्वास्ति वेदमूलमिति? स्वामिनोक्तम्—यद्वैकिंचन्मनुरवदत्तद् भेषजं भेषजताया इति सामवेदे *। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—रचनानुपपत्तेश्च नानुमानमित्यस्य व्याससूत्रस्य किं मूलमस्तीति। तदा स्वामिनोक्तमस्य प्रकरणान्तरस्योपरि विचारो न कर्त्तव्य इति। पुनर्विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वदेव त्वं यदि जानासीति। तदा दयानन्दस्वामिना प्रकरणान्तरे गमनम्भविष्यतीति मत्वा नेदमुक्तम्। कदाचित् कण्ठस्थं यस्य न भवेत् स पुस्तकं दृष्ट्वा वदेदिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कंठस्थं नास्ति चेच्छास्त्रार्थं कर्तुं कथमुद्यतेः काशीनगरे चेति। तदा स्वामिनोक्तम्—भवतः सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—मम सर्वं कण्ठस्थं वर्त्तत इति, तदा स्वामिनोक्तम्—धर्मस्य किं स्वरूपमिति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदप्रतिपाद्यः प्रयोजनवदर्थो धर्म इति स्वामिनोक्तम्—इदन्तु तव संस्कृतं नास्त्यस्य प्रामाण्यं कण्ठस्थां श्रुतिं स्मृतिं वा वदेति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्-चोदनालक्षणार्थो धर्म इति जैमिनिसूत्रमिति †।

---

* इदं पंडितानामेव मतमंगीकृत्योक्तमतो नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम्।

† इदन्तु सूत्रमस्ति नेयं श्रुतिर्वा स्मृतिस्सर्वं मम कण्ठस्थमस्तीति प्रतिज्ञायेदानीं कण्ठस्थं नोच्यत इति प्रतिज्ञाहानेस्तस्य कुतो न पराजय इति बोध्यम्।

तदा स्वामिनोक्तम्—चोदना का चोदना नाम प्रेरणा तत्रापि श्रुतिर्वा स्मृतिर्वक्तव्या यत्र प्रेरणा भवेत्। तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्। तदा स्वामिनोक्तमस्तु तावद्धर्मस्वरूपप्रतिपादिका श्रुतिर्वा स्मृतिस्तु नोक्ता किं च धर्मस्य कति लक्षणानि भवन्ति वदतु भवानिति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमेकमेव लक्षणं धर्मस्येति। तदा स्वामिनोक्तम्—किंचत्तदिति ? तदा विशुद्धानन्दस्वामिना किमपि नोक्तम्। तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—धर्मस्य तु दश लक्षणानि सन्ति भवता कथमुक्तमेकमेवेति। तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कानि तानि लक्षणानीति ? तदा स्वामिनोक्तम्-धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणमिति मनुस्मृतेः श्लोकोस्ति *, तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—अहं सर्वं धर्म्मशास्त्रं पठितवानिति। तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम्—त्वमधर्म्मस्य लक्षणानि वदेति। तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तं तदा बहुभिर्युगपत्पृष्टं प्रतिमाशब्दो वेदे नास्ति किमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—प्रतिमाशब्दस्त्वस्तीति। तदा तैरुक्तं क्वास्तीति ? तदा स्वामिनोक्तम्—सामवेदस्य ब्राह्मणे चेति, तदा तैरुक्तं किं च तद्वचनमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—देवतायतनानि कंपन्ते दैवतप्रतिमा हसन्तीत्यादीनि। तदा तैरुक्तम्—प्रतिमाशब्दस्तु वेदे† वर्तते भवान् कथं खण्डनं करोति तदा स्वामिनोक्तम्-प्रतिमाशब्देनैव पाषाणपूजनादेः प्रामाण्यं न भवति प्रतिमाशब्दस्यार्थः कर्त्तव्य इति॥

तदा तैरुक्तम्—यस्मिन् प्रकरणेऽयं मंत्रोऽस्ति तस्य कोऽर्थ इति। तदा स्वामिनोक्तम्—अथातोद्भुतशान्तिं व्याख्यास्याम इत्युपक्रम्य त्रातारमिन्द्रमित्याद्यस्तत्रैव सर्वे मूलमंत्रा लिखिता एतेषां मध्यात् प्रतिमंत्रेण त्रित्रिसहस्राण्याहुतयः कार्यास्ततो व्याहृतिभिः पञ्चपञ्चाहुतयश्चेति लिखित्वा सामगानं च लिखितम्। अनेनैव कर्म्मणाद्भुतशान्तिर्विहिता यस्मिन्मन्त्रे प्रतिमाशब्दोऽस्ति स मंत्रो न मर्त्यलोकविषयोऽपि तु ब्रह्मलोकविषय एव। तद्यथा—"स

* अत्रापि तस्य प्रतिज्ञाहानेर्निग्रहस्थानं जातमिति बोध्यम्।

† अत्रापि तेषामवेदे ब्राह्मणग्रन्थे वेदबुद्धित्वाद् भ्रान्तिरेवास्तीति वेद्यम्।

प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेति." प्राच्या दिशोद्भुतदर्शनशान्तिमुक्त्वा ततो दक्षिणस्याः पश्चिमाया दिशः शान्तिं कथयित्वा उत्तरस्या दिशः शान्तिरुक्ता ततो भूमेश्चेति मर्त्यलोकस्य प्रकरणं समाप्यान्तरिक्षस्य शान्तिरुक्ता ततो दिवश्च शान्तिविधानमुक्तम् । ततः परस्य स्वर्गस्य च नाम ब्रह्मलोकस्यैवेति । तदा बालशास्त्रिणोक्तम्—यस्यां यस्यां दिशि या या देवता तस्यास्तस्या देवतायाः शान्तिकरणेन दृष्टविघ्नोपशान्तिर्भवतीति, तदा स्वामिनोक्तमिदं तु सत्यं परन्तु विघ्नदर्शयिता कोऽस्तीति ?, तदा बालशास्त्रिणोक्तमिन्द्रियाणि दर्शयितॄणीति । तदा स्वामिनोक्तमिन्द्रियाणि तु द्रष्टॄणि भवन्ति न तु दर्शयितॄणि परन्तु स प्राचीं दिशमन्वावर्त्ततेऽथेत्यत्र स शब्दवाच्यः कोऽस्तीति ? तदा बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तम् । तदा शिवसहायेन प्रयागस्थेनोक्तमन्तरिक्षादिगमनं शान्तिकरणस्य फलमनेनोच्यते चेति । तदा स्वामिनोक्तम्भवता तत्प्रकरणं दृष्टं किं ? दृष्टं चेत्तर्हि कस्यापि मंत्रस्यार्थं वदेति तदा शिवसहायेन मौनं कृतम् । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—वेदाः कस्माज्जाता इति ? तदा स्वामिनोक्तम्—वेदा ईश्वराज्जाता इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कस्मादीश्वराज्जाता किं न्यायशास्त्रोक्ताद्वा योगशास्त्रोक्ताद्वा वेदान्तशास्त्रोक्ताद्वेति ? तदा स्वामिनोक्तम्—ईश्वरा बहवो भवन्ति किमिति ? तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तमीश्वरस्त्वेक एव परन्तु वेदाः कीदृग्लक्षणादीश्वराज्जाता इति । तदा स्वामिनोक्तम्—सच्चिदानन्दलक्षणादीश्वराद्वेदा जाता इति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—कोऽस्ति सम्बन्धः किं प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावो वा जन्यजनकभावो वा समवायसम्बन्धो वा स्वस्वामिभाव इति तादात्म्यभावो वेति ? तदा स्वामिनोक्तम्—कार्यकारणभावः संबंधश्चेति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं मनो ब्रह्मेत्युपासीत । आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेति यथा प्रतीकोपासनमुक्तं तथा शालिग्रामपूजनमपि ग्राह्यमिति । तदा स्वामिनोक्तम्-यथा मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादिवचनं वेदेषु * दृश्यते तथा पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीतेति वचनं क्वापि वेदेषु न दृश्यते पुनः कथं ग्राह्यम्भवेदिति । तदा माधवाचार्येणोक्तम्-उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि

* इदमपि पण्डितमतानुसारेणोक्तम्, नेदं स्वामिनो मतमिति वेद्यम् ।

त्वमिष्टापूर्त्ते सᳬंसृजेथामयं चेति । मन्त्रस्थेन पूर्त्तशब्देन कस्य ग्रहणमिति ? तदा स्वामिनोक्तं वापीकूपतडागारामाणामेव नान्यस्येति । तदा माधवाचार्य्येणोक्तम्—पाषाणादिमूर्त्तिपूजनमत्र कथं न गृह्यते चेति ? तदा स्वामिनोक्तं पूर्त्तशब्दस्तु पूर्त्तिवाची वर्त्तते तस्मान्न कदाचित्पाषाणादिमूर्त्तिपूजनग्रहणं सम्भवति । यदि शङ्कास्ति तर्हि निरुक्तमस्य मन्त्रस्य पश्य ब्राह्मणं चेति । ततो माधवाचार्य्येणोक्तं पुराणशब्दो वेदेष्वस्ति न वेति । तदा स्वामिनोक्तं पुराणशब्दस्तु बहुषु स्थलेषु वेदेषु दृश्यते परन्तु पुराणशब्देन कदाचिद् ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थानां ग्रहणं न भवति कुतः पुराणशब्दस्तु भूतकालवाच्यस्ति सर्वत्र द्रव्यविशेषणं चेति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—"एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्व्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीत्यत्र बृहदारण्यकोपनिषदि पठितस्य सर्वस्य प्रामाण्यं वर्त्तते न वेति ? तदा स्वामिनोक्तम्—अस्त्येव प्रामाण्यमिति, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं श्लोकस्यापि प्रामाण्यं चेत्तदा सर्वेषां प्रामाण्यमागतमिति । तदा स्वामिनोक्तं सत्यानामेव श्लोकानां प्रामाण्यं नान्येषामिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तं अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—पुस्तकमानय पश्चाद्विचारः कर्त्तव्य इति, तदा माधवाचार्य्येण वेदस्य द्वे पत्रे * निस्सारिते अत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्त्वेति । तदा स्वामिनोक्तम्—कीदृशमस्ति वचनं पठ्यतामिति, तदा माधवाचार्य्येण पाठः कृतस्तत्रेदं वचनमस्ति "ब्राह्मणानीतिहासः पुराणानीति" तदा स्वामिनोक्तम्—पुराणानि ब्राह्मणानि नाम सनातनानीति विशेषणमिति । तदा बालशास्त्र्यादिभिरुक्तम्ब्राह्मणानि नवीनानि भवन्ति किमिति ? तदा स्वामिनोक्तम्—नवीनानि ब्राह्मणानीति कस्यचिच्छङ्कापि माभूदिति विशेषणार्थः, तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्—इतिहासशब्दव्यवधानेन कथं विशेषणं भवेदिति । तदा स्वामिनोक्तम्—अयं नियमोस्ति किं व्यवधानाद्विशेषणयोगो न भवेत्सन्निधानादेव भवेदिति । अजो नित्यश्शाश्वतोऽयम्पुराणो नेति दूरस्थस्य देहिनो विशेषणानि गीतायां कथम्भवन्ति व्याकरणेपि नियमो नास्ति

* इदमपि पण्डितानां मतं नैव स्वामिन इति वेद्यम् ।

समीपस्थमेव विशेषणं भवेन्न दूरस्थमिति । तदा विशुद्धानन्दस्वामिनोक्तम्–इतिहासस्यात्र पुराणशब्दो विशेषणं नास्ति तस्मादितिहासो नवीनो ग्राह्यः किमिति ? तदा स्वामिनोक्तमन्यत्रास्तीतिहासस्य पुराणशब्दो विशेषणन्तद्यथा–इतिहासः पुराणः पंचमो वेदानां वेद इत्युक्तम् । तदा वामनाचार्यादिभिरयं पाठ एव वेदे नास्तीत्युक्तम्, तदा दयानन्दस्वामिनोक्तम् * यदि वेदेऽयम्पाठो न भवेच्चेन्मम पराजयो यद्ययम्पाठो वेदे यथावद्भवेत्तदा भवताम्पराजयश्चेयम्प्रतिज्ञा लेख्येत्युक्तन्तदा सर्वैर्मौनं कृतमिति । तदा स्वामिनोक्तम्–इदानीं व्याकरणे कल्मसंज्ञा क्वापि लिखिता नवेति ? । तदा बालशास्त्रिणोक्तमेकस्मिन् सूत्रे संज्ञा तु न कृता परन्तु महाभाष्यकारेणोपहासः कृत इति । तदा स्वामिनोक्तम्–कस्य सूत्रस्य महाभाष्ये संज्ञा तु न कृतोपहासश्चेत्युदाहरणप्रत्युदाहरणपूर्वकं समाधानं वदेति ? बालशास्त्रिणा किमपि नोक्तमन्येनापि चेति । तदा माधवाचार्येण द्वे पत्रे वेदस्य † निस्सार्य्य सर्वेषां पंडितानाम्मध्ये प्रक्षिप्ते अत्र यज्ञसमाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणानां पाठं शृणुयादिति लिखितमत्र पुराणशब्दः कस्य विशेषणमित्युक्तं तदा विशुद्धानन्दस्वामिना दयानन्दस्वामिनो हस्ते पत्रे दत्ते तदा स्वामी पत्रे द्वे गृहीत्वा पञ्चक्षणमात्रं विचारं कृतवान् तत्रेदं वचनं वर्त्तते । दशमे दिवसे यज्ञान्ते पुराणविद्यावेदः । इत्यस्य श्रवणं यजमानः कुर्य्यादिति । अस्यायमर्थः पुराणी चासौ विद्या च पुराणविद्या पुराणविद्येव वेदः पुराणविद्याः वेद इति नाम ब्रह्मविद्यैव ग्राह्या कुत एतदन्यत्रर्ग्वेदादीनां श्रवणमुक्तं नचोपनिषदाम् । तस्मादुपनिषदामेव ग्रहणं नान्येषाम् । पुराणविद्यावेदोऽपि ब्रह्मविद्यैव भवितुमर्हति नान्ये नवीना ब्रह्मवैवर्त्तादयो ग्रन्थाश्चेति यदि ह्येवं पाठो भवेद् ब्रह्मवैवर्त्तादयोऽष्टादश ग्रन्थाः पुराणानि चेति क्वाप्येवं वेदेषु ‡ पाठो नास्त्येव तस्मात्कदाचित्तेषां ग्रहणं न भवेदेवेत्यर्थकथनस्येच्छा कृता । तदा विशुद्धानन्दस्वामी मम

---

* इदमपि तन्मतमनुसृत्योक्तं नेदं स्वामिनो मतमिति वेदितव्यमेते पत्रे तु गृह्यसूत्रस्य भवतामिति च ।

† इदमपि तन्मतमेव नैव स्वामिन इति ।

‡ इदमपि तन्मतमेवास्ति न स्वामिन इति ।

विलम्बो भवतीदानीं गच्छामीत्युक्त्वा गमनायोत्थितोभूत् । ततः सर्वे पण्डिता उत्थाय कोलाहलं कृत्वा गताः । एवं च तेषां कोलाहलमात्रेण सर्वेषां निश्चयो भविष्यति दयानन्दस्वामिनः पराजयो जात इति । अथात्र बुद्धिमद्भिर्विचारः कर्त्तव्यः कस्य जयो जातः कस्य पराजयश्चेति । दयानन्दस्वामिनश्चत्वारः पूर्वोक्ताः पूर्वपक्षास्सन्ति तेषां चतुर्णां प्रामाण्यं नैव वेदेषु निस्सृतं पुनस्तस्य पराजयः कथं भवेत् ? पाषाणादिमूर्तिपूजनरचनादिविधायकं वेदवाक्यं सभायामेतैः सर्वैर्नोक्तं येषां वेदविरुद्धेषु वेदाप्रसिद्धेषु च पाषाणादिमूर्त्तिपूजनादिषु शैवशाक्तवैष्णवादिसंप्रदायादिषु रुद्राक्षतुलसीकाष्ठ-मालाधारणादिषु त्रिपुण्ड्रोर्ध्वपुण्ड्रादिरचनादिषु नवीनेषु ब्रह्मवैवर्त्तादिग्रन्थेषु च महानाग्रहोस्ति तेषामेव पराजयो जात इति तथ्यमेवेति ॥

भाषार्थ

एक दयानन्द सरस्वती नामक संन्यासी दिगम्बर गङ्गा के तीर विचरते रहते हैं जो सत्पुरुष और सत्यशास्त्रों के वेत्ता हैं उन्होंने सम्पूर्ण ऋग्वेदादि का विचार किया है सो ऐसा सत्यशास्त्रों को देख निश्चय करके कहते हैं कि पाषाणादि मूर्त्तिपूजन शैव शाक्त गाणपत और वैष्णव आदि संप्रदायों और रुद्राक्ष तुलसी माला त्रिपुंड्रादि धारण का विधान कहीं भी वेदों में नहीं है इससे ये सब मिथ्या ही हैं कदापि इनका आचरण न करना चाहिये क्योंकि वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध के आचरण से बड़ा पाप होता है ऐसी मर्यादा वेदों में लिखी है ।

इस हेतु से उक्त स्वामीजी हरद्वार से लेकर सर्वत्र इसका खण्डन करते हुए काशी में आ के दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्दबाग़ में स्थित हुए उनके आने की धूम मची, बहुतसे पंडितों ने वेदों के पुस्तकों में विचार करना आरम्भ किया परन्तु पाषाणादि मूर्त्तिपूजा का विधान कहीं भी किसी को न मिला बहुधा करके इस के पूजन में आग्रह बहुतों का है ।

इससे काशीराज महाराज ने बहुतसे पंडितों को बुलाकर पूछा कि इस विषय में क्या करना चाहिये तब सब ने ऐसा निश्चय करके कहा कि किसी

प्रकार से दयानन्द सरस्वती स्वामी के साथ शास्त्रार्थ करके बहुकाल से प्रवृत्त आचार को जैसे स्थापन होसके करना चाहिये ॥

निदान कार्त्तिक सुदी १२ सं० १९२६ मंगलवार को महाराजा काशीनरेश बहुत से पण्डितों को साथ लेकर जब स्वामीजी से शास्त्रार्थ करने के हेतु आए तब दयानन्द स्वामीजी ने महाराज से पूछा कि आप वेदों की पुस्तक ले आए हैं वा नहीं।

महाराज ने कहा कि वेद सम्पूर्ण पण्डितों को कंठस्थ हैं पुस्तकों का क्या प्रयोजन है तब दयानन्द सरस्वतीजी ने कहा कि पुस्तकों के बिना पूर्वापर प्रकरण का विचार ठीक २ नहीं हो सकता भला पुस्तक नहीं आये तो नहीं सही परन्तु किस विषय पर विचार होगा।

पण्डितों ने कहा कि तुम मूर्त्तिपूजा का खंडन करते हो हम लोग उसका मंडन करेंगे।

पुनः स्वामीजी ने कहा कि जो कोई आप लोगों में मुख्य हो वही एक पण्डित मुझ से संवाद करे।

पण्डित रघुनाथप्रसाद कोतवाल ने भी यह नियम किया कि स्वामीजी से एक २ पण्डित विचार करे।

पुनः सबसे पहिले ताराचरण नैयायिक स्वामीजी से विचार के हेतु सम्मुख प्रवृत्त हुए, स्वामीजी ने उन से पूछा कि आप वेदों का प्रमाण मानते हैं वा नहीं, उन्होंने उत्तर दिया कि जो वर्णाश्रम में स्थित हैं उन सब को वेदों का प्रमाण ही है * इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहीं वेदों में पाषाणादिमूर्त्तियों के पूजन का प्रमाण है वा नहीं ? यदि हो तो दिखाइये और जो नहीं तो कहिये कि नहीं है।

* इससे यह समझना कि स्वामीजी भी वर्णाश्रमस्थ हैं वेदों को मानते हैं।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि वेदों में प्रमाण है वा नहीं परन्तु जो एक वेदों ही का प्रमाण मानता है औरों का नहीं उसके प्रति क्या कहना चाहिये इस पर स्वामीजी ने कहा कि औरों का विचार पीछे होगा, वेदों का विचार मुख्य है इस निमित्त से इस का विचार पहिले ही करना चाहिये क्योंकि वेदोक्त ही कर्म्म मुख्य है और मनुस्मृति आदि भी वेदमूलक हैं इससे इनका भी प्रमाण है क्योंकि जो २ वेदविरुद्ध और वेदों में अप्रसिद्ध हैं उनका प्रमाण नहीं होता।

पण्डित ताराचरण ने कहा कि मनुस्मृति का वेदों में कहां मूल है * ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जो २ मनुजी ने कहा है सो २ औषधों का भी औषध है ऐसा सामवेद के ब्राह्मण में कहा है।

विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि रचना की अनुपपत्ति होने से अनुमान प्रतिपाद्य प्रधान जगत् का कारण नहीं, व्यासजी के इस सूत्र का वेदों में क्या मूल है, इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह प्रकरण से भिन्न बात है इस पर विचार करना न चाहिये। फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि यदि तुम जानते हो तो अवश्य कहो इस पर स्वामीजी ने यह समझ कर कि प्रकरणान्तर में वार्त्ता जा रहेगी, कहा जो कदाचित् किसी को कण्ठ न हो तो पुस्तक देखकर कहा जा सकता है। तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो कण्ठस्थ नहीं है तो काशी नगर में शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ? इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या आप को सब कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि हां हम को कण्ठस्थ है।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि कहिये धर्म्म का क्या स्वरूप है।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि जो वेदप्रतिपाद्य फलसहित अर्थ है यही धर्म कहलाता है।

---

* यह कहना उन पंडितों के मत के अनुसार ठीक है परन्तु स्वामीजी तो ब्राह्मण-पुस्तकों को वेद नहीं मानते किन्तु मन्त्रभाग ही को वेद मानते हैं।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह आप का संस्कृत है इस का क्या प्रमाण, श्रुति स्मृति कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि जो चोदनालक्षण अर्थ है सो धर्म कहलाता है यह जैमिनि का सूत्र है ।

स्वामीजी ने कहा कि यह सूत्र है यहां श्रुति वा स्मृति को कण्ठ से क्यों नहीं कहते और चोदना नाम प्रेरणा का है वहां भी श्रुति वा स्मृति कहना चाहिये जहां प्रेरणा होती है ।

जब इसमें विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा तब स्वामीजी ने कहा कि अच्छा आपने धर्म का स्वरूप तो न कहा परन्तु धर्म के कितने लक्षण हैं कहिये ।

विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि धर्म का एक ही लक्षण है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वह कैसा है तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कुछ भी न कहा । तब स्वामीजी ने कहा कि धर्म्म के तो दश लक्षण हैं आप एक ही क्यों कहते हैं तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि वे कौन लक्षण हैं ।

इस पर स्वामीजी ने मनुस्मृति का यह वचन कहा कि:—धैर्य्य १ क्षमा २ दम ३ चोरी का त्याग ४ शौच ५ इन्द्रियों का निग्रह ६ बुद्धि ७ विद्या का बढ़ाना ८ सत्य ९ और अक्रोध अर्थात् क्रोध का त्याग १०, ये दश धर्म के लक्षण हैं फिर आप कैसे एक ही लक्षण कहते हैं । तब बालशास्त्री ने कहा कि हां हमने सब धर्मशास्त्र देखा है इस पर स्वामीजी ने कहा कि आप अधर्म का लक्षण कहिये तब बालशास्त्रीजी ने कुछ भी उत्तर न दिया । फिर बहुतसे पंडितों ने इकट्ठे हल्ला करके पूछा कि वेद में प्रतिमा शब्द है वा नहीं इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द तो है फिर उन लोगों ने कहा कि कहां पर है इस पर स्वामीजी ने कहा कि सामवेद के ब्राह्मण में है फिर उन लोगों ने कहा कि वह कौनसा वचन है इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह है देवता के स्थान कंपाय-

मान और प्रतिमा हँसती है इत्यादि * फिर उन लोगों ने कहा प्रतिमा शब्द तो वेदों में भी है फिर आप कैसे खण्डन करते हैं इस पर स्वामीजी ने कहा कि प्रतिमा शब्द से पाषाणादि मूर्त्तिपूजनादि का प्रमाण नहीं हो सकता है इसलिये प्रतिमा शब्द का अर्थ करना चाहिये इसका क्या अर्थ है।

जब उन लोगों ने कहा कि जिस प्रकरण में यह मन्त्र है उस प्रकरण का क्या अर्थ है। इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह अर्थ है—अब अद्भुतशान्ति की व्याख्या करते हैं ऐसा प्रारम्भ करके फिर रक्षा करने के लिये इन्द्र इत्यादि सब मूलमन्त्र वहीं सामवेद के ब्राह्मण में लिखे हैं इनमें से प्रतिमन्त्र करके तीन हज़ार आहुति करनी चाहिये इस के अनन्तर व्याहृति करके पांच २ आहुति करनी चाहियें ऐसा लिख के सामगान भी करना लिखा है इस क्रम करके अद्भुतशान्ति का विधान किया है जिस मन्त्र में प्रतिमा शब्द है सो मन्त्र मृत्युलोक विषयक नहीं किन्तु ब्रह्मलोक विषयक है सो ऐसा है कि जब विघ्नकर्त्ता देवता पूर्वदिशा में वर्त्तमान होवे इत्यादि मन्त्रों से अद्भुतदर्शन की शान्ति कहकर फिर दक्षिणदिशा पश्चिमदिशा और उत्तरदिशा इसके अनन्तर भूमि की शान्ति कहकर मृत्युलोक का प्रकरण समाप्त कर अन्तरिक्ष की शान्ति कहके इसके अनन्तर स्वर्गलोक फिर परमस्वर्ग अर्थात् ब्रह्मलोक की शान्ति कही है इस पर सब चुप रहे, फिर बालशास्त्री ने कहा कि जिस २ दिशा में जो जो देवता है उस २ की शान्ति करने से अद्भुत देखनेवालों के विघ्न की शान्ति होती है, इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह तो सत्य है परन्तु इस प्रकार में विघ्न दिखानेवाला कौन है तब बालशास्त्रीजी ने कहा कि इन्द्रियां दिखाने वाली हैं इस पर स्वामीजी ने कहा कि इन्द्रियां तो देखनेवाली हैं दिखानेवाली नहीं परन्तु "स प्राचीं दिशमन्वावर्त्तते-ऽथेत्यत्र" इत्यादि मन्त्रों में से शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? तब बालशास्त्रीजी ने कुछ न कहा फिर पण्डित शिवसहायजी ने कहा कि अन्तरिक्ष आदि गमनशान्ति करने से फल इस मन्त्र करके कहा जाता है।

* यह वेदवचन नहीं किन्तु सामवेद के षड्विंश ब्राह्मण का है परन्तु वहां भी यह क्षिप्त है क्योंकि वेदों से विरुद्ध है।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि आपने वह प्रकरण देखा है तो किसी मन्त्र का अर्थ कहिये तब शिवसहायजी चुप हो रहे फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि वेद किससे उत्पन्न हुए हैं ? इस पर स्वामीजी ने कहा कि वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि किस ईश्वर से ? क्या न्यायशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से वा योगशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से अथवा वेदान्तशास्त्र प्रसिद्ध ईश्वर से इत्यादि ? इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ईश्वर बहुतसे हैं। तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेद कौन से लक्षण वाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं इस पर स्वामीजी ने कहा कि सच्चिदानन्द लक्षणवाले ईश्वर से प्रकाशित भये हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि ईश्वर और वेदों से क्या सम्बन्ध है ? क्या प्रतिपाद्यप्रतिपादकभाव वा जन्यजनकभाव अथवा समवायसम्बन्ध वा स्वस्वामिभाव अथवा तादात्म्य सम्बन्ध है ? इत्यादि इस पर स्वामीजी ने कहा कि कार्य्यकारणभाव सम्बन्ध है। फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि जैसे मन में ब्रह्मबुद्धि और सूर्य्य में ब्रह्मबुद्धि करके प्रत्येक उपासना कही है वैसे ही शालिग्राम के पूजन का ग्रहण करना चाहिये।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे "मनो ब्रह्मेत्युपासीत आदित्यं ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदों * में देखने में आते हैं वैसे "पाषाणादि ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि वचन वेदादि में नहीं देख पड़ता फिर क्योंकर इस का ग्रहण हो सकता है ?

तब माधवाऽऽचार्य्य ने कहा कि "उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सᳪसृजेथामयञ्चेति" इस मन्त्र में पूर्त्त शब्द से किसका ग्रहण है ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि वापी, कूप, तड़ाग और आराम का ग्रहण है।

माधवाचार्य्य ने कहा कि इससे पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण क्यों नहीं होता है ?

* यह भी उन्हीं पण्डितों का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि स्वामीजी तो ब्राह्मण पुस्तकों को ईश्वरकृत नहीं मानते।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि मूर्त्ते शब्द मूर्त्ति का वाचक है इससे कदाचित् पाषाणादि मूर्त्तिपूजन का ग्रहण नहीं हो सकता, यदि शङ्का हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देखिये।

तब माधवाऽऽचार्य्य ने कहा कि पुराण शब्द वेदों में है वा नहीं?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुराण शब्द तो बहुत सी जगह वेदों में है परन्तु पुराण से ब्रह्मवैवर्त्तादिक ग्रन्थों का कदाचित् ग्रहण नहीं होसकता क्योंकि पुराण शब्द भूतकालवाची है और सर्वत्र द्रव्य का विशेषण ही होता है।

फिर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि बृहदारण्यक उपनिषद् के इस मन्त्र में कि (एतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं श्लोका व्याख्यानान्यनुव्याख्यानानीति) यह सब जो पठित है इसका प्रमाण है वा नहीं?

इस पर स्वामीजी ने कहा—हां प्रमाण है।

फिर विशुद्धानन्दजी ने कहा कि यदि श्लोक का भी प्रमाण है तो सबका प्रमाण आया।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि सत्य श्लोकों ही का प्रमाण होता है औरों का नहीं।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि पुस्तक लाइये तब इसका विचार हो।

माधवाचार्य ने वेदों के दो पत्रे * निकाले और कहा कि यहां पुराण शब्द किस का विशेषण है।

स्वामीजी ने कहा कि कैसा वचन है पढ़िये।

* यह भी उन्हीं का मत है स्वामीजी का नहीं क्योंकि यह गृह्यसूत्र का पाठ है।

तब माधवाचार्य ने यह पढ़ा—ब्राह्मणानीतिहासान् पुराणानीति ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि यहां पुराण शब्द ब्राह्मण का विशेषण है अर्थात् पुराने नाम सनातन ब्राह्मण हैं ।

तब बालशास्त्रीजी आदि ने कहा कि ब्राह्मण कोई नवीन भी होते हैं ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि नवीन ब्राह्मण नहीं हैं परन्तु ऐसी शङ्का भी किसी को न हो इसलिये यहां यह विशेषण कहा है ।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास शब्द के व्यवधान होने से कैसे विशेषण होगा ?

इस पर स्वामीजी ने कहा कि क्या ऐसा नियम है कि व्यवधान से विशेषण नहीं होता और अव्यवधान ही में होता है क्योंकि "अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इस श्लोक में दूरस्थ देही का भी क्या विशेषण नहीं है ? और कहीं व्याकरणादि में भी यह नियम नहीं किया है कि समीपस्थ ही विशेषण होते हैं दूरस्थ नहीं ।

तब विशुद्धानन्द स्वामीजी ने कहा कि यहां इतिहास का तो पुराण शब्द विशेषण नहीं है इससे क्या इतिहास नवीन ग्रहण करना चाहिये ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि और जगह पर इतिहास का विशेषण पुराण शब्द है । सुनिये—"इतिहासः पुराणं पंचमो वेदानां वेदः" इत्यादि में कहा है ।

तब वामनाचार्य आदिकों ने कहा कि वेदों में यह पाठ ही कहीं भी नहीं है । इस पर स्वामीजी ने कहा कि यदि वेद * में यह पाठ न होवे तो हमारा पराजय हो और जो हो तो तुम्हारा पराजय हो यह प्रतिज्ञा लिखो तब सब चुप हो रहे ।

* यह उन्हीं पण्डितों के मतमतानुसार कहा है किन्तु स्वामीजी तो छान्दोग्य उपनिषद् को वेद नहीं मानते ॥

इस पर स्वामीजी ने कहा कि व्याकरण जानने वाले इस पर कहें कि व्याकरण में कहीं कल्पसंज्ञा करी है वा नहीं ?

तब बालशास्त्रीजी ने कहा कि संज्ञा तो नहीं की है परन्तु एक सूत्र में भाष्यकार ने उपहास किया है ।

इस पर स्वामीजी ने कहा कि किस सूत्र के महाभाष्य में संज्ञा तो नहीं की और उपहास किया है यदि जानते हो तो इसके उदाहरणपूर्वक समाधान कहो ।

तब बालशास्त्री और औरों ने कुछ भी न कहा, माधवाचार्य ने दो पत्रे वेदों * के निकाल कर सब पण्डितों के बीच में रख दिये और कहा कि यहां यज्ञ के समाप्त होने पर यजमान दशवें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है यहां पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामीजी ने कहा कि पढ़ो इस में किस प्रकार का पाठ है जब किसी ने पाठ न किया तब विशुद्धानन्दजी ने पत्रे उठा के स्वामीजी की ओर करके कहा कि तुम ही पढ़ो ।

स्वामीजी ने कहा कि आप ही इसका पाठ कीजिये तब विशुद्धानन्द स्वामी ने कहा कि मैं ऐनक के विना पाठ नहीं कर सकता ऐसा कह के वे पत्रे उठाकर विशुद्धानन्द स्वामीजी ने दयानन्द स्वामीजी के हाथ में दिये ।

इस पर स्वामीजी दोनों पत्रे लेकर विचार करने लगे इसमें अनुमान है कि ५ पल व्यतीत हुए होंगे कि ज्यों ही स्वामीजी यह उत्तर कहा चाहते थे कि "पुरानी जो विद्या है उसे पुराणविद्या कहते हैं और जो पुराणविद्या वेद है वही पुराणविद्या वेद कहाता है" इत्यादि से यहां ब्रह्मविद्या ही का ग्रहण है क्योंकि पूर्व प्रकरण में ऋग्वेदादि चारों वेद आदि का तो श्रवण कहा है परन्तु उपनिषदों का नहीं कहा इसलिये यहां उपनिषदों का ही ग्रहण है औरों का नहीं

* ये पत्रे गृह्यसूत्र के पाठ के थे वेदों के नहीं ॥

पुरानी विद्या वेदों ही की ब्रह्मविद्या है इससे ब्रह्मवैवर्त्तादि नवीन ग्रन्थों का ग्रहण कभी नहीं कर सकते क्योंकि जो यहां ऐसा पाठ होता कि "ब्रह्मवैवर्त्तादि १८ (अठारह) ग्रन्थ पुराण हैं, सो तो वेद में * कहीं ऐसा पाठ नहीं है इसलिये कदाचित् अठारहों का ग्रहण नहीं हो सकता" कि ज्यों यह उत्तर कहना चाहते थे कि विशुद्धानन्द स्वामी उठ खड़े हुए और कहा कि हमको विलम्ब होता है हम जाते हैं तब सब के सब उठ खड़े हुए और कोलाहल करते हुए चले गये, इस अभिप्राय से कि लोगों पर विदित हो कि दयानन्द स्वामी का पराजय † हुआ परन्तु जो दयानन्द स्वामीजी के ४ पूर्वोक्त प्रश्न हैं उनका वेद में तो प्रमाण ही न निकला फिर क्योंकर उनका पराजय हुआ ॥

इति

---

* यह पंडितों के मतानुसार से कहा है यह स्वामीजी का मत नहीं है ॥

† क्या किसी का भी इस शास्त्रार्थ से ऐसा निश्चय हो सकता है कि स्वामीजी का पराजय और काशीस्थ पण्डितों का विजय हुआ। किन्तु इस शास्त्रार्थ से यह तो ठीक निश्चय होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का विजय हुआ और काशीस्थों का नहीं क्योंकि स्वामीजी का तो वेदोक्त सत्यमत है उसका विजय क्योंकर न होवे, काशीस्थ पंडितों का पुराण और तंत्रोक्त मत जो पाषाणादि मूर्त्तिपूजादि हैं उनका पराजय होना कौन रोक सकता है ? यह निश्चित है कि असत्य पक्ष वालों का पराजय और सत्य वालों का सर्वदा विजय होता है ॥

शताब्दी-संस्करण

सत्यधर्मविचारः

पृष्ठ ८१७—८४७.

सत्यधर्मविचारः

—:o:—

आवृत्ति		सन् ई०		संख्या
प्रथम	...	१८८०	...	१०००
द्वितीय	...	१८८७	...	१०००
तृतीय	...	१८९५	...	१०००
चतुर्थ	...	१९०१	...	१०००
पंचम	...	१९०२	...	१०००
षष्ठ	...	१९०३	...	१०००
सप्तम	...	१९०८	...	१०००
अष्टम	...	१९१२	...	२०००
नवम	...	१९१९	...	१०००
दशम	...	१९२४	...	२०००
शताब्दीसंस्करण		१९२४	...	१०,०००
				२२,०००

ओ३म् खम्ब्रह्म

अथ सत्यधर्म्मविचारः

मेला चांदापुर

धर्मचर्चा मेला ब्रह्मविचार चांदापुर * कि जिसमें बड़े २ विद्वान् † आर्य्यों, ईसाइयों और मुसलमानों की ओर से एक सत्य के निर्णय के लिये इकट्ठे हुए थे, सज्जन पाठकगणों के हितार्थ मुद्रित किया जाता है कि जिससे प्रत्येक मतों का अभिप्राय सब पर प्रकाशित हो जावे। सब सज्जनों को, किसी मत के क्यों न हों, उचित है कि पक्षपातरहित होकर इसको सुहृद्भाव से देखें।

विदित हो कि यह मेला दो दिन रहा, मेले के आरम्भ से पूर्व कई लोगों ने स्वामीजी के समीप जाकर कहा कि आर्य्य और मुसलमान मिल के ईसाइयों का खण्डन करें तो अच्छा है इस पर स्वामीजी ने कहा कि यह मेला सत्य और असत्य के निर्णय के लिये किया गया है इसलिये हम तीनों को उचित है कि पक्षपात छोड़कर प्रीतिपूर्वक सत्य का निश्चय करें, किसी से विरोध करना कदापि योग्य नहीं।

---

* यहां यह मेला मुन्शी प्यारेलाल साहब की ओर से प्रतिवर्ष हुआ करता है।

† इस धर्मचर्चा में आर्य्यों की ओर से स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी और मुन्शी इन्द्रमणिजी, ईसाइयों की ओर से पादरी स्काट साहब, पादरी नोबिल साहब, पादरी पार्कर साहब और पादरी जान्सन साहब और मुसलमानों की ओर से मौलवी मोहम्मद क़ासम साहब, सैयद अब्दुल मंसूर साहब विचार के लिये आये थे।

इसके पश्चात् विचार का समय नियत किया गया, पादरियों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं ठहर सकते और यही विज्ञापन में भी छापा गया था। इस पर स्वामीजी ने कहा कि हम इस प्रतिज्ञा पर आये थे कि मेला कम से कम पांच और अधिक से अधिक आठ दिन तक रहेगा। क्योंकि इतने दिनों में सब मतों का अभिप्राय अच्छे प्रकार ज्ञात हो सकता है, जब इस पर वे लोग प्रसन्न न हुए तब मुन्शी इन्द्रमणिजी ने कहा कि स्वामीजी! आप निश्चिन्त रहें सच्चा मत एक दिन में प्रकट हो जावेगा। फिर निम्नलिखित पांच प्रश्नों पर विचार करना सब ने स्वीकार किया।

पहिले दिन की सभा

मुन्शी प्यारेलाल साहब ने खड़े होकर सब से पहिले कहा—

प्रथम ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिये कि जो सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है। हम लोगों के बड़े भाग्य हैं कि उसने हम सब को ऐसे राजप्रबन्ध समय में उत्पन्न किया कि जिसमें सब लोग निर्विघ्नता से निर्भय होकर मत-मतान्तरों का विचार कर सकते हैं। धन्य है इस आज के दिन को और बड़े भाग्य हैं इस भूमि के कि ऐसे २ सज्जन पुरुष और ऐसे २ विद्वान् मतमतान्तरों के जाननेवाले यहां सुशोभित हुए हैं। आशा है कि सब विद्वान् अपने २ मतों की वार्त्ताओं को कोमल वाणी से कहेंगे कि जिनसे सत्य और असत्य का निर्णय होकर मनुष्यों की सत्य मार्ग में प्रवृत्ति हो जावेगी।

इसके पश्चात् जब मुसलमानों और ईसाइयों की ओर से पांच पांच मनुष्य और आर्य्यों की ओर से स्वामीजी और मुन्शी इन्द्रमणिजी दो ही विचार के लिये नियत किये गये तब मौलवियों और पादरियों ने हठ किया कि आर्य्यों की ओर से भी पांच मनुष्य होने चाहियें। इस पर स्वामीजी ने कहा कि आर्य्यों की ओर से हम दो ही बहुत हैं तब मौलवियों ने पण्डित लक्ष्मण शास्त्रीजी का नाम अपने ही आप पादरियों से लिखवाना चाहा तब स्वामीजी ने उनसे तो यह कहा कि आप लोगों को अपनी २ ओर के मनुष्यों के लिख-

वाले का अधिकार है हमारी ओर का कुछ नहीं और पण्डितजी से यह कहा कि आप नहीं जानते ये लोग हमारे और तुम्हारे बीच विरोध कराके आप तमाशा देखना चाहते हैं इस बात के कहने पर भी एक मौलवी ने पण्डितजी का हाथ पकड़ के उनसे कहा कि तुम भी अपना नाम लिखवादो इनके कहने से क्या होता है, तिस पर स्वामीजी ने कहा कि अच्छा जो सब आर्य्य लोगों की सम्मति हो तो इनका भी नाम लिखवादो नहीं तो केवल आप लोगों के कहने से इनका नाम नहीं लिखा जावेगा, फिर एक मौलवी साहब उठकर बोले कि सब हिन्दुओं से पूछा जावे कि इन दोनों के नाम लिखाने में सब की सम्मति है वा नहीं। इस पर स्वामीजी ने कहा कि जैसे आपको सिवाय फ़िर्के सुन्नत जमात के अहलशिया आदि फ़िर्कों ने सम्मति कर के नहीं बिठलाया और जैसे कि पादरी साहब को रोमेन कैथोलिक फ़िर्कों ने नियत नहीं किया। ऐसे ही आर्य्य लोगों में भी बहुतों की हमारे बिठलाने में सम्मति और बहुतों की असम्मति होगी परन्तु आप लोगों को हमारे बीच गड़बड़ मचाने का कुछ अधिकार नहीं है, मुंशी इन्द्रमणिजी ने कहा कि हम सब आर्य्य लोग वेदादि शास्त्रों को मानते हैं और पण्डितजी भी इन्हीं को मानते हैं जो किसी का मत आर्य्य लोगों से वेदादि शास्त्रों के विरुद्ध हो तो चौथा पन्थ नियत करके भले ही बिठला दीजियेगा।

इन बातों से मौलवियों का यह अभिप्राय था कि ये लोग आपस में झगड़ें तो हम तमाशा देखें। पंडितजी का नाम लिखना आर्य लोगों ने योग्य न समझा। फिर मौलवी लोग नमाज़ पढ़ने को चले गये और जब लौट कर आये तब उनमें से मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब ने कहा कि प्रथम मैं एक घण्टे तक उन प्रश्नों के सिवाय और कुछ अपने मत के अनुसार कहना चाहता हूं उसमें जो किसी की कुछ शंका होगी तो उसका मैं समाधान करूंगा इसको सबने स्वीकार किया। मौलवी साहब के कथन का तात्पर्य यह है:—

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

परमेश्वर की स्तुति के पश्चात् यह कहा कि जिस २ समय में जो जो हाकिम

हो उसी की सेवा करनी उचित है जैसे कि इस समय जो गवर्नर है उसी की सेवा करते और उसी की आज्ञा मानते हैं और जिसकी कि आज्ञापालन का समय व्यतीत होगया न कोई उसकी सेवा करता है और न उसकी आज्ञा को मानता है और जैसे जब कोई क़ानून व्यर्थ होजाता है तो उसके अनुसार कोई नहीं चलता परन्तु जो क़ानून उसकी जगह नियत किया जाता है उसी के अनुसार सब को चलना होता है तो इन्हीं दृष्टान्तों के समान जो २ अवतार और पैग़म्बर पूर्व समय में थे और जो २ पुस्तकें तौरेत जबूर बाइबिल उनके समय में उतरी थीं अब उनके अनुसार न चलना चाहिये इस समय के सब से पिछले पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद साहब हैं इसलिये उनको पैग़म्बर मानना चाहिये और जो ईश्वरवाक्य अर्थात् कुरान उनके समय में उतरा है उस पर विश्वास करना चाहिये और हम श्रीराम और श्रीकृष्ण आदि और ईसामसीह की निन्दा नहीं करते क्योंकि वे अपने २ समय में अवतार और पैग़म्बर थे परन्तु इस समय तो हज़रत मुहम्मद साहब का ही हुकुम चलता है दूसरे का नहीं। जो कोई हमारे मज़हब वा कुरानशरीफ़ वा हज़रत मुहम्मद साहब को बुरा कहेगा वह मारे जाने के योग्य है।

पादरी नोबिल साहब.

मुहम्मद साहेब के पैग़म्बर और कुरान के ईश्वरीय वाक्य होने म सन्देह है क्योंकि कुरान में जो २ बातें लिखी हैं सो सो बाइबिल की हैं इसलिये कुरान अलग आसमानी पुस्तक नहीं हो सकता और हज़रत ईसामसीह के अवतार होने में कुछ सन्देह नहीं क्योंकि उसके व्याख्यान से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वह सत्यमार्ग बतलाने वाला था। केवल उसके व्याख्यान से ही मनुष्य मुक्ति पा सकता है और उसने चमत्कार भी दिखलाये थे।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

हम हज़रत ईसा को अवतार तो मानते हैं और बाइबिल को आसमानी पुस्तक भी मानते हैं परन्तु ईसाइयों ने उसमें बहुत कुछ घटत बढ़त करदी है,

इसलिये यह वही मूल नहीं है और जो कि उसका कुरान ने खण्डन भी कर दिया है इसलिये वह विश्वास के योग्य नहीं रही और हमारे हज़रत पैग़म्बर साहब का अवतार सब से पिछला है इसलिये हमारा मत सच्चा है ।

फिर और मौलावियों ने बाइबिल में से एक आयत पादरी साहब को दिखलाई और कहा कि देखिये आपही लोगों ने लिखा है कि इस आयत का पता नहीं लगता ।

पादरी नोबिल साहब.

जिस मनुष्य ने यह लिखा है वह सत्यवादी था जो उसने लेखक-भूल को प्रसिद्ध कर दिया तो कुछ बुरा नहीं किया और हम लोग सत्य को चाहते हैं असत्य को नहीं इसलिये हमारा मत सत्य है ।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

यह तो ठीक है कि कुछ बुरा नहीं किया परन्तु जब कि किसी पुस्तक में वा दस्तावेज़ में एक बात भी झूठ लिखी हुई विदित होजावे तो वह पुस्तक कदाचित् माननीय नहीं रहता और न वह दस्तावेज़ ही अदालत में स्वीकार हो सकती है ।

पादरी नोबिल साहब.

क्या कुरान में लेखकदोष नहीं हो सकता इस बात पर हठ करना अच्छा नहीं और जो हम सत्य ही को मानते हैं और सत्य ही का खोज करते हैं इस कारण उस लेखक-भूल को हमने स्वीकार कर लिया और तुम्हारे कुरान में बहुत घटत बढ़त हुई जिसके प्रमाण में एक मौलवी ईसाई ने अरबी भाषा में बहुत कुछ कहा और सूतों के प्रमाण दिये ।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

आप बड़े सत्य के खोजी हैं ! (मुख बनाकर) जो आप सत्य ही को स्वीकार करते हैं तो तीन ईश्वर क्यों मानते हो ?

पादरी नोबिल साहब.

हम तीन ईश्वर नहीं मानते वे तीनों एक ही हैं अर्थात् केवल एक ईश्वर से ही प्रयोजन है । ईसामसीह में मनुष्यता और ईश्वरता दोनों थीं इस कारण वह दोनों व्यवहारों को करता है अर्थात् मनुष्य के आत्मा से मनुष्यों का व्यवहार और ईश्वर के आत्मा से ईश्वर का व्यवहार अर्थात् चमत्कार दिखलाना ।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

वाह वाह ! एक घर में दो तलवार क्योंकर रह सकती हैं यह कहना पादरी साहब का अत्यन्त मिथ्या है उसने तो कहीं नहीं कहा कि मैं ईश्वर हूं तुम हठ से उसको ईश्वर बनाते हो ।

पादरी नोबिल साहब.

एक आयत अंजील की पढ़ी और कहा कि यह एक आयत है जिसमें मसीह ने अपने आपको ईश्वर कहा है और कई एक चमत्कार भी दिखलाये हैं इससे उसके ईश्वर होने में कोई संदेह नहीं हो सकता ।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

जो वह ईश्वर था तो अपने आप को फांसी से क्यों न बचा सका !

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब.

क़ुरान में कई एक आयतों का परस्पर विरोध दिखलाया और कहा कि हुकुम का खण्डन हो सकता है समाचार का नहीं हो सकता सो आप के क़ुरान में समाचारों का खण्डन है पहिले बैतूलमुक़द्दस की ओर शिर नमाते थे फिर काबे की ओर नमाने लगे और कई आयतों का अर्थ भी सुनाया और कहा कि ईसामसीह पर विश्वास लाये विना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती और

तुम्हारे कुरान में बाइबिल का और ईसामसीह का मानना लिखा है तुम लोग क्यों नहीं मानते हो ? ऐसी ही बातों के होते २ सन्ध्या हो गई ।

दूसरे दिन की सभा

प्रातःकाल के साढ़े सात बजे सब लोग आये और वे पांच प्रश्न कि जो स्वीकार होचुके थे पढ़े गये । पांच प्रश्न ये हैं:—

१—सृष्टि को परमेश्वर ने किस चीज़ से किस समय और किसलिये बनाया ?

२—ईश्वर सब में व्यापक है वा नहीं ?

३—ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ?

४—वेद, बाइबिल और कुरान के ईश्वरोक्त होने में क्या प्रमाण है ?

५—मुक्ति क्या है और किस प्रकार मिल सकती है ?

इसके पश्चात् कुछ देर तक यह बात आपस में होती रही कि एक दूसरे को कहता था कि पहिले वह वर्णन करे । तदनन्तर पादरी स्काट साहब ने पहिले प्रश्न का उत्तर देना आरम्भ किया और यह भी कहा कि यद्यपि यह प्रश्न किसी काम का नहीं, मेरी समझ में ऐसे प्रश्न का उत्तर देना व्यर्थ है, परन्तु जबकि सब की सम्मति है तो मैं इसका उत्तर देता हूं:—

पादरी स्काट साहब.

यद्यपि हम नहीं जानते कि ईश्वर ने यह संसार किस चीज़ से बनाया है परन्तु इतना हम जान सकते हैं कि अभाव से भाव में लाया है क्योंकि पहिले सिवाय ईश्वर के दूसरा पदार्थ कुछ न था उसने अपने हुकुम से सृष्टि को रचा है । यद्यपि यह भी हम नहीं जान सकते कि उसने कब इस संसार को रचा परन्तु उसका आदि तो है वर्षों की गणना हमको नहीं जान पड़ती और न सिवाय ईश्वर के कोई जान सकता है इसलिये इस बात पर अधिक कहना ठीक नहीं ।

ईश्वर ने किसलिये इस जगत् को रचा, यद्यपि इसका भी उत्तर हम लोग ठीक २ नहीं जान सकते परन्तु इतना हम जानते हैं संसार के सुख के लिये ईश्वर ने यह सृष्टि की है, कि जिसमें हम लोग सुख पावें और सब प्रकार के आनन्द करें।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

उसने अपने शरीर से प्रकट अर्थात् उत्पन्न किया, उससे हम अलग नहीं, जो अलग होते तो उस की प्रभुता में न होते। कब से यह संसार बना यह कहना व्यर्थ है, क्योंकि हम को रोटी खाने से काम है, न यह कि रोटी कब बनी है।

यह जगत् सृष्टि के लिये रचा गया है, क्योंकि सब पदार्थ मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचे हैं और हम को अपनी भक्ति के लिये ईश्वर ने रचा है। देखो पृथिवी हमारे लिये है, हम पृथिवी के लिये नहीं, क्योंकि जो हम न हों तो पृथिवी की कुछ हानि नहीं, परन्तु पृथिवी के न होने से हमारी बड़ी हानि होती है ऐसे ही जल वायु अग्नि आदि सब पदार्थ मनुष्य के लिये रचे गये हैं मनुष्य सब सृष्टि में श्रेष्ठ है, उसकी बुद्धि भी इसी श्रेष्ठता की परीक्षा को दी है अर्थात् मनुष्य को अपनी भक्ति के लिये और इस जगत् को मनुष्य के लिये ईश्वर ने रचा है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

पहिले मेरी सब मुसलमानों और ईसाइयों और सुननेवालों से यह प्रार्थना है कि यह मेला केवल सत्य के निर्णय के लिये किया गया है और यह ही मेला करने वालों का प्रयोजन है कि देखें सब मतों में कौनसा मत सत्य है, जिसको सत्य समझें उसी को अंगीकार करें, इसलिये यहां हार और जीत की अभिलाषा किसी को न करनी चाहिये क्योंकि सज्जनों का यह ही मत होना चाहिये कि सत्य की सर्वदा जीत और असत्य की सर्वदा हार होती रहै। परन्तु जैसे मौलवी लोग कहते हैं कि पादरी साहब ने यह बात झूठ कही, ऐसे

ही ईसाई कहते हैं कि मौलवीसाहब ने यह बात झूठ कही, ऐसी वार्त्ता करना उचित नहीं। विद्वानों के बीच यह नियम होना चाहिये कि अपने २ ज्ञान और विद्या के अनुसार सत्य का मण्डन और असत्य का खण्डन कोमल वाणी के साथ करें कि जिससे सब लोग प्रीति से मिलकर सत्य का प्रकाश करें। एक दूसरे की निन्दा करना, बुरे २ बचनों से बोलना, द्वेष से कहना कि यह हारा और मैं जीता ऐसा नियम कदाचित् न होना चाहिये। सब प्रकार पक्षपात छोड़कर सत्यभाषण करना सब को उचित है और एक दूसरे से विरोधवाद करना यह अविद्वानों का स्वभाव है विद्वानों का नहीं, मेरे इस कहने का यह प्रयोजन है कि कोई इस मेले में अथवा और कहीं कठोर वचन का भाषण न करें।

अब मैं इस पहिले प्रश्न का उत्तर कि "ईश्वर ने जगत् को किस वस्तु से और किस समय और किसलिये रचा है" अपनी छोटीसी बुद्धि और विद्या के अनुसार देता हूं।

परमात्मा ने सब संसार को प्रकृति से, अर्थात् जिसको अव्यक्त अव्याकृत और परमाणु नामों से कहते हैं, रचा है, सो यह ही जगत् का उपादान कारण है, जिसका वेदादि शास्त्रों में नित्य करके निर्णय किया है और यह सनातन है, जैसे ईश्वर अनादि है वैसे ही सब जगत् का कारण भी अनादि है, जैसे ईश्वर का आदि और अन्त नहीं वैसे ही इस जगत् के कारण का भी आदि और अन्त नहीं है। जितने इस जगत् में पदार्थ दीखते हैं उन के कारण से एक परमाणु भी अधिक वा न्यून कभी नहीं होता। जब ईश्वर इस जगत् को रचता है तब कारण से कार्य रचता है। सो जैसा कि यह कार्यजगत् दीखता है वैसा ही इसका कारण है। सूक्ष्म द्रव्यों को मिलाकर स्थूल द्रव्यों को रचता है तब स्थूल द्रव्य होकर देखने और व्यवहार के योग्य होते हैं। और यह जो अनेक प्रकार का जगत् दीखता है उस को इसी कारण से ईश्वर ने रचा है, जब प्रलय करता है तब इस स्थूल जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को पृथक् २ कर देता है क्योंकि जो २ स्थूल से सूक्ष्म होता है वह आंखों से

देखने में नहीं आता तब बालबुद्धि लोग ऐसा समझते हैं कि वह द्रव्य नहीं रहा परन्तु वह सूक्ष्म होकर आकाश में ही रहता है, क्योंकि कारण का नाश कभी नहीं होता और नाश अदर्शन को कहते हैं अर्थात् वह देखने में न आवे। जब एक २ परमाणु पृथक् २ होजाते हैं तब उनका दर्शन * नहीं होता फिर जब वे ही परमाणु मिलकर स्थूल द्रव्य होते हैं तब दृष्टि में आते हैं यह नाश और उत्पत्ति की व्यवस्था ईश्वर सदा से करता आया है और ऐसे ही सदा करता जायगा, इसकी संख्या नहीं कि कितनी वार ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और कितनी वार कर सकेगा, इस बात को कोई नहीं कह सकता। अब इस विषय को जानना चाहिये कि जो लोग नास्ति अर्थात् अभाव से अस्ति अर्थात् भाव मानते हैं और शब्द से जगत् की उत्पत्ति जानते हैं उनका कहना किसी प्रकार से ठीक नहीं हो सकता क्योंकि अभाव से भाव का होना सर्वथा असम्भव है। जैसे कोई कहे कि बन्ध्या के पुत्र का विवाह मैंने आंख से देखा है, तो जो उसके पुत्र होता तो वन्ध्या क्यों कहलाती? फिर उसके पुत्र का अभाव होने से उसके पुत्र का विवाह कब हो सकता है और जैसे कोई कहे कि मैं किसी स्थान में नहीं था और यहां आया हूं अथवा सर्प बिल में न था और निकल भी आया, तो ऐसी वार्ता विद्वानों की नहीं होती इस में कोई प्रमाण नहीं,

* जब कोई वस्तु अत्यन्त छोटी होजाती है तो फिर उसे और छोटा करना असम्भव है। जो किसी वस्तु के टुकड़े करते २ उसको इतना छोटा करदे कि फिर उस के टुकड़े होना असम्भव होजावे तो उसको परमाणु कहते हैं जितनी वस्तु संसार में हैं वे सब परमाणु से बनती हैं। जब किसी पत्थर को तोड़ डालते हैं और उसके अत्यन्त छोटे २ टुकड़ों को पृथक् २ कर देते हैं तो वे परमाणु कि जिनके इकट्ठे होने से फिर पत्थर बनता है सदा किसी न किसी स्वरूप के बने रहते हैं। एक परमाणु का भी इस संसार में से अभाव नहीं होता केवल स्वरूप और गुणों में भेद हुआ करता है जब मोम की वत्ती को जलाते हैं तो देखने में यह जान पड़ता है कि थोड़ी देर में सब बत्ती नहीं रहती, न जाने कि क्या होगई परन्तु वे परमाणु जितने वत्ती में थे और ही रूप के वायु के सदृश हो जाते हैं उन में के एक परमाणु का भी अभाव कदाचित् नहीं होता॥

क्योंकि जो वस्तु है ही नहीं फिर वह क्योंकर हो सकता है जैसे कि हम लोग अपने २ स्थानों में न होते तो चांदापुर में कभी न आ सकते, देखो शास्त्र में लिखा है कि:—

नासत आत्मलाभः । न सत आत्महानम् ॥

अर्थात् जो है सो आगे को होता है और जो नहीं है वह कभी नहीं हो सकता । इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि विना भाव के भाव कभी नहीं हो सकता, क्योंकि इस जगत् में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है कि जिसका कारण कोई नहीं, इससे यह सिद्ध हुआ कि भाव से भाव अर्थात् अस्ति से अस्ति होती है नास्ति से अस्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती, यह "वदतो व्याघातः" अर्थात् अपनी बात को आप ही काटने के सदृश बात है । पहिले किसी वस्तु का अन्यथाभाव कहकर फिर यह कहना कि उसका भाव होगया पूर्वापर विरोध है । इसको कोई विद्वान् नहीं मान सकता और न किसी प्रमाण से ही सिद्ध कर सकता है कि विना कारण के कोई कार्य होसके, इसलिये अभाव से भाव अर्थात् नास्ति से वा हुकुम से जगत् की उत्पत्ति का होना सर्वथा असम्भव है, इस से यह ही जानना चाहिये कि ईश्वर ने जगत् के अनादि उपादान कारण से ही सब संसार को रचा है, अन्यथा नहीं ।

यहां दो प्रकार का विचार स्थित होता है एक यह कि जो जगत् का कारण ईश्वर हो तो ईश्वर ही सारे जगत् का रूप हुआ, तो ज्ञान, सुख, दुःख, जन्म, मरण, हानि, लाभ, नरक, स्वर्ग, क्षुधा, तृषा, ज्वर आदि रोग, बन्ध और मोक्ष सब ईश्वर में ही घटते हैं फिर कुत्ता, बिल्ली, चोर, दुष्ट आदि सब ईश्वर ही बन गया ।

दूसरा यह कि जो सामग्री मानें तो ईश्वर कारीगर के समान होता है ।

तो उत्तर यह है कि कारण तीन प्रकार का होता है:—

एक उपादान, कि जिसको ग्रहण करके पदार्थ को बनावें, जैसे मट्टी लेकर घड़ा और सोना लेकर गहना और रुई लेकर कपड़ा बनाया जाय ।

दूसरा निमित्त, जैसे कुम्हार अपनी विद्या और सामर्थ्य के साथ घड़े को बनाता है।

तीसरा साधारण, जैसे चाक आदि साधन और दिशा, काल इत्यादि।

अब जो ईश्वर को जगत् का उपादान कारण मानें तो ईश्वर ही जगत्‌रूप बनता है, क्योंकि मट्टी से घड़ा अलग नहीं हो सकता और जो निमित्त मानें तो जैसे कुम्हार मट्टी के विना घड़ा नहीं बना सकता और जो साधारण मानें जैसे मट्टी से अपने आप विना कुम्हार घड़ा नहीं बन सकता, इन दोनों व्यवस्थाओं में वह पराधीन वा जड़ ठहरता है, इसलिये जो यह कहते हैं कि ईश्वर जगत्‌रूप बन गया है तो उनके कहने से चोर आदि होने का दोष ईश्वर में आता है इससे ऐसी व्यवस्था माननी चाहिये कि जगत् का कारण अनादि है और नाना प्रकार के जगत् को बनानेवाला परमात्मा है और इसी प्रकार जीव भी अपने स्वरूप से अनादि हैं और स्थूल कार्य जगत् तथा जीवों के कर्म नित्य-प्रवाह से अनादि हैं, ऐसे माने विना किसी प्रकार से निर्वाह नहीं हो सकता।

अब यह कि ईश्वर ने किस समय जगत् को बनाया है अर्थात् संसार को बने हुए कितने वर्ष होगये इसका उत्तर दिया जाता है:—

सुनो भाइयो! इस प्रश्न का हम लोग तो उत्तर दे सकते हैं आप लोग नहीं दे सकते, क्योंकि जब आप लोगों के मतों की कोई अठारहसौ वर्ष से, कोई तेरहसौ वर्ष से और कोई पांचसौ वर्ष से उत्पत्ति कहता है तो फिर आप लोगों के मत में जगत् के इतिहास के वर्षों का लेख किसी प्रकार नहीं हो सकता और हम आर्य लोग सदा से कि जब से यह सृष्टि हुई बराबर विद्वान् होते चले आये हैं। देखो! इस देश से और सब देशों में विद्या गई है, इस बात में सब देश वालों के इतिहासों का प्रमाण है कि आर्य्यावर्त्त देश से मिस्र देश में और वहां से यूनान और यूनान से योरोप आदि में विद्या फैली है। इस लिये इस का इतिहास किसी दूसरे मत में नहीं हो सकता॥

देखो ! हम आर्य लोग संसार की उत्पत्ति और प्रलय के विषय में वेद आदि शास्त्रों की रीति से सदा से जानते हैं कि हज़ार चतुर्युगियों का एक ब्राह्म-दिन और इतने ही युगों की एक ब्राह्म-रात्रि होती है अर्थात् जगत् की उत्पत्ति हो के जबतक कि वर्तमान होता है उसका नाम ब्राह्मदिन है और प्रलय हो के जबतक हज़ार चतुर्युगीपर्य्यन्त उत्पत्ति नहीं होती उसका नाम ब्राह्मरात्री है। एक कल्प में चौदह मन्वन्तर होते और एक मन्वन्तर ७१ चतुर्युगियों का होता है। सो इस समय सातवां वैवस्वत मन्वन्तर वर्त्तमान हो रहा है और इससे पहिले ये छः मन्वन्तर बीत चुके हैं:—

स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तमि, तामस, रैवत और चाक्षुष। अर्थात् १९६०८५२९७६ वर्षों का भोग हो चुका है और अब २३३३२२७०२४ वर्ष इस सृष्टि को भोग करने के बाक़ी रहे हैं। सो हमारे देश के इतिहासों में यथार्थ क्रम से सब बातें लिखी हैं और ज्योतिष्शास्त्र में भी मितीवार प्रति संवत् घटाते बढ़ाते रहे हैं और ज्योतिष् की रीति से जो वर्षपत्र बनता है उस म भी यथावत् सब को क्रम से लिखते चले आते हैं अर्थात् एक २ वर्ष घटाते और एक २ वर्ष भोगने में आजतक बढ़ाते आये हैं, इस बात में सब आर्य्या-वर्त्त देश के इतिहास एक हैं, किसी में कुछ विरोध नहीं॥

फिर जब कि जैन मत वाले और मुसलमान इस देश के इतिहासों को नष्ट करने लगे तब आर्य्य लोगों ने सृष्टि के इतिहास को कण्ठ कर लिया, सो बालक से लेके वृद्ध तक नित्यप्रति उच्चारण करते हैं कि जिसको संकल्प कहते हैं और वह यह है:—

ओं तत्सत् श्री ब्रह्मणो द्वितीये प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे आर्य्यावर्त्तान्तरैकदेशेऽमुकनगरेऽमुकसंवत्सरायनर्तु-मासपक्षदिननक्षत्रलग्नमुहूर्तेऽत्रेदं कार्यं कृतं क्रियते वा॥

जो इसको ही विचार ले तो इससे सृष्टि के वर्षों की गणना बराबर जान पड़ती है॥

जो कोई यह कहे कि हम इस बात को नहीं मान सकते तो उसका उत्तर यह है कि जो परम्परा से मिती वार दिन चढ़ाते चले आते हैं और जब कि इतिहासों और ज्योतिष्शास्त्रों में भी इसी प्रकार लिखा है तो फिर इसको मिथ्या कोई नहीं कह सकता जैसे कि बहीखाते में प्रतिदिन मिती वार लिखते हैं और उसको कोई झूठ नहीं कह सकता और जो यह कहता है उससे भी पूछना चाहिये कि तुम्हारे मत में सृष्टि की उत्पत्ति को कितने वर्ष हुए हैं तब वह या तो छः हज़ार या सात हज़ार या आठ हज़ार वर्ष बतलावेगा तो वह भी अपने पुस्तकों के अनुसार कहता है तो इसी प्रकार उस को भी कोई नहीं मानेगा, क्योंकि यह पुस्तक की बात है ॥

और देखो भूगर्भविद्या से जो देखा जाता है तो उससे भी यह ही गणना ठीक २ आती है ॥

इसलिये हम लोगों के मत में तो जगत् के वर्षों की गिनती बन सकती है और किसी के कदाचित् नहीं, इसलिये यह व्यवस्था सृष्टि की उत्पत्ति के वर्षों की सबको ठीक माननी उचित है ॥

अब यह कि ईश्वर ने किसलिये सृष्टि को उत्पन्न किया इसका उत्तर दिया जाता है—

जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि और जीव के कर्म तथा कार्य जगत् नित्यप्रवाह से अनादि हैं, जब प्रलय होता है तब जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो उनके भोग कराने के लिये और फल देने के लिये ईश्वर में सृष्टि को रचाता है और अपने पक्षपातरहित न्याय को प्रकाशित करता है, ईश्वर में जो ज्ञान, बल, दया आदि और रचने की अत्यन्त शक्ति है उनके सफल करने के लिये उसने सृष्टि रचा है—जैसे आंख देखने के लिये और कान सुनने के लिये है वैसे ही रचना—शक्ति रचने के लिये है । सो अपनी सामर्थ्य की सफलता करने के लिये ईश्वर ने इस जगत् को रचा है कि सब लोग सब पदार्थों से सुख पावें । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि के

लिये जीवों के नेत्र आदि साधन भी रचे हैं इसी प्रकार सृष्टि के रचने में और भी अनेक प्रयोजन हैं कि जो समय कम रहने से अब नहीं कहे जा सकते, विद्वान् लोग आप जानलेंगे ॥

पादरी स्काट साहब.

जिसकी सीमा होती है वह अनादि नहीं हो सकता. जगत् सीमानिरूपण है इसलिये वह अनादि नहीं हो सकता । कोई पदार्थ अपने आप को नहीं रच सकता, परन्तु ईश्वर ने जगत् को अपनी सामर्थ्य से रचा है । कोई नहीं जानता कि ईश्वर ने किस पदार्थ से रचा है और पण्डितजी ने भी नहीं बताया कि किस पदार्थ से जगत् को रचा ॥

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

जब कि सब पदार्थ सदा से हैं तो ईश्वर को मानना व्यर्थ है । कोई उत्पत्ति का समय नहीं कह सकता ॥

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर में)

पादरी साहब मेरे कहने को नहीं समझे, मैं तो केवल जगत् के कारण को ही अनादि कहता हूं और जो कार्य है सो अनादि नहीं होता जैसे मेरा शरीर साढ़े तीन हाथ का है सो उत्पन्न होने से पहिले ऐसा न था और न नाश होने के पश्चात् ही ऐसा रहेगा पर इस में जितने परमाणु हैं वे नष्ट नहीं होते, इस शरीर के परमाणु पृथक् २ होकर आकाश में बने रहते हैं और उन परमाणुओं में जो संयोग और वियोग * की शक्ति है तो वह सदा उनमें रहते हैं ॥ जैसा मट्टी से घड़ा बनाया

---

* सब लोग देखते हैं कि अग्नि में बहुतसे पदार्थ जल जाते हैं अब विचार करना चाहिये कि जब कोई पदार्थ जलजाता है तो क्या होजाता है । देखने में आता है कि लकड़ी जल कर थोड़ीसी राख रहती है तो अब यह विचारना चाहिये कि जलने से वह पदार्थ ही नष्ट हो जाता है वा उसका स्वरूप ही बदल

जो कि बनाने के पहिले नहीं था और नाश होने के पश्चात् भी नहीं रहेगा, परन्तु उसमें जो मट्टी है वह नष्ट नहीं होती और जो गुण अर्थात् चिकनापन उसमें है कि जिससे वह पिण्डाकार होता है वह भी मट्टी में सदा से है, वैसे ही संयोग और वियोग होने की योग्यता परमाणुओं में सदा से है इससे यह समझना चाहिये कि उन परमाणु द्रव्यों से यह जगत् बना है, वे द्रव्य अनादि हैं, कार्य्य द्रव्य नहीं और मैंने यह कब कहा था कि जगत् के पदार्थ स्वयं अपने को बना सकते हैं, मेरा कहना तो यह था कि ईश्वर ने उस कारण से जगत् को रचा है।

और जो पादरी साहब ने कहा कि शक्ति से जगत् को रचा है तो मैं पूछता हूं कि शक्ति कोई वस्तु है वा नहीं ? जो कहो कि है तो वह अनादि हुई और जो कहो कि नहीं तो उससे आगे को दूसरी कोई वस्तु भी नहीं बन सकती।

जाता है, जब मोमबत्ती जलाते हैं तो देखने में वह मोम नहीं रहता, यह नहीं जान पड़ता कि कहां गया परन्तु उस मोम का स्वरूप बदल कर वायु के सदृश होजाता है और इसी कारण वायु में मिल जाने से दृष्टि में नहीं आता।

इसकी परीक्षा के लिये एक बोतल के भीतर मोमबत्ती जलाओ और उसका मुख बन्द करदो तो उस बत्ती का जितना भाग वायु के सदृश हो जावेगा वह बोतल से बाहर नहीं जा सकेगा पर थोड़ी देर के पीछे यह दिखलाई देगा कि वह बत्ती बुझ गई।

अब यह सोचना चाहिये कि बत्ती क्यों बुझ गई ! और बोतल के वायु में अब कुछ भेद हुआ वा नहीं ?

इस बात की परीक्षा इस प्रकार होगी कि थोड़ासा चूने का पानी उस बोतल में और एक और बोतल में, कि जिसमें केवल वायु भरा हुआ हो और उसमें कोई बत्ती न जली हो, डालो, तो यह दिखलाई देगा कि जिस बोतल में बत्ती जली है उसमें चूने का रंग दूध सा हो जावेगा और दूसरा बोतल का जैसे का तैसा रहेगा, इससे सिद्ध हुआ कि बत्ती के जलाने से कोई नई वस्तु बोतल के वायु में मिल गई है। वह एक वस्तु वायु के सदृश है कि जो दृष्टि में नहीं आता अब देखना चाहिये कि मोमबत्ती का कोई परमाणु नष्ट नहीं होता पर जिन पदार्थों से वह बत्ती बनी है उनका स्वरूप भिन्न होजाता है।

और जो पादरी साहब ने यह कहा कि पण्डितजी ने यह नहीं बताया कि किससे यह जगत् बना है, कदाचित् पादरी साहब ने नहीं सुना होगा मैंने तो जिससे यह कार्य जगत् बना है, उस को प्रकृति आदि नामों से, कि जिसको परमाणु भी कहते हैं, कहा था।

(मौलवी साहब के उत्तर में)

सब पदार्थों का कारण अनादि है तो भी ईश्वर को मानना अवश्य है, क्योंकि मट्टी में यह सामर्थ्य नहीं कि आप से आप घड़ा बन जाय। जो कारण होता है वह आप कार्य्यरूप नहीं बन सकता क्योंकि उसमें बनने का ज्ञान नहीं होता और कोई जीव भी उसको नहीं बना सकता आजतक किसी ने कोई वस्तु ऐसी नहीं बनाई जैसा कि यह मेरा रोम है, ऐसी वस्तु कोई नहीं बना सकता और आजतक ऐसा कोई मनुष्य नहीं हुआ और न है कि जो परमाणुओं को पकड़ के किसी युक्ति से उनसे ऐसा वस्तु बना सके, कोई दो त्रिसरेणुओं का भी संयोग नहीं कर सकता, इससे यह सिद्ध हुआ कि केवल उस परमेश्वर को ही यह सामर्थ्य है कि सब जगत् को रचे।

देखो एक आंख की रचना में ही कितनी विद्या का दृष्टान्त है, आजतक बड़े २ वैद्य अपनी बुद्धि लगाते चले आते हैं तो भी आंख की विद्या अधूरी ही है कोई नहीं जानता कि किस २ प्रकार और क्या २ गुण ईश्वर ने उसमें रक्खे हैं॥ इसलिये सूर्य चांद आदि जगत् का रचना और धारण करना ईश्वर ही का काम है तथा जीवों के कर्म्मों के फल का पहुंचाना यह भी परमात्मा ही का काम है किसी दूसरे का नहीं इससे ईश्वर को मानना अवश्य है।

एक हिन्दुस्तानी पादरी साहब.

जब दो वस्तु हैं एक कार्य्य दूसरा कारण तो दोनों अनादि नहीं हो सकते, इससे ईश्वर ने नास्ति से अस्ति अपनी सामर्थ्य से की है।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

गुण दो प्रकार के होते हैं एक अंतस्थ, दूसरा बाह्य, अंतस्थ तो अपने म होते हैं और बाह्य दूसरे से आने में आते हैं। और अंतस्थ गुण दूसरे में जाकर वैसे ही बन जाते हैं परन्तु जिसके गुण होते हैं वह उससे पृथक् होता है जैसे सूर्य का प्रतिबिम्ब जिस वर्तन में पड़ता है वैसा ही बन जाता है परन्तु सूर्य्य नहीं होजाता वैसे ही ईश्वर ने हमको अपनी इच्छा से बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(ईसाई साहब के उत्तर में)

आप दोनों के अनादि होने में क्यों शङ्का करते हैं क्योंकि जितने पदार्थ इस जगत् में बने हैं उन सब का कारण अर्थात् परमाणु आदि सब अनादि हैं और जीव भी अनादि हैं कि जिनकी संख्या कोई नहीं बता सकता और नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती सो मैं पहिले कह चुका हूं परन्तु आप जो कहते हैं कि शक्ति से बनाया तो बतलाओ कि शक्ति क्या वस्तु है? जो कहो कि कोई वस्तु है, तो फिर वही कारण ठहरने से अनादि हुई। और ईश्वर के नाम गुण कर्म सब अनादि हैं कोई अब नहीं बने॥

(मौलवी साहब के उत्तर में)

आप जो यह कहो कि भीतर के गुणों से जगत् बना है तो भी नहीं बन सकता क्योंकि गुण द्रव्य के विना अलग नहीं रह सकते और गुण द्रव्य से बन भी नहीं सकता। जब भीतर के गुणों से जगत् बना है तो जगत् भी ईश्वर हुआ, जो यह कहो कि बाहर के गुणों से जगत् बना तो ईश्वर के सिवाय आप को भी वे गुण और द्रव्य अनादि मानने पड़ेंगे। और जो यह कहो कि इच्छा से हम लोग बन गये तो मेरा यह प्रश्न है कि इच्छा कोई वस्तु है वा गुण है? जो वस्तु कहोगे तो वह अनादि ठहर जायगी और जो गुण मानोगे तो जैसे केवल इच्छा से घड़ा नहीं बन सकता परन्तु मट्टी से बनता है तो वैसे ही इच्छा से हम लोग नहीं बन सकते।

पादरी स्काट साहब.

हम लोग इतना जानते हैं कि नास्ति से अस्ति को ईश्वर ने बनाया, यह हम नहीं जानते कि किस पदार्थ से और किस प्रकार यह जगत् बनाया, इस को ईश्वर ही जानता है, मनुष्य कोई नहीं जान सकता।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

ईश्वर ने अपने प्रकाश से जगत् बनाया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर में)

कार्य को देख कर कारण को देखना चाहिये कि जो वस्तु कार्य है वैसा ही उस का कारण होता है, जैसे घड़े को देखकर उसका कारण मट्टी जान लिया जाता है, कि जो वस्तु घड़ा है वही वस्तु मट्टी है। आप कहते हैं कि अपनी शक्ति से जगत् को रचा सो मेरा यह प्रश्न है कि वह शक्ति अनादि है वा पीछे से बनी है? जो अनादि है तो द्रव्यरूप उसको मान लो, तो उसी को जगत् का अनादि कारण मानना चाहिये।

(मौलवी साहब के उत्तर में)

नूर कहते हैं प्रकाश को, उस प्रकाश से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बन सकता, परन्तु वह नूर मूर्तिमान् द्रव्य को प्रसिद्ध दिखला सकता है और वह प्रकाश करनेवाले पदार्थ के विना अलग नहीं रह सकता। इससे जगत् का जो कारण प्रकृति आदि अनादि है उस को माने विना किसी प्रकार से किसी का निर्वाह नहीं हो सकता। और हम लोग भी कार्य को अनादि नहीं मानते, परन्तु जिससे कार्य बना है उस कारण को अनादि मानते हैं।

एक हिन्दुस्तानी ईसाई साहब.

जो ईश्वर ने अपनी प्रकृति से सब संसार को रचा तो उसकी प्रकृति में सब

संसार सनातन था और वह उसकी प्रकृति में अनादि था तो ईश्वर की सीमा होगई।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

जब कि ईश्वर की प्रकृति में सब जगत् था तब ही तो वह अनादि हुआ और वही अनादि वस्तु रचने से सीमा में आई अर्थात् लम्बा, चौड़ा, बड़ा. छोटा आदि सब प्रकार का ईश्वर ने उस में से बनाया। इसलिये रचे जाने से केवल जगत् ही की सीमा हुई ईश्वर की नहीं॥

अब देखिये मैंने जो पहिले कहा था कि नास्ति से अस्ति कभी नहीं हो सकती किन्तु भाव से ही भाव होता है सो आप लोगों के कहने से भी वह बात सिद्ध होगई कि जगत् का कारण अनादि है।

ईसाई साहब.

सुनो भाई मौलवी साहबो ! कि पण्डितजी इसका उत्तर हज़ार प्रकार से दे सकते हैं हम और तुम हज़ारों मिल कर भी इन से बात करें तो भी पण्डितजी बराबर उत्तर दे सकते हैं, इसलिये इस विषय म अधिक कहना उचित नहीं।

ग्यारह बजे तक यह वार्त्ता सिद्ध हुई, फिर सब लोग अपने २ डेरों को चले गये और सब जगह मेले में यही बात चीत होती थी कि जैसा पण्डितजी को सुनते थे उससे सहस्रगुणा पाया।

दोपहर के पश्चात् की सभा

फिर एक बजे सब लोग आये और इस पर विचार किया कि अब समय बहुत थोड़ा और बातें बहुत बाक़ी हैं इसलिये केवल मुक्ति विषय पर विचार करना उचित है। प्रथम थोड़ी देर तक ये बातें होती रहीं कि पहिले कौन वर्णन करे, एक दूसरे पर टालता था। तब स्वामीजी ने कहा कि उसी क्रम से भाषण होना चाहिये अर्थात् पहिले पादरी साहब फिर मौलवी साहब और फिर मैं,

परन्तु जब पादरी साहब और मौलवी साहब दोनों ने कहा कि हम पहिले न बोलेंगे, तब स्वामीजी ने ही पहिले कहना स्वीकार किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

मुक्ति कहते हैं छूट जाने को, अर्थात् जितने दुःख हैं उनसे सब छूट कर एक सच्चिदानन्दरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण आदि दुःखसागर में नहीं गिरना इसी का नाम मुक्ति है।

वह किस प्रकार से होती है इसका पहिला साधन सत्य का आचरण है और वह सत्य आत्मा और परमात्मा की साक्षी से निश्चय करना चाहिये अर्थात् जिसमें आत्मा और परमात्मा की साक्षी न हो वह असत्य है, जैसे किसी ने चोरी की जब वह पकड़ा गया उससे राजपुरुष ने पूछा कि तू ने चोरी की या नहीं ? तबतक वह कहता है कि मैंने चोरी नहीं की परन्तु उसका आत्मा भीतर से कहरहा है कि मैंने चोरी की है तथा जब कोई झूठ की इच्छा करता है तब अन्तर्यामी परमेश्वर उसको जिता देता है कि यह बुरी बात है इसको तू मत कर और लज्जा शङ्का और भय आदि उसके आत्मा में उत्पन्न कर देता है और जब सत्य की इच्छा करता है तब उसके आत्मा में आनन्द कर देता है और प्रेरणा करता है कि यह काम तू कर। अपना आत्मा जैसे सत्य काम करने में निर्भय और प्रसन्न होता है, वैसे झूठ में नहीं होता। जब परमात्मा की आज्ञा को तोड़कर बुरा काम कर लेता है तब उसकी मुक्ति किसी प्रकार नहीं हो सकती और उसी को असुर, दुष्ट, दैत्य और नीच कहते हैं इस में वेद का प्रमाण है कि—

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः। तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥ यजुर्वेदे। अध्याये ४०। मन्त्र ३॥

आत्मा का हिंसन करनेवाला अर्थात् जो परमेश्वर की आज्ञा को तोड़ता है और अपने आत्मा के ज्ञान से विरुद्ध बोलता, करता और मानता है उसी का नाम असुर, राक्षस, दुष्ट, पापी, नीच आदि होता है॥

मुक्ति के मिलने के साधन ये हैं:—

१—सत्य का आचरण।

२—सत्यविद्या अर्थात् ईश्वरकृत वेदविद्या को यथावत् पढ़कर ज्ञान की उन्नति और सत्य का पालन यथावत् करना।

३—सत्पुरुष ज्ञानियों का सङ्ग करना।

४—योगाभ्यास करके अपने मन, इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से हटाकर सत्य में स्थिर करना और ज्ञान को बढ़ाना।

५—परमेश्वर की स्तुति करना अर्थात् उसके गुणों की कथा सुनना और विचारना।

६—प्रार्थना कि जो इस प्रकार होती है कि हे जगदीश्वर! हे कृपानिधे! हे अस्मत्पितः! असत्य से हम लोगों को छुड़ा के सत्य में स्थिर कर और हे भगवन्! हमको अन्धकार अर्थात् अज्ञान और अधर्म आदि दुष्ट कामों से अलग करके विद्या और धर्म आदि श्रेष्ठ कामों में सदा के लिये स्थापन कर और हे ब्रह्म! हम को जन्ममरणरूप संसार के दुःखों से छुड़ाकर अपनी कृपा-कटाक्ष से अमृत अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर।

जब सत्य मन से अपने आत्मा प्राण और सब सामर्थ्य में परमेश्वर को जीव भजता है तब वह करुणामय परमेश्वर उस को अपने आनन्द में स्थिर कर देता है, जैसे जब कोई छोटा बालक घर के ऊपर से अपने माता पिता के पास नीचे आना चाहता है वा नीचे से ऊपर उनके पास जाना चाहता है तब हज़ारों आवश्यकता के कामों को भी माता पिता छोड़कर और दौड़कर अपने लड़के को उठाकर गोद में लेते हैं कि हमारा लड़का कहीं गिर पड़ेगा तो उसको चोट लगने से दुःख होगा और जैसे माता पिता अपने बच्चों को सदा सुख में रखने की इच्छा और पुरुषार्थ सदा करते रहते हैं वैसे ही परम कृपा-निधि परमेश्वर की ओर जब कोई सच्चे आत्मा के भाव से चलता है तब वह

अनन्तशक्तिरूप हाथों से उस जीव को उठाकर अपनी गोद में सदा के लिये रखता है, फिर उसको किसी प्रकार का दुःख नहीं होने देता है और वह सदा आनन्द में रहता है। पक्षपात को छोड़कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके अर्थ को सिद्ध करना चाहिये। देखो सब अन्याय अधर्म और पक्षपात से होता है जैसे कि यह मौलवी साहब का वस्त्र बहुत अच्छा है मुझ को मिले तो मैं उसको ओढ़कर सुख पाऊं, इस में अपने सुख का पक्षपात किया और मौलवी साहब के सुख दुःख का कुछ विचार न किया। इसी प्रकार पक्षपात से ही नित्य अधर्म होता है। अधर्म से काम को सिद्ध करना इसी को अनर्थ कहते हैं और धर्म और अर्थ से कामना अर्थात् अपने सुख की सिद्धि करना इस को काम कहते हैं, और अधर्म अर्थात् अनर्थ से काम को सिद्ध करना इसको कुकाम कहते हैं इसलिये इन तीनों अर्थात् धर्म, अर्थ और काम से मोक्ष को सिद्ध करना उचित है। इसमें यह बात है कि ईश्वर की आज्ञा का पालन करना इसको धर्म और उसकी आज्ञा का तोड़ना इस को अधर्म कहते हैं सो धर्म आदि ही मुक्ति के साधन हैं और कोई नहीं और मुक्ति सत्य पुरुषार्थ से सिद्ध होती है अन्यथा नहीं।

पादरी स्काट साहब.

पण्डितजी ने कहा सब दुःखों से छूटने का नाम मुक्ति है, परन्तु मैं कहता हूं कि सब पापों से बचने और स्वर्ग में पहुंचने का नाम मुक्ति है कारण यह कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने उसको बहका के उस से पाप करा दिया, इससे उसकी सब सन्तान भी पापी है, जैसे घड़ी बनाने वाले ने उस की चाल स्वतन्त्र रक्खी है और वह आप ही चलती है ऐसे हा मनुष्य भी अपनी इच्छा से पाप करते हैं तो फिर अपने ऐश्वर्य से मुक्ति नहीं पा सकते और न पापों से बच सकते हैं। इसलिये प्रभु ईसामसीह पर विश्वास किये विना मुक्ति नहीं हो सकती जैसे हिन्दू लोग कहते हैं कि कलियुग मनुष्यों को पाप करा के बिगाड़ता है इससे उन की मुक्ति नहीं हो सकती परन्तु ईसा-मसीह पर विश्वास करने से वे भी बच सकते हैं।

प्रभु ईसामसीह जिस २ देश में गये अर्थात् उस की शिक्षा जहां २ गई है वहां २ मनुष्य पापों से बचते जाते हैं। देखो इस समय सिवाय ईसाइयों के और किसी के मत में भलाई और अच्छे गुणों की उन्नति है? मैं एक दृष्टान्त देता हूं कि जैसे पण्डितजी बलवान् हैं ऐसे ही इङ्गलिस्तान में एक मनुष्य बलवान् था परन्तु वह मद्यपान, चोरी, व्यभिचार आदि बुरे काम करता था जब वह ईसामसीह पर विश्वास लाया तब सब बुराइयों से छूट गया और मैंने भी जब मसीह पर विश्वास किया तब मुक्ति को पाया और बुरे कामों से बच गया, सो ईसामसीह की आज्ञा के विरुद्ध आचरण से मुक्ति नहीं हो सकती, इसलिये सब को ईसामसीह पर विश्वास लाना चाहिये, उसी से मुक्ति हो सकती है और किसी प्रकार नहीं।

मौलवी मुहम्मद क़ासम साहब.

हम लोग यह नहीं कह सकते कि पण्डितजी ने जो मुक्ति के साधन कहे केवल उन से ही मुक्ति हो सकती है! क्योंकि ईश्वर की इच्छा है जिसको चाहे उसको मुक्ति दे और जिसको न चाहे न दे, जैसे समय का हाकिम जिस अपराधी से प्रसन्न हो उसको छोड़ दे और जिससे अप्रसन्न हो उसको क़ैद में डाल दे। उसकी इच्छा है जो चाहे सो करे, उस पर हमारा ऐश्वर्य नहीं है, न जाने ईश्वर क्या करेगा, पर समय के हाकिम पर विश्वास रखना चाहिये, इस समय का हाकिम हमारा पैग़म्बर है उस पर विश्वास लाने से मुक्ति होती है। हां! यह बात अवश्य है कि विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं परन्तु मुक्ति तो केवल उसी के हाथ में है।

स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी.

(पादरी साहब के उत्तर में)

आपने जो यह कहा कि दुःखों से छूटना मुक्ति नहीं, पापों से छूटने का नाम मुक्ति है सो मेरे अभिप्राय को न समझ कर यह बात कही है क्योंकि मैं तो पहिले साधन में ही सब पापों अर्थात् असत्य कामों से बचना कह चुका हूं

और बुरे कामों का फल भी दुःख कहाता है अर्थात् जब पाप करेगा तो दुःख से नहीं बच सकता। इस के अनन्तर और साधनों में भी स्पष्ट कहा है कि अधर्म छोड़कर धर्म का आचरण करना मुक्ति का साधन है, जो पादरी साहब इन बातों को समझते तो कदाचित् ऐसी बात न कहते।

दूसरा जो आप यह कहते हैं कि ईश्वर ने आदम को पवित्र रचा था परन्तु शैतान ने बहका कर पाप करा दिया तो उसकी सन्तान भी इसी कारण से पापी होगई सो यह बात ठीक नहीं है क्योंकि आप लोग ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते ही हैं सो जब कि ईश्वर के पवित्र बनाये आदम को शैतान ने बिगाड़ दिया और ईश्वर के राज्य में विघ्न करके ईश्वर की व्यवस्था को तोड़ डाला तो इससे ईश्वर सर्वशक्तिमान् नहीं रह सकता और ईश्वर की बनाई हुई वस्तु को कोई नहीं बिगाड़ सकता है और एक आदम ने पाप किया तो उसकी सारी सन्तान पापी होगई यह सर्वथा असम्भव और मिथ्या है जो पाप करता है वही दुःख पाता है दूसरा कोई नहीं पा सकता और ऐसी बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा। और देखो एक आदम और हव्वा से किसी प्रकार इस जगत् की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती क्योंकि बहन और भाई का विवाह होना बड़े दोष की बात है, इसलिये ऐसी व्यवस्था मानना चाहिये कि सृष्टि के आदि में बहुतसे पुरुष और स्त्री परमेश्वर ने रचे।

और जो यह कहा कि शैतान बहकाता है तो मेरा यह प्रश्न है कि जब शैतान ने सब को बहकाया तो फिर शैतान को किसने बहकाया ? जो कहो कि शैतान आप से आप ही बहक गया तो सब जीव भी आप से आप ही बहक गये होंगे, फिर शैतान को बहकानेवाला मानना व्यर्थ है, जो कहो कि शैतान को भी किसी ने बहकाया है तो सिवाय ईश्वर के दूसरा कोई बहकाने वाला शैतान को नहीं है, तो फिर जब ईश्वर ने ही सब को बहकाया तब मुक्ति देनेवाला कोई भी आप लोगों के मत में न रहा और न मुक्ति पानेवाला, क्योंकि जब परमात्मा ही बहकानेवाला ठहरा तो बचानेवाला कोई भी नहीं हो सकता। और यह बात परमात्मा के स्वभाव से भी विरुद्ध है क्योंकि वह

न्यायकारी और सत्य कामों का ही कर्त्ता है तथा अच्छे कामों में ही प्रसन्न होता है, वह किसी को दुःख देनेवाला और बहकानेवाला नहीं।

और देखो कैसे आश्चर्य की बात है कि यदि शैतान ईश्वर के राज्य में इतना गड़बड़ करता है फिर भी ईश्वर उसको न दण्ड देता है, न मारता है, न कारागृह में डालता है, इससे स्पष्ट परमात्मा की निर्बलता पाई जाती है और विदित होता है कि परमात्मा ही को बहकाने की इच्छा है, इससे यह बात ठीक नहीं और न शैतान कोई मनुष्य है, जबतक शैतान के माननेवाले शैतान का मानना न छोड़ेंगे तबतक पाप करने से नहीं बच सकते क्योंकि वे समझते हैं कि हम तो पापी ही नहीं जैसा शैतान ने आदम को और उसकी सन्तान को बहका के पापी किया वैसा ही परमात्मा ने आदम की सन्तान के पाप के बदले में अपने एकलौते बेटे को शूली पर चढ़ा दिया फिर हम को क्या डर है और जो हम से कुछ पाप भी होता है तो हमारा विश्वास ईसामसीह पर है वह आप क्षमा करा देगा क्योंकि उसने हमारे पापों के बदले में जान दी है इसलिये ऐसी व्यवस्था माननेवाले पापों से नहीं बच सकते।

और जो घड़ी का दृष्टान्त दिया था सो ठीक है क्योंकि सब अपने २ काम करने में स्वतन्त्र हैं परन्तु ईश्वर की आज्ञा अच्छे कामों के करने के लिये है बुरे के लिये नहीं और जो आपने यह कहा कि स्वर्ग में पहुंचना मुक्ति है शैतान के बहकाने के कारण मनुष्यों में शक्ति नहीं कि पापों से छूट कर मुक्ति पासकें यह बात भी ठीक नहीं क्योंकि जब मनुष्य स्वतन्त्र हैं और शैतान कोई मनुष्य नहीं तो आप दोषों से बचकर परमात्मा की कृपा से मुक्ति को पा सकते हैं और स्वर्ग से आदम गेहूं खाने के कारण निकाला गया और यह ही आदम का पाप हुआ कि गेहूं खाया तो मैं आप से पूछता हूं कि आदम ने तो गेहूं खाया और पापी होगया और स्वर्ग से निकाला गया, आप लोग जो उस स्वर्ग की इच्छा करते हैं तो क्या आप लोग वहां सब पदार्थ खावेंगे ? तो क्या पाप नहीं होगा ? और वहां से निकाले नहीं जाओगे ? इससे यह बात भी ठीक नहीं हो सकती।

और आप लोगों ने ईश्वर को मनुष्य के सदृश माना होगा अर्थात् जैसे मनुष्य सर्वज्ञ नहीं वैसे ही आप ने परमात्मा को भी माना होगा कि जिससे आप वहां गवाही और वकील की आवश्यकता बतलाते हैं ? परन्तु आप के ऐसे कहने से ईश्वर की ईश्वरता सब नष्ट हो जाती है। वह सब कुछ जानता है, उसको गवाही और वकील की कुछ आवश्यकता नहीं है और उस को किसी की सिफ़ारिश की भी आवश्यकता नहीं क्योंकि सिफ़ारिश न जाननेवाले से की जाती है। और देखिये आप के कहने से परमात्मा पराधीन ठहरता है क्योंकि विना ईसामसीह की गवाही वा सिफ़ारिश के वह किसी को मुक्ति नहीं दे सकता और कुछ भी नहीं जानता इससे परमात्मा में अल्पज्ञता आती है कि जिससे वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ किसी प्रकार नहीं हो सकता। और देखो जब कि वह न्यायकारी है तो किसी की सिफ़ारिश और मिथ्या प्रशंसा से न्याय के विरुद्ध कदाचित् नहीं कर सकता, जो विरुद्ध करता है तो न्यायकारी नहीं ठहर सकता। इसी प्रकार जो आप मनुष्य हाकिम के सदृश ईश्वर के दरबार में भी फरिश्तों का होना मानोगे तो और बहुतसे दोष ईश्वर में आवेंगे, इससे ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता क्योंकि जो सर्वव्यापक है तो शरीरवाला न होना चाहिये और जो सर्वव्यापक नहीं है तो अवश्य है कि शरीरवाला हो और शरीरवाला होने से उसकी शक्ति सब पर घेरनेवाली न हुई, शरीरवाला जितना दूर का ज्ञान रखता है पर उसको पकड़ और मार नहीं सकता।

और जो शरीरवाला होगा उसका जन्म और मरण भी अवश्य होगा, इसलिये ईश्वर को किसी एक जगह पर और फरिश्तों का उसके दरबार में होना ऐसी बातें मानना किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता, नहीं तो ईश्वर की सीमा हो जायगी देखो हम आर्य्य लोगों के शास्त्रों को यथावत् पढ़े विना लोगों को उलटा निश्चय हो जाता है अर्थात् कुछ का कुछ मान लिया जाता है, जो पादरी साहब ने कलियुग के विषय में कहा सो ठीक नहीं क्योंकि हम आर्य्य लोग युगों की व्यवस्था इस प्रकार से नहीं मानते, इसमें ऐतरेय ब्राह्मण का प्रमाण है कि:—

कलिश्शयानो भवति सञ्जिहानस्तु द्वापरः ।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं सम्पद्यते चरन् ॥
एत० । पञ्चिका ७ । कण्डिका १५ ॥

अर्थात् जो पुरुष सर्वथा अधर्म करता है और नाममात्र धर्म करता है उसको कलि और जो आधा अधर्म और आधा धर्म करता है उसको द्वापर और एक हिस्सा अधर्म और तीन हिस्से धर्म करता है उसको त्रेता और जो सर्वथा धर्म करता है उसको सतयुग कहते हैं ॥

इसके जाने विना कोई बात कह देना ठीक नहीं हो सकती ॥

इससे जो कोई बुरा काम करता है वह दुःख पाने से कदाचित् नहीं बच सकता और जो कोई अच्छा काम करता है वह दुःख पाने से बच जाता है किसी ही देश में चाहे क्यों न हो ॥

क्या ईसामसीह के विना ईश्वर अपने सामर्थ्य से अपने भक्तों को नहीं बचा सकता है ? वह अपने भक्तों को सब प्रकार से बचा सकता है उसको किसी पैग़म्बर की आवश्यकता नहीं । हां ! यह सच है कि जब जिस २ देश में शिक्षा करनेवाले धर्मात्मा उत्तम पुरुष होते हैं, उस २ देश के मनुष्य पापों से बच जाते हैं और उन्हीं देशों में सुख और गुणों की वृद्धि होती है यह भी सब लोगों के लिये सुधार है इस का कुछ मत से प्रयोजन नहीं दखो आर्य लोगों में पूर्व उपदेश की व्यवस्था अच्छी थी इससे उस समय में वे सुधरे हुए थे इस समय में अनेक कारणों से सत्य उपदेश कम होने से जो किसी बात का बिगाड़ हो तो इससे आर्य लोगों के सनातन मत में कोई दोष नहीं आ सकता क्योंकि सृष्टि की उत्पत्ति के समय से लेके आजतक आर्यों ही का मत चला आता है वह कुछ बहुत नहीं बिगड़ा ॥

देखो जितने १८०० वा १३०० वर्षों के भीतर ईसाइयों और मुसलमानों के मतों में आपस के विरोध से फ़िरक़े होगये हैं उनके सामने जो १९६०८५२९७६ वर्षों के भीतर आर्यों के मत में बिगाड़ हुआ तो वह बहुत

ही कम है। और आप लोगों में जितना सुधार है सो मत के कारण नहीं किन्तु पार्लिमेण्ट आदि के उत्तम प्रबन्ध से है जो ये न रहें, मत से कुछ भी सुधार न हो और पादरी साहब ने जो इङ्गलिस्तान के दुष्ट मनुष्य का दृष्टान्त मेरे साथ मिला कर दिया सो इस प्रकार कहना उनको योग्य न था परन्तु न जाने किस प्रकार से यह बात भूल से उनके मुख से निकली।

(मौलवी साहब के उत्तर में)

ईश्वर चाहे सो करे ऐसा ठीक नहीं, क्योंकि वह पूर्ण विद्या और ठीक २ न्याय पर सदा रहता है, किसी का पक्षपात नहीं करता॥

इस कहने से कि जो चाहे सो करे यह भी आता है कि ईश्वर ही बुराई भी करता होगा और उसी की इच्छा से बुराई होती है यह कहना ईश्वर में नहीं बनता ईश्वर जो कोई मुक्ति का काम करता है उसी को मुक्ति देता है मुक्ति के काम के बिना किसी को मुक्ति नहीं देता, क्योंकि वह अन्याय कभी नहीं करता जो विना पाप पुण्य के देखे जिस को चाहे दुःख देवे और जिसको चाहे सुख तो ईश्वर में अन्याय आदि प्रमाद लगता है, सो वह ऐसा कभी नहीं करता, जैसे अग्नि का स्वभाव प्रकाश और जलाने का है इनके विरुद्ध नहीं कर सकता वैसे ही परमात्मा भी अपने न्याय के स्वभाव से विरुद्ध पक्षपात से कोई व्यवस्था नहीं कर सकता।

सब समय का हाकिम मुक्ति के लिये परमेश्वर ही है दूसरा कोई नहीं और जो कोई दूसरे को माने उसका मानना व्यर्थ है।

मुक्ति दूसरे पर विश्वास करने से कभी नहीं हो सकती क्योंकि ईश्वर जो मुक्ति देने में दूसरे के आधीन है या दूसरे के कहने से दे सकता है तो मुक्ति देने में ईश्वर पराधीन है तो वह ईश्वर ही नहीं हो सकता वह किसी का सहाय अपने काम में नहीं लेता क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् है।

मैं जानता हूं कि सब विद्वान् ऐसा ही मानते होंगे जो पक्षपात से औरों के दिखाने को न मानते हों ता दूसरी बात है।

इसमें मुझ को बड़ा आश्चर्य है कि परमात्मा को "लाशरीक" भी मानते हैं और फिर पैग़म्बरों को भी मुक्ति देने में उसके साथ मिला देते हैं ! यह बात कोई विद्वान् नहीं मानेगा ।

इससे यह सिद्ध होता है कि परमेश्वर धर्मात्मा मनुष्यों को मुक्ति के काम करने से मुक्ति स्वतन्त्रता से दे सकता है, किसी की सहायता के आधीन नहीं, मनुष्य को ही आपस में सहायता की आवश्यकता है ईश्वर को नहीं, न वह मिथ्या प्रसन्न होनेवाला है जो मिथ्या प्रसन्न होकर अन्याय करे, वह तो अपने सत्य धर्म और न्याय से सदा युक्त है और अपने सत्य प्रेम के भरे हुए भक्तों को यथावत् मुक्ति देकर और सब दुःखों से बचाकर सदा के लिये आनन्द में रखता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ।

इतने में चार बज गये । स्वामीजी ने कहा कि हमारा व्याख्यान बाक़ी है, मौलवी साहब ने कहा कि हमारे नमाज़ का समय आगया । पादरी स्काट साहब ने स्वामीजी से कहा कि हम को आप से एकान्त में कुछ कहना है, सो वे दोनों तो उधर गये, इधर एक ओर तो एक मौलवी मेज़ पर जूता पहने हुए खड़े होकर और दूसरी ओर पादरी अपने मत का व्याख्यान देने लगे ।

और कितने ही लोगों ने यह उड़ा दिया कि मेला हो चुका, तब स्वामीजी ने पादरी और आर्य लोगों से पूछा कि यह क्या गड़बड़ हो रहा है मौलवी लोग नमाज़ पढ़कर आये वा नहीं ? उन्होंने उत्तर दिया कि मेला तो हो चुका ! इस पर स्वामीजी बोले कि ऐसे झटपट मेला किसने समाप्त कर दिया, न किसी की सम्मति ली गई न किसी से पूछा गया अब आगे कुछ बात चीत होगी वा नहीं ? जब वहां बहुत गड़बड़ देखा और संवाद की कोई व्यवस्था न जान पड़ी तो लोगों ने स्वामीजी से कहा कि आप भी चलिये मेला तो पूरा हो ही गया, इस पर स्वामीजी ने कहा कि हमारी इच्छा तो यह थी कि कम से कम पांच दिन मेला रहता, इसके उत्तर में पादरी साहबों ने कहा कि हम दो दिन से अधिक नहीं रह सकते, फिर स्वामीजी आकर अपने डेरे पर धर्मसंवाद करने

लगे, उस दिन रात को पादरी स्काट साहब और दो पादरियों के साथ स्वामीजी के डेरे पर आये, स्वामीजी ने कुरसियां बिछवा कर आदरपूर्वक उनको बिठलाया और आप भी बैठ गये। फिर आपसमें बात चीत होने लगी, पादरी साहबों ने पूछा कि आवागमन सत्य है वा असत्य और इस का क्या प्रमाण है? स्वामीजी ने कहा कि आवागमन सत्य है और जो जैसे कर्म करता है वैसा ही शरीर पाता है, जो अच्छे काम करता है तो मनुष्य का और जो बुरे करता है तो पत्नी आदि का शरीर पाता है, और जो बहुत उत्तम काम करता है वह देवता अर्थात् विद्वान् और बुद्धिमान् होता है। देखो जब बालक उत्पन्न होता है। तब उसी समय अपनी माता का दूध पीने लगता है कारण यही है कि उसको पाहिले जन्म का अभ्यास बना रहता है यह भी एक प्रमाण है। और धनाढ्य, कङ्गाल, सुखी, दुखी, अनेक प्रकार के ऊंच नीच देखने से विदित होता है कर्मों का फल है। कर्म से देह और देह से आवागमन सिद्ध है, जीव अनादि हैं कि जिनका आदि और अन्त नहीं, जिस योनि से जीव जन्म लेता है उस का कुछ स्वभाव भी बना रहता है इसी कारण मनुष्य आदि विचित्र स्वभाव और प्रकृति आदि के होते हैं; इससे भी आवागमन सिद्ध है।

इसी प्रकार और बहुतसे प्रमाण आवागमन के हैं, परन्तु जीव का एक बार उत्पन्न होना और फिर कभी न होना इसका कुछ प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि जो मैंने कहा उसके विरुद्ध होना चाहिये था सो ऐसा होना असंभव है और फिर यह बात कि मरा और हवालात हुई अर्थात् जब क़यामत होगी तब उसका हिसाब किताब होगा तब तक बेचारा हवालात में रहा मानना अच्छा नहीं। फिर पादरी साहब चले गये॥

मौलवियों ने शाहजहांपुर जाकर मुन्शी इन्द्रमणिजी को लिखा कि जो आप यहां आवें तो हम आप से शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, परन्तु जब स्वामीजी और मुन्शीजी वहां पहुंचे तो किसी ने शास्त्रार्थ का नाम तक भी न लिया॥

ऋषि (७)काला(३)ङ्क(९)ब्रह्मा(१)ब्दे नभश्शुक्ले दले तिथौ।
द्वादश्यां मंगले वारे ग्रन्थोऽयं पूरितो मया॥ इति॥

शताब्दी-संस्करण

पंचमहायज्ञविधि:

पृष्ठ ८४६—८६०.

पंचमहायज्ञविधिः

—:o:—

आवृत्ति		सन् ई०		संख्या
प्रथम	...	१८७७	...	१०,०००
द्वितीय	...	१८८६	...	५०००
तृतीय	...	१८९१	...	५०००
चतुर्थ	...	१८९३	...	५०००
पंचम	...	१८९८	...	५०००
षष्ठ	...	१९०१	...	५०००
सप्तम	...	१९०५	...	५०००
अष्टम	...	१९०६	...	७०००
नवम	...	१९१०	...	१०,०००
दशम	...	१९१३	...	१०,०००
एकादश	...	१९१७	...	१०,०००
शताब्दीसंस्करण		१९२४	...	१०,०००
				८७,०००

अथ सन्ध्योपासनादि-

पञ्चमहायज्ञविधिः

यह पुस्तक नित्यकर्मविधि का है इसमें पञ्चमहायज्ञ का विधान है जिनके ये नाम हैं कि ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ और नृयज्ञ। उन के मंत्र, मंत्रों के अर्थ और जो जो करने का विधान लिखा है सो सो यथावत् करना चाहिये। एकान्त देश में अपने आत्मा, मन और शरीर को शुद्ध और शान्त करके उस उस कर्म में चित्त लगा के तत्पर होना चाहिये, इन नित्यकर्मों के फल ये हैं कि ज्ञानप्राप्ति से आत्मा की उन्नति और आरोग्यता होने से शरीर के सुख से व्यवहार और परमार्थ कार्य्यों की सिद्धि होना उससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये सिद्ध होते हैं। इन को प्राप्त होकर मनुष्यों को सुखी होना उचित है॥

अथ तेषां प्रकारः। तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याविधानं प्रोच्यते॥ तत्र सन्ध्याशब्दार्थः। सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या॥ तत्र रात्रिन्दिवयोः सन्धिवेलायामुभयोस्सन्ध्ययोः सर्वैर्मनुष्यैरवश्यं परमेश्वरस्यैव स्तुतिप्रार्थनोपासनाः कार्य्याः॥ आदौ शरीरशुद्धिः कर्त्तव्या॥ सा बाह्या जलादिना। आभ्यन्तरा रागद्वेषासत्यादित्यागेन॥ अत्र प्रमाणम्—अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ इत्याह मनुः अ० ५। श्लो० १०६॥ शरीरशुद्धेस्सकाशादात्मान्तःकरणशुद्धिरवश्यं सर्वैस्सम्पादनीया। तस्यास्सर्वोत्कृष्टत्वात्परब्रह्मप्राप्त्येकसाधनत्वाच्च॥ ततो मार्जनं कुर्य्यात्॥ नैवेश्वरध्यानादावालस्यं भवेदेतदर्थं शिरोनेत्राद्युपरि जलप्रक्षेपणं कर्त्तव्यम्। नोचेन्न॥

भाषार्थ

अब सन्ध्योपासनादि पांच महायज्ञों की विधि लिखी जाती है और उसमें

के मन्त्रों का अर्थ भी लिखा जाता है । पहिले संध्या शब्द का अर्थ यह है कि (संध्यायंति) भलीभांति ध्यान करते हैं वा ध्यान किया जाय परमेश्वर का जिसमें वह संध्या, सो रात और दिन के संयोग समय दोनों संध्याओं में सब मनुष्यों को परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये । पहिले बाह्य जलादि से शरीर की शुद्धि और राग द्वेष आदि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिये क्योंकि मनुजी ने ५ अध्याय के १०९ श्लोक (अद्भिर्गात्राणि इत्यादि) में यह लिखा है कि शरीर जल से, मन सत्य से, जीवात्मा विद्या और तप से और बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है, परन्तु शरीरशुद्धि की अपेक्षा अन्तःकरण की शुद्धि सब को अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि वही सर्वोत्तम और परमेश्वरप्राप्ति का एक साधन है तब कुशा वा हाथ से मार्जन करे अर्थात् परमेश्वर का ध्यान आदि करने के समय किसी प्रकार का आलस्य न आवे इसलिये शिर और नेत्र आदि पर जल प्रक्षेप करे, यदि आलस्य न हो तो न करना ॥

पुनर्न्यूनान्न्यूनांस्त्रीन् प्राणायामान् कुर्य्यात्

आभ्यंतरस्थं वायुं नासिकापुटाभ्यां बलेन बहिर्निस्सार्य्य यथाशक्ति बहिरेव स्तम्भयेत् पुनः शनैश्शनैर्गृहीत्वा किञ्चित्समवरुध्य पुनस्तथैव बहिर्निस्सारयेदवरोधयेच्चैवं त्रिवारं न्यूनातिन्यूनं कुर्य्यादनेनात्ममनसोः स्थितिं सम्पादयेत् ॥ ततो गायत्रीमन्त्रेण शिखां बद्ध्वा रक्षाञ्च कुर्य्यात् ॥ इतस्ततः केशा न पतेयुरेतदर्थं शिखाबन्धनम् ॥ प्रार्थितस्सन्नीश्वरस्सत्कर्मसु सर्वत्र सर्वदा रक्षेन्नः । एतदर्थं रक्षाकरणम् ॥

भाषार्थ

फिर कम से कम तीन प्राणायाम करे अर्थात् भीतर के वायु को बल से निकाल कर यथाशक्ति बाहर ही रोक दे फिर शनैः २ ग्रहण करके कुछ चिर भीतर ही रोकके बाहर निकाल दे और वहां भी कुछ रोके इस प्रकार कम से कम तीन वार करे । इससे आत्मा और मन की स्थिति सम्पादन करे इसके

अनन्तर गायत्री मन्त्र से शिखा को बांध के रक्षा करे इसका प्रयोजन यह है कि इधर उधर केश न गिरें सो यदि केशादि पतन न हो तो न करे और रक्षा करने का प्रयोजन यह है कि परमेश्वर प्रार्थित होकर सब भले कामों में सदा सब जगह में हमारी रक्षा करें ॥

अथाचमनमन्त्रः

ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ यजु० अ० ३६ । मं० १२ ॥

भाष्यम्

आप्लृ व्याप्तौ, अस्माद्धातोरप्शब्दः सिध्यति । दिवु क्रीडाद्यर्थः । अप्शब्दो नियतस्त्रीलिंगो बहुवचनान्तश्च (शन्नोदे०) देव्य आपः सर्वप्रकाशकस्सर्वानन्द-प्रदस्सर्वव्यापक ईश्वरः (अभिष्टये) इष्टानन्दप्राप्तये (पीतये) पूर्णानन्दभोगेन तृप्तये (नः) अस्मभ्यं (शं) कल्याणं (भवन्तु) अर्थात् भावयतु प्रयच्छतु । ता आपो देव्यः स एवेश्वरः (नः) अस्मभ्यं (शंयोः) शम् अभिस्रवन्तु अर्थात् सुखस्याभितः सर्वतो वृष्टिं करोतु । अप्शब्देनेश्वरस्य ग्रहणमत्र प्रमाणम् ॥

यत्र लोकांश्च कोशांश्चापो ब्रह्मजना विदुः । असंच यत्र सच्चान्तस्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेवसः ॥ अथ० कां० १० । अनु० ४ । व० २२ । मं० १० ॥

अनेन वेदमन्त्रप्रमाणेनाप्शब्देन परमात्मनोत्र ग्रहणं क्रियते ॥ एवमनेन मन्त्रेणेश्वरं प्रार्थयित्वा त्रिराचामेत् ॥ जलाभावश्चेन्नैव कुर्यात् । आचमनमप्यालस्यस्य कण्ठस्थकफस्य निवारणार्थम् ॥

भाषार्थ

अब आचमन करने का मन्त्र लिखते हैं (ओं शन्नोदेवी इत्यादि) इस का अर्थ यह है कि 'आप्लृ व्याप्तौ' इस धातु से अप् शब्द सिद्ध होता है वह सदा स्त्रीलिङ्ग और बहुवचनान्त है दिवु धातु अर्थात् जिसके क्रीड़ा आदि अर्थ

हैं उससे देवी शब्द सिद्ध होता है (देव्य आपः) सब का प्रकाशक सब को आनन्द देनेवाला और सर्वव्यापक ईश्वर (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द के लिये और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हमको (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हो अर्थात् हमारा कल्याण करे (ताः, आपो देव्यः) वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वथा वृष्टि करे । इस प्रकार इस मन्त्र से परमेश्वर की प्रार्थना करके तीन आचमन करे यदि जल न हो तो न करे । आचमन से गले के कफादि की निवृत्ति होना प्रयोजन है । यहां अप् शब्द से ईश्वर के ग्रहण करने में प्रमाण—(यत्र लोकांश्च) जिसमें सब लोक लोकान्तर (कोश) अर्थात् सब जगत् का कारण-रूप खज़ाना जिसमें असत् अदृश्यरूप आकाशादि और सत् स्थूल प्रकृत्यादि सब पदार्थ स्थित हैं उसी का नाम अप् है और वह नाम ब्रह्म का है तथा उसी को स्कंभ कहते हैं वह कौनसा देव और कहां है इसका यह उत्तर है कि (अन्तः) सब के भीतर व्यापक हो के परिपूर्ण हो रहा है उसी को तुम उपास्य, पूज्य और इष्टदेव जानो, इस वेदमन्त्र के प्रमाण से अप् नाम ब्रह्म का है ॥

अथेन्द्रियस्पर्शः

ओं वाक् वाक् । ओं प्राणः प्राणः । ओं चक्षुः चक्षुः । ओं श्रोत्रम् श्रोत्रम् । ओं नाभिः । ओं हृदयम् । ओं कण्ठः । ओं शिरः । ओं बाहुभ्यां यशोबलम् । ओं करतलकरपृष्ठे ॥

एभिः सर्वत्रेश्वरप्रार्थनया स्पर्शः कार्य्यः । सर्वे ईश्वरकृपयेन्द्रियाणि बलवन्ति तिष्ठन्त्वित्यभिप्रायः ॥

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्ज्जनमन्त्राः

ओं भूः पुनातु शिरसि । ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः । ओं स्वः पुनातु कण्ठे । ओं महः पुनातु हृदये । ओं जनः पुनातु नाभ्याम् । ओं तपः पुनातु पादयोः । ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि । ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥

भाष्यम्

ओमित्यस्य भूर्भुवः स्वरित्येतासां व्याख्या गायत्रीमन्त्रार्थे द्रष्टव्या। महरर्थात् सर्वेभ्यो महान् सर्वैः पूज्यश्च। सर्वेषां जनकत्वाज्जनः परमेश्वरः। दुष्टानां संतापकारकत्वात्स्वयं ज्ञानस्वरूपत्वात् (यस्य ज्ञानमयं तपः) इति वचनस्य प्रामाण्यात् तप ईश्वरः। यदविनाशि यस्य कदाचिद्विनाशो न भवेत् तत्सत्यं ब्रह्म व्यापकमिति बोध्यम्। इतीश्वरनामभिर्मार्जनं कुर्यात् ॥

अथ प्राणायाममन्त्राः

ओ भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम् ॥ तैत्ति० प्रपा० १०। अनु० ७१। इति प्राणायाममन्त्राः ॥

एतेषामुच्चारणार्थविचारपुरस्सरं पूर्वोक्तप्रकारेण प्राणायामान् कुर्यात् ॥

भाषार्थ

अथेन्द्रियस्पर्शः (ओं वाक् वागित्यादि) इस प्रकार से ईश्वर की प्रार्थना-पूर्वक इन्द्रियों का स्पर्श करे। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की प्रार्थना से सब इन्द्रिय बलवान् रहें। अब ईश्वर की प्रार्थना पूर्वक मार्ज्जन के मन्त्र लिखे जाते हैं (ओं भूः पुनातु शिरसीत्यादि) ओंकार भूः, भुवः और स्वः इनके अर्थ गायत्री मंत्र के अर्थ में देखलेना (महः) सब से बड़ा और सब का पूज्य होने से परमेश्वर को मह कहते हैं (जनः) सब जगत् के उत्पादक होने से परमेश्वर का जन नाम है (तपः) दुष्टों को संतापकारी और ज्ञानस्वरूप होने से ईश्वर को तप कहते हैं, क्योंकि (यस्येत्यादि) उपनिषद् का वाक्य इस में प्रमाण है, (सत्यं) अविनाशी होने से परमेश्वर का सत्य नाम है और व्यापक होने से 'ब्रह्म' नाम परमेश्वर का है। अर्थात् पूर्व मंत्रोक्त सब नाम परमेश्वर ही के हैं इस प्रकार ईश्वर के नामों के अर्थों का स्मरण करते हुए मार्जन करें। अब

प्राणायाम के मंत्र लिखते हैं (ओं भूरित्यादि) इनके उच्चारण और अर्थ विचार-पूर्वक उस प्रकार के अनुसार प्राणायामों को करे ॥

अथेश्वरस्य जगदुत्पादनद्वारा स्तुत्याऽघमर्षणमन्त्रा अर्थात् पापदूरीकरणार्थाः ॥

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २ ॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् । दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३ ॥ ऋ० अ० ८ । अ० ८ । व० ४८ ॥

भाष्यम्

(धाता) दधाति सकलं जगत् पोषयति वा स धातेश्वरः (वशी) वशं कर्तुं शीलमस्य सः (यथापूर्वम्) यथा तस्य सर्वज्ञे विज्ञाने जगद्रचनज्ञानमासीत् पूर्वकल्पसृष्टौ यथा रचनं कृतमासीत्तथैव जीवानां पुण्यपापानुसारतः प्राणिदेहानकल्पयत् (सूर्याचन्द्रमसौ) यौ प्रत्यक्षविषयौ सूर्यचन्द्रलोकौ (दिवम्) सर्वोत्तमं स्वप्रकाशमग्न्याख्यम् (पृथिवीम्) प्रत्यक्षविषयां (अन्तरिक्षम्) अर्थादुद्धयोर्लोकयोर्मध्यमाकाशं तत्रस्थांल्लोकांश्च (स्वः) मध्यस्थं लोकम् (अकल्पयत्) यथापूर्वं रचितवान् । ईश्वरज्ञानस्यापरिणामित्वात् पूर्णत्वादनन्तत्वात्सर्वदैकरसत्वाच्च नैव तस्य वृद्धिक्षयव्यभिचारश्च कदाचिद् भवन्ति । अतएव यथा पूर्वमकल्पयदित्युक्तम्, स एव वशीश्वरः (विश्वस्य मिषतः) सहजस्वभावेन (अहोरात्राणि) रात्रेर्दिवसस्य च विभागं यथापूर्वं (विदधत्) विधानं कृतवान् तस्य धातुर्वशिनः परमेश्वरस्यैव (अभीद्धात्) अभितः सर्वत इद्धात् दीप्तात् ज्ञानमयात् (तपसः) अर्थादनन्तसामर्थ्यात् (ऋतम्) यथार्थं सर्वविद्याधिकरणं वेदशास्त्रं सत्यं त्रिगुणमयं प्रकृत्यात्मकमव्यक्तं स्थूलस्य सूक्ष्मस्य जगतः कारणं चाध्यजायत यथापूर्वमुत्पन्नम् (ततो रात्री) या तस्मादेव सामर्थ्यात्प्रलयानन्तरं भवति सा रात्रिरजायत यथा पूर्वमुत्पन्नासीत् ॥ तम आसीत्तमसा गूढमग्रे ॥ ऋ० अ० ८ । अ० ७ । व० १७ । मं० ३ ॥ अग्रे सृष्टेः प्राकृतमोऽन्धकार एवासीत् तेन तमसा सकलं

जगदिदमुत्पत्तेः प्राग्गूढं गुप्तमर्थादृश्यमासीत् । (ततः समु०) तस्मादेव सामर्थ्यात्पृथिवीस्थोन्तरिक्षस्थश्च महान् (समुद्रः) अजायत यथापूर्वमुत्पन्न आसीत् (समुद्रादर्णवात्) पश्चात् संवत्सरः क्षणादिलक्षणः कालोध्यजायत । यावज्जगत्तावत्सर्वं परमेश्वरस्य सामर्थ्यादेवोत्पन्नमित्यवधार्य्यम् । एवमुक्तगुणं परमेश्वरं संस्मृत्य पापाद्भीत्वा ततो दूरे सर्वैर्जनैः स्थातव्यम् । नैव कदाचित्केनचित्स्वल्पमपि पापं कर्त्तव्यमितीश्वराज्ञास्तीति निश्चेतव्यम् । अनेनाघमर्षणं कुर्य्यादर्थात्पापानुष्ठानं सर्वथा परित्यजेत् ॥

भाषार्थ

अब अघमर्षण अर्थात् हे ईश्वर ! तू जगदुत्पादक है इत्यादि स्तुति करके पाप से दूर रहने के उपदेश का मंत्र लिखते हैं । (ओं ऋतञ्च सत्यमित्यादि) इसका अर्थ यह है कि (धाता) सब जगत् का धारण और पोषण करने वाला और (वशी) सब का वश करने वाला परमेश्वर (यथापूर्वम्) जैसा कि उस के सर्वज्ञ विज्ञान में जगत् के रचने का ज्ञान था और जिस प्रकार पूर्वकल्प की सृष्टि में जगत् की रचना थी और जैसे जीवों के पुण्य पाप थे उनके अनुसार से ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों के देह बनाये हैं (सूर्याचन्द्रमसौ) जैसे पूर्व कल्प में सूर्य चन्द्र लोक रचे थे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं (दिवम्) जैसा पूर्व सृष्टि में सूर्यादि लोकों का प्रकाश रचा था वैसा ही इस कल्प में भी रचा है तथा (पृथिवीम्) जैसी प्रत्यक्ष दीखती है (अन्तरिक्षम्) जैसा पृथिवी और सूर्य्यलोक के बीच में पोलापन है (स्वः) जितने आकाश के बीच में लोक हैं उनको (अकल्पयत्) ईश्वर ने रचा है जैसे अनादिकाल से लोक लोकान्तर को जगदीश्वर बनाया करता है वैसे ही अब भी बनाये हैं और आगे भी बनावेगा क्योंकि ईश्वर का ज्ञान विपरीत कभी नहीं होता, किन्तु पूर्ण और अनन्त होने से सर्वदा एकरस ही रहता है । उस में वृद्धि, क्षय और उलटापन कभी नहीं होता इसी कारण से (यथापूर्वमकल्पयत्) इस पद का ग्रहण किया है (विश्वस्य मिषतः) उसी ईश्वर ने सहजस्वभाव से जगत् के रात्रि, दिवस,

घटिका, पल और क्षण आदि को जैसे पूर्व थे वैसे ही (व्यदधत्) रचे हैं इसमें कोई ऐसी शंका करे कि ईश्वर ने किस वस्तु से जगत् को रचा है उसका उत्तर यह है कि (अभीद्धात्तपसः) ईश्वर ने अपने अनन्त सामर्थ्य से सब जगत् को रचा है। जो कि ईश्वर के प्रकाश से जगत् का कारण प्रकाशित और सब जगत् के बनाने की सामग्री ईश्वर के आधीन है (ऋतम्) उसी अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से सब विद्या का ख़ज़ाना वेदशास्त्र को प्रकाशित किया जैसा कि पूर्व सृष्टि में प्रकाशित था और आगे के कल्पों में भी इसी प्रकार से वेदों का प्रकाश करेगा (सत्यम्) जो त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व रजो और तमोगुण से युक्त है जिसके नाम अव्यक्त अव्याकृत सत् प्रधान प्रकृति है जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है सो भी (अध्यजायत) अर्थात् कार्यरूप होके पूर्व कल्प के समान उत्पन्न हुआ है (ततो रात्र्यजायत) उसी ईश्वर के सामर्थ्य से जो प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी के प्रमाण से रात्रि कहाती है सो भी पूर्व प्रलय के तुल्य ही होती है इस में ऋग्वेद का प्रमाण है कि जब जब विद्यमान सृष्टि होती है उसके पूर्व सब आकाश अन्धकाररूप रहता है और उसी अन्धकार में सब जगत् के पदार्थ और सब जीव ढके हुए रहते हैं उसी का नाम महारात्रि है (ततः समुद्रोऽर्णवः) तदनन्तर उसी सामर्थ्य से पृथिवी और मेघमण्डल में जो महासमुद्र है सो भी पूर्व सृष्टि के सदृश ही उत्पन्न हुआ है (समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उसी समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण, मुहूर्त्त, प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुआ है वेद से लेके पृथिवी पर्यन्त जो यह जगत् है सो सब ईश्वर के नित्य सामर्थ्य से ही प्रकाशित हुआ है और ईश्वर सब को उत्पन्न करके सब में व्यापक होके अन्तर्यामीरूप से सब के पाप पुण्यों को देखता हुआ पक्षपात छोड़ के सत्य न्याय से सब को यथावत् फल देरहा है ऐसा निश्चित जान के ईश्वर से भय करके सब मनुष्यों को उचित है कि मन, कर्म और वचन से पापकर्मों को कभी न करें। इसी का नाम अघमर्षण है अर्थात् ईश्वर सब के अन्तःकरण के कर्मों को देख रहा है इससे पापकर्मों का आचरण मनुष्य लोग सर्वथा छोड़ देवें ॥

शन्नोदेवीरिति पुनराचामेत् । ततो गायत्र्यादि मन्त्रार्थान् मनसा विचारयेत् । पुनः परमेश्वरेणैव सूर्य्यादिकं सकलं जगद्रचितमिति परमार्थस्वरूपं ब्रह्म चिन्तयित्वा परं ब्रह्म प्रार्थयेत् ॥

(शन्नोदेवीरिति) इस मन्त्र से तीन आचमन करे । तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुण और उपकार का ध्यान कर पश्चात् प्रार्थना करे अर्थात् सब उत्तम कामों में ईश्वर का सहाय चाहें और सदा पश्चात्ताप करें कि मनुष्यशरीर धारण करके हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं बनता । जैसा कि ईश्वर ने सब पदार्थों की उत्पत्ति करके सब जगत् का उपकार किया है वैसे हम लोग भी सब का उपकार करें, इस काम में परमेश्वर हम को सहाय करे कि जिससे हम लोग सब को सदा सुख देते रहें तदनन्तर ईश्वर की उपासना करें, जो दो प्रकार की है एक सगुण और दूसरी निर्गुण जैसे ईश्वर सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, चेतन, व्यापक, अन्तर्यामी, सब का उत्पादक, धारण करनेहारा मङ्गलमय शुद्ध, सनातन, ज्ञान और आनन्दस्वरूप है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष पदार्थों का देनेवाला, सब का पिता, माता, बन्धु, मित्र, राजा और न्यायाधीश है इत्यादि ईश्वर के गुण विचारपूर्वक उपासना करने का नाम सगुणोपासना है तथा निर्गुणोपासना इस प्रकार से करनी चाहिये कि ईश्वर अनादि अनन्त है जिसका आदि और अन्त नहीं, अजन्मा अमृत्यु जिसका जन्म और मरण नहीं, निराकार, निर्विकार, जिसका आकार और जिसमें कोई विकार नहीं जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श, शब्द, अन्याय, अधर्म, रोग, दोष, अज्ञान और मलीनता नहीं है जिसका परिमाण, छेदन बंधन, इन्द्रियों से दर्शन, ग्रहण और कम्पन नहीं होता, जो ह्रस्व, दीर्घ और शोकातुर कभी नहीं होता जिसको भूख, प्यास, शीतोष्ण, हर्ष और शोक कभी नहीं होते । जो उलटा काम कभी नहीं करता इत्यादि जो जगत् के गुणों से ईश्वर को अलग जान के ध्यान करना वह निर्गुणोपासना कहाती है । इस प्रकार प्राणायाम करके अर्थात् भीतर के वायु को बल से नासिका के द्वारा बाहर फेंक के यथाशक्ति बाहर ही रोक के पुनः धीरे धीरे भीतर लेके पुनः बल से बाहर फेंक के रोकने से मन और आत्मा को

स्थिर करके आत्मा के बीच में जो अन्तर्यामीरूप से ज्ञान और आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर है उसमें अपने आप को मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये जैसा गोताखोर जल में डुबकी मारके शुद्ध होके बाहर आता है वैसे ही सब जीव लोग अपने आत्माओं को शुद्ध ज्ञान आनन्दस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके नित्य शुद्ध करें ॥

अथ मनसा परिक्रमामन्त्राः

प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ १ ॥ दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी-रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥२॥ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकूरक्षितान्नमिषवः तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ३ ॥ उदीचीदिक् सोमोधिपतिः स्वजोरक्षिताशा-निरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ४ ॥ ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽ-धिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ५ ॥ ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पति-रधिपतिः श्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ ६ ॥ अथर्व० कां० ३ । अ० ६ । व० २७ । मं० १ । २ । ३ । ४ । ५ । ६ ॥

भाष्यम्

(प्राची दि०) सर्वासु दिक्षु व्यापकमीश्वरं संध्यायामग्न्यादिभिर्नामभिः प्रार्थयेत् । यत्र स्वस्य मुखं सा प्राची दिक् । तथा यस्यां सूर्य उदेति सापि प्राची

दिगस्ति । तस्या अधिपतिरग्निरर्थात् ज्ञानस्वरूपः परमेश्वरः (असितः) बन्धनरहितोऽस्माकं सदा रक्षिता भवतु । यस्यादित्याः प्राणाः किरणाश्चेषवस्तैः सर्वं जगद्रक्षति तेभ्य इन्द्रियाधिपतिभ्यश्शरीररक्षितृभ्य इषुरूपेभ्यः प्राणेभ्यो वारं वारं नमोस्तु । कस्मै प्रयोजनाय यः कश्चिदस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तं वः तेषां प्राणानां जम्भे अर्थाद्वशे दध्मः । यतस्तोनर्थान्निवर्त्य स्वमित्रो भवेत् वयं च तस्य मित्राणि भवेम ॥ १ ॥ (दक्षिणा०) दक्षिणस्या दिश इन्द्रः परमैश्वर्य्ययुक्तः परमेश्वरोऽधिपतिरस्ति स एव कृपयास्मान् रक्षिता भवतु । अग्रे पूर्ववदन्वयः कर्तव्यः ॥ २ ॥ तथा (प्रतीची दिग्०) अस्या वरुणः सर्वोत्तमोधिपतिः परमेश्वरोस्माकं रक्षिता भवेदिति पूर्ववत् ॥ ३ ॥ (उदीची०) सोमः सर्वजगदुत्पादकोऽधिपतिरीश्वरोऽस्माकं रक्षिता स्यादिति ॥ ४ ॥ (ध्रुवादिक्०) अर्थादधोदिक् अस्या विष्णुर्व्यापक ईश्वरोधिपतिः सोस्यामस्मान् रक्षेत् अन्यत्पूर्ववत् ॥ ५ ॥ (ऊर्ध्वादिक०) अस्या बृहस्पतिरर्थाद्बृहत्यावाचो बृहतो वेदशास्त्रस्य बृहतामाकाशादीनां च पतिर्बृहस्पतिर्यः सर्वजगतोधिपतिः स सर्वतोस्मान् रक्षेत् । अग्रे पूर्ववद्योजनीयम् ॥ सर्वे मनुष्याः सर्वशक्तिमन्तं सर्वगुरुं न्यायकारिणं दयालुं पितृवत्पालकं सर्वासु दिक्षु सर्वत्र रक्षकं परमेश्वरमेव मन्येरन्नित्यभिप्रायः ॥

भाषार्थ

(प्राचीदिगग्निरधिपतिः) जो प्राची दिक् अर्थात् जिस ओर अपना मुख हो उस ओर अग्नि जो ज्ञानस्वरूप अधिपति जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धनरहित (रक्षिता) सब प्रकार से रक्षा करने वाला (आदित्या इषवः) जिस के बाण आदित्य की किरण हैं । उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग वारम्वार नमस्कार करते हैं (रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु) जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं इनको हमारा नमस्कार हो इसलिये कि जो प्राणी अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिस अज्ञान से धार्मिक पुरुष का तथा पापी पुरुष का हम लोग द्वेष करते हैं । उन सब की बुराई को उन बाणरूप किरण मुखरूप के बीच में दग्ध कर देते

हैं कि जिससे किसी से हम लोग वैर न करें और कोई भी प्राणी हम से वैर न करे, किन्तु हम सब लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्तें ॥ १ ॥ (दक्षिणादिगिन्द्रोधिपतिः) जो हमारे दाहिनी ओर दक्षिण दिशा है उसका अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्य वाला है। (तिरश्चिराजीरक्षिता) जो पदार्थ कीट पतंग वृश्चिक आदि तिर्य्यक् कहाते हैं उनकी राजी जो पंक्ति है उनसे रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है। (पितर इषवः) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं (तेभ्यो नमो०) आगे का अर्थ पूर्व के समान जान लेना ॥ २ ॥ (प्रतीचीदिग् वरुणोधिपतिः) जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है उसमें वरुण जो सब से उत्तम सब का राजा परमेश्वर है (पृदाकूरक्षितान्नमिषवः) जो बड़े बड़े अजगर सर्प्पादि विषधारी प्राणियों से रक्षा करनेवाला है जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान हैं श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं (तेभ्यो नमो०) इसका अर्थ पूर्व मन्त्र के समान जान लेना ॥ ३ ॥ (उदीचीदिक् सोमोधिपतिः) जो अपनी बाईं ओर उत्तर दिशा है उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द करने वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये (स्वजोरक्षिता शनिरिषवः) जो अच्छी प्रकार अजन्मा और रक्षा करने वाला है जिसके बाण विद्युत् हैं (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ४ ॥ (ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः) ध्रुवदिशा अर्थात् जो अपने नीचे की ओर है उसमें विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना (कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः) जिसके हरित रंग वाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं उनसे अधोदिशा में हमारी रक्षा करे (तेभ्यो नमो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ५ ॥ (ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिः) जो अपने ऊपर दिशा है उसमें बृहस्पति जो कि वाणी का स्वामी परमेश्वर है उसको अपना रक्षक जाने जिस के बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं उनसे हमारी रक्षा करे (तेभ्यो०) आगे पूर्ववत् जान लेना ॥ ६ ॥

इति मनसा परिक्रमामन्त्राः

अथोपस्थानमन्त्राः

ओं उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १॥ य० अ० ३५। मं० १४॥

भाष्यम्

हे परमात्मन्! (सूर्य) चराचरात्मानं त्वां (पश्यन्तः) प्रेक्षमाणास्सन्तो वयम् (उदगन्म) अर्थात् उत्कृष्टश्रद्धावन्तो भूत्वा वयं भवन्तं प्राप्नुयाम कथंभूतं त्वां (ज्योतिः) स्वप्रकाशं (उत्तमम्) सर्वोत्कृष्टम् (देवत्रा) सर्वेषु दिव्यगुणवत्सु पदार्थेषु ह्यनन्तादिव्यगुणैर्युक्तं (देवम्) धर्म्मात्मनां मुमुक्षूणां मुक्तानां च सर्वानन्दस्य दातारं मोदयितारं च (उत्तरम्) जगत्प्रलयानन्तरं नित्यस्वरूपत्वाद्विराजमानम् (स्वः) सर्वानन्दस्वरूपं (तमसस्परि) अज्ञानान्धकारात्पृथग्भूतं भवन्तं प्राप्तुं वयं न: प्रार्थयामहे। भवान् स्वकृपया सद्यः प्राप्नोतु न इति॥ १॥

भाषार्थ

अब उपस्थान के मन्त्रों का अर्थ करते हैं जिनसे परमेश्वर की स्तुति और प्रार्थना की जाती है, हे परमेश्वर! (तमसस्परिस्वः) सब अन्धकार से अलग प्रकाशस्वरूप (उत्तरम्) प्रलय के पीछे सदा वर्त्तमान (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करनेवालों में प्रकाशक (सूर्य) चराचर के आत्मा (ज्योतिरुत्तमम्) जो ज्ञानस्वरूप और सब से उत्तम आप को जान के (वयमुदगन्म) हम लोग सत्य से प्राप्त हुए हैं हमारी रक्षा करनी आप के हाथ है क्योंकि हम लोग आप के शरण हैं॥ १॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्॥ २॥ यजु० अ० ३३। मं० ३१॥

भाष्यम्

(केतवः) किरणा विविधजगतः पृथक् पृथग्रचनादिनियामका ज्ञापकाः प्रकाशका ईश्वरस्य गुणाः (दृशे विश्वाय) विश्वं द्रष्टुं (त्यं) तं पूर्वोक्तं

(देवम्) (सूर्य्यं) चराचरात्मानं परमेश्वरं (उद्वहन्ति) उत्कृष्टतया प्रापयन्ति ज्ञापयन्ति प्रकाशयन्ति वै। (उ) इति वितर्के नैव पृथक् पृथग् विविधनियमान् दृष्ट्वा नास्तिका अपीश्वरं त्यक्तुं समर्था भवन्तीत्यभिप्रायः। कथंभूतं देवं (जातवेदसं) जाता ऋग्वेदादयश्चत्वारो वेदाः सर्वज्ञानप्रदाः यस्मात्तथा जातानि प्रकृत्यादीनि भूतान्यसंख्यशतानि विन्दति। यद्वा जातं सकलं जगद्वेत्ति जानाति यः स जातवेदास्तं जातवेदसं सर्वे मनुष्यास्तमेवैकं प्राप्तुमुपासितुमिच्छन्त्वित्यभिप्रायः॥ २॥

भाषार्थ

(उदुत्यं जातवेदसं०) जिससे ऋग्वेदादि चार वेद प्रसिद्ध हुए हैं और जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है। जो सब जगत् का उत्पादक है सो परमेश्वर जातवेदा नाम से प्रसिद्ध है (देवं) जो सब देवों का देव और (सूर्य्य) सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है (त्यं) उस परमात्मा को (दृशे विश्वाय०) विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं (उद्वहन्ति केतवः) जिस को 'केतवः' अर्थात् वेद की श्रुति और जगत् के पृथक् रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जानते और प्राप्त करते हैं उस विश्व के आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की हम उपासना सदा करें अन्य किसी की नहीं॥ २॥

चित्रं देवानामुद॑गादनी॑कं चक्षु॑र्मित्रस्य॒ वरु॑णस्याग्नेः। आप्रा॒द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च॒ स्वाहा॑॥ ३॥ य० अ० ७। मं० ४२॥

भाष्यम्

(चित्रं०) स एव देवः (सूर्य्यः) (जगतः) जङ्गमस्य (तस्थुषः) स्थावरस्य च (आत्मा) अतति नैरंतर्य्येण सर्वत्र व्याप्नोतीत्यात्मा तथा (आप्रा०) द्यौः पृथिवी अन्तरिक्षं चैतदादिसर्वं जगद्रचयित्वा आसमन्ताद्धारयन्सन् रक्षति। (चक्षुः) एष एवैतेषां प्रकाशकत्वाद्बाह्याभ्यन्तरयोश्चक्षुः प्रकाशको विज्ञानमयो विज्ञापकश्चास्ति। अतएव (मित्रस्य) सर्वेषु द्रोहरहितस्य मनुष्यस्य सूर्य्यलोकस्य प्राणस्य वा (वरुणस्य) वरेषु श्रेष्ठेषु कर्मसु गुणेषु वर्त्तमान-

स्य च (अग्नेः) शिल्पविद्याहेतो रूपगुणदाहप्रकाशकस्य विद्युतो भ्राजमानस्यापि चक्षुः सर्वसत्योपदेष्टा प्रकाशकश्च (देवानाम्) स दिव्यगुणवतां विदुषामेव हृदये (उदगात्) उत्कृष्टतया प्राप्तोऽस्ति प्रकाशको वा तदेव ब्रह्म (चित्रम्) अद्भु-तस्वरूपम् ॥ अत्र प्रमाणम्—आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ कठोपनि० वल्ली २ । आश्चर्यस्वरूपत्वाद्ब्रह्मणस्तदेव ब्रह्म सर्वेषां चास्माकं (अनीकं) सर्वदुःखनाशार्थं कामक्रोधादिशत्रुविनाशार्थं बलमस्ति तद्विहाय मनुष्याणां सर्वसुखकरं शरणमन्यन्नास्त्येवेति वेद्यम् । (स्वाहा) अथात्र स्वाहाशब्दार्थे प्रमाणं निरुक्तकारा आहुः । स्वाहा कृतयः स्वाहेत्येतत्सु आहेति वा स्वा वागाहेति स्वं प्राहेति वा स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा तासामेषा भवति । निरु० अ० ८ । खं० २० । स्वाहाशब्दस्यायमर्थः (सु आहेति वा) (सु) सुष्ठु कोमलं मधुरं कल्याणकरं प्रियं वचनं सर्वैर्मनुष्यैः सदा वक्तव्यम् (स्वा वागाहेति वा) या स्वकीया वाग् ज्ञानमध्ये वर्त्तते सा सदाह तदेव वागिन्द्रियेण सर्वदा वाच्यम् । (स्वं प्राहेति वा) स्वं स्वकीयपदार्थं प्रत्येव स्वत्वं वाच्यम् । न परपदार्थं प्रतिचेति (स्वाहुतं ह०) सुष्ठुरीत्या संस्कृत्य संस्कृत्य हविः सदा होतव्यमिति स्वाहाशब्दपर्य्यायार्थाः स्वमेव पदार्थं प्रत्याह वयं सर्वदा सत्यं वदाम इति न कदाचित्परपदार्थं प्रति मिथ्या वदेमेति ॥ ३ ॥

भाषार्थ

(चित्रं देवाना०) (सूर्य्य आत्मा०) प्राणी और जड़ जगत् का जो आत्मा है उसको सूर्य्य कहते हैं (आप्राद्या०) जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बनाके धारण और रक्षण करने वाला है (चक्षुर्मित्रस्य०) जो मित्र अर्थात् राग द्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षु प्रकाश करने वाला है (वरुणस्या०) सब उत्तम कामों में जो वर्त्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है (चित्रं देवाना०) जो अद्भुतस्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है (अनीकम्) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है वह परमेश्वर (उदगात्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे ॥ ३ ॥

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳬ शृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥ य० अ० ३६ । मं० २४ ॥

भाष्यम्

(तच्चक्षुः) यत्सर्वदृक् (देवहितम्) देवेभ्यो हितं दिव्यगुणवतां धर्मात्मनां विदुषां स्वसेवकानां च हितकारि वर्त्तते यत् (पुरस्तात्) पूर्वसृष्टेः प्राक् (शुक्रम्) सर्वजगत्कर्तृ शुद्धमासीदिदानीमपि तादृशमेव चास्ति । तदेव (उच्चरत्) अर्थात् उत्कृष्टतया सर्वत्र व्याप्तं विज्ञानस्वरूपं (उद्) प्रलयादूर्ध्वं सर्वसामर्थ्यं स्थास्यति (तत्) ब्रह्म (पश्येम शरदः शतम्) वयं शतं वर्षाणि तस्यैव प्रेक्षणं कुर्महे । तत्कृपया (जीवेम शरदः शतम्) शतं वर्षाणि प्राणान् धारयेमहि (शृणुयाम शरदः शतम्) तस्य गुणेषु श्रद्धाविश्वासवन्तो वयं तमेव शृणुयाम तथा च तद् ब्रह्म तद्गुणांश्च (प्रब्रवाम श०) अन्येभ्यो मनुष्येभ्यो नित्यमुपादिशेम (अदीनाः स्याम श०) एवं च तदुपासनेन तद्विश्वासेन तत्कृपया च शतवर्षपर्य्यन्तमदीनाः स्याम भवेम मा कदाचित्कस्यापि समीपे दीनता कर्त्तव्या भवेन्नो दारिद्र्यं च सर्वदा सर्वथा ब्रह्मकृपया स्वतंत्रा वयं भवेम तथा (भूयश्च श०) वयं तस्यैवानुग्रहेण भूयः शताच्छरदः शताद्वर्षेभ्योऽप्यधिकं पश्येम, जीवेम, शृणुयाम, प्रब्रवाम, अदीनाः स्याम, चेत्यन्वयः । अर्थान्नैव मनुष्यास्तमतिकृपालुं परमेश्वरं त्यक्त्वान्यमुपासीरन् याचेरन्नित्यभिप्रायः ॥ योऽन्यां देवतामुपास्ते पशुरेवᳬ स देवानाम् । श० का० १४ । अ० ४ ॥ सर्व मनुष्याः परमेश्वरमेवोपासीरन् यस्तस्मादन्यस्योपासनां करोति स इन्द्रियारामो गर्दभवत्सर्वैशिशष्टैर्विज्ञेय इति निश्चयः ॥ ४ ॥ कृतांजलिरत्यन्तश्रद्धालुर्भूत्वैतैर्मन्त्रैः स्तुवन् सर्वकालसिध्यर्थं परमेश्वरं प्रार्थयेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थ

(तच्चक्षुर्देवहितम्०) जो ब्रह्म सब का द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्) सृष्टि के पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्यस्वरूप से वर्त्तमान रहता और सब जगत् का करने वाला है (पश्येम शरदः

शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्य्यन्त देखें (जीवेम शरदः शतम्) जीवें (शृणुयाम शरदः शतम्) सुनें (प्रब्रवाम श०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें (अदीनाः स्याम०) और उस की कृपा से किसी के आधीन न रहें (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें अर्थात् आरोग्य शरीर, दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्दसहित हमारा आत्मा सदा रहे। यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों का उपास्यदेव है जो मनुष्य इसको छोड़ के दूसरे की उपासना करता है वह पशु के समान होके सब दिन दुःख भोगता रहता है इसलिये प्रेम में अत्यन्त मग्न होके अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ के इन मन्त्रों से स्तुति और प्रार्थना सदा करते रहें ॥ ४ ॥

अथ गुरुमन्त्रः

ओ३म् । यजु० अ० ४० । मं० १७ । भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि ॥ धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ य० अ० ३६ । मं० ३ ॥ ऋ० मंड० ३ । सू० ६२ । मं० १० । एवं चतुर्षु वेदेषु समानो मन्त्रः ॥ १ ॥

भाष्यम्

अस्य सर्वोत्कृष्टस्य गायत्रीमन्त्रस्य संक्षेपेणार्थ उच्यते अ उ म् एतत्त्रयं मिलित्वा 'ओम्' इत्यक्षरं भवति ॥ यथाह मनुः—अकारं चाप्युकारं च, मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति च ॥ म० अ० २ ॥ एतच्च सर्वोत्तमं प्रसिद्धतमं परब्रह्मणो नामास्ति । एतेनैकेनैव नाम्ना परमेश्वरस्यानेकानि नामान्यागच्छन्तीति वेद्यम् । तद्यथा—अकारेण विराडग्निविश्वादीनि । (विराट्) विविधं चराचरं जगद्राजयते प्रकाशयते स विराट् सर्वात्मेश्वरः । (अग्निः) अच्यते प्राप्यते सत्क्रियते वा वेदादिभिः शास्त्रैर्विद्वद्भिश्चेत्यग्निः परमेश्वरः । (विश्वः) विष्टानि सर्वाण्याकाशादीनि भूतानि यस्मिन्स विश्वः । यद्वा विष्टोऽस्ति प्रकृत्यादिषु यः स विश्वः एतदाद्यर्था अकारेण विज्ञेयाः । उकारेण हिरण्यगर्भवायुतैजसादीनि । तद्यथा । (हिरण्यगर्भः) हिरण्यानि सूर्य्यादीनि तेजांसि गर्भे

यस्य तथा सूर्य्यादीनां तेजसां यो गर्भोऽधिष्ठानं स हिरण्यगर्भः। अत्र प्रमाणम्— ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृतꣳ हिरण्यम्। श० का० ६। अ० ७। यशो वै हिरण्यम्। ऐ० पं० ७। अ० ३। (वायुः) यो वाति जानाति धारयत्यनन्तबलत्वात्सर्वं जगत्स वायुः सर्वेश्वर एव भवितुमर्हति नान्यः। (तद्वायुरिति) मन्त्रवर्णार्थाद्ब्रह्मणो वायुसंज्ञास्ति (तैजसः) सूर्य्यादीनां प्रकाशकत्वात्स्वयं प्रकाशत्वात्तैजस ईश्वरः। एतदाद्यर्था उकाराद्विज्ञातव्याः। मकारेणेश्वरादित्यप्राज्ञादीनि नामानि बोध्यानि। तद्यथा। (ईश्वरः) ईष्टेऽसौ सर्वशक्तिमान्न्यायकारीश्वरः। (आदित्यः) अविनाशित्वादादित्यः परमात्मा। (प्राज्ञः) प्रजानाति सकलं जगदिति प्रज्ञः प्रज्ञ एव प्राज्ञश्च परमात्मैवेति। एतदाद्यर्था मकारेण निश्चेतव्या ध्येयाश्चेति॥

अथ महाव्याहृत्यर्थाः संक्षेपतः

भूरिति वै प्राणः। भुवरित्यपानः। स्वरिति व्यानः। इति तैत्तिरीयोपनिषद्वचनम्। प्रपा० ७। अनु० ६। (भूः) प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः स प्राणः प्राणादपि प्रियस्वरूपो वा सर्वेश्वर एवायमर्थो भूशब्दस्य ज्ञेयः (भुवः) यो मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्मात्मनां सर्वं दुःखमपानयति दूरीकरोति सोऽपानो दयालुरीश्वरोऽस्त्ययं भुवः शब्दार्थोऽस्तीति बोध्यम् (स्वः) यदभिव्याप्य व्यानयति चेष्टयति प्राणादि सकलं जगत्स व्यानः सर्वाधिष्ठानं बृहद्ब्रह्मेति खल्वयं स्वः शब्दार्थोऽस्तीति मन्तव्यम्। एतदाद्यर्था महाव्याहृतीनां ज्ञातव्याः॥ (सविता) सुनोति सूयते सुवति वोत्पादयति सृजति सकलं जगत्स सर्वपिता सर्वेश्वरः सविता परमात्मा, सवितुः प्रसव इति मन्त्रपदार्थादुत्पत्तेः कर्त्ता योऽर्थोऽस्ति स सवितेत्युच्यत इति मन्तव्यम्॥ (वरेण्यम्) यद्वरं वर्तुमर्हमतिश्रेष्ठं तद्वरेण्यम् (भर्गः) यन्निरुपद्रवं निष्पापं निर्गुणं शुद्धं सकलदोषरहितं पक्वं परमार्थविज्ञानस्वरूपं तद्भर्गः। (देवस्य) दीव्यति यः प्रकाशयति खल्वानन्दयति सर्वं विश्वं स देवः। तस्य (देवस्य) (धीमहि) तमेव परमात्मानं वयं नित्यमुपासीमहि। कस्मै प्रयोजनाय तस्य धारणेन विज्ञानादिबलेनैव वयं पुष्टा दृढाः सुखिनश्च भवेमेत्यस्मै प्रयोजनाय तथाच (धियो) धारणवत्यो बुद्धयः (यः) परमेश्वरः (नः) अस्माकं (प्रचोदयात्) प्रेरयेत्। हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप,

हे नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव, हे अज, हे निराकार, सर्वशक्तिमन्, न्यायकारिन्, हे करुणामृतवारिधे ! (सवितुर्देवस्य) तव यद्वरेण्यं भर्गस्तद्वयं धीमहि कस्मै प्रयोजनाय (यः) सविता देवः परमेश्वरः स नोऽस्माकं धियो बुद्धीः प्रचोदयात् । योहि सम्यग्ध्यातः प्रार्थितः सर्वेष्टदेवः परमेश्वरः स्वकृपाकटाक्षेण स्वशक्त्या च ब्रह्मचर्यविद्याविज्ञानसद्धर्मजितेन्द्रियत्वपरब्रह्मानन्दप्राप्तिमतीरस्माकं धियः कुर्य्या-दस्मै प्रयोजनाय । तत्परमात्मस्वरूपं वयं धीमहीति संक्षेपतो गायत्र्यर्थो विज्ञेयः । एवं प्रातः सायं द्वयोः सन्ध्योरेकान्तदेशं गत्वा शान्तो भूत्वा यतात्मा सन् परमेश्वरं प्रतिदिनं ध्यायेत् ॥

भाषार्थ

अथ गुरुमन्त्रः

(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है सो यह परमेश्वर के सब नामों में उत्तम नाम है जिसमें सब नामों के अर्थ आजाते हैं जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसे ही ओंकार के साथ परमात्मा का सम्बन्ध है, इस एक नाम से ईश्वर के सब नामों का बोध होता है जैसे अकार से (विराट्) जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है । (अग्निः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वत्र प्राप्त होरहा है । (विश्वः) जिसमें सब जगत् प्रवेश कर रहा है और जो सर्वत्र प्रविष्ट है । इत्यादि नामार्थ अकार से जानना चाहिये । उकार से (हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्य्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करनेहारे सूर्य्यादि लोकों का उत्पन्न करनेवाला है । इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं, ज्योति के नाम हिरण्य, अमृत और कीर्त्ति हैं । (वायुः) जो अनन्त बलवाला और सब जगत् का धारण करनेहारा है (तैजसः) जो प्रकाशस्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकारमात्र से जानना चाहिये । तथा मकार से (ईश्वरः) जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है (आदित्यः) जो नाशरहित है (प्राज्ञः) जो ज्ञानस्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना, यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया गया । अब संक्षेप से

महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं–(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय है । इससे परमेश्वर का नाम (भूः) है (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करनेवालों मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिये परमेश्वर का नाम (भुवः) है । (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक होके सब को नियम में रखता और सब का ठहरने का स्थान तथा सुखस्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम (स्वः) है, यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिख दिया ॥ अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं–(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य्य का देनेवाला है, (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश करनेवाला और सब सुखों का दाता है, (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है, (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेमभक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें, किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों में प्रवृत्त करे इसलिये सब लोगों को चाहिये कि सत् चित् आनन्दस्वरूप, नित्यज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, व्यापक, कृपालु सब जगत् के जनक और धारण करनेहारे परमेश्वर ही की सदा उपासना करें कि जिससे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जो मनुष्यदेहरूप वृक्ष के चार फल हैं वे उसकी भक्ति और कृपा से सर्वथा सब मनुष्यों को प्राप्त हों। यह गायत्री मन्त्र का अर्थ संक्षेप से होचुका ॥

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः । तत ईश्वरं नमस्कुर्यात् ॥

नमः॑ शम्भ॒वाय॑ च मयोभ॒वाय॑ च॒ नमः॑ शङ्क॒राय॑ च मयस्क॒राय॑ च॒ नमः॑ शि॒वाय॑ च शि॒वत॑राय च॒ ॥ १ ॥ य० अ० १६ । मं० ४१ ॥

भाष्यम्

(नमः शम्भवाय च) यः सुखस्वरूपः परमेश्वरोऽस्ति तं वयं नमस्कुर्म्महे । (मयोभवाय च) यः संसारे सर्वोत्तमसौख्यप्रदातास्ति तं वयं नमस्कुर्म्महे । (नमः शङ्कराय च) यः कल्याणकारकः सन् धर्मयुक्तानि कार्य्याण्येव करोति तं वयं नमस्कुर्महे । (मयस्कराय च) यः स्वभक्तान् सुखकारकत्वाद्धर्मकार्येषु युनक्ति तं वयं नमस्कुर्महे । (नमः शिवाय च शिवतराय च) योऽत्यन्तमङ्गल-स्वरूपः सन् धार्मिकमनुष्येभ्यो मोक्षसुखप्रदातास्ति तस्मै परमेश्वरायास्मा-कमनेकधा नमोऽस्तु ॥

भावार्थ

इस प्रकार से सब मन्त्रों के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक् उपासना करके आगे समर्पण करे कि हे ईश्वर दयानिधे ! आपकी कृपा से जो २ उत्तम काम हम लोग करते हैं वे सब आपके अर्पण हैं जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है । इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो ॥ इति समर्प्पणम् ॥ इस के पीछे ईश्वर को नमस्कार करे (नमः शंभवाय च) जो सुखस्वरूप, (मयोभवाय च) संसार के उत्तम सुखों का देने वाला, (नमः शङ्कराय च) कल्याण का कर्त्ता, मोक्ष-स्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला, (मयस्कराय च) अपने भक्तों को सुख का देनेवाला और धर्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवाय च शिवतराय च) अत्यन्त मङ्गलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने-हारा है उसको हमारा वारंवार नमस्कार हो ॥

इति सन्ध्योपासनविधिः

अथाग्निहोत्रसन्ध्योपासनयोः प्रमाणानि

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम ॥ १ ॥ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता। वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ २ ॥

अथर्व० कां० १९। अनु० ७। मं० ३। ४॥ तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते। स ज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनात्सोऽस्याःकालः सा सन्ध्या तत् सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम्। षड्विंश ब्रा० प्रपा० ४। खं० ५। उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ तैत्तिरीय आ० २। प्रपा० २। अनु० २॥ न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यःसर्वस्माद्द्विजकर्मणः ॥ मनु० अ० २। श्लो १०३॥ (सायंसायं) अयं नोऽस्माकं गृहपतिर्गृहात्मपालको भौतिकः परमेश्वरश्च (प्रातःप्रातः) तथा (सायंसायं) च परिचरितस्सूपासितः सन् (सौमनस्य दाता) आरोग्यस्यानन्दस्य च दाता भवति तथा (वसोर्व०) उत्तमोत्तमपदार्थस्य च। अतएव परमेश्वरः। (वसुदानः) वसुप्रदातास्ति। हे परमेश्वर! एवंभूतस्त्वमस्माकं राज्यादिव्यवहारे हृदये च (एधि) प्राप्तो भव तथा भौतिकोऽप्यग्निरत्र ग्राह्यः (वयं त्वे) हे परमेश्वर! एवं त्वा त्वामिन्धानाः प्रकाशयितारस्सन्तो वयं (तन्वम्) शरीरम् (पुषेम) पुष्टं कुर्य्यामहि। तथाग्निहोत्रादिकर्मणा भौतिकमग्निमिन्धानाः प्रदीपयितारः सन्तः सर्वे वयं पुष्येम ॥ ३ ॥ (प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो) अस्यार्थः पूर्ववद्विज्ञेयः परन्त्वयं विशेषः—वयमग्निहोत्रमीश्वरोपासनं च कुर्वन्तः सन्तः (शतहिमाः) शतं हिमा हेमन्तर्तवो गच्छन्ति येषु संवत्सरेषु ते शतहिमा यावत्स्युस्तावत् (ऋधेम) वर्द्धेमहि। एवं कृतेन कर्मणा नोऽस्माकं नैव कदाचिद्धानिर्भवेदितीच्छामः ॥ ४ ॥

भाषार्थ

(सायंसायं) यह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक भौतिक अग्नि और परमेश्वर प्रतिदिन प्रातःकाल और सायंकाल श्रेष्ठ उपासना को

प्राप्त होके (सौमनस्य दाता) जैसे आरोग्य और आनन्द का देनेवाला है उसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तु का देनेवाला है इसी से परमेश्वर (वसुदानः) वसु अर्थात् धन का देनेवाला प्रसिद्ध है। हे परमेश्वर ! इस प्रकार आप मेरे राज्य आदि व्यवहार और चित्त में प्रकाशित रहिये। तथा इस मन्त्र में अग्निहोत्र आदि करने के लिये भौतिक अग्नि भी ग्रहण करने योग्य है (वयं त्वे०) हे परमेश्वर ! पूर्वोक्त प्रकार से हम आप को प्रकाश करते हुए अपने शरीर को (पुषेम) पुष्ट करें इसी प्रकार भौतिक अग्नि को प्रज्वलित करते हुए सब संसार की पुष्टि करके पुष्ट हों (प्रातःप्रातर्गृहपतिर्नो०) इस मन्त्र का अर्थ पूर्व मन्त्र के तुल्य जानो परन्तु यह विशेष है कि अग्निहोत्र और ईश्वर की उपासना करते हुए हम लोग (शतहिमाः) सौ हेमन्त ऋतु बीत जायं जिन वर्षों में अर्थात् सौ वर्ष पर्य्यन्त (ऋधेम) धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त होवे रहें और पूर्वोक्त प्रकार से अग्निहोत्रादि कर्म करके हमारी हानि कभी न हो ऐसी इच्छा करते हैं ॥ २ ॥ (तस्माद्ब्राह्मणो०) ब्रह्म का उपासक मनुष्य रात्रि और दिवस के सन्धि समय में नित्य उपासना करे, जो प्रकाश और अप्रकाश का संयोग है वही सन्ध्या का काल जानना और उस समय में जो सन्ध्योपासन की ध्यान-क्रिया करनी होती है वही सन्ध्या है और जो एक ईश्वर को छोड़ के दूसरे की उपासना न करनी तथा सन्ध्योपासन कभी न छोड़ देना इसीको सन्ध्योपासन कहते हैं ॥ ३ ॥ (उद्यन्तमस्तं यान्त०) जब सूर्य्य के उदय और अस्त का समय आवे उसमें नित्य प्रकाशस्वरूप आदित्य परमेश्वर की उपासना करता हुआ ब्रह्मोपासक ही मनुष्य संपूर्ण सुख को प्राप्त होता है। इससे अब मनुष्यों को उचित है कि दो समय में परमेश्वर की नित्य उपासना किया करें ॥ ४ ॥ इसमें मनुस्मृति की भी साक्षी है कि दो घड़ी रात्रि से लेके सूर्य्योदय पर्य्यन्त प्रातःसन्ध्या और सूर्य्यास्त से लेकर तारों के दर्शन पर्य्यन्त सायंकाल में सविता अर्थात् सब जगत् की उत्पत्ति करने वाले परमेश्वर की उपासना गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक नित्य करें ॥ ५ ॥ (न तिष्ठति तु०) जो मनुष्य नित्य प्रातः और सायं सन्ध्योपासन को नहीं करता उसको शूद्र के समान समझ कर द्विजकुल से अलग करके शूद्रकुल में रखदेना चाहिये। वह सेवाकर्म किया करे

और उस के विधा का चिह्न यज्ञोपवीत भी न रहना चाहिये, इससे सब मनुष्यों को उचित है कि सब कामों से इस काम को मुख्य जानकर पूर्वोक्त दो समयों में जगदीश्वर की उपासना नित्य करते रहें ॥ इत्यग्निहोत्रसन्ध्योपासनप्रमाणानि ॥

इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञः समाप्तः

अथ द्वितीयोऽग्निहोत्रो देवयज्ञः प्रोच्यते

उसका आचरण इस प्रकार से करना चाहिये कि सन्ध्योपासन करने के पश्चात् अग्निहोत्र का समय है। उसके लिये सोना, चांदी, तांबा, लोहा वा मिट्टी का कुण्ड बनवा लेना चाहिये जिसका परिमाण सोलह अङ्गुल चौड़ा, सोलह अङ्गुल गहिरा और उसका तला चार अङ्गुल का लम्बा चौड़ा रहे। एक चमसा जिसकी डंडी सोलह अङ्गुल और उसके अग्रभाग में अंगूठा की यवरेखा के प्रमाण से लम्बा चौड़ा आचमनी के समान बनवा लेवे सो भी सोना, चांदी वा पलाशादि लकड़ी का हो। एक आज्यस्थाली अर्थात् घृतादि सामग्री रखने का पात्र सोना, चांदी वा पूर्वोक्त लकड़ी का बनवा लेवे। एक जल का पात्र तथा एक चिमटा और पलाशादि की लकड़ी समिधा के लिये रख लेवे। पुनः घृत को गर्मकर छान लेवे। और एक सेर घी में एक रत्ती कस्तूरी, एक मासा केसर पीस के मिलाकर उक्त पात्र के तुल्य दूसरे पात्र में रख छोड़े। जब अग्निहोत्र करे तब शुद्ध स्थान में बैठ के पूर्वोक्त सामग्री पास रख लेवे। जल के पात्र में जल और घी के पात्र में एक छटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो उतने शोधे हुए घी को निकाल कर अग्नि में तपा के सामने रख लेवे। तथा चमसे को भी रख लेवे। पुनः उन्हीं पलाशादि वा चन्दनादि लकड़ियों को वेदी में रखकर उनमें आगी धरके पंखे से प्रदीप्त कर नीचे लिखे मन्त्रों में से एक २ मन्त्र से एक २ आहुति देता जाय, प्रातःकाल वा सायंकाल में। अथवा एक समय में करे तो सब मन्त्रों से सब आहुति किया करे ॥

अथाग्निहोत्रहोमकरणार्थाः मन्त्राः

सूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा ॥ सूर्य्योवर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥ ज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्योज्योतिः स्वाहा ॥ सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ॥ जुषाणः सूर्य्योवेतु स्वाहा ॥

एते चत्वारो मन्त्राः प्रातःकालस्य सन्तीति बोध्यम् ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ अग्निर्वर्च्चोज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॥

अग्निर्ज्योतिरितिमन्त्रं मनसोच्चार्य्य तृतीयाहुतिर्देया ॥

सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या ॥ जुषाणोऽग्निर्वेतु स्वाहा ॥ य० अ० ३ । मं० ९ । १० ॥

एते सायंकालस्य मन्त्राः सन्तीति वेदितव्यम् ॥

अथोभयोः कालयोरग्निहोत्रे होमकरणार्थास्समाना मन्त्राः

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥ ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा ॥ ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥ ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ॥ ओं आपोज्योतीरसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ओं सर्वं वै पूर्णं स्वाहा ॥

भाष्यम्

(सूर्य्यो०) यश्चराचरात्मा ज्योतिषां प्रकाशकानामपि ज्योतिःप्रकाशकः सर्वप्राणः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै स्वाहाऽर्थात् तदाज्ञापालनार्थं सर्वजगदुपकारायैकाहुतिं दद्मः ॥ १ ॥ (सूर्य्यव०) यो वर्चः सर्वविद्यो ज्योतिषां ज्ञानवतां जीवानामपि वर्च्चोन्तर्यामितया सत्योपदेष्टा सर्वात्मा सूर्य्यः परमेश्वरोस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ (ज्योतिः सूर्य्यः०) यः स्वयंप्रकाशः सर्वजगत्प्रकाशकः सूर्यो जगदीश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ ३ ॥ (सजू०) यो देवेन द्योतकेन सवित्रा सूर्य्यलोकेन जीवेन च सह तथा (इन्द्रवत्या) सूर्य्यप्रकाशवत्योषसाथवा जीववत्या मानसवृत्त्या (सजूः)

सह वर्त्तमानः परमेश्वरोऽस्ति सः (जुषाणः) संप्रीत्या वर्त्तमानः सन् (सूर्य्यः) सर्वात्मा कृपाकटाक्षेणास्मान् वेतु विद्यादिसद्गुणेषु जातविज्ञानान् करोतु तस्मै० ॥ ४ ॥ इमाश्चतस्र आहुतीः प्रातरग्निहोत्रे कुर्वन्तु। अथ सायंकालाहुतयः। (अग्नि०) योऽग्निर्ज्ञानस्वरूपो ज्ञानप्रदश्च ज्योतिषां ज्योतिः परमेश्वरोऽस्ति तस्मै० ॥ १ ॥ (अग्निर्वर्च्चो) यः पूर्वोक्तोऽग्निरनन्तविद्य आत्मप्रकाशकः सर्वपदार्थप्रकाशकश्च सूर्य्यादिद्योतकोऽस्ति तस्मै० ॥ २ ॥ अग्निर्ज्योतिरित्यनेनैव तृतीयाहुतिर्देया तदर्थश्च पूर्ववत् ॥ ३ ॥ (सजूर्दे०) यः पूर्वोक्तेन देवेन सवित्रा सह परमेश्वरः सजूरस्ति। यश्चेन्द्रवत्या वायुचन्द्रवत्या राज्या सह सजूर्वर्त्तते सोऽग्निः (जुषाणः) संप्रीतोऽस्मान् वेतु नित्यानन्दमोक्षसुखाय स्वकृपया कामयतु तस्मै जगदीश्वराय स्वाहेति पूर्ववत् ॥ ४ ॥ एताभिः सायंकालेऽग्निहोत्रिणो जुह्वति। एकस्मिन्काले सर्वाभिर्वा (सर्वं वै०) हे जगदीश्वर! यदिदमस्माभिः परोपकारार्थं कर्म क्रियते भवत्कृपया परोपकारायालं भवत्विति। एतदर्थमेतत्कर्म्म तुभ्यं समर्प्यते॥ (ओं भूर०) एतानि सर्वाणीश्वरनामान्येव वेद्यानि। एतेषामर्था गायत्र्यर्थे द्रष्टव्याः॥ एवं प्रातः सायं सन्ध्योपासनकरणानन्तरमेतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽग्रे यावदिच्छा तावद्गायत्रीमंत्रेण स्वाहान्तेन होमं कुर्यात्॥ अग्नये परमेश्वराय जलवायुशुद्धिकरणाय च होत्रं हवनं यस्मिन् कर्मणि क्रियते तदग्निहोत्रम्॥ सुगन्धिपुष्टिमिष्टबुद्धिवृद्धिशौर्य्यधैर्य्यबलकररोगनाशकरैर्गुणैर्युक्तानां द्रव्याणां होमकरणेन वायुवृष्टिजलयोः शुद्ध्या पृथिवीस्थपदार्थानां सर्वेषां शुद्धवायुजलयोगादत्यन्तोत्तमतया सर्वेषां जीवानां परमसुखं भवत्येवातः। तत्कर्मकर्तॄणां जनानां तदुपकारतयाऽत्यन्तसुखलाभो भवतीश्वरप्रसन्नता चेत्येतदाद्यर्थमग्निहोत्रकरणम्॥

भाषार्थ

(सूर्य्योज्यो०) जो चराचर का आत्मा प्रकाशस्वरूप और सूर्यादि प्रकाशक लोकों का भी प्रकाशक है उसकी प्रसन्नता के लिये हम लोग होम करते हैं। (सूर्यो व०) जो सूर्य परमेश्वर हम को सब विद्याओं का देनेवाला और हम लोगों से उनका प्रचार करानेवाला है उसी के अनुग्रह से हम लोग अग्निहोत्र करते हैं। (ज्योतिः सूर्य्यः०) जो आप प्रकाशमान् और जगत् का

प्रकाश करनेवाला सूर्य्य अर्थात् सब संसार का ईश्वर है उसकी प्रसन्नता के अर्थ हम लोग होम करते हैं। (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर सूर्य्यादि लोकों में व्यापक, वायु और दिन के साथ परिपूर्ण, सब पर प्रीति करनेवाला और सब के अंग २ में व्याप्त है। वह अग्नि परमेश्वर हम को विदित हो। उसके अर्थ हम होम करते हैं। इन चार आहुतियों को प्रातःकाल अग्निहोत्र में करना चाहिये, (अग्निर्ज्योति०) अग्नि जो परमेश्वर ज्योतिःस्वरूप है उसकी आज्ञा से हम परोपकार के लिये होम करते हैं और उसका रचा हुआ जो यह भौतिकाग्नि है जिसमें द्रव्य डालते हैं सो इसलिये है कि उन द्रव्यों को परमाणु करके जल और वायु, वृष्टि के साथ मिलाके उन को शुद्ध करदे जिससे सब संसार सुखी होके पुरुषार्थी हो। (अग्निर्वर्चो०) अग्नि जो परमेश्वर वर्च अर्थात् सब विद्याओं का देनेवाला तथा भौतिक अग्नि आरोग्य और बुद्धि बढ़ाने का हेतु है इसलिये हम लोग होम करके परमेश्वर की प्रार्थना करते हैं यह दूसरी आहुति हुई। तीसरी आहुति प्रथम मन्त्र से मौन करके करनी चाहिये और चौथी (सजूर्देवेन०) जो परमेश्वर प्राणादि में व्यापक, वायु और रात्रि के साथ पूर्ण, सब पर प्रीति करनेवाला और सब के अंग २ में व्याप्त है वह अग्नि परमेश्वर हमको प्राप्त हो जिसके लिये हम होम करते हैं॥ अब जिन मन्त्रों से दोनों समय में होम किया जाता है उनको लिखते हैं (ओं भू०) इन मन्त्रों में जो २ नाम हैं वे सब ईश्वर के ही जानो। उनके अर्थ गायत्री मन्त्र के अर्थ में देखने योग्य हैं और (आपो०) आप जो प्राण परमेश्वर के प्रकाश को प्राप्त होके रस अर्थात् नित्यानन्द मोक्षस्वरूप है उस ब्रह्म को प्राप्त होकर तीनों लोकों में हम लोग आनन्द से विचरें। इस प्रकार प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासन के पीछे इन पूर्वोक्त मन्त्रों से होम करके अधिक होम करने की जहांतक इच्छा हो वहांतक स्वाहा अन्त में पढ़कर गायत्री मन्त्र से होम करें। अग्नि वा परमेश्वर के लिये जल और पवन की शुद्धि वा ईश्वर की आज्ञा पालन के अर्थ होत्र जो हवन अर्थात् दान करते हैं उसे अग्निहोत्र कहते हैं। केशर, कस्तूरी आदि सुगन्ध। घृत दुग्ध आदि पुष्ट। गुड़ शर्करा आदि मिष्ट तथा सोमलतादि ओषधि रोगनाशक जो ये चार प्रकार के बुद्धि, वृद्धि, शूरता,

धीरता, बल और आरोग्य करनेवाले गुणों से युक्त पदार्थ हैं उनका होम करने से पवन और वर्षाजल की शुद्धि करके शुद्ध पवन और जल के योग से पृथिवी के सब पदार्थों की जो अत्यन्त उत्तमता होती है उससे सब जीवों को परम सुख होता है। इस कारण उस अग्निहोत्र कर्म्म करनेवाले मनुष्यों को भी जीवों के उपकार करने से अत्यन्त सुख का लाभ होता है तथा ईश्वर भी उन मनुष्यों पर प्रसन्न होता है ऐसे २ प्रयोजनों के अर्थ अग्निहोत्रादि का करना अत्यन्त उचित है ॥

इत्यग्निहोत्रविधिः समाप्तः

अथ तृतीयः पितृयज्ञः

तस्य द्वौ भेदौ स्तः। एकस्तर्पणाख्यो द्वितीयः श्राद्धाख्यश्च। तत्र येन कर्मणा विदुषो देवानृषीन् पितॄंश्च तर्प्पयन्ति सुखयन्ति तत् तर्प्पणम्। तथा यत्तेषां श्रद्धया सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धं वेदितव्यम्। तदेतत् कर्म विद्यमानेष्वेव घटयते ॥ नैव मृतकेषु कुतः तेषां सन्निकर्षाभावेन सेवनाशक्यत्वात्। मृतकोद्देशेन यत्क्रियते नैव तेभ्यस्तत्प्राप्तं भवतीति व्यर्थापत्तेः। तस्माद्विद्यमानाभिप्रायेणैतत्कर्म्मोपदिश्यते। सेव्यसेवकसन्निकर्षात्सर्वमेतत्कर्तुं शक्यत इति। तत्र सत्कर्त्तव्यास्त्रयः सन्ति। देवाः, ऋषयः, पितरश्च, तत्र देवेषु प्रमाणम् ॥

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ॥ पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ य० अ० १९। मं० ३९ ॥ द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ॥ स वै सत्यमेव वदेत। एतद्धि वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशो यशोह भवति य एवं विद्वांत्सत्यं वदति ॥ शत कां० १। अ० १। ब्रा० १। कं० ४। ५ ॥ विद्वांसो हि देवाः ॥ शत कां० ३। अ० ७। ब्रा० ६। कं० १० ॥

भाष्यम्

(पुनन्तु०) हे (जातवेदः) परमेश्वर ! (मा) मां (पुनीहि) सर्वथा पवित्रं कुरु भवन्निष्ठा भवदाज्ञापालिनो (देवजनाः) विद्वांसः श्रेष्ठा ज्ञानिनो विद्यादानेन (मा) मां (पुनन्तु) पवित्रं कुर्वन्तु तथा (पुनन्तु मनसा धियः) भवद्दत्तविज्ञानेन भवद्विषयध्यानेन वा नो बुद्धयः पुनन्तु पवित्रा भवन्तु (पुनन्तु विश्वाभूतानि०) विश्वानि सर्वाणि संसारस्थानि भूतानि पुनन्तु भवत्कृपया पवित्राणि सुखानन्दयुक्तानि भवन्तु । (द्वयं वा०) मनुष्याणां द्वाभ्यां लक्षणाभ्यां द्वे एव संज्ञे भवतः। देवाः, मनुष्याश्चेति। तत्र सत्यं चैवानृतं च कारणे स्तः (सत्यमेव०) यत्सत्यवचनं सत्यमानं सत्यं कर्मैतद्देवानां लक्षणं भवति तथैतदनृतं वचनमनृतं मानमनृतं कर्म चेति मनुष्याणाम् । योऽनृतात् पृथग्भूत्वा सत्यमुपेयात् स देवजातौ परिगण्यते । यश्च सत्यात् पृथग्भूत्वाऽनृतमुपेयात्स मनुष्यसंज्ञां लभेत तस्मात्सत्यमेव सर्वदा वदेन्मन्येत्कुरुयाच्च यत्सत्यं व्रतमस्ति तदेव देवा आचरन्ति स यशस्विनां मध्ये यशस्वीति देवो भवति तद्विपरीतो मनुष्यश्च तस्मादत्र विद्वांस एव देवास्सन्तीति ॥

भाषार्थ

अब तीसरा पितृयज्ञ कहते हैं । उसके दो भेद हैं एक तर्प्पण, दूसरा श्राद्ध । तर्प्पण उसे कहते हैं जिस कर्म से विद्वान् रूप देव, ऋषि और पितरों को सुखयुक्त करते हैं । उसी प्रकार जो उन लोगों का श्रद्धा से सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है । यह तर्प्पण आदि कर्म विद्यमान अर्थात् जो प्रत्यक्ष हैं उन्हीं में घटता है मृतकों में नहीं क्योंकि उनकी प्राप्ति और उनका प्रत्यक्ष होना दुर्लभ है । इसी से उनकी सेवा भी किसी प्रकार से नहीं हो सकती किन्तु जो उनका नाम लेकर देवे वह पदार्थ उनको कभी नहीं मिल सकता इसलिये मृतकों को सुख पहुंचाना सर्वथा असंभव है इसी कारण विद्यमानों के अभिप्राय से तर्प्पण और श्राद्ध वेद में कहा है । सेवा करने योग्य और सेवक अर्थात् सेवा करने वाले इनके प्रत्यक्ष होने पर यह सब काम होसकता है । तर्प्पण आदि कर्म में सत्कार करने योग्य तीन हैं । देव, ऋषि और पितर । उनमें से देवों में

प्रमाण-(पुनंतु०) हे जातवेद परमेश्वर आप सब प्रकार से मुझको पवित्र करें। जिनका चित्त आप में है तथा जो आपकी आज्ञा पालते हैं वे विद्वान् श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष भी विद्यादान से मुझ को पवित्र करें। उसी प्रकार आपका दिया जो विशेष ज्ञान वा आपके विषय का ध्यान उससे हमारी बुद्धि पवित्र हो (पुनन्तु विश्वाभूतानि०) और संसार के सब जीव आपकी कृपा से पवित्र और आनन्दयुक्त हों (द्वयं वा०) दो लक्षणों से मनुष्यों की दो संज्ञा होती हैं अर्थात् देव और मनुष्य। वहां सत्य और झूंठ दो कारण हैं। (सत्यमेव०) जो सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य कर्म करनेवाले हैं वे देव और वैसे ही झूंठ बोलने, झूंठ मानने और झूंठ कर्म करने वाले मनुष्य कहाते हैं। जो झूंठ से अलग होके सत्य को प्राप्त होवें वे देवजाति में गिने जाते हैं और जो सत्य से अलग होके झूंठ को प्राप्त हों वे मनुष्य, असुर और राक्षस कहे हैं, इससे सब काल में सत्य ही कहे, माने और करे। सत्यव्रत का आचरण करनेवाला मनुष्य यशस्वियों में यशस्वी होने से देव और उससे उलटे कर्म करने वाला असुर होता है। इस कारण से यहां विद्वान् ही देव हैं॥

अथर्षिप्रमाणम्

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः। तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ य० अ० ३१। मं० ९॥ अथ यदेवानुब्रुवीत। तेनर्षिभ्य ऋणं जायते तद्ध्येभ्य एकत्करोत्यृषीणां निधिगोप इति ह्यनूचानमाहुः॥ शत० कां० १। अ० ७। कं० ३॥ अथार्षेयं प्रवृणीते। ऋषिभ्यश्चैवैनमेतद्देवेभ्यश्च निवेदयत्ययं महावीर्यो यो यज्ञं प्रापदिति तस्मादार्षेयं प्रवृणीते॥ शत० कां० १। प्रपा० ३। अ० ४। कं० ३॥

भाष्यम्

तं यज्ञमिति मन्त्रः सृष्टिविद्याविषये व्याख्यातः। (अथ यदेवा०) अथेत्यनन्तरं यत्सर्वविद्यां पठित्वानुवचनमध्यापनं कर्मास्ति तदृषिकृत्यमस्ति। तेनाध्ययनाध्यापनकर्मणर्षिभ्यो देयमृणं जायते। यच्चैषामृषीणां सेवनं करोति तदेतेभ्य एव

सुखकारी भवति । यः सर्वविद्याविद्भूत्वाध्यापयति तमनूचानमृषिमाहुः । (अथार्षेयं प्रवृणीते०) यो मनुष्यः पठित्वा पाठनाख्यं कर्म प्रवृणीते तदार्षेयं कर्मास्ति । य एवं कुर्वन्ति तेभ्य ऋषिभ्यो देवेभ्यश्चैतत्प्रियकरं वस्तुसेवनं च निवेदयति सोयं विद्वान् महावीर्यो भूत्वा यज्ञं विज्ञानाख्यं (प्रापत्) प्राप्नोति ते चैनं विद्यार्थिनं विद्वांसं कुर्युः । यश्च विद्वानस्ति यश्चापि विद्यां गृह्णाति स ऋषिसंज्ञां लभते । तस्मादिदमार्षेयं कर्म सर्वैर्मनुष्यैः स्वीकार्य्यम् ॥

भावार्थ

(तं यज्ञम्०) इस मन्त्र का अर्थ भूमिका के सृष्टिविद्या विषय में कह दिया है, अब इसके अनन्तर सब विद्याओं को पढ़ के जो पढ़ाना है वह ऋषिकर्म कहाता है उस पढ़ने और पढ़ाने से ऋषियों का ऋण अर्थात् उनको उत्तम २ पदार्थ देने से निवृत्त होता है और जो इन ऋषियों की सेवा करता है वह उनको सुख करनेवाला होता है (निधिगोपः) यही व्यवहार अर्थात् विद्या कोश का रक्षा करने वाला होता है । जो सब विद्याओं को जान के सब को पढ़ाता है उसको ऋषि कहते हैं ॥ (अथार्षेयं प्रवृणीते०) जो पढ़के पढ़ाने के लिये विद्यार्थी का स्वीकार करना है सो आर्षेय अर्थात् ऋषियों का कर्म कहाता है जो उस कर्म को करते हैं उन ऋषियों और देवों के लिये प्रसन्न करनेवाले पदार्थों का निवेदन तथा सेवा करता है वह विद्वान् अति पराक्रमी हो के विशेष ज्ञान को प्राप्त होता है । जो विद्वान् और विद्या को ग्रहण करनेवाला है उसका ऋषि नाम होता है । इस कारण से इस आर्षेय कर्म को सब मनुष्य स्वीकार करें ॥

अथ पितृषु प्रमाणम्

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् ॥ स्वधा स्थ तर्प्पयत मे पितॄन् ॥ य० अ० २ । मं० ३४ ॥

भाष्यम्

(ऊर्ज्जं वहन्ती०) ईश्वरः सर्वान्प्रत्याज्ञां ददाति सर्वे मनुष्या एव जानीयुर्वदेयुश्चाज्ञापयेयुरिति, मे पितॄन् मम पितृपितामहादीन् आचार्यादींश्च यूयं

सर्वे मनुष्याः तर्प्पयत सेवया प्रसन्नान् कुरुत तथा (स्वधा स्थ) सत्यविद्याभक्ति-स्वपदार्थधारिणो भवत । केन केन पदार्थेन ते सेवनीया इत्याह—ऊर्ज्जं पराक्रमं प्रापिकाः सुगन्धिता हृद्या अपस्तेभ्यो नित्यं दद्युः (अमृतम्) अमृतात्मकमनेक-विधरसं (घृतम्) आज्यम् (पयः) दुग्धम् (कीलालम्) अनेकविधसंस्कारैः सम्पादितमन्नं माक्षिकं मधु च (परिस्रुतम्) कालपक्वं फलादिकं च दत्वा पितॄन् प्रसन्नान् कुर्युः ॥ १ ॥

भाषार्थ

(ऊर्ज्जं वहन्ती०) पिता वा स्वामी अपने पुत्र, पौत्र, स्त्री वा नौकरों को सब दिन के लिये आज्ञा देके कहे कि (तर्प्पयत मे पितॄन्) जो पिता पितामहादि माता मातामहादि तथा आचार्य्य और इनसे भिन्न भी विद्वान् लोग अवस्था अथवा ज्ञान से वृद्ध मान्य करने योग्य हों उन सब के आत्माओं को यथायोग्य सेवा से प्रसन्न किया करो । सेवा करने के पदार्थ ये हैं । (ऊर्ज्जं वहन्ती) जो उत्तम २ जल (अमृतम्) अनेकविधरस (घृतम्) घी (पयः) दूध (कीलालम्) अनेक संस्कारों से सिद्ध किये रोगनाश करने वाले उत्तम २ अन्न (परिश्रुतम्) सब प्रकार के उत्तम २ फल हैं इन सब पदार्थों से उनकी सेवा सदा करते रहो जिससे उनका आत्मा प्रसन्न होके तुम लोगों को आशीर्वाद देता रहे कि उससे तुम लोग भी सदा प्रसन्न रहो (स्वधा स्थ०) हे पूर्वोक्त पितृलोगो ! तुम सब हमारे अमृतरूप पदार्थों के भोगों से सदा सुखी रहो । और जिस २ पदार्थ की तुम को अपने लिये इच्छा हो जो जो हम लोग कर सकें उस २ की आज्ञा सदा करते रहो । हम लोग मन, वचन, कर्म से तुम्हारे सुख करने में स्थित हैं । तुम लोग किसी प्रकार का दुःख मत पाओ । जैसे तुम लोगों ने बाल्यावस्था और ब्रह्मचर्य्याश्रम में हम लोगों को सुख दिया है वैसे हम को भी आप लोगों का प्रत्युपकार करना अवश्य चाहिये जिससे हम को कृतघ्नता दोष न प्राप्त हो ॥ १ ॥

अथ पितॄणां परिगणनम्

येषां पितृसंज्ञा ये सेवितुं योग्याश्च ते क्रमशो लिख्यन्ते । सोमसदः ।

अग्निष्वात्ताः । बर्हिषदः । सोमपाः । हविर्भुजः । आज्यपाः । सुकालिनः । यमराजाश्चेति ।

भाष्यम्

(सो०) सोमे ईश्वरे सोमयागे वा सीदन्ति ये सोमगुणाश्च ते सोमसदः । (अ०) अग्निरीश्वरः सुष्ठुतया आत्तो गृहीतो यैस्ते अग्निष्वात्ताः, यद्वा अग्नेर्गुणज्ञानात्पृथिवी, जलं, व्योम, यानयन्त्ररचनादिका, पदार्थविद्या सुष्ठुतया आत्ता गृहीता यस्ते । (ब०) बर्हिषि सर्वोत्कृष्टे ब्रह्मणि शमदमादिषूत्तमेषु गुणेषु वा सीदन्ति ते बर्हिषदः । (सो०) यज्ञेनोत्तमऔषधिरसं पिबन्ति पाययन्ति वा ते सोमपाः । (ह०) हविर्हुतमेव यज्ञेन शोधितं वृष्टिजलादिकं भोक्तुं भोजयितुं वा शीलमेषां ते हविर्भुजः । (आ०) आज्यं घृतम् । यद्वा अज गतिक्षेपणयोर्धात्वर्थादाज्यं विज्ञानम् । तद्दानेन पान्ति रक्षन्ति पाययन्ति रक्षयन्ति ये विद्वांसस्ते आज्यपाः । (सु०) ईश्वरविद्योपदेशकरणस्य ग्रहणस्य च शोभनः कालो येषां ते । यद्वा ईश्वरज्ञानप्राप्त्या सुखरूपः सदैव कालो येषां ते सुकालिनः । (य०) ये पक्षपातं विहाय न्यायव्यवस्थाकर्त्तारस्सन्ति ते यमराजाः ॥

भाषार्थ

(सो०) जो ईश्वर और सोमयज्ञ में निपुण और जो शान्त्यादिगुण सहित हैं वे सोमसद् कहाते हैं (अ०) अग्नि जो परमेश्वर वा भौतिक उनके गुण ज्ञात करके जिनने अच्छे प्रकार अग्निविद्या सिद्ध की है उनको अग्निष्वात्ता कहते हैं । (ब०) जो सब से उत्तम परब्रह्म में स्थिर होके शम दम सत्य विद्यादि उत्तम गुणों में वर्त्तमान हैं उनको बर्हिषद् कहते हैं । (सो०) जो यज्ञ करके सोमलतादि उत्तम ओषधियों के रस के पान करने और कराने वाले हैं तथा जो सामविद्या को जानते हैं उनको सोमपा कहते हैं (ह०) जो अग्निहोत्रादि यज्ञ करके वायु और वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा सब जगत् का उपकार करते और जो यज्ञ से अन्नजलादि को शुद्ध करके खाने पीने वाले हैं उनको हविर्भुज कहते हैं (आ०) आज्य कहते हैं घृत स्निग्धपदार्थ और विज्ञान को जो उसके दान से रक्षा करने वाले हैं उनको आज्यपा कहते हैं ।

(सु०) मनुष्य-शरीर को प्राप्त होकर ईश्वर और सत्यविद्या के उपदेश का जिनका श्रेष्ठ समय और सदा उपदेश में ही वर्त्तमान हैं उनको सुकालिन कहते हैं। (य०) जो पक्षपात को छोड़ के सदा सत्य व्यवस्था न्याय ही करने में रहते हैं उनको यमराज कहते हैं ॥

पितृपितामहप्रपितामहाः । मातृपितामहीप्रपितामह्यः सगोत्राः सम्बन्धिनः ॥

भाष्यम्

(पि०) ये सुष्ठुतया श्रेष्ठान् विदुषो गुणान् वासयन्तस्तत्र वसन्तश्च विज्ञानाद्यनन्तधनाः स्वान् जनान् धारयन्तः पोषयन्तश्चचतुर्विंशतिवर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्य्येण विद्याभ्यासकारिणः स्वे जनकाश्च सन्ति ते पितरो वसवो विज्ञेया ईश्वरोऽपि । (पिता०) ये पक्षपातरहिता दुष्टान् रोदयन्तश्चतुश्चत्वारिंशद्वर्षपर्य्यन्तेन ब्रह्मचर्यसेवनेन कृतविद्याभ्यासास्ते रुद्राः स्वे पितामहाश्च ग्राह्यास्तथा रुद्र ईश्वरोऽपि (प्रपि०) आदित्यवदुत्तमगुणप्रकाशका विद्वांसोऽष्टचत्वारिंशद्वर्षेण ब्रह्मचर्येण सर्वविद्यासम्पन्नाः सूर्यवद्विद्याप्रकाशाः स्वे प्रपितामहाश्च ग्राह्यास्तथाऽऽदित्योऽविनाशीश्वरो वात्र गृह्यते (मा०) पित्रादिसदृश्यो मात्रादयः सेव्याः । (स०) ये स्वसमीपं प्राप्ताः पुत्रादयस्ते श्रद्धया पालनीयाः (आ० सं०) ये गुर्वादिसम्बन्तास्सन्ति ते हि सर्वदा सेवनीयाः ॥ इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः ॥

भाषार्थ

जो वीर्य्य के निषेकादि कर्मों करके उत्पत्ति और पालन कर और चौबीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या को पढ़े उसका नाम पिता और वसु है (पिता०) जो पिता का पिता हो और चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्याश्रम से विद्या पढ़ के सब जगत् का उपकार करता हो उसको प्रपितामह और आदित्य कहते हैं तथा जो पित्रादिकों के तुल्य पुरुष हैं उनकी भी पित्रादिकों के तुल्य सेवा करनी चाहिये । (मा०) पित्रादिकों के समान विद्या स्वभाव वाली स्त्रियों की भी अत्यन्त सेवा करनी चाहिये (सगो०) जो समीपवर्त्ती ज्ञाति के योग्य पुरुष हैं वे

भी सेवा करने के योग्य हैं (आचार्य्यादि सं०) जो पूर्ण विद्या के पढ़ाने वाले और श्वशुरादि सम्बन्धी तथा उनकी स्त्री हैं उनकी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

एतेषां विद्यमानानां सोमसदादीनां सुखार्थं प्रीत्या यत्सेवनं क्रियते तत्तर्प्पणम्। श्रद्धया यत्सेवनं क्रियते तच्छ्राद्धम् ॥

ये सत्यविज्ञानदानेन जनान् पान्ति रक्षन्ति ते पितरो विज्ञेयाः। अत्र प्रमाणानि—ये नः पूर्वे पितरः सोम्यास इत्यादीनि यजुर्वेदस्यैकोनविंशतितमेऽध्याये सप्तसु सोमसदादिषु पितृषु द्रष्टव्यानि। तथा ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये। इत्यादीनि यमराजेषु। पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। इत्यादीनि पितृपितामहप्रपितामहादिषु एवं नमो वः पितरो रसायेत्यादीनि पितॄणां सत्कारे च। इति ऋग्यजुरादिवचनानि सन्तीति बोध्यम्। अन्यच्च—वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ॥ १ ॥ म० अ० ३। श्लो० २८४ ॥

भाषार्थ

जो सोमसदादि पितर विद्यमान अर्थात् जीवते हों उनका प्रीति से सेवनादि से तृप्त करना तर्पण और श्रद्धा से अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सेवन करना है सो श्राद्ध कहाता है जो सत्य विज्ञानदान से जनों का पालन करते हैं वे पितर हैं। इस विषय में प्रमाण—"ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासः" इत्यादि मन्त्र सोमसदादि सातों पितरों में प्रमाण हैं। "समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।" इत्यादि मन्त्र यमराजों। "पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।" इत्यादि मन्त्र पितृ पितामह प्रपितामहादिकों तथा "नमो वः पितरो रसायेत्यादि" मन्त्र पितरों के सेवा और सत्कार में प्रमाण हैं। ये ऋग्यजुर्वेद आदि के वचन हैं और मनुजी ने भी कहा है कि पितरों को वसु, पितामहों को रुद्र और प्रपितामहों को आदित्य कहते हैं यह सनातन श्रुति है ॥ मनु० अ० ३। श्लो० २८४ ॥ इति पितृयज्ञविधिः समाप्तः ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते

यदन्नं पक्वमक्षारलवणं भोजनार्थं भवेत्तेनैव बलिवैश्वदेवकर्म कार्य्यम्। वैश्व-

देवस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधिपूर्वकम् ॥ आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होम-मन्वहम् ॥ मनु० अ० ३ । श्लो ८४ ॥

अथ बलिवैश्वदेवकर्म्मणि प्रमाणम्

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमग्ने ॥ रायस्पोषेण समिषा मदन्तो मा ते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम ॥ १ ॥ अथर्व० कां० १९ । अनु० ७ । मं० ७ ॥ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः । पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ॥ २ ॥ य० अ० १९ । मं० ३९ ॥

भाष्यम्

(पुनन्तु०) अस्यार्थो देवप्रकरणे उक्तः ॥ (अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर ! ये भवदाज्ञया बलिवैश्वदेवं नित्यं कुर्वन्तो मनुष्याः (रायस्पोषेण समिषा) (चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्म्या घृतदुग्धादिपुष्टिकारकपदार्थप्राप्त्या च सम्यक् शुद्धेच्छया (मदन्तः) नित्यानन्दप्राप्ताः सन्तः मातुः पितुराचार्य्यादीनां चोत्तमपदार्थैः प्रीतिपूर्विकां सेवां नित्यं कुर्युः (अश्वायेव तिष्ठते घासम्०) यथाश्वस्य सन्मुखे तद्भक्ष्यं तृणवीरुधादि वा तत्पानार्थं जलादिपुष्कलं स्थाप्यते तथा सर्वेषां सेवनाय बहून्युत्तमानि वस्तूनि दद्युर्यतस्ते प्रसन्ना भवेयुः (माते अग्ने प्रतिवेशा रिषाम) हे परमगुरो अग्ने परमेश्वर ! भवदाज्ञातो ये विरुद्धव्यवहारास्तेषु वयं कदाचिन्न प्रविशेम । अन्यायेन कदाचित्प्राणिनः पीडां न दद्याम । किन्तु सर्वान् स्वमित्राणीव स्वयं सर्वेषां मित्रमिवेति ज्ञात्वा परस्परमुपकारं कुर्य्यामेतीश्वराज्ञास्ति ॥

भाषार्थ

(पुनन्तु०) इसका अर्थ देवतर्पण विषय में कर दिया है (अहरहर्बलि०) हे अग्ने परमेश्वर ! आपकी आज्ञा से नित्यप्रति बलिवैश्वदेव कर्म करते हुए हम लोग (रायस्पोषेण समिषा) चक्रवर्त्तिराज्यलक्ष्मी घृतदुग्धादि पुष्टिकारक पदार्थों की प्राप्ति और सम्यक् शुद्ध इच्छा से (मदंतः) नित्य आनन्द में रहें तथा माता पिता आचार्य्य आदि की उत्तम पदार्थों से नित्य प्रीतिपूर्वक सेवा

करते रहें (अश्वायेव तिष्ठते घासम्) जैसे घोड़े के सामने बहुतसे खाने वा पीने के पदार्थ धर दिये जाते हैं वैसे सब की सेवा के लिये बहुतसे उत्तम २ पदार्थ देवें जिनसे वे प्रसन्न होके हम पर नित्य प्रसन्न रहें, (मा ते अग्ने प्रतिवेशा-रिषाम) हे परमगुरु अग्नि परमेश्वर ! आप और आप की आज्ञा से विरुद्ध व्यवहारों में हम लोग कभी प्रवेश न करें और अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ा न पहुंचावें किन्तु सब को अपना मित्र और अपने को सब का मित्र समझ के परस्पर उपकार करते रहें ॥

अथ होममन्त्राः

ओमग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥ ओमग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ओं धन्वन्तरये स्वाहा ॥ ओं कुह्वै स्वाहा ॥ ओमनुमत्यै स्वाहा ॥ ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओं सह द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

भाष्यम्

(ओम०) अग्न्यर्थ उक्तः (ओं सो०) सर्वानन्दप्रदो यः सर्वजगदुत्पादक ईश्वरः सोऽत्र ग्राह्यः (ओं वि०) विश्वेदेवा विश्वप्रकाशका ईश्वरगुणाः सर्वे विद्वांसो वा (ओं धन्वं०) सर्वरोगनाशक ईश्वरोऽत्र गृह्यते । (ओं कु०) दर्शेष्ट्यर्थोऽयमा-रम्भः । अमावास्येष्टिप्रतिपादितायै चितिशक्तये वा (ओम०) पौर्णमासेष्ट्यर्थोऽ-यमारम्भः । विद्यापठनानन्तर्मतिर्मननं ज्ञानं यस्याश्चितिशक्तेः सा चितिरनुमतिर्वा (ओं प्र०) सर्वजगतः स्वामी रक्षक ईश्वरः (ओं सह०) ईश्वरेण प्रकृष्टगुणैः सहोत्पादितयोः पुष्टिकरणाय (ओं स्विष्ट०) यः सुष्ठु शोभनमिष्टं सुखं करोति स चेश्वरः । एतैर्मन्त्रैर्होमं कृत्वाऽथ बलिप्रदानं कुर्यात् ॥

भाषार्थ

(ओम०) अग्नि शब्दार्थ कह आये हैं (ओं सो०) जो सब पदार्थों को उत्पन्न और पुष्ट करने से सुख देनेहारा है उसको सोम कहते हैं (ओम०)

जो प्राण सब प्राणियों के जीवन का हेतु और अपान अर्थात् दुःख के नाश का हेतु है इन दोनों को अग्नीषोम कहते हैं । (ओं वि०) यहां संसार को प्रकाश करनेवाले ईश्वर के गुण अथवा विद्वान् लोगों का विश्वेदेव शब्द से ग्रहण होता है (ओं ध०) जो जन्ममरणादि रोगों का नाश करनेहारा परमात्मा वह धन्वन्तरि कहाता है (ओं कु०) जो अमावास्येष्टि का करना है (ओं म०) जो पौर्णमास्येष्टि वा सर्वशास्त्र प्रतिपादित परमेश्वर की चिति शक्ति है यहां उसका ग्रहण है । (ओं प्र०) जो सब जगत् का स्वामी जगदीश्वर है वह प्रजापति कहाता है (ओं स०) यह प्रयोग पृथिवी का राज्य और सत्यविद्या से प्रकाश के लिये है (ओं वि०) जो इष्ट सुख करनेहारा परमेश्वर है वही स्विष्टकृत् कहाता है । ये दश अर्थ दश मन्त्रों के हैं । अब बलिदान के मन्त्रों को लिखते हैं ॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः । ओं सानुगाय यमाय नमः । ओं सानुगाय वरुणाय नमः । ओं सानुगाय सोमाय नमः । ओं मरुद्भ्यो नमः । ओमद्भ्यो नमः । ओं वनस्पतिभ्यो नमः । ओं श्रियै नमः । ओं भद्रकाल्यै नमः । ओं ब्रह्मपतये नमः । ओं वास्तुपतये नमः । ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः । ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः । ओं सर्वात्मभूतये नमः । ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः ॥

भाष्यम्

(ओं सा०) एम प्रवृत्ते शब्दे चेत्यनेन सत्क्रियापुरस्सरविचारेण मनुष्याणां यथार्थं विज्ञानं भवतीति वेद्यम् । नित्यैर्गुणैस्सह वर्त्तमानः परमैश्वर्य्यवानीश्वरोऽत्रेन्द्रशब्देन गृह्यते । (ओं सानु०) पक्षपातरहितो न्यायकारित्वादिगुणयुक्तः परमात्मात्र यमशब्दार्थेन वेद्यः । (ओं सा०) विद्याद्युत्तमगुणविशिष्टः सर्वोत्तमः परमेश्वरोऽत्र वरुणशब्देन ग्रहीतव्यः (ओं सानुगाय सो०) अस्यार्थ उक्तः । (ओं म०) य ईश्वराधारेण सकलं विश्वं धारयन्ति चेष्टयन्त्यर्थेन गृह्यन्ते ते अत्र मरुतो गृह्यन्ते (ओम०) अस्यार्थः शन्नोदेवीरित्यत्रोक्तः । (ओं व०) वनानां लोकानां पतय ईश्वरगुणाः परमेश्वरो वा बहुवचनमत्रादरार्थम् । यद्योत्तमगुणयो-

गेनेश्वरेणोत्पादितेभ्यो महावृक्षेभ्यश्चेति बोध्यम् । (ओं श्रि०) श्रीयते सेव्यते सर्वजनैस्सः श्रीरीश्वरस्सर्वसुखशोभावत्वाद् गृह्यते । यद्वा तेनोत्पादिता विश्वशोभा च । (ओं भ०) भद्रं कल्याणं सुखं कालयितुं शीलमस्याः सा भद्रकालीश्वरशक्तिः । (ओं ब्र०) ब्रह्मणः सर्वशास्त्रविद्यायुक्तस्य वेदस्य ब्रह्माण्डस्य वा पतिरीश्वरः । (ओं वा०) वसन्ति सर्वाणि भूतानि यस्मिंस्तद्वास्त्वाकाशं तत्पतिरीश्वरः । (ओं वि०) अस्यार्थ उक्तः । (ओं दि०) (ओं नक्तं०) ईश्वरकृपयैवं भवेद् दिवसे यानि भूतानि विचरन्ति । रात्रौ च तान्यस्मासु विघ्नं मा कुर्वन्तु तैः सहास्माकमविरोधोऽस्तु । एतदर्थोऽयमारम्भः । (ओं स०) सर्वेषां जीवात्मनां भूतिर्भवनं सत्तेश्वरो नान्यः (ओं पि०) अस्यार्थः पितृतर्प्पणे प्रोक्तः । नम इत्यस्य निरभिमानद्योतनार्थः । परस्योत्कृष्टतया मान्यज्ञापनार्थश्चारम्भः ॥

भाषार्थ

(ओं सा०) जो सर्वैश्वर्य्ययुक्त परमेश्वर और जो उसके गुण हैं वे सानुग इन्द्र शब्द से ग्रहण होते हैं (ओं सा०) जो सत्य न्याय करनेवाला ईश्वर और उसकी सृष्टि में सत्य न्याय के करने वाले सभासद् हैं वे 'सानुगाय' शब्दार्थ से ग्रहण होते हैं (ओं सा०) जो सब से उत्तम परमात्मा और उसके धार्मिक भक्त हैं वे सानुग वरुण शब्दार्थ से जानने चाहियें (ओं सा०) पुण्यात्माओं को आनन्दित करनेवाला और पुण्यात्मा लोग हैं वे सानुग सोम शब्द से ग्रहण किये हैं (ओं मरु०) जो प्राण अर्थात् जिनके रहने से जीवन और निकलने से मरण होता है उनको मरुत् कहते हैं इनकी रक्षा करनी अवश्य चाहिये । (ओमद्भ्या०) इसका अर्थ शन्नोदेवी इस मन्त्र के अर्थ में लिखा है (ओं व०) जिनसे वर्षा अधिक होती और जिनके फलादि से जगत् का उपकार होता है उनकी भी रक्षा करनी योग्य है । (ओं श्रि०) जो सब के सेवा करने योग्य परमात्मा है उसकी सेवा से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये सदा उद्योग करना चाहिये । (ओं भ०) जो कल्याण करनेवाली परमात्मा की शक्ति अर्थात् सामर्थ्य है उसका सदा आश्रय करना चाहिये (ओं ब्र०) जो वेद का स्वामी ईश्वर है उसकी प्रार्थना और उद्योग विद्या-प्रचार के लिये अवश्य करना चाहिये,

(ओं वा०) जो वास्तुपति गृहसम्बन्धी पदार्थों का पालन करनेहारा मनुष्य अथवा ईश्वर है इनका सहाय सर्वत्र होना चाहिये (ओं वि०) इसका अर्थ कह दिया है (ओं दि०) जो दिन में विचरनेवाले प्राणियों से उपकार लेना और उनको सुख देना है सो मनुष्यजाति का ही काम है। (ओं नक्तं०) जो रात्रि में विचरनेवाले प्राणी हैं उनसे भी उपकार लेना और जो उनको सुख देना है इसलिये यह प्रयोग है (ओं सर्वात्म०) सब में व्याप्त परमेश्वर की सत्ता को सदा ध्यान में रखना चाहिये। (ओं पि०) माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि, पुत्र, भृत्यादिकों को भोजन कराके पश्चात् गृहस्थ को भोजनादि करना चाहिये। स्वाहा शब्द का अर्थ पूर्व कर दिया है। और नमः शब्द का अर्थ यह है कि आप अभिमान रहित होके दूसरे का मान्य करना है। इसके पीछे के भागों को लिखते हैं ॥

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

अनेन षड्भागान् भूमौ दद्यात्। एवं सर्वप्राणिभ्यो भागान् विभज्य दत्वा च तेषां प्रसन्नतां संपादयेत् ॥ इति बलिवैश्वदेवविधिः समाप्तः ॥

भाषार्थ

कुत्तों कङ्गालों कुष्ठी आदि रोगियों काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग अलग बांट के देदेना और उनकी प्रसन्नता सदा करना। यह वेद और मनुस्मृति की रीति से बलिवैश्वदेव की विधि लिखी ॥

अथ पञ्चमोऽतिथियज्ञः प्रोच्यते

यत्रातिथीनां सेवनं यथावत् क्रियते तत्रैव कल्याणं भवति। ये पूर्णविद्यावन्तः परोपकारिणो जितेन्द्रिया धार्म्मिकाः सत्यवादिनश्छलादिदोषरहिता नित्यभ्रमणकारिणो मनुष्यास्सन्ति तानतिथीन् कथयन्ति। अत्रानेके प्रमाणभूता वैदिकीयमन्त्रास्सन्ति। परन्त्वत्र संक्षेपतो द्वावेव लिखामः ॥

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद्व्रात्य क्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्प्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति ॥ अथर्व० कां० १५ । व० ११ । अ० २ । मं० १ । २ ॥

भाष्यम्

(तद्य०) यस्य गृहे पूर्वोक्तविशेषणयुक्तो विद्वान् (व्रात्यः) महोत्तमगुणविशिष्टः सेवनीयातिथिरर्थाद्यस्यागमनागमनयोरनियततिथिर्न यस्य काचिन्नियततिथिर्भवति किन्तु स्वेच्छयाऽकस्मादागच्छेद्गच्छेच्च स यदा गृहस्थानां गृहेषु प्राप्नुयात् ॥ १ ॥ (स्वयमेनम०) तदा गृहस्थोऽत्यन्तप्रेम्णोत्थाय नमस्कृत्य च तं महोत्तमासने निषादयेत् । तदनन्तरं पृच्छेद् भवतां जलादेरन्यस्य वा वस्तुन इच्छास्ति चेत्तद् ब्रूहि । सेवां कृत्वा तत्प्रसन्नतां सम्पाद्य स्वस्थचित्तस्सन्नेवं पृच्छेत् (व्रात्य क्वावात्सीः) हे व्रात्य पुरुषोत्तम ! त्वमितः पूर्वं क्व अवात्सीः कुत्र निवासं कृतवान् (व्रात्योदकं) हे अतिथे ! जलमेतद् गृहाण (व्रात्य तर्प्पयन्तु) भवान् स्वकीयसत्योपदेशेनास्मांश्च तर्प्पयतु प्रीणयतु तथा भवत्सत्योपदेशेन तत्सर्वाणि मम मित्राणि भवन्तं (तर्प्पयित्वा) विज्ञानवन्तो भवन्तु । (व्रात्य यथा०) हे विद्वन् यथा भवतः प्रसन्नता स्यात्तथा वयं कुर्य्याम । यद्वस्तु भवत्प्रियमस्ति तस्याज्ञां कुरु (व्रात्य यथा ते०) हे अतिथे ! यथेच्छतु भवान् तदनुकूलानस्मान् भवत्सेवाकरणे निश्चिनोतु (व्रात्य यथा ते०) यथा भवदिच्छापूर्तिस्स्यात् तथा भवत्सेवां वयं कुर्य्याम । यतो भवान् वयं च परस्परं सेवासत्सङ्गपूर्विकया विद्यावृद्ध्या सदानन्दे तिष्ठेम ॥

भाषार्थ

अब जो पांचवां अतिथियज्ञ कहाता है उसको लिखते हैं जिसमें अतिथियों की यथावत् सेवा करनी होती है । जो पूर्ण विद्वान् परोपकारी जितेन्द्रिय धार्मिक सत्यवादी छल कपट रहित नित्य भ्रमण करने वाले मनुष्य होते हैं उनको अतिथि कहते हैं । इसमें अनेक वैदिक मन्त्र प्रमाण हैं । परन्तु यहां संक्षेप के

लिये दो ही मन्त्र लिखते हैं (तद्यस्यैवं विद्वान्०) जिसके घर में पूर्वोक्त गुण-युक्त विद्वान् (व्रात्यः) उत्तम गुणविशिष्ट सेवा करने के योग्य अतिथि आवे जिसकी आने जाने की कोई भी निश्चित तिथि नहीं हो अकस्मात् आवे और जावे जब ऐसा मनुष्य गृहस्थों के घर में प्राप्त हो ॥ १ ॥ (स्वयमेनम०) तब उस को गृहस्थ अत्यन्त प्रेम से उठकर नमस्कार करके उत्तम आसन पर बैठा के पश्चात् पूछे कि आप को कुछ जल वा किसी अन्य वस्तु की इच्छा हो सो कहिये, इस प्रकार उसको प्रसन्न कर और स्वयं स्वस्थचित्त होके उससे पूछे कि (व्रात्य क्वावात्सीः) हे व्रात्य उत्तम पुरुष आपने यहां आने के पूर्व कहां वास किया था (व्रात्योदकं) हे अतिथि ! यह जल लीजिये (व्रात्य तर्पयन्तु) और हम लोग अपने सत्य प्रेम से आप को तृप्त करते हैं और सब हमारे इष्ट मित्र लोग आप के उपदेश से विज्ञानयुक्त होके सदा प्रसन्न हों (व्रात्य यथा०) हे विद्वान् ! व्रात्य जिस प्रकार से आपकी प्रसन्नता हो वैसा ही हम लोग काम करें और जो पदार्थ आप को प्रिय हो उसकी आज्ञा कीजिये (व्रात्य यथा०) जिस प्रकार से आप की कामना पूर्ण हो वैसी आप की सेवा हम लोग करें। जिससे आप और हम लोग परस्पर सेवा और सत्संगपूर्वक विद्यावृद्धि से सदा आनन्द में रहें ॥ २ ॥

इति संक्षेपतोऽतिथियज्ञः

इति पंचमहायज्ञविधिः समाप्तः



शताब्दी-संस्करण

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

पृष्ठ ८६१—६०१.

आर्य्योद्देश्यरत्नमाला

—:o:—

आवृत्ति	सन् ई०	संख्या
प्रथम ...	१८७७ ...	५०००
द्वितीय ...	१८८७ ...	२०००
तृतीय ...	१८९३ ...	३०००
चतुर्थ ...	१८९७ ...	५०००
पंचम ...	१९०१ ...	२०००
षष्ठ ...	१९०२ ...	१०००
सप्तम ...	१९०३ ...	१०,०००
अष्टम ...	१९०५ ...	१०,०००
नवम ...	१९०८ ...	१०,०००
दशम ...	१९०९ ...	२०,०००
एकादश ...	१९११ ...	२०,०००
द्वादश ...	१९१४ ...	१,००,०००
शताब्दीसंस्करण	१९२४ ...	१०,०००
		१,९८,०००

* ओ३म् *

आर्य्योद्देश्य-रत्नमाला

१–ईश्वर–जिसके गुण, कर्म, स्वभाव और स्वरूप सत्य ही हैं जो केवल चेतनमात्र वस्तु है तथा जो अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, निराकार, सर्वत्र व्यापक, अनादि और अनन्त आदि सत्यगुणवाला है और जिसका स्वभाव अविनाशी, ज्ञानी, आनन्दी, शुद्ध, न्यायकारी, दयालु और अजन्मादि है, जिसका कर्म्म जगत् की उत्पत्ति, पालन और विनाश करना तथा सर्व जीवों को पाप पुण्य के फल ठीक २ पहुंचाना है उसको ईश्वर कहते हैं ॥

२–धर्म्म–जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत् पालन और पक्षपात-रहित न्याय सर्वहित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिये यही: एक मानना योग्य है उसको धर्म्म कहते हैं ॥

३–अधर्म्म–जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा को छोड़कर और पक्षपात-सहित अन्यायी होके विना परीक्षा करके अपना ही हित करना है जो अविद्या हठ अभिमान क्रूरतादि दोषयुक्त होने के कारण वेदविद्या से विरुद्ध है और सब मनुष्यों को छोड़ने के योग्य है वह अधर्म्म कहाता है ॥

४–पुण्य–जिसका स्वरूप विद्यादि शुभ गुणों का दान और सत्यभाषणादि सत्याचार का करना है उस को पुण्य कहते हैं ॥

५–पाप–जो पुण्य से उलटा और मिथ्याभाषणादि करना है उस को पाप कहते हैं ॥

६-सत्यभाषण-जैसा कुछ अपने आत्मा में हो और असम्भवादि दोषों से रहित करके सदा वैसा ही बोले उस को सत्यभाषण कहते हैं ॥

७-मिथ्याभाषण-जो कि सत्यभाषण अर्थात् सत्य बोलने से विरुद्ध है उसको मिथ्याभाषण कहते हैं ॥

८-विश्वास-जिसका मूल अर्थ और फल निश्चय करके सत्य ही हो उसका नाम विश्वास है ॥

९-अविश्वास-जो विश्वास से उलटा है जिसका तत्त्व अर्थ न हो वह अविश्वास कहाता है ॥

१०-परलोक-जिसमें सत्यविद्या से परमेश्वर की प्राप्ति हो और उस प्राप्ति से इस जन्म वा पुनर्जन्म और मोक्ष में परमसुख प्राप्त होना है उसको परलोक कहते हैं ॥

११-अपरलोक-जो परलोक से उलटा है जिसमें दुःख विशेष भोगना होता है वह अपरलोक कहाता है ॥

१२-जन्म-जिस में किसी शरीर के साथ संयुक्त होके जीव कर्म करने में समर्थ होता है उसको जन्म कहते हैं ॥

१३-मरण-जिस शरीर को प्राप्त होकर जीव क्रिया करता है उस शरीर और जीव का किसी काल में जो वियोग होजाना है उस को मरण कहते हैं ॥

१४-स्वर्ग-जो विशेष सुख और सुख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है वह स्वर्ग कहाता है ॥

१५-नरक-जो विशेष दुःख और दुःख की सामग्री को जीव का प्राप्त होना है उस को नरक कहते हैं ॥

१६-विद्या-जिस से ईश्वर से लेके पृथिवीपर्य्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है इसका नाम विद्या है ॥

१७-अविद्या-जो विद्या से विपरीत है भ्रम अन्धकार और अज्ञानरूप है इसको अविद्या कहते हैं ॥

१८-सत्पुरुष-जो सत्यप्रिय धर्मात्मा विद्वान् सब के हितकारी और महाशय होते हैं वे सत्पुरुष कहाते हैं ॥

१९-सत्सङ्गकुसंग-जिस करके झूठ से छूट के सत्य की ही प्राप्ति होती है उस को सत्सङ्ग और जिस करके पापों में जीव फँसे उसको कुसंग कहते हैं ॥

२०-तीर्थ-जितने विद्याभ्यास, सुविचार, ईश्वरोपासना, धर्मानुष्ठान, सत्य का संग, ब्रह्मचर्य, जितेन्द्रियतादि उत्तम कर्म हैं वे सब तीर्थ कहाते हैं क्योंकि इन करके जीव दुःखसागर से तर जा सकते हैं ॥

२१-स्तुति-जो ईश्वर वा किसी दूसरे पदार्थ के गुण, ज्ञान, कथन, श्रवण और सत्यभाषण करना है वह स्तुति कहाती है ॥

२२-स्तुति का फल-जो गुणज्ञान आदि के करने से गुणवाले पदार्थों में प्रीति होती है यह स्तुति का फल कहाता है ॥

२३-निन्दा-जो मिथ्याज्ञान मिथ्याभाषण झूठ में आग्रहादि क्रिया है जिससे कि गुण छोड़कर उनके स्थान में अपगुण लगाना होता है वह निन्दा कहाती है ॥

२४-प्रार्थना-अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम कर्म्मों की सिद्धि के लिये परमेश्वर वा किसी सामर्थ्यवाले मनुष्य के सहाय लेने को प्रार्थना कहते हैं ॥

२५-प्रार्थना का फल-अभिमान का नाश, आत्मा में आर्द्रता गुण ग्रहण में पुरुषार्थ और अत्यन्त प्रीति का होना प्रार्थना का फल है ॥

२६-उपासना-जिससे ईश्वर ही के आनन्दस्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है उसको उपासना कहते हैं ॥

२७-निर्गुणोपासना-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, संयोग, वियोग, हलका, भारी, अविद्या, जन्म, मरण और दुःख आदि गुणों से रहित परमात्मा को जानकर जो उसकी उपासना करनी है उसको निर्गुणोपासना कहते हैं ॥

२८-सगुणोपासना-जिसको सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, शुद्ध, नित्य आनन्द, सर्वव्यापक, एक सनातन सर्वकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, मंगलमय, सर्वानन्दप्रद, सर्वपिता, सब जगत् का रचनेवाला, न्यायकारी, दयालु आदि सत्य गुणों से युक्त जानके जो ईश्वर की उपासना करनी है सो सगुणोपासना कहाती है ॥

२९-मुक्ति-अर्थात् जिससे सब बुरे काम और जन्म मरणादि दुःखसागर से छूटकर सुखरूप परमेश्वर को प्राप्त होके सुख ही में रहना है वह मुक्ति कहाती है ॥

३०-मुक्ति के साधन-अर्थात् जो पूर्वोक्त ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना का करना, धर्म का आचरण और पुण्य का करना, सत्संग विश्वास तीर्थसेवन सत्पुरुषों का संग और परोपकारादि सब अच्छे कामों का करना तथा सब दुष्ट कर्मों से अलग रहना है ये सब मुक्ति के साधन कहाते हैं ॥

३१-कर्त्ता-जो स्वतन्त्रता से कर्मों का करने वाला है अर्थात् जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं वह कर्त्ता कहाता है ॥

३२-कारण-जिनको ग्रहण करके करनेवाला किसी कार्य व चीज को बना सकता है अर्थात् जिसके विना कोई चीज बन नहीं सकती वह कारण कहाता है, सो तीन प्रकार का है ॥

३३-उपादान कारण-जिसको ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाय जैसा कि मिट्टी से घड़ा बनता है उसको उपादान कारण कहते हैं ॥

३४-निमित्त कारण-जो बनानेवाला है जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है इस प्रकार के पदार्थों को निमित्त कारण कहते हैं ॥

३५–साधारण कारण–जैसे कि दण्ड आदि और दिशा आकाश तथा प्रकाश हैं इनको साधारण कारण कहते हैं ॥

३६–कार्य्य–जो किसी पदार्थ के संयोगविशेष से स्थूल होके काम में आता है अर्थात् जो करने के योग्य है वह उस कारण का कार्य्य कहाता है ॥

३७–सृष्टि–जो कर्त्ता की रचना से कारण द्रव्य किसी संयोगविशेष से अनेक प्रकार कार्यरूप होकर वर्त्तमान में व्यवहार करने योग्य होती है वह सृष्टि कहाती है ॥

३८–जाति–जो जन्म से ले के मरणपर्यन्त बनी रहे, जो अनेक व्यक्तियों में एकरूप से प्राप्त हो, जो ईश्वरकृत अर्थात् मनुष्य, गाय, अश्व और वृक्षादि समूह हैं वे जाति शब्दार्थ से लिये जाते हैं ॥

३९–मनुष्य–अर्थात् जो विचार के बिना किसी काम को न करे उसका नाम मनुष्य है ॥

४०–आर्य्य–जो श्रेष्ठस्वभाव धर्मात्मा परोपकारी सत्यविद्यादि गुणयुक्त और आर्य्यावर्त्त देश में सब दिन से रहनेवाले हैं उन को आर्य्य कहते हैं ॥

४१–आर्य्यावर्त्त देश–हिमालय, विन्ध्याचल, सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्रा नदी इन चारों के बीच और जहांतक उन का विस्तार है उन के मध्य में जो देश है उसका नाम आर्य्यावर्त्त है ॥

४२–दस्यु–अनार्य अर्थात् जो अनाड़ी आर्य्यों के स्वभाव और निवास से पृथक् डाकू चोर हिंसक जो कि दुष्ट मनुष्य है वह दस्यु कहाता है ॥

४३–वर्ण–जो गुण और कर्मों के योग से ग्रहण किया जाता है वह वर्ण शब्दार्थ से लिया जाता है ॥

४४–वर्ण के भेद–जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि हैं वे वर्ण कहाते हैं ॥

४५–आश्रम–जिन में अत्यन्त परिश्रम करके उत्तम गुणों का ग्रहण और श्रेष्ठ काम किये जायं उन को आश्रम कहते हैं ॥

४६–आश्रम के भेद–जो सद्विद्यादि शुभ गुणों का ग्रहण तथा जितेन्द्रियता से आत्मा और शरीर के बल को बढ़ाने के लिये ब्रह्मचारी, जो सन्तानोत्पत्ति और विद्यादि सब व्यवहारों को सिद्ध करने के लिये गृहाश्रम, जो विचार के लिये वानप्रस्थ और जो सर्वोपकार करने के लिये संन्यासाश्रम होता है वे चार आश्रम कहाते हैं ॥

४७–यज्ञ–जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्य्यन्त वा जो शिल्प व्यवहार और पदार्थ विज्ञान जो कि जगत् के उपकार के लिये किया जाता है उस को यज्ञ कहते हैं ॥

४८–कर्म–जो मन इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा विशेष करता है वह कर्म कहाता है शुभ अशुभ और मिश्रभेद से तीन प्रकार का है ॥

४९–क्रियमाण–जो वर्त्तमान में किया जाता है सो क्रियमाण कर्म कहाता है ॥

५०–सञ्चित–जो क्रियमाण का संस्कार ज्ञान में जमा होता है उस को सञ्चित संस्कार कहते हैं ॥

५१–प्रारब्ध–जो पूर्व किये हुए कर्मों के सुख दुःख रूप फल का भोग किया जाता है उसको प्रारब्ध कहते हैं ॥

५२–अनादि पदार्थ–जो ईश्वर जीव और सब जगत् का कारण है ये तीन स्वरूप से अनादि हैं ॥

५३–प्रवाह से अनादि पदार्थ–जो कार्य्य जगत् जीव के कर्म और जो इनका संयोग वियोग है ये तीन परंपरा से अनादि हैं ॥

५४–अनादि का स्वरूप–जो न कभी उत्पन्न हुआ हो जिसका कारण कोई भी न होवे अर्थात् जो सदा से स्वयंसिद्ध हो वह अनादि कहाता है ॥

५५–पुरुषार्थ–अर्थात् सर्वथा आलस्य छोड़ के उत्तम व्यवहारों की सिद्धि के लिये मन, शरीर, वाणी और धन से जो अत्यन्त उद्योग करना है उस को पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५६–पुरुषार्थ के भेद–जो अप्राप्त वस्तु की इच्छा करनी, प्राप्त का अच्छे प्रकार रक्षण करना, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए पदार्थों का सत्यविद्या की उन्नति में तथा सब के हित करने में खर्च करना है इन चार प्रकार के कर्मों को पुरुषार्थ कहते हैं ॥

५७–परोपकार–अर्थात् अपने सब सामर्थ्य से दूसरे प्राणियों के सुख होने के लिये जो तन, मन, धन से प्रयत्न करना है वह परोपकार कहाता है ॥

५८–शिष्टाचार–जिस में शुभ गुणों का ग्रहण और अशुभ गुणों का त्याग किया जाता है वह शिष्टाचार कहाता है ॥

५९–सदाचार–जो सृष्टि से लेके आज पर्यन्त सत्पुरुषों का वेदोक्त आचार चला आया है कि जिस में सत्य का ही आचरण और असत्य का परित्याग किया है उस को सदाचार कहते हैं ॥

६०–विद्यापुस्तक–जो ईश्वरोक्त सनातन सत्य विद्यामय चार वेद हैं उन को विद्यापुस्तक कहते हैं ॥

६१–आचार्य–जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्याओं को पढ़ा देवे उस को आचार्य्य कहते हैं ॥

६२–गुरु–जो वीर्यदान से लेके भोजनादि कराके पालन करता है इससे पिता को गुरु कहते हैं और जो अपने सत्योपदेश से हृदय का अज्ञानरूपी अन्धकार मिटा देवे उसको भी गुरु अर्थात् आचार्य्य कहते हैं ॥

६३–अतिथि–जिसकी आने और जाने में कोई भी निश्चित तिथि न हो तथा जो विद्वान् होकर सर्वत्र भ्रमण करके प्रश्नोत्तर के उपदेश से सब जीवों का उपकार करता है उसको अतिथि कहते हैं ॥

६४–पञ्चायतनपूजा–जीते माता, पिता, आचार्य्य, अतिथि और परमेश्वर को जो यथायोग्य सत्कार करके प्रसन्न करना है उस को पञ्चायतनपूजा कहते हैं ॥

६५–पूजा–जो ज्ञानादि गुणवाले का यथायोग्य सत्कार करना है उस को पूजा कहते हैं ॥

६६–अपूजा–जो ज्ञानादि रहित जड़ पदार्थ और जो सत्कार के योग्य नहीं है उसका जो सत्कार करना है वह अपूजा कहाती है ॥

६७–जड़–जो वस्तु ज्ञानादि गुणों से रहित है उसको जड़ कहते हैं ॥

६८–चेतन–जो पदार्थ ज्ञानादि गुणों से युक्त है उसको चेतन कहते हैं ॥

६९–भावना–जो जैसी चीज हो उस में विचार से वैसा ही निश्चय करना कि जिसका विषय भ्रमरहित हो अर्थात् जैसे को वैसा ही समझ लेना उसको भावना कहते हैं ॥

७०–अभावना–जो भावना से उलटा हो अर्थात् जो मिथ्याज्ञान से अन्य निश्चय मान लेना है जैसे जड़ में चेतन और चेतन में जड़ का निश्चय कर लेना है उसको अभावना कहते हैं ॥

७१–पण्डित–जो सत् असत् को विवेक से जाननेवाला धर्म्मात्मा सत्यवादी, सत्यप्रिय, विद्वान् और सब का हितकारी है उसको पण्डित कहते हैं ॥

७२–मूर्ख–जो अज्ञान, हठ, दुराग्रहादि दोषसहित है उस को मूर्ख कहते हैं ॥

७३–ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार–जो बड़े और छोटों से यथायोग्य परस्पर मान्य करना है उसको ज्येष्ठकनिष्ठव्यवहार कहते हैं ॥

७४–सर्वहित–जो तन, मन और धन से सब के सुख बढ़ाने में उद्योग करना है उसको सर्वहित कहते हैं ॥

७५—चोरीत्याग—जो स्वामी की आज्ञा के विना किसी के पदार्थ का ग्रहण करना है वह चोरी और उसका छोड़ना चोरीत्याग कहाता है ॥

७६—व्यभिचारत्याग—जो अपनी स्त्री के विना दूसरी स्त्री के साथ गमन करना और अपनी स्त्री को भी ऋतुकाल के विना वीर्यदान देना तथा अपनी स्त्री के साथ भी वीर्य का अत्यन्त नाश करना और युवावस्था के विना विवाह करना है यह व्यभिचार कहाता है उसको छोड़ देने का नाम व्यभिचारत्याग है ॥

७७—जीव का स्वरूप—जो चेतन अल्पज्ञ, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान गुणवाला तथा नित्य है वह जीव कहाता है ॥

७८—स्वभाव—जिस वस्तु का जो स्वाभाविक गुण है जैसे कि अग्नि में रूप और दाह अर्थात् जबतक वह वस्तु रहै तबतक उसका वह गुण भी नहीं छूटता इसलिये इसको स्वभाव कहते हैं ॥

७९—प्रलय—जो कार्य जगत् का कारणरूप होना अर्थात् जगत् का करनेवाला ईश्वर जिन २ कारणों से सृष्टि बनाता है कि अनेक कार्य्यों को रचके यथावत् पालन करके पुनः कारणरूप करके रखता है उसका नाम प्रलय है ॥

८०—मायावी—जो छल कपट स्वार्थ में ही प्रसन्नता दम्भ अहङ्कार शठतादि दोष हैं और जो मनुष्य इनसे युक्त हो वह मायावी कहाता है ॥

८१—आप्त—जो छलादि दोषरहित, धर्म्मात्मा, विद्वान्, सत्योपदेष्टा सब पर कृपादृष्टि से वर्तमान होकर अविद्यान्धकार का नाश करके अज्ञानी लोगों के आत्माओं में विद्यारूप सूर्य्य का प्रकाश सदा करे उसको आप्त कहते हैं ॥

८२—परीक्षा—जो प्रत्यक्षादि आठ प्रमाण वेदविद्या आत्मा की शुद्धि और सृष्टिक्रम से अनुकूल विचार के सत्यासत्य को ठीक २ निश्चय करना है उसको परीक्षा कहते हैं ॥

८३—आठ प्रमाण—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव ये आठ प्रमाण हैं, इन्हीं से सब सत्यासत्य का यथावत् निश्चय मनुष्य कर सकता है ॥

८४—लक्षण—जिससे जाना जाय जो कि उस का स्वाभाविक गुण है जैसे कि रूप से अग्नि जाना जाता है इसको लक्षण कहते हैं ॥

८५—प्रमेय—जो प्रमाणों से जाना जाता है जैसे कि आंख का प्रमेय रूप अर्थ है जो कि इन्द्रियों से प्रतीत होता है उसको प्रमेय कहते हैं ॥

८६—प्रत्यक्ष—जो प्रसिद्ध शब्दादि पदार्थों के साथ श्रोत्रादि इन्द्रिय और मन के निकट सम्बन्ध से ज्ञान होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं ॥

८७—अनुमान—किसी पूर्व दृष्ट पदार्थ के एक अङ्ग को प्रत्यक्ष देख के पश्चात् उस के अदृष्ट अङ्गों का जिससे यथावत् ज्ञान होता है उसको अनुमान कहते हैं ॥

८८—उपमान—जैसे किसी ने किसी से कहा कि गाय के तुल्य नील गाय होती है ऐसे जो उपमा से सादृश्य ज्ञान होता है उस को उपमान कहते हैं ॥

८९—शब्द—जो पूर्ण आप्त परमेश्वर और आप्त मनुष्य का उपदेश है उसी को शब्द प्रमाण कहते हैं ॥

९०—ऐतिह्य—जो शब्दप्रमाण के अनुकूल हो जो कि असम्भव और झूठ लेख न हो उसी को ऐतिह्य (इतिहास) कहते हैं ॥

९१—अर्थापत्ति—जो एक बात के कहने से दूसरी विना कहे समझी जाय उसको अर्थापत्ति कहते हैं ॥

९२—सम्भव—जो बात प्रमाण, युक्ति और सृष्टिक्रम से युक्त हो वह सम्भव कहाता है ॥

९३–अभाव–जैसे किसी ने किसी से कहा कि तू जल लेआ उस ने वहां देखा कि यहां जल नहीं है परन्तु जहां जल है वहां से ले आना चाहिये इस अभाव निमित्त से जो ज्ञान होता है उसे अभाव प्रमाण कहते हैं ॥

९४-शास्त्र–जो सत्य विद्याओं के प्रतिपादन से युक्त हो और जिस करके मनुष्यों को सत्य सत्य शिक्षा हो उस को शास्त्र कहते हैं ॥

९५-वेद–जो ईश्वरोक्त सत्य विद्याओं से युक्त ऋक्संहितादि चार पुस्तक हैं जिन से मनुष्यों को सत्यासत्य का ज्ञान होता है उन को वेद कहते हैं ॥

९६–पुराण–जो प्राचीन ऐतरेय शतपथ ब्राह्मणादि ऋषि मुनिकृत सत्यार्थपुस्तक हैं उन्हीं को पुराण, इतिहास, कल्प, गाथा और नाराशंसी कहते हैं ॥

९७–उपवेद–जो आयुर्वेद वैद्यकशास्त्र, जो धनुर्वेद शस्त्रास्त्रविद्या, राजधर्म, जो गान्धर्ववेद गानशास्त्र और अर्थवेद जो शिल्पशास्त्र हैं इन चारों को उपवेद कहते हैं ॥

९८–वेदांग–जो शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष् आर्ष सनातन शास्त्र हैं इनको वेदाङ्ग कहते हैं ॥

९९–उपांग–जो ऋषि मुनिकृत मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त छः शास्त्र हैं इन को उपाङ्ग कहते हैं ॥

१००–नमस्ते–मैं तुम्हारा मान्य करता हूं ।

वेदरामाङ्कचन्द्रेऽब्दे विक्रमार्कस्य भूपतेः ।
नभस्ये सितसप्तम्यां सौम्ये पूर्त्तिमगादियम् ॥ १ ॥

श्रीयुत महाराजा विक्रमादित्यजी के १९३४ के संवत् में श्रावण महीने के शुक्लपक्ष सप्तमी बुधवार के दिन स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी ने आर्य्यभाषा में सब मनुष्यों के हितार्थ यह आर्य्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक प्रकाशित किया ॥

ओ३म्

आर्य्यसमाज के नियम

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदिमूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है।

४—सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहियें।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार, यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहैं॥

पुस्त
पुस्त
पु
है। को
अपने
लिये पु

ओ३म्

दयानन्द ग्रंथमाला

शताब्दीसंस्करण

प्रथम भाग

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य्य श्री स्वामी

दयानन्द सरस्वती विरचित

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या......... ..   आगत संख्या 17632

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं। इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।